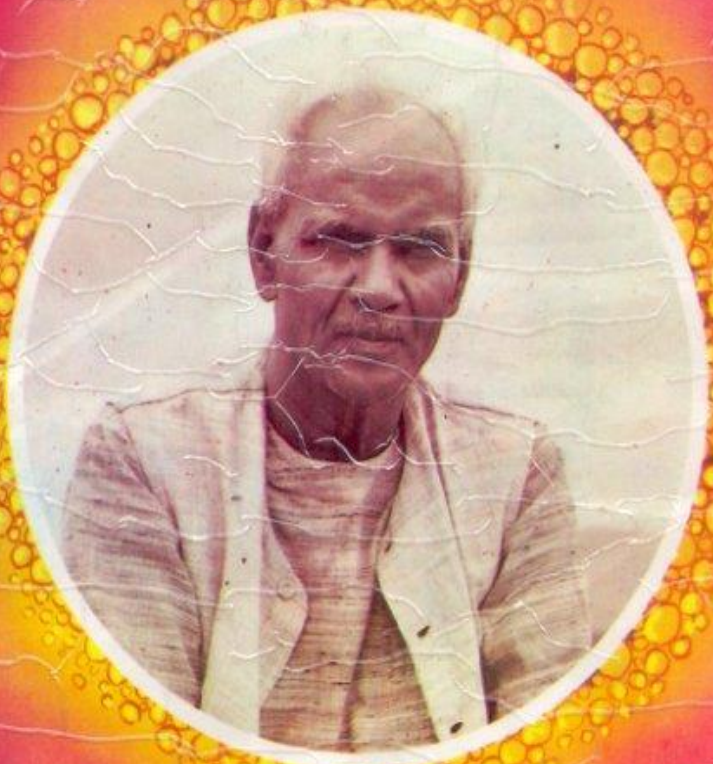
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

आत्मोत्कर्ष का आधार- ज्ञान



www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मोत्कर्ष का आधार-ज्ञान

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

सम्पादक
ब्रह्मवर्चस

प्रकाशक :

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकाशक
अखण्ड ज्योति संस्थान
मथुरा-२८१ ००३

© सर्वाधिकार सुरक्षित

द्वितीय संस्करण १९९८



मूल्य १२५)

मुद्रक
जनजागरण प्रेस, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समर्पणम्

ॐ वन्दे भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ।।

मातृवत् लालयित्री च पितृवत् मार्गदर्शिका ।
नमोऽस्तु गुरुसत्तायै श्रद्धा-प्रज्ञा युता च या ।।

भगवत्याः जगन्मातुः, श्रीरामस्य जगद्गुरोः ।
पादुकायुगले वन्दे, श्रद्धाप्रज्ञास्वरूपयोः ।।

नमोऽस्तु गुरवे तस्मै गायत्रीरूपिणे सदा ।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम् ।।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

असम्भवं सम्भवकर्तुमुद्यतं प्रचण्डझञ्झावृतिरोधसक्षमम् ।
युगस्य निर्माणकृते समुद्यतं परं महाकालममुं नमाम्यहम् ।।

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

विराट गायत्री परिवार एवं उसके संस्थापक-संरक्षक एक संक्षिप्त परिचय

इतिहास में कभी-कभी ऐसा होता है कि अवतारी सत्ता एक साथ बहुआयामी रूपों में प्रकट होती है एवं करोड़ों ही नहीं, पूरी वसुधा के उद्धार-चेतनात्मक धरातल पर सबके मनों का नये सिरे से निर्माण करने आती है। परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य को एक ऐसी ही सत्ता के रूप में देखा जा सकता है. जो युगों-युगों में गुरु एवं अवतारी सत्ता दोनों ही रूपों में हम सबके बीच प्रकट हुई, अस्सी वर्ष का जीवन जीकर एक विराट् ज्योति प्रज्ज्वलित कर उस सूक्ष्म ऋषि चेतना के साथ एकाकार हो गयी जो आज युग परिवर्तन को सन्निकट लाने को प्रतिबद्ध है। परमवंदनीया माताजी शक्ति का रूप थीं जो कभी महाकाली, कभी माँ जानकी, कभी माँ शारदा एवं कभी माँ भगवती के रूप में शिव की कल्याणकारी सत्ता का साथ देने आती रही हैं। उनने भी सूक्ष्म में विलीन हो स्वयं को अपने आराध्य के साथ एकाकार कर ज्योतिपुरुष का एक अंग स्वयं को बना लिया। आज दोनों सशरीर हमारे बीच नहीं हैं किन्तु, नूतन सृष्टि कैसे ढाली गयी, कैसे मानव गढ़ने का साँचा बनाया गया, इसे शान्तिकुंज, ब्रह्मवर्चस, गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युगतीर्थ आँवलखेड़ा जैसी स्थापनाओं तथा संकल्पित सृजन सेनानीगणों के वीरभद्रों की करोड़ों से अधिक की संख्या के रूप में देखा जा सकता है।

परमपूज्य गुरुदेव का वास्तविक मूल्यांकन तो कुछ वर्षों बाद इतिहासविद, मिथक लिखने वाले करेंगे किन्तु, यदि उनको आज भी साक्षात कोई देखना या उनसे साक्षात्कार करना चाहता हो तो उन्हें उनके द्वारा अपने हाथ से लिखे गये उस विराट परिमाण में साहित्य के रूप में युग संजीवनी के रूप में देखा सकता है जो वे अपने वजन से अधिक भार के बराबर लिख गये। इस साहित्य में संवेदना का स्पर्श इस बारीकी से हुआ है कि लगता है लेखनी को उसी की स्याही में डुबोकर लिखा गया हो। हर शब्द ऐसा जो हृदय को छूता, मन को व विचारों कों बदलता चला जाता है। लाखों-करोड़ों के मनों के अंत:स्थल को छूकर उसने उनका कायाकल्प कर दिया। रूसो के प्रजातंत्र की, कार्लमार्क्स के साम्यवाद की क्रान्ति भी इसके समक्ष बौनी पड़ जाती है। उनके मात्र इस युग वाले स्वरूप को लिखने तक में लगता है कि एक विश्वकोश तैयार हो सकता है, फिर उस बहुआयामी रूप को जिसमें वे संगठनकर्ता, साधक, करोड़ों के अभिभावक, गायत्री महाविद्या के उद्धारक, संस्कार परम्परा का पुनर्जीवन करने वाले, ममत्व लुटाने वाले एक पिता, नारी जाति के प्रति अनन्य करुणा बिखेरकर उनके ही उद्धार के लिए धरातल पर चलने वाला नारी जागरण अभियान चलाते देखे जाते हैं, अपनी वाणी के उद्बोधन से एक विराट् गायत्री परिवार एकाकी अपने बलबूते खड़े करते दिखाई देते हैं तो समझ में नहीं आता, क्या-क्या लिखा जाये, कैसे छन्दबद्ध किया जाय, उस महापुरुष के जीवनचरित को।

आश्विन कृष्ण त्रयोदशी विक्रमी संवत् १९६७ (२० सितम्बर, १९११) को स्थूल शरीर से आँवलखेड़ा ग्राम जनपद आगरा जो जलेसर मार्ग पर आगरा से पन्द्रह मील की दूरी पर स्थित है, में जन्मे श्रीराम शर्मा जी का बाल्यकाल-कैशोर्य काल ग्रामीण परिसर में ही बीता। वे जन्मे तो थे एक जमींदार घराने में, जहाँ उनके पिता श्री पं. रूपकिशोर जी शर्मा आप-पास के, दूर-दराज के राजघरानों के राजपुरोहित, उद्भट विद्वान, भागवत कथाकार थे किन्तु, उनका अंत:करण मानव मात्र की पीड़ा से सतत विचलित रहता था। साधना के प्रति उनका झुकाव बचपन में ही दिखाई देने लगा। जब वे अपने सहपाठियों को, छोटे बच्चों को अमराइयों में बिठाकर स्कूली शिक्षा के साथ-साथ सुसंस्कारिता अपनाने वाली आत्मविद्या का शिक्षण दिया करते थे, छटपटाहट के कारण हिमालय की ओर भाग निकलने व पकड़े जाने पर उनने संबंधियों को बताया कि हिमालय ही उनका घर है एवं वहीं वे जा रहे थे। किसे मालूम था कि हिमालय की ऋषि चेतनाओं का समुच्चय बनकर आयी यह सत्ता वस्तुत: अगले दिनों अपना घर वहीं बनाएगी। जाति-पाँति का कोई भेद नहीं। जातिगत मूढ़ता भरी मान्यता से ग्रसित तत्कालीन भारत के ग्रामीण परिसर में एक अछूत वृद्ध महिला

की जिसे कुष्ठ रोग हो गया था, उसी के टोले में जाकर सेवा कर उनने घरवालों का विरोध तो मोल ले लिया पर अपना व्रत नहीं छोड़ा। उस महिला ने स्वस्थ होने पर उन्हें ढेरों आशीर्वाद दिये। एक अछूत कहलाने वाली जाति का व्यक्ति जो उनके आलीशान घर में घोड़ों की मालिश करने आता था, एक बार कह उठा कि मेरे घर कथा कौन कराने आएगा, मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ। नवनीत जैसे हृदय वाले पूज्यवर उसके घर जा पहुँचे एवं कथा पूरे विधान से कर पूजा की, उसको स्वच्छता का पाठ सिखाया, जबकि सारा गाँव उनके विरोध में बोल रहा था।

किशोरावस्था में ही समाज सुधार की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ उनने चलाना आरम्भ कर दी थीं। औपचारिक शिक्षा स्वल्प ही पायी थी किंतु, उन्हें इसके बाद आवश्यकता भी नहीं थी क्योंकि जो जन्मजात प्रतिभासम्पन्न हो वह औपचारिक पाठ्यक्रम तक सीमित कैसे रह सकता है। हाट-बाजारों में जाकर स्वास्थ्य-शिक्षा प्रधान परिपत्र बाँटना, पशुधन को कैसे सुरक्षित रखें तथा स्वावलम्बी कैसे बनें, इसके छोटे-छोटे पैम्फलेट्स लिखने, हाथ की प्रेस से छपवाने के लिए उन्हें किसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी। वे चाहते थे, जनमानस आत्मावलम्बी बने, राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान उसका जागे, इसलिए गाँव में जन्मे इस लाल ने नारी शक्ति व बेरोजगार युवाओं के लिए गाँव में ही एक बुनताघर स्थापित किया व उसके द्वारा हाथ से कैसे कपड़ा बुना जाय अपने पैरों पर कैसे खड़ा हुआ जाय यह सिखाया।

पंद्रह वर्ष की आयु में वसंत पंचमी की वेला में सन् १९२६ में उनके घर की पूजास्थली में, जो उनकी नियमित उपासना का तब से आगार थी, जबसे महामना पं. मदनमोहन मालवीय जी ने उन्हें काशी में गायत्री मंत्र की दीक्षा दी थी, उनकी गुरुसत्ता का आगमन हुआ अदृश्य छायाधारी सूक्ष्म रूप में। उनने प्रज्ज्वलित दीपक की लौ में से स्वयं को प्रकट कर उन्हें उनके द्वारा विगत कई जन्मों में सम्पन्न क्रिया-कलापों का दिग्दर्शन कराया तथा उन्हें बताया कि वे दुर्गम हिमालय से आये हैं एवं उनसे अनेकानेक ऐसे क्रियाकलाप कराना चाहते हैं, जो अवतारी स्तर की ऋषिसत्ताएँ उनसे अपेक्षा रखती हैं। चार बार कुछ दिन से लेकर एक साल तक की अवधि तक हिमालय आकर रहने, कठोर तप करने का भी उनने संदेश दिया एवं उन्हें तीन संदेश दिए- १. गायत्री महाशक्ति के चौबीस-चौबीस लक्ष्य के चौबीस महापुरश्चरण जिन्हें आहार के कठोर तप के साथ पूरा करना था। २. अखण्ड घृतदीप की स्थापना एवं जन-जन तक इसके प्रकाश को फैलाने के लिए समय आने पर ज्ञानयज्ञ अभियान चलाना, जो बाद में अखण्ड ज्योति पत्रिका के १९३८ में प्रथम प्रकाशन से लेकर विचार-क्रान्ति अभियान के विश्वव्यापी होने के रूप में प्रकटा तथा ३. चौबीस महापुरश्चरणों के दौरान युगधर्म का निर्बाह करते हुए राष्ट्र के निमित्त भी स्वयं को खपाना, हिमालय यात्रा भी करना तथा उनके संपर्क से आगे का मार्गदर्शन लेना।

यह कहा जा सकता है कि युग निर्माण मिशन, गायत्री परिवार, प्रज्ञा अभियान, पूज्य गुरुदेव जो सभी एक-दूसरे के पर्याय हैं, की जीवन यात्रा का यह एक महत्त्वपूर्ण मोड़ था, जिसमें भावी रीति-नीति का निर्धारण कर दिया। पूज्य गुरुदेव अपनी पुस्तक 'हमारी वसीयत और विरासत' में लिखते हैं कि- "प्रथम मिलन के दिन समर्पण सम्पन्न हुआ। दो बातें गुरुसत्ता द्वारा विशेष रूप से कही गईं- संसारी लोग क्या करते हैं और क्या कहते हैं, उसकी ओर से मुँह मोड़कर निर्धारित लक्ष्य की ओर एकाकी साहस के बलबूते चलते रहना एवं दूसरा यह कि अपने को अधिक पवित्र और प्रखर बनाने की तपश्चर्या में जुट जाना- जौ की रोटी व छाछ पर निर्वाह कर आत्मानुशासन सीखना। इसी से वह सामर्थ्य विकसित होगी जो विशुद्धतः परमार्थ प्रयोजनों में नियोजित होगी। वसंत पर्व का यह दिन गुरु अनुशासन का अवधारण ही हमारे लिए नया जन्म बन गया। सद्गुरु की प्राप्ति हमारे जीवन का अनन्य एवं परम सौभाग्य रहा।"

राष्ट्र के परावलम्बी होने की पीड़ा भी उन्हें उतनी ही सताती थी जितनी कि गुरुसत्ता के आदेशानुसार तपकर सिद्धियों के उपार्जन की ललक उनके मन में थी। उनके इस असमंजस को गुरुसत्ता ने ताड़कर परावाणी से उनका मार्गदर्शन किया कि युगधर्म की महत्ता व समय की पुकार देख-सुनकर तुम्हें अन्य आवश्यक कार्यों को छोड़कर अग्निकाण्ड में पानी लेकर दौड़ पड़ने की तरह आवश्यक कार्य भी करने पड़ सकते हैं। इसमें स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के नाते संघर्ष करने का भी संकेत था। १९२७ से १९३३ तक का समय उनका एक सक्रिय स्वयं सेवक-स्वतंत्रता सेनानी के रूप में बीता, जिसमें घरवालों के विरोध के बावजूद

पैदल लम्बा रास्ता पार कर वे आगरा के उस शिविर में पहुँचे, जहाँ शिक्षण दिया जा रहा था, अनेकानेक मित्रों-सखाओं-मार्गदर्शकों के साथ भूमिगत हो कार्य करते रहे तथा समय आने पर जेल भी गये। छह-छह माह की उन्हें कई बार जेल हुई। जेल में भी वे जेल के निरक्षर साथियों को शिक्षण देकर व स्वयं अँग्रेजी सीखकर लौटे। आसनसोल जेल में वे श्री जवाहरलाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू, श्री रफी अहमद किदवई, महामना मदनमोहन मालवीय जी, देवदास गाँधी जैसी हस्तियों के साथ रहे व वहाँ से एक मूलमंत्र सीखा जो मालवीय जी ने दिया था कि जन-जन की साझेदारी बढ़ाने के लिए हर व्यक्ति के अंशदान से, मुट्ठी फण्ड से रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलाना। यही मंत्र आगे चलकर एक घण्टा समयदान, बीस पैसा नित्य या एक दिन की आय एक माह में तथा एक मुट्ठी अन्न रोज डालने के माध्यम से धर्मघट की स्थापना का स्वरूप लेकर लाखों-करोड़ों की भागीदारी वाला गायत्री परिवार बनाता चला गया, जिसका आधार था प्रत्येक व्यक्ति की यज्ञीय भावना का उसमें समावेश।

स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान कुछ उग्र दौर भी आये, जिनमें शहीद भगतसिंह को फाँसी दिये जाने पर फैले जनआक्रोश के समय श्री अरविन्द के किशोर काल की क्रान्तिकारी स्थिति की तरह उनने भी वे कार्य किये, जिनसे आक्रान्ता शासकों के प्रति असहयोग जाहिर होता था। नमक आन्दोलन के दौरान वे आततायी शासकों के समक्ष झुके नहीं, वे मारते रहे परन्तु, समाधि स्थिति को प्राप्त राष्ट्र देवता के पुजारी को बेहोश होना स्वीकृत था पर आन्दोलन से पीठ दिखाकर भागना नहीं। बाद में फिरंगी सिपाहियों के जाने पर लोग उठाकर घर लेकर आये। जरारा आन्दोलन के दौरान उनने झण्डा छोड़ा नहीं जबकि, फिरंगी उन्हें पीटते रहे, झण्डा झीनने का प्रयास करते रहे। उनने मुँह से झण्डा पकड़ लिया, गिर पड़े, बेहोश हो गये पर झण्डे का टुकड़ा चिकित्सकों द्वारा दाँतों में भींचे गये टुकड़े के रूप में जब निकाला गया तब सब उनकी सहनशक्ति देखकर आश्चर्यचकित रह गये। उन्हें तब से ही आजादी के मतवाले उन्मत्त श्रीराम मत्त नाम मिला। अभी भी आगरा में उनके साथ रहे या उनसे कुछ सीख लिए अगणित व्यक्ति उन्हें मत्तजी नाम से ही जानते हैं। लगानबन्दी के आँकड़े एकत्र करने के लिए उनने पूरे आगरा जिले का दौरा किया व उनके द्वारा प्रस्तुत वे आँकड़े तत्कालीन संयुक्त प्रान्त के मुख्यमंत्री श्रीगोविन्द वल्लभ पंत द्वारा गाँधीजी के समक्ष पेश किये गये। बापू ने अपनी प्रशस्ति के साथ वे प्रामाणिक आँकड़े ब्रिटिश पार्लियामेण्ट भेजे, इसी आधार पर पूरे संयुक्त प्रान्त के लगान माफी के आदेश प्रसारित हुए। कभी जिनने अपनी इस लड़ाई के बदले कुछ न चाहा उन्हें सरकार ने अपना प्रतिनिधि भेजकर पचास वर्ष बाद ताम्रपत्र देकर शांतिकुंज में सम्मानित किया। उसी सम्मान व स्वाभिमान के साथ सारी सुविधाएँ व पेंशन उनने प्रधानमंत्री राहत फण्ड के नाम समर्पित कर दीं। वैरागी जीवन का सच्चे राष्ट्र संत होने का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है?

१९३५ के बाद उनके जीवन का नया दौर शुरू हुआ, जब गुरुसत्ता की प्रेरणा से वे श्री अरविन्द से मिलने पाण्डिचेरी, गुरुदेव ऋषिवर रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिलने शांति निकेतन तथा बापू से मिलने साबरमती आश्रम, अहमदाबाद गये। सांस्कृतिक, आध्यात्मिक मोर्चे पर राष्ट्र को कैसे परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त किया जाय, यह निर्देश लेकर अपना अनुष्ठान यथावत् चलाते हुए उनने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया, जब आगरा में 'सैनिक' समाचार पत्र के कार्यवाहक संपादक के रूप में श्रीकृष्णदत्तपालीवाल जी ने उन्हें अपना सहायक बनाया। बाबू गुलाब राय व पालीवाल जी से सीख लेते हुए सतत स्वाध्यायरत रहकर उनने अखण्ड ज्योति नामक पत्रिका का पहला अंक १९३८ की वसंत पंचमी पर प्रकाशित किया। प्रयास पहला था, जानकारियाँ कम थीं अतः पुनः सारी तैयारी के साथ विधिवत् १९४० की जनवरी से उनने परिजनों के नाम पाती के साथ अपने हाथ से बने कागज से बने कागज पर पैर से चलने वाली मशीन से छापकर 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका का शुभारंभ किया जो पहले तो दो सौ पचास पत्रिका के रूप में निकली, किन्तु क्रमशः उनके अध्यवसाय घर- घर पहुँचाने, मित्रों तक पहुँचाने वाले उनके हृदयस्पर्शी पत्रों द्वारा बढ़ती-बढ़ती नवयुग के मत्स्यावतार की तरह आज दस लाख से भी अधिक संख्या में विभिन्न भाषाओं में छपती व एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों द्वारा पढ़ी जाती है।

पत्रिका के साथ-साथ 'मैं क्या हूँ' जैसी पुस्तकों का लेखन आरम्भ हुआ। स्थान बदला, आगरा से मथुरा आग गये, दो-तीन घर बदलकर घीयामण्डी में जहाँ आज अखण्ड ज्योति संस्थान है, आ बसे। पुस्तकों

का प्रकाशन व कठोर तपश्चर्या, ममत्व विस्तार तथा पत्रों द्वारा जन-जन के अंत:स्थल को छूने की प्रक्रिया चालू रही। साथ देने आ गयीं परमवंदनीया माताजी भगवती देवी शर्मा, जिन्हें भविष्य में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अपने आराध्य इष्ट गुरु के लिए निभानी थी। उनके मर्मस्पर्शी पत्रों ने, भाव भरे आतिथ्य, हर किसी को जो दु:खी था- पीड़ित था, दिये गये ममत्व भरे परामर्श ने गायत्री परिवार का आधार खड़ा किया, इसमें कोई सन्देह नहीं। यदि विचारक्रांति में साहित्य ने मनोभूमि बनायी तो भावात्मक क्रान्ति में ऋषियुगल के असीम स्नेह ने ब्राह्मणत्व भरे जीवन ने शेष बची भूमिका निभायी।

'अखण्ड ज्योति' पत्रिका लोगों के मनों को प्रभावित करती रही, इसमें प्रकाशित 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ से लोगों को गायत्री व यज्ञमय जीवन जीने का संदेश मिलता रहा, साथ ही एक आना से लेकर छह आना सीरज की अनेकानेक लोकोपयोगी पुस्तकें छपती चली गयीं। इस बीच हिमालय के बुलावे भी आये, अनुष्ठान भी चलता रहा जो पूरे विधि-विधान के साथ १९५३ में गायत्री तपोभूमि की स्थापना, १०८ कुण्डी यज्ञ व उनके द्वारा दी गयी प्रथम दीक्षा के साथ समाप्त हुआ। गायत्री तपोभूमि की स्थापना के निमित्त धन की आवश्यकता पड़ी तो परमवंदनीया माताजी ने जिनने हर कदम पर अपने आराध्य का साथ निभाया, अंपने सारे जेवर बेच दिये, पूज्यवर ने जमींदारी के बाण्ड बेच दिये एवं जमीन लेकर अस्थायी स्थापना कर दी गयी। धीरे-धीरे उदारचेताओं के माध्यम से गायत्री तपोभूमि एक साधना पीठ बन गयी। २४०० तीर्थों के जल व रज की स्थापना वहाँ की गयी, २४०० करोड़ गायत्री मंत्र लेखन वहाँ स्थापित हुआ, अखण्ड अग्नि हिमालय के एक अति पवित्र स्थान से लाकर स्थापित की गयी जो अभी तक वहाँ यज्ञशाला में जल रही है। १९४१ से १९७१ तक का समय परमपूज्य गुरुदेव का गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान में सक्रिय रहने का समय है। १९५६ में नरमेध यज्ञ, १९५७ में सहस्रकुण्डी यज्ञ करके लाखों गायत्री साधकों को एकत्र कर उनने गायत्री परिवार का बीजारोपण कर दिया। कार्तिक पूर्णिमा १९५८ में आयोजित इस कार्यक्रम में दस लाख व्यक्तियों ने भाग लिया, इन्हीं के माध्यम से देशभर में प्रगतिशील गायत्री परिवार की दस हजार से अधिक शाखाएँ स्थापित हो गयीं। संगठन का अधिकाधिक कार्यभार पूज्यवर परमवंदनीया माताजी पर सौंपते चले गये एवम् १९५९ में पत्रिका का संपादन उन्हें देकर पौने दो वर्ष के लिए हिमालय चले गये, जहाँ उन्हें गुरुसत्ता से मार्गदर्शन लेना था, तपोवन नंदनवन में ऋषियों से साक्षात्कार करना था तथा गंगोत्री में रहकर आर्ष ग्रन्थों का भाष्य करना था। तब तक वे गायत्री महाविद्या पर विश्वकोश स्तर की रचना गायत्री महाविज्ञान के तीन खण्ड लिख चुके थे, जिसके अब तक प्राय: पैंतीस संस्करण छप चुके हैं। हिमालय से लौटते ही उनने महत्वपूर्ण निधि के रूप में वेद, उपनिषद्, स्मृति, आरण्यक, ब्राह्मण, योगवाशिष्ठ, मंत्र महाविज्ञान, तंत्र महाविज्ञान जैसे ग्रन्थों को प्रकाशित कर देव संस्कृति की मूलथाती को पुनर्जीवन दिया। परमवंदनीया माताजी ने उन्हीं वेदों को पूज्यवर की इच्छानुसार १९९१-९२ में विज्ञानसम्मत आधार देकर पुनर्मुद्रित कराया एवं वे आज घर-घर में स्थापित हैं।

युग निर्माण योजना व 'युग निर्माण सत्संकल्प' के रूप में मिशन का घोषणा पत्र १९६३ में प्रकाशित हुआ। तपोभूमि एक विश्वविद्यालय का रूप लेती चली गयी तथा अखण्ड ज्योति संस्थान एक तप-पूत की निवास स्थली बन गया, जहाँ रहकर उनने अपनी शेष तप साधना पूरी की थी, जहाँ से गायत्री परिवार का बीज डाला गया था। तपोभूमि में विभिन्न शिविरों का आयोजन किया जाता रहा, पूज्यवर स्वयं छोटे-बड़े जन सम्मेलनों के द्वारा विचार क्रान्ति की पृष्ठभूमि बनाते रहे, पूरे देश में १९७०-७१ में पाँच १००८ कुण्डी यज्ञ आयोजित हुए। स्थायी रूप से विदाई लेते हुए एक विराट सम्मेलन (जून १९७१) में परिजनों को विशेष कार्य-भार सौंप परमवंदनीया माताजी को शांतिकुंज, हरिद्वार में अखण्ड दीप के समक्ष तप हेतु छोड़कर स्वयं हिमालय चले गये। एक वर्ष बाद वे गुरुसत्ता का संदेश लेकर लौटे एवं अपनी आगामी बीस वर्ष की क्रिया-पद्धति बतायी। ऋषि परम्परा का बीजारोपण, प्राण प्रत्यावर्तन, संजीवनी व कल्प साधना सत्रों का मार्गदर्शन जैसे कार्य उनने शांतिकुंज में सम्पन्न किये।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थापना अपनी हिमालय की इस यात्रा से लौटने के बाद ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की थी, जहाँ विज्ञान और अध्यात्म के समन्वयात्मक प्रतिपादनों पर शोध कर एक नये धर्म वैज्ञानिक धर्म के मूलभूत आधार रखे जाने थे। इस सम्बन्ध में पूज्यवर ने विराट परिमाण में साहित्य लिखा, अदृश्य जगत के

अनुसंधान से लेकर मानव की प्रसुप्त क्षमता के जागरण तक, साधना से सिद्धि एवं दर्शन-विज्ञान के तर्क, तथ्य, प्रमाण के आधार पर प्रस्तुतीकरण तक। इसके लिए एक विराट ग्रन्थागार बना व एक सुसज्जित प्रयोगशाला। वनौषधि उद्यान भी लगाया गया तथा जड़ी-बूटी, यज्ञ विज्ञान तथा मंत्र शक्ति पर प्रयोग हेतु साधकों पर परीक्षण प्रचुर परिमाण में किये गये। निष्कर्षों ने प्रमाणित किया कि ध्यान साधना, मंत्र चिकित्सा व यज्ञोपैथी एक विज्ञानसम्मत विधा है। गायत्री नगर क्रमशः एक तीर्थ, संजीवनी विद्या के प्रशिक्षण का, एकेडमी का रूप लेता चला गया एवं जहाँ ९-९ दिन के साधना प्रधान, एक-एक माह के कार्यकर्त्ता निर्माण हेतु युगशिल्पी सत्र सम्पन्न होने लगे।

कार्यक्षेत्र में विस्तार हुआ। स्थान-स्थान पर शक्तिपीठें विनिर्मित हुईं, जिनके निर्धारित क्रियाकलाप थे- सुसंस्कारिता व आस्तिकता संवर्धन एवं जन-जाग्रति के केन्द्र बनना। ऐसे केन्द्र जो १९८० में बनना आरंभ हुए थे, प्रज्ञासंस्थान, शक्तिपीठ, प्रज्ञामण्डल, स्वाध्याय-मण्डल के रूप में पूरे देश व विश्व में फैलते चले गये। ७६ देशों में गायत्री परिवार की शाखाएँ फैल गयीं, ४६०० से अधिक भारत में निज के भवन वाले संस्थान विनिर्मित हो गये, वातावरण गायत्रीमय होता चला गया।

परमपूज्य गुरुदेव ने सूक्ष्मीकरण में प्रवेश कर १९८५ में ही पाँच वर्ष के अंदर अपने सारे क्रिया-कलापों को समेटने की घोषणा कर दी। इस बीच कठोर तपसाधना कर मिलना-जुलना कम कर दिया तथा क्रमशः क्रिया-कलाप परमवंदनीया माताजी को सौंप दिये। राष्ट्रीय एकता सम्मेलनों, विराट दीप यज्ञों के रूप में नूतन विधा को जन-जन को सौंप कर राष्ट्र देवता की कुण्डलिनी जगाने हेतु उनने अपने स्थूल शरीर छोड़ने व सूक्ष्म में समाने की, विराट से विराटतम होने की घोषणा कर गायत्री जयन्ती २ जून, १९९० को महाप्रयाण किया। सारी शक्ति वे परमवंदनीया माताजी के दे गये व अपने व माताजी के बाद संघशक्ति की प्रतीक लाल मशाल को ही इष्ट-आराध्य मानने का आदेश देकर ब्रह्मबीज से विकसित ब्रह्मकमल की सुवास को देवसंस्कृति दिग्विजय अभियान के रूप में आरंभ करने का माताजी को निर्देश दे गये।

एक विराट श्रद्धांजलि समारोह व शपथ समारोह जो हरिद्वार में सम्पन्न हुए, में लाखों व्यक्तियों ने अपना समय समाज के नवनिर्माण, मनुष्य में देवत्व के उदय व धरती पर स्वर्ग लाने का गुरुसत्ता का नारा साकार करने के निमित्त देने की घोषणा की। परमवंदनीया माताजी द्वारा भारतीय-संस्कृति को विश्वव्यापी बनाने, गायत्री रूपी संजीवनी घर-घर पहुँचाने के लिए पूज्यवर द्वारा आरम्भ किये गये युग संधि महापुरश्चरण की प्रथम व द्वितीय पूर्णाहुति तक विराट अश्वमेध महायज्ञों की घोषणा की गयी। वातावरण के परिशोधन, सूक्ष्मजगत के नवनिर्माण एवं सांस्कृतिक व वैचारिक क्रान्ति ने सारी विश्ववसुधा को गायत्री व यज्ञमय, वासंती उल्लास से भर दिया। स्वयं परमवंदनीया माताजी ने अपनी पूर्व घोषणानुसार चार वर्ष तक परिजनों का मार्गदर्शन कर सोलह यज्ञों का संचालन स्थूल शरीर से किया व फिर भाद्रपद पूर्णिमा १९ सितम्बर, १९९४ महालय श्राद्धारंभ वाली पुण्य वेला में अपने आराध्य के साथ एकाकार हो गयीं। उनके महाप्रयाण के बाद, दोनों ही सत्ताओं के सूक्ष्म में एकाकार होने के बाद मिशन की गतिविधियाँ कई गुना बढ़ती चली गयीं एवं जयपुर के प्रथम अश्वमेध यज्ञ (नवम्बर ९२) से छब्बीसवें अश्वमेध यज्ञ शिकागो (यू. एस ए. जुलाई ९५) तक प्रज्ञावतार का प्रत्यक्ष रूप सबको दीखने लगा है।

गुरुसत्ता के आदेशानुसार सतयुग के आगमन तक १०८ महायज्ञ देवसंस्कृति को विश्वव्यापी बनाने हेतु सम्पन्न होने हैं। युग संधि महापुरश्चरण की अंतिम पूर्णाहुति उसी के बाद होगी। प्रथम पूर्णाहुति नवम्बर १९९४ में कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर युगपुरुष पूज्यवर की जन्मभूमि आँवलखेड़ा में मनायी गई। उनके द्वारा लिखे गये समग्र साहित्य के वाङ्मय का जो एक सौ आठ खण्डों में फैला है, विमोचन भी यहीं सम्पन्न हुआ। विनम्रता एवं ब्राह्मणत्व की कसौटी पर खरे उतरने वाले वरिष्ठ प्रज्ञापुत्र ही उनके उत्तराधिकारी कहे जाएँगे, यह गुरुसत्ता का उद्घोष था एवं इस क्षेत्र में बढ़-चढ़कर आदर्शवादी प्रतिस्पर्धा करने वाले अनेकानेक परिजन अब उनके स्वप्नों को साकार करने आगे आ रहे हैं। 'हम बदलेंगे-युग बदलेगा' का उद्घोष दिग-दिगन्त तक फैल रहा है एवं इक्कीसवीं सदी उज्ज्वल भविष्य, सतयुग की वापसी का स्वप्न साकार होता चला जा रहा है, यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है। ❑❑❑

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

भूमिका

परमपूज्य गुरुदेव के समग्र वाङ्मय में जो सबसे महत्त्वपूर्ण शिक्षण है- वह है ज्ञान को, जीवन जीने की कला को जीवन में उतारकर स्वयं को नरपशु से देव-मानव बनाना। हर व्यक्ति के अंदर परिपूर्ण हो सकने की अनन्त संभावनाएँ विद्यमान हैं। जो भी कुछ भ्रान्तियों का कुहासा दिखाई पड़ता है- वह व्यक्ति की अनगढ़ता-उसके अस्त-व्यस्त क्रिया-कलापों या ऐसी गतिविधियों में दृष्टिगोचर होता है जो उसके पतन-पराभव के लिए जिम्मेदार हैं। ज्ञान यदि जीवन में समाविष्ट हो जाय तो व्यक्ति को वे चक्षु मिल जाते हैं जो उसे पूर्णता के पथ पर चलना सिखाते हैं।

ज्ञान के दो पक्ष हैं- शिक्षा एवं विद्या। शिक्षा जहाँ साक्षर बनाने से लेकर धन पैदा करने का कौशल सिखाती है, वहीं विद्या चिंतन-चरित्र-व्यवहार में शालीनता का समावेश कर व्यक्ति को प्रामाणिक बनाती है। जीवन का उत्थान-पतन इसी विद्या वाले पक्ष के अवलम्बन पर निर्भर है। कोई ऊँचा उठा या नीचे गिरा तो क्यों? यह जानना हो तो उसकी शिक्षा नहीं, विद्या की ग्रहणशीलता देखकर आँका जाना चाहिए।

सद्ज्ञान वह है, जो भाव-संवेदनाओं द्वारा व्यक्तित्व को निखारता है, उसे प्रामाणिक व प्रखर बनाता है। मनुष्य को आदर्शवादी व ऊँचे स्तर तक पहुँचाने का कार्य यही सद्ज्ञान करता है। जन-समस्याएँ सद्ज्ञान ही सुलझा सकता है। परिष्कृत दृष्टिकोण अपनाकर सौभाग्य भरा जीवन कैसे जिया जा सकता है, सद्ज्ञान इसी का शिक्षण देता है। सद्ज्ञान पारस है। इसे हृदय में बिठाने पर लोहे जैसा सामान्य या अनगढ़ व्यक्ति भी सोने जैसा सुन्दर-मूल्यवान बन जाता है। पूज्य गुरुदेव लिखते हैं कि ज्ञान की वास्तविकता और गंभीरता बताने वाली कसौटी यही है कि वह व्यक्ति को सद्गुणों से सम्पन्न और विवेकवान बनाए, उसे लोकमंगल की ओर प्रवृत्त करे।

वाङ्मय का यह खण्ड परमपूज्य गुरुदेव की विचार क्रान्ति अभियान प्रक्रिया का आधार-स्तम्भ कहा जा सकता है। सद्ज्ञान द्वारा दुष्चिंतन को कैसे बदला जा सकता है- दुर्मतिजन्य दुर्गति के व्यक्ति को कैसे उबारा जा सकता है- यही विचार क्रांति अभियान का मूलभूत स्वरूप है। विचारों की विचारों से काट-आस्थाओं का परिष्कार एवं उलटे को उलट कर सीधा करना ही विचार क्रान्ति का लक्ष्य है। जीवनकाल में लेखन का एक कीर्तिमान स्थापित करने वाले परमपूज्य गुरुदेव सद्ज्ञान विस्तार की प्रक्रिया को वह गति दे गए जिसे महाकाल की प्राण प्रत्यावर्तन प्रक्रिया नाम देकर अब युगान्तरीय चेतना अभियान-युग निर्माण योजना के नाम से जाना जाता है।

गायत्री परिवार की ज्ञान यज्ञ प्रक्रिया जो चल पुस्तकालयों-झोला पुस्तकालयों-ज्ञानरथों एवं विद्या विस्तार केन्द्रों के रूप में भारत व विदेश के कोने-कोने में फैली है, इसी धुरी पर केन्द्रित है कि सद्ज्ञान का आलोक नासमझी के अंधकार को मिटाने का कार्य संपादित करे। परमपूज्य गुरुदेव ने **''न हि ज्ञानेन सदृशम् पवित्रमिह विद्यते''** वाला गीताकार का सन्देश स्थान-स्थान पर वाङ्मय के इस खण्ड में दुहराया है एवं एक ही सत्य प्रतिपादित किया है कि अज्ञान ही मनुष्य का परम शत्रु है एवं उससे बचते हुए अन्तःज्ञान की, आत्मज्ञान की उपलब्धि कैसे की जा सकती है, इस सत्य को जितना जल्दी समझा जा सके उतना ही श्रेयस्कर है। वेद का संदेश है- अज्ञान के अंधकार से ज्ञान के प्रकाश की ओर चलो- **''आरोह तमसो ज्योतिः''** (अज्ञानांधकार से निकल कर ज्ञान रूपी प्रकाश की ओर बढ़ो)। इस संदेश को ही गुंजायमान करते हुए सद्ज्ञान संवर्द्धन हेतु स्वाध्याय-सत्संग परम्परा को पूज्यवर ने दैनन्दिन जीवन का एक अंग बताते हुए प्रत्येक लोकसेवी एवं नागरिक के लिए अनिवार्य कहा है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

महानता के बीजांकुर तभी प्रस्फुटित-पल्लवित होते हैं जब ज्ञान रूपी वर्षा उन बीजों पर हो व संस्कारों रूपी पृष्ठभूमि में वे आरोपित हों। ज्ञान जन्म-जन्मान्तरों तक पुण्य की बेल के रूप में हरा-भरा बना रहता है एवं वर्तमान जीवन में आत्मोत्कर्ष के रूप में-दैवी अनुदानों के रूप में तथा पारलौकिक जीवन में श्रेष्ठ संस्कारों की निधि के रूप में हस्तगत होता है। ज्ञान की जितनी महिमा जानी जाए, कम ही है।

सद्ज्ञान संवर्द्धन में शिक्षा विस्तार के समानान्तर व उससे भी बढ़ा पुण्य बताते हुए पूज्यवर ने लिखा है कि यह आज का युग धर्म है। पीड़ा-पतन-पराभव से उबारने हेतु मानवमात्र के लिए एक ही संजीवनी है- वह है सद्ज्ञान देने वाला शिक्षण, स्वाध्याय एवं सत्संग- चाहे वह किसी भी रूप में हो। आज गायत्री परिवार की सारी गतिविधियाँ इन त्रिविध उपायों के चहुँओर घूमती देखी जा सकती हैं। यही सतयुगी समाज की आधारशिला रखने वाले मुख्य सोपान हैं, जिन पर चलकर आज की पीढ़ी उस स्वप्न को साकार कर सकती है जिसे हमारे ऋषि-मुनियों एवं विगत दो शतकों में जन्मे महामानवों ने देखा है। नवयुग की अगवानी हेतु स्वयं को पतन से-दुर्गति से उबारकर ऊँचा उठाने के लिए क्या कुछ विधि अपनायी जानी चाहिए, इसका समग्र शिक्षण वाङ्मय के इस खण्ड में है।

-ब्रह्मवर्चस

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

आत्मोत्कर्ष का आधार-ज्ञान

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय-सूची

प्रगति का मूल आधार—ज्ञान १.१
आत्मिक प्रगति सद्ज्ञान पर निर्भर १.१
उत्कर्ष का आधार—ज्ञान १.३
ज्ञान का महत्त्व समझिये १.५
जीवन की सर्वश्रेष्ठ विभूति—ज्ञान १.७
आत्मज्ञान सबसे बड़ा ज्ञान १.१०
मनुष्यता का गौरव—ज्ञान १.१०
सच्ची सम्पदा—सतशक्ति १.१२
ज्ञान का अर्जन एवं विकास करें १.१५
स्वाध्याय क्यों और कैसे ? १.१७
जाग्रत जिज्ञासा व्यक्तित्व-विकास का अमोघ उपाय १.१७
विकास की पृष्ठभूमिका—जिज्ञासा १.१८
जिज्ञासा जगाइये और अपना ज्ञान भण्डार भरिये १.१९
समाधान स्वाध्याय से १.२३
स्वाध्याय का मूल प्रयोजन आत्मा का शिक्षण १.२४
स्वाध्याय तप १.२६
स्वाध्याय—महापुरुष ढालने का स्टील प्लान्ट १.२७
स्वाध्याय—जीवन विकास की अनिवार्य आवश्यकता १.२९
स्वाध्याय की उपेक्षा न करें १.३२
सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय—एक साधन १.३५
स्वाध्याय—आत्मा का भोजन १.३७
उत्तम पुस्तकें जाग्रत देवता हैं १.३८
सत्साहित्य से शक्ति और समुन्नति १.४०
सत् अध्ययन आत्म-उत्थान का आधार १.४१
सद्ज्ञान का संचय एवं प्रसार १.४२
नियमितता आवश्यक १.४३
उपयुक्त साहित्य चुनें १.४४
सही ढंग से पढ़ें १.४५
सत्संग की आवश्यकता और उसकी पूर्ति १.४६
सत्संग भी विवेकपूर्ण हो १.४८
दिशा सुनिश्चित हो १.५०
सत्संग के विभिन्न रूप १.५०
स्वाध्याय और मनन मानसिक परिष्कार के दो साधन १.५२
स्वाध्याय का आधार मनन—चिन्तन १.५२
सिद्धान्त और आधार १.५४
व्यावहारिक स्वरूप १.५५
अन्तरंग स्वरूप भी समझें १.५७
स्वाध्याय में प्रमाद न करें १.५८
स्वाध्याय जीवन को परिपूर्ण बनाता है १.६०
परिवर्तन का केन्द्र-बिन्दु—सद्ज्ञान १.६१
विद्या की सम्पत्ति बढ़ाते ही चलें १.६२
आश्चर्यजनक विद्वान : आप भी उनका अनुकरण करें १.६३
ऊँचे उठने के लिए पहले विद्या प्राप्त कीजिये १.६४
स्वाध्याय : जीवन को विकसित, उच्च और पवित्र बनाने का साधन १.६६
मौलिक चिन्तन की कसौटी पर कसिये १.६७
गम्भीर साहित्य का अध्ययन किया करें १.६८
पुस्तकालयों का जाल बिछा दिया जाये १.६८
अपने रहने की दुनिया आप बनाएँ १.७०
उत्कृष्ट विचारों का सतत् सान्निध्य रहे १.७२
पुस्तकालयों का महत्त्व देवालय जितना २.१
ज्ञान ही जीवन धन है २.१
ज्ञान सम्पदा और उसकी प्राप्ति २.२
अनायास ही नहीं प्रयासपूर्वक भी २.२
ज्ञान की सीमा असीम २.३
सत्संग की पूर्ति स्वाध्याय २.४
विकृत रुचि और अस्वास्थ्यकर साहित्य २.५
अच्छी पुस्तकें—सच्चे मित्र २.५
मस्तिष्क को विकसित करने वाले मानसिक भोजन की आवश्यकता २.७
साहित्य से बढ़कर मधुर कुछ नहीं २.८
हमने साहित्य का उद्देश्य सिर्फ मनोरंजन समझा है २.९
उत्कृष्ट विचारों की पूँजी जीवन को सफल बनाती है २.१०
बुरी पुस्तकें शत्रु से क्या कम हैं ? २.११
पुस्तकों से सत्संग प्राप्त करने के मन्दिर २.१२

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ज्ञान गंगा से असंपृक्त न रहें २.१२
ज्ञान वृद्धि के लिए यह कीजिये २.१५
विद्यालयों के पूरक—पुस्तकालय २.१६
पुस्तकालयों का महत्त्व समझा जाय २.१७
पुस्तकालय—ज्ञान देवता के देवालय २.१९
रसोईघर की तरह पुस्तकघर भी जरूरी २.२०
आदर्शवादी पुस्तकालयों की स्थापना हो २.२२
पुस्तकालय का महत्त्व देवालय जितना २.२३
हर घर में ज्ञान देवता के मन्दिर स्थापित हों २.२८
पुस्तकों की सामूहिक व्यवस्था २.२८
उपासना धाम के समतुल्य २.२९
ऋषि-ऋण से मुक्त हों २.२९
स्तर और गरिमा बनाये रखें २.२९
स्थापना ही नहीं जनसम्पर्क भी २.३०
जनरुचि जगाने का श्रेष्ठ साधन २.३१
रुचि जगाना भी एक कार्य २.३१
झोला पुस्तकालय उपयोगी प्रयास २.३१
झिझक और उपेक्षा २.३२
इस प्रकार सम्पर्क करें २.३२
कार्य क्षेत्र का चुनाव २.३३
उत्साहपूर्वक आगे आयें २.३४
चल पुस्तकालय ज्ञान देवता के रथ २.३४
पठन रुचि का अभाव और विकास २.३५
सरल व प्रभावी व्यवस्था २.३५
उच्चकोटि का देवाराधन २.३६
ज्ञान देवता की रथयात्रा २.३६
सर्वश्रेष्ठ समाज सेवा २.३७
सम्पर्क की सुविधा २.३७
कौशल और निष्ठा का समन्वय २.३८
युग निर्माण योजना—चल पुस्तकालय प्रयोग २.३९
चल पुस्तकालय व्यवस्थित ढंग से चले २.३९
इस युग की महानतम आवश्यकता २.४१
ज्ञान दान इस युग का सबसे बड़ा परोपकार-परमार्थ २.४४
इस पुण्य प्रक्रिया में हमारा भी कुछ योगदान रहे २.४९
झोला पुस्तकालय—अमृतकलश २.५३
जो पुस्तकालय चलाते हैं—जीवन दान देते हैं २.५५
सद्ज्ञान—सबसे बड़ा दान-पुण्य २.५७
समय के साथ विचार भी बदलने होंगे २.५९
सद्विचार प्रगति का मेरुदण्ड २.६१
सद्ज्ञान संवर्धन की श्रेष्ठ साधना २.६३
समग्र परिवर्तन की रूपरेखा २.६४
संगीत की उपेक्षा न हो २.६६
अन्धकार से निपटने के लिए प्रकाश प्रज्ज्वलन करें २.६८
नव जागरण के लिए—युग साहित्य का स्वाध्याय २.७०
भव्य संरचना का आरम्भिक शिलान्यास २.७२
स्वाध्याय मण्डल—छोटे प्रज्ञा संस्थान २.७५
सद्ज्ञान का आलोक सर्वत्र फैले २.७७
सद्ज्ञान संवर्द्धन ही स्थाई समाधान २.७९
स्वाध्याय मंडल, प्रज्ञा संस्थान और प्रज्ञा केन्द्र २.८१
छोटे स्वाध्याय मंडलों की बड़ी तथा महती भूमिका २.८३
युग साहित्य का लेखन और प्रसार-प्रकाशन २.८६
सर्वोत्कृष्ट परमार्थ—ज्ञान यज्ञ २.८८

युग सृजन के सन्दर्भ में प्रगतिशील लेखन कला ३.१

नव-निर्माण के आलोक वितरण में लेखन कला का योगदान ३.१
लेखन विद्या का प्रारम्भिक मार्गदर्शन ३.६
शोध का प्रयोजन और स्वरूप ३.१२
साहित्य सृजन की सामग्री तथा पृष्ठभूमि ३.१५
लेखन प्रारम्भ करने से पूर्व मनन करने योग्य कुछ महत्त्वपूर्ण सूत्र ३.२१
शोधकार्य का शुभारम्भ और निर्वाह ३.२३
संक्षिप्तीकरण ३.२७
विशदीकरण ३.२८
रोचक-हृदयस्पर्शी शैली,प्रबन्धलेखन का मूल प्राण ३\३०
भाषा की शुद्धि एवं सुगठन भी एक अनिवार्य पक्ष ३.३३
आप लेखक बनकर प्रसिद्धि प्राप्त कर सकते हैं ३.४०
लेखक के गुण ३.४२
लेखन सीखने की विभिन्न सामग्री ३.५२
रचनाओं की सामग्रियाँ एकत्रित हैं ? ३.५४
लेखन कार्य इस प्रकार आरम्भ किया जाय ३.५७
नए विचारों तथा सामग्री का संग्रह ३.५८
पत्र सम्पादन करने की कला ३.६०
महान लेखक परिस्थितियों की परवाह नहीं करते ३.६३
वह साहित्य तैयार करो, जो पाठक को नई दृष्टि दे, जीने की प्रेरणा दे ३.६७

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नये लेखकों की पाठशाला ३.६९
विभिन्न विधाओं का लेखन-कार्य ३.७०

भाषण और संभाषण की दिव्य क्षमता ४.१

व्यक्तित्व सम्पन्न वक्ता का प्रभावी प्रवचन ४.१
काया की सशक्त प्रयोगशाला और शब्द शक्ति की ऊर्जा ४.४
वाणी की शक्ति एवं प्रखरता ४.६
वाणी में सामर्थ्य का उद्भव ४.८
वाणी के आधार पर आत्माभिव्यक्ति ४.१३
मधुर वाणी में सन्निहित ऋद्धि-सिद्धि ४.१४
सफल और सशक्त संभाषण ४.१६
भाषण की सामर्थ्य और विकास के तत्त्व ४.१८
भाषण कला का आरम्भ और अभ्यास ४.२०
वक्ता को अध्ययनशील होना चाहिए ४.२५
सरल भाषण की कसौटी ४.३१
भाषण और भावाभिव्यक्ति का समन्वय ४.३५
सभामंच पर जाने से पूर्व इन बातों का ध्यान रखें ४.३९
भाषण का स्तर गिरने न दें ४.४३
आरम्भिक कठिनाई का समाधान आधी सफलता ४.४९
प्रगति इस प्रकार सम्भव होगी ४.५२
अभ्यास क्रम के लिए सुगम अवलम्बन ४.५५
श्रोताओं को नियमित रूप से उपलब्ध करने की सरल प्रक्रिया ४.५८
वक्ताओं को ही श्रोता भी जुटाने पड़ेंगे ४.६१
संभाषण के कुछ सारगर्भित सिद्धान्त ४.६३
आलोक का अनवरत वितरण ४.६७
प्रयोग और अभ्यास ४.६९
सफल वक्तृता की रहस्यमयी पृष्ठभूमि ४.७२
धार्मिक भाषण और प्रवचन ४.७३
महापुरुषों का भाषण ४.७५
वक्तृता में चुटीलेपन का समावेश ४.८०
मात्र भाषण ही नहीं—साथ में गायन भी ४.८५
युग संगीत से कोई क्षेत्र अछूता न रहे ४.८९
प्रतिपादन की प्रभावोत्पादकता ४.९२

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org



Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रगति का मूल आधार—ज्ञान

आत्मिक प्रगति सद्ज्ञान पर निर्भर

संसार में अच्छे और बुरे दोनों तरह के लोग पाये जाते हैं। पर इससे यह नहीं माना जा सकता कि ईश्वर अच्छे और बुरे दोनों तरह के व्यक्तियों को पैदा ही करता है। ईश्वर सृष्टि में जो भी व्यक्ति उत्पन्न करता है उन सबको एक जैसा ही उत्पन्न करता है। आगे चलकर वे अपने ज्ञान-अज्ञान के कारण ही अच्छे-बुरे बन जाते हैं। जो ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, वे अच्छे बन जाते हैं और जो अज्ञान में ही पड़े रहते हैं, उनका बुरा होना स्वाभाविक ही है।

बुरे व्यक्तियों के जीवन में बैठकर यदि उनकी बुराई का स्रोत खोजा जाये तो पता चलेगा कि वह जो कुछ अपकर्म करता है, उसका मुख्य कारण उसका अज्ञान ही है। ज्ञान के अभाव में वह जीवन-गति की सही दिशा को न तो पहचान पाता है और न उसका निर्माण कर पाता है। कर भी कैसे पाये ? जो काम ज्ञान का है, वह अज्ञान द्वारा सम्पादित भी कैसे हो सकता है ? धन, पद और प्रतिष्ठा पाकर ही यदि कोई समझ बैठे कि वह जीवन की ठीक दिशा में चलकर आया है और ठीक ही दिशा में चलता जा रहा है, तो भी ठीक न होगा।

धन, वैभव और पद-प्रतिष्ठा की अच्छाई का प्रमाण नहीं है। इन विभूतियों के स्वामी बहुधा स्वार्थी, क्रूर और कठोर देखे जा सकते हैं। उनके द्वारा लोगों को सुख मिलने के स्थान पर कष्ट और क्लेश ही अधिक मिलता है। यह तो अच्छाई के लक्षण नहीं हैं। अच्छाई के लक्षण तो हैं सेवा, सहायता, सहयोग, सहानुभूति, प्रेम और उदारता आदि। जिस व्यक्ति में यह गुण हैं, उसे अच्छा ही कहना होगा फिर चाहे उसके पास धन-वैभव और पद-प्रतिष्ठा हो या न हो।

अच्छाई के द्योतक ये मानवीय गुणज्ञान के आधार पर ही मिल सकते हैं। गुणों को जन्मजात उपलब्धि मानना स्वयं में एक अज्ञान है। संसार के सारे बालक समान मनोभूमि लेकर पैदा होते हैं। उनमें से बहुत-से अपने गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार आदर्श पुरुष बनकर संसार में आदरणीय बन जाते हैं और बहुत से नीच, निकृष्ट और अपराधी बनकर समाज में त्रास के कारण बनते हैं। इस विषमता का कारण इसके सिवाय और कुछ नहीं होता कि आगे चलकर आदर्श व्यक्ति बनने वाले बालकों को अवश्य ही ऐसा संग, वायुमण्डल और बुद्धि मिल गई होती है, जिससे उन्हें गुण विकासक ज्ञान की प्राप्ति हो गई होती है और निश्चय ही वे बालक जो समाज में त्रास का कारण बन जाते हैं, प्रतिकूलताओं से घिरे रहकर अज्ञान के शिकार बन गये होते हैं। मानवीय गुणों का विकास न होने से वे समाज विरोधी बन जाते हैं, इसलिये अच्छाई या बुराई को व्यक्ति की जन्मजात उपलब्धि न मानकर ज्ञान, अज्ञान का परिणाम ही मानना होगा।

ज्ञान व्यक्ति को शीलवान, शिष्ट और विनम्र बनाता है। इन गुणों का परिणाम समाज में आदर, सम्मान और सहयोग के बिना कुछ हो ही नहीं सकता। जो समाज में इस प्रकार की स्थिति पा लेता है, उसे आत्मविकास में बड़ी सुविधा रहती है। यही आत्म-विकास परमानन्द की ओर आने वाला आध्यात्मिक मार्ग है। अज्ञान का दोष मनुष्य को दुराचारी, उद्दण्ड और अविनयी बना देता है। ऐसा व्यक्ति समाज में अपने लिये असम्मान और असहयोग ही उत्पन्न कर लेता है। इस विरोध के कारण उसका मन-मस्तिष्क अशान्त बना रहता है और वह आत्मविकास की ओर बढ़ पाने से अपने ध्येय से भ्रष्ट हो जाता है। उसका वह मानव-जीवन जिसमें वह आत्मा को पा सकता था, परमात्मा को पहचान सकता था और परमानन्द प्राप्ति की दिशा में बढ़ सकता था, व्यर्थ चला जाता है। वह दिन-दिन प्रपंच में फँसता चला जाता है।

ज्ञान की महिमा अपार है। ज्ञान की कृपा से एक सामान्य व्यक्ति बढ़कर महापुरुष बन जाता है। संसार में जितने भी महापुरुष और प्रतिभा प्रधान व्यक्ति हुये हैं, सब ज्ञान के आधार पर ही उस उच्च-स्तर पर पहुँचे हैं। भगवान राम, कृष्ण, गौतम बुद्ध, ईसा और सुकरात आदि जो भी युग प्रवर्तक महात्मा और महापुरुष हुये हैं, वे सब ज्ञान का विकास करके ही वैसे बन सके हैं। यदि ध्यान से निष्पक्ष होकर देखा जाय तो पता चलेगा कि प्रारम्भ में वे सब भी सामान्य मनुष्यों की तरह ही थे। पर बाद में उन्होंने ज्ञान के लिये पुरुषार्थ किया, उसे पाया और उसके आधार पर लोकरंजन के कार्य कर आदर्श पदवी पर पहुँचे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

१.२ आत्मोत्कर्ष का आधार—ज्ञान

जो व्यक्ति अपने जीवन को सफल एवं सार्थक बनाना चाहता है, उसे ज्ञानार्जन के लिये पुरुषार्थ करना ही होगा। जीवन सार्थक तब ही हो सकता है, जब उसकी गति, उसकी दिशा और उसका पथ उपयुक्त हो। इसका निर्धारण सिवाय ज्ञान के और किसी प्रकार हो ही नहीं सकता। जो लोग यह सोचकर कि जीवन एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, उसकी गति स्वतः निर्धारित है या होती है। प्रवृत्तियों की प्रेरणा से जब जिधर चाहा चलते रहते हैं, वे कदापि किसी सार्थक लक्ष्य पर नहीं पहुँच सकते। उनका सारा जीवन धरातल प्रेरित पानी की तरह यों ही निर्लक्ष्य बहता हुआ नष्ट हो जाता है। किन्तु जिस पानी को एक सुनियोजित गति दे दी जाती है, वह उपकारी नहर अथवा विद्युतदायक बाँध बन जाता है। इसी प्रकार नियोजन पाया मानव-जीवन भी उपकारी बनकर सार्थक हो जाता है और अपने किसी ऊँचे लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

मानव-जीवन की सफलता एवं सार्थकता का एकमात्र मार्ग सन्मार्ग ही है। ज्ञान द्वारा ही सन्मार्ग का निर्धारण होता है और ज्ञान के सम्बल पर ही आजीवन उस पर चल सकना सम्भव हो सकता है। सन्मार्ग का पता तो एक बार किसी ज्ञानी से भी विदित किया जा सकता है। किन्तु उस पर चल सकना अपने ज्ञान के आधार पर ही सम्भव हो सकता है। दूसरे का ज्ञान किसी दूसरे को सन्मार्ग बता तो सकता है, पर उस पर चला नहीं सकता है।

मनुष्य के दोनों जीवन भौतिक और आत्मिक ज्ञान के आधार पर ही सफल बनते हैं। भौतिक जीवन में जिस साधन-सुविधा की मुख्यता होती है, वह यों ही तो मिल नहीं जाती। उसके लिए भी उपाय करना होता है। अब वह उपाय चाहे विद्या हो, चाहे व्यापार हो और चाहे उद्योग हो, बिना ज्ञान के नहीं किया जा सकता। अज्ञानी की संसार में कोई गति नहीं है। उसे अन्धकार में भटकते और ठोकरें खाते रहने के सिवाय और कुछ नहीं मिलता। जिस प्रकार साधन-सुविधाओं को पाने का आधार ज्ञान है, उसी प्रकार उनके उपयोग के लिये भी ज्ञान की आवश्यकता है।

साधन-सुविधा और वैभव-विभूति की तो प्राप्ति हो जाय लेकिन उसके उपयोग के विषय में अज्ञानी ही रहा जाय, तो इसका परिणाम प्रतिकूल ही होगा। अज्ञान प्रेरित साधनों का उपयोग मनुष्य को पतन की ओर ले जाता है। ज्ञान के अभाव में साधन-सम्बल युक्त व्यक्ति बहुधा कुमार्गगामी हो जाते हैं। अपना नाश करने के साथ-साथ दूसरों के लिये भी असुविधाजनक बन जाते हैं।

आत्मा का क्षेत्र तो विशुद्ध रूप से ज्ञान का ही क्षेत्र है। वहाँ अज्ञान के एक बिन्दु की भी गुजर नहीं। आत्मा का विकास गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता पर निर्भर है। जिसने दया, क्षमा, प्रेम और सहानुभूति के गुण विकसित कर लिये हैं, जिसने परोपकार और परमार्थ ही अपने कर्मों का आधार बना लिया है और जिसने स्वभाव को काम, क्रोध, मद, लोभ आदि दोषों से मुक्त कर लिया है, आत्मा का क्षेत्र उसके लिये ही खुलता है। किन्तु गुण, कर्म, स्वभाव का निर्माण जिस तत्त्व के आधार पर होता है, उसका नाम ज्ञान ही है।

इस विषय में ज्ञान एक शक्ति, एक सम्बल और एक साधन है। जब तक यह न जाना जाये कि मानवीय गुण क्या हैं ? उनका स्वरूप और प्रवर्तक क्या है ? उनको किस प्रकार कहाँ से पाया जा सकता है ? तब तक उनकी उपलब्धि सम्भव नहीं। इसी प्रकार जब तक यह ज्ञान न हो कि परोपकार क्या है ? परमार्थ किसे कहते हैं ? और उनका स्वरूप कितने प्रकार का होता है ? तब तक उसे कर्मों में मूर्तिमान कर सकना सम्भव नहीं। स्वभाव के दोष क्या हैं, वे क्यों और किन परिस्थितियों में उठते और शमन होते हैं ? उनसे क्या-क्या हानि हैं और उनके निष्कासन से क्या-क्या लाभ हो सकते हैं ? जब तक इसका निर्णय न कर लिया जाय, तब तक अनुकूल स्वभाव का निर्माण किस प्रकार किया जा सकता है ? यह सब क्षमता एकमात्र ज्ञान से ही प्राप्त हो सकती है, किसी अन्य उपाय से नहीं।

लौकिक और आत्मिक जीवन की सफलता के लिये इतने बड़े साधन ज्ञान को पाया किस प्रकार से जा सकता है ? अन्य उपलब्धियों की तरह ज्ञान भी एक ऐसी उपलब्धि है, जिसे पाने के लिये प्रयास करना होता है। ज्ञान प्राप्ति के प्रयास की अनेक शाखाएँ हैं। जैसे सत्संग, स्वाध्याय, चिन्तन, मनन और अनुभव। जिज्ञासा लेकर ज्ञानी पुरुष के पास जाया जाय और उनसे सत्संग प्रदान करने की प्रार्थना की जाय। वे जो कुछ कहें अथवा बतलायें वह ध्यान से सुना जाये और विश्वासपूर्वक उसे न केवल हृदयंगम किया जाये बल्कि उस पर यथोचित आचरण भी किया जाये। उन व्यक्तियों के लिए जिन्हें शिक्षा का अवसर नहीं मिला है, सत्संग ही एक उपाय है, जिससे ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है।

जो शिक्षित हैं। जिन्होंने विद्या प्राप्त की है, जिनके लिये स्वाध्याय की सुविधा है, उनको कहीं किसी के पास जाने की आवश्यकता नहीं है। वे अपने घर पर ही पुस्तकों और अपनी शिक्षा की सहायता से ज्ञान प्राप्त करने का पुरुषार्थ कर सकते हैं। किन्तु स्वाध्याय और पठन में एक बड़ा अन्तर होता है। पठन तो केवल उस पढ़ने को कहते हैं, जो सरसरी दृष्टि से मनोरंजन के लिये कोई पुस्तक पढ़ी जाती है। स्वाध्याय एक पुरुषार्थ है। उसे करते समय चित्त की सारी वृत्तियाँ एकाग्र कर विषय पर ही केन्द्रित करनी पड़ती हैं। एक-एक अक्षर, एक-एक वाक्य और एक-एक प्रकरण ध्यान से ग्रहण करते हुये पढ़ना पड़ता है। इसके अतिरिक्त जब जितना भी पढ़ा होता है, उस पर तब तक चिन्तन और मनन करना पड़ता है, जब तक वह पूरी तरह बुद्धिसात् न हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाय। इस प्रकार बुद्धिसात् हुआ विषय जब आचरण में उतर आता है, तभी वह सच्चा ज्ञान बनता है। ऐसे परिपक्व ज्ञान में कितना आनन्द और कितनी शक्ति होती है, इसे स्वाध्यायवान ही जान सकते हैं।

स्वाध्याय के लिये निर्वाचित विषय ऊँचा आदर्श और पुनीत होना आवश्यक है। ओछे और निम्नकोटि के साहित्य स्वाध्यायी को भी अपने समान ही बना लेते हैं। स्वाध्याय के लिये धार्मिक, आध्यात्मिक और दार्शनिक साहित्य जो किन्हीं प्रामाणिक व्यक्तियों द्वारा ही प्रणयन किया गया हो उचित होता है। निरर्थक, निस्सार और अनुपयोगी साहित्य पढ़ने वाला एक बार किन्हीं विषयों का विद्वान भले हो जाये किन्तु ज्ञानी नहीं हो सकता। बहुत कुछ जानते हुये भी उसकी जीवन-गति एक सीमित परिधि में ही चक्कर लगाती रहेगी।

ज्ञान प्राप्ति का एक उपाय अनुभव भी है। सांसारिक चेष्टाओं को ध्यानपूर्वक देखा और समझा जाये। दूसरे व्यक्तियों के गुण, कर्म, स्वभाव का परिचय पाकर उनके व्यवहार का परिणाम देखा, समझा जाये और उससे शिक्षा प्राप्त की जाय। बुरे काम करने वाले किसी व्यक्ति को यदि हम पतन और परिताप के गढ्ढे में गिरते देखें तो विश्वास कर लेना चाहिये कि वह मार्ग जिस पर अमुक व्यक्ति चल रहा था चलने योग्य नहीं है। इसी प्रकार जब सत्कर्म करने वालों को सुख-शान्ति, संतोष और सम्मान का अधिकारी बनते देखें तो मान लेना चाहिये कि यही मार्ग हमारे चलने योग्य है।

इसी प्रकार मनुष्य अपने रहन-सहन, आचार, व्यवहार और गुण-कर्मों के परिणाम को देखकर शिक्षा ले सकता है। अपना सुधार कर अपने को ठीक मार्ग पर चलाकर ठीक लक्ष्य पर पहुँच सकता है। तात्पर्य यह है कि सत्संग, स्वाध्याय, चिन्तन-मनन और अनुभव के आधार पर व्यक्ति को सद्ज्ञान प्राप्त करने का निरन्तर प्रयास करते ही रहना चाहिए।

बिना ज्ञान के न तो जीवन सफल होता है और न सार्थक। अज्ञानावस्था में भौतिक और आत्मिक दोनों जीवनों का नाश हो जाता है। इसलिये इस अन्धकार से निकलकर ज्ञानरूपी प्रकाश की ओर बढ़ते ही रहना चाहिए। इसमें प्रमाद अथवा आलस्य करने का अर्थ है अपने सुरदुर्लभ मानव-जीवन को नष्ट कर देना, जिसमें भौतिक उन्नति तो की ही जा सकती है, आत्मप्रकाश भी पाया जा सकता है।

उत्कर्ष का आधार-ज्ञान

मनुष्य ने आदिकाल से अपनी प्रगति यात्रा आरम्भ कर विकास के वर्तमान शिखर को प्राप्त किया है। स्थूल दृष्टि से देखें तो उसके पास अन्य प्राणियों के समान ही काया है। आकार-प्रकार में भेद हो सकता है। किन्तु वह अपने अंगों से वही कार्य लेता है, जो प्रायः अन्य प्राणी भी लेते हैं। चलना-फिरना, उठना-बैठना, खाना-पीना आदि कार्य अन्य प्राणी अपने उन्हीं अंगों से करते हैं, जिनका कि उपयोग मनुष्य करता है। शारीरिक दृष्टि से मनुष्य न केवल अन्य प्राणियों की तरह है वरन् वह शक्ति-सामर्थ्य में दूसरे जीव-जन्तुओं से काफी पिछड़ा भी है। आकार की दृष्टि से उसका शरीर कितने ही प्राणियों से छोटा है। शक्ति में भी वह अन्य जीव-जन्तुओं से काफी कमजोर है। फिर भी हम देखते हैं कि उसने सृष्टि का सिरमौर और सर्वश्रेष्ठ प्राणी होने का गौरव प्राप्त कर रखा है।

देखने में आता है कि मनुष्य को अन्य प्राणियों की तुलना में वह एक विशेष शक्ति अधिक मिली है, जो दूसरे प्राणियों के पास नहीं है। वह शक्ति है, बुद्धि किन्तु तथ्यों के आधार पर विवेचन किया जाय तो दूसरे कई प्राणियों को भी ऐसी बौद्धिक विलक्षणतायें प्राप्त हैं, जिनकी मनुष्य कल्पना तक नहीं कर सकता। कुत्ता किसी चीज को सूँघकर ही उसे पहचान लेता है और उसे कभी नहीं भूलता। उसकी विश्लेषण शक्ति इतनी पैनी होती है कि एक बार किसी स्थान को सूँघकर ही वह उस स्थान पर आये व्यक्तियों को खोज निकालता है, वहाँ से सम्बन्धित वस्तुओं को पहचान लेता है। बिल्ली अपनी विश्लेषणात्मक बुद्धि द्वारा अपने से सम्बन्धित वस्तुओं को पहचान लेती है, अपना शिकार और भोजन ढूँढ़ लेती है तथा मनुष्य जैसे बुद्धिमान कहे जाने वाले प्राणी को भी चकमा देकर अभीष्ट वस्तु प्राप्त कर लेती है।

बुद्धि मनुष्य को मिली है—यह बात ठीक है। मनुष्य की प्रगति यात्रा में भी वह सहायक बनी है किन्तु इसी कारण उसने प्रगति के वर्तमान स्तर को प्राप्त नहीं किया। यदि ऐसा ही होता तो वे प्राणी जिनको मनुष्य से अधिक बौद्धिक क्षमता और विश्लेषण शक्ति मिली है, वे उससे कहीं अधिक उन्नत होते, किन्तु नहीं हो सके। मनुष्य की प्रगति और उत्कर्ष का एकमात्र कारण रहा है, इसकी ज्ञान-परम्परा का विकास। निस्सन्देह ज्ञान-परम्परा के विकास में बुद्धि की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। किन्तु अन्य जीव-जन्तु जिनमें बुद्धि भी विद्यमान है, ज्ञान-परम्परा के अभाव में जहाँ के तहाँ ही रह गये। उनकी गतिविधियाँ प्राकृत आवेगों तक ही सीमित रह गयीं और मनुष्य ने बौद्धिक क्षमता को पैनी बनाने के साथ-साथ ज्ञान-परम्परा का विकास किया, फलस्वरूप वह सामान्य क्रियाकलापों को भी कलात्मक ढंग से अपनाने की विधि अपनाकर स्वयं को गरिमा मण्डित कर सका।

इस गौरव गरिमा का आधार ज्ञान परम्परा ही कही जा सकती है। उसके द्वारा ही उसने अपनी आदि प्रवृत्तियों का परिष्कार किया और अन्य जन्तुओं की तुलना में स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध किया। ज्ञान-परम्परा के विकास द्वारा ही मनुष्य ने अन्य जीव-जन्तुओं से अधिक सामर्थ्य अर्जित कर ली और स्वयं को उनसे विशिष्ट श्रेणी में बिठा सका। वैज्ञानिक प्रगति के सन्दर्भ में देखें तो पंख न होने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर भी उड़ान भरना और सबसे तेज उड़ने वाले पक्षियों को भी पीछे छोड़ देने वाले वायुयान तैयार कर पाना बुद्धि के द्वारा ही सम्भव हुआ है। कोई भी परिंदा अब तक पृथ्वी को छोड़कर अन्य किसी ग्रह तक नहीं पहुँच सका है परन्तु मनुष्य ने वह भी सम्भव बना लिया है। नियति द्वारा पृथ्वी पर ही जीवित रह सकने की विवशता उत्पन्न करने के बाद भी मनुष्य ने महीनों समुद्र में रहने के साधन विकसित कर लिये। यदि इस प्रकार की उपलब्धियों को ही गिनाया जाता रहे तो एक बड़ी पुस्तक भी इनकी चर्चा के लिए अपर्याप्त रहेगी। यहाँ इनकी चर्चा का आशय इतना भर है कि मनुष्य ज्ञान-परम्परा के बल पर ही संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी कहलाने का गौरव प्राप्त कर सका है।

प्राचीन मनीषियों, विभूतियों से लेकर अर्वाचीन विचारकों और वैज्ञानिक विभूतियों ने बौद्धिक शक्ति द्वारा मनुष्य का स्तर उँचा उठाने के लिए जो प्रयास किये, उनके अनुभव निष्कर्ष ज्ञान-सम्पदा के रूप में उपलब्ध हैं। ज्ञान-सम्पदा के रूप में अपनी अनुभव सम्पदा को संचित करना इसलिए भी आवश्यक समझा गया कि आगे कोई और मनीषी, कोई और विभूति उस सम्पदा को बढ़ा सके। अन्यथा उस ज्ञान-परम्परा का वहीं समापन हो जाता, जहाँ कि उसकी अन्वेषक विभूति छोड़ जाती। डॉल्टन ने यदि परमाणु सिद्धान्त किसी को बताया नहीं होता अथवा उसे प्रकाशित न किया होता तो परमाणु की खोज के लिए डॉल्टन द्वारा किया गया परिश्रम उनकी मृत्यु के साथ ही व्यर्थ हो जाता। संसार में भिन्न-भिन्न विषयों का जितना भी ज्ञान-विज्ञान विकसित किया जा सका है, वह परम्परा-क्रम से ही आगे बढ़ सका है। एक पीढ़ी यदि अगली पीढ़ी को अपना ज्ञान विरासत में न दे जाती तो दूसरी पीढ़ी को आवश्यक विषयों की खोज पुनः आदि से प्रारम्भ करनी पड़ती और सभ्यता-संस्कृति का विकास जहाँ का तहाँ ही रह जाता।

परम्परा से विकसित ज्ञान-सम्पदा का लाभ भी प्रत्येक व्यक्ति उठा नहीं पाते। इसी कारण एक व्यक्ति का स्तर आकाश को छूता है तो दूसरे का गड्ढे में ही गिरा पड़ा रहता है। कारण कि मनुष्य के स्वरूप और स्तर को उन्नत करने वाली ज्ञान-सम्पदा का सम्पर्क तो उसे मिल नहीं पाता। ज्ञान ही वह विशिष्ट सम्पदा है, जिसके बल पर मनुष्य वर्तमान सभ्यता और समाज के साथ अपनी संगति बिठा सके। इस सम्पदा से वंचित व्यक्ति निर्धन व्यक्ति से भी दीन-हीन जीवन व्यतीत करता रहता है। धन के अभाव में तो ज्ञान और विद्या के बल पर सीमित साधनों में भी सुरुचिपूर्ण ढंग से अपनी आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है। उस आधार पर धनाभाव की समस्या के समाधान भी खोजे जा सकते हैं किन्तु ज्ञान से रिक्त व्यक्ति धन सम्पन्न होते हुए भी सभ्य और सुसंस्कृत जीवन नहीं बिता पाते। पिछड़ी असभ्य जातियाँ इसीलिए पिछड़ी हुई नहीं हैं कि उनके पास साधन-सम्पदा का अभाव है अथवा उनकी बौद्धिक क्षमता अविकसित है। वस्तुतः उनके पिछड़ेपन का कारण ज्ञान की उपयुक्त दिशा का अभाव ही है। अन्यथा जिन दिशाओं में उन्होंने अपनी बौद्धिक शक्तियों को लगाया है, उस दिशा में चमत्कृत कर देने वाली प्रगति कर दिखाई है। निशानेबाजी में ही लें—आदिवासियों और जंगली जातियों में आज भी आवाज सुनकर हथियार फेंकने और अपने शिकार पर अचूक निशाना साधने वाले निशानेबाज मिल जायेंगे। अफ्रीका की एक जाति में बूमरेंग शस्त्र का प्रयोग किया जाता है। वैसा शस्त्र उन्नत विज्ञान की सामर्थ्य होते हुए भी सभ्य जातियाँ आज तक नहीं बना सकीं। उस शस्त्र से अपने शिकार पर फैंककर वार किया जाता है और उसमें कुछ ऐसी तकनीकी विशेषतायें होती हैं कि वह शिकार को मारकर वापस फैंकने वाले के पास पहुँच जाता है। कहने का अर्थ यह है कि जिस दिशा में उन लोगों ने अपनी बौद्धिक क्षमता का उपयोग किया, उसमें तो वे लोग आगे बढ़ गये किन्तु ज्ञान-परम्परा को—जीवन स्तर को ऊँचा उठाने की दिशा उनके पास नहीं रही फलतः अधिकांश क्षेत्रों में वे सभ्य और सुसंस्कृत जातियों से आज भी पिछड़े हुए हैं।

जातियों और समाज विशेष को न लें तो भी सामान्य जीवन में ज्ञानशून्य व्यक्ति घाटे में ही रहते हैं। मनुष्य शरीर से दुबला हो उतनी हानि नहीं है जितनी कि ज्ञानशून्य होने पर उठानी पड़ती है। संसार में कई ऐसे महापुरुष हुए हैं जो शारीरिक दृष्टि से दुर्बल और कमजोर होते हुए भी ज्ञान-सम्पदा से समृद्ध थे। उन्होंने बुद्धि, तर्क, ज्ञान तथा विचारों की क्षमता का अधिक विकास किया था। उनमें नया चिन्तन करने की सामर्थ्य थी और इसी सामर्थ्य के बलबूते संसार को नये सिरे से ढालने की प्रक्रिया सफलतापूर्वक चलाई थी। इसी प्रकार के ढेरों उदाहरण मिल जायेंगे, जिनसे यह स्पष्ट होता है कि ज्ञान की शक्ति शरीर की शक्ति से भी अधिक सामर्थ्यवान और अधिक आवश्यक उपयोगी है। जिन दिनों आज जितनी वैज्ञानिक प्रगति नहीं हुई थी, उन दिनों जीवनयापन में आने वाली कष्ट-कठिनाइयों का अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। एक छोटे-से कार्य को ही लें किसी को ४०-५० मील दूर किसी स्थान पर जाना होता था तो उसे अपने साथ पूर्ण व्यवस्था, भोजन-शयन से लेकर चोर-डाकुओं और हिंस्र जानवरों से सुरक्षा तक का प्रबन्ध करके चलना पड़ता था। उतनी-सी यात्रा में ही कई एक दिन लग जाते थे। किन्तु अब एक छोटे से बच्चे को भी टिकट लेकर गाड़ी में बिठाया जा सकता है और इतनी दूरी एक घण्टे में तय की जा सकती है। इस तरह की और भी कई एक सुविधायें ज्ञान-विज्ञान के विकास से ही सम्भव हो सकी हैं। परन्तु इन सुविधाओं का उपयोग भी तभी सम्भव है जबकि इनसे लाभ उठाने के तौर-तरीके मालूम हों और तत्सम्बन्धी जानकारियाँ अपने पास हों।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसका अर्थ यह नहीं है कि जानकारियाँ बढ़ाने का नाम ज्ञान है। जानकारियाँ तो ज्ञान-सम्पदा का एक बहुत ही स्थूल स्वरूप है, ज्ञान उससे गम्भीर और सूक्ष्म है। हमारी संस्कृति में प्रारम्भ से ही ज्ञान के महत्त्व और उसकी आवश्यकता को स्वीकार किया गया है। शास्त्रकार ने कहा है—

''बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतोबलम्।''

अर्थात—जिसमें बुद्धि है उसी में बल है। बुद्धिहीन व्यक्ति में बल कहाँ ?

और ज्ञान की तुलना में संसार की सभी निधियों को छोटा सिद्ध करते हुए कहा गया है—

''ज्ञानेन तुल्यो निधिरित नान्यम्।''

अर्थात—ज्ञान के समान अन्य और कोई निधि नहीं है।

मनुष्य की बौद्धिक शक्ति ही उसके स्तर को ऊँचा उठाती है और वह शक्ति सक्रिय होती है ज्ञानार्जन के लिए प्रयत्न करने से। मनीषियों, विद्वानों और विभूतिवान महापुरुषों ने अपने परिश्रम और प्रयोगों का जो निष्कर्ष-निचोड़ प्रस्तुत किया है, उससे लाभ उठाने के लिए अध्ययन, मनन, स्वाध्याय आदि की व्यवस्था बनाना ज्ञान साधना के अन्तर्गत आ जाता है। इस ज्ञान साधना में प्रवृत्त होने से मनुष्य की बौद्धिक शक्ति, मानसिक प्रतिभा जाग्रत होने और उच्च-स्तर की ओर अग्रसर होने लगती है। एक लौह चुम्बक को छूकर जिस प्रकार कोई लोहे का टुकड़ा स्वयं भी चुम्बकीय शक्ति से सम्पन्न हो जाता है, इसी प्रकार विचारों का—ज्ञान सम्पदा का संस्पर्श कर मनुष्य की बौद्धिक चेतना भी सक्रिय और जीवन्त होने लगती है।

औसत स्तर के सभ्य नागरिकों का-सा जीवन जीने के लिए भी व्यावहारिक विषयों का ज्ञान तो आवश्यक ही है, उस ज्ञान के अभाव में भी सामान्य कार्यों को सम्पन्न करना दूभर हो जाता है। सभ्य नागरिकों का-सा जीवन जीने के लिए जिस स्तर के ज्ञान की आवश्यकता होती है, वह शिक्षा द्वारा प्राप्त होता है। यों शिक्षा का समग्र अर्थ मनुष्य की अन्तर्निहित क्षमताओं का ही विकास है। परन्तु वहाँ उसका अर्थ अक्षरज्ञान से लेकर व्यवहार में आने वाले विषयों की जानकारियाँ प्राप्त करने तक ही समझना चाहिए। जिस ज्ञान के द्वारा जीवन में सर्वतोमुखी प्रगति की जा सके और सुख, आनन्द व शान्ति प्राप्त की जा सके, वह शिक्षा से अधिक उच्च-स्तर का है। लेकिन कई व्यक्तियों को तो प्राथमिक स्तर का ज्ञान—शैक्षणिक ज्ञान भी नहीं प्राप्त हो पाता और उसके अभाव में वे पिछड़े ढंग का जीवन व्यतीत करते रहते हैं। इसका कारण यही है कि लोगों को शिक्षा की आवश्यकता ही अनुभव नहीं होती, ज्ञान की उपयोगिता ही लोग समझ नहीं पाते।

किन्तु जो विचारशील व्यक्ति हैं अथवा जीवन और समाज के प्रति थोड़ा भी सुलझा हुआ दृष्टिकोण रखते हैं, वे शिक्षा तथा ज्ञान के महत्त्व को स्वीकार करते हैं। मानवी जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए आवश्यक है कि लोगों में शिक्षा के प्रति अभिरुचि जगाई जाय तथा उन्हें इस माध्यम से मानव जीवन को सुन्दर-समुन्नत बनाने के लिए प्रेरित किया जाय। तभी मनुष्य-समाज की सर्वाधिक प्रगति सम्भव हो सकेगी। अन्यथा कुछेक व्यक्ति ज्ञान सम्पन्न और विद्वान बन जायें तथा शेष अशिक्षित और पिछड़े ही बने रहें तो थोड़े से व्यक्ति—जो शिक्षित और विद्वान हैं, निजी तौर पर कुछ विशेषतायें भले ही अर्जित करलें समाज का स्तर तो जहाँ का तहाँ ही रहेगा।

ज्ञान का महत्त्व समझिये

जीवन की समस्त विकृतियों, अनुभव होने वाले सुख-दुःख, उलझनों, अशान्ति आदि का बहुत कुछ मूल कारण मनुष्य का अपना अज्ञान ही होता है। यही मनुष्य का परम शत्रु है। चाणक्य ने कहा है—''अज्ञान के समान मनुष्य का और कोई दूसरा शत्रु नहीं है।'' हितोपदेश में आया है—

''आरभन्तेऽल्पमेवाज्ञाः कामं व्यग्रा भवन्ति च।''

''अज्ञानी लोग थोड़ा-सा काम शुरू करते हैं किन्तु बहुत ज्यादा व्याकुल होते हैं।'' शेक्सपीयर ने लिखा है—''अज्ञान ही अन्धकार है।'' प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो ने कहा है—''अज्ञानी रहने से जन्म न लेना ही अच्छा है, क्योंकि अज्ञान ही समस्त विपत्तियों का मूल है।''

इस तरह अज्ञान जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है। यही जीवन की समस्त विकृतियों और कुरूपता का कारण है। कुरूपता का सम्बन्ध मनुष्य की शारीरिक बनावट से इतना नहीं है जितना अज्ञान और अविद्या से उत्पन्न होने वाली बुराइयों से। समस्त विकृतियों, बुराइयों, शारीरिक व मानसिक अस्वस्थता का कारण अज्ञान और अविद्या ही हैं। सुख-सुविधापूर्ण जीवन बिताने के पर्याप्त साधन उपलब्ध होने पर भी कई लोग अपने अज्ञान और अविद्या के कारण सन्तप्त, उद्विग्नमना, अशान्त देखे जाते हैं। इसके विपरीत ज्ञान और विद्या के धनी सन्त, महात्मा, ऋषि प्रवृत्ति के व्यक्ति सामान्य साधनों में, यहाँ तक कि अभावों में भी सुख, शान्ति, सन्तोष का जीवन बिता लेते हैं। जीवन के सहज आनन्द को प्राप्त करते हैं।

अतः ज्ञान की उपलब्धि—विद्यार्जन और अज्ञान का निवारण जीवन की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। ज्ञान संसार का सर्वोपरि उत्कृष्ट और पवित्र तत्त्व है।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

''इस संसार में ज्ञान के समान और कुछ भी पवित्र नहीं है।'' (गीता)

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"ज्ञान बहुमूल्य रत्नों से भी अधिक मूल्यवान है।"

ज्ञान ही जीवन का सार है, ज्ञान आत्मा का प्रकाश है जो सदा एकरस और बन्धनों से मुक्त रहने वाला है। सर डब्ल्यू. टेम्पिल ने लिखा है—"ज्ञान ही मनुष्य का परम मित्र है और अज्ञान ही उसका परम शत्रु है।" बेकन ने कहा है—"ज्ञान ही शक्ति है।"

इस तरह ज्ञान जीवन का सर्वोपरि तत्त्व है। ज्ञान, विद्या जीवन का बहुमूल्य धन है। सभी प्रकार की भौतिक सम्पत्तियाँ समय पर नष्ट हो जाती हैं किन्तु ज्ञान-धन हर स्थिति में मनुष्य के पास रहता है और दिनों-दिन विकास को प्राप्त करता है। ज्ञान अमोघ शक्ति है, जिसके समक्ष सभी शक्तियाँ निष्प्रभ हो जाती हैं। ज्ञान जीवन का प्रकाश-बिन्दु है, जो मनुष्य को सभी द्वन्द्वों, उलझनों, अन्धकारों की दीवारों से निकाल कर शाश्वत पथ पर अग्रसर करता है।

शुभाशुभ कर्मों से उत्पन्न होने वाले हर्ष-शोक, विक्षोभ, प्रसन्नता, मानसिक असन्तुलन मनुष्य के मन और शरीर में तीव्र प्रतिक्रिया पैदा करते हैं। हर्ष के प्रति आसक्ति, शोक से उत्पन्न होने वाली दुःखानुभूति दोनों ही मानव मन को मोहित कर उसे विवेकशून्य बना देते हैं और इसका परिणाम होता है गलत कार्य, गलत विद्या जिनका पर्यवसान दुःख, द्वन्द्व, क्लेश, शोक आदि में ही होता है। किन्तु ज्ञान का प्रकाश मनुष्य को इन दोनों ही प्रपंचों से मुक्त कर आत्मस्थिर, निःस्पृह और मुक्त बना देता है। इसी तथ्य की पुष्टि करते हुए गीताकार ने लिखा है—

"यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्व कर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा।।"

गीता ४/२७

"हे अर्जुन ! जैसे प्रज्ज्वलित अग्नि ईंधन को भस्म कर देती है वैसे ही ज्ञानरूपी अग्नि सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्मों को जलाकर नष्ट कर देती है।" ज्ञानी कर्म में लिप्त और आसक्त नहीं होता वरन् तटस्थ, निःस्पृह, निष्काम भाव से अपने कर्म में लगा रहता है। इसीलिये वह कर्म बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

ज्ञान मनुष्य के चरित्र और व्यावेहारिक जीवन को उत्कृष्ट बनाता है। ज्ञानी शुभ कर्म, शुभाचरण करके अपने आन्तरिक व बाह्य जीवन को पवित्र और उत्कृष्ट बना लेता है। महर्षि व्यास ने लिखा है—"ज्ञान जीवन के सत्य का दर्शन ही नहीं कराता वरन् वह मनुष्य को बोलना, व्यवहार करना सिखाता है।" सन्त विनोबा भावे ने कहा है—"मनुष्य जितना ज्ञान में घुलता जाता है, उतना ही वह कर्म के रंग में रँगता है। ज्ञानी अपने कर्मों को अधिक उत्कृष्टता के साथ कर सकता है बजाय एक अज्ञानी के।" कर्म को पोषण देने वाला ज्ञान ही वस्तुतः सच्चा ज्ञान है। जो कर्म त्याग या अकर्मण्यता की ओर प्रेरित करे वह ज्ञान नहीं अज्ञान और अविद्या ही है।

ज्ञान का ध्येय सत्य है और सत्य ही आत्मा का लक्ष्य है। ज्ञान मनुष्य को सत्य के दर्शन कराता है।

"बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।"

गीता ७/१९

अर्थात—बहुत जन्मों के अन्त में ज्ञानी ही मुझे पाता है। (गीता)

स्वर्ग और नर्क मनुष्य के ज्ञान और अज्ञान का ही परिणाम है। ज्ञानी मनुष्य के लिये यह संसार स्वर्ग है। वह जहाँ भी रहता है, स्वर्गीय वातावरण का सृजन कर लेता है, तो अज्ञानी को पग-पग पर अपने दुष्कृत्य और कुविचारों के कारण नारकीय पीड़ाओं का सामना करना पड़ता है। इसीलिये अज्ञान से निकलकर ज्ञान प्रकाश को प्राप्त करने की प्रेरणा देते हुए वेद भगवान ने कहा है—

"आरोह तमसो ज्योतिः।"

"अज्ञानान्धकार से निकलकर ज्ञान प्रकाश की ओर बढ़ो।"

"केतुं कृण्वन्न केतवे पेशोमर्या आपेशसे। समुषद्भिर-
जायथाः।।"

"हे मनुष्यो ! अज्ञानियों के लिये ज्ञान देते हुए, कुरूप को रूप देते हुए विद्यादि से प्रकाशित लोगों के साथ प्रसिद्धि प्राप्त करो।" इन शब्दों में मानव जीवन के एक महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम पर प्रकाश डालते हुए बताया है कि जीवन में अज्ञान को हटाकर ज्ञान की स्थापना की जाय और अपने अर्जित ज्ञान से उन लोगों की सहायता की जाय, जिनका जीवन अज्ञान की विभीषिकाओं से कुरूप हो गया है और जो सदैव अपने आपको दुःखी, पीड़ित, असहाय महसूस करते हैं।

ज्ञान की साधना करना और उसके अनुसार आचरण करना, अपने उपार्जित ज्ञान से दूसरों का मार्गदर्शन करना ज्ञान-यज्ञ कहा गया है, जिसे सर्वोत्कृष्ट बताते हुए गीताकार ने लिखा है—

"श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाद् ज्ञानयज्ञः परंतपः।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।।"

गीता ४/३२

"हे परंतप ! द्रव्ययज्ञ से ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है क्योंकि जितने भी कर्म हैं, वे सब ज्ञान में ही समाप्त होते हैं। ज्ञानदान सर्वोपरि पुण्य है, शुभ कार्य है।" पदार्थ, धन, सामग्री से किसी सीमा तक ही किसी की सहायता की जा सकती है और लेने वाला इनका दुरुपयोग करके उल्टी अपनी हानि भी कर सकता है, किन्तु ज्ञान-दान मनुष्य का स्थायी रूप से भला करता है, उसे जीवन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीने में सहायक बनता है। इसीलिये ज्ञानी को सबसे बड़ा, वृद्ध माना गया है चाहे वह कितनी ही उम्र का क्यों न हो।

न तेन स्थविरो भवति येनास्य पलितं शिरः।
बालोपि यः प्रजानाति तं देवाः स्थाविरं विदुः।।

—महर्षि व्यास

"कोई सिर के बाल श्वेत होने से वृद्ध नहीं होता। बालक होकर भी यदि कोई ज्ञान सम्पन्न है तो वही वृद्ध माना जाता है।"

शास्त्रकारों, मनीषियों ने जिस ज्ञान और शिक्षा के संचय और प्रचार की आवश्यकता पर बल दिया है, वह यह स्कूली-शिक्षा, शिक्षा नहीं है। इसे तो लौकिक जीवन को साधन सम्पन्न बनाने की दृष्टि से प्राप्त करना ही चाहिये। लोग अपने आप भी करते रहते हैं। इससे लौकिक आवश्यकताओं की ही एक अंश तक पूर्ति हो सकती है। पर अपनी आत्मा का कल्याण, आत्मतोष प्राप्त करने एवं दूसरों को अज्ञानान्धकार से छुड़ाकर सदाचार और शान्ति के मार्ग पर चलाने की शक्ति जिस ज्ञान में है, वह लौकिक नहीं आध्यात्मिक ज्ञान है।

आत्मा की अमरता का, परमात्मा की न्यायशीलता का और मानव जीवन के कर्त्तव्यों की जिससे जानकारी होती हो और जिससे कुविचारों और दुष्कर्मों के प्रति घृणा एवं सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिलती हो, वही ज्ञान है। यह शिक्षा ऋषियों ने धर्मग्रन्थों के अक्षय भाण्डारागारों में पर्याप्त मात्रा में भर अपने उत्तराधिकार के रूप में हमारे लिये छोड़ी है। इस धर्म-ज्ञान का अधिकाधिक प्रसार करना प्रत्येक ज्ञानी का कर्त्तव्य है। जो स्वयं ऐसा नहीं कर सकते वे ज्ञान प्रसार साहित्य को जुटाके तथा अन्य तरह योग देकर सहायता कर सकते हैं।

जीवन की सर्वश्रेष्ठ विभूति—ज्ञान

ज्ञान को आत्मा का नेत्र कहा गया है। नेत्रविहीन व्यक्ति के लिए सारा संसार अन्धकारमय है। इसी प्रकार ज्ञानविहीन व्यक्ति के लिए इस संसार में जो कुछ उत्कृष्ट है, उसे देख सकना असम्भव है। ज्ञान के आधार पर ही धर्म का, कर्त्तव्य का, शुभ-अशुभ का, उचित-अनुचित का विवेक होता है और पाप प्रलोभनों के आकर्षणों के पार यह देख सकना सम्भव होता है कि अन्ततः दूरवर्ती हित किसमें है। अज्ञानी व्यक्ति यह सब जान नहीं पाते। इन्द्रियों की वासना और प्रलोभनों की तृष्णा जीवन को मनमाना नाच नचाती रहती हैं और अन्त में उसे पतन के गहरे गर्त में धकेल देती हैं। इस दुर्दशा से बचाव तभी हो सकता है जब ज्ञान दीपक का प्रकाश हो रहा हो और विवेक के नेत्र खुले हुए हों।

भौतिक जीवन की सफलता और आत्मिक जीवन की पूर्णता के लिए सबसे प्रथम सोपान ज्ञान की प्राप्ति है। स्वाध्याय, सत्संग, चिन्तन, मनन के आधार पर जीवन की गुत्थियों को समझना और उन्हें सुलझाने का मार्ग खोजना सम्भव होता है। इसलिए मनीषियों ने इस बात पर बहुत जोर दिया है कि मनुष्य को ज्ञानवान बनना चाहिए। अत्यन्त आवश्यक कार्यक्रमों में एक कार्यक्रम ज्ञान सम्पादन का भी रहना चाहिए।

स्कूली शिक्षा 'ज्ञान' की श्रेणी में नहीं आती। वह ज्ञान प्राप्ति के लिए एक साधनमात्र है क्योंकि भाषा ज्ञान के बिना शास्त्रों का स्वाध्याय नहीं हो सकता। कठिन अभिव्यक्तियों को समझा नहीं जा सकता। इसलिए शिक्षा की भी आवश्यकता एवं उपयोगिता माननी ही पड़ेगी। ज्ञान का स्तर इससे ऊपर है। स्वाध्याय, सत्संग यह दो ज्ञान प्राप्ति के बाह्य उपाय हैं और चिन्तन, मनन यह आन्तरिक उपाय हैं। इन चारों चरणों से मिलकर सर्वांगपूर्ण ज्ञान साधना बनती है और उसी आधार पर जीव अपने लक्ष्य मार्ग की ओर गतिशील होता है।

भगवान राम ने जब गुरु वशिष्ठजी से सांसारिक क्लेशों के भव-बन्धनों से छुटकारे का उपाय पूछा तो उन्होंने यही कहा कि—यह सब बिना 'ज्ञान' प्राप्ति के सम्भव नहीं। यदि भवसागर से पार होने की इच्छा है तो सबसे प्रथम ज्ञान-संचय का प्रयत्न करो। योग वाशिष्ठ में इस सम्बन्ध में बहुत बल दिया गया है—

ज्ञानान्निर्दुःखतोमेति ज्ञानादज्ञान संक्षयः।
ज्ञानादेवपरासिद्धिर्नान्यस्यमाद्राम वस्तुतः।।

—योगवासिष्ठ ५/८८/१२

हे राम! ज्ञान से ही दुःख दूर होते हैं, ज्ञान से अज्ञान का निवारण होता है, ज्ञान से ही सिद्धि प्राप्त होती है और किसी उपाय से नहीं।

ज्ञानवानेव सुखवान् ज्ञानवानेव जीवित।
ज्ञानवानेव बलवांस्तमाज्ज्ञानमयो भव।।

—योगवासिष्ठ५/९२/४९

ज्ञानी ही सुखी है, ज्ञानी ही जीवित है, ज्ञानी बलवान है, इसलिये ज्ञानी बनना चाहिये।

यथा दीपः प्रकाशात्मा स्वल्पो वा यदि वा महान्।
ज्ञानात्मानं तथा विद्यादात्मानं सर्वजन्तुषु।।

जैसे छोटा या बड़ा दीपक प्रकाशवान ही होता है, वैसे ही सब छोटे-बड़े प्राणियों की आत्मा भी ज्ञानरूप ही है।

ज्ञानमेव परं ब्रह्माज्ञानं बंधाय चेष्यते।
ज्ञानात्मकमिदं विश्व न ज्ञानाद्विद्यते परम्।।

ज्ञान से ही ब्रह्म प्राप्ति होती है, विपरीत ज्ञान से ही बन्धन बाँधते हैं, इस संसार में जो कुछ है, ज्ञानात्मक ही है। ज्ञान से परे कुछ भी नहीं है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

१.८ आत्मोत्कर्ष का आधार—ज्ञान

अस्य देवाधि देवस्य परस्य परमात्मनः।
ज्ञानादेव परा सिद्धिर्नत्वनुष्ठानदुःखतः।।

—योगवासिष्ठ ३/६/१

उस परमदेव परमात्मा को ज्ञान द्वारा ही प्राप्त किया जाता है और किसी अनुष्ठान से उसकी प्राप्ति सम्भव नहीं।

एकेनैवाऽमृतेनैव बोधेन स्वेन पूज्यते।
एतदेव परं ध्यानं पूजैषैव परा स्मृता।।

—योगवासिष्ठ ६/३८/२५

उस आत्मा की एक ही प्रकार से ज्ञान द्वारा पूजा की जाती है। ध्यान ही उस आत्म देवता का सबसे बड़ा पूजन है।

अत्रज्ञानमनुष्ठानं न त्वन्यदुपयुज्यते।

—योगवासिष्ठ ३/६/२

मुक्ति प्राप्त करने के लि ज्ञान ही एकमात्र उपाय है। दूसरा और कोई नहीं।

ज्ञानादेव परासिद्धिर्नत्वनुष्ठानदुःखतः।

—योगवासिष्ठ३/६/१

परम सिद्धि ज्ञान से ही प्राप्त होती है और किसी अनुष्ठान से नहीं।

ज्ञानवानुदितानन्दो न क्वचित्परिमर्जति।

—योगवसिष्ठ ५/७३/२४

ज्ञानी ही परम आनन्द प्राप्त करता है, वही पार होता है।

ततो वच्मि महाबाहो यथाज्ञानेतरा गतिः।
नास्ति संसार तरणे पाशबन्धस्य चेतसः।।

—योगवासिष्ठ ५/६७/२

बन्धन में पड़े हुए तन को मुक्त करने और संसार सागर से तरने के लिए ज्ञान के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं।

ज्ञानयुक्ति प्लवेनैव संसारब्धिं सुदुस्तरम्।
महाधियः समुत्तीर्णा निमेषेण रघूद्वह।।

—योगवासिष्ठ २/११/१६

संसाररूपी समुद्र को बुद्धिमान लोग ज्ञानरूपी नौका पर सवार होकर आसानी से पार कर जाते हैं।

संसारोत्तरणे जन्तो रुपायो ज्ञानमेव हि।
तपो दानं तथा तीर्थमनुपायाः प्रकीर्तिताः।।

—योगवासिष्ठ

संसार से पार होने का एकमात्र उपाय ज्ञान ही है। तप, दान, तीर्थ आदि उपाय नहीं।

दुरुत्तरा या विपदो दुःख कल्लोल संकुलाः।
तीर्यते प्रज्ञया ताभ्योनानाऽपद्भयो महामते।।

—योगवासिष्ठ ५/१२/२०

विभिन्न प्रकार की कठिन विपत्तियों के समुद्र को ज्ञान द्वारा ही तरा जाता है।

कलना सर्व जन्तूनां विज्ञानेन शमेन च।
प्रबुद्धा ब्रह्म तामेति भ्रमतीतरथा जगत्।।

—योगवासिष्ठ ५/१३/५९

ज्ञान और शम के द्वारा ही प्राणी ब्रह्म रूप हो जाता है। इनके अभाव से वह संसार में भटकता ही रहता है।

ज्ञान के समान इस संसार में श्रेष्ठ वस्तु कोई नहीं। ज्ञान से ही जीवन की सारी गुत्थियाँ सुलझती हैं और उसके अभाव में नाना प्रकार के शोक-संताप सहने पड़ते हैं। ज्ञान की प्राप्ति के लिए निरन्तर प्रयत्न करना चाहिए। स्वाध्याय एवं सत्संग के लिए सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये।

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः,
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्,
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधि गच्छति।

—गीता

जिन्होंने अपने ज्ञान से अज्ञान का नाश कर लिया है, उनका ज्ञान सूर्य के समान चमकता है और परमतत्त्व को प्रकाशित कर देता है। ज्ञान प्राप्त होने पर तुरन्त ही परम शान्ति प्राप्त होती है।

प्राज्ञं विज्ञातं विज्ञेयं सम्यग् दर्शनमादयः,
न दहन्ति वनं वर्षासिक्तमग्नि शिखा इव।

—योगवासिष्ठ

जिसने जानने योग्य को जान लिया है और विवेक दृष्टि प्राप्त कर ली है उस ज्ञानी को मानसिक दुःख उसी प्रकार नहीं सताते जैसे वर्षा के भीगे जंगल को अग्नि नहीं जलाती।

आधयो व्याधयश्चैव द्वयं दुःखस्य कारणम्।
तन्निवृत्तिः सुखं विद्यात् तत्क्षयो मोक्ष उच्यते।।

—योगवासिष्ठ ६/८७/१२

शारीरिक और मानसिक यह दो ही प्रकार के दुःख इस संसार में हैं। इनकी निवृत्ति ज्ञान द्वारा होती है। इस दुःख निवृत्ति का नाम ही मोक्ष है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एकः शत्रुर्न द्वितीयोऽस्ति शत्रुरज्ञानतुल्यः पुरुषस्य राजन्।
येनावृतः कुरुते संप्रयुक्तो घोराणि कर्माणि सुदारुणानि।।

—महा. शान्ति.

इस संसार में मनुष्य का एक ही शत्रु है—अज्ञान ! इसके अतिरिक्त उसका और कोई शत्रु नहीं है। इस अज्ञान के कारण ही मनुष्य दारुण कर्म करने लगता है।

पाताले भूतले स्वर्गे सुखमैश्वर्यमेव वा।
न तत्पश्यामि यन्नाम पाण्डित्यादतिरिच्यते।।

—स्कन्द पुराण ६/१४३/३

पाताल, भूतल और स्वर्ग में वह सुख कहीं भी नहीं दिखाई देता जो ज्ञानवान होने पर प्राप्त होता है।

प्रज्ञा प्रासाद मारुह्य शोच्यः शोचतो जनान्।
तमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति।।

प्रज्ञा प्राप्त विवेकवान योगी संसार में शोकग्रस्त मानवों को ऐसे देखता है जैसे पहाड़ की चोटी पर खड़ा मनुष्य पृथ्वी पर नीचे खड़े हुये मनुष्यों को देखता है।

बीजान्यग्न्युप दग्धानि न रोहन्ति यथा पुनः।
ज्ञान दग्धैस्तथा क्लैशैर्वात्मना सम्पद्यते पुनः।।

जिस प्रकार आग में भुने हुए बीज फिर नहीं उगते वैसे ही विवेक रूप अग्नि से जले हुए क्लेश फिर उत्पन्न नहीं होते।

विशोक आनन्दमयो विपश्चित्,
स्वयं कुतश्चिन्न विभेति कश्चित्।

विज्ञ व्यक्ति शोकरहित होकर आनन्दपूर्वक रहते हैं। वे किसी से भी नहीं डरते।

विचारात् ज्ञायते तत्त्वं तत्त्वाद्विश्रान्तिरात्मनि।

—योगवासिष्ठ २/१४/५३

विचार से तत्त्व दर्शन होता है और उससे आत्मशान्ति उपलब्ध होती है।

देह दुःख विदुर्व्याधिमाध्याख्यं मानसामयम्।
मौर्ख्यं मूले हिते विद्यात्तत्त्व ज्ञाने परिक्षयः।।

—योगवासिष्ठ ६/८१/१४

शारीरिक दुःखों को व्याधि और मानसिक दुःखों को आधि कहते हैं। यह दोनों मूर्खता से उत्पन्न होती हैं और ज्ञान से नष्ट हो जाती हैं।

वस्तुतः सच्चा ज्ञान वह है जो हमें हमारे गुण, कर्म, स्वभाव की त्रुटियाँ सुझाने, अच्छाइयाँ बढ़ाने एवं आत्मनिर्माण की प्रेरणा प्रस्तुत करता है। यह सच्चा ज्ञान ही हमारे स्वाध्याय और सत्संग का, चिन्तन और मनन का विषय होना चाहिए। कहते हैं कि संजीवनी बूटी का सेवन करने से मृतक व्यक्ति भी जीवित हो जाते हैं। हनुमान द्वारा पर्वत समेत यह बूटी लक्ष्मणजी की मूर्छा जगाने के लिये काम में लाई गई थी। वह बूटी औषधि रूप में तो मिलती नहीं है पर सूक्ष्म रूप में अभी भी मौजूद है। आत्मनिर्माण की विद्या—संजीवनी विद्या—कही जाती है। इससे मूर्छित पड़ा हुआ मृतक तुल्य अन्तःकरण पुनः जाग्रत हो जाता है और प्रगति में बाधक अपनी आदतों को, विचार शृंखलाओं को सुव्यवस्थित बनाने में लगाकर अपने आपका कायाकल्प ही कर लेता है। सुधरी विचारधारा का मनुष्य ही देवता कहलाता है। कहते हैं देवता स्वर्ग में रहते हैं। देव-वृत्तियों वाले मनुष्य जहाँ कहीं भी रहते हैं वहाँ स्वर्ग जैसी परिस्थितियाँ अपने आप बन जाती हैं। अपने को सुधारने से चारों ओर बिखरी हुई परिस्थितियाँ उसी प्रकार सुधर जाती हैं जैसे दीपक के जलते ही चारों ओर फैला हुआ अन्धेरा उजाले में बदल जाता है।

स्वाध्याय और सत्संग का विषय प्राचीनकाल में आत्मविश्लेषण और आत्मनिर्माण ही हुआ करता था। गुरुजन इसी विषय की शिक्षा दिया करते थे। उच्च शिक्षा वस्तुतः यही है। कला-कौशल की अर्थकरी जो विद्या स्कूल-कॉलेजों में पढ़ाई जाती है, वह हमारी जानकारी और कार्यकुशलता को तो बढ़ा सकती है पर आदतों और दृष्टिकोण को सुधारने की उसमें कोई विशेष व्यवस्था नहीं है। इसी प्रकार कथा-वार्ता के आधार पर होने वाले सत्संग प्राचीनकाल के किन्हीं देवताओं या अवतारों के चरित्र सुनने या ब्रह्म प्रकृति—स्वर्ग-मुक्ति जैसी दार्शनिक बातों पर तो कुछ चर्चा करते हैं पर यह नहीं बताते कि हम अपने व्यक्तित्व का विकास कैसे करें ? आत्मनिर्माण का विषय इतना महत्त्वहीन नहीं है कि उसे विधिवत जानने-समझने के लिये कहीं कोई स्थान ही न मिले। ज्ञान की प्रशंसा तो लोग करते हैं, उसकी आवश्यकता भी अनुभव करते हैं पर आत्मज्ञान जैसे उपयोगी विषय की ओर कुछ भी ध्यान नहीं देते। आत्म-विद्या और आत्म-ज्ञान का आरम्भ अपनी छोटी-छोटी आदतों के बारे में जानने और छोटी-छोटी बातों को सुधारने से ही हो सकता है। जिसे सोना-जागना, बोलना-बात करना, सोचना-समझना, खाना-पीना, चलना-फिरना भी सही ढंग से नहीं आता, वह आत्मा और परमात्मा की अत्यन्त ऊँची शिक्षा को व्यावहारिक जीवन में ढाल सकेगा, इसमें पूरा-पूरा सन्देह है। आत्म-ज्ञान का आरम्भ अपनी आन्तरिक स्थिति को जानने और छोटी आदतों के द्वारा उत्पन्न हो सकने वाले बड़े-बड़े परिणामों को समझने से किया जाना चाहिये। आत्म-विद्या का तात्पर्य है—अपने आपको, अपने व्यक्तित्व और दृष्टिकोण को उपयुक्त ढाँचे में ढालने की कुशलता। मोटर विद्या में कुशल वही कहा जायेगा जो मोटर चलाना और उसे सुधारना जानता है। आत्म-विद्या का ज्ञाता वही है, जो आत्म-संयम और आत्मनिर्माण जैसे महत्त्वपूर्ण विषय पर क्रियात्मक रूप से निष्णात हो चुका है। वेदान्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और दर्शनशास्त्र को घोंटते रहने वाले या उन पर लम्बे-चौड़े प्रवचन करने वाले आचरणरहित वक्ता को नहीं, आत्मज्ञानी उस व्यक्ति को कहा जायेगा जो अपने मन की दुर्बलताओं से सतर्क रहता है और अपने आपको ठीक दिशा में ढालने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहता है, चाहे वह अशिक्षित ही क्यों न हो ?

आत्मज्ञान सबसे बड़ा ज्ञान

छान्दोग्य उपनिषद में एक कथा आती है। एक बार इन्द्र और विरोचन—दो व्यक्तियों में एक जिज्ञासा पैदा हुई "मैं क्या हूँ।" वे बार-बार सोचते-विचारते लेकिन उन्हें 'मैं' का अता-पता नहीं लगा। आखिर दोनों मिलकर आदरपूर्वक शिष्य भाव से हाथ में समिधायें लेकर आचार्य प्रजापति के पास गये और नम्रतापूर्वक उनसे अपनी जिज्ञासा प्रकट की। उनके प्रश्न का जवाब देते इसके पूर्व ही प्रजापति ने उनकी योग्यता, पात्रता को जानने के लिए एक युक्ति निकाली। उन्होंने कहा "थाली में पानी भरकर अपना-अपना मुँह देखो, उसमें तुम्हें अपना स्वरूप दिखाई देगा।"

इन्द्र और विरोचन दोनों झट से सज-धजकर पानी से भरी थाली में अपने को देखने लगे। विरोचन को अपना सजा-सँवरा रूप देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई और अपने साथियों में जाकर अभिमान के साथ कहने लगा—"भाई मैंने तो 'मैं' का पता लगा लिया है। इन्द्र कुछ बुद्धिमान था, उसे सन्तोष नहीं हुआ और वह आचार्य प्रजापति के पास जाकर कहने लगा—"भगवन असंस्कृत शरीर की प्रतिच्छाया ही प्रतिबिम्ब में दिखाई देती है। यदि यह शरीर काना, लूला, लँगड़ा होता तो प्रतिच्छाया भी वैसी ही दिखाई देती, वस्त्र-अलंकारों को उतार देने पर प्रतिबिम्ब का सौन्दर्य भी नष्ट हो जाता है और शरीर के नष्ट हो जाने पर यह भी नहीं रहता। इसलिये इसे मैं अपना स्वरूप कैसे मानूँ। मुझे इससे शान्ति नहीं मिलती।" (छान्दोग्य ८/९/२)

फट जाने वाले, नष्ट हो जाने वाले वस्त्राभूषणों से युक्त प्रतिबिम्ब को 'मैं' का स्वरूप जान लेने से हमारी जिज्ञासा शान्त नहीं होती। क्योंकि इन्हें धारण करके हम अच्छे लगते हैं और उतार फेंकने पर कुरूप। इस तरह स्पष्ट है कि वस्त्र आभूषण 'मैं' का परिचय नहीं हो सकते। अपना वस्त्र फट जाने पर यह भास नहीं होता कि मैं फट गया। वस्त्राभूषण उतार देने या पहने रहने पर 'मैं' का अस्तित्त्व बना ही रहता है।

ठीक यही स्थिति शरीर के साथ भी है। वस्त्रों की तरह हमारा शरीर नित्य ही किसी न किसी रूप में नष्ट होता रहता है। मल—शरीर से निकलने वाले दूषित तत्त्व क्या हैं ? नष्ट हुए शरीर का अवशेष। रसायनशास्त्री, वैज्ञानिकों के प्रयोग से यह सिद्ध हो चुका है कि शरीर में नित्य असंख्यों कोष नष्ट होते हैं, असंख्यों ही नये पैदा हो जाते है इस तरह शरीर की दृष्टि से तो हम नित्य ही मरते हैं और नित्य ही जन्म लेते हैं। लेकिन 'मैं' के अस्तित्व में कोई परिवर्तन नहीं होता।"

'मैं' की खोज में हम आगे बढ़ें इससे पहले यह जान लेना आवश्यक है कि आखिर 'मैं' को जान लेने की आवश्यकता क्यों है ? बहुत से लोग तो इस सम्बन्ध में कुछ सोचते-विचारते ही नहीं। ऐसे लोगों को खाने-पीने, मौज-मजे उड़ाने से फुर्सत नहीं मिलती लेकिन इस तरह की प्रवृत्ति पशुत्व की द्योतक है।

कुछ बुद्धिमान कहे जाने वाले लोग इस महा-प्रश्न में बेकार न लगकर अपना काम करना ही अधिक अच्छा समझते हैं। वे इस जटिल प्रश्न को सुलझाने में व्यर्थ श्रम करना अच्छा नहीं समझते। लेकिन हमें क्या करना चाहिये ? यह निश्चय करना इससे भी कठिन है और बिना सही निश्चय के किये गये कार्य अन्ततः मनुष्य के लिए अशान्ति, असन्तोष के कारण ही बनते हैं। कर्त्तव्य का निश्चय भी तभी हो सकता है, जब हम अपने असली अस्तित्व की जानकारी कर सकें। यदि हम शरीर ही हैं तो फिर हमारे कर्त्तव्यों की सीमा भी शरीर तक ही सीमित रहेगी। किसी भी कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का निर्णय हमें वहीं तक करना होगा, जितना इसी जीवन से सम्बन्धित है।

तात्पर्य यह है कि अपने जाने बिना जीवन पथ पर, कर्त्तव्य-मार्ग पर हम एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते। इसके अभाव में तो हमारी स्थिति ठीक वैसी होगी जैसे कोई मनुष्य आँखें बन्द किये जंगल में तेजी से दौड़ रहा हो। उससे पूछा जाय, 'भाई तुम क्यों दौड़ रहे हो, तुम्हें कहाँ जाना है, कहाँ से आये हो ?' और इनका उत्तर वह अपनी न जानकारी में दे तो हम उसे पागल ही कहेंगे। क्या हमारी स्थिति भी अपने स्वरूप को जाने बिना कुछ ऐसी ही नहीं है ? इसलिये 'मैं' के स्वरूप की जानकारी करना इस सम्बन्ध में प्रारम्भिक आधार खोजकर आगे बढ़ना नितान्त आवश्यक है। इसके बिना हम अपने जीवन की सही-सही रूप-रेखा न बना सकेंगे, न अपने कर्त्तव्यों का, अपनी गति की दिशा का, सही-सही निर्धारण कर सकेंगे।

सचमुच जीवन का वास्तविक लाभ वे ही उठा पाते हैं, जो पहले अपने आपको जानने का प्रयत्न करते हैं। अपने को न जानने वाले व्यक्ति तो उन आधारहीन वस्तुओं की तरह हैं, जिन्हें वायु का झोंका किधर भी बहाकर ले जा सकता है। ऐसे लोगों को संसार प्रवाह में बलात बहते रहना पड़ता है।

मनुष्यता का गौरव-ज्ञान

प्राणिजगत में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी माना गया है। संसार के अन्य सारे पशुओं पर उसने सदा से शासन किया है। उन्हें अपने अधीन बनाया, प्रशिक्षित किया और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपयोगी बनाया है। यों तो प्राणिशास्त्र के अनुसार मनुष्य व पशु में कोई विशेष अन्तर नहीं है। मनुष्य भी एक पशु ही है। प्राणि जगत में सर्वोपरिता का गौरव पाने और अन्य पशुओं पर शासन कर उनको उपयोगी बना सकने का जो श्रेय मनुष्य को मिला है, उसका मूल कारण उसकी विकसित बुद्धि एवं विवेक ही है। पशुओं एवं मनुष्यों के बीच यही तो एक अन्तर है। मनुष्य में यही एक ऐसी विशेषता है, जिसके कारण वह अन्य प्राणिजगत का स्वामी तथा गुरु बना हुआ है। यद्यपि शारीरिक रूप से अन्य असंख्यों पशु ऐसे हैं, जिनकी तुलना में मनुष्य बहुत ही निर्बल तथा अपूर्ण है। किन्तु परमात्मा के विशेष वरदान के रूप में मिली बुद्धि ने उसे सर्वश्रेष्ठता एवं ज्येष्ठता प्रदान करा दी है।

पशुओं में मनुष्यों की तरह आगे की बात सोच सकने, वर्तमान को समझ सकने और परिस्थितियों पर विजय प्राप्त कर सकने की क्षमता नहीं होती ? वे तो सामने की, सो भी खाने-पीने तथा प्रजनन सम्बन्धी बातें अपनी नैसर्गिक प्रवृत्ति पर ही जान पाते हैं, जबकि मनुष्य दिन, मास, वर्षों तथा युगों की बात आज ही सोच सकता है।

मनुष्य के बौद्धिक विकास के प्रमाणरूप में हम आज के अन्तःज्ञान, आश्चर्यजनक वैज्ञानिक प्रयोग, विशाल उद्योग, यातायात तथा न्याय, चिकित्सा आदि को विस्मय तथा सन्तोष के साथ देखते और मनुष्य होने पर गर्व करते हैं। यह सब कुछ मनुष्य की विकसित बुद्धि के ही चमत्कार हैं। बुद्धि के विकास से मनुष्य का जीवन धन्य हो जाता है, उसका मनुष्य होना सार्थक और संसार सुन्दर से सुन्दरतर हो जाता है।

भारतीय ऋषि-मनीषियों ने यह तथ्य समझा तथा साधना को सदैव सर्वोपरि महत्त्व दिया। इसलिए भारतीय संस्कृति के आदि आविष्कर्त्ताओं ने प्रारम्भ से ही किसी एक प्रमाण-तथ्य को महत्त्व न देकर बुद्धि को ही धर्म संस्कृति का निर्णायक बनाया। विवेक एवं ज्ञान भारतीय संस्कृति की आत्मा हैं। बौद्धिक आधारशिला पर ज्ञान का सर्वांगीण विकास और उसका शोध हमारी अपनी एक विशेषता रही है। इस विशेषता को दूर कर दो, भारतीय संस्कृति का कोई अस्तित्व ही नहीं रहेगा।

हमारे यहाँ जिसने भी कोई नई शोध की, उसे पूज्य माना गया है। ऋषि का पद प्रदान कर उसे समाज में सर्वोपरि महत्त्व दिया, फिर चाहे उसका दर्शन पूर्व खोजों से भिन्न ही क्यों न रहा हो। जहाँ कई देशों में नई खोज करने वालों को जिन्दा जला दिया गया, अनेक कष्ट दिये गये, मर्मान्तक पीड़ाओं से प्राण लिये, वहाँ हमारे यहाँ प्रत्येक नवीन तथ्य के प्रतिपादक की, जीवन जगत के सूक्ष्म या स्थूल क्षेत्रों में नई खोज करने वालों की पूजा की गई। यह हमारी बुद्धि-निष्ठा और ज्ञान के प्रति रचनात्मक प्रेम का परिचायक है। यही कारण है कि हमारे धर्म-ग्रन्थ, ऋषि-ग्रन्थ, ऋषि-सन्त, समाज के मार्गदर्शक एक नहीं अनेकों हैं और विशेषता यह है कि प्रत्येक के दर्शन का दृष्टिकोण एक-दूसरे से भिन्न है, फिर भी वे सबके सब भारतीय धर्म संस्कृति के हैं। ज्ञान की इतनी विस्तृत शोध, बुद्धि की निरन्तर साधना और कहीं भी देखने को नहीं मिलती। संसार में सबसे अधिक अवतार (युग पुरुष), दार्शनिक, ऋषि-मुनि, सन्त-महात्माओं की उपज हमारी इस स्वतन्त्र बुद्धि-निष्ठा और ज्ञान के प्रति स्वतन्त्र चिन्तन का ही परिणाम है।

गायत्री को गुरु मन्त्र माना गया है। उसे वेद माता कहा गया है और गायत्री उपासना प्रत्येक हिन्दू के लिए आवश्यक धर्म-कर्त्तव्य बताया है। क्यों ? किसलिए ? यह गायत्री की मूल भावना से अपने आप स्पष्ट हो जाता है, जिसमें उस शक्तिशाली, तेजस्वी, सर्वव्यापी, दिव्य तत्त्व का ध्यान करके, उससे बुद्धि की निर्मलता, शुद्धि, पवित्रता की प्रार्थना की गई है। स्पष्ट है कि गायत्री ज्ञान का, बुद्धि का, शोध अभिवृद्धि का साधना मन्त्र है। नित्य-प्रति प्रत्येक द्विजाति दिन में कम से कम तीन समय परमात्म-तत्त्व का ध्यान करते हुये उससे 'सद्बुद्धि' की, विवेक की प्रार्थना करता है।

वेद का अर्थ है—ज्ञान और ज्ञान बुद्धि की साधना का परिणाम है। इसलिए गायत्री को वेद माता कहा गया है। भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता के मूल स्रोत आधार वेद अर्थात् ज्ञान है और ज्ञान बुद्धि की देन है। अस्तु, हमारी समस्त जीवन पद्धति का संचालन बुद्धि के द्वारा होता आया है। कौटिल्य ने कहा है, "जिस मनुष्य की बुद्धि का विकास नहीं होता अथवा जो बुद्धिद्रोही या अविवेकी होता है, वह मनुष्यता से गिर जाता है।"

पितामह भीष्म से पूछा गया—"यह धर्म कौन है? कहाँ से आता है ?" पितामह ने कहा—"विचारशील व्यक्ति चिन्तन, मनन, अध्ययन करके धर्म का निर्माण करते हैं।" तात्पर्य है कि हमारा धर्म, हमारी संस्कृति विचार प्रधान है, बुद्धि प्रधान है—वेद प्रधान, अर्थात् ज्ञान के द्वारा प्रेरित है।

ओछे कर्म करने वाले लोगों का अध्ययन करें तो पता चलता है कि ऐसे कार्य वे अधिकांश अज्ञानतावश ही करते हैं। जीवन की सही दिशा निर्माण करने की क्षमता न तो धन में है, न पद और प्रतिष्ठा में। आत्मनिर्माण की प्रक्रिया सत्कर्मों से पूरी होती है। सन्मार्ग में भी कोई स्वतः प्रवृत्त होता ही है, यह भी नहीं कहा जा सकता। यह प्रेरणा हमें औरों से मिलती है। दूसरों की अच्छाइयों का अनुकरण करते हुये ही महानता की मंजिल तक पहुँचने का नियम बना हुआ है। ऐसी बुद्धि किसी को मिल जाये तो उसे यही समझना चाहिये कि परमात्मा की उस पर बड़ी कृपा है। ज्ञान से मनुष्य की ऐसी ही धर्म बुद्धि जाग्रत होती है, इसलिए ज्ञान को परमात्मा का सर्वोत्तम वरदान मानना पड़ता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अज्ञानता के दुष्परिणामों से बचने का यह तरीका सबसे अच्छा है कि हम अपनी मानसिक चेष्टाओं को संसार का रहस्य समझने में लगायें। विचार करने की शक्ति हमें इसीलिये मिली है कि हम सृष्टि की वस्तु स्थिति को समझें और इसका लाभ अपने सजातियों को भी दें, किन्तु यह सब कुछ तभी सम्भव है, जब हमारा ज्ञान बढ़े।

स्पष्ट है कि धर्म की व्याख्या भी ज्ञान पर आधारित है। इसलिए मनुष्य की श्रेष्ठता की परख ज्ञान के आधार पर करने की परिपाटी तत्त्ववेत्ताओं ने बनाई है। धन, वैभव, जमीन-जायदाद, शक्ति-सुन्दरता आदि के आधार पर किसी की उन्नति, विकास अथवा व्यक्तित्व को परखने की कसौटी मूर्खजनों की होती है। सज्जन एवं सत्पुरुष की कसौटी तो विद्या, बुद्धि, सद्ज्ञान, सदाचार, योग्यता एवं प्रतिभा ही रहा करती है। जिन्होंने विद्वानों तथा बुद्धिमानों, से सम्मान पाया, श्रेष्ठता तथा सफलता का प्रमाण-पत्र प्राप्त किया है, वही वास्तव में सफल एवं श्रेष्ठ हैं अन्यथा व्यक्ति तो सफलता एवं श्रेष्ठता का झूठा सन्तोष कर आत्मवंचना ही किया करते हैं।

जिस प्रकार नेत्रहीन के लिये सारा संसार अन्धकारपूर्ण रहता है। सुन्दर दृश्यों तथा रंगों के आनन्द से वह वंचित रह जाता, उसी प्रकार ज्ञानान्ध के लिये भी संसार का मधुर रहस्य ज्ञान-विज्ञान के चमत्कार, साहित्य तथा कलाओं का आनन्द, युग-युग संग्रहीत ज्ञान का रसास्वादन आदि सारे सुख निरर्थक ही रहते हैं। वह स्वर्गीय सम्पदाओं के बीच भी एक पशु की तरह केवल उदर पालन की क्रिया में ही बहुमूल्य मानव-जीवन को नष्ट कर देता है। सच्चा मनुष्य वही है जिसके पास ज्ञान की विशेषता है, विद्या रूपी धन है। विद्या की कृपा से मनुष्य का जीवन सार्थक बनता है। विद्या के कारण ही मनुष्य सभ्य समाज में आदर का अधिकारी बनता है। धन के आधार पर विद्यारहित व्यक्ति का आदर आडम्बर तथा प्रदर्शन मात्र होता है। उसमें कोई सत्यता अथवा हार्दिकता नहीं होती है। वह लोग उसे ठगने, अपना उल्लू सीधा करने के लिए ही ऊपरी मन से आदर किया करते हैं। सफलता, समाज, परिवार आनन्द, उल्लास, आदर, सम्मान आदि के जो भी भौतिक सुख हैं, विद्यावान व्यक्ति उन्हें यथार्थ रूप में भोगता ही है, साथ ही वह उसी आधार पर आगे बढ़ता हुआ आत्म-प्रकाश अथवा मोक्ष पद तक पा लेता है।

सच्ची सम्पदा—सतशक्ति

ज्ञान को मनुष्य की सम्पत्ति कहा गया है। उसे सत्शक्ति भी कहते हैं। वास्तविक वस्तु वह है, जो सदैव रहने वाली हो। संसार में हर वस्तु काल पाकर नष्ट हो जाती है। धन नष्ट हो जाता है, तन जर्जर हो जाता है, साथी और सहयोगी छूट जाते हैं। केवल ज्ञान ही एक ऐसा अक्षय तत्त्व है, जो कहीं भी, किसी अवस्था और किसी काल में मनुष्य का साथ नहीं छोड़ता।

धन, जन को भी मनुष्य की एक शक्ति माना गया है। किन्तु यह उसकी वास्तविक शक्तियाँ नहीं हैं। इनका भी मूल स्रोत ज्ञान ही है। ज्ञान के आधार पर ही धन की उपलब्धि होती है और ज्ञान के बल पर ही समाज में लोगों को सहायक तथा सहयोगी बनाया जाता है। अज्ञानी व्यक्ति के लिए संसार की कोई वस्तु सम्भव नहीं। धन के लिये व्यापार, व्यवसाय किया जाता है, नौकरी और शिल्पों का अवलम्बन किया जाता है, कला-कौशल की सिद्धि की जाती है। किन्तु इनकी उपलब्धि से पूर्व मनुष्य को उनके योग्य ज्ञान का अर्जन करना पड़ता है। यदि वह इन उपायों के विषय में अज्ञानी बना रहे तो किसी भी प्रकार इन विशेषताओं की सिद्धि नहीं कर सकता और तब फलस्वरूप धन से सर्वथा वंचित ही रह जायेगा।

यही बात जनशक्ति के विषय में भी कही जा सकती है। जन-बल को भी अपने पक्ष में करने के लिए ज्ञान की आवश्यकता है। जब किसी को जनमानस का ज्ञान होगा, उसकी आवश्यकताओं और समस्याओं की जानकारी होगी, उसे सत्यपथ दिखला सकने की योग्यता होगी, उसके दुःख-दर्द और कष्ट-क्लेशों के निवारण कर सकने की बुद्धि होगी, तभी जन-बल पर अपनी छाप छोड़कर उसे अपने पक्ष में किया जा सकता है। जनता का सहज स्वभाव होता है कि वह अपने सच्चे हितैषी का ही पक्ष धारण किया करती है। जनता का हित किस बात में है, उसे सम्पादन किस प्रकार किया जा सकता है? इसका ज्ञान हुये बिना ऐसा कौन है, जो जन-बल को अपनी शक्ति बना सके। जन-बल का उपार्जन भी ज्ञान द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

किसी शक्ति के उपलब्ध हो जाने के बाद भी उसकी रक्षा और उसके उपयोग के लिए भी ज्ञान की आवश्यकता होती है। ज्ञान के अभाव में शक्ति का होना, न होना बराबर होता है। उसका कोई लाभ अथवा कोई भी आनन्द नहीं बताया जा सकता। उदाहरण के लिए, मान लिया जाय कि कोई उपार्जन अथवा उत्तराधिकार में बहुत-सा धन पा जाता है या किसी संयोगवश उसे अकस्मात मिल जाता है, तो क्या यह माना जा सकता है कि वह धन-शक्ति वाला हो गया ? क्योंकि धन में स्वयं अपनी कोई शक्ति नहीं होती। वह शक्ति तभी बन पाती है, जब उसके साथ उसके प्रयोग अथवा उपयोग के ज्ञान का समावेश होता है।

यदि मनुष्य यह जानता हो कि वह उस धन से कौन-सा व्यवसाय करे, किस जन-हितैषी संस्था को दान दे, समाज के लाभ के लिये कौन-सी, क्या स्थापना करे? वह धन द्वारा किस प्रकार दीन-दुःखियों, अपाहिजों अथवा आवश्यकता-ग्रस्त लोगों की सहायता करे। उसको व्यय कर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किस प्रकार का रहन-सहन बनाये ? क्या और किस प्रकार के कामों में उसको लगाये ? जिससे समाज में उसका आदर हो, आत्मा में प्रकाश हो और परमार्थ में रुचिता बढ़े—तो क्या वह धन उसकी शक्ति बनकर सहायक हो सकेगा।

बल्कि अज्ञान की अवस्था में या तो वह धन को आबद्ध रखकर समाज और राष्ट्र की प्रगति रोकेगा, चोर-डाकुओं और ठगों को आकर्षित करेगा अथवा ऊल-जलूल विधि से उसका अपव्यय एवं अनुपयोग करके समाज में विकृतियाँ पैदा करेगा, अपना जीवन बिगाड़ेगा। यह तो मनुष्य की वास्तविक शक्ति का लक्षण नहीं है। धन की शक्ति में वास्तविकता तभी आती है, जब उसके संग्रह एवं उपयोग का ठीक-ठीक ज्ञान होता है। नहीं तो अपमार्गों द्वारा संचित धन मनुष्य की निर्बलता और आशंका का हेतु बनता है। दुरुपयोग द्वारा भी वह समाज में अपवाद, ईर्ष्या आदि का लक्ष्य बनकर निर्बलता की ओर बढ़ता है। इसलिए यह मानना ही होगा कि वास्तविक शक्ति न धन में होती है और न जन में, वह होती है उस ज्ञान में जो इन उपलब्धियों के उपार्जन एवं व्यय का नियन्त्रण किया करता है।

शारीरिक शक्ति को तो प्रायः लोग निर्विवाद रूप से शक्ति ही मानते हैं। किन्तु वास्तविकता यही है कि इस शक्ति को भी नियन्त्रण तथा उपयोग करने का ठीक ज्ञान न हो तो इसका कोई लाभ नहीं होता। शारीरिक शक्ति को कहाँ लगाया जाये, उसका उपयोग किस प्रकार किया जाये ? यदि इस बात की ठीक जानकारी न हो तो या तो वह शक्ति किसी शोषक के हाथ लग जायेगी अथवा कोई कुटिल उसका उपयोग कर किसी संकट में उलझा देगा। यदि एक बार ऐसा भी न हो तो भी किसी सृजन में न लगकर या तो वह यों ही नष्ट हो जायेगी अथवा किसी ऐसे काम में स्थापित हो जायेगी, जिसका मूल्य नगण्यतम ही होगा।

ज्ञान-हीन शारीरिक शक्ति, पशु शक्ति होती है। वह अपना और दूसरों का बहुत कुछ अनिष्ट कर सकती है। अपना अनिष्ट तो इस तरह कि वह बल के अभिमान में कोई ऐसा प्रदर्शन करने का प्रयत्न कर सकती है, जिसमें अंग-भंग हो जाये, शक्तिमद से प्रेरित होकर किसी से अकारण उलझकर संकट उत्पन्न कर सकता है। अपनी धृष्टता और उद्दण्डता से समाज को विरोधी बना सकता है। सदुपयोग का ज्ञान न होने से चुप न रहने वाली शारीरिक शक्ति गलत रास्तों पर जा सकती है और इसी अबूझ तथा अनियन्त्रित प्रवाह में पड़कर ही तो बहुत से लोग अपराधी, अत्याचारी तथा दुःसाहसी बन जाया करते हैं और तब उनकी वह शक्ति विविध प्रकार के भयों का कारण बन जाती है। इसलिये तन, मन, धन और जन-शक्ति को वास्तविक शक्ति न मानकर उस ज्ञान को ही मानना चाहिये, जो उसके उपार्जन, नियन्त्रण तथा उपयोग का संचालन किया करता है।

मानवीय प्रतिभा का विकास ज्ञान से होता है। संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं, उन सभी के महान व्यक्तित्व का विकास ज्ञान से हुआ है। भगवान राम, कृष्ण, गौतम बुद्ध, ईसामसीह, सुकरात आदि सभी महापुरुषों ने ज्ञान की श्रेष्ठता को स्वीकार किया है। सांसारिक दुःखों से परित्राण पाने के लिए मानव जाति को सदैव ही इसकी आवश्यकता हुई है। शास्त्रकार ने ज्ञान की महत्ता प्रतिपादित करते हुये लिखा है—

मोक्षस्य न हि वासेऽस्ति न ग्रामान्तर मेव वा।
अज्ञान हृदयग्रन्थिर्नाशो मोक्ष इति स्मृतः।।

(शिव-गीता)

अर्थात—मोक्ष किसी स्थान विशेष में उपलब्ध नहीं होता। इसे पाने के लिए गाँव-गाँव भटकने की भी आवश्यकता नहीं। हृदय की अज्ञान ग्रन्थि का नष्ट हो जाना ही मोक्ष है। दूसरे शब्दों में मुक्ति का साधन है—ज्ञान। इसे पा लिया तो इसी जीवन में मुक्ति मिल गई समझनी चाहिए।

तत्त्ववेत्ताओं का मत है कि ज्ञान स्वयं एक अनिर्वचनीय आनन्द है। ज्ञानोद्भूत आनन्द की तुलना आत्मानन्द के सिवाय और किसी से नहीं की जा सकती। भौतिक उपभोगों के सुखों और ज्ञान-जन्य आनन्द के बीच दरिद्री तथा श्रीपति जैसा अन्तर है। जिसने एक बार ज्ञान के पवित्र आनन्द का आस्वादन कर लिया, उसके लिए इन्द्रियजन्य आनन्द सदा-सर्वदा के लिए हेय तथा अग्राह्य हो जाता है। जब तक मनुष्य आनन्द के लिए ज्ञानार्जन का मार्ग छोड़कर विषयों तथा इन्द्रियों के संयोग में सुख खोजता रहता है, तब तक वह मरु-मरीचिका में प्यास बुझाने का प्रयत्न जैसी ही मूढ़ता करता रहता है। एक बार ज्ञान का रसास्वादन करने पर वह उसी प्रकार परितृप्त हो जाता है, जिस प्रकार कोई प्यासा सुन्दर, स्वच्छ एवं प्रसन्न जलाशय को पाकर हो जाता है। आत्मा की प्यास ज्ञानरूपी अमृत से ही परितृप्त होती है। सारे काम करते रहकर अथवा काम छोड़कर भी, जैसी भी परिस्थिति हो मनुष्य को ज्ञान-लाभ करने का प्रयत्न अवश्य करते रहना चाहिये। मनुष्य का जीवन पाकर जिसने ज्ञान की कतिपय बूँदें भी इकट्ठी न कीं, उसने मानो इस रत्न को मिट्टी मोल खो दिया।

सारे सद्विषयों की परिकल्पना एक ही आत्मज्ञान के महासागर में पूर्ण होती है। अस्तु, यह आवश्यक नहीं कि मनुष्य प्रारम्भ से ही सारे विषयों को छोड़कर एकमात्र आध्यात्मिक ज्ञान में ही तल्लीन हो जाये। जिनको इस प्रकार की सुविधा प्राप्त हो, उन्हें तो एक क्षण नष्ट किये बिना ही अध्यात्मज्ञान की प्राप्ति में लग जाना चाहिये। किन्तु जिनको इस प्रकार की सुविधा प्राप्त न हो, उन्हें अपने आवश्यक विषयों के अध्ययन में लगना ही चाहिये। भौतिक विषयों का अनुसरण भी यदि यह विश्वास एवं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दृष्टिकोण रखकर पवित्रता एवं निस्पृहता के साथ किया जाये कि इन सारे विषयों का सम्मिलीकरण एक अनन्त, अगाध एवं परिव्याप्त विषय आत्मज्ञान में ही होता है, तो भावना के अनुसार सांसारिक विषयों का भी वही फल बतलाया गया है, जो आध्यात्मिक प्रयासों का।

ज्ञान क्या है ? किसी विषय की पूर्ण एवं व्यवस्थित जानकारी को ज्ञान कहा जाता है। यह जानकारी पूर्णरूप से प्राप्त होने पर, फिर उनका विषय कोई भी क्यों न हो, एक आत्मसन्तोष, एक आत्मभूत आनन्द ही देती है। उदाहरण के लिए राजनीति का ही विषय ले लीजिये। यों तो यह विषय बड़ी ही व्यस्तता, व्यग्रता एवं अशान्ति का कारण बतलाया गया है और इसमें उलझे हुये अधिकांश लोग अशान्त तथा व्यस्त ही दीखते हैं तथापि जब इसकी ज्ञान पूर्णता को पहुँच जाता है, तब वह आनन्द का हेतु बन जाता है। राजनीति के धुरन्धर दिन और रात में से अपना कोई भी क्षण बेकार नहीं खोते। वे परिश्रम एवं स्वाध्याय द्वारा अपने राजनैतिक ज्ञान को अनुदैनिक बनाये रहते हैं। सम्पूर्ण संसार की राजनीतिक गतिविधियों तथा उसके अनुबन्धित विषयों का आधुनिकतम ज्ञान उपलब्ध किये रहते हैं और अपने कक्ष में ही बैठे हुये संसार की सारी गतिविधियाँ, अपने ज्ञान बल पर चलचित्र की भाँति देखा करते हैं। ज्ञान द्वारा प्राप्त यह दिव्य दृष्टि एवं यह आश्चर्यजनक उपलब्धि कितना आनन्द दे सकती है ? इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। इस आनन्द की प्रेरणा आत्मज्ञान की ओर अग्रसर न करेगी तो क्या इन्द्रियजन्य भोग, सुख की ओर करेगी ? इसी प्रकार संसार का कोई भी विषय क्यों न हो उसका सम्पूर्ण ज्ञान, समग्र जानकारी आत्मानन्द का ही हेतु बनती है।

जहाँ ज्ञान आनन्द का कारण है, वहाँ अज्ञान घोर अशान्ति का हेतु माना गया है। अज्ञान अथवा अविद्या एक तो यों ही अन्धकार माना गया है और अन्धकार में ग्रस्त मनुष्य का अशान्त रहना स्वाभाविक ही होता है। फिर जीवन में अजानकारी का दोष कितना अशान्त एवं व्यग्र बना देता है, इसको समझने के लिए यह साधारण-सा उदाहरण ही पर्याप्त है।

क्रय-विक्रय का समुचित ज्ञान न रखने वाला व्यक्ति बाजारों में अधिकतर ठगा ही जाता है। भावों का पता न रहना, वस्तुओं के गुण-दोषों को न जानना, उनकी उपयोगिता, अनुपयोगिता के सम्बन्ध में अज्ञानता, मानो एक ऐसा अपराध है, समाज में जिसे क्षमा नहीं किया जा सकता। दुकानदार उसकी इस त्रुटि का पूरा-पूरा लाभ उठाता है। ऊँचे दामों पर घटिया चीजें बेचता है। अपने वाग्जाल में घेरकर अनावश्यक एवं अनुपयोगी चीजें माथे मढ़ देता है। इस प्रकार जब वह गाँठ के खरे दाम खोकर घटिया एवं अनुपयोगी चीजें लेकर आता है, जानकार लोगों के उपहास का विषय बनता है। इस प्रकार अपने अज्ञान का ज्ञान होने पर उन्हें कितना असन्तोष तथा अशान्ति होती होगी, इसे तो उस स्थिति का व्यक्ति ही जान सकता है।

अज्ञान के कारण मनुष्य में आत्मविश्वास की कमी रहती है। इसलिए या तो वह आवश्यक होने पर भी बहुत से कामों का करने का साहस नहीं करता और यदि डरता-डरता करता भी है, तो बहुधा उसमें असफल ही रहा करता है। अज्ञानजन्य असफलता कितने बड़े सन्ताप का कारण होती है—इसे तो वही प्रकट कर सकता है, जिसे उन परिस्थितियों का अनुभव होता है।

अज्ञानी व्यक्ति के लिए यात्रा तो एक भयंकर काम है। मार्ग न जानना, भाड़े का ज्ञान न होना, गाड़ियों का समय एवं स्वयं स्थान की अजानकारी की वे कमियाँ हैं, जिनके कारण बहुत बार तो लोग जेब के पैसे और पास का माल-असबाब खोकर खाली हाथ घर वापस चले आते हैं। इस प्रकार के अशिक्षित तथा अजानकार बहुत-से व्यक्ति आये दिन स्टेशनों पर इधर से उधर जिस-तिससे गाड़ी तथा भाड़ा को पूछते-भागते देखे जा सकते हैं। अज्ञानी व्यक्ति को संसार में सभी ज्ञानवान दिखाई देते हैं। उसकी पूछताछ का जो व्यक्ति भी जो उत्तर देता है, उसी पर विश्वास कर लेता है और इस प्रकार बहुत बार लोगों के विवाद का कारण बन जाता है अथवा न जाने कहाँ का कहाँ पहुँच जाता है ? इस दुनिया में सबसे अधिक कष्ट तथा व्यग्रता अज्ञानी व्यक्ति को ही होती है। उसे कदम-कदम पर ऐसे अवसर आते रहते हैं, जो उसको शान्त अथवा सन्तुलित नहीं रहने देते। अज्ञान का एक बड़ा दण्ड परनिर्भरता भी है। अशिक्षित अथवा अज्ञानी व्यक्ति को एक पत्र लिखने-पढ़ाने अथवा संसार का कोई समाचार जानने के लिए दूसरों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। वह न तो स्वयं पढ़ सकता है और न ठीक से कोई बात समझ सकता है। कदम-कदम की असफलता एवं परनिर्भरता में कितना सन्ताप, अशान्ति एवं असन्तोष रहता है ? इसका वर्णन उसके लिए भी सम्भव नहीं, जो उनकी आग में जला करता है। अज्ञान का दोष दुर्भाग्य का बहुत प्रबल प्रतिनिधि है। इसे तो हर सम्भव उपाय से मार ही भगाना चाहिये।

जब संसार की साधारण बातों में अज्ञान, अशान्ति का इतना बड़ा कारण हो सकता है, तब जीवन, आत्मा के और परमात्मा के विषय में उसका अन्धकार कितना भयंकर हो सकता है—इसका अनुमान लगा सकना कठिन है। आत्मा होकर भी अपने को शरीर मानना एक ऐसा अन्ध अज्ञान है, जो मनुष्य का न केवल लोक अपितु परलोक तक भ्रष्ट कर देता है। अपने को देह मानकर चलते रहने वाले अज्ञानी व्यक्ति ही तो अपनी इन्द्रियों को विषयों द्वारा तृप्त करने में लगे रहकर अपनी आत्मा का नाश किया करते हैं। भोग-विलास की तृष्णा उन्हें मनुष्य से पशु बनाकर रख दिया करती है। वितेषणा तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लोकेषणा की पिशाची उनको कर्म-अकर्म और धर्म-अधर्म की विवेक-बुद्धि से वंचित रखकर भवसागर की तरंगों पर उठाती-पटकती रहती है। दिन-रात शरीर-सेवा में यह नहीं जानते कि इसके आगे भी एक आत्मा एवं परमात्मा का वह विषय पड़ा हुआ है, जिसका अन्वेषण ही मानव-जीवन का प्रमुख ध्येय है। ऐसे व्यक्ति जल्दी या देर तक सीमित रहकर आत्मा के साथ-साथ शरीर का भी सर्वनाश कर लेते हैं। अनेक तरह के दैहिक तथा मानसिक रोगों के शिकार बनकर अपने जीवन का एक-एक क्षण अशान्ति एवं असन्तोष से भर लिया करते हैं।

जीवन में अशान्ति एवं असन्तोष से दूर रहने और एक स्थायी सुख-शान्ति प्राप्त करने के लिए मनुष्य को अज्ञान के अन्धकार से निकलकर ज्ञान के प्रकाश में आना ही चाहिये। अशान्त एवं असन्तुष्ट जीवन असफल तथा पापपूर्ण जीवन माना गया है। ज्ञान का प्रकाश पाते ही मनुष्य की आत्मा चमत्कृत हो उठती है। उसके आगे आशा, विश्वास, उन्नति एवं सफलता के हजारों फूल खिलकर अपनी मोहक मुस्कान में उसे आकर्षित करने और बुलाने लगते हैं। मनुष्य-जीवन पाकर जिसने ज्ञान प्राप्त करने के लिए अपने को प्रयत्न एवं पुरुषार्थ से विरत रखा, उसने मानो जीवन में कुछ किया ही नहीं। अनन्त धनराशि, विपुल वैभव, अपरिमित उन्नतियाँ—यदि इनका उद्देश्य आत्मानन्द की ओर प्रेरित करना नहीं है, तो तृष्णा आत्मानन्द की तरह निरर्थक एवं निस्सार ही मानी जायेगी। ज्ञान के आलोकाभाव में यह सारी उपलब्धियाँ मनुष्य को गलत रास्ते पर ही डालने में सहायक होती हैं। यह कारण अज्ञान ही तो है कि जीवन की सारी सुख-सुविधायें एकत्र होने पर भी अधिकांश धनी लोग अधिकाधिक व्यग्र एवं अशान्त रहा करते हैं। ज्ञान का सच्चा रसास्वादन करने वाले विद्वान अथवा महात्मा धन-सम्पत्ति कुछ भी न होने पर भी कितने सुखी, सन्तुष्ट तथा शान्त चित्त देखे जाते हैं। ज्ञान का आलोक पाकर उन्हें किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं रहती। वे सागर की तरह अपनी गम्भीरता में निमग्न आत्मतुष्ट रहा करते हैं।

ज्ञान द्वारा मनुष्य में जिस दिव्य तेजस्विता का समावेश होता है, उसकी तुलना में श्रीमन्तों तथा शासकों का तेज भी नगण्य ही माना जाता है। किसी विद्वान, महात्मा अथवा ज्ञान-गरिमा से अभिभूत व्यक्ति को देखकर सबका मस्तक अनायास ही श्रद्धा से झुक जाया करता है। विद्वान का आदर-स्वागत बड़े-बड़े श्रीमन्त भी उठकर और आगे बढ़कर किया करते हैं। ज्ञान के धनी विद्वान का सब कालों तथा देशों में सदैव ही सच्चा एवं समुचित आदर होता है। उसके वचन आर्ष-वाक्यों की तरह ही मानवीय एवं विश्वस्त माने जाते हैं। संसार का सुधार तथा उसको नई दिशा देना विद्वानों का ही अधिकार है। इस तेजस्विता से किस मौलिक आनन्द की उपलब्धि होती होगी। यह तो ज्ञानवान बनकर ही जाना जा सकता है। संसार का सारा सार एवं सुख एक इस 'ज्ञान' शब्द में सन्निहित हुआ रहता है। इसकी इतनी महत्ता होते हुए भी जो व्यक्ति अज्ञान के अन्धकार से निकल कर ज्ञानलोक में आने का प्रयास नहीं करते, उन्हें मूढ़, दुर्भाग्यवान अथवा पाप-ग्रस्त प्राणी के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ?

ज्ञान का अर्जन एवं विकास करें

ज्ञान को ईश्वरीय विभूति कहा गया है। यह इसलिए कि सच्चा ज्ञान सन्मार्ग पर ले जाने वाला तथा सभी के लिए हितकारी होता है। किन्तु कई लोग इस उक्ति से भ्रम में पड़ जाते हैं। वे सोचते हैं कि "ज्ञान तो भगवान द्वारा दी जाने वाली वस्तु है, जिसे जितनी मिल गई—मिल गई। उसके लिए प्रयास-पुरुषार्थ किया जाना बेकार है।"

ऐसा विचार नितान्त भ्रममूलक है। परमात्मा ने ज्ञान का अक्षय भण्डार मनुष्य के लिए खोल रखा है। प्रयास करके जो जितनी ज्ञान सम्पदा अर्जित कर सकता है। ईश्वर की ओर से हर मनुष्य को बुद्धि तत्त्व का अनुग्रह मिलता है। कोई जन्मजात मेधावी, विद्वान अथवा विवेकी कदाचित ही होता है। जन्म लेने और चेतना अनुभव करने के बाद मनुष्य उसको अपने अध्यवसाय के बल पर ही विकसित करता तथा बढ़ाता है। जो जन्मजात मेधावी माने जा सकते हैं, वे भी अपने पूर्वजन्म के अध्यवसाय के फलस्वरूप वह विशेषता लेकर वर्तमान जीवन में जाग्रत होते हैं। आशय यह है कि मनुष्य के लिये विवेक एवं बुद्धि का विकास उसके अध्यवसाय के आधार एवं अनुपात पर ही होता है।

इतिहास में ऐसे अनेकों उदाहरण मिलते हैं, जिनमें मूढ़ तथा जड़ बुद्धि समझे जाने वाले व्यक्तियों ने ज्ञान क्षेत्र में अनौखे कीर्तिमान स्थापित किये हैं। संस्कृत के विद्वान 'वरदराज' प्रारम्भिक दिनों में बुद्धिहीन माने जाते थे। उन्हें 'वरद' अर्थात् 'बैल' कहा जाता था। किन्तु अपने अध्यवसाय से वे सरस्वती के 'वरद पुत्र' बन गये। कालिदास की कथा सर्वविदित है। बोपदेव शास्त्री नामक विद्वान भी शिक्षक की मार के डर से विद्यालय से भाग जाया करते थे। कुँये पर रस्सी की रगड़ से पड़े चिह्नों से प्रेरणा लेकर वे बुद्धि को प्रखर बनाने में जुट गये और सफल हुये। वर्तमान युग के ही महात्मा आनन्द स्वामी तो अपनी मूर्खता से ऊबकर आत्महत्या करने निकल पड़े थे। किन्तु एक सन्त के समझाने से बुद्धि प्रदायिनी माँ गायत्री की उपासना करते हुये ज्ञानार्जन में लगे तो विश्व प्रसिद्ध धर्म प्रचारक बन गये।

तात्पर्य यह है कि ज्ञानार्जन हर किसी के लिए सम्भव है। भगवान ने किसी को कम, किसी को अधिक बुद्धि दी है यह भ्रान्ति छोड़ देनी चाहिए। स्वाध्याय द्वारा ज्ञानार्जन का प्रयास सतत करते रहना चाहिए। बुद्धि से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ज्ञान बढ़ता है और ज्ञानार्जन के प्रयास से बुद्धि प्रखर होती है। जैसे श्रम करने के लिए स्वस्थ शरीर चाहिए और स्वास्थ्य सुधार श्रम बिना सम्भव नहीं। इसी प्रकार बुद्धि और ज्ञान का तालमेल बिठाना चाहिए। व्यवस्थित क्रम से प्रयास किया जाय तो कोई कारण नहीं कि सामान्य व्यक्ति भी विपुल ज्ञानार्जन न कर सके।

संसार की कोई भी सम्पदा, कोई भी विभूति अनायास नहीं मिल जाती। विभिन्न प्रकार की उपलब्धियों के लिए उनके अनुरूप पुरुषार्थ करना पड़ता है। ज्ञान का सम्बन्ध शरीर से नहीं मनुष्य के मन-मस्तिष्क से है। उसका अर्जन अथवा विकास नहीं होता है। श्रेष्ठ वस्तु को निर्मल स्थान पर ही रखा जाता है। अच्छे बीज के लिए अच्छी भूमि तैयार करनी पड़ती है, ज्ञानवान अथवा विवेकशील बनने के लिये मनुष्य को अपने मन-मस्तिष्क को साफ-सुथरा बनाना होता है, उनका परिष्कार करना होता है। जिस खेत में कंकड़-पत्थर तथा खरपतवार भरा होगा, उसमें अन्न के दाने कभी भी अंकुरित नहीं हो सकते। वे तब ही अंकुरित होंगे जब खेत से झाड़-झंखाड़ और कूड़ा-करकट साफ करके दाने बोये जायेंगे। उसी प्रकार मनुष्य में ज्ञान के बीज जब तक जड़ नहीं पकड़ सकते जब तक कि मानसिक एवं नैतिक धरातल उपयुक्त न बना लिया जायेगा।

हमारे मन-मस्तिष्क में इसी जन्म की ही नहीं, जन्म-जन्मान्तरों की विकृतियाँ भरी रहती हैं। न जाने कितने कुविचार, कुवृत्तियाँ एवं मूढ़मान्यतायें हमारे मन-मस्तिष्क को घेरे रहती हैं। ज्ञान पाने का अथवा विवेक जाग्रत करने के लिए आवश्यक है कि पहले हम विचारों एवं संस्कारों को परिष्कृत करें। उसके लिए हर सम्भव प्रयास करें।

ज्ञान का अर्जन बाह्य स्रोतों से किया जाय अथवा अन्तःकरण में ही उसका जागरण एवं विकास करें, दोनों के लिए, मस्तिष्क को प्रखर एवं उर्वर बनाना होता है। मस्तिष्क को ज्ञानार्जन अथवा ज्ञानांकुरण के योग्य बनाना अथवा ज्ञान की उपलब्धि करना दोनों ही कार्यों के लिए जो प्रक्रिया अपनाई जाती है, उसे स्वाध्याय के नाम से जाना जाता है। इसे ज्ञानार्जन का तप भी कहा जाता है।

यदि किसी वस्तु का संचय के बाद भी उसके नष्ट होने का भय हो तो उसके संचय के लिए प्रयास न करने की भी सलाह दी जा सकती है। किन्तु ज्ञान तो दिव्य सम्पदा है। इसका क्षय इस जीवन में तो क्या अगले जीवन में भी नहीं होता। इसीलिए शास्त्रों में ज्ञानार्जन के लिए अन्तिम श्वाँस तक भी प्रयासरत रहने का आग्रह किया जा रहा है। कहा गया है ज्ञानरूपी तप किसी भी काल एवं अवस्था में क्यों न किया जाये, कभी निष्फल नहीं जाता—

गतेपि वयसि ग्राह्या विद्या सर्वात्मना बुधैः।
यद्यपि स्यान्न फलदा, सुलभा सान्यजन्मनि॥

"आयु के निकल जाने पर भी विद्या प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील रहना बुद्धिमानी है। यदि वह किसी कारण से इस जन्म में फलवती न हुई तो आगामी जन्मों में सुलभ होगी।"

निःसन्देह विद्या ऐसी ही अक्षय सम्पदा है, जिसका तीनों कालों में नाश नहीं होता। वह जन्म-जन्मातरों में मित्र की तरह मनुष्य के साथ बनी रहती है। इस अक्षय सम्पदा का प्रभाव महामानवों के जीवन में प्रत्यक्ष देखने को मिलता है। जितनी विविधतापूर्ण उत्कृष्टता उनके जीवन में मिलती है वह अन्य जीवन में उपलब्ध नहीं हो सकती। महापुरुषों के जीवन में पूर्व संचित सम्पदा की झलक स्पष्ट देखी जा सकती है। जीवन को सफल, उच्च तथा परिपक्व बनाने के लिए युगों से संचित मानवीय-ज्ञान की नितान्त आवश्यकता है। उन सारे महान व्यक्तियों ने, जिन्होंने उन्नति के चरम शिखरों को छूने का प्रयास किया है, अपने जीवन में अध्ययन सम्बन्धी अध्यवसाय को प्रधानता दी है। उन्होंने लाख संकट उठाये, हजार अभावों में रहे, कितनी व्यग्रता एवं व्यथा की परिस्थितियाँ क्यों न आई हों ? अपने अध्ययन एवं ज्ञान सम्बन्धी अभ्यास में व्यवधान न आने दिया। वे पुराने ज्ञान से जीवन का अनुभव और तात्कालिक विषयों का अधिकाधिक अध्ययन कर आधुनिक ज्ञान का लाभ उठाते ही गये। यदि उन्हें ज्ञान की उत्कट अभिलाषा न होती या उसके महत्त्व को कम आँक कर यों ही मनोरंजन के रूप में कुछ पढ़कर काम चलाने की सोची होती तो निश्चय ही वे उन्नति के उन सोपानों पर भी चरण न रख सकते, जिसके अधिकारी बनकर आज विद्या, बुद्धि, ज्ञान, विवेक तथा आध्यात्मिकता के क्षेत्रों के उदाहरण बन चुके हैं।

ज्ञान विभूति, चाहे इस जन्म में प्राप्त की गई हो अथवा पूर्वजन्म की संचित पूँजी हो, है वह व्यक्ति की ज्ञानसाधना की ही देन। अतः ज्ञानसाधना-ज्ञानार्जन तप, स्वाध्याय के लिए प्रबल पुरुषार्थ करने का साहस हर व्यक्ति को एकत्रित करना ही चाहिए।

लक्ष्य बाह्य जीवन की सफलता हो अथवा आन्तरिक जीवन की उत्कृष्टता, उसके लिए अज्ञानान्धकार मिटाकर ज्ञान के प्रकाश से पथ आलोकित करना अनिवार्य है। इसीलिए ऋषियों ने गाया है—**'तमसो मा ज्योतिर्गमयः'** इस उद्‌बोधन के साथ ही मनुष्य को ज्ञान प्राप्ति के लिए परम पुरुषार्थ करने की प्रेरणा दी गई है। महर्षियों ने प्रारम्भ से ही मनुष्य को अज्ञान अन्धकार से निकलकर ज्ञान प्राप्ति के लिए प्रेरित किया है। भारत का अध्यात्म दर्शन ज्ञान प्राप्ति के उपायों का प्रतिपादक है।

बाह्य जगत के समान मनुष्य का एक आत्मिक जगत भी है, जो कि ज्ञान के अभाव में वैसे ही अन्धकारपूर्ण रहता है जैसे—कि आँख के अभाव में संसार। अन्धकार से प्रकाश और अज्ञान से ज्ञान की ओर जाने में मनुष्य का प्रमुख पुरुषार्थ—माना गया है। अच्छा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हो कि मनुष्यता के गौरव को बढ़ाने वाला पुण्य-पुरुषार्थ, ज्ञानार्जन का प्रयास हर व्यक्ति करे ताकि जीवन को उच्च स्तरीय के राज पथ पर अग्रसर किया जा सके।

स्वाध्याय क्यों और कैसे ?

जिस ज्ञान के द्वारा मनुष्य को सर्वतोमुखी प्रगति और सब प्रकार की सुख-शान्ति प्राप्त है, वह ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त करना चाहिए। वह ज्ञान स्वाध्याय और सत्संग के द्वारा प्राप्त होता है। अध्ययन से मनुष्य का मानसिक संस्कार हो जाता है और उसकी बुद्धि प्रखर हो उठती है। लेकिन दो-चार वर्ष या अधिक समय तक किसी स्कूल में थोड़ी-बहुत पुस्तकें पढ़ लेना अथवा कुछ परीक्षायें पास कर लेने से अध्ययन का वह उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। स्कूल में तो केवल पढ़ने-लिखने की विधि सिखा दी जाती है। इसके बाद जब व्यक्ति स्वयं इस शिक्षा की सहायता से उत्तम और उपयोगी ग्रन्थों का, सत्साहित्य का अध्ययन-मनन करता है, तभी उसे वास्तविक ज्ञान प्राप्त होता है।

स्वाध्याय को आत्मशिक्षण भी कहा जा सकता है। इससे अध्ययन, सत्संग, मनन-चिन्तन जुड़े रहते हैं। ज्ञान किसी के द्वारा बलपूर्वक थोपा नहीं जा सकता। व्यक्ति जब स्वयं परिश्रमपूर्वक किसी विद्या को, विधा को जानने के लिए कृत संकल्प हो जाता है, तभी उसे सही अर्थों से ज्ञान की प्राप्ति होती है। यह स्थिति जिज्ञासु भाव के नाम से जानी जाती है। बिना जिज्ञासा के पहले ज्ञान प्राप्त ही नहीं होता, हो भी जाय तो वह टिकाऊ एवं उपयोगी नहीं रहता।

जिज्ञासा को ज्ञान प्राप्ति का केन्द्र कहा गया है। जिज्ञासा स्वयं में एक शक्ति है, ज्ञान के तत्त्व को पकड़ने की क्षमता उसी में होती है। जिज्ञासा के स्तर के अनुरूप ही ज्ञान का भी स्तर बढ़ता रहता है। ज्यों-ज्यों जिज्ञासा गहरी होती जाती है, ज्ञान भी बढ़ता जाता है, मनुष्य की जिज्ञासु वृत्ति में ही उसे दार्शनिक, आध्यात्मिक, वैज्ञानिक एवं अन्वेषक बनाया है। यदि जिज्ञासा न होती तो मनुष्य में इस प्रकार के प्रश्न ही क्यों जागते कि वह क्या है ? यह विराट विश्व क्या है ? इस सबका आदि कहाँ से प्रारम्भ होता है ? अन्त कहाँ होगा ? और क्यों इन प्रश्नों का उत्तर खोजने में परिश्रम करता ? जिज्ञासा के अभाव में, मनुष्य आज जिस ज्ञानपूर्ण स्थिति में आया हुआ है, कभी नहीं आ पाता। यह जिज्ञासा की ही प्रेरणा है कि आज मनुष्य का ज्ञान भण्डार इतना विशाल हो सका है और आगे इस ज्ञान भण्डार में जो कुछ भी वृद्धि होगी, उसका भी मुख्य हेतु जिज्ञासा होगी।

जिनमें जिज्ञासा का प्राधान्य होता है, ज्ञान क्षेत्र में वे ही आगे निकल पाते हैं। यदि जिज्ञासा की मात्रा में अन्तर न होता तो सभी एक जैसे समान स्तर के ज्ञानी, दार्शनिक, आध्यात्मिक, कवि, कलाकार, शिल्पी एवं वैज्ञानिक व अन्वेषक होते। यदि जिज्ञासा के अभाव में यह सब सम्भव हो सकता तो संसार का प्रत्येक मनुष्य विद्यावान एवं वैज्ञानिक हो सकता था। मनुष्य में ज्ञान का कम-ज्यादा होना भी जिज्ञासा की मन्दता अथवा तीव्रता पर ही निर्भर करता है।

जाग्रत जिज्ञासा व्यक्तित्व-विकास का अमोघ उपाय

"शीघ्र मृत्यु से बचना है तो मानसिक व्यायाम कभी भूलकर भी बन्द न करें। मानसिक व्यायाम अर्थात स्वाध्याय का अर्थ कुछ भी पढ़ना नहीं। जो विषय आप नहीं जानते उसका अध्ययन कीजिये। किसी ऐसे विषय का अध्ययन कीजिए, जिससे आपको अपनी खोपड़ी खुजानी पड़े।"

यह शब्द अमेरिका के ६७ वर्षीय डॉ. श्वार्टज के हैं। डॉ. श्वार्टज का कहना है कि मनुष्य की मृत्यु वृद्धावस्था के कारण नहीं होती। मानसिक संस्थान की क्रियाशीलता के रुकने के कारण होती है। जो लोग निरन्तर क्रियाशील रहते हैं, उनकी आयु लम्बी होती है। यही नहीं वे अपने अनेक शारीरिक विकारों को भी दाब बैठते हैं, उन पर शारीरिक त्रुटियों का भी दुष्प्रभाव परलक्षित नहीं होने पाता।

डॉ. श्वार्टज के मत के अनुसार अपने देश के ऋषियों, महर्षियों के जीवन का अध्ययन करें तो विश्वास हो जायेगा कि उनके दीर्घायुष्य का कारण उनकी मनोचैतन्यता ही थी। शारीरिक श्रम के साथ में मानसिक दृढ़ता और विचारशीलता के कारण वे सैकड़ों वर्षों की आयु हँसते हुए जीते थे।

अपने कथन की पुष्टि में डॉ. श्वार्टज ने एक ८४ वर्षीय अमेरिकन व्यापारी को प्रस्तुत किया। इस व्यापारी में अपने व्यापार के लिए नई-नई बातें खोजने की क्षमता है। वह अपने मस्तिष्क को सदैव कुरेदता और विचारता रहता है, जब कभी विचार ढीले पड़ जाते हैं, तब वह पढ़कर फिर सोचने के लिए नये विचार पैदा कर लेता है, विचारों की शाखायें-प्रशाखायें फूटती रहें, इसके लिए उसके जीवन में कर्म का समन्वय है अर्थात वह जितना सोचता-विचारता है, उतना ही क्रियाशील भी है।

व्यापारी से पूछा गया—"आपको शारीरिक शिकायत तो नहीं है ?" इस पर उसने हँसकर उत्तर दिया—"शिकायत होती तो डॉक्टर को न दिखाते आप देख लें, आप तो डॉक्टर हैं कोई शिकायत होगी तो आपकी पकड़ से बाहर थोड़े ही जा सकेगी।"

डॉक्टरों ने परीक्षा की। डॉक्टर आश्चर्यचकित थे कि संसार भर की तमाम बीमारियाँ उसके शरीर में भरी पड़ी हैं, लेकिन उसके काम की तल्लीनता और विचारों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की सजगता के कारण शरीर का विष जलता रहता है और बीमारियाँ होते हुये भी उसे चारपाई पकड़ने की आवश्यकता नहीं पड़ती। बीमारियों की ओर तो उसका कभी ध्यान नहीं गया। वह अपनी आयु के किसी भी व्यक्ति से ज्यादा काम करते हैं, व्यावसायिक कार्यों से सम्बन्धित अध्ययन के बाद भी ग्रह-नक्षत्रों की खोज, जीवात्मा-परमात्मा सम्बन्धी जानकारियाँ, प्रकृति और मनुष्यगत आश्चर्यों, चमत्कारों को पढ़ने के लिए वे कुछ न कुछ समय प्रतिदिन निकालते हैं। इन जिज्ञासाओं के कारण न तो उनका मस्तिष्क ठप्प पड़ता है और न क्रियाकलाप।

डॉ. फ्रेडरिक श्वार्टज अमेरिकन मेडिकल एसोसियेशन के अध्यक्ष हैं। जीवन के सबसे बड़े आश्चर्य मृत्यु की खोज में उनकी गहन अभिरुचि है। उसे रोक सकना तो भौतिक दृष्टि से शायद ही कभी सम्भव हो पर यदि पौराणिक आख्यान सत्य हैं, जैसा कि अब प्रमाणित भी हो रहा है, तो आयु को हजार वर्ष तक खींच ले जाने की सम्भावनायें अगली शताब्दियों में ही सत्य सिद्ध हो सकती हैं।

उसके लिए डॉ. श्वार्टज ने जो फारमूला बताया है, वह ऊपर दे दिया गया है। आश्चर्यों की खोज के प्रति हमारी जिज्ञासायें जितनी तीव्र होंगी और शारीरिक दृष्टि से जब तक क्रियाशील बने रहेंगे, मृत्यु तब तक दूर ही रहेगी, भले ही शरीर के कई कल-पुर्जे काम करना भी बन्द कर दें।

विकास की पृष्ठभूमिका—जिज्ञासा

पाश्चात्य देश पिछली शताब्दी से विज्ञान में तेजी से प्रगति करते जा रहे हैं। हजारों प्रकार के ऐसे उपकरणों, तत्त्वों का उन्होंने अन्वेषण किया है, जो आज लोगों को बड़े आश्चर्य के रूप में दिखाई दे रहे हैं। विज्ञान की उन्नति ने ही इन देशों को धन और साधन सम्पन्न बना दिया है। इसका श्रेय किसी दैवी शक्ति को न देकर उन लोगों की सूझ-समझ को देना ही उचित लगता है।

उन्होंने इतनी उन्नति कर ली और हम अभी निम्न श्रेणी में ही पड़े हैं, यह एक प्रश्न है जो हमें बार-बार कारण की खोज करने को विवश करता है हमारे देश में प्राकृतिक साधनों की कोई कमी नहीं, मनुष्यों का अभाव भी नहीं है। लोग चाहें तो अपनी वर्तमान स्थिति से ऊँचे उठकर स्वयं भी उस वैज्ञानिक प्रगति और धन सम्पन्नता की श्रेणी में पहुँच सकते हैं, जो पाश्चात्य देशों को उपलब्ध है। किन्तु कुछ कमी है जो हमारी प्रगति में बाधक है और हमें वर्तमान स्थिति से ऊँचे नहीं उठने देती है।

वैज्ञानिक प्रगति पाश्चात्य देशों की विरासत नहीं है। भारतवर्ष किसी समय उसकी पराकाष्ठा तक पहुँचा था। इससे यह स्पष्ट है कि कोई भी देश इस क्षेत्र में ऊँचे न उठ पाने के लिए प्रतिबन्धित नहीं है। ज्ञान हो तो एक से एक बढ़कर आविष्कार और अन्वेषण यहाँ भी किये जा सकते हैं और हर तरह की भौतिक समृद्धि को प्राप्त किया जा सकता है। ऐसी चेष्टा करना धर्म की दृष्टि से भी कुछ बुरा नहीं है। भौतिक समुन्नति भी अध्यात्म का ही एक अंग है। हमारा आर्ष इतिहास यह बताता है कि जिन दिनों यहाँ धर्म-तत्त्व का जागरण पूर्णता की स्थिति में था, उन दिनों भौतिक दृष्टि से भी यह देश आज के अमेरिका, ब्रिटेन आदि से भी बढ़-चढ़कर था। परिष्कृत अध्यात्म का लक्षण है—भौतिक समृद्धि। धर्म उसके बिना अधूरा है। साधनों के अभाव में अध्यात्म फल-फूल भी तो नहीं हो सकता ?

जब कोई देश नया आविष्कार करता है तो उस पर हमें भी कौतूहल नहीं होता। रेडियो, टेलीविजन, परमाणु शक्ति, ऊर्जा-शक्ति, चन्द्रमा की ओर प्रयाण आदि अनेकों बातें जब हमारे सामने आती हैं तो बड़ा आश्चर्य होता है, कौतूहल पैदा होता है। किन्तु हमारा कौतूहल बाह्य मात्र है। हम केवल कहने-सुनने तक सीमित हैं। किसी वस्तु के प्रति आश्चर्य प्रकट कर देने मात्र से वैज्ञानिक प्रगति की आवश्यकता पूरी नहीं होती। हमारा कौतूहल दरअसल आन्तरिक होना चाहिए, तभी सच्चे ज्ञान, आविष्कार और भौतिक समृद्धि की दिशा में अग्रसर हुआ जा सकता है। कोरी शाब्दिक अभ्यर्थना किसी काम की नहीं होती। किसी वस्तु का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आन्तरिक कौतूहल आवश्यक है। उस वस्तु की तह तक पहुँचकर सारी जानकारी प्राप्त कर लेना अधिक महत्त्वपूर्ण होता है।

वैज्ञानिक विकास का पूर्व इतिहास यह है कि लोगों के मन में यथार्थ के प्रति जिज्ञासा पैदा हुई। इससे वस्तु-विश्लेषण की प्रक्रिया चल पड़ी। इस प्रकार का ऐनालिसिस जितना बढ़ा उतना ही यथार्थ की शक्ति और दक्षता का ज्ञान होता गया और उस बढ़े हुए ज्ञान के कारण तरह-तरह के आविष्कार हुये। आविष्कार परिणाम है, जिज्ञासा या आन्तरिक कौतूहल इसका जन्मदाता। वस्तु के प्रति आश्चर्य का भाव पैदा न होता तो परमाणु शक्ति का पता भी न चला होता और आज के बढ़ते हुये वैज्ञानिक आविष्कारों का कहीं नाम-निशान भी नहीं होता।

ताप, चुम्बक, विद्युत, शब्द और पदार्थ के अनेक रूक्ष्मतम रहस्यों का ज्ञान और उन सिद्धान्तों के आधार पर वैज्ञानिक यन्त्रों का निर्माण तभी सम्भव हुआ, जब लोगों ने वस्तु के रहस्य को जानने का प्रयत्न किया और तभी वे इतनी उन्नति कर सके।

पाश्चात्य देशों के लिए यह कोई नई बात नहीं है। ऋषियों का जीवन इन खोजों में इतना रत रहता है कि उन्हें अपने सुखों और सुविधाओं में भी कटौती कर समय निकालना पड़ता था। खाने की चिन्ता से मुक्त होने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के लिए ऋषि पीपल के फलों पर, खेतों में गिरे हुये अन्न के दानों पर ही अवलम्बित रह जाते थे और तत्परतापूर्वक ज्ञान की शोध में लगे रहते थे। 'वेद' का प्रादुर्भाव कोई सामान्य घटना नहीं है। उनमें विश्व का गूढ़तम दर्शन और विज्ञान भरा हुआ है। उन्हें कोई व्यक्ति एक अंश में भी जान जाय तो अतुलित शक्ति, शौर्य और साधनों का स्वामी बन जाय। इतनी बड़ी खोज यों ही नहीं हो गई, ऋषियों ने जीवन, दर्शन और प्रकृति को बहुत बड़े आश्चर्य के रूप में देखा इसी से प्रेरित होकर वे 'वेद' की शोध कर सके।

मानव जीवन चूँकि बहुत अधिक मात्रा में इस पृथ्वी पर बिखरा पड़ा है इसलिए उसके प्रति लोगों में आश्चर्य का भाव नहीं है। शारीरिक तृष्णायें, लालसायें, ऐषणायें भी इस मार्ग में बाधक हैं। मानव जीवन की विपुलता और इच्छाओं, लालसाओं में व्यस्त रहने के कारण मनुष्य आत्म-रहस्य जानने को भी तत्पर नहीं होता, इसलिए वह अपने आप में एक पहेली बना हुआ है। इसके प्रत्येक क्रियाकलाप में भ्रम है, भूल है, अनात्मिकता है। यह सब इसलिए ही है कि लोगों में अपने वास्तविक स्वरूप के प्रति कौतूहल का भाव नहीं है। भौतिक पदार्थों के प्रति कौतूहल से जो विज्ञान बना, उससे भौतिक समृद्धि हुई। जिस आत्मज्ञान से शक्तियों का प्रकाश होता है, उससे आध्यात्मिक बल समुत्पन्न होता है। इस स्थिति में पहुँचकर ही मानव जीवन का लक्ष्य पूरा होता बताया जाता है। पर इन दोनों ही स्थितियों के लिए जनमानस में जिज्ञासा का प्रवेश होना आवश्यक है। मनुष्य की भावनाओं में ज्ञान और विकास की भूख मिटती है तो वह बिल्कुल आलसी, अशक्त, दीन-हीन एवं क्लेशपूर्ण परिस्थिति में गिर जाता है। उन्नति के द्वार बन्द हो जाते हैं और वह मनुष्य जीवन के उद्देश्य से च्युत हो जाता है। उनकी प्रवृत्तियाँ अधोगामी हो जाती हैं और वे सब प्रकार के विकास से वंचित रह जाते हैं।

आज इस देश की स्थिति ठीक ऐसी ही है। भौतिक पदार्थों के प्रति उनकी जिज्ञासा का प्रभाव यह है कि हमारी भौतिक समृद्धि अवरुद्ध है और स्थूल देह में मानिष्ट प्राण के प्रति कौतूहल नहीं है इसलिए अध्यात्म ज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय अन्धकार में पड़ा है। लोग जिस स्थिति में हैं उससे तनिक भी आगे बढ़ने की इच्छा नहीं करते। ज्ञान के क्षेत्र में जो कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं, शोध के लिए जो सांसारिक वासनाओं को मारना पड़ता है उससे लोग डरते से रहते हैं। इसलिए हमारी विकास की प्रक्रिया अधमुँदी पड़ी है। राष्ट्र का आविष्कृत ज्ञान भी इसीलिए प्रभावशील होते हुये भी निष्क्रिय-सा, अनुपयोगी-सा पड़ा हुआ है।

अब जब हम विकास के लिए अग्रसर हो रहे हैं तो आध्यात्मिक तथा भौतिक दोनों क्षेत्रों में हमारी जिज्ञासायें समान रूप से जाग्रत होनी चाहिए। जब तक किसी वस्तु के प्रति सच्चे हृदय से आकर्षित नहीं होते तब तक उसका सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना सम्भव नहीं हो पाता पर जिस वस्तु में रुचि होती है, उसके उन पहलुओं पर हमारा मन, हमारी कल्पनायें दौड़ती हैं और उससे सम्बन्धित सारी जानकारी हमें उपलब्ध करा देती हैं। बढ़े हुये ज्ञान का उपयोग किसी भी दिशा में किया जा सकता है। आत्मिक ज्ञान की अधिकता से सद्गुणों का और आन्तरिक सुख का अभाव दूर होता है, उसी तरह भौतिक ज्ञान की अधिकता से साधनों का लाभ प्राप्त होता है और सांसारिक सुविधायें उपलब्ध होती हैं। यह निश्चित है कि ज्ञान ही मनुष्य के विकास का मूल तत्त्व है और जागरण के लिए जिज्ञासा आवश्यक है।

जिज्ञासा जगाइये और अपना ज्ञान भण्डार भरिये

जिज्ञासा मानव जीवन के विकास का बहुत बड़ा आधार है, जो जिज्ञासु है, जानने को उत्सुक है वही जानने का प्रयत्न भी करेगा। जो जिज्ञासु नहीं उसे जड़ ही समझना चाहिये। पेड़-पौधे यहाँ तक पशु-पक्षी भी कुछ नया जानने के लिए कभी उत्सुक नहीं होते। जिज्ञासा की विशेषता ही मनुष्य को पशुओं से भिन्न करती है। वैसे जिज्ञासा के अभाव में मनुष्य भी अन्यों की तरह दो हाथ-पैर वाला पशु है।

जिज्ञासा में स्वयं अपनी एक ज्ञानशक्ति होती है। जिज्ञासा के जागते ही किसी बात को जान सकने का सहायक ज्ञान स्वयं ही विकसित होने लगता है। ज्यों-ज्यों जिज्ञासा गहरी होती जाती है, ज्ञान भी बढ़ता जाता है, मनुष्य की जिज्ञासु वृत्ति ने ही उसे दार्शनिक, आध्यात्मिक, वैज्ञानिक एवं अन्वेषक बनाया है।

यदि जिज्ञासा न होती तो मनुष्य में इस प्रकार के प्रश्न ही क्यों जागते कि वह क्या है ? यह विराट विश्व क्या है ? इसका रचयिता कौन है ? और इस सम्पूर्ण प्रपंच का प्रयोजन क्या है ? इस सबका आदि कहाँ से प्रारम्भ होता है ? अन्त कहाँ होगा ? और क्यों इन प्रश्नों का उत्तर खोजने में परिश्रम करता। जिज्ञासा के अभाव में, मनुष्य आज जिस ज्ञानपूर्ण स्थिति में आया हुआ है, कभी नहीं आ पाता। यह जिज्ञासा की ही प्रेरणा है कि आज मनुष्य का ज्ञान भण्डार इतना विशाल हो सका है और आगे इस ज्ञान भण्डार में जो कुछ वृद्धि होगी, उसकी भी मुख्य जिज्ञासा होगी।

आज यदि मनुष्य की जिज्ञासा-वृत्ति कुंठित अथवा तिरोहित हो जाय तो उसका ज्ञानाभिमान जहाँ का तहाँ ठप्प हो जाये और तब ग्रह-नक्षत्रों का वास्तविक अस्तित्व क्या है ? इसका पता लगाने की दिशा में चलते हुये प्रयास जहाँ के तहाँ रुक जायें ? और तब आगे भी कभी यह जान सकने की सम्भावना सदा-सर्वदा के लिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समाप्त हो जाये कि आखिर इन मंगल, चन्द्र अथवा बुध आदि ग्रहों पर क्या है ? इनका वास्तविक अस्तित्व क्या है ? क्या इन पर भी उसी प्रकार जीवन का अस्तित्व हो सकता है जिस प्रकार कि हमारी पृथ्वी पर ? यदि इनमें जीवन है तो वहाँ के जीव किस प्रकार के हैं ? उनका कार्य क्या रहता है ? वे हम मानवों जैसे कर्म प्रधान मर्त्य हैं अथवा भोग प्रधान अमर्त्य ? क्या हम मानवों की भाँति वहाँ पर भी मनुष्य पाये जाते हैं ? और क्या वे हमारी तरह ही आत्मा-परमात्मा और पुरुष प्रकृति पर विचार करते हैं ? उनका आध्यात्मिक दृष्टिकोण क्या हो सकता है ? उनकी साधन पद्धति क्या होगी ? मनुष्य की भाँति उनके परम लक्ष्य मोक्ष की क्या परिभाषा होगी ? उनकी भाषा क्या होगी ? और न जाने उनका साहित्य, सभ्यता, संस्कृति, कला-कौशल, शिल्प एवं रहन-सहन किस प्रकार का होगा ? उसमें और हम भूमिवासियों में क्या समानता और क्या अन्तर होगा ?

आज मनुष्य का अन्तरिक्ष ज्ञान जिस सीमा तक पहुँच चुका है जिज्ञासा के अभाव में वह उसके आगे फिर न जा सकेगा। आज जिस अणु शक्ति को मनुष्य ने खोजकर आज्ञारत बना लिया है कल इस महाशक्ति को वह आगे बढ़ा सकता है ऐसी आशा नहीं रह सकती।

यही नहीं कि जिज्ञासा के अभाव में मनुष्य का बढ़ता ज्ञान जहाँ का तहाँ रुक जायेगा, बल्कि वह धीरे-धीरे नष्ट हो जायेगा और आज का विकसित मनुष्य कुछ ही दिनों में फिर से कोरमकोर हो जायेगा। जिज्ञासा के आधार पर ही तो मनुष्य एक-दूसरे से ज्ञान ग्रहण कर आगे बढ़ाता है। जब किसी में कुछ जानने, सीखने अथवा ग्रहण करने की उत्सुकता ही न रहेगी, तब वह क्यों व्यर्थ में किसी विषय पर माथा-पच्ची करेगा ?

आज भी जिनमें जिज्ञासा का प्राधान्य होता है। ज्ञान के क्षेत्र में वे ही आगे निकल पाते हैं। यदि जिज्ञासा की मात्रा में अन्तर न होता, तो सभी एक-जैसे समान स्तर के ज्ञानी, दार्शनिक, आध्यात्मिक, कवि, कलाकार, शिल्पी एवं वैज्ञानिक व अन्वेषक होते। यदि जिज्ञासा के अभाव में यह सब सम्भव हो सकता तो संसार का प्रत्येक मनुष्य विद्यावान एवं वैज्ञानिक हो सकता था। मनुष्य में ज्ञान का कम-ज्यादा होना भी जिज्ञासा की मन्दता अथवा तीव्रता पर ही निर्भर करता है।

जो जिज्ञासु है वही गहरे पैठता है। जिज्ञासु की दृष्टि सामान्य लोगों से कुछ अधिक पैनी और खोजक होती है। किसी एक दृश्य अथवा घटना को कोई सामान्य व्यक्ति देखता है तो वह उसके लिए एक साधारण बात होती है किन्तु जब उसी विषय पर किसी जिज्ञासु व्यक्ति की दृष्टि पड़ जाती है तो वही साधारण बात कोई दार्शनिक अथवा कवित्वपूर्ण अभिव्यक्ति पाकर असाधारण बन जाती है। जिज्ञासु के लिए संसार की हर घटना एक रहस्य एवं एक महत्त्व लिए रहती है। एक रसोइये के लिये भाप से बटलोई का ढक्कन उछलना नित्य-प्रति की सामान्य बात रहती है किन्तु स्टीविन्सन के लिए भाप से ढक्कन का उठना-गिरना एक असाधारण रहस्य की बात बनकर इन्जिन के आविष्कार का हेतु बनी। एक माली के लिए पेड़ से फल गिरना सामान्यतम घटना है किन्तु उसके आधार पर पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण शक्ति के सिद्धान्त के आदि गुरु 'न्यूटन' के लिये वह असाधारण महत्त्व की बात थी। इतनी असाधारण कि आगे चलकर उसी आधार सूत्र के बल पर अधर में लटके इस ब्रह्माण्ड के हर ग्रह-नक्षत्र की चाल तथा अवस्थान का रहस्य मालूम कर लिया गया।

जिज्ञासा ज्ञान की महान जननी है। जिसने जो कुछ जानना चाहा उसे जानकर ही छोड़ा। प्रत्यक्ष में जानने का कोई सूत्र न होने पर भी जिज्ञासा मनुष्य को स्वयं से उसी प्रकार सूत्र निकाल कर दे देती है जिस प्रकार मकड़ी अपने अन्तर से जाल तन्तु निकाल लेती है। गहन से गहन अपराधों को, कोई आधार न होने पर भी जासूस-जिज्ञासा की तीव्रता के बल पर ही पता लगा लेते हैं। जिज्ञासा के बल पर ही मनुष्य के शरीर विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, भूगोल एवं खगोल विद्याओं का ही नहीं, अपने आन्तरिक एवं आत्मिक रहस्यों को भी हस्तगत कर लिया है। मनुष्य की जिज्ञासु बुद्धि उस चींटी की तरह सतत् प्रयत्नशील होती है, जो सात परदों में छिपी हुई शक्कर को खोजकर ही दम लेती है। जिज्ञासु बुद्धि का सहज गुण होता है कि जब तक वह लक्षित रहस्य को खोज नहीं लेती, सन्तुष्ट नहीं होती। दिन-रात उसके पीछे लगी रहती है।

एक ही मिट्टी से बने हुये एक-जैसे हाथ-पैर और समान स्थिति के मनुष्यों में से जो आगे निकल गया है, ऊँचा चढ़ गया है और दूसरा जहाँ का तहाँ ही रह गया है, उसका कारण जिज्ञासा का भाव ही होता है। निश्चय ही आगे निकल जाने वाले व्यक्ति में जिज्ञासा की प्रबलता रही होती है, जबकि फिसड्डी में उसका अभाव होता है। जो जिज्ञासु हैं, जो कुछ जानना और सीखना चाहता है वह तो जाने, सीखेगा ही और उसी आधार पर आगे भी बढ़ेगा। जिसमें कुछ सीखने तथा जानने अथवा पाने की जिज्ञासा ही न होगी, जहाँ का तहाँ जड़ की तरह पड़े रहने में सन्तुष्ट रहेगा, प्रगतिशीलता उसके लिए अनहोनी बात ही रहेगी।

कक्षा में शिक्षक पढ़ाता है, पचासों लड़के सुनते हैं। किन्तु उनमें से दस कुछ प्राप्त कर लेते और चालीस ज्यों के त्यों रह जाते हैं। इसका कारण यही होता है कि उन दस में जिज्ञासा की प्रबलता थी जबकि शेष चालीस में नहीं थी। जिज्ञासु की बुद्धि बड़ी ही ग्रहणीय होती है वह एक बार में ही कोई बात देख-सुनकर ग्रहण कर लेती है और फिर कभी उसे भूलती नहीं, अजिज्ञासु बुद्धि बड़ी ही कुन्द एवं कुण्ठित होती है। हजार बार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुनने-देखने और पढ़ने पर भी वह न तो किसी बात को ठीक से समझ पाती है और न याद ही रख पाती है। जिज्ञासा का अभाव मनुष्य को बड़ा ही मन्दबुद्धि बना देता है।

एकाग्रता, तन्मयता एवं तल्लीनता के साथ विषय प्रवेश जिज्ञासु व्यक्ति के विशेष गुण होते हैं। जिज्ञासु जिस नवीन बात अथवा चीज को देखता है, उसमें एकाग्र होकर तल तक पैठ करने का प्रयत्न किया करता है, जिज्ञासु व्यक्ति का दैनिक ज्ञान अजिज्ञासु की अपेक्षा बहुत कुछ तरोताजा रहता है, एक ही स्थिति के दो मित्रों में एक देश-देशान्तरों की गतिविधि से अधिक प्रामाणिक रूप में अभिज्ञात रहता है जबकि दूसरे को अपने पास-पड़ौस की घटनाओं का भी ज्ञान नहीं रहता। यह अन्तर उनकी अपनी जिज्ञासा के स्तर के कारण ही होता है।

जिज्ञासु व्यक्ति किसी बात के हर पहलू को जानने एवं समझने का प्रयत्न करता है और यथासम्भव अवश्य ही जानबूझ लेता है जबकि अजिज्ञासु व्यक्ति केवल तात्कालिक उपयोग के पहलू के संक्षिप्त ज्ञान से ही सन्तुष्ट हो जाता है। इस सम्बन्ध में एक छोटी-सी कहानी प्रसिद्ध है जिससे पता चलता है कि जिज्ञासु व्यक्ति कितना चतुर एवं उपयोगी होता है।

एक बादशाह का एक बहुत ही मुँहलगा नौकर था। वह दिन-रात बादशाह की सेवा में लगा रहता था। एक दिन उसे विचार आया कि वह बादशाह की सेवा में दिन-रात लगा रहता है, तब भी उसे केवल पाँच रुपये ही मिलते हैं और आपका मीर मुन्शी जो कभी कुछ नहीं करता पाँच सौ रुपये वेतन पाता है। इस भेद का क्या परिणाम है ? बादशाह ने हँसकर कह दिया किसी दिन मौके पर बतलाऊँगा।

एक दिन एक घोड़ों का काफिला उसकी सीमा से गुजरा। बादशाह ने अपने सेवक को भेजा कि जाकर मालूम कर यह काफिला कहाँ जा रहा है ?

नौकर गया और आकर बतलाया कि हुजूर वह काफिला सीमा के कंधार देश जा रहा है।

अब बादशाह ने मीर मुन्शी को भेजा। उसने आकर बतलाया कि यह काफिला काबुल से आ रहा है और कंधार जा रहा है। उसमें पाँच सौ घोड़े और बीस ऊँट भी हैं। मैंने अच्छी तरह पता लगा लिया है कि वे सब सौदागर हैं और घोड़े बेचने जा रहे हैं। इस समय उन्हें पैसों की सख्त जरूरत है यदि हुजूर कुछ घोड़े खरीदना चाहें तो कम कीमत पर मिल सकते हैं। मैंने पचास ऐसे घोड़ों को छाँट लिया है जो नौजवान और बड़ी ही उत्तम जाति के हैं। बादशाह ने तुरन्त ही पचास घोड़े खरीद लिये, जिससे उसे कम दामों पर अच्छे घोड़े मिल गये। काफिले के विषय में चिन्ता जारी रही और उन परदेशी सौदागरों पर बादशाह की गुण-ग्राहकता का बड़ा अनुकूल प्रभाव पड़ा। बादशाह ने नौकर से कहा—देखा तुम्हें पाँच रुपये क्यों मिलते हैं और मीर मुन्शी को पाँच सौ क्यों ? नौकर ने इस अन्तर के रहस्य को समझा और सदा के लिए सावधान हो गया।

जिज्ञासु व्यक्ति किसी भी बात की तह तक बैठकर उसमें से किसी न किसी प्रकार की उपयोगिता खोज लाता है ? जिज्ञासा शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक चारों उन्नतियों की हेतु होती है। मनुष्य को अपनी जिज्ञासा को प्रमादपूर्वक नष्ट नहीं करना चाहिए। उसे विकसित एवं प्रयुक्त करना चाहिए और जिसमें जिज्ञासा नहीं है, उसे चाहिए कि वह तन्मय एवं गहरे पैठने के अभ्यास से उसे पैदा करे क्योंकि जिज्ञासा भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों महान क्षेत्रों में प्रगति एवं उन्नति का आधार बनती है।

जाग्रत जिज्ञासा ही आध्यात्मिक एवं बौद्धिक विकास का सम्बल एवं आधार बनती है। जिज्ञासा के समाधान का एकमात्र समाधान है—स्वाध्याय। स्वाध्याय केवल बौद्धिक विकास के लिए ही नहीं, आत्मिक विकास के लिये भी आवश्यक है। योग साधना में भी स्वाध्याय साधना का अभिन्न अंग है। वह शोच, सन्तोष, तप एवं ईश्वराराधन इन चार के समान महत्त्वपूर्ण पाँचवाँ नियम है।

स्वाध्याय से मात्र बुद्धिबल ही नहीं बढ़ता, आत्मबल की वृद्धि की अन्तःप्रेरणा भी प्राप्त होती है। आस्थाओं के अभिवर्धन एवं दृढ़ीकरण के लिये स्वाध्याय अनिवार्य है।

एक बार एक मित्र ने सर जॉनहर्शल नामक प्रख्यात परिश्रमीय विद्वान से प्रश्न किया—"आपको सृष्टि में सर्वोत्तम वस्तु कौन-सी लगी" तो उन्होंने मुस्कराते हुये उत्तर दिया—

"भाँति-भाँति के संयोग-वियोग आये पर वह दृढ़तापूर्वक मेरे साथ जीवन के सुख और आनन्द का झरना बने रहे। मेरे खिलाफ हवा चले, लोग मुझे बुरा कहें, धिक्कारें, रास्ता रोकें उस समय मुझे बेपरवाह बना दे। जीवन से दुःखों में मेरी ढाल बन जाये। ईश्वर से प्रार्थना करने का अवसर मुझे मिले तो मैं निवेदन करूँगा हे प्रभु ! मुझे विद्या पढ़ते रहने की रुचि दे। ज्ञान के धार्मिक महत्त्व को घटाये बिना यहाँ मैंने केवल उसके सांसारिक लाभ बताये हैं। विद्या की अभिरुचि कैसी आनन्ददायिनी है, सन्तोष का कैसा उन्मुक्त साधन हैं इतना ही मैंने यहाँ स्पष्ट किया है।"

यदि मनुष्य का जीवन सामान्य भोगोपभोग और सामाजिक जीवन के कुछ ही स्तर पर ऊँचा चढ़ने में बीता, तो सारा मनुष्य जीवन तुच्छ गया यह समझना चाहिए, महानता की उच्च सीढ़ी पर प्रतिष्ठित होना चाहिए, ज्ञान ही उसका आधार है।

विद्वान किंग्स्ले ने एक स्थान पर लिखा है—ज्ञान से ही मनुष्य में ऊँचे उठने की पात्रता आती है, सुख और वैभव भी ज्ञान के बिना नहीं मिलते, फिर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आध्यात्मिक आनन्द तो उसके बिना मिलेगा ही कैसे ? ईश्वर तक कोई चीज पहुँचा सकती है तो वह विद्या ही हो सकती है।

संसार विलक्षण है। यहाँ की प्रत्येक वस्तु विलक्षणता से परिपूर्ण है। संसार में ऐसा कौन व्यक्ति है जो आश्चर्यों के प्रति आकर्षित न होता हो। इस सृष्टि की रचना क्यों की गई और हमारा उसके प्रति क्या कर्त्तव्य है ? हम शरीर क्यों धारण किये हुए हैं ? यह प्रश्न जानने बड़े जरूरी हैं, इसके लिए हमें अपनी धार्मिक वृत्ति को तेजस्विनी बनाकर आध्यात्मिक तत्त्व की खोज करनी चाहिए। ज्ञान ही धार्मिकता के साथ मिलकर विद्या कहलाती है, यह विद्या ही मनुष्य को बन्धनों से मुक्त कराती है।

जिन-जिन महापुरुषों ने बड़े-बड़े काम किये हैं उन्होंने वे काम समय का सदुपयोग, विद्याध्ययन और बौद्धिक प्रतिभाओं के विकास के द्वारा ही किये हैं। दिन भर में २४ घण्टे होते हैं। आठ घण्टे सोने और आठ घण्टे काम करने के लिए निकाल दिये जायें तो अन्यान्य विकास कार्यों अथवा मनोरंजन के लिये आठ घण्टे बचते हैं। विद्याध्ययन सर्वोत्तम मनोरंजन है यदि इसके लिए प्रतिदिन दो घण्टे का भी समय दिया जा सके तो संसार की अनेक वस्तुओं, परिस्थितियों, समस्याओं, जीवों, जीववृत्तियों, तत्त्वो का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। बढ़े हुये ज्ञान की पूँजी से सांसारिक सुख भी भुनाये जा सकते हैं और पारलौकिक अनुभूतियों का सुख भी प्राप्त कर सकता है।

पहले लोगों में स्वाध्याय की स्वाभाविक वृत्ति हुआ करती थी—"**काव्यशास्त्र विनोदेन कालोगच्छति धीमताम्**" का सिद्धान्त प्रायः सभी मानते हैं। भारतीय संस्कृति की प्रतीक 'देवी सरस्वती' स्वयं विद्या अथवा ज्ञान का ही स्वरूप है। लोग उनकी आजीवन उपासना किया करते थे और इस प्रकार बिना श्रम संसार समुद्र से पार उतर जाया करते थे।

अब स्थिति तब से भिन्न है। विद्यार्थी विद्यालय की शिक्षा समाप्त होते ही पुस्तकों को दूर रख देते हैं और उनकी ओर देखते भी नहीं। समस्याओं का उग्र होना शिक्षा की कमी नहीं बल्कि ज्ञान के अभाव के कारण है। ज्ञान मनुष्य की वृत्तियों को सतोगुणी बनाता है। विद्या मनुष्य को सौम्य, विनम्र और उदार बनाती है। जहाँ उसकी प्रतिष्ठा होगी तो वहाँ कलह और उपद्रव होंगे क्यों .? समस्यायें खड़ीं होंगी क्यों ? समस्याओं का अन्त करने के लिए सबसे पहले विद्या बल बढ़ाना होगा। उसके लिए अधिक से अधिक साधन जुटाना होगा।

लोग अभाव और आर्थिक परिस्थितियों को कारण बताया करते हैं। कुछ लोगों को समय न होने की भी शिकायत होती है। मूल बात यह है कि ऐसे व्यक्तियों को विद्याध्ययन का न तो महत्त्व ही मालूम होता है और न उस की रुचि ही होती है। अनेक दृष्टान्तों से यह सिद्ध हो चुका है कि गरीबी विद्याभ्यास में बाधक नहीं है। पब्लियस, साइरस, इसप, किलेन्थिस, बुकर टी वाशिंगटन और टेरन्स आदि प्रतिभाशाली विद्वानों का प्रारम्भिक जीवन बड़ी ही कठिनाइयों में बीता है, तो भी उन्होंने ज्ञानार्जन की महत्ता प्रतिपादित कर दिखाई है। एपिक टेटस १० वर्ष गुलाम रहा था, उसके मालिक ने उसका पैर ही तोड़ दिया था किन्तु बाद में उसने अपनी झोपड़ी में बैठकर शास्त्रों का स्वाध्याय किया और विद्वता उपलब्ध की। रोम के तात्कालीन सम्राट आडियान भी उसके पांडित्य का लोहा मानते थे।

पाइथागोरस ज्यामिति शास्त्र का प्रकाण्ड विद्वान हुआ है, वह जीवनशास्त्र और नैतिक दर्शन का भी पण्डित था। बहुत कम लोग जानते होंगे कि वह जंगल से लकड़ियाँ काटकर लाता था और उन्हें बेचकर अपनी आजीविका चलाता था।

टस्कनी की टुयोरण्टाइन एकेडेमी कौन्सिल के उच्च और महान प्रतिष्ठा के पद पर नियुक्त होने वाला प्रसिद्ध इटालियन लेखक जेली जाति का दर्जी था। उसने इतने ऊँचे पद पर पहुँच जाने पर भी अपना धन्धा दर्जीगिरी नहीं बन्द किया। वह कहा करते थे "मैंने इसी व्यवसाय के सहारे विद्या पाई है, मुझे ज्ञान से इतना प्रेम हो गया है कि अपनी इसी आजीविका के सहारे मृत्युपर्यन्त ज्ञानार्जन करते रहने की हार्दिक अभिलाषा है।

इटली का मेटास्टासिओ जब बालक था तो शहर की सड़कों में गाने गाया करता था। उससे जो पैसे मिलते थे उनकी किताबें और पत्रिकायें खरीदकर अधिकांश समय पढ़ने में लगाया करता था। अन्त में उसकी भावना सिद्ध हुई और वह एक दिन इटली का मशहूर कवि हुआ। डॉ. जॉन प्रीडा जो बुर्स्टर के पोप नियुक्त हुए थे, उन्हें पढ़ने की अभिलाषा इतनी तीव्र हुई कि वह ऑक्सफोर्ड तक पैदल चलकर गये। फीस और खाने के लिए कोई सहारा नहीं था।, इसलिए वह कॉलेज के होटल में काम करने वाले रसोइये की मदद करते थे, उसी से उन्हें इतने पैसे मिल जाते थे। जिससे किसी तरह फीस और रोटी का साधन बन जाता था। वनस्पतिशास्त्र के जन्मदाता लिनियस भी इसी तरह एक मोची के पास काम करते हुये पढ़े थे।

यह उदाहरण इसलिये दिये गये हैं कि आर्थिक स्थिति विपरीत हो तो भी ज्ञान की आराधना की जा सकती है। पेट पालने के लिए कोई भी साधारण काम किया जा सकता है पर ज्ञान की उपयोगिता और आवश्यकता देखते हुये उसका परित्याग करना अथवा उधर से मुख मोड़ना अपने लिए ही हानिकारक होता है। ज्ञान मनुष्य की शोभा है। ज्ञान ही धन और ज्ञान ही जीवन है, उसके लिए किया गया कोई भी बलिदान व्यर्थ नहीं जाता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हम इस आध्यात्मिक आवश्यकता को भूल गये हैं। विद्या आत्मकल्याण का साधन है पर अब उसे अर्थोपार्जन का माध्यम बनाकर पंगु कर दिया गया है, इसलिए हम नैतिक, आत्मिक, आध्यात्मिक क्षेत्रों में पिछड़ गये हैं। यह उपलब्धियाँ अब हमें तभी मिल सकती हैं जब ज्ञान को उचित प्रतिष्ठा दी जाय, उसके लिए सर्वस्व न्यौछावर की भावना बनाई जाय।

समाधान स्वाध्याय से

जिज्ञासाओं के समाधान का सबसे उपयुक्त माध्यम स्वाध्याय माना गया है। मनुष्य की प्रगति के प्रमुख आधार के रूप में शास्त्रों में स्वाध्याय की बड़ी महिमा गाई गई है। इसे मनुष्य के धर्म कर्त्तव्यों में सम्मिलित किया गया है तथा उसे पूरी तत्परता से नियमपूर्वक चलाते रहने का आग्रह किया गया है। शास्त्र वचन है—'स्वाध्यान्मा प्रमदः' अर्थात स्वाध्याय में प्रमाद न करें। जीवनोत्कर्ष के अन्य माध्यमों—उपासना आदि का तो समय निश्चित किया जाता है, किन्तु स्वाध्याय को तो दिन-रात कभी भी करने की छूट देकर शास्त्रकारों ने उसका महत्त्व स्वीकार किया है। कहा है—

''अहरह स्वाध्यायमध्येतव्यः''

अर्थात—स्वाध्याय में रात-दिन हर समय प्रवृत्त रहना उचित है।

आत्मकल्याण के लिए पुण्यार्जन को भी हमारे धर्म शास्त्रों में बहुत महत्त्व दिया गया है। पुण्य कमाने के लिए हर श्रद्धालु बहुत उत्सुक रहता है। पुण्यार्जन की दृष्टि से स्वाध्याय को कितना महत्त्व दिया गया है, यह तथ्य शतपथ ब्राह्मण के निम्न सूत्र से स्पष्ट होता है।

''भावन्तः वा इमां पृथिवी वित्तेन पूर्णमद तल्लोकं जयति त्रिस्तावन्तं जयति भूयां सेवाक्षय्य एवं विद्वान अहरह स्वाध्याय मधीते।''

तात्पर्य यह है कि धनधान्य से सम्पन्न धरती दान करने से जितना पुण्य दाता को मिलता है, उसके तीन गुने से भी अधिक लाभ नियमित रूप से स्वाध्यायशील को मिलता है।

स्पष्ट है कि स्वाध्याय द्वारा मनुष्य का इतना हित हो सकता है, जितना कि धनधान्य सहित धरती से भी सम्भव नहीं।

भावनाओं, विचारणाओं को प्रेरणा देने का मुख्य आधार स्वाध्याय ही है, जिससे प्रेरित होकर मनुष्य के विचार और कार्य सन्मार्ग की दिशा में विकसित होते हैं और यही विकासक्रम अन्ततः अक्षय पुण्य फल प्राप्त होने का हेतु बनता है।

शरीर, वस्त्र, मकान आदि की सफाई नित्य करनी पड़ती है क्योंकि नित्य ही उन पर मैल जमता रहता है। इसी प्रकार मन पर भी संसार के बुरे वातावरण का मैल और कुप्रभाव निरन्तर पड़ता रहता है। उसकी सफाई के लिए सत्संग और स्वाध्याय की बुहारी लगाने की नित्य ही आवश्यकता होती है। इसलिए शास्त्रकारों ने भोजन, स्नान, शयन आदि की भाँति ही स्वाध्याय को भी नित्य कर्म माना है। पानी को फैलाते ही वह तेजी से नीचे की ओर अपने आप बहने लगता है। उसी प्रकार मन का स्वभाव भी नीच कर्मों की ओर आकर्षित होता है। यदि उसे न रोका जाय तो वह पशुप्रवृत्तियों की ओर ही बढ़ेगा। पानी को ऊपर ले जाना होता है तो रस्सी, बाल्टी, पम्प आदि का प्रयोग करना पड़ता है, तब कहीं वह ऊपर को बढ़ाया जा सकता है। स्वाध्याय को वह व्यवधान कहा जा सकता है, जो मनरूपी पानी को कुमार्ग की ओर बहने से रोकता है। यही वह पम्प है, जो मानसिक वृत्तियों को उच्च मार्ग की ओर चढ़ाकर तुच्छ मानव प्राणी को महापुरुषों की—भूसुरों की श्रेणी में ले जाकर बिठा देता है। अनेकों दुर्गुणों और दुर्भावों, हानियों को स्वाध्याय के आधार पर समझा जा सकता है, आत्मनिरीक्षण द्वारा उन्हें ढूँढ़ा जा सकता है और प्रयत्नपूर्वक उन्हें छोड़ा जा सकता है। आत्मशोधन और आत्मनिर्माण का सबसे प्रधान विधान 'स्वाध्याय' ही माना गया है। इसी से परमात्मा की प्राप्ति भी होती है। महर्षि व्यास का कथन है—

''स्वाध्याय योग युक्तात्मा परमात्मा प्रकाशते''

अर्थात—स्वाध्याय युक्त साधना से ही परमात्मा का साक्षात्कार होता है।

अस्तु, हममें से प्रत्येक को स्वाध्याय के लिये नित्य कुछ समय नियमित रूप से निकालना चाहिए। जिस प्रकार स्नान के लिए एक समय नियत रहता है और रोज ही उस समय नहाया जाता है, उसी प्रकार नित्य स्वाध्याय के लिये भी एक समय नियत रहना चाहिए। यों पढ़ने को तो तरह-तरह की चीजें लोग पढ़ते हैं—पढ़ने का अर्थ स्वाध्याय नहीं है। स्वाध्याय वही कहा जायेगा जो हमारी जीवन समस्याओं पर, आन्तरिक उलझनों पर प्रकाश डालता है और मानवता को उज्ज्वल करने वाली सद्प्रवृत्तियों को अपनाने की प्रेरणा देता है।

स्वाध्याय के और भी अनेक लाभ विचारकों, मनीषियों ने बतलाये हैं। कहा गया है कि प्रतिदिन नियमपूर्वक सद्ग्रन्थों का अध्ययन करते रहने से बुद्धि तीव्र होती है, विवेक बढ़ता है और अन्तःकरण की शुद्धि होती है। इसका स्वस्थ एवं व्यावहारिक कारण यह है कि सद्ग्रन्थों के अध्ययन करते समय मन उनमें रमा रहता है और ग्रन्थ के सद्वाक्य उस पर संस्कार डालते रहते हैं।

स्वाध्याय द्वारा अन्तःकरण के निर्मल हो जाने पर मनुष्य के बाह्य-अन्तर पट खुल जाते हैं, जिससे वह आत्मा द्वारा परमात्मा को पहचानने के लिये जिज्ञासु हो उठता है। मनुष्य की यह जिज्ञासा भी स्वाध्याय से निरन्तर बढ़ती एवं बलवती होती रहती है और ईश्वर को भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्राप्त कर लेता है। परमात्मा के इस पावन साक्षात्कार का उपाय तथा मार्ग का भी स्वाध्याय से ही पता चलता है। इस प्रकार नित्य-प्रति का स्वाध्याय मनुष्य को उसके चरम लक्ष्य तक पहुँचा देने में बड़ी सहायता करता है।

स्वाध्यायशील व्यक्ति का जीवन अपेक्षाकृत अधिक पवित्र हो जाता है। ग्रन्थों में सन्निहित सद्वाणी तो अपना प्रभाव एवं संस्कार डालती ही है, साथ ही अध्ययन में रुचिमान होने से व्यक्ति अपना शेष समय पढ़ने में ही लगाता है। वह या तो अपने कमरे में बैठा हुआ एकान्त अध्ययन किया करता है अथवा किसी पुस्तकालय अथवा वाचनालय में पुस्तकों के साथ संलग्न रहता है। उसके पास ऐसा कोई भी फालतू समय नहीं रहता, जिसमें जाकर इधर-उधर बैठे अथवा घूमे और फिर वायुमण्डल अथवा संगति से अवांछित संस्कार ग्रहण करे। जब मनुष्य निरर्थकों की संगति में न जाकर जीवनोपयोगी सद्साहित्य के अध्ययन में ही संलग्न रहेगा, तो उसका आचार आप ही शुद्ध हो जायेगा।

अध्ययनशील व्यक्ति स्वयं तो बेकार रहकर कहीं नहीं जाता, उसके पास बेकार के निठल्ले व्यक्ति भी नहीं आते और वे यदि कभी आ भी जाते हैं, तो अध्ययनशील व्यक्ति के आस-पास का व्यस्त वायुमण्डल उनके अनुकूल नहीं होता और वे शीघ्र उसका अधिक समय ख़राब किये बिना खिसक जाते हैं। इस प्रकार फिजूल के व्यक्तियों के संग से उत्पन्न होने वाली विकृतियों से अध्ययनशील व्यक्ति सहज ही बच जाता है, जिससे उसके आचार-विचार पर कुसंस्कार नहीं पड़ने पाते।

निरन्तर अध्ययन करते रहने से मनुष्य का ज्ञान जाग्रत रहता है, जिसका उद्रेक उसकी वाणी द्वारा हुये बिना नहीं रहता। अस्तु, अध्ययनशील व्यक्ति की वाणी सफल, सार्थक तथा प्रभावोत्पादक बन जाती है। वह जिस सभा-समाज में रहता है, उसकी ज्ञान-मुखर वाणी उसे विशेष स्थान दिलाती है। अध्ययनशील व्यक्ति का ही कथन प्रामाणिक तथा तथ्यपूर्ण माना जा सकता है। निरध्ययन वक्ताओं की वाणी बकवास से अधिक कोई महत्त्व नहीं रखती। स्वाध्याय निःसन्देह सामाजिक प्रतिष्ठा का संवाहक होता है।

संसार ज्ञान की जन्मभूमि है। यहाँ पर नित्य प्रति नई-नई जानकारियों, विचारणाओं, तर्कों तथा विद्याओं का जन्म होता है। जो व्यक्ति अध्ययनशील होता है, वह नित्य नये ज्ञानों से अवगत रहा करता है। उसे पता रहता है कि संसार में कहाँ क्या हो रहा है ? कौन-सी पुरानी मान्यतायें बदल गई हैं और उनके स्थान पर कौन-सी नई प्रतिस्थापनायें हो रही हैं। उसे यह भी ज्ञान रहता है कि इन बदलती हुई परिस्थितियों में उनका क्या स्थान और क्या कर्त्तव्य है ? इस प्रकार अध्ययनशील व्यक्ति एक जागरूक नागरिक की तरह ही जीवन जीने का सुख पाता है न कि मूढ़मति आदमी की तरह जिसे अपने चारों ओर के, आस-पास के परिवर्तन का भी ज्ञान नहीं रहता।

स्वाध्यायशील व्यक्ति अपनी आत्मा का सफल चिकित्सक होता है। स्वाध्याय से उपार्जित ज्ञान द्वारा वह अपनी आत्मिक व्याधियों को जान लेता है और उसका निदान निर्धारित कर लेता है। निदान खोज लेने पर व्याधियों का उपचार तो सहज ही में हो जाता है। मानसिक एकाग्रता की उपलब्धि उसे इस मार्ग में सहायक बनकर बढ़ाया करती है, जिससे उसका जीवन उच्छृंखलताओं एवं अवांछनीयताओं से मुक्त होकर महान एवं सुखी बन जाता है।

स्वाध्याय को मानसिक योग भी कहा गया है। जिस प्रकार प्रभु का नाम जपता हुआ योगी उस परमात्मा के प्रकाश रूप में तल्लीन हो जाता है, उसी प्रकार एकाग्र होकर सद्विचारों के अध्ययन में तल्लीन हो जाने वाला अध्येता अक्षर ब्रह्म की सिद्धि से ज्ञानरूप प्रकाश का अधिकारी बनता है। केवल योगी ही नहीं अध्ययन भी प्रभु का साक्षात्कार करने के उपायों में एक प्रमुख उपाय है। स्वाध्याय जैसे सरल एवं सरस योग में प्रतिष्ठित होने वाला व्यक्ति किसी न किसी रूप में अपने परम लक्ष्य मोक्ष को पाकर शाश्वत सुख का अधिकारी बनता है।

स्वाध्याय का मूल प्रयोजन आत्मा का शिक्षण

शास्त्र की तीन प्रमुख अनुज्ञाएँ हैं—**सत्यम् वद, धर्मं चर तथा स्वाध्यात् मा प्रमदः** अर्थात सत्य बोलें, धर्माचरण करें और स्वाध्याय में प्रमाद न करें। इस निर्धारण के अनुसार सत्य और धर्म के ही समकक्ष स्वाध्याय को भी प्रमुखता दी गई है।

एक दूसरी गणना पवित्रता क्रम की है। मन, वचन और कर्म तीनों को अधिकाधिक पवित्र रखा जाना चाहिए इस निर्धारण में मन की पवित्रता को प्रमुख माना गया है। इसके बाद वचन और कर्म हैं। मन की पवित्रता के लिए स्वाध्याय, वचन की पवित्रता सत्य से और कर्म का वर्चस्व धर्म से निखरता है।

सत्य और धर्म की महत्ता के सम्बन्ध में सभी जानते हैं। भले ही उनका परिपालन न करते हों। किन्तु स्वाध्याय के सम्बन्ध में कम लोग ही यह अनुभव करते हैं कि उसकी महत्ता भी सत्य और धर्म के परिपालन से किसी भी प्रकार कम नहीं है। उसकी उपेक्षा करने पर इतनी बड़ी हानि होती है, जितनी कि सत्य और धर्म के सम्बन्ध में उदासीन रहने पर।

जिन दिनों इस धरती पर देव मानवों का बाहुल्य था। उन दिनों सत्य और धर्म का तो ध्यान रखा ही जाता था। पर स्वाध्याय को भी कम महत्त्व का नहीं माना जाता था। उसके लिए प्रत्येक विचारशील अपनी तत्परता बनाए रहता था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वाध्याय का शब्दार्थ है, अपने आपे का अध्ययन। यह कार्य शिक्षितों के लिए शास्त्रों के नियमित अध्ययन द्वारा सम्पन्न होता है। शास्त्र उन ग्रन्थों को कहते हैं जो आत्मसत्ता और उसकी महत्ता का बोध कराएँ। कर्त्तव्य-पथ की जानकारी एवं प्रेरणा प्रदान करें। शास्त्रों के नाम पर आजकल उन कथा-पुराणों को भी सम्मिलित कर लिया गया है, जिनमें किसी काल की घटनाओं का विवरण है अथवा मिथकों का समुच्चय भरा पड़ा है। यों प्रकारान्तर से किसी प्रकार उनकी व्याख्या-विवेचना करते हुए ही आत्मविकास के सन्दर्भ में कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। पर वह टेढ़ा मार्ग है। हर किसी के समझने-समझाने का नहीं। कोई विलक्षण बुद्धि वाले ही उस विशाल समुद्र को मथकर रत्नों को निकाल सकते हैं और जिज्ञासाओं के लिए ग्रहण करने योग्य सामग्री प्रदान कर सकते हैं।

शास्त्र के अर्थ में श्रुति, स्मृति, उपनिषद, आरण्यक जैसे तत्त्व ज्ञान की विवेचना करने वाले ग्रन्थ ही मूल प्रयोजन की पूर्ति कर सकते हैं। उन्हीं के आधार पर स्वाध्याय करने से उस विस्मृति को स्मृति के रूप में परिणत किया जा सकता है, जो आमतौर से उपेक्षित बनी रहती है। शरीर प्रत्यक्ष है। वही हमारे विभिन्न प्रयोजनों की पूर्ति करता है। इन्द्रिय संवेदनाओं के आधार पर रसास्वादन भी वही करता है। मानापमान, हानि-लाभ भी उसी के अनुभव में आते हैं। रूप-सौन्दर्य और शृंगार-सज्जा भी उसी की होती रहती है। नाम-रूप भी उसी का देखने-सुनने को मिलता रहता है। इसलिए सामान्य स्तर की चेतना यही स्वीकार कर लेती है कि वह शरीर मात्र है, उसी की प्रसन्नता के लिए मर्यादाओं को तोड़ा भी जाता है और वर्जनाओं की अवहेलना भी होती रहती है। ऐसे अवसरों पर यह स्मरण ही नहीं रहता कि शरीर के पीछे कोई चेतना-आत्मा भी है और उसकी भी कुछ आवश्यकताएँ हैं। उसे भी सन्तोष एवं उल्लास चाहिए। इस विस्मृति का परिणाम यह होता है कि आत्मसत्ता शरीर तक ही सीमित, परिलक्षित होने लगी है। उसी के निमित्त स्वार्थ-साधन के छोटे-बड़े प्रयत्न चलते रहते हैं। समूची जीवनीशक्ति प्रायः उसी के लिए उत्सर्ग हो जाती है। यह एकांगी दृष्टिकोण आत्मकल्याण के लिए, चेतनात्मक उत्कर्ष के लिए भी कुछ करना है, उसका स्मरण ही नहीं आने देता। यह एक बहुत बड़ा व्यवधान है, जिसके कारण मनुष्य भटकाव में उलझा रहता है और अनर्थ करता, दुःख भोगता और भविष्य को अन्धकारमय बनाता रहता है।

इस विडम्बना से बचने का एकमात्र उपाय यही है कि स्वाध्याय के सहारे आत्मचेतना की स्वतन्त्र महत्ता और उसके लिए प्रगतिक्रम की समग्र जानकारी प्रतिदिन स्मृति-पटल पर अंकित की जाती रहे। शरीर तो अपनी हलचलों और प्रत्यक्ष गतिविधियों के सहारे अपनी आवश्यकताएँ पूरी कराता रहता है। पर आत्मा के लिए कोई ऐसा क्रियात्मक व्यवहार सामने नहीं रहता, जिसके आधार पर आत्म-विस्मृति को सजग स्मृति में बदला जा सके। यह कार्य स्वाध्याय द्वारा ही सम्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय है ही नहीं। मनुष्य की स्मृति क्षणिक है, वह घटनाक्रम बदलते ही विस्मृति में बदल जाती है। ऐसा आत्मक्षेत्र में न होने पाये इसलिए स्वाध्याय से हर दिन उसे सींचना और हरा-भरा रखना पड़ता है।

आमतौर से शास्त्रों का पठन-पाठन ही स्वाध्याय में गिना जाता है। पर अब वह स्थिति नहीं रही जिसमें जीवन का सीमित और छोटा स्वरूप था और उसकी समस्याओं का समाधान श्रद्धालुजन शास्त्र वचनों के आधार पर पूरा कर लिया करते हैं। अब चिन्तन का क्षेत्र पहले की अपेक्षा कहीं बड़ा हो गया है। विश्व के अनेकानेक दर्शनों के आपस में गुँथने और आदान-प्रदान करने का अवसर मिला है। तर्क, तथ्य, प्रमाण और उदाहरण हर सन्दर्भ में माँगे जा रहे हैं। बढ़ते हुये भौतिकवाद की प्रतिक्रिया भी प्रत्यक्षवाद को सामने लाई है। ऐसी दशा में शास्त्र वचन श्रद्धालुओं के ही काम के रह गए हैं। बुद्धिवादी उतने भर से सन्तुष्ट नहीं होते। उनके लिए विशद और सशक्त समाधान चाहिए, यह कार्य अपने युग की आत्मचेतना पर गहरा प्रकाश डालने वाले मनीषियों ने किसी सीमा तक पूरा किया है। इसका आश्रय लिए बिना जिज्ञासा की अतृप्ति मिटती नहीं। इसलिए आज के लिए शास्त्र शब्द की विस्तृत व्याख्या करते हुये उसमें वह सारा बौद्धिक प्रतिपादन सम्मिलित करना पड़ेगा, जो चेतना के लिए समाधान और मार्गदर्शन प्रस्तुत करे। आत्मक्षेत्र को तथ्यों के आधार पर विनिर्मित तत्त्व ज्ञान का सहारा मिल सके। अब ऐसे ही साहित्य को स्वाध्याय प्रयोजनों के लिए चयन करना समीचीन होगा।

एक और बड़ा प्रश्न है—आकांक्षा का। संसार भर में प्रायः एक-चौथाई से भी कम संख्या में पढ़े-लिखे हैं। तीन-चौथाई संख्या तो निरक्षरों की है। जो साक्षर नहीं हैं वे शास्त्र या साहित्य कैसे पढ़ें ? यदि सुनने-सुनाने की बात सोची जाय तो ऐसा सत्संग भी कहाँ उपलब्ध है, जो सुनने वालों की मनोभूमि को देखते हैं। आत्मकल्याण के लिए आवश्यक दूरदर्शी विवेकशीलता का पथ प्रस्तुत कर सके। सत्संग के नाम पर तो आजकल जहाँ-तहाँ मनोविनोद ही चलता रहता है। उसका श्रवण भ्रान्तियों को घटाता नहीं, उल्टा बढ़ाता है। सो भी इस व्यस्तता के समय में वह दुर्लभ ही है। ऐसे ज्ञानीजन कहाँ हैं जो परमार्थ भावना से उच्चस्तरीय तत्त्व ज्ञान को सर्वसाधारण के लिए सुलभ बनाने में नियमित रूप से अपना समय लगाते रहें।

ऐसी दशा में स्वाध्याय की एकाकी आवश्यकता मनन और चिन्तन से पूरी हो सकती है। सुविधानुसार एकान्त में बैठकर एकाग्रचित्त से आत्मस्थिति की समीक्षा की जा सकती है। आदर्शवाद की निर्धारणाओं में अपना जीवनक्रम कितना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पीछे है, इन त्रुटियों को निष्पक्ष भाव से, पैनी दृष्टि से स्वयं खोज निकालना मनन है। इस आत्मसमीक्षा के लिए हर कोई दिन भर में कोई न कोई समय निकाल ही सकता है। उन कमियों को खोज ही सकता है, जो उसे उत्कृष्टता की दृष्टि से पिछड़ा हुआ बनाये हुये हैं। त्रुटियाँ ध्यान आती रहें और उन्हें सुधारने का अनवरत प्रयत्न चलता रहे तो मनन को सार्थक स्तर का समझा जा सकता है।

मनन का दूसरा पक्ष है चिन्तन। चिन्तन अर्थात दुष्प्रवृत्तियों के उन्मूलन एवं सत्प्रवृत्तियों के सम्वर्द्धन के लिए उपाय-उपचारों का निर्धारण। योजना इस प्रकार बनती रहनी चाहिए कि दिनचर्या में दोषों की कटौती और सद्गुणों की बढ़ोत्तरी का क्रम व्यावहारिक रूप में कार्यान्वित होता रहे। नित्य राई-राई भर दोष घटाने और नित्य तिल-तिल भर सद्गुणों के बढ़ाने से भी एक समय ऐसा आ सकता है, जिसमें शरीर सेवा की तरह आत्म-साधना भी भली प्रकार बन सके और स्वाध्याय का वास्तविक प्रयोजन पूरा हो सके।

स्वाध्याय तप

गंगा तट पर स्थित महर्षि रैभ्य के आश्रम में कई ब्रह्मचारी विद्याध्ययन करते थे। नीति, धर्म और सदाचार का अभ्यास करने के साथ-साथ शास्त्र विद्या में पारंगत होकर वे समाज में जाते तथा सुयोग्य नागरिक की भूमिका निभाते थे। वहीं पास में एक तापस रहते थे, जो रात-दिन कठोर साधनाओं में लगे रहते। उन तापस का एक पुत्र था यवक्रीत—वह भी अपने पिता के समान ही जप-तप में लगा रहता। परन्तु यवक्रीत की यह भी आकांक्षा थी कि वह वेद-वेदान्तों का ज्ञाता, शास्त्रों में निष्णात और पण्डित बने।

इस आकांक्षा की पूर्ति के लिए यवक्रीत ने अपने तापस पिता से पूछा। पिता ने कहा—"वत्स ! विद्या प्राप्ति का तो एक ही उपाय है। स्वाध्याय किया जाय।"

परन्तु तात उससे तो दीर्घकाल में सिद्धि होती है—यवक्रीत ने कहा।

यह साधक की अपनी लगन, योग्यता और ग्रहणशीलता पर निर्भर है, तापस ने कहा—"फिर भी इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है।"

यवक्रीत चुप हो गया, परन्तु उसके मन में यह बात ठीक से समझ नहीं आई कि एकमात्र अध्ययन ही ज्ञान प्राप्ति का साधन है। हो भी तो उसे यह बहुत लम्बा और श्रमसाध्य लगा, इसलिए यवक्रीत ने तप द्वारा विद्या प्राप्ति के लिए अपने पिता के पास से प्रस्थान किया। फिर एकान्त स्थान में जाकर यवक्रीत तप करने लगा। पंचाग्नि तप करते हुये यवक्रीत अपने शरीर को निरन्तर संतप्त करने लगे।

यवक्रीत को कठोर तप करते देखकर देवराज इन्द्र उनके पास आये और उनसे तप का कारण पूछा। यवक्रीत ने बताया—"गुरु के मुख से वेदों की शिक्षा ठीक तरह से प्राप्त नहीं की जा सकती, इसके लिए मैं तप के प्रभाव से ही सम्पूर्ण वेद-शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ।"

उपयुक्त गुरु न मिले यह बात तो समझ में आती है, परन्तु गुरु के बिना ही कोई ज्ञान प्राप्त कर लिया जाय यह तो नितान्त असम्भव है। आपने सर्वथा उल्टा मार्ग पकड़ा है विप्रवर ! गुरु के पास जाकर अध्ययन कीजिये।

इन्द्र तो चले गये, किन्तु यवक्रीत ने अपनी तपस्या नहीं छोड़ी, कुछ वर्षों बाद इन्द्र फिर आये और पुनः समझाने लगे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! आपका यह उद्योग बुद्धिमत्ता युक्त नहीं है। किसी को गुरुमुख से पढ़े बिना विद्या प्राप्त भी हो तो वह सफल नहीं होती। आप अपने दुराग्रह को छोड़ दीजिये।

इतना कहकर इन्द्र चले गये, परन्तु यवक्रीत ने अपना हठ नहीं छोड़ा। उन्होंने और कठिन तप आरम्भ कर दिया। यवक्रीत का संकल्प था कि वह तपस्या से ही विद्या प्राप्त करके रहेगा। इस प्रकार सिद्धि प्राप्त न होते देख यवक्रीत ने निश्चय किया कि यदि इस अनुष्ठान से विद्या की सिद्धि नहीं हुई, तो वह गंगा में अपने शरीर को प्रवाहित कर देंगे। यह निश्चय कर वे एक विशेष तप अनुष्ठान पर बैठे। यवक्रीत के इस निश्चय को जानकर देवराज इन्द्र ने एक अत्यन्त वृद्धा एवं रोगी ब्राह्मण का रूप धारण किया तथा उस स्थान पर आकर बैठ गये, जहाँ यवक्रीत स्नान करने के लिए आया करते थे।

यवक्रीत जब स्नान करने आये तो उन्होंने देखा कि एक दुर्बल और रोगी ब्राह्मण अंजलि में बार-बार रेत लेकर गंगा में डाल रहा है। प्रथम, द्वितीय बार तो यवक्रीत ने कुछ नहीं कहा, पर जब चार-पाँच दिन तक यवक्रीत ने उस ब्राह्मण को ऐसा करते देखा तो पूछ ही बैठा—विप्रवर ! आप यह क्या कर रहे हैं ?

"लोगों को यहाँ गंगा को उस पार जाने में बड़ा कष्ट होता है"—वृद्ध ब्राह्मण ने कहा—'इसलिए मैं गंगा पर पुल बाँध देना चाहता हूँ।'

यवक्रीत ने कहा भगवन ! आप इस महाप्रवाह को बालू से किसी प्रकार बाँध नहीं सकते। इसलिए असम्भव उद्योग को छोड़कर सम्भव प्रयास कीजिए।'

'आप जिस प्रकार तपस्या के द्वारा विद्या सिद्ध करना चाहते हैं, उसी प्रकार मैं भी यह कार्य कर रहा हूँ। आप असाध्य को यदि साध्य कर सकेंगे तो मैं क्यों नहीं कर सकूँगा'—वृद्ध ब्राह्मण का वेश धारण किये इन्द्र ने कहा।

ब्राह्मण कौन है, यह यवक्रीत समझ गये और वे महर्षि रैभ्य के आश्रम में जाकर स्वाध्याय द्वारा ज्ञान प्राप्ति की साधना में संलग्न हो गये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वाध्याय—महापुरुष ढालने का स्टील प्लान्ट

संसार के चिड़ियाघर में चित्र-विचित्र जीव-जन्तुओं की बोलियाँ सुनने को मिलती हैं। जनसमुदाय के इस मेले में सभी कुछ भला-बुरा बिकता है। किन्तु पवित्र देवालय की तरह सद्विचारों का एक समुदाय मात्र उस ग्रन्थागार में ही मिलता है, जहाँ चुन-चुनकर ग्रन्थ रत्न सुसज्जित किये गये हों। देवता स्वर्ग में रहते हैं, इनके प्रतीक चित्रों और प्रतिमाओं के रूप में सामने आते हैं। महामानव अपनी धरती के देवता हैं। जब तक वे शरीर धारण किये रहते हैं, तब तक अपने कृत्यों से संसार को लाभान्वित करते हैं और जब वे अदृश्य हो जाते हैं तो अपनी ऊर्जा उन कृतियों के द्वारा बिखेरते रहते हैं, जो उन्होंने अपनी जीवनगाथा के रूप में पीछे वालों के लिए छोड़ी है। इसी प्रकार उनके ज्ञान और अनुभवों का संचय उन ग्रन्थों में विद्यमान रहता है, जो उनके द्वारा सृजे गये। यह उन उत्तराधिकारियों का कम है कि उनके अनुदानों को सुनें, समझें, हृदयंगम करें और उस राजमार्ग पर चलने का प्रयत्न करें, जिस पर वे चले। यह समूची प्रक्रिया तभी सधती है जब महामानवों द्वारा विनिर्मित साहित्य को हम ध्यानपूर्वक पढ़ें और श्रद्धापूर्वक उसका महत्त्व समझें।

गीता का कथन है—ज्ञान के समान पवित्र इस संसार में और कुछ नहीं। विवेकानन्द कहते थे, हमारे सारे संकट और दुःख मात्र इस कारण हैं कि हम अपने और अपने समय के समाज के बारे में बहुत कम जानते हैं, फलतः यह समझ नहीं पाते कि कठिनाइयों के निराकरण एवं सुविधाओं के संवर्धन का प्रयोजन किस आधार पर पूरा किया जा सकता है। भटकाव ही समस्त समस्याओं का एकमात्र कारण है। यदि हम वस्तुस्थिति को समझने में समर्थ हो सकें तो भूल-भुलैयों में इस प्रकार न भटकें कि ठोकरें खाते और रोते-कलपते दुर्देव सहन करना ही पड़े। निर्वाह साधनों की ही तरह हमें सद्ज्ञान के संचय को भी महत्त्वपूर्ण कार्य मानना चाहिए।

जिस वातावरण में हम रहते हैं, उसमें उजाला कम और अँधेरा अधिक रहता है। ज्ञान सीमित है, अज्ञान असीम है। जानते तो हम इतना भर हैं कि धन कैसे बटोरा और लुटाया जाता है। उसे भी सही रीति से उगाने और उपयोग करने की जानकारी हमें कहाँ है ? यही कारण है कि लोग बहुत कमाने पर भी दरिद्रता से घिरे रहते हैं। जो है उसके बदले दुर्व्यसन और दुर्भाग्य खरीदते हैं। हमारी जानकारी क्या खायें और किस प्रकार खायें ? इतनी भी नहीं है और यह तो बहुत ही कम लोग जानते हैं कि उपलब्ध जिन्दगी को किस प्रकार जिया जाना चाहिए। आश्चर्य इसी बात का है कि इतनी आवश्यक जानकारियों को उपेक्षित रखने और उनसे वंचित रहने पर भी लोग जी किस तरह लेते हैं।

ज्ञान एक प्रकाश है, जिसकी छत्रछाया में हम समीपवर्ती वस्तुओं के सम्बन्ध में यथार्थता से अवगत होते और उनका सही उपयोग कर सकने की स्थिति में होते हैं। सद्ज्ञान इसी को कहते हैं। आवश्यक नहीं कि इस सम्पदा को अपने अनुभव, चिन्तन और मंथन में ही उपार्जित किया जाय। महामानवों द्वारा इतनी मात्रा में छोड़ा गया है कि उसे बँटोरने भर से काम चल सकता है। इसी प्रक्रिया को सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय कहते हैं। उसकी उपयोगिता आजीविका उपार्जन से किसी भी प्रकार कम नहीं है।

कन्फ्यूशस का कथन है—रातभर प्रार्थना करने की अपेक्षा एक घण्टे का सद्ज्ञान संग्रह अधिक अच्छा है। शहीद के समक्ष विचार की कलम और स्याही कम पवित्र नहीं है। दूसरों की कठिनाइयों को हल्की करने के लिए उनके लिए साधन जुटाना ही उदारता नहीं है वरन् यह भी है कि उन्हें उलझाने का कारण और समाधान बताकर आज और भविष्य में अपने बलबूते त्राण पाने का रास्ता बताया जाय।

ज्ञान की उपासना मानवता की सेवा है। इसके लिए स्वाध्याय का आश्रय लेना अनिवार्य है। किन्तु होना यह स्वाध्याय ऐसे ग्रन्थों का चाहिए, जो हमें यथार्थता के समीप पहुँचा सकें और प्रामाणित व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत किया गया हो।

एक स्पेनिश पत्रकार ने एक बार महात्मा गाँधी से प्रश्न किया—"आप अब जिस रूप में हैं, वह बनने की प्रेरणा कहाँ से मिली ?" गाँधीजी ने बताया—भगवान श्रीकृष्ण, महापुरुष ईसा, दार्शनिक रस्किन और सन्त टॉलस्टॉय से।

पत्रकार अचम्भे में आ गया। उसने अनुभव किया—इनमें से कोई भी तो गाँधीजी के समय में नहीं रहा पर फिर उनसे प्रेरणा वाली बात वह कैसे कहते हैं। उसने अपनी आशंका व्यक्त की, इस पर गाँधीजी बोले—"महापुरुष सदैव बने नहीं रहते यह ठीक है। समय के साथ उनको भी जाना पड़ता है किन्तु विचारों, पुस्तकों के रूप में उनकी आत्मा इस धरती पर चिरकाल तक बनी रहती है; जिन्हें लोग कागज के निर्जीव पन्ने समझते हैं, उनका आत्मा उन्हीं में लिपटा हुआ रहता है, उनमें जब तक जीवित रहे लोगों को दीक्षित करने, संस्कारवान बनाने और जीवनपथ पर अग्रसर होने के लिये शक्ति, प्रकाश और प्रेरणायें देने की सामर्थ्य बनी रहती है। मुझे भी इसी प्रकार उनसे प्रकाश मिला है।"

"गीता के प्रतिपादन किसी भी शंकाशील, व्यक्ति का सही मार्गदर्शन कर सकते हैं। संसार में रहकर कर्म करते हुये भी किस तरह विरक्त और योगी रहा जा सकता है, यह बातें मुझे 'गीता' ने पढ़ाईं। इस तरह मैं भगवान कृष्ण से दीक्षित हुआ। दलित वर्ग से प्रेम व उनके उद्धार की प्रेरणा मुझे 'बाइबिल' से मिली, इस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तरह मैं महापुरुष ईसा का अनुयायी बना। युवा अवस्था में ही मेरे विचारों में प्रौढ़ता, कर्म में प्रखरता तथा आशापूर्ण जीवन जीने का प्रकाश—'अन टु दिस लास्ट' से मिला। इस तरह रस्किन मेरे गुरु हुये और बाह्य सुखों, संग्रह और आकर्षणों से किस तरह बचा जा सकता है यह विद्या मैंने 'दि किंगडम ऑफ गाड विदइन यू' से पाई। इस तरह मैं महात्मा टालस्टॉय का शिष्य हूँ। सशक्त विचारों की मूर्तिमान प्राणपुंज इन पुस्तकों के सान्निध्य में नहीं आया होता, तो अब मैं जिस रूप में हूँ, उस तक पहुँचने वाली सीढ़ी से मैं उसी तरह वंचित रहा होता, जिस तरह स्वाध्याय और महापुरुषों के सान्निध्य में न आने वाला कोई भी व्यक्ति वंचित रह जाता है।''

स्वाध्याय वस्तुतः आत्मोन्नति का ऐसा ही साधन है। **'स्वाध्यायात् मा प्रमदः'** ''विद्याध्ययन से, स्वाध्याय से कभी भी प्रमाद नहीं करना''—ऋषियों की इस शिक्षा में यही तथ्य सन्निहित है कि व्यक्ति के आत्मिक परिमार्जन की प्रक्रिया उसी से सम्पन्न होती है। दीन-हीन जीवन को ऊँचा उठाने की शक्ति उसी से मिलती है, इतिहास साक्षी है कि संसार में जितने भी सफल व्यक्ति और महापुरुष हुये हैं, उनको आगे ले जाने वाला यान किसी न किसी पुस्तक की प्रेरणा के रूप में ही मिला है।

पाश्चात्य देशों में लोग—पुनर्जन्म का सिद्धान्त नहीं मानते—किन्तु स्टालिन के बारे में किसी समय समस्त योरोप यह कहा करता था कि उसमें 'मार्क्स' की आत्मा का पुनर्जन्म हुआ है। बात कुछ भी रही हो पर इतना सुनिश्चित है कि मार्क्स और स्टालिन—दो शरीर अवश्य थे किन्तु स्टालिन के मस्तिष्क में विचार पूरी तरह मार्क्स के थे। स्टालिन तब कुल १५ वर्ष के बालक थे। एक दिन उनके हाथ मार्क्स की 'कैपिटल' पड़ गई। स्टालिन इस पुस्तक से इतना अधिक प्रभावित हुये कि उस नन्हीं-सी आयु में ही मार्क्सवादियों के गुप्त संगठन के सदस्य बन गये थे। कार्ल मार्क्स के पके-पकाये विचारों की खुराक ने ही उन्हें यह प्रौढ़ता प्रदान की कि वह कम उम्र में ही संगठन में छा गये और कुछ ही समय में उसका संचालन तक उन्हीं के हाथ आ पड़ा था। स्वाध्याय से मनुष्य का विचार-बल उसी तरह पोषण पाता है, जिस तरह खेतों की उर्वरता बढ़ाने के लिए नहरों से लिया गया जल। यह सौभाग्य हर किसी के लिये सुलभ है, हर तरह की दिशायें भी समुपलब्ध रहती हैं, मनुष्य जिस किसी भी दिशा में आगे बढ़ना चाहे उसे उसी तरह का प्रशिक्षण और मार्गदर्शन घर बैठे मिल सकता है।

पेरिस के 'लूव लला संग्रहालय' में एक पाण्डुलिपि नैपोलियन के हाथ की लिखी हुई रखी है। यह लगभग दो सौ विभिन्न पुस्तकों की सूची है, जिन्हें नैपोलियन बोनापार्ट ने किसी समय अपने स्वाध्याय के लिये चुना और मँगाया था। इन पुस्तकों में वीरतापूर्ण इतिहास, युद्ध विद्या ही नहीं मानवीय जीवन की समस्याओं पर लिखे गये महापुरुषों के निबन्ध और उपन्यास भी सम्मिलित थे। नैपोलियन जैसे तानाशाह का यह पुस्तक प्रेम अन्यथा नहीं था, यदि उसने अपनी यह अभिरुचि विकसित न की होती तो २३ वर्ष की आयु में ही 'ब्रिगेडियर जनरल' के पद तक पहुँचने की योग्यता, क्षमता और विचार-बल उसे नहीं मिल सका होता। पुस्तकें ज्ञान और अनुभव का वह सार होती हैं, जो दूसरे लोग कंटकाकीर्ण मार्ग पर चलकर प्राप्त करते हैं और अपने पीछे की पीढ़ी के लिए सरल-सुबोध और निर्विघ्न राजपथ के रूप में छोड़ जाते हैं। जिनमें चलकर कोई भी व्यक्ति सुविधापूर्वक, सुरक्षापूर्वक इच्छित लक्ष्य तक जा पहुँचता है।

पं. जवाहरलाल नेहरू एक सम्पन्न परिवार के विलासप्रिय नवयुवक थे, यह बात अलग थी कि वे क्या पढ़ते थे ? किन्तु निरन्तर पढ़ने का पैतृक गुण उन्हें पिता श्री मोतीलाल नेहरू से मिला था। वे कहा करते थे एकान्त की सर्वोत्तम मित्र पुस्तकें ही हो सकती हैं। उनसे जितनी शान्ति मिलती है उतना ही विचारों को पोषण और आत्मा को बल। यह बात उनके जीवन से ही चरितार्थ होती है। जिन दिनों वे कैम्ब्रिज में पढ़ते थे, उनके हाथ टाउनऐंड मेरी डिथ की सुप्रसिद्ध पुस्तक 'एशिया एण्ड योरोप' हाथ लग गई। अब तक जवाहर-लाल नेहरू ने कभी राजनीति का विचार तक नहीं किया था। किन्तु इस पुस्तक ने एकाएक उनके जीवन की धारा को बदल दिया और वे राजनीति में रुचि लेने लगे। मेरी डिथ एक तरह से उन्हें अँगुली पकड़कर आगे बढ़ाते रहे और उसी मार्गदर्शन का यह प्रतिफल था कि पं. जवाहर लाल नेहरू न केवल भारत, एशिया अपितु समूचे विश्व के गण्यमान्य राजनेताओं की सूची में जा बैठे। इस पुस्तक को पढ़ने के बाद से ही उनकी इतिहास और राजनीति की रुचि गहराती गई और उन्होंने भारत, एशिया और विश्व इतिहास का गहनतम स्वाध्याय किया और इस तरह संसार के सफल सम्राटों, राजनयिज्ञों की सूझ-बूझ, चिन्तन, निष्कर्ष, अनुभव उन्हें एक सम्पन्न खजाने के रूप में मिलते गये, जिससे उनकी राजनैतिक प्रतिभा निखर उठी। विन्सेट स्मिथ, मार्शल प्लेटो, मैक्समूलर, मैकडोनल तथा सुकरात में से जिस किसी को ढूँढ़ना हो अपने विचारों के रूप में, सिद्धान्तों के रूप में सबके सब जवाहरलाल नेहरू में मिल सकते थे।

जॉर्ज बर्नार्डशा को 'शा' बनाने का श्रेय भी पुस्तकों को ही है। उनकी माँ ने जब वे ९ वर्ष के थे तभी स्वाध्याय की अभिरुचि उत्पन्न कर दी थी। 'शा' के पिता अक्सर कहा करते थे—बच्चे को खेलने-कूदने भी दिया करो तो माँ कहती-पुस्तकों में सिनेमा, खेल-कूद, यात्रा-भ्रमण, इतिहास, दर्शन आदि सभी कुछ है और वह भी है जो बच्चे की विचार शक्ति के लिए ईंधन का कार्य करेगा। उसकी विचार-ऊष्मा को निरन्तर प्रज्ज्वलित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रखेगा। ७ वर्ष से ९ वर्ष तक वे पहले ही बाइबिल पढ़ चुके थे, जिससे उनका मन आध्यात्मिक भावनाओं में संस्कारित हो चुका था। अब उन्हें शेक्सपियर बनियन तथा 'दि अरेबियन नाइट्स' आदि को पढ़ने का अवसर मिला। डिकिन्स, उमस बायरिन, टिंडल जॉन स्टुअर्ट मिल तथा शैले साहित्य का १२ वर्ष की आयु तक पूर्ण अध्ययन कर लिया। एक-दूसरे के विरोधी विचार पढ़ने से न केवल उनकी तार्किक शक्ति, बौद्धिक पैनापन उभरा अपितु चिन्तन के नये आयामों का उदय हुआ। जिसके मस्तिष्क में दो विचार हों, उनसे वह अधिक से अधिक चार बन सकता है किन्तु हजार विचारों वाले के लिये लाख चिन्तन भी कम हैं। यह शक्ति मात्र स्वाध्याय से उभरती है—शा में उभरी। स्वाध्याय को जीवन का प्राण मानने के कारण ही उन्होंने जीवन के अन्तिम क्षणों तक पढ़ने का क्रम बराबर बनाये रखा और चाहे सब कुछ छोड़ दिया हो। यही स्थिति पाश्चात्य विचारक जॉन स्टुअर्ट मिल की भी थी। विचार भले ही भौतिक दिशाओं में बढ़ गये हों किन्तु उनके साहित्य में उनकी बौद्धिक प्रखरता बराबर झाँकती मिलती है, यह भी 'लाइफ ऑफ टरगट' के रचयिता कंडोर-ऐट तथा झिलिप क्रुक ड्रेक प्रेडरिक आदि के मकदूनिया की देन थी।

चार्ल्स डार्विन जिन्हें विकासवाद सिद्धान्त का जनक कहा जाता है, पुस्तकों के अनन्य भक्त और प्रेमी थे। ह्वाइट की सेलबोर्न हेनरी तथा पार्क की 'केमिकल कैरसिज्म' तथा 'वान्डर्स ऑफ दि वर्ल्ड' ने उन्हें अत्यधिक प्रभावित किया था। इन्हीं पुस्तकों के स्वाध्याय ने ही उनके मस्तिष्क में इस नये दर्शन की पृष्ठभूमि विनिर्मित की थी।

माइकेल फैराडे, मार्कोनी गैलेसियस, हम्फी डैवी हों या भारतीय इतिहास के नक्षत्र सुभाष, शास्त्री, राधाकृष्णन और सरदार बल्लभभाई पटेल सबने जीवन में जो कुछ पाया, वह सब उनकी स्वाध्याय-सुरुचि का वरदान था। जिसने उनकी प्रसुप्त क्षमताओं को अनेक गुना सक्रिय बना दिया। विचार की सत्ता हर व्यक्ति में होती है, स्वाध्याय उसे पैना कर उपयोगी बना देता है। जिनकी पढ़ने में अभिरुचि नहीं होती, यह कहना चाहिये कि उनके विचारों को खाद, पानी नहीं मिलता और वे फलने-फूलने की अपेक्षा मुरझाकर नष्ट हो जाते हैं। निराशायें, चिन्तायें, उद्विग्नतायें और व्याधियाँ ऐसे ही लोगों को घेरती हैं। स्वाध्यायशील तो आपदाओं में हँसी-खुशी और प्रसन्नता का जीवन ली लेते हैं।

स्वाध्याय—जीवन विकास की अनिवार्य आवश्यकता

बहुत बार हममें से अनेक लोग किसी को धारा-प्रवाह बोलते एवं भाषण देते देखकर मन्त्रकीलित जैसे हो जाते हैं और वक्ता के ज्ञान एवं उनकी प्रतिभा की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगते हैं और कभी-कभी यह भी मान लेते हैं कि इस व्यक्ति पर माता सरस्वती की प्रत्यक्ष कृपा है। इसके अन्तर्पट खुले हुये हैं, तभी तो ज्ञान का अविरल स्रोत इसके शब्दों में मुख के द्वारा बाहर बहता चला आ रहा है।

बात भी सही है, श्रोताओं का इस प्रकार आश्चर्य विभोर हो जाना अस्वाभाविक भी नहीं है। सफल वक्ता अथवा समर्थ प्राध्यापक जिस विषय को लेते हैं, उस पर घण्टों एक बार बोलते चले जाते हैं और यह प्रमाणित कर देते हैं कि उनको उस विषय का सांगोपांग ज्ञान है और उनकी सारी विद्या जिह्वा के अग्रभाग पर रखी हुई है। यह बात लगती तो वास्तव में एक चमत्कार है, एक सिद्धि जैसी। जबकि वह कोई मान्त्रिक सिद्धि नहीं होती है। वह सारा चमत्कार उनके उस स्वाध्याय का सुफल होता है, जिसे वे किसी दिन भी किसी अवस्था में नहीं छोड़ते। उनके जीवन में कदाचित ही कोई अभागा दिन जाता हो, जिसमें वे मनोयोगपूर्वक घण्टे दो घण्टे स्वाध्याय न करते हों। स्वाध्याय उनके जीवन का एक अंग और प्रतिदिन की एक आवश्यकता बन जाता है। जिस दिन वे अपनी इस आवश्यकता की पूर्ति नहीं कर पाते, उस दिन वे अपने तन-मन और आत्मा में एक भूख, एक रिक्तता का अनुभव किया करते हैं। उस दिन को वे जीवन का एक मनहूस दिन मानते और उस मनहूस दिन को कभी भी अपने जीवन में आने का अवसर नहीं देते।

यही तो वह अबाध तप है, जिसका ज्ञान मुखरता के रूप में वक्ताओं एवं विद्वानों की जिह्वा पर सरस्वती के वास के विश्वास उत्पन्न करा देता है। चौबीसों घण्टे सरस्वती की उपासना में लगे रहिये, जीवन भर ब्राह्मी मन्त्र एवं ब्राह्मी बूटी का सेवन करते रहिये, किन्तु स्वाध्याय किसी दिन भी न करिये और देखिये कि सरस्वती की सिद्धि तो दूर पास की पढ़ी हुई विद्या विलुप्त हो जायेगी। सरस्वती स्वाध्याय का अनुगमन करती है, इस सत्य का सम्मान करता हुआ जो साधक उसकी उपासना करता है, वह अवश्य उसकी कृपा का भागी बन जाता है।

नित्य ही तो न्यायालयों में देखा जा सकता है कि कोई एक वकील तो धारावाहिक रूप में बोलता और नियमों की व्याख्या करता जाता है और कोई टटोल कर भूलता, याद करता हुआ-सा कुछ थोड़ा-बहुत बोल पाता है। दोनों वकीलों ने एक समान ही कानून की परीक्षा पास की, उनके अध्ययन का समय भी बराबर रहा, पैसा और परिश्रम भी परीक्षा पास करने में लगभग एक-सा ही लगाया और न्यायालयों में पक्ष प्रतिपादन का अधिकार भी समान रूप से ही मिला है—तब यह ध्यानाकर्षक अन्तर क्यों ? इस अन्तर का अन्य कोई कारण नहीं, एक ही कारण है और वह है—स्वाध्याय। जो वकील धारावाहिक रूप में बोलकर न्यायालय का वायुमण्डल प्रभावित कर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने पक्ष का समर्थन जीत लेता है—वह निश्चय ही, बिना नागा घण्टों स्वाध्याय का व्रती होगा। इसके विपरीत जो वकील अविश्वासपूर्वक विशृंखल प्रतिपादन करता हुआ दिखलाई दे, विश्वास कर लेना चाहिए कि यह स्वाध्यायशील नहीं है। यों ही अपनी पिछली योग्यता, स्मृति के आधार पर पक्ष प्रतिपादन का असफल प्रयत्न कर रहा है। इस प्रकार स्वाध्यायशील वकील अथवा प्रोफेसर अपने काम में सफल नहीं हो पाते और प्रगति की दौड़ में पीछे पड़े हुये घिसटते रहते हैं। उनको अपने पेशे में कोई अभिरुचि नहीं रहती और शीघ्र ही वे उसे छोड़कर भाग जाने की सोचने लगते हैं।

ऐसे असफल न जाने कितने वकील एवं प्रोफेसर देखने को मिल सकते हैं, जो स्वाध्यायहीनता के दोष के कारण अपना-अपना स्थान छोड़कर छोटी-मोटी नौकरी में चले गये हैं। ऐसे विशाल एवं सम्मानित क्षेत्र से अपने अवांछनीय दोष के कारण भाग खड़ा होना, मनुष्य के लिए बड़ी लज्जास्पद असफलता है।

इतना ही नहीं वर्षों पुराने, अनुभवी और मजबूती से जमे हुये अनेक वकील प्रमाद के कारण नये-नये आये हुए वकीलों द्वारा उखाड़ फेंके देखे जा सकते हैं। पुराने लोग अपने विगत स्वाध्याय, जमी प्रेक्टिस, प्रमाणित प्रतिभा और लम्बे अनुभव के अभिमान में आकर यह सोचकर दैनिक स्वाध्याय में प्रमाद करने लगते हैं कि हम तो इस क्षेत्र के महारथी हैं, इस विषय के सर्वज्ञ हैं, कोई दूसरा हमारे सामने खड़े होने का साहस ही नहीं कर सकता। किन्तु नया आया हुआ वकील नियमपूर्वक अपने विषय का अनुदैनिक स्वाध्याय करता और ज्ञान को व्यापक बनाता और माँजता रहता है। प्रमाद एवं परिश्रम का जो परिणाम होना है, वह दोनों के सामने उसी रूप में आता है। निदान पुराना वकील पीछे पड़ जाता है और नया आगे निकल जाता है।

एक वकालत में ही नहीं किसी भी विषय अथवा क्षेत्र में अध्ययनशीलता एवं अध्ययनहीनता का परिणाम एक जैसा ही होता है। इसमें चिर, नवीन अवस्था का कोई आक्षेप नहीं होता। यह एक वैज्ञानिक सत्य है, जिसमें अपवाद के लिए कोई गुंजाइश नहीं है।

धार्मिक अथवा आध्यात्मिक क्षेत्र ले लीजिये, कोई अमुक नित्य चार-चार बार पूजा करता, तीन-तीन घण्टे आसन लगाता, जाप करता अथवा कीर्तन में निमग्न रहता। व्रत-उपवास रखता, दान-दक्षिणा देता है, किन्तु शास्त्रों अथवा सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय, उनके विचारों का चिन्तन-मनन नहीं करता। सोच लेता है जब मैं इतना क्रिया-काण्ड करता हूँ तो इसके बाद अध्ययन की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। आत्मज्ञान अथवा परमात्म-अनुभूति करा देने के लिए इतना ही पर्याप्त है, तो निश्चय ही यह भ्रम में है। आत्मा का क्षेत्र वैचारिक क्षेत्र है। सूक्ष्म भावनाओं एवं मनन-चिन्तन का क्षेत्र है।

अध्ययन के अभाव में इस आत्मजगत में गति कठिन है। आत्मा के स्वरूप का ज्ञान अथवा परमात्मा के अस्तित्व का परिचय प्राप्त हुए बिना उनसे सम्पर्क किस प्रकार स्थापित किया जा सकता है ? इस अविगत का ज्ञान तो उन महान मनीषियों का अनुभव-अध्ययन करने से ही प्राप्त हो सकना सम्भव है, जो अवतार रूप में संसार को वेदों का ज्ञान देने के लिए परमात्मा का प्रतिनिधित्व करते रहते हैं। आसन-ध्यान, पूजा-पाठ तो प्रधान रूप से बुद्धि को परिष्कृत और आचरण को उज्ज्वल बनाने के लिए, इस हेतु करना आवश्यक है कि अध्यात्म के वैदिक तत्त्व को समझने और ग्रहण करने की क्षमता प्राप्त हो सके। इसके विपरीत यदि एक बार पूजा-पाठ को स्थगित भी रखा जाये और एकाग्रता एवं आस्थापूर्वक स्वाध्याय और उसका चिन्तन-मनन भी किया जाए, तो बहुत कुछ उसी दिशा में बढ़ा जा सकता है। स्वाध्याय स्वयं ही एक तप, आसन और साधना के समान है। इसका नियम निर्वाह करने से आप ही आप अनेक नियम, संयमों का अभ्यास हो जाता है।

स्वाध्याय में मनुष्य का अन्तःकरण निर्मल कर देने और उसके अन्तर्पट खोलने की सहज ही क्षमता विद्यमान है। आन्तरिक उद्घाटन हो जाने से मनुष्य स्वयं ही आत्मा अथवा परमात्मा के प्रति जिज्ञासु हो उठता है। उसकी चेतना ऊर्ध्वमुखी होकर उसी ओर को उड़ने के लिए पर तौलने लगती है। उच्च आध्यात्मिक अनुभूतियों का प्रस्फुटन स्वाध्याय के द्वारा ही हुआ करता है। स्वाध्याय निःसन्देह एक ऐसा अमृत है, जो मानस में प्रवेश कर मनुष्य की पाशविक प्रवृत्तियों को नष्ट कर देता है।

चारित्रिक उज्ज्वलता स्वाध्याय का एक साधारण और मनोवैज्ञानिक फल है। सद्ग्रन्थों में सन्निहित साधुवाणियों का निरन्तर अध्ययन एवं मनन करते रहने से मन पर संस्कारों की स्थापना होती है, जिससे चित्त आपसे आप दुष्कृत्यों की ओर से फिर जाता है। स्वाध्यायी व्यक्ति पर कुसंग का भी प्रभाव नहीं पड़ने पाता, इसका भी एक वैज्ञानिक कारण है। जिसकी स्वाध्याय में रुचि है और जो उसको जीवन का एक ध्येय मानता है, वह आवश्यकताओं से निवृत होकर अपना सारा समय स्वाध्याय में ही तो लगाता है। इसलिए उसके पास कोई फालतू समय ही नहीं रहता, जिसमें वह जाकर इधर-उधर यायावरी करेगा और दूषित वातावरण से अवांछनीय तत्त्व ग्रहण कर लायेगा।

इसी प्रकार 'रुचि-साम्य-सम्पर्क' के सिद्धान्त के अनुसार भी यदि उसके पास कोई आवेगा, तो प्रायः उसी रुचि का होगा और उन दोनों को एक सामयिक सत्संग का लाभ होगा। रुचि वैषम्य रखने वाला स्वाध्यायशील के पास जाने का कोई प्रयोजन अथवा साहस ही न रखेगा और यदि असंयोगवश ऐसे कोई व्यक्ति आ भी जाते हैं, तो उनके पास का वातावरण अपने अनुकूल न पाकर, देर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तक ठहर ही न पायेंगे। निदान संगतिजन्य आचरण दोषों का स्वाध्यायशील के पास कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

आत्मोन्नति के सम्बन्ध में विपरीत वृत्तियाँ आलस्य, प्रमाद अथवा असंयम आदि स्वाध्यायशील व्यक्ति के निकट नहीं जाने पातीं। इसका भी एक वैज्ञानिक हेतु ही है, कोई सुरक्षा कवच का प्रभाव नहीं है। जिसे पढ़ना है और नित्य नियम से जीवन का ध्येय समझकर पढ़ना है, वह तो हर अवस्था में अपने उस व्रत का पालन करेगा ही। वह जानता है, अव्यवस्था अथवा अनियमितता उसके इस रुचिपूर्ण व्रत में बाधक होगी। अस्तु, वह जीवन की एक सुनिश्चित दिनचर्या बनाकर चलता है। उसका सोना-जागना, खाना-पीना, टहलना-घूमना और कारबार करने के साथ-साथ पढ़ने-लिखने का कार्यक्रम व्यवस्थित रूप में बड़े अच्छे ढंग से चला करता है। जिसने जीवन के क्षणों को इस प्रकार उपयोगितापूर्वक नियमबद्ध कर दिया है, उसका तो एक-एक क्षण तपस्या का ही समय माना जायेगा। जिसने जीवन में व्यवस्था एवं नियमबद्धता का अभ्यास कर लिया, उसने मानो अपने आत्म-लक्ष्य के लिए एक सुन्दर नसैनी तैयार कर ली है, जिसके द्वारा वह सहज ही में ध्येय तक जा पहुँचेगा।

अनुभव सिद्धि विद्वानों ने स्वाध्याय को मनुष्य का पथ-प्रदर्शक नेता और मित्र जैसा हितैषी बताया है। उनका कहना है कि जो व्यक्ति सत्पथ-प्रदर्शक अपने सच्चे सखा स्वाध्याय का परित्याग कर देता है, उसका नाड़ी आदि इन्द्रियों पर अधिकार नहीं रहता। उसका मन चंचल, विवेक मन्द और बुद्धि कुण्ठित रहती है। इन सब दोषों के कारण उसे दुःखों का भागी बनना पड़ता है। इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति वही है, जो अपने सच्चे मित्र स्वाध्याय को कभी नहीं छोड़ता। इसीलिए तो गुरुकुल से अध्ययन पूरा करने के बाद विदा लेते समय गुरु, शिष्य को यही अन्तिम उपदेश दिया करता था—

'स्वाध्यायात् मा प्रमदः'

अर्थात—''हे प्यारे शिष्य ! अपने भावी जीवन में स्वाध्याय द्वारा योग्यता बढ़ाने में प्रमाद मत करना।''

स्वाध्याय से जहाँ संचित ज्ञान सुरक्षित तो रहता ही है, साथ ही उस ज्ञानकोश में नवीनता और वृद्धि भी होती रहती है। वहाँ स्वाध्याय से विरत हो जाने वाला नई पूँजी पाना तो क्या गाँठ की विद्या भी खो देता है।

स्वाध्याय जीवन विकास के लिए एक अनिवार्य आवश्यकता है, जिसे हर व्यक्ति को पूरा करना चाहिये। अनेक लोग परिस्थितियोंवश अथवा प्रारम्भिक प्रमादवश पढ़-लिख नहीं पाते और जब उन्हें शिक्षा और स्वाध्याय के महत्त्व का ज्ञान होता है, तब हाथ मल-मलकर पछताते हैं।

किन्तु इसमें पछताने की बात होते हुए भी अधिक चिन्ता की बात नहीं है। ऐसे लोग जो स्वयं पढ़-लिख नहीं सकते, उन्हें विद्वानों का सत्संग करके और दूसरों द्वारा सद्ग्रन्थों को पढ़वाकर सुनने अथवा उनके प्रवचन का लाभ उठाकर अपनी इस कमी की पूर्ति करते रहना चाहिये। जिनके घर पढ़े-लिखे बेटी-बेटे अथवा नाती-पोते हों, उन्हें चाहिये कि सन्ध्या समय उनको अपने पास बिठालकर सद्ग्रन्थों का पाठ करायें।

इस प्रकार उसका स्वयं तो लाभ होगा ही, बच्चों को भी सद्ग्रन्थों का अध्ययन करने का अभ्यास हो जायेगा। जहाँ चाह, वहाँ राह—के सिद्धान्त के अनुसार यदि स्वाध्याय में रुचि और उसके महत्त्व को हृदयंगम कर लिया गया है, तो शिक्षा अथवा अशिक्षा का कोई व्यवधान नहीं आता, स्वाध्याय के ध्येय को अनेक तरह पूरा किया ही जा सकता है।

महान दार्शनिकों, अन्वेषी सिद्ध तपस्वियों और श्रेष्ठ महापुरुषों के प्रचण्ड परिश्रम से उपार्जित-उपलब्ध अमूल्य रत्न-राशि का सहजता से हाथ लग जाना कितना बड़ा सौभाग्य है, यह उनके ही जीवन से जाना जा सकता है, जिन्होंने इस सौभाग्य को पाने का अवसर गँवाया नहीं है। इतने अनुभवपूर्ण ज्ञान को इतनी सुगमता से पा सकना सचमुच मनुष्य के लिए कितना श्रेष्ठ अनुदान है।

व्यक्तित्व के उत्कर्ष के लिए प्रत्यक्ष प्रेरणा ही प्रभावी सिद्ध होती है। ऐसी प्रेरणा पाना ही सत्संग का लाभ उठाना कहा गया है। व्यक्तियों का सत्संग वैसे भी दुर्लभ ही है। सामान्यतः जो लोग कुछ आगे बढ़े-चढ़े होते भी हैं, उनसे जितना सद्ज्ञान मिलता है, उससे अधिक भ्रान्तियों का अम्बार मिलता है। जबकि उत्तम पुस्तकों के रूप में हमें उत्कृष्ट मनीषा का सान्निध्य सहज उपलब्ध हो जाता है।

एस. डब्ल्यू. क्लेमेन्स के एक प्रश्न के उत्तर में गाँधीजी ने १९२० में एक बार कहा था कि जिन पुस्तकों ने मेरे जीवन और चिन्तन को रूप दिया, वे हैं—'भगवद्गीता,' 'बाइबिल,' रस्किन की 'अन टु दिस लास्ट' तथा टालस्टाय की 'द किंगडम ऑफ गॉड इज विदिन यू'। उनके सचिव महादेव भाई देसाई का कहना है कि ''गाँधीजी के जीवन का प्रत्येक क्षण गीता के सन्देश के अनुरूप जीवनयापन का सजग प्रयत्न है।'' गाँधी के सविनय अवज्ञा पर थोरो की कृतियों का प्रभाव रहा है। उन्होंने लिखा है, ''थोरो की पुस्तक 'वाल्डेन' मैंने पहली बार १९०६ में दक्षिण-अफ्रीका के जोहान्सवर्ग में पढ़ी। थोरो ने सविनय अवज्ञा के विचार का आविष्कार एवं व्यवहार दोनों ही किये थे। कान्कर्ड ने मैसासुचेट्स में अमेरिकन सरकार के प्रति अपना विरोध व्यक्त करने के लिए कर देने से इन्कार किया था। जेल भी गये थे। थोरो का निबन्ध पढ़ने के पहले मुझे अपने भारतीय शब्द 'सत्याग्रह' के लिये कोई उपयुक्त अँग्रेजी अनुवाद नहीं मिल सका था। थोरो के विचारों ने भारत में मेरे आन्दोलन को निश्चय ही पर्याप्त प्रभावित किया है।''

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रस्किन के 'अन टु दिस लास्ट' ने भी गाँधीजी को अभिभूत कर लिया। बाद में उन्होंने 'सर्वोदय' नाम से इस कृति का गुजराती अनुवाद भी प्रस्तुत किया। उनकी गहनतम आस्थाएँ इसी पुस्तक को पढ़ते हुये जाग्रत हुईं। इसी प्रकार गीता को वे अपना आध्यात्मिक सन्दर्भ ग्रन्थ मानते थे तथा संशय के किसी भी अवसर पर उसी प्रकाश-स्रोत ग्रन्थ की शरण जाते एवं मार्गदर्शन प्राप्त करते थे। वे उसे अपनी माँ कहते थे।

जॉर्ज वाशिंगटन के मन में स्वतन्त्रता की अमर आग पुस्तकों ने ही लगाई थी। रोम्यां रोलाँ के उपन्यास 'जां क्रिस्तोफ' ने हजारों लोगों में नई जीवन-दृष्टि जगाई। मेरी स्टो की पुस्तक 'टाम काका की कुटिया' ने अमरीका एवं पाश्चात्य जगत में हलचल मचा दी थी, तो गोर्की की 'माँ' ने रूस को हिला दिया था।

हीगेल के दर्शन के अध्ययन ने मार्क्स को अपनी जीवन-दृष्टि के निर्धारण के लिए प्रचुर सामग्री दी तथा एडमस्मिथ, डेविड रिकार्डो आदि अर्थशास्त्रियों की कृतियों ने अर्थशास्त्रीय दृष्टि दी। इस मेधावी सिद्धान्तकार के जीवन में सदैव पुस्तकों का अत्यधिक महत्त्व रहा और जीवन के बहुमूल्य वर्ष उसने गम्भीर अध्ययन में बिताये। लेनिन को रूसी समाजवादी क्रान्ति की प्रेरणा मार्क्स एंगेल्स की प्रभावी रचनाओं से ही मिली। इस प्रकार अमरीका और रूस दोनों के स्वतन्त्रता संग्राम में पुस्तकों की विशेष भूमिका रही। अफ्रीकी देशों में जो जाग्रति दिखाई पड़ रही है, उसमें भी पुस्तकों की प्रेरणाएँ अन्तर्निहित हैं। केनेथ काउण्डा, जोमो केन्याता, मकारियोस सभी ने किसी प्रत्यक्ष सत्संग से नहीं, प्रेरक पुस्तकों से ही संघर्ष की प्रेरणाएँ पाईं।

माओत्सेतुंग को मार्क्स की ही नहीं, सनयातसेन की भी पुस्तकों ने प्रभावित किया। होचीमिन्ह और चेम्बेवारा मार्क्सवादी साहित्य के अध्येता भी थे, प्रणेता भी।

भारतीय क्रान्तिकारियों के जीवन में बंकिम के 'आनन्दमठ,' शरत् के 'पथेरदावी' और लोकमान्य तिलक के 'गीता-रहस्य' की विशिष्ट भूमिका रही है। विवेकानन्द और अरविन्द की कृतियों ने अनेक अभिनव राष्ट्रीय, सांस्कृतिक एवं सामाजिक गतिविधियों को शक्ति दी। जबकि खुद विवेकानन्द और अरविन्द ने वेद, उपनिषद एवं भारतीय शास्त्रों तथा पाश्चात्य दार्शनिक ग्रन्थों का गम्भीर अध्ययन किया था।

. दार्शनिक एमर्सन कहा करते थे कि पुस्तकों से प्रेम ईश्वर के राज्य में पहुँचने का विमान है। सिसरो के अनुसार ''अच्छी पुस्तकों को घर में संचित-संग्रहीत करना घर को देव-मन्दिर बनाना है।''

कैम्पिस ने एक बार अपने साथियों से कहा था—''अपना कोट बेचकर भी अच्छी पुस्तकें खरीदो। कोट के बिना जाड़ों में शरीर को कष्ट होगा। किन्तु पुस्तकों के बिना तो आत्मा ही भूखी तड़पती रहेगी।''

पुश्किन, टॉल्सटाय, तुर्गनेव, चेखव और गोर्की की पुस्तकों ने जितना रूसी जन-मन को आन्दोलित-स्पन्दित किया है, उससे कुछ कम बाहरी विश्व को नहीं। उपनिषदों का सन्देश दुनिया भर के तत्त्वान्वेषियों को नई अन्तर्दृष्टि तथा अभिनव चेतना से भरता रहा है। शेक्सपियर का प्रभाव क्षेत्र इंग्लैण्ड की सीमाओं से हजार गुना अधिक है। कालिदास की रचनाएँ अमरीकी, रूसी, जर्मन, फ्रेंच, ब्रिटिश, जापानी, एशियाई और अफ्रीकी—साहित्यानुरागियों को समान रूप से आकर्षित करती हैं। पातन्जलि के योगसूत्रों का प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव विश्वभर की योगाभ्यास प्रक्रियाओं में देखा जाता है। जिन्होंने गाँधी को नहीं देखा, ऐसे एशियाई, अफ्रीकी, यूरोपीय अनेक जननेताओं को गाँधी की पुस्तकें ही नई रणनीति एवं राजनीति का मार्ग दिखा रही हैं, फिर वे स्व. मार्टिन लूथर किंग हों या चेकोस्लोवाकिया के विद्रोही।

मानवीय प्रगति के प्रमुख आधारों में स्वाध्याय का विशिष्ट महत्त्व है। स्वाध्याय का अर्थ है—सद्ग्रन्थों का अध्ययन-मनन। मनोरंजन मात्र के लिए पढ़ी जाने वाली पुस्तकें आस्था के आधार नहीं प्रस्तुत कर पातीं। ज्ञान की जिज्ञासा का समाधान एवं तृप्ति प्रदान करने वाली पुस्तकों को पढ़ना, उन पर सोचना, मनन करना ही जीवन प्रगति का आधार बनता है। ऐसी पुस्तकें व्यक्ति की पथ-प्रदर्शक गुरु बनती हैं और उनके भीतर निहित क्षमताओं को उभार कर उन्हें विकसित व्यक्तित्व का स्वामी बनाती हैं।

स्वाध्याय की उपेक्षा न करें

आज मनुष्य जितनी प्रगति कर सका है, उसके महत्त्वपूर्ण आधारों में से एक बौद्धिक सम्पदा का पीढ़ी-दर-पीढ़ी संरक्षण-संवर्द्धन भी है। ज्ञान ही प्रगति की आधारशिला है। ज्ञानरहित मुष्य अन्य पशुओं की तरह ही आदिम, अनगढ़, अपरिष्कृत, प्रवृत्तियों, आवेगों से परिचालित जीवन जीता है और मानवीय गरिमा का अर्थ तक नहीं समझ पाता।

अज्ञानी व्यक्ति की सारी शक्तियाँ उसके भीतर निरुपयोगी बनी बन्द रहती हैं और शीघ्र ही कुंठित हो नष्ट हो जाती हैं। जिन शक्तियों के बल पर मनुष्य संसार में एक-से-एक ऊँचा कार्य कर सकता है, बड़े-से-बड़ा पुण्य-परमार्थ सम्पादित करके अपनी आत्मा को भव-बन्धन से मुक्त करके मुक्ति, मोक्ष जैसा परम पद प्राप्त कर सकता है, उन शक्तियों का इस प्रकार नष्ट हो जाना मानव जीवन की सबसे बड़ी क्षति है। इस क्षति का दुर्भाग्य केवल इसलिए सहन करना पड़ता है कि वह ज्ञानार्जन करने में प्रमाद करता है अथवा अज्ञान के वशीभूत धूर्तों के बहकावे में आकार सत्य-कर्म के मार्ग से भटक जाता है। मानव-जीवन को सार्थक बनाने, उसका पूरा-पूरा लाभ उठाने और आध्यात्मिक स्थिति पाने के लिए सद्ज्ञान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के प्रति जिज्ञासु होना ही चाहिए और विधिपूर्वक जिस प्रकार भी हो सके, उसकी प्राप्ति करनी चाहिए। जड़तापूर्वक जीवन जीना मृत्यु से भी बुरा है।

ज्ञान की जन्मदात्री मनुष्य की विवेक बुद्धि को ही माना गया है और उसे ही सारी शक्तियों का स्रोत कहा गया है। जो मनुष्य अपनी बुद्धि का विकास अथवा परिष्कार नहीं करता अथवा अविवेक के वशीभूत होकर बुद्धि के विपरीत आचरण करता है, वह आध्यात्मिकता के उच्चस्तर को पाना तो दूर साधारण मनुष्यता से भी गिर जाता है। उसकी प्रवृत्तियाँ अधोगामी एवं प्रतिगामिनी हो जाती हैं। वह एक जन्तु जैसा जीता हुआ उन महान सुखों से वंचित रह जाता है, जो मानवीय मूल्यों को समझने और आदर करने से मिला करते हैं। निकृष्ट एवं अधोजीवन से उठकर उच्चस्तरीय आध्यात्मिक जीवन की ओर गतिमान होने के लिये मनुष्य को अपनी विवेक-बुद्धि का विकास, पालन तथा संवर्द्धन करना चाहिए। अन्य जीव-जन्तुओं की तरह प्राकृतिक प्रेरणाओं से परिचालित होकर सारहीन जीवन बिताते रहना मानवता का अनादर है, उस परम पिता परमात्मा का विरोध है, जिसने मनुष्य को ऊर्ध्वगामी बनने के लिए आवश्यक क्षमता का अनुग्रह किया है।

आध्यात्मिक ज्ञान सिद्ध करने में बुद्धि ही आवश्यक तत्त्व है। इसके संशोधन, संवर्द्धन एवं परिमार्जन के लिए विचार को ठीक दिशा में प्रचलित करना होगा। विचार प्रक्रिया से ही बुद्धि का प्रबोधन एवं शोधन होता है। जिसके विचार अधोगामी अथवा निम्नस्तरीय होते हैं उसका बौद्धिक पतन निश्चित ही है। विचारों का पतन होते ही मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन दूषित हो जाता है। फिर वह न तो किसी मांगलिक दिशा में सोच पाता है और न उस ओर उन्मुख ही हो पाता है। अनायास ही वह गर्हित गर्त में गिरता हुआ अपने जीवन को अधिकाधिक नारकीय बनाता चला जाता है। पतित विचारों वाला व्यक्ति इतना अशक्त एवं असमर्थ हो जाता है कि अपने फिसलते पैरों को स्थिर कर सकना उसके वश की बात नहीं रहती।

ज्ञान का आध्यात्मिक जीवन प्राप्त करने का यथार्थ अर्थ विचारों को उपयुक्त दिशा में विकसित करना ही है। विचारों के अनुरूप ही मनुष्य का जीवन निर्मित होता है। यदि विचार उदात्त एवं ऊर्ध्वगामी हैं तो निश्चय ही मनुष्य निम्न परिधियों को पार करता हुआ ऊँचा उठता जायेगा और उस सुख-शान्ति का अनुभावक बनेगा, जो उस आत्मिक ऊँचाई पर स्वतः ही अभिसार किया करती है। स्वर्ग-नरक किसी अज्ञात क्षितिज पर बसी बस्तियाँ नहीं हैं। उनका निवास मनुष्य के विचारों में ही होता है। सद्विचार स्वर्ग और असद्विचार नरक का रूप धारण कर लिया करते हैं।

विचारों का विकास एवं उनकी निर्विकारिता दो बातों पर निर्भर है—सत्संग एवं स्वाध्याय। विचार बड़े ही संक्रामक, संवेदनशील तथा प्रभावग्राही होते हैं। जिस प्रकार के व्यक्तियों के संसर्ग में रहा जाता है, मनुष्य के विचार भी उसी प्रकार के बन जाते हैं, व्यवसायी व्यक्तियों के बीच रहने, उठने-बैठने, उनका सत्संग करने से विचार व्यावसायिक, दुष्ट तथा दुराचारियों की संगत करने से कुटिल और कलुषित बन जाते हैं। उसी प्रकार चरित्रवान तथा सदात्माओं का सत्संग करने से मनुष्य के विचार महान एवं सदाशयतापूर्ण बनते हैं।

किन्तु आज के युग में सन्त पुरुषों का समागम दुर्लभ है। न जाने कितने धूर्त तथा मक्कार व्यक्ति वाणी एवं वेश से महात्मा बनकर ज्ञान के जिज्ञासु भोले और भले लोगों को प्रताड़ित करते घूमते हैं। किसी को आज वाणी अथवा वेश के आधार पर विद्वान अथवा विचारवान मान लेना निरापद नहीं है। आज मन-वचन-कर्म से सच्चे और असंदिग्ध ज्ञान वाले महात्माओं का मिलना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। सत्संग के लिए तो ऐसे पूर्ण विद्वानों की आवश्यकता है, जो हमारे विचारों को ठीक दिशा दे सकें और आत्मा में आध्यात्मिक प्रकाश एवं प्रेरणा भर सकें। वक्तृता के बल पर मनचाही दिशा में भ्रमित कर देने वाले वाक् शूरों से सत्संग का प्रयोजन सिद्ध न हो सकेगा।

ऐसे प्रामाणिक प्रेरणा-पुंज व्यक्तित्त्व आज के युग में विरले हैं। जो हैं भी उनकी खोज तथा परख करने के लिए आज के व्यस्त समय में किसी के पास पर्याप्त समय नहीं। इन सब कठिनाइयों को देखते हुये स्वाध्याय ही सर्वोत्कृष्ट सत्संग का माध्यम सिद्ध होता है। पुस्तकें विद्वानों का बौद्धिक शरीर हैं। उनमें उनका व्यक्तित्व बोलता है। वह भी बहुत ही व्यवस्थित ढंग से।

प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति को स्वाध्याय रूप सत्संग के द्वारा ही ज्ञान का प्रकाश सरलता से मिल सकता है। इसलिए हर एक जागरूक नागरिक को जहाँ स्वयं स्वाध्याय में सदा प्रवृत्त रहना चाहिए, वहीं दूसरों को भी इस हेतु प्रेरणा देते रहना चाहिए।

भगवान कृष्ण ने अर्जुन को मोह-कलिल से उबारने के लिए उन्हें युद्ध में प्रवृत्त करने के लिए—उनकी शोकाकुल मनःस्थिति दूर करने के लिए ज्ञान की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहा था—

आधयो व्याधयश्चैव द्वय दुःखस्य कारणम्।
तन्निवृत्तिः सुखं विद्यात् तच्चयो मोक्ष उच्यते।।

—योगवासिष्ठ

आधियाँ (मानसिक) और व्याधियाँ (शारीरिक रोग)—यह दो ही व्यक्ति के लिए दुःख के कारण बनते हैं। इनकी निवृत्ति ज्ञान द्वारा होती है। इस दुःख निवृत्ति का नाम ही मोक्ष है। संसार में व्यक्ति केवल अपनी अज्ञानता से ही कष्ट पाता है और कुमार्गगामी बन जाता है। महाभारतकार ने इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुये लिखा है—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एकः शत्रुर्न द्वितीयोऽस्ति शत्रु रज्ञान तुल्यः पुरुषस्य राजन्।

येनावृतः कुरुते सम्प्रयुक्तो, घोराणि कर्माणि सुदारुणानि।।

—महा. शान्ति पर्व

इस संसार में पुरुष का एक ही शत्रु है—अज्ञान। इसके अतिरिक्त उसका अन्य कोई शत्रु नहीं है। इसी अज्ञान से विमोहित होकर व्यक्ति अनेकानेक कुकर्मों में प्रवृत्त होता रहता है।

ज्ञानी पुरुष को किसी का कष्ट नहीं उठाना पड़ता—

प्राज्ञं विज्ञात विज्ञेय सम्यग् दर्शन मादयः।

न दहन्ति वनं वर्षासिक्तमग्नि शिखा इव।।

—योगवासिष्ठ

जिसने जानने योग्य को जान लिया और विवेक दृष्टि प्राप्त कर ली, उस ज्ञानी व्यक्ति को कष्ट (शरीर और मन के) उसी प्रकार नहीं दुःखी कर पाते, जिस प्रकार वर्षा से भीगे जंगल को अग्नि नहीं जला पाती। सद्ज्ञान प्राप्त कर पाना सर्वोपरि उपलब्धि होती है, क्योंकि यही सुख-शान्ति का कारण होता है—

पाताले भूतले स्वर्गे सुखऐश्वर्यमेव वा।

न तत्पश्यामि यन्नाम पाण्डित्यादतिरिच्यते।।

—स्कन्द पुराण ६/१४३/३

पृथ्वीलोक, पाताललोक और स्वर्गलोक में पाण्डित्य (ज्ञान) से बढ़कर कोई भी सुख या ऐश्वर्य नहीं दिखाई पड़ता है। ज्ञान ही सुख-ऐश्वर्य आदि का कारण होता है।

आदिकाल में जंगली, असभ्य और पशुओं की तरह जीवन जीते हुये मानव आज प्रगति और समृद्धि के जिस शिखर पर आ पहुँचा है, उसके मूल में मनुष्य द्वारा अर्जित और विकसित ज्ञान सम्पदा ही आधारभूत तत्त्व है। आज भी आदिवासी और पिछड़े इलाकों में इस सम्पदा से वंचित होने के कारण लोग नितान्त जंगली, असभ्य जीवन जीते हैं, जबकि सुसंस्कृत-सुशिक्षित व्यक्ति हर तरह से सुखी और सम्पन्न देखे जा सकते हैं। व्यक्तित्त्व के निखार और जीवन की गरिमा को भी वहीं चरितार्थ होते देखा जा सकता है, जहाँ ज्ञान सम्पदा के विकास एवं अर्जन हेतु निरन्तर प्रयत्नरत हुआ जा रहा है।

यह ज्ञान कहाँ से उत्पन्न हुआ है ? कैसे अर्जित किया जाय, इसका एक ही उत्तर है—अध्ययन द्वारा। अपने आस-पास की परिस्थितियों का, देश-काल और समाज की तत्कालीन परिस्थितियों का अध्ययन, अपने आप का चिन्तन-मनन, पर्यवेक्षण और समीक्षा व्यक्ति में वह दृष्टि उत्पन्न करते हैं जिसे सुलझा हुआ कहा जा सके। यह दृष्टि जीवन की अनेकानेक गुत्थियों को सहज ही सुलझा कर रख देती है। इस स्तर की दृष्टि आगे की बात है। प्रथम तो सभ्य और सुसंस्कृत जीवन जीने के लिए व्यावहारिक विषयों का ज्ञान आवश्यक है। इसके अभाव में सामान्य कार्यों को भी सम्पन्न कर पाना दूभर हो जाता है।

सभ्य नागरिकों का-सा औसत स्तर का जीवन जीने के लिए जिस ज्ञान की आवश्यकता होती है, वह शिक्षा द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। यों शिक्षा का समग्र अर्थ मनुष्य की अन्तर्निहित क्षमताओं का ही विकास है परन्तु यहाँ इसका अर्थ अक्षर ज्ञान से लेकर व्यवहार में आने वाले विषयों की जानकारी तक समझा जा सकता है। अधिकांश व्यक्ति तो शिक्षा का अर्थ स्कूल, कॉलेजों में पढ़ने, परीक्षाएँ पास कर लेने तथा डिग्री प्राप्त करने तक मानते हैं। इस अर्थ की सिद्धि के बाद उनके अध्ययन का क्रम अवरुद्ध-सा ही हो जाता है। फलतः वे भी अशिक्षितों से थोड़ा ही अच्छा जीवन व्यतीत कर पाते हैं। जबकि प्रचलित शिक्षा पद्धति के सन्दर्भ में सर्वविदित है कि वह सभी आवश्यक जीवनोपयोगी विषयों का समुचित शिक्षण प्रदान करने की दृष्टि से अपर्याप्त सिद्ध होती है।

शिक्षित हो या अशिक्षित, ज्ञानार्जन की दृष्टि से दोनों वर्गों में सुझाव का अनुपात 'उन्नीस-बीस' ही हो पाता है। जबकि वह जीवन की प्रथम और अनिवार्य आवश्यकता है। मनुष्येतर अन्य प्राणियों का जीवनक्रम उनके पास उपलब्ध स्वभावगत समझ से चल जाता है परन्तु मनुष्य के सम्बन्ध में ऐसा नहीं है। उपलब्ध और स्वाभाविक क्रम से प्राप्त समझ-बूझ के आधार पर किसी प्रकार काम तो चलाया जा सकता है परन्तु उस स्थिति को मानवीय जीवन की गरिमा और सार्थकता की कसौटी पर कसा जाए तो प्राप्त निष्कर्ष अपर्याप्त तथा असन्तोषजनक ही रहेंगे।

अध्ययन की उपेक्षा और नये ज्ञान के अर्जन की अवहेलना अथवा निरर्थकता के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि औसत स्तर का जीवन व्यतीत करने के लिए जितना ज्ञान आवश्यक है, उतना अपने चारों ओर के वातावरण से, वर्ग समुदाय के व्यक्तियों का सानिध्य मिलने से स्वतः ही प्राप्त हो जाता है। उदाहरण के लिए, बच्चा जन्म लेने के बाद भाई-बहनों और अभिभावकों को चलते-फिरते व खाते-पीते देखकर स्वयं ही चलना-फिरना एवं खाना-पीना सीख जाता है। दूसरे जीव-जन्तु भी प्रकृति प्रेरणा से अथवा वातावरण के प्रभाव से बहुत-सी बातें सीख लेते हैं, तो मनुष्य भी जीवन उपयोगी ज्ञान एवं शिक्षण अपने परिवेश में रहकर प्राप्त कर सकता है। इसके लिए विशेष परिश्रम की अनिवार्यता सिद्ध करना अनावश्यक है।

खाने-पीने और चलने-दौड़ने जैसी सामान्य क्रियायें दूसरों को देखकर भी सीख ली जाती हैं। इसका कारण है कि एक तो प्रकृति स्वयं इस तरह की प्रेरणाएँ देती है तथा दूसरे ये क्रियायें जीवन का स्वाभाविक अंग भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं। किन्तु जब सभ्य और सुसंस्कृत जीवन जीने का प्रश्न आता है तो उसमें देख-सुनकर या अनुकरण द्वारा कुछ कर लेने जैसी बात नहीं बनती। उसके लिए तो प्रयासपूर्वक ज्ञान अर्जित करना ही पड़ता है। उसके बिना किसी भी प्रकार काम चलता नहीं दीखता।

पेट भरने और वंश परम्परा चलाने का ज्ञान तो प्राणिमात्र को भी होता है, जिसे वे अपने आस-पास के वातावरण से अथवा अपने अन्य सजातियों से प्राप्त करते हैं किन्तु मनुष्य का व्यक्तित्व, परम्परा अथवा अनुकरण द्वारा सीखे गये ज्ञान से विकसित नहीं हो पाता, उसके लिए तो प्रयासपूर्वक ज्ञान अर्जित करना ही पड़ता है। औसत स्तर का सामान्य जीवनक्रम व्यतीत करने के लिए ही जब बच्चों को जवान होने तक वर्षों स्कूल-कॉलेजों में पढ़ना पड़ता है तो सभ्य, सुसंस्कृत व्यक्तित्व के गठन हेतु तो आजीवन ज्ञान साधना अनिवार्य सिद्ध होती है।

यह ठीक है कि अब तक जितना ज्ञान विकसित हुआ है, वह असीम है। उसे अर्जित करने, सीखने के लिए एक जन्म तो क्या कई जन्म भी कम पड़ेंगे। इस स्थिति में ज्ञानार्जन की सीमा क्या निश्चित की जाय ? इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि ज्ञान साधना के जिस स्वरूप की यहाँ चर्चा की जा रही है, उसका मुख्य आशय व्यक्तित्व को परिष्कृत बनाना और जीवन की सार्थकता सिद्ध करना है। जानकारियाँ बढ़ाने वाला अध्ययन तो किसी भी सीमा तक किया जा सकता है; जीवन यात्रा सरलतापूर्वक पूरी की जा सके, उतनी जानकारियाँ एकत्र करना पर्याप्त है। परन्तु व्यक्तित्त्व को परिष्कृत करने वाला साधन क्रम सतत् चलना चाहिए।

ज्ञानार्जन का, अध्ययन का मूल उद्देश्य अनुभव और विवेक को विकसित करना ही है। जानकारियाँ एकत्रित करना तो उसका एक छोटा-सा अंग है। वह ज्यादा कम हो तो भी कोई विशेष हर्ज नहीं परन्तु व्यक्तित्व को परिमार्जित और सुगठित बनाने वाला अध्ययन अपनी दिनचर्या का एक अनिवार्य अंग बनना चाहिए। प्राचीनकाल के स्वर्णिम युग में भौतिक जानकारियों को जितना महत्त्व दिया जाता था, उससे भी कई गुना महत्त्व इस परिमार्जनकारी स्वाध्याय श्रम को दिया जाता रहा है। कहा भी गया है—**'स्वाध्यायात् मा प्रमदितव्यम्'**। अब नये युग में, जब मनुष्य को देवोपम और धरती के स्वर्गिक वातावरण से सम्पन्न बनाना है, तो इस तथ्य को गम्भीरता से समझा जाना चाहिए और यह आवश्यकता तत्परतापूर्वक पूरी की जानी चाहिए।

आत्म-परिष्कार के लिए ज्ञानार्जन हेतु सत्संग की महिमा इसीलिए सबसे बढ़-चढ़कर बताई गई है। प्राचीन काल में सर्वत्र ऐसी प्रतिभाएँ उपलब्ध थीं, जिनका सानिध्य प्राप्त कर, शिक्षाएँ ग्रहण कर अपने आपको धन्य बनाया जा सकता था परन्तु आज वैसे व्यक्तित्व कहाँ उपलब्ध हैं ? कहीं ऐसे लोग भी मिलते हैं जो चरित्र की दृष्टि से उज्ज्वल-धवल हों, जिनकी वाणी में वह शक्ति हो जो अंतस को झखझोर सके तो उनसे उपयोगी और कल्याणकारी विचार सतत् थोड़े ही मिलते हैं। फिर उनका सानिध्य भी कहाँ मिल पाता है ? उन्हें अवकाश हो तो अपने पास समय नहीं और अपने पास समय है तो वैसी विभूतियाँ व्यस्त होती हैं, यह अड़चन सत्संग को अव्यावहारिक बना देती है। ऐसी स्थिति में सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय ही एकमात्र वह उपाय रह जाता है, जिनसे व्यक्तित्व के परिमार्जन की आवश्यकता पूरी हो सकती है।

सत्साहित्य का अध्ययन सत्संग की तुलना में इसलिए अधिक महत्त्वपूर्ण है कि वह हर घड़ी उपलब्ध रहता है। प्राचीनकाल में जब पुस्तकें नहीं थीं, तब लोगों के सामने जीवन परिष्कार करने वाली दृष्टि और दिशा प्राप्त करने का एक ही उपाय था, वह था सत्पुरुषों का सत्संग। यद्यपि वह सर्वसुलभ नहीं था, परन्तु इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं था। अब तो वैसी कोई समस्या ही नहीं है। प्रेस और प्रकाशन की सुविधा ने मनुष्य के लिए हर घड़ी, हर समय बड़ी सरलता से स्वाध्याय को जुटाने की सुविधा उत्पन्न कर दी है।

सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय—एक साधन

मानव-जीवन में सुख की वृद्धि करने के उपायों में स्वाध्याय एक प्रमुख उपाय है। स्वाध्याय से ज्ञान की वृद्धि होती है, मन में महानता, आचरण में पवित्रता तथा आत्मा में प्रकाश आता है। स्वाध्याय एक प्रकार की साधना है, जो अपने साधक को सिद्धि के द्वार तक पहुँचाती है।

स्वाध्याय के अभाव में पढ़ी हुई विद्या भी विस्तृत हो जाती है तब नूतन ज्ञान प्राप्त करने का प्रश्न ही नहीं उठता। कहीं भी और कभी भी देखा जा सकता है कि कक्षा पास कर लेने और उपाधि पा लेने के बाद जो विद्यार्थी, वकील अथवा डॉक्टर आदि अपना स्वाध्याय बन्द कर देते हैं, वे आगे चलकर सफल नहीं हो पाते। संसार की विचारधारा को मोड़ देने वाले लेखक अथवा पत्रकार प्रतिदिन अनेक घण्टों स्वाध्याय में लगाते हैं। जो स्वाध्यायशील रहता है, उसका ज्ञान आधुनिक और विद्या जाग्रत रहती है। प्रतिदिन कुछ न कुछ पढ़ते रहने वाले अपने ज्ञान-कोष में बूँद-बूँद इकट्ठा करके उसे अक्षय बना लिया करते हैं।

जीवन को सफल, उच्च एवं पवित्र बनाने के लिए स्वाध्याय की बड़ी आवश्यकता है। किसी भी ऐसे व्यक्ति का जीवन क्यों न देख लिया जाये, जिसने उच्चता के सोपानों पर चरण रखा है। उसके जीवन में स्वाध्याय को विशेष स्थान मिला होगा। स्वाध्याय के अभाव में कोई भी व्यक्ति महान अथवा ज्ञानवान नहीं बन सकता। प्रतिदिन नियमपूर्वक सद्ग्रन्थों का अध्ययन करते रहने से बुद्धि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तीव्र होती है, विवेक बढ़ता है और अन्तःकरण की शुद्धि होती है। इसका स्वस्थ एवं व्यावहारिक कारण है—वह यह कि सद्ग्रन्थों के अध्ययन करते समय मन उनमें रमा रहता है और ग्रन्थ के सद्वाक्य उस पर संस्कार डालते रहते हैं।

स्वाध्याय द्वारा अन्तःकरण के निर्मल हो जाने पर मनुष्य के बाह्य-अन्तर पट खुल जाते हैं, जिससे वह आत्मा द्वारा परमात्मा को पहचानने के लिये जिज्ञासु हो उठता है। मनुष्य की यह जिज्ञासा भी स्वाध्याय से निरन्तर बढ़ती एवं बलवती होती रहती है और एक दिन ऐसा आता है कि वह उसका साक्षात्कार करने का प्रयास करता है और कर भी लेता है। परमात्मा के इस पावन साक्षात्कार का उपाय तथा मार्ग का भी स्वाध्याय से ही पता चलता है। इस प्रकार नित्यप्रति का स्वाध्याय मनुष्य को उसके चरम लक्ष्य तक पहुँचा देने में बड़ी सहायता करता है।

स्वाध्यायशील व्यक्ति का जीवन अपेक्षाकृत अधिक पवित्र हो जाता है। ग्रन्थों में सन्निहित सद्वाणी तो अपना प्रभाव एवं संस्कार डालती ही है, साथ ही अध्ययन में रुचिमान होने से व्यक्ति अपना शेष समय पढ़ने में ही लगाता है। वह या तो अपने कमरे में बैठा हुआ एकान्त अध्ययन किया करता है अथवा किसी पुस्तकालय अथवा वाचनालय में पुस्तकों के साथ संलग्न रहता है। उसके पास ऐसा कोई भी फालतू समय नहीं रहता, जिसमें जाकर इधर-उधर बैठे अथवा घूमे और फिर वायुमण्डल अथवा संगति से अवांछनीय संस्कार ग्रहण करे। जब मनुष्य निरर्थकों की संगति में न जाकर जीवनोपयोगी सद्साहित्य के अध्ययन में ही संलग्न रहेगा, तो उसका आचार आप ही शुद्ध हो जायेगा।

अध्ययनशील व्यक्ति स्वयं तो बेकार रहकर कहीं नहीं जाता, उसके पास बेकार के निठल्ले व्यक्ति भी नहीं आते और वे यदि कभी आ भी जाते हैं, तो अध्ययनशील व्यक्ति के आस-पास का व्यस्त वायुमण्डल उनके अनुकूल नहीं होता और वे शीघ्र उसका अधिक समय खराब किये बिना खिसक जाते हैं। इस प्रकार फिजूल के व्यक्तियों के संग से उत्पन्न होने वाली विकृतियों से अध्ययनशील व्यक्ति सहज ही बच जाता है, जिससे उसके आचार-विचार पर कुसंस्कार नहीं पड़ने पाते।

निरन्तर अध्ययन करते रहने से मनुष्य का ज्ञान जाग्रत रहता है, जिसका उद्रेक उसकी वाणी द्वारा हुये बिना नहीं रहता। अस्तु, अध्ययनशील व्यक्ति की वाणी, सफल, सार्थक तथा प्रभावोत्पादक बन जाती है। वह जिस सभा-समाज में जाता है, उसकी ज्ञान-मुखर वाणी उसे विशेष स्थान दिलाती है। अध्ययनशील व्यक्ति का ही कथन प्रामाणिक तथा तथ्यपूर्ण माना जा सकता है। निरध्ययन वक्ताओं की वाणी बकवास से अधिक कोई महत्त्व नहीं रखती। स्वाध्याय निःसन्देह सामाजिक प्रतिष्ठा का संवाहक होता है।

संसार के इतिहास में ऐसे असंख्य व्यक्ति भरे पड़े हैं, जिनको जीवन में विद्यालय के दर्शन न हो सके किन्तु स्वाध्याय के बल पर वे विश्व के विशेष विद्वान व्यक्ति बने हैं। साथ ही ऐसे व्यक्तियों की भी कमी नहीं है, जिनकी जिन्दगी का अच्छा-खासा भाग विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में बीता किन्तु उसके बाद स्वाध्याय में प्रमाद करने के कारण उनकी एकत्रित योग्यता भी उन्हें छोड़कर चली गई और वे अपनी तपस्या का न तो कोई लाभ उठा पाये और न सुख ! योग्यता को बनाये रखने और बढ़ाने के लिए स्वाध्याय नितान्त आवश्यक है।

कथा कक्ष में अथवा सार्वजनिक मंच से धाराप्रवाह बोलने वाले प्रोफेसरों तथा वक्ताओं का दैनिक जीवन देखने से पता चलता है कि अपना नित्य कर्त्तव्य निबटाने के बाद उनका शेष सारा समय स्वाध्याय में ही व्यतीत होता है। उनके मुख द्वारा धाराप्रवाह वाणी का निर्गमन और कुछ नहीं उस तेजोपूर्ण योग्यता का ही प्रवहन होता है, जो वे अपने बहुमूल्य समय को क्षण-क्षण लगाकर स्वाध्याय द्वारा संचय किया करते हैं।

संसार ज्ञान की जन्मभूमि है। यहाँ पर नित्यप्रति नई-नई जानकारियों, विचारणाओं, तर्कों तथा विद्याओं का जन्म होता रहा है। जो व्यक्ति अध्ययनशील होता है, वह नित्य नये ज्ञानों से अवगत रहा करता है। उसे पता रहता है कि संसार में कहाँ क्या हो रहा है ?, कौन-सी पुरानी मान्यतायें बदल गई हैं और उनके स्थान पर कौन-सी नई प्रतिस्थापनायें हो रही हैं। उसे यह भी ज्ञान रहता है कि इन बदलती हुई परिस्थितियों में उसका क्या स्थान और क्या कर्त्तव्य है ? इस प्रकार अध्ययनशील व्यक्ति एक जागरूक नागरिक की तरह ही जीवन जीने का सुख पाता है न कि मूढ़मति आदमी की तरह, जिसे अपने चारों ओर के, आस-पास के परिवर्तन का भी ज्ञान नहीं रहता।

संयम, अध्ययनशीलता की सबसे बड़ी देन है। जो स्वाध्याय में रुचिमान है वह अपनी अभिरुचि पूरी करने के लिए, अधिक से अधिक समय प्राप्त करने के लिए प्रातःकाल उठेगा। अवकाश के समय में सोयेगा नहीं, अपनी मेधा को बलवती बनाने के लिये आहार-विहार तथा विचार में सावधान रहेगा। वह कोई भी ऐसा अवांछनीय कार्य करने के प्रति सावधान रहेगा, जो उसमें आलस्य, प्रमाद की प्रवृत्तियाँ जगाने का कारण बन सकती हैं। वह अधिक से अधिक स्वस्थ एवं प्रसन्न रहने का प्रयत्न करेगा। रोग की दशा में भी अध्ययनशील व्यक्ति रोने-चिल्लाने अथवा रोग का चिन्तन करने के बजाय धीरे-धीरे अध्ययन ही करता रहता है, जिससे न तो रोग उसे अधिक पीड़ित कर पाता है और न अधिक समय ठहर ही पाता है। अध्ययनशीलता, सुख-दुःख एवं सम्पत्ति-विपत्ति दोनों स्थितियों में सहायक होती है।

विद्वानों ने स्वाध्याय की महिमा को जानते हुये उसे सन्मार्गदर्शक सखा की संज्ञा दी है। वेदों में कहा गया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

-जो मनुष्य सत्पथ दर्शक अपने सच्चे सखा स्वाध्याय का परित्याग कर देता है, उसका नाड़ी आदि अनर्गल एवं अन्तःइन्द्रियाँ उच्छृंखल हो जाती हैं, जिससे उसे दुःखों का भागी बनना पड़ता है। स्वाध्याय सखा से सम्बन्ध विच्छेद कर देने वाले व्यक्ति की मानसिक एकाग्रता चली जाती है।

स्वाध्यायशील व्यक्ति अपनी आत्मा का सफल चिकित्सक होता है। स्वाध्याय से उपार्जित ज्ञान द्वारा वह अपनी आत्मिक व्याधियों को जान लेता और उनका निदान निर्धारित कर लेता है। निदान खोज लेने पर व्याधियों का उपचार तो सहज ही में हो जाता है। मानसिक एकाग्रता की उपलब्धि उसे इस मार्ग में सहायक बनकर बढ़ाया करती है, जिससे उसका जीवन उच्छृंखलताओं एवं अवांछनीयताओं से मुक्त होकर महान एवं सुखी बन जाता है।

स्वाध्याय को मानसिक योग भी कहा गया है। जिस प्रकार प्रभु का नाम जपता हुआ योगी उस परमात्मा के प्रकाश रूप में तल्लीन हो जाता है, उसी प्रकार एकाग्र होकर सद्विचारों के अध्ययन में तल्लीन हो जाने वाला अध्येता अक्षर ब्रह्म की सिद्धि से ज्ञान रूप प्रकाश का अधिकारी बनता है। केवल योग ही नहीं अध्ययन भी प्रभु का साक्षात्कार करने के उपायों में एक प्रमुख उपाय है। स्वाध्याय जैसे सरल एवं सरस योग में प्रतिष्ठित होने वाला व्यक्ति किसी न किसी रूप में अपने परम लक्ष्य को पाकर शाश्वत सुख का अधिकारी बनता है।

स्वाध्याय का एक रूप सत्संग भी है। किन्हीं कारणों से जिन्हें विद्याध्ययन का अवसर नहीं मिल सका, जो स्वयं ग्रन्थों का पठन-पाठन नहीं कर सकते, उन्हें चाहिये कि वे अध्ययनशील व्यक्तियों का सत्संग करें, महात्माओं एवं व्याख्यानदाताओं से सम्पर्क स्थापित करें और एकाग्रतापूर्वक आँखों के स्थान पर कानों से स्वाध्याय करें। ऐसा करते रहने से उन्हें भी कालान्तर में वे सब लाभ होंगे, जो एक स्वाध्यायशील को हुआ करते हैं। 'मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूँ।'' ऐसा सोचने और कहने वाले अपने प्रमाद का ही परिचय देते हैं। जो पढ़ नहीं सकता, उसे श्रवणरूपी स्वाध्याय में निरत रहना ही चाहिये। स्वाध्याय में प्रमाद करना अपने को अज्ञान के अन्धकार में धकेलने के समान है।

अध्ययनशीलता के उपर्युक्त लाभ तब ही हो सकते हैं, जब वेद, शास्त्र, उपनिषद् अथवा चरित्र-निर्माण करने वाला साहित्य ही पढ़ा जाये। मनोरंजक कहानी तथा उपन्यास पढ़ने वाले अध्ययन से होने वाले लाभ से सदा वंचित ही रहेंगे और अवांछित अथवा अश्लील साहित्य पढ़ने वाले तो उन अभागों में होते हैं, जो अपनी फूली-फली जीवन वाटिका में अपने हाथ से आग लगाया करते हैं।

स्वाध्याय—आत्मा का भोजन

मानव-जीवन को सुखी-समुन्नत और सुसंस्कारी बनाने के लिए सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय करना अत्यन्त आवश्यक है। स्वाध्याय मानव-जीवन का सच्चा, सुहृदय एवं आत्मा का भोजन है। स्वाध्याय से हमें जीवन को आदर्श बनाने की सत्प्रेरणा मिलती है। स्वाध्याय हमारे जीवन विषयक सारी समस्याओं की कुंजी है। स्वाध्याय हमारे चरित्र-निर्माण में सहायक बनकर हमें प्रभु प्राप्ति की ओर अग्रसर करता है। स्वाध्याय स्वर्ग का द्वार और मुक्ति का सोपान है।

संसार में जितने भी महापुरुष, वैज्ञानिक, सन्त-महात्मा, ऋषि, महर्षि आदि हुये हैं, वे भी स्वाध्यायशील थे। स्वाध्याय का अर्थ सत्साहित्य एवं वेद, उपनिषद्, गीता आदि आर्ष-ग्रन्थ तथा महापुरुषों के जीवनवृतान्तों का अध्ययन तथा मनन करना है। कुछ भी पढ़ा जाय उसे स्वाध्याय नहीं कहा जा सकता। मनोरंजन प्रधान उपन्यास, नाटक एवं शृंगार-रस पूर्ण पुस्तकों को पढ़ना स्वाध्याय नहीं है। इस प्रकार का साहित्य पढ़ना तो वास्तव में समय का दुरुपयोग करना एवं अपनी आत्मा को कलुषित करना है। कुरुचिपूर्ण, गन्दे साहित्य को छूना भी पाप समझना चाहिये।

सच्चा स्वाध्याय वही है, जिससे हमारी चिन्तायें दूर हों, हमारी शंका-कुशंकाओं का समाधान हो, मन में सद्भाव और शुभ संकल्पों का उदय हो तथा आत्मा को शान्ति का अनुभव हो। हमारे शास्त्रों में स्वाध्याय का बड़ा माहात्म्य बताया गया है। योग-शास्त्र में कहा गया है—

स्वाध्यायाद् योगमासीत् योगात् स्वाध्यायमामनेत्।
स्वाध्याय—योग—सम्पत्या परमात्मा प्रकाशते॥

अर्थात्—''स्वाध्याय से योग की उपासना करे और योग से स्वाध्याय का अभ्यास करे। स्वाध्याय की सम्पत्ति से परमात्मा का साक्षात्कार होता है।''

त्रयो धर्म स्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति।

अर्थात्—''धर्म के तीन स्कन्ध हैं। यज्ञ, स्वाध्याय और दान।''

श्रीमद्भागवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—

स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।

—गीता १७/१५

अर्थात्—''स्वाध्याय करना ही प्राणी का तप है।''

छान्दोग्य उपनिषद में ही आगे और लिखा है—

''आचार्य कुलाद्वेद मधीत्य यथा विधानं गुरो कर्माति शेषेणाभि समावृत्य कुटुम्बे शुचौ देशे स्वाध्यायमधीयानो धार्मिकान् विदधात्मनि सर्वेन्द्रियाणि सम्प्रतिष्ठाप्याहिंसन् सर्वभूतानि अन्यत्र तीर्थेभ्यः स खल्वेवं वर्त्तयन् यवादायुषं ब्रह्म लोकमभिसम्पद्यते।''

—उप. ८/१५/१

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अर्थात—"ब्रह्मचारी आचार्य कुल से आर्ष-ग्रन्थों को पढ़कर यथाविधि सेवा-सुश्रूषा आदि करता हुआ समावर्तन संस्कारयुक्त परिवार में रहकर पवित्र स्थान में स्वाध्याय द्वारा स्वयं अपने को, सन्तानों को एवं अन्य जनों को धार्मिक बनाता हुआ समस्त इन्द्रियों को आत्मा के अधीन करता हुआ, तीर्थ-स्थानों के अन्यत्र भी प्राणियों की हिंसा न करता हुआ, समस्त आयु इस प्रकार बर्तता हुआ मोक्ष-पद का अधिकारी बन जाता है तथा जन्म-मरण के चक्र से छूट जाता है।"

इस प्रकार हम पवित्र ग्रन्थों एवं सुविचारपूर्ण सत्साहित्य के पठन-पाठन द्वारा सदा स्वाध्याय कर अपने मन और बुद्धि को सुसंस्कृत बनाकर अपने जीवन को पवित्र बनाने का संकल्प धारण करें। सद्ग्रन्थों के स्वाध्याय से हमारी आत्मा की सुषुप्त शक्तियाँ जाग्रत होकर हमारे जीवन को सरस, समुन्नत एवं दिव्य बना देती हैं।

शरीर को स्वस्थ और सुदृढ़ बनाये रखने के लिए जिस प्रकार पौष्टिक आहार की आवश्यकता है, उसी प्रकार मन और बुद्धि को स्वच्छ एवं स्वस्थ बनाये रखने के लिए उत्तमोत्तम ग्रन्थों का अध्ययन अनिवार्य है। अध्ययन एवं स्वाध्याय के लिये निम्न कोटि का साहित्य हानिकर होगा, उसी प्रकार जैसे अखाद्य एवं दूषित पदार्थों का सेवन स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होता है। अतएव हमें इस सम्बन्ध में परिपूर्ण सतर्कता और सावधानी से काम लेना होगा। सच्चा स्वाध्याय वही है, जिसके द्वारा हमारा मन बाह्य विषयों से अलिप्त रहकर आत्मा के अनुसन्धान में प्रवृत्त हो एवं हमारी मानसिक दुर्भावनाओं, दुर्बलताओं तथा दूषित मनोविकारों का दमन हो सके और हमारा मन एक अनिवर्चनीय अलौकिक आनन्द से परिप्लावित हो उठे।

मनुस्मृति में कहा गया है—

स्वाध्याये नित्य युक्तः स्यादेव वैवेह कर्मणा।

अर्थात—"स्वाध्याय और शुभ कर्म में मनुष्य सदा तत्पर रहे।"

जिनके द्वारा 'स्व' आत्मा व परमात्मा का ज्ञान प्राप्त किया जा सके और जिसके द्वारा अभ्युदय, निःश्रेयस की प्राप्ति की जा सके, वही सच्चा स्वाध्याय है। अतएव प्रत्येक प्राणी का कर्त्तव्य है कि वह अच्छे ग्रन्थों, सदाचार प्रवर्तक पत्र-पत्रिकाओं एवं सत्प्रेरणादायी पुस्तकों का सदैव स्वाध्याय करता रहे। महाभारत के शान्ति-पर्व में कहा गया है—

"नित्यं स्वाध्यायशीलश्च दुर्गान्यति तरन्ति ते"

नित्य स्वाध्याय करने वाला व्यक्ति दुःखों से पार हो जाता है।

स्वाध्याय ब्रह्मचर्य पालन में सहायक है। स्वाध्याय से चरित्र निर्माण में भी सहायता मिलती है। इसके द्वारा दुराचारी, सदाचारी और व्यभिचारी भी ब्रह्मचारी बन जाता है। अतः यदि आप समुन्नत होना चाहते हैं, अपने जीवन को पवित्र, शुद्ध और निर्मल बनाना चाहते हैं, तो आलस्य और प्रमाद को छोड़कर नित्य सद्ग्रन्थों के स्वाध्याय का आज से ही संकल्प कीजिए और उसका दृढ़ता से पालन कीजिए।

उत्तम पुस्तकें जाग्रत देवता हैं

ज्ञान की वृद्धि के लिये, ज्ञानोपासना के लिये पुस्तकों का अध्ययन एक महत्त्वपूर्ण आधार है। मानव-जाति द्वारा संचित समस्त ज्ञान पुस्तकों में संचित है। खासकर जब से लिखने और छापने का प्रचार हुआ, तब से तो मानव द्वारा उपलब्ध ज्ञान लिपिबद्ध करके संचित किया जाने लगा। इसलिये उत्तम पुस्तकों का अध्ययन करना ज्ञान प्राप्ति के लिये बहुत ही आवश्यक होता है। अच्छी पुस्तकें एक विकसित मस्तिष्क का 'ग्राफ' होती हैं। मिल्टन ने कहा है—अच्छी पुस्तक एक महान आत्मा का जीवन रक्त है। क्योंकि उसमें उसके जीवन का विचारसार सन्निहित होता है, व्यक्ति मर जाते हैं लेकिन ग्रन्थों में उनकी आत्मा का निवास होता है। ग्रन्थ सजीव होते हैं। इसलिये लिटन ने कहा है—"ग्रन्थों में आत्मा होती है। सद्ग्रन्थों का कभी नाश नहीं होता।"

विकासशील जीवन के लिए पुस्तकों का साथ होना आवश्यक है, अनिवार्य है, क्योंकि पुस्तकों में उसे जीवन का मार्गदर्शक प्रकाश स्रोत मिलता है। वस्तुतः संसार के सभी भीषण सागर में डूबते-उतराते मनुष्यों के लिए पुस्तकें उस प्रकाश स्तम्भ की तरह सहायक होती हैं, जैसे समुद्र में चलने वाले जहाजों को मार्ग दिखाने वाले प्रकाशगृह।

सिसरो ने कहा है—"ग्रन्थरहित कमरा आत्मारहित देह के समान है।" तात्पर्य यह है कि उत्तम पुस्तकें नहीं होने से मनुष्य ज्ञान से वंचित रह जाता है और ज्ञान रहित जीवन मुर्दे के समान व्यर्थ होता है। जो व्यक्ति दिन-रात अच्छी पुस्तकों का सम्पर्क प्राप्त करते हैं, उनमें मानवीय चेतना ज्ञान-प्रकाश से दीप्त होकर जगमगा उठती है। ज्ञान का अभाव भी एक तरह की मृत्यु है।

उत्तम पुस्तकों में उत्तम विचार होते हैं। उत्तम विचार, उदात्त भावनायें, भव्य कल्पनायें जहाँ हैं वहीं स्वर्ग है। लोकमान्य तिलक ने कहा है—"मैं नरक में भी उत्तम पुस्तकों का स्वागत करूँगा। क्योंकि इसमें वह शक्ति है कि जहाँ ये रहेंगी, वहाँ अपने आप ही स्वर्ग बन जायेगा।" स्वर्ग का दृश्य-अस्तित्व कहीं नहीं है। मनुष्य की मनोःस्थिति जो उत्तम विचारों का फल है, वही स्वर्ग है। उत्तम पुस्तकों का सान्निध्य मनुष्य की बुद्धि को जहाँ भी मिलता है, वहीं उसे स्वर्गीय अनुभूति होने लगती है।

सच्चे, निःस्वार्थी, आत्मीय मित्र मिलना कठिन है। हममें से बहुतों को इस सम्बन्ध में निराश ही होना पड़ता है। लेकिन अच्छी पुस्तकें सहज ही हमारी सच्ची मित्र बन जाती हैं। वे हमें रास्ता दिखाती हैं, जीवन-पथ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर आगे बढ़ने में हमारा साथ देती हैं। महात्मा गाँधी ने कहा है—"अच्छी पुस्तकें पास होने पर हमें भले मित्रों की कमी नहीं खटकती। वरन् मैं जितना पुस्तकों का अध्ययन करता हूँ, उतनी ही ये मुझे उपयोगी मित्र मालूम होती हैं।"

मानव-जीवन संसार का ज्ञान असंख्यों अनेकताओं से भरा पड़ा है। मनुष्य का एक अपना मानस ही इतने अधिक विचारों से भरा रहता है कि क्षण-क्षण नई लहरें उत्पन्न होती रहती हैं। इन अनेकताओं का परिणाम होता है मनुष्य के अन्तर-बाह्य जीवन में अनेकों संघर्ष। विचार संग्राम में पुस्तकें ही मनुष्य के लिये प्रभावशाली शस्त्र सिद्ध होती हैं। एक व्यक्ति का ज्ञान सीमित, एकांगी हो सकता है, लेकिन उत्तम पुस्तकों के स्वाध्याय से मनुष्य अपने आपका सही-सही समाधान ढूँढ़ सकता है। खासकर विचारों के संघर्ष में उत्तम पुस्तकें ही सहायक सिद्ध होती हैं।

पुस्तकें मन को एकाग्र और संयमित करने का सबसे सरल साधन हैं। अध्ययन करते-करते मनुष्य जीवन में समाधि अवस्था को प्राप्त कर सकता है। एक बार लोकमान्य तिलक का आपरेशन होना था। इसके लिये उन्हें क्लोरोफार्म सुँघाकर बेहोश करना था। लेकिन इसके लिये उन्होंने डॉक्टर को मना कर दिया और कहा—"मुझे एक गीता की पुस्तक ला दो, मैं उसे पढ़ता रहूँगा और आप आपरेशन कर लेना।" पुस्तक लाई गई। लोकमान्य उसके अध्ययन में ऐसे लीन हुये कि डॉक्टरों ने आपरेशन किया तब तक वे तनिक हिले भी नहीं, न कोई दुःख ही अनुभव किया। पुस्तकों के अध्ययन में ऐसी तल्लीनता प्राप्त हो जाती है जो लम्बी योग-साधनाओं से भी प्राप्त नहीं होती।

पुस्तकों के अध्ययन के समय मनुष्य की गति एक सूक्ष्म विचारलोक में होने लगती है। दृश्य जगत, शरीर, यहाँ के कई व्यापार, हो-हुल्लड़ भी मनुष्य उस समय भूल जाता है। सूक्ष्म विचारलोक में भ्रमण करने का यह अनिवर्चनीय आनन्द योगियों की समाधि-अवस्था के आनन्द जैसा ही होता है। इस स्थिति में मनुष्य दृश्य जगत से उठकर अदृश्य संसार में, सूक्ष्मलोक में विचरण करने लगता है और वहाँ कई दिव्य चेतन विचारों का मानसिक स्पर्श प्राप्त करता है। यह ठीक उसी तरह है जैसे योगी दिव्य चेतना का सान्निध्य प्राप्त करता है। ध्यानाकर्षण में पुस्तकों का अध्ययन ऐसी साधना है जिससे मनुष्य अपने अन्तर्बाह्य जीवन का पर्याप्त विकास कर सकता है।

मनोविकारों से परेशान, दुःखी, चिन्तित मनुष्य के लिए उसके दुःख-दर्द के समय उत्तम पुस्तकें अमृत हैं, जिनका सान्निध्य प्राप्त कर उस समय वह अपना दुःख-दर्द, क्लेश सब कुछ भूल जाता है। अच्छी पुस्तकें मनुष्य को धैर्य, शान्ति, सान्त्वना प्रदान करती हैं। किसी ने कहा है—"सरस पुस्तकों से रोग पीड़ित व्यक्ति को बड़ी शान्ति मिलती है, जैसे स्नेहमयी जननी की मीठी-मीठी थपकियाँ बच्चों को मीठी नींद सुला देती हैं वैसे ही, मन या शरीर की पीड़ा को शान्त करने के लिए उत्तम पुस्तकों का अवलम्बन लेना सुखकर होता है।

उत्तम पुस्तकें आर्ष ग्रन्थ बहुत बड़ी सम्पत्ति हैं। अपनी सन्तति के लिये उत्तराधिकार में छोड़ने के लिये सर्वोपरि मूल्यवान वस्तु हैं संसार में। जो अभिभावक अपनी सन्तान के लिये धन, वस्त्र, शत्रु, आमोद-प्रमोद के साधन न छोड़कर उत्तम पुस्तकों का संग्रह छोड़ जाते हैं, वे बहुत बड़ी सम्पत्ति छोड़ते हैं क्योंकि उत्तम पुस्तकों का अध्ययन करके मनुष्य ऋषि, देवता, महात्मा बन सकता है। जिन परिवारों में ज्ञानार्जन का क्रम पीढ़ियों से चलता रहता है, उनमें से पण्डित, ज्ञानी, विद्वान अवश्य निकल कर आते हैं। जहाँ पुस्तकें होती हैं वहाँ मानो देवता निवास करते हैं। वह स्थान मन्दिर है जहाँ पुस्तकों के रूप में मूक किन्तु ज्ञान के देवता निवास करते हैं। वे माता-पिता धन्य हैं, जो अपनी सन्तान के लिये उत्तम पुस्तकों का एक संग्रह छोड़ जाते हैं क्योंकि धन, सम्पत्ति, साधन-सामग्रियाँ तो एक दिन नष्ट होकर मनुष्य को अपने भार से डुबो भी सकती हैं किन्तु उत्तम पुस्तकों के सहारे मनुष्य भवसागर की भयंकर लहरों में भी सरलता से तैर कर उसे पार कर सकता है।

जीवन में अन्य सामग्री की तरह हमें उत्तम पुस्तकों का संग्रह करना चाहिए। जीवन के विभिन्न अंगों पर प्रकाश डालने वाले विविध विषयों के उत्तम ग्रन्थ खरीदने के लिए खर्चे के बजट में सुविधानुसार आवश्यक राशि रखनी चाहिए। कपड़े, भोजन, मकान की तरह ही हमें पुस्तकों के लिये भी आवश्यक खर्चे की तरह ध्यान रखना चाहिये। स्मरण रखिये, उत्तम पुस्तकों के लिये खर्च किया जाने वाला पैसा उसी प्रकार व्यर्थ नहीं जाता जिस तरह अँधेरे बियाबान जंगल में प्रकाश के लिये खर्च किया जाने वाला धन।

एक बात और ध्यान में रखनी चाहिये वह यह कि पुस्तकें कमरे को सजाने के लिए तथा प्रदर्शनी लगाने के लिए न खरीदी जायें वरन् उनका नियमित अध्ययन जीवन के अन्य कार्यक्रमों की तरह ही आवश्यक अंग बना लेना चाहिये। उनसे अधिकाधिक लोगों को ज्ञान मिले इसके लिए अध्ययन की प्रेरणा, सुविधा जुटाते रहना चाहिये। पुस्तकों की उपयोगिता अध्ययन से ही है। अन्यथा वे कीड़ों का भोजन बनने के सिवा कुछ नहीं करतीं। नई पुस्तकें खरीदना, उनका अध्ययन करना, उनको अधिकाधिक उपयोग में लाना ही पुस्तकों की सच्ची कद्र करना है।

स्मरण रखिये, पुस्तकें जाग्रत देवता हैं। उनके अध्ययन, मनन, चिन्तन से द्वारा पूजा करने पर तत्काल ही वरदान पाया जा सकता है। हमें नियमित रूप से सद्ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिये। उत्तम पुस्तकों का स्वाध्याय जीवन का आवश्यक कर्त्तव्य बना लेना चाहिये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सत्साहित्य से शक्ति और समुन्नति

वर्तमान अवस्था में ऊँचे उठकर समुन्नत बनने की, शक्तिशाली बनने की भावना एक आध्यात्मिक तथ्य है। उत्थान ही जीवात्मा का मूलभूत उद्देश्य है। इसी की पूर्ति में लोग लगे भी रहते हैं। यह एक दूसरी बात है कि वास्तविक प्रगति का सच्चा स्वरूप हम न समझ पायें। किन्तु आगे बढ़ने, उन्नत होने की आकांक्षा सभी में होती है।

विचारकों का कथन है कि इस संसार में निर्बल प्राणियों के लिये कोई स्थान नहीं है। प्रकृति के सारे आघात भी निर्बलों पर ही होते हैं। संसार के संघर्ष में योग्य व्यक्ति साहसी और सूरमा ही ठहर सकते हैं। जीवन के लिये शक्ति अवश्य चाहिये। शास्त्रकार का कथन है—

या बिभर्ति जगत्सर्वमीश्वरेच्छाह्यलौकिकी।

सैव धर्मो हि सुभगे ! नेह कश्चन संशयः।

योग्यतावच्छिन्ना धर्मिणः शक्तिरेव धर्मः।।

अर्थात—इस संसार को परमात्मा ने अपनी अलौकिक शक्ति से धारण किया है। मनुष्य के लिए अभी अपनी योग्यता बढ़ाकर शक्ति सम्पन्न होना यही सबसे बड़ा धर्म है।

शक्ति उस साधना को कहते हैं, जिससे विजय मिलती है। यों धन, जन, पशु आदि का होना भी लौकिक दृष्टि से शक्तिमान होने का सबूत है। शारीरिक बल को भी मनुष्य की योग्यता मानते हैं, किन्तु यह देख चुके हैं कि समुन्नति के मार्ग में धन-जन का न होना अवरोधक नहीं है। गौतम बुद्ध तब शक्तिमान बन सके, जब उन्होंने लौकिक शक्तियों का परित्याग कर दिया। करोड़ों धनी सत्तावानों की तुलना में उनकी महत्ता सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हुई। उस समय के सम्राट अशोक तक ने उनके समक्ष अपने घुटने टेके थे। गाँधीजी शरीर से बड़े दुबले-पतले और निर्बल थे। कुल ९६ पौण्ड वजन के गाँधीजी ने उस ब्रिटिश साम्राज्य को परास्त कर दिखाया, जिसके शासन में कभी सूर्यास्त नहीं होता था। अतः धन की शक्ति, जन और शारीरिक शक्तियाँ स्वल्प हैं, अपूर्ण हैं, इनसे शक्तिशाली कहलाने का गौरव कभी भी नहीं मिल सकता।

संसार की सर्वश्रेष्ठ शक्ति का नाम है विचार। जैसे हमारे विचार होते हैं वैसी ही हमारी शारीरिक स्थिति है। आन्तरिक स्थिति का निर्माण भी विचारों के ही अनुरूप होता है। गुण, कर्म और स्वभाव की त्रिवेणी में भी विचारों का यही जल बहता है। कोई व्यक्ति चाहे कि हमारी स्थिति इसके विपरीत हो तो यह असम्भव है। निश्चयात्मक विचारों से ही निर्माण शक्ति का विकास होता है। स्वस्थ बनने का विचार न उठे, तो व्यायाम करने, मालिश करने और पुष्टिकारक आहार जुटाने का कष्टसाध्य श्रम और समयसाध्य कर्म मनुष्य क्यों करे ? सत्याग्रह के दृढ़ विचारों से प्रभावित होकर ही महात्मा गाँधी स्वतन्त्रता आन्दोलन में कूदे थे। विचारों की आवश्यकता पर ही सम्पूर्ण राष्ट्र ने उनके इस महान कार्य में हाथ बँटाया था।

विचारों का बल निःसन्देह बहुत बढ़-चढ़कर है। दार्शनिक एमर्सन का कथन है—"आध्यात्मिक शक्ति भौतिक शक्तियों से बड़ी है, विचार ही संसार पर शासन करते हैं।" अच्छे विचारों का परिणाम भी श्रेष्ठतर होता है। भविष्य का निर्माण भी विचारों के अनुरूप ही होता है। विचार ही शक्ति का स्रोत है, इस बात को संसार के सभी मनीषियों ने स्वीकार किया है। किसी भी उच्च साधना की सफलता के लिये विचारों की आवश्यकता प्रमुख है। विचार संचालन करते हैं इसलिये वे श्रेष्ठ हैं। इस बात से इन्कार करने का कोई कारण भी खोज में नहीं आया।

विचारों की शक्ति अलौकिक है, यह निर्विवाद सत्य है। किन्तु यह न भूलना चाहिये कि व्यक्ति के पतन का कारण भी उसके विचार ही होते हैं। हीन विचारों के कारण मनुष्य दुष्कर्म करता है। शक्ति का अपव्यय करता है, जिससे उसकी योग्यता फीकी पड़ जाती है। अतः उत्थान के लिये शक्तिशाली विचार चाहिये, ऊर्ध्वगामी विचार चाहिये।

विचार की योग्यता मनुष्य में साहित्य के द्वारा आती है। साहित्य में वह शक्ति होती है कि समाज की रूपरेखा बदलने में उसका महत्त्व सर्वोपरि है। यह कथन असत्य नहीं है कि "साहित्य ही समाज का दर्पण है" अर्थात किसी भी समाज की शक्ति और योग्यता की परख उसके साहित्य से होती है। विचारों को ऊँचा उठाने वाला साहित्य यदि उपलब्ध हो सके, तो आत्मोन्नति का प्रथम प्रयास सफल ही समझना है।

साहित्य का अर्थ यहाँ उस साहित्य से है, जिससे मनुष्य का चरित्र ऊँचा उठ सके और उसमें उच्च नैतिक सद्गुणों का समावेश हो। जीवन निर्माण के लिये ऐसे साहित्य की आवश्यकता होती है, जो हमारी भावनाओं को ऊँचा उठाने की क्षमता रखता हो। स्कूली किताबें, नाटक, भजन या धर्म की लकीर पीटने वाली पुस्तकें ही इसके लिए पर्याप्त नहीं हैं, एक ऐसे साहित्य की आवश्यकता होती है, जो वैज्ञानिक हो और सन्मार्ग प्रेरक हो। जिस साहित्य से हमारी सुरुचि नहीं जगती, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति नहीं मिलती, उसे साहित्य कहने में संकोच होता है। जो साहित्य व्यक्ति और समाज में गति और शक्ति न पैदा कर सके, सौन्दर्य-प्रेम समुन्नत न कर सके वह साहित्य नहीं प्रवंचना है। हमारा तात्पर्य उस साहित्य से है, जो सच्चा संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता उत्पन्न करे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सच्चा साहित्य उसे कहते हैं जिसके पढ़ने से पाठक का अन्तःकरण फूल की तरह सुविकसित हो जाय और उसके हृदय-मन में आध्यात्मिक सुवास छाये।

पतनकारी साहित्य से व्यक्ति और राष्ट्र की शक्ति नष्ट होती है। आज इस बात के प्रमाण चारों तरफ फैले दिखाई दे रहे हैं। विलासिता, कामुकता और अनाचार फैलाने वाले साहित्य की जो बाढ़ आई हुई है, उससे सामाजिक सामर्थ्यों का कितना विनाश हो रहा है यह किसी से छिपा नहीं है। लोगों का चरित्र इतनी तेजी से गिरता जा रहा है कि विचारवान लोगों के हृदय इस आशंका से काँपने लगे हैं कि कहीं सामाजिक विद्रोह की ज्वाला न भड़क उठे। अश्लील साहित्य भी बहुत कुछ इसके लिए जिम्मेदार है। ऐसे साहित्य से जितना ही बच सकें, उतना ही परम सौभाग्य समझना चाहिये।

सत्साहित्य से सद्विचार ग्रहण करते रहने की परम्परा चल पड़े, तो मानसिक उत्थान होता रहेगा और दुर्गुणों से बचते रहेंगे। युग के युग में जबकि सन्तजनों और सहृदय पुरुषों का नितान्त अभाव है, प्रेरणाप्रद विचार प्राप्त करने के लिए साहित्य का ही आश्रय लेना पड़ेगा। किन्तु यह ध्यान बना रहे कि साहित्य वही उपयोगी हो सकता है, जो हमें ऊँचा उठा सके। हमारे अन्तःकरण में प्रकाश उत्पन्न हो सके। जहाँ कोई अन्य साधन न हो वहाँ नियमित रूप से सद्ग्रन्थों, आत्मनिर्माण करने वाली पुस्तकों का स्वाध्याय करते रहना चाहिए। इससे भी मन बुरे विचारों से बचा रहता है और सद्भावनाएँ उत्पन्न होतीं हैं।

साहित्य की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुये विद्वान सिसरो ने लिखा है—"साहित्य का अध्ययन युवकों का पालन-पोषण करता है, वृद्धों का मनोरंजन करता है, उन्नति का द्वार खोलता है, विपत्ति में धैर्य बँधाता है, घर में प्रमुदित रखना और बाहर विनीत रखना साहित्य का ही काम है।"

उस सारे वाङ्मय को ऐसे साहित्य की श्रेणी में ले लेते हैं, जिससे अर्थ बोध के साथ भावनाओं का परिष्कार भी होता हो और प्रत्येक तथ्य की समीक्षात्मक व्याख्या भी होती है। केवल गूढ़ मन्त्रों को रट लेना मात्र पर्याप्त नहीं है। पढ़ना और उसे समझना, समझकर उसे सत्यासत्य पर विचार करना तथा जीवन-शोधक व्यावहारिकता का अनुसरण करना—इतना कर सकें तो यह समझें कि साहित्य की आवश्यकता को हमने समझ लिया है। रामायण पढ़ने का लाभ तब है जब हम भी राम, भरत या लक्ष्मण के सदृश्य बनने का प्रयत्न करें और रामायण का महत्व इसलिये है कि उससे आन्तरिक मलिनताओं पर द्वन्द्व उत्पन्न होता है और सदाचार की प्रेरणा मिलती है। इस तरह का तालमेल यदि बन सके तो विचार दृष्टि से शक्तिशाली बनने में कोई कठिनाई न रहेगी।

बुरे संयोग से बचने के लिए और अपनी महानता जगाने के लिए हमें भी विचारवान बनना है। इसके लिये दूसरे साधनों की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी कि ज्ञान-साधना की जरूरत है। इस जरूरत को पूरा करना है तो साहित्य की शरण लेनी ही पड़ेगी। ऐसा साहित्य खोजना पड़ेगा, जिससे ज्ञान-संवर्द्धन हो और आत्मा का परिष्कार हो। साहित्य हमारी शक्ति का उद्रेक है, हमें साहित्य के द्वारा अपनी प्रतिभा जगाने का कार्य अविलम्ब शुरू कर देना चाहिये।

सत् अध्ययन आत्म-उत्थान का आधार

ऋषियों ने **'तमसो मा ज्योतिर्गमय'** का सन्देश देते हुये मनुष्यों को अज्ञान की यातना से निकलने के लिये ज्ञान प्राप्ति का पुरुषार्थ करने के लिये कहा है। भारत का अध्यात्म-दर्शन ज्ञान-प्राप्ति के उपायों का प्रतिपादक है। अज्ञानी व्यक्ति को शास्त्रकारों ने अन्धे की उपमा दी है। जिस प्रकार बाह्य नेत्रों के नष्ट हो जाने से मनुष्य भौतिक जगत का स्वरूप जानने में असमर्थ रहता है, उसी प्रकार ज्ञान के अभाव में बौद्धिक अथवा विचार-जगत की निर्भान्त जानकारी नहीं हो पाती। बाह्य जगत के समान मनुष्य का एक आत्मिक जगत भी है, जोकि ज्ञान के अभाव में वैसे ही अँधेरा रहता है जैसे आँखों के अभाव में यह संसार।

अन्धकार से प्रकाश और अज्ञान से ज्ञान की ओर जाने में मनुष्य का प्रमुख पुरुषार्थ माना गया है। जिस प्रकार आलस्यवश दीपक न जलाकर अन्धकार में पड़े रहने वाले व्यक्ति को मूर्ख कहा जायेगा, उसी प्रकार प्रमादवश अज्ञान दूर कर ज्ञान के लिए प्रयत्न न करने वाले को भी मूर्ख ही कहा जायेगा। भारतवर्ष की महिमामयी संस्कृति अपने अनुयाइयों को विवेकशील बनने का सन्देश देती है न कि अन्धविश्वासी।

ज्ञानवान अथवा विवेकशील बनने के लिये मनुष्य को अपने मन-मस्तिष्क को साफ-सुथरा बनाना होगा, उनका परिष्कार करना होगा, जिस खेत में कंकड़-पत्थर तथा खरपतवार भरा होगा, उसमें अन्न के दाने कभी भी अंकुरित नहीं हो सकते। वे तब ही अंकुरित होंगे जब खेत से झाड़-झंखाड़ और कूड़ा-करकट साफ करके दाने बोये जायेंगे। उसी प्रकार मनुष्य में ज्ञान के बीज तब तक जड़ नहीं पकड़ सकते, जब तक कि मानसिक एवं नैतिक धरातल उपयुक्त न बना लिया जायेगा।

हमारे मन-मस्तिष्क में इसी जन्म की ही नहीं, जन्म-जन्मान्तरों की विकृतियाँ भरी रहती हैं। न जाने कितने कुविचार, कुवृत्तियाँ एवं मूढ़मान्यतायें हमारे मन-मस्तिष्क को घेरे रहती हैं। ज्ञान पाने का अथवा विवेक जाग्रत करने के लिए आवश्यक है कि पहले हम विचारों एवं संस्कारों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को परिष्कृत करें। विचार एवं संस्कार परिष्कार के अभाव में ज्ञान के लिए की हुई साधना निष्फल ही चली जायेगी।

विचार-परिष्कार का अमोघ उपाय अध्ययन एवं सत्संग को ही बतलाया गया है। विचारों में संक्रमण एवं ग्रहणशीलता रहती है। जब मनुष्य अध्ययन में निरन्तर संलग्न रहता है, तब उसको अपने विचारों द्वारा विद्वानों के विचारों के बीच बार-बार गुजरना पड़ता है, पुस्तक में लिखे विचार अविचल एवं स्थिर होते हैं। उनके प्रभावित होने अथवा बदलने का प्रश्न ही नहीं उठता। स्वाभाविक है कि अध्ययनकर्त्ता के ही विचार प्रभाव ग्रहण करते हैं। जिस प्रकार के विचारों की पुस्तकें पढ़ी जायेंगी अध्येता के विचार उसी प्रकार ढलने लगेंगे। इसलिए अध्ययन के साथ यह प्रतिबन्ध भी लगा दिया गया है कि अध्येता उन्हीं ग्रन्थों का अध्ययन करें जो प्रामाणिक एवं सुलझे हुये विचारों वाले हों। विचार-परिष्कार अथवा ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से पढ़ने वालों को एकमात्र जीवन एवं निर्माण सम्बन्धी साहित्य का ही अध्ययन करना चाहिये। उन्हें निठल्ले एवं निकम्मे लोगों की तरह निम्न मनोरथ वाले उपन्यास, कहानी, नाटक तथा कविता आदि नहीं पढ़नी चाहिये। अश्लील, अनैतिक, वासनापूर्ण अथवा जासूसी आदि से भरे उपन्यास पढ़ने से लाभ तो कुछ नहीं ही होना है, उल्टे बहुत अधिक हानि ही होगी। अयुक्त साहित्य पढ़ने से विचारों की वह थोड़ी-बहुत उदात्तता भी चली जायेगी, जो उनमें रही होगी। अध्ययन का तात्पर्य सत्यं, शिवं एवं सुन्दरम् साहित्य पढ़ने से है। सद्विचारों तथा सदुद्देश्य से पूर्ण साहित्य ही पढ़ने योग्य होता है। इसके विपरीत अनुपयुक्त एवं अवांछनीय साहित्य का पठन-पाठन विचारों को इस सीमा तक दूषित कर देगा कि फिर उनका पूर्ण परिष्कार एक समस्या बन जायेगी। आत्मोद्धारक ज्ञान प्राप्त करने के जिज्ञासु व्यक्तियों को तो सत्साहित्य के सिवाय अवांछनीय साहित्य को हाथ भी न लगाना चाहिये। सच्ची बात तो यह है कि अयुक्त, अवांछनीय एवं निम्न मनोरंजनार्थ किये गये 'लिपि-लेखन' को साहित्य कहा ही नहीं जाना चाहिये। यह तो साहित्य के नाम पर लिखा गया कूड़ा-करकट होता है, जिसे समाज के हित-अहित से मतलब न रखने वाले कुछ स्वार्थी लेखक उसी प्रकार लिखकर पैसा कमाते हैं, जिस प्रकार कोई भ्रष्टाचारी खाने-पाने की चीजों में अवांछनीय चीजें मिलाकर लाभ कमाते हैं। व्यावसायिक भ्रष्टाचारी जहाँ राष्ट्र का शारीरिक स्वास्थ्य नष्ट करते हैं वहाँ अशिव लेखक राष्ट्र का मानसिक, बौद्धिक तथा आत्मिक स्वास्थ्य नष्ट करते हैं। मनुष्य की चारित्रिक तथा आध्यात्मिक क्षति शारीरिक क्षति की अपेक्षा कहीं अधिक भयंकर एवं असहनीय होती है।

मनुष्य के लिए विचार-परिष्कार एवं ज्ञानोपार्जन के लिए यदि कोई मार्ग रह जाता है तो वह अध्ययन ही है। जीवन का अन्धकार दूर करना और प्रकाशपूर्ण स्थिति पाकर निर्द्वन्द्व एवं निर्भय रहना यदि वांछित है, तो समयानुसार अध्ययन में निमग्न रहना भी नितान्त आवश्यक है। अध्ययन के बिना विचार परिष्कार नहीं, विचार परिष्कार के बिना विवेक और विवेक के बिना ज्ञान नहीं। जहाँ ज्ञान नहीं वहाँ अन्धकार होना स्वाभाविक ही है और अन्धेरा जीवन शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक तीनों प्रकार के भयों को उत्पन्न करने वाला है, जिसमें अज्ञानी न केवल इस जन्म से ही बल्कि जन्म-जन्मान्तरों तक, जब तक कि वह ज्ञान का आलोक नहीं पा लेता, त्रिविध तापों की यातना सहता रहेगा। जीवनोद्धार के उपायों में अध्ययन का उपाय सबसे श्रेष्ठ, सरल, सुगम एवं सुलभ है। आत्मावान व्यक्ति को इसे ग्रहण कर भौतिक अज्ञानयातना से मुक्त होना ही चाहिये।

सद्ज्ञान का संचय एवं प्रसार

भारत की जनता स्वभावतः धर्मप्राण जनता है। धर्म के प्रति जितनी आस्था भारतवासियों में पाई जाती है, उतनी कदाचित ही किसी अन्य देश की जनता में पाई जाती हो। भारत एक आध्यात्मिक देश है। यहाँ के अधिकांश वासियों में आध्यात्मिक प्रवृत्तियाँ न्यूनाधिक मात्रा में विद्यमान पाई जाती हैं। उसका कारण यही है कि आदिकाल से ही भारत के ऋषि-मुनियों एवं मनीषियों ने जनता में धर्म के बीज बोने के सतत् प्रयत्न किये हैं। उन्होंने धर्म के तत्त्व, महत्त्व तथा जीवन पर उसके सत्प्रभाव का मूल्य समझा और यह भी जाना कि धर्म की पृष्ठभूमि पर विकसित किया हुआ जीवन ही वह जीवन हो सकता है, जिसे यथार्थ रूप में जीवन कहा जा सकता है और जिसको उपलब्ध करना मनुष्य के लिए वांछनीय होकर उसका लक्ष्य भी होना चाहिये।

भारतवासियों में आध्यात्मिक जिज्ञासा संस्कार रूप में विद्यमान है। हर व्यक्ति किसी न किसी रूप में आध्यात्मिक प्रगति करने को उत्सुक रहा है और जिस उपलब्ध स्रोत अथवा सूत्र से वह जितना ज्ञान प्राप्त कर सकता है, करने का प्रयत्न करता है। किन्तु खेद है कि जनसाधारण अपनी इस जिज्ञासा पूर्ति में असफल ही नहीं हो रहे हैं बल्कि पथभ्रष्ट होकर अज्ञान के अन्धकार में भटक रहे हैं।

अनेक लोगों ने जनसाधारण की इस लालसा को समझा और धर्म के प्रति उनकी अडिग आस्था का भी आभास पा लिया। फलस्वरूप अपना स्वार्थ सिद्ध करने तथा जनता की भक्ति-भावना द्वारा प्रतिष्ठित होने के लिये उन्होंने आडम्बर धारण कर धर्म गुरुओं का रूप बना लिया और धर्म अथवा अध्यात्मज्ञान के नाम पर जनता को भ्रमित करते हुये भटकाने और अपना उल्लू सीधा करने में लग गये। निदान ज्ञान के नाम पर समाज में अज्ञान का अन्धकार इतना घनीभूत हो उठा है कि धर्म का सच्चा स्वरूप समझ सकना दुरूह हो गया है। आज

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस बात की नितान्त आवश्कता आ पड़ी है कि समाज में इस प्रकार फैलाये गये अज्ञानान्धकार के विरुद्ध अभियान चलाये जायें और सद् एवं सद्ज्ञान का प्रकाश प्रसारित करके अज्ञानरूपी अन्धकार को निर्मूल कर दिया जाये। यह एक बड़ा काम है। किसी एक-दो या दस-बीस अथवा सौ-पचास व्यक्तियों द्वारा पूरा नहीं किया जा सकता। इसके लिये तो प्रत्येक समझदार व्यक्ति को अपना योगदान करना होगा। अज्ञान के कल्मष में फँसी जनता का उद्धार करना सर्वोपरि सत्कर्म है, जिसे पूरा करने के लिए अध्यात्मवादी धर्मनिष्ठों को आगे आना ही चाहिये।

ज्ञान ही आध्यात्मिक जीवन की आधारशिला है। ज्ञान के अभाव में आत्मिक उन्नति असम्भव है। ज्ञानरहित मनुष्य अन्य पशुओं की तरह ही मूल प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर अपना जीवनयापन किया करता है और उन्हीं की तरह हाँके जाकर किसी ओर भी चल सकता है। अज्ञानी व्यक्ति में अपनी सूझ-बूझ नहीं होती और न वह जीवन प्रगति की किसी भी दिशा में विचार ही कर पाता है।

पुस्तकें क्या हैं ? विद्वानों के 'विचार-शरीर' ही तो हैं। सत्संग का प्रयोजन विचारों का श्रवण, मनन तथा ग्रहण ही है। विद्वानों तथा महापुरुषों के जो विचार उनके मुख से सुने जा सकते हैं, वे उनकी लिखी पुस्तकों से आँखों द्वारा पढ़े जा सकते हैं। एक बार बौद्धिक सत्संग में विचार अस्त-व्यस्त भी हो सकते हैं, किन्तु पुस्तकों में संचित विचार व्यवस्थित तथा स्थिर होते हैं। ग्रन्थकर्ता अपनी पुस्तक में ज्ञान की परिपक्वता से ओतप्रोत विचार ही अंकित किया करता है। स्वाध्यायरूपी सत्संग द्वारा कोई भी व्यक्ति उन विद्वानों का विचार-संग किसी समय भी किसी स्थान पर प्राप्त कर सकता है, जो आज संसार में नहीं अथवा जो सुदूर देशान्तर में रह रहे हैं। परिचित भाषा ही नहीं अनुवादों द्वारा अपरिचित भाषाओं के विद्वानों के विचार-संग में आया जा सकता है। पुस्तकों के माध्यम से प्रामाणिक विद्वानों का सत्संग विचार-विकास के लिये सबसे अधिक उपयोगी, सरल तथा निरापद है।

जहाँ यह आवश्यक है कि मनुष्य स्वयं स्वाध्यायी बने, उसके लिये प्रेरणादायक पुस्तकें संचित करे और नित्यप्रति उनका पारायण करता रहकर अपनी बुद्धि, विवेक तथा ज्ञान को विकसित करता रहे, वहाँ यह भी आवश्यक है कि स्वाध्याय ही प्रेरणा दूसरे लोगों में भी भरे।

नियमितता आवश्यक

स्वाध्याय की प्रशंसा में जो कुछ भी कहा गया है वह कोई अत्युक्ति नहीं। किन्तु जब-तब मनोरंजन के ढंग से कुछ पढ़-सुन लेने से वह लाभ नहीं पाये जा सकते। मनुष्य के असंस्कृत मन-बुद्धि को सुसंस्कृत बनाना सतत् साधना से ही सम्भव है। प्रारम्भ में मनुष्य की ग्रहणशीलता बहुत कम होती है। जितनी देर सत्संग, स्वाध्याय का अवसर मिलता है, उतने थोड़े समय ही तो अच्छे विचार मस्तिष्क में ठहर पाते हैं। इसके बाद वही पुराने कुविचार, आँधी-तूफान की तरह आकर उन श्रेष्ठ विचारों की छोटी-सी बदली को उड़ाकर एक ओर भगा देते हैं। निकृष्ट विचारों से तात्कालिक लाभ और आकर्षण स्वभावतः अधिक होता है। चिरकाल से अभ्यास में आते रहने के कारण उनकी जड़ें भी बहुत गहरी हो जाती हैं। इन्हें उखाड़ कर नये श्रेष्ठ विचारों की स्थापना करना सचमुच बड़े अध्यवसाय का काम है।

किसी घने जंगल में कँटीली झाड़ियाँ सारी भूमि को घेरे रहती हैं, गहराई तक अपनी जड़ें जमाये रहती हैं। यदि उस जंगल को कृषि योग्य बनाना हो तो वह झाड़-झंखाड़ काटने की व्यवस्था करनी पड़ती है। फिर भूमि खोदकर जड़ें उखाड़नी पड़ती हैं। जोतकर खेत को एक समान करना पड़ता है। खाद और पानी की व्यवस्था जुटानी होती है। इतना प्रबन्ध करने पर ही वह घने जंगल की ऊबड़-खाबड़ भूमि परिपूर्ण अन्न उपजाने वाली कृषि भूमि के योग्य बन पाती है। मनोभूमियों को सत्कर्मों की, सद्भावनाओं की हरी-भरी फसल उगने योग्य बनाने के लिए ऐसा ही पुरुषार्थ किया जाना आवश्यक होता है।

जैसे विचारों को जितनी तीव्रता और निष्ठा के साथ जितना अधिक देर मस्तिष्क में निवास करने का अवसर मिलता है, वैसे ही प्रभाव की मनोभूमि में प्रबलता होती चलती है। देर तक स्वार्थपूर्ण विचार मन में रहें और थोड़ी देर सद्विचारों के लिए अवसर मिले, तो वह अधिक देर रहने वाला प्रभाव कम समय वाले प्रभाव को परास्त कर देगा। इसलिए उत्कृष्ट जीवन की वास्तविक आकांक्षा करने वाले के लिए एक ही मार्ग रह जाता है कि मन में अधिक समय तक अधिक प्रौढ़, अधिक प्रेरणाप्रद उत्कृष्ट कोटि के विचारों को स्थान मिले।

जिसका बहुमत होता है उसकी जीत होती है। बहती गंगा में यदि थोड़ा मैला पानी पड़ जाय तो उसकी गन्दगी प्रभावशाली न होगी, पर यदि गन्दे नाले में गंगाजल डाला जाय तो उसे पवित्र न बनाया जा सकेगा। इसी प्रकार यदि मन में अधिक समय तक बुरे विचार भरे रहेंगे तो थोड़ी देर, थोड़े-से अच्छे विचारों को स्थान देने से भी कितना काम चलेगा ? उचित यही है कि हमारा अधिकांश समय इस प्रकार बीते जिससे उच्च भावनाएँ ही मनोभूमि में विचरण करती रहें।

संसार में बुराई इसलिये फैली है कि लोगों के मन में बुरे विचारों का बाहुल्य रहता है। चोर, डाकू, जुआरी, व्यभिचारी, व्यसनी अपने विचारों के पक्के होते हैं। जो उन्हें ठीक जँच गया है उसी इच्छा की पूर्ति के लिये निरन्तर प्रयत्न करते हैं। निष्ठा के अनुरूप काम करने से भावनान्तर में परिपक्वता आती है और उस परिपक्वता में दूसरों को प्रभावित करने की क्षमता भरी रहती है।

अच्छाई इसीलिए पनप नहीं पाती कि उसका शिक्षण करने वाले ऐसे लोग नहीं निकल पाते, जो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपनी एकनिष्ठा के द्वारा दूसरों की अन्तरात्मा पर अपनी छाप छोड़ सकें। अपने अवगुणों को छिपाने के लिए या सस्ती प्रशंसा प्राप्त करने के लिए धर्म का आडम्बर मात्र ओढ़ लेते हैं। 'पर उपदेश कुशल' बहुत हैं पर जो आदर्शों को दैनिक जीवन में कार्यान्वित करें, ऐसे लोग कम हैं। यही कारण है कि अच्छाई बढ़ नहीं पाती, फैल नहीं पाती। यदि सज्जनतापूर्ण सच्चे व्यक्तित्व प्रकाश में आने लगें तो उनके प्रभाव से अच्छाइयाँ भी तेजी से फैलें। बुराई का स्थान अच्छाई को मिल जाये और युग परिवर्तन की बात कुछ भी कठिन दिखाई न दे।

मनुष्य की चेतना को उच्च आदर्शों की ओर मोड़ देना, उस दिशा में रुचि एवं लगन पैदा करना स्वाध्याय के सहारे ही सम्भव होता है। जो स्वाध्याय पुस्तक पढ़कर किया जाता है, उसे 'अध्ययन' कहा जाता है और जो विज्ञ पुरुषों की वाणी सुनकर किया जाता है, उसे सत्संग कहा जाता है। पढ़ना या सुनना दोनों ही प्रभाव तभी डालते हैं जब पाठक या श्रोता उसे गहराई से समझने, मनन-चिन्तन द्वारा आत्मसात करने का प्रयास करे। इस दृष्टि से दोनों को ही स्वाध्याय कह सकते हैं। पूर्वकाल में ऋषि के आश्रमों में दोनों विधाओं की ही सुन्दर व्यवस्था रहती थी। जब तक वह क्रम चला देश में सुसंस्कृतवान व्यक्तित्वों का उत्पादन होता रहा। उस क्रम के बिगड़ते ही स्थिति बिगड़ गयी।

उपयुक्त साहित्य चुनें

कैसा अच्छा होता है कि प्राचीनकाल की तरह जीवन के प्रत्येक पहलू पर उत्कृष्ट समाधान प्रस्तुत करने वाले साधु-ब्राह्मण आज भी हमें उपलब्ध रहे होते। वे उज्ज्वल चरित्र, सुलझे हुये मस्तिष्क और परिपक्व ज्ञान द्वारा सच्चा मार्गदर्शन करा सकते तो कुमार्ग पर ले जाने वाली सभी दुष्प्रवृत्तियाँ शमन होतीं। पर आज उनके दर्शन दुर्लभ हैं। ऐसी स्थिति में सत्संग द्वारा स्वाध्याय कैसे हो। साहित्य अध्ययन द्वारा स्वाध्याय करने के लिए उपयुक्त पाठ्य सामग्री चाहिए। किसी भी पुस्तक को पढ़ना स्वाध्याय नहीं कहा जा सकता। दुर्भाग्य यह भी है कि स्वाध्याय के लिए उपयुक्त साहित्य भी कहीं-कहीं ही दृष्टिगोचर होता है। पुस्तक विक्रेताओं की दुकानें खोज मारने पर मुश्किल से ही कुछ पुस्तकें ऐसी मिलेंगी, जो कि परिस्थितियों पर प्रकाश डालते हुए जीवन निर्माण के लिए उचित सुझाव प्रस्तुत करती हों। जो पुस्तकें उथले मनोरंजन की दृष्टि से छापी जाती हैं, उनमें तो आदर्श की प्रेरणा की जगह मस्तिष्क को विकृत करने के ही तत्त्व अधिक भरे रहते हैं। उन्हें पढ़कर तो व्यक्ति का अकल्याण ही होता है।

दूसरे प्रकार का जो साहित्य अधिक छपता और पढ़ा जाता है, वह है पुण्यार्जन के लिए पढ़े जाने वाले धार्मिक ग्रन्थ। उन्हें पढ़ने से भी स्वाध्याय की आवश्यकता पूरी नहीं होती। 'पुण्य के लिए पाठ' के ढंग से पढ़ लेने की चिह्न पूजा ही उनमें होती है। स्वाध्याय की आवश्यकता पूरी करने वाला साहित्य खोजकर, उसे ढंग से पढ़ा-समझा जाय, तभी उसके लाभ उठाये जा सकते हैं।

सत्साहित्य के महत्त्व को समझाते हुये उसकी आवश्यकता पूरी करने के लिए उस तरह की खोज-बीन से लेकर व्यवस्था बनाने तक प्रयास हमें करना चाहिए। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि स्वाध्याय योग्य अच्छी पुस्तकें कहीं हैं ही नहीं। वे प्रकाशित होती हैं, कई आदर्शवादी संस्थाओं ने प्रेरणाप्रद साहित्य ही छापने और बेचने का नियम बना रखा है तथा अन्य घटिया स्तर के प्रकाशकों की तुलना में कम लाभ मिलने या घाटा होने पर भी वे अपने नियम पर दृढ़ रहते हैं। कम लाभ के कारण उनकी जानकारी भले ही सर्वसाधारण तक न पहुँचती हो। ऐसी पुस्तकों की खोज की जाय, वे कहाँ से प्रकाशित होती हैं, कैसे प्राप्त हो सकती हैं—इसके लिए प्रयत्न करते रहा जाय।

सार्वजनिक वाचनालयों और पुस्तकालयों में प्रायः अच्छे स्तर का साहित्य मिल जाता है। अपने नगर या कस्बे में कोई अच्छा पुस्तकालय हो, उसका सदस्य अवश्य बनना चाहिए और वहाँ से सत्साहित्य लाकर उसका नियमित अध्ययन करना चाहिए।

ऐसे लोगों से भी सम्पर्क बनाया जाय जिनके पास अच्छी पुस्तकें मिलती हैं और जो अच्छे स्तर का साहित्य पढ़ने में रुचि रखते हों तथा अपने पास भी वैसा साहित्य रखते हों। अपने स्वयं के बजट में भी अच्छा साहित्य खरीदने के लिए व्यवस्था बनानी चाहिए। यह ध्यान रखा जाय कि सच्चे और निःस्वार्थी आत्मीय मित्र मिलना कठिन है लेकिन अच्छी पुस्तकें सहज ही हमारी सच्ची मित्र बन जाती हैं। वे हमें सही रास्ता दिखाती हैं। जीवन पथ पर आगे बढ़ने में हमारी सहायता करती हैं।

ज्ञान की अनेकों असंख्य धारायें हैं। मनुष्य का अपना मस्तिष्क ही एक समय में इतने अधिक विचारों से भरा रहता है कि क्षण-क्षण नई लहरें उठती रहती हैं। इन अनेकताओं के कारण ही आन्तरिक और बाह्य जीवन में अनेकों संघर्ष उत्पन्न होते हैं। विचार संग्राम में पुस्तकें ही मनुष्य जीवन के लिए प्रभावशाली शस्त्र सिद्ध होती हैं। एक व्यक्ति का ज्ञान सीमित, एकांगी हो सकता है लेकिन उत्तम पुस्तकों के स्वाध्याय से मनुष्य अपने आप का सही-सही समाधान ढूँढ़ सकता है।

अतः अन्य सामग्रियों की तरह हमें अपने पास अच्छी पुस्तकों का भी संग्रह करना चाहिये। वरन् उन्हें अन्य आवश्यक वस्तुओं की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया जाय तो भी अति नहीं समझना चाहिए। जीवन के विभिन्न अंगों पर प्रकाश डालने वाले, विविध विषयों के उत्तम ग्रन्थ खरीदने के लिए खर्च के बजट में सुविधानुसार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आवश्यक राशि रखनी चाहिए। कपड़े, भोजन, मकान की तरह ही हमें पुस्तकों के लिए भी आवश्यक खर्च की तरह ही ध्यान रखना चाहिए। उत्तम पुस्तकों के लिए किया गया खर्च बेकार गया ऐसा नहीं समझना चाहिए।

यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि पुस्तकें कमरे को सजाने के लिए अथवा प्रदर्शनियाँ लगाने के लिए न खरीदी जायें वरन् उनका नियमित अध्ययन जीवन के अन्य कार्यक्रमों की तरह ही आवश्यक अंग बना लिया जाय।

सही ढंग से पढ़ें

कथा-कहानियों की पुस्तकें या उपन्यास पढ़ते समय लोग बिना रुके पन्ने पलटते चले जाते हैं। वह ठीक भी हो सकता है क्योंकि पढ़ने का उद्देश्य मनोरंजन मात्र ही तो होता है। ऐसा मनोरंजन साहित्य भी घटिया स्तर का नहीं होना चाहिए, अन्यथा उसकी विपरीत प्रतिक्रिया होती है। मनोरंजन कौतूहल शान्त करने के लिए बिना रुके पढ़ा जा सकता है। पर जिस अध्ययन की बात यहाँ की जा रही है, उस अध्ययन में जल्दी पढ़ लेने या पुस्तक जल्दी समाप्त कर देने की उत्सुकता को दोष समझना चाहिए। क्योंकि इस प्रकार के अध्ययन से हम अपेक्षित लाभ नहीं उठा पाते।

अध्ययन को विचार-परिष्कार का साधन कहा गया है। यह किसी योग साधना से कम नहीं है। इसमें वैसी ही एकाग्रता, तन्मयता और ग्रहणशीलता होनी चाहिए, जैसी कि सफलता के इच्छुक योग साधक में। जो भी पढ़ा जाय धीरे-धीरे पढ़ा जाय, शान्तिपूर्वक पढ़ा जाय—यह नहीं कि पढ़ तो रहे पुस्तक और दिमाग कहीं और दौड़ रहा है, ध्यान कहीं और भटक रहा है। ऐसी स्थिति में हमें सद्विचारों और सद्ज्ञान के सम्पर्क का वह लाभ नहीं मिल पाता जो हमें मिलना चाहिए।

पुस्तक के प्रत्येक अध्याय का प्रत्येक परिच्छेद रुक-रुककर ध्यानपूर्वक पढ़ा जाय। एक पैराग्राफ पढ़ने के बाद थोड़ा रुका जाय, यह चिन्तन किया जाय कि लेखक के कहने का क्या आशय है ? वह जो बात कह रहा है उसका क्या सार है ? उस परिच्छेद के आशय का चिन्तन किया जाय। पढ़ते समय अपने पास नोट बुक भी रख ली जाय, जिसमें कि पुस्तक के महत्त्वपूर्ण अंशों, चुभते वाक्यों और अध्ययन के निष्कर्ष को साथ-साथ नोट करते रहें। यदि पुस्तक अपनी निजी है, तो उसके महत्त्वपूर्ण अंशों पर निशान भी लगाते रहा जा सकता है।

अध्ययन का समय जब समाप्त हो रहा है अर्थात जब अध्ययन पूरा कर लिया जाय तो नियत समय का एक अंश जो पढ़ा गया है, उसके सार चिन्तन में भी लगाना चाहिए। इससे विचार-परिष्कार में काफी मदद मिलती है और विवेक शक्ति का भी विकास होता है। क्योंकि यह कोई आवश्यक नहीं है कि लेखक ने जितनी भी बातें लिखी हैं, वे सब हमारे लिए लाभदायक हों अथवा हमारी आत्मिक प्रगति में सहायक हों। सबकी अपनी-अपनी मान्यतायें होती हैं और अपने-अपने विचार। लेखक अपनी पुस्तक में अपने विचार ही तो प्रस्तुत करता है। दूसरों के विचार भी वह रखेगा तो उसी तरह के, जो उसके प्रतिपादन की पुष्टि करें। ऐसी दशा में अन्धश्रद्धा के साथ जो कुछ भी लिखा गया है, उसे ज्यों का त्यों मान लेने और अपनाते चलने पर बड़ी परेशानी उठ खड़ी होगी। आज हम संयुक्त परिवार का समर्थन करने वाली पुस्तक पढ़कर प्रभावित हुये हैं तो हमारा चिन्तन उसी दिशा में चल रहा है। कल पति-पत्नी को माता-पिता से अलग रहने के लाभ बताने वाली पुस्तक पढ़ी तो उसी के अनुरूप अपना घर अलग बसाने की बात सोच रहे हैं। ऐसी स्थितियों से बचने का एक ही उपाय है कि अपनी विवेक शक्ति को जागरूक रखा जाय और लेखक के प्रतिपादन को आँख मूँदकर न मान लिया जाय।

पढ़ने का समय नियत रखने, अध्ययन को दैनिक जीवन में शामिल कर लेने के साथ-साथ अवकाश का समय भी अध्ययन में ही व्यतीत करने की आदत डाल लेनी चाहिए। पास में कोई काम नहीं है, खाली बैठे हुये हैं तो दिमाग में तरह-तरह के विचार आ रहे हैं। अपनी एकाग्रता को भंग होने देने और विचारशक्ति का अपव्यय करने से बेहतर है कि कोई अच्छी-सी पुस्तक उठा ली जाय और उसे पढ़ा जाता रहे। रेलगाड़ी और बसों में सफर करते हुये लोग खिड़कियों से बाहर झाँकने या अपने साथियों से व्यर्थ की गपशप करने में यात्रा का समय बिताते हैं। यदि वह समय कोई अच्छी-सी पुस्तक, पत्रिका पढ़ने में लगाया जाय तो ज्ञानवृद्धि और मनोरंजन दोनों प्रयोजन पूरे हो जाते हैं।

अध्ययन करते समय व्यर्थ की चिन्तायें और मानसिक उलझनें भी पास नहीं फटकतीं। देखा तो यह भी गया है कि दिमाग जब इस तरह की चिन्ताओं और मानसिक उलझनों से परेशान हो रहा हो तो ऐसे समय में अच्छी पुस्तकों का अध्ययन उन चिन्ताओं और उलझनों को अपने आप ही दूर कर देता है। कारण यह है कि तब उलझनों और चिन्ताओं में नष्ट हो रही शक्ति अध्ययन की दिशा में मुड़ जाती है और उधर खर्च होने लगती है।

स्वाध्यायशील एकाकीपन भी नहीं अखरता। जीवन में ऐसे प्रसंग बहुत बार आते हैं, जब व्यक्ति को एकाकी समय बिताना पड़ता है। सामान्य व्यक्ति उस समय ऊबता और खीजता है, उसे दुर्भाग्य समझता है, किन्तु स्वाध्यायी व्यक्ति उन क्षणों का ऐसा उपयोग कर लेता है कि उसके प्रभाव से सारा जीवन ही आलोकित हो उठे। एकान्त में वह स्वाध्याय के माध्यम से महापुरुषों से सत्संग, विचार-विमर्श करता रहता है। स्वाध्यायी व्यक्ति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कवियों, कलाकारों, मनीषियों की तरह स्वाध्याय के सहारे ज्ञान के अगाध समुद्र में डुबकी लगाकर जीवन को अलंकृत करने वाले अनमोल मोती प्राप्त करते रहते हैं। अस्तु, स्वाध्यायशील व्यक्ति को खाली समय का उपयोग करने के लिए अपने पास हर समय कोई पुस्तक रखनी चाहिए।

जीवन मात्र मनोरंजन नहीं है, इसे **'साधन धाम मोक्ष कर द्वारा'** कहा गया है। इसका सदुपयोग करने के लिए जिस ज्ञान की, जिस बौद्धिक क्षमता की, जिस विवेचना शक्ति की आवश्यकता पड़ती है वह स्वाध्याय के माध्यम से ही उपलब्ध होती है। अतः जीवन से प्रेम करने वाले हर व्यक्ति को ज्ञान का महत्त्व समझना चाहिये, अपने अन्दर जिज्ञासु भाव विकसित करना चाहिए और उसके लिए अनिवार्य स्वाध्याय को जीवन में अनिवार्य स्थान देना चाहिए। उसके योग्य उपयुक्त साहित्य खोजना, खरीदना, लेकर पढ़ना, जो सम्भव हो, वह व्यवस्था बनानी चाहिए। सच्चे अर्थों में अध्ययन को अपनाने वाला व्यक्ति महानता का अधिकारी अवश्य बना है और आगे भी बनता रहेगा।

सत्संग की आवश्यकता और उसकी पूर्ति

जीविका उपार्जन की चिन्ता हर किसी को करनी पड़ती है क्योंकि उसके बिना शरीर यात्रा का उचित निर्वाह नहीं हो सकता। अपने-अपने ढंग से समस्या हरने के लिए प्रत्येक व्यक्ति प्रयत्न करता है। यदि यह सब न हो सका तो बाह्य जीवन के विकास में भारी बाधायें उठ खड़ी होंगी। इसी प्रकार आत्मिक जीवन की प्रगति एवं सुव्यवस्था के लिए अध्ययन की तरह सत्संग को भी बड़ा महत्त्व दिया गया है। इसके अभाव में व्यक्ति का प्रगतिपथ अवरुद्ध ही बना रहता है। यदि ठीक प्रकार अपनाया जाय तो सत्संग में वह शक्ति है कि गिरे हुओं को भी ऊँचा उठाया जा सकता है, उन्हें उसके लिए आवश्यक प्रेरणा व प्रकाश पहुँचाया जा सकता है। सुगन्ध विक्रेता की दुकान के सामने खड़े होने मात्र से मनमोहक गन्ध का लाभ होता है पर यदि कोयला बेचने वाले की दुकान पर बैठा जाय, तो कपड़े काले होने की ही सम्भावना रहेगी।

प्राचीनकाल में हमारे देश में सत्संग का बड़ा महत्त्व था। समाज में शीर्षस्थ व्यक्तियों ने जगह-जगह पर इसकी व्यवस्था की थी और ऐसा क्रम बनाया था कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकता को पूरा कर सके। सर्व-साधारण भी इस तथ्य को समझता और इसकी आवश्यकता अनुभव करता था कि हमें आत्मिक प्रगति के लिए, उच्च मनोभूमि प्राप्त करने के लिए, उत्कृष्ट परिस्थितियों का आनन्द लेने के लिए सत्संग की तलाश करनी चाहिए। लोग इसकी तलाश में जाते थे और ऐसे महापुरुषों की समीपता प्राप्त करते थे, जिनकी निकटता में अपनी चेतना को ऊर्ध्वगामी बनाने की प्रेरणा और शक्ति प्राप्त की जा सके।

जंगलों में, पहाड़ों पर, नदियों के किनारे ऐसे आश्रमों का उन दिनों बाहुल्य था, जहाँ के वातावरण में जीवन-प्रेरणाओं का शक्तिशाली प्रवाह प्रवाहित होता रहता था। आश्रमों के आस-पास हिंसक पशु भी शान्त स्वभाव के हो जाते थे और अपना बैर-विरोध भूलकर मैत्री भाव ग्रहण कर लेते थे। सिंह और गाय सरीखे अति हिंस्र और अति शान्त प्राणी जहाँ साथ-साथ रह सके, सिंहनी जहाँ मृगछौनों को अपना दूध पिलाये—इस तरह का विवरण पढ़ने, सुनने में आश्चर्यजनक भले लगे पर है सत्य। क्योंकि वातावरण का अपना अलग ही प्रभाव है। शराब की दुकान में घुसते ही अनेकों व्यक्ति शराब की हानियाँ और दोष भूल बैठते हैं तथा मद्यपान के लिए उद्यत हो जाते हैं। कामुक व्यक्ति सामान्यतः समाज के डर से चुप रहता है पर वेश्यालय, नाचघर ऐसे स्थान पर जहाँ कि उसकी वासनाओं पर कोई प्रतिबन्ध न हो अपनी प्रकृति और प्रवृत्ति को खुलकर खेलने के लिए तैयार हो जाता है। इसका कारण व्यक्ति की अपनी कमजोरी तो है पर वातावरण का प्रभाव भी अनुपेक्षणीय कारण है।

बुरी आदतें, बुरी इच्छाओं और मनुष्य का आसुरी स्वभाव जब बुरे वातावरण में उभरे बिना नहीं रहता, तो अच्छे वातावरण का अच्छा प्रभाव क्यों नहीं होगा। स्वाध्याय द्वारा हम अच्छे विचार, आदर्शवादी सिद्धान्तों की प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं, पर जो शक्ति हमें खींचकर उस मार्ग में चलने के लिए बाध्य-सी कर देती है, उसके साथ हमारा सम्पर्क नहीं बन पाता है।

आदर्शवादी विचारधारा तथा आदर्शवादी सिद्धान्त तब तक कोई लाभ नहीं पहुँचाते, जब तक कि उन पर अमल करने लायक मनोबल न जुटाया जाय। उसके लिए अलग से प्रयत्न करना पड़ता है। सत्संग से जहाँ आदर्शवादी विचार तथा प्रेरणायें मिलती हैं, वहीं उन पर चलने के लिए आवश्यक बल तथा सहारा भी उन समर्थ व्यक्तियों के सान्निध्य से प्राप्त होता है। वाल्मीकि को कितने ही उपदेश दिये जाते, डाकू जीवन के कितने ही दोष और कितनी ही हानियाँ समझाई जातीं पर उनके जीवन में शायद ही परिवर्तन होता, यदि उन्हें नारदजी का थोड़ा ही सही पर प्राणवान सम्पर्क नहीं मिलता। अंगुलिमाल को बुद्ध से पूर्व कितने ही महात्माओं ने उसे जघन्यकृत्य से विरत करने के लिए उपदेश दिये थे। उन-उन उपदेशों का कोई प्रभाव होना तो दूर रहा, अंगुलिमाल ने उन्हें ही मार डाला और उनकी अँगुलियाँ काटकर माला बना ली। बुद्ध ने अंगुलिमाल को न कोई लम्बा-चौड़ा उपदेश दिया और नहीं यह बताया कि तुम कोई बुरा काम कर रहे हो या अच्छा। एक साधारण-सा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दृष्टिनिक्षेप किया और अंगुलिमाल के व्यक्तित्व में वह परिवर्तन आ गया, जिसके लिए बड़े-बड़े योद्धा और बड़े-बड़े उपदेशक हार चुके थे। इस स्तर का परिवर्तन बुद्ध के जीवन सम्पर्क और उनकी प्राणशक्ति के सान्निध्य में आने से ही हो सका। कहा जाता है कि जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर महावीर स्वामी जब किसी स्थान से गुजर रहे होते, तो जिस स्थान पर वे होते, उसके १२ कोस की परिधि में कोई हिंसा नहीं होती। महान व्यक्तित्वों की उपस्थिति से वातावरण भी प्रभावित होता है और उस वातावरण में रहने—महान व्यक्तित्वों की प्राणशक्ति से लाभ उठाने के लिए ही सत्संग का इतना महत्त्व बताया गया है।

महर्षि वशिष्ठ ने तो सत्संग को सबसे बड़ी साधना भी कहा है। विश्वामित्र अनेक योग साधनायें करके, बड़ी-बड़ी तपश्चर्यायें करके ही जब ब्रह्मर्षि का पद न प्राप्त कर सके, तो उन्होंने ब्रह्मर्षि वशिष्ठ के पास जाकर पूछा कि आपने किस साधन के परिणामस्वरूप ब्रह्मर्षि का पद प्राप्त किया है तो वशिष्ठ ने एक ही उत्तर दिया कि—'सत्संग।'

वेद-शास्त्रों में भी स्थान-स्थान पर सत्संग का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। ऋग्वेद में आता है—

आदित्यासो अदितय: स्याम: पूर्देवत्रवसवोमर्त्यत्रा

(७/५२/१)

अर्थात—मनुष्य को चाहिए कि वह सदैव विद्वानों के सम्पर्क में वास करे तथा सत्य और असत्य का विवेक भाव जाग्रत रखे।

आ नो वयो वय: शयं महान्त गह्वरेष्ठा।
महान्तं पूर्विणेष्ठाम उग्रं वचो अपावधी:।।

(सामवेद ४/२५/२) (३५३)

हमें विद्वान पुरुषों के सदुपदेश ग्रहण कर अपनी आत्मा और मन निर्मल तथा पवित्र बनाना चाहिए। शेष और दुर्गुणों का नाश इसी प्रकार होगा।

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुन:।
उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुन:।।

(अथर्ववेद ४/१३/१)

अर्थात—जो पददलितों को ऊपर उठाते हैं, अपराधियों को पापों से विमुक्त बनाते हैं, ऐसे महापुरुषों के समीप रहकर अपने दोष-दुर्गुणों का परित्याग करें।

भद्रं कर्णेभि: शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्रा: स्थिरै रङ्गै स्तुष्टुवा ँ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायु:।।

(यजुर्वेद २५/२१)

हम विद्वान पुरुषों के साथ रहकर सुन्दर शब्द सुनें, सत्य देखें और परमात्मा की उपासना करें ताकि हमारी आयु लम्बी हो। हम असत्य भाषण न करें, झूठी प्रशंसा न सुनें, खोटा न देखें और व्यभिचार में प्रवृत्त न हों।

शास्त्रों में भी स्थान-स्थान पर सत्संग का महत्त्व और कुसंग का प्रतिफल बताया गया है। जनसाधारण के प्रेरणास्रोत धर्मग्रन्थ रामायण में राम कथा के माध्यम से कई स्थानों पर इसका सुन्दर चित्रण किया। वनवास के समय जब भगवान राम कई ऋषि-मुनियों के आश्रम में जाते हैं, तो वहाँ के वातावरण से बड़े प्रभावित होकर कहते हैं—

दृष्टोऽयमाश्रम: सौम्य बह्वाश्चर्य: कृतात्मनाम्।
विश्वस्त मृगशार्दूलो नाना विहग सेवित:।।

अर्थात—हे सौम्य ! मैंने उन महात्माओं का यह आश्रम देखा। यहाँ तो अनेक आश्चर्यमय वस्तुएँ देख पड़ती हैं। देखो यहाँ पर हिरण तथा सिंह और अनेक पक्षी आपस का बैर-भाव त्यागकर बसे हुये हैं।

रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदासजी ने इस तथ्य को और भी अधिक स्पष्ट रूप में व्यक्त किया है। अरण्यकाण्ड में जब सनकादि मुनि भगवान राम की वन्दना करने के लिए आते हैं, तो उस प्रसंग में कहा गया है कि सत्संग के प्रभाव से बन्धन टूट जाते हैं। श्रेष्ठ व्यक्तियों के अनुभव से वर्षों के तप का लाभ क्षण भर में मिल जाता है—

बड़े भाग पाइअ सतसंगा।
बिनहिं प्रयास होइ भवभंगा।।

वर्षों के तप का लाभ क्षणभर में मिल जाता है—इस कथन में कोई अत्युक्ति नहीं है। तप के द्वारा जो साधना निष्कर्ष प्राप्त होते हैं, उन निष्कर्षों के लिए लम्बे समय तक तपश्चरण करना पड़ता है। जबकि सत्संग में ऋषि-मुनियों और महर्षियों, महापुरुषों के जीवनभर का निचोड़, सार, अनुभव थोड़े ही समय में प्राप्त हो जाता है। इसी से सत्संग को तप की अपेक्षा कहीं श्रेष्ठ कहा गया है। उन अर्थों में, जिनसे कि अनुभवों के द्वारा मार्गदर्शक सूत्र मिलते हैं।

सुन्दरकाण्ड में जब भक्तराज हनुमानजी विभीषण से मिलते हैं, तो विभीषण ऐसा सुअवसर प्राप्त होने की सुखद अनुभूति से गदगद होकर कहते हैं—

अब मोहि भा भरोस हनुमन्ता।
बिनु हरि कृपा मिलहिं न सन्ता।।

जिन लोगों को सच्चे सत्संग के सम्पर्क में आने का अवसर मिलता है, उन क्षणों वे जो कुछ भी प्राप्त करते हैं, उसकी कल्पना भी नहीं की जाती है। यही कारण है कि सत्संग के क्षण भगवत्कृपा से प्राप्त हुये अनुभव होते हैं। यही नहीं कि सन्त-महात्मा भी अपने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्पर्क में आये व्यक्तियों को सत्संग की ही प्रेरणा देते हैं। मानस में भी भगवान शिव मोहग्रस्त गरुड़जी को काकभुशुण्डि के पास भेजते हुए सत्संग का महत्त्व बताते हैं—

तबहिं होइ सब संशय भंगा।
जब बहु काल करिअ सतसंगा।।

सत्संग का महत्त्व बताते हुए ही मानसकार ने एक स्थल पर कहा है—

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला इक संग।
तुलै न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग।।

अर्थात—सभी प्रकार के लौकिक-पारलौकिक सुखों को एक साथ मिलाकर तराजू के एक पलड़े में रख दिया जाय और दूसरे पलड़े में सत्संग से प्राप्त होने वाला सुख रखा जाय, तो सब सुख मिलकर भी सत्संग सुख के बराबर नहीं हो सकते।

सत्संग भी विवेकपूर्ण हो

सत्संग के प्रभाव से, अच्छे पुरुषों की सत्संगति से वर्षों के अभ्यस्त दोष-दुर्गुण जरा-जीर्ण होने लगते हैं। यह उन महापुरुषों के व्यक्तित्व का तेज ही है जो अभ्यस्त दुर्गुणों की जकड़न को ढीला करने लगता है और उन बन्धनों को काटना शुरू कर देता है। इसी कारण वेद-शास्त्रों से लेकर तमाम महापुरुषों, मनीषियों तथा विद्वानों ने सत्संग के महत्त्व को एक स्वर से स्वीकार किया है—तथा आत्मिक प्रगति के लिए उसका सहारा लेने की प्रेरणा दी है। जिन्हें अपनी वर्तमान हीन आन्तरिक स्थिति अखरती हो, जो चाहते हों कि हमारा आत्मिक स्तर भी सुधरे, उन्हें चाहिए कि वे सत्संगति की तलाश करें। लेकिन आजकल सत्संग का जो स्वरूप प्रचलित है, वह इस दिशा में कोई सहायता या मार्गदर्शन प्रदान करने की अपेक्षा प्रतिगामी प्रेरणायें देता है तथाकथित सत्संग का ढोंग जगह-जगह खड़ा दीखता रहता है और लोग इधर-उधर की, बेसिर-पैर की बातें उपदेश-प्रवचनों के नाम पर कहा करते हैं। जिनकी वर्तमान परिस्थितियों में कहीं कोई संगति ही नहीं बैठती और न ही उनमें जीवन उत्कर्ष का ही प्रयोजन पूरा होता है। इस तरह के सत्संगों में आडम्बर बहुत और काम की बातें जरा-सी या लगभग नहीं ही रहती हैं। जैसे कई बार तथा कथित सत्संगों में यह प्रतिपादन होता सुना जाता है कि यह संसार मिथ्या है और माया है। माता-पिता, पत्नी और पुत्र बाँधने वाले बन्धन हैं, उनसे बचने तथा भवसागर को पार करने के लिए केवल भजन-पूजन का आश्रय लो। सत्संग में सम्मिलित होने वाले सभी लोग इस प्रेरणा को ग्रहण तो नहीं करते पर भावुक व्यक्ति जो वाक्-कौशल या वक्ता के व्यक्तित्व से प्रभावित हो जाते हैं, सचमुच ही इन प्रेरणाओं को अपनाने लगते हैं। कच्चे मन-मस्तिष्क के व्यक्तित्व इन्हीं प्रेरणाओं के कारण पलायनवादी बन जाते हैं, पारिवारिक जिम्मेदारियों से बचकर भगवान का भजन-पूजन करने की बात सोचने लगते हैं।

तथाकथित सत्संगों में उन सभी झूठी मान्यताओं का समर्थन किया जाता है, जो व्यक्ति को अकर्मण्य, आलसी, पुरुषार्थ से जी चुराने वाला तथा अपने उत्तरदायित्वों की अवहेलना करने वाला बनाती हैं। जैसे कहा जाता है—सुख-दुःख अपने हाथ की बात नहीं है, वह तो भगवान की इच्छा से आते हैं और भगवान की ही इच्छा से जाते हैं। उन्हें कौन समझाये ? कि हम अपने सुख-दुःख की आप ही सृष्टि करते हैं और जैसे कर्म हम करते हैं, उनके परिणाम में भगवान कहीं भी, किसी भी तरह का हस्तक्षेप नहीं करता।

कहा जाता है कि भगवान उसके भजन से ही खुश हो जाता है। एक बार राम का नाम लेने से सभी पाप छूट जाते हैं। सुविधावादी लोग इसका यह अर्थ लगाते हैं कि कितने ही दुष्कर्म किये जाओ, सब पाप भगवान का नाम लेने से तिरोहित हो जायेंगे। कहने का आशय यह नहीं है कि नाम जप या पूजा-उपासना की कोई अर्थवत्ता ही नहीं है। वह उपयोगी है पर उनकी उपयोगिता की भी एक दार्शनिक पृष्ठभूमि है। उस आधार को लेकर चलने तथा उसी के अनुरूप क्रियाकलाप अपनाने पर नाम-जप तथा पूजा-उपासना अपना परिणाम प्रस्तुत करती है। पर प्रचलित सत्संगों में तो यही प्रतिपादन किया जाता है कि रामनाम ही सब मर्जों की दवा है। उन प्रतिपादनों से ही यह ध्वनि निकलती है कि चाहे कितने पाप किये जायें, भगवान का नाम ले लिया जाय तो सारे कल्मष धुल जाते हैं। ऐसी स्थिति में श्रोता वे प्रेरणायें कहाँ प्राप्त कर सकते हैं, जिनसे कि उन्हें आस्तिकता के व्यावहारिक और वैज्ञानिक नियमों के पालन की दिशा प्राप्त हो।

बुद्धिजीवियों में आस्तिकता और ईश्वरवाद के प्रति व्यापक रूप से उत्पन्न होने वाली अनास्था का कारण भी यही व्यावसायिक प्रतिपादन है, तथाकथित साधु-महात्मा अपने श्रोताओं को प्रभावित करने तथा उन्हें अपने अनुयाई बनाने को इस तरह के सरल किन्तु असंगत प्रतिपादन करते हैं, फलस्वरूप आस्तिक व्यक्तियों के जीवन में अपेक्षित उज्ज्वलता, चरित्रनिष्ठा और नैतिकता के स्थान पर तमाम तरह के दोष-दुर्गुण आने लगते हैं। ऐसे प्रतिगामी ईश्वर भक्तों के व्यक्तित्व में आलस्य-प्रमाद, बेईमानी, अन्धविश्वास, भाग्यवाद पर आस्था आदि विकृतियाँ देखकर विचारशील वर्ग तथाकथित आस्तिकवाद के कारण सच्ची आस्तिकता को भी हानिकर समझने लगें तो उनका अधिक दोष नहीं है।

प्रचलित सत्संगों में से अधिकांश का यही स्वरूप है। इसलिए सत्संग के महत्त्व को समझते हुए उसी से लाभ उठाने के लिए इन दूषित सत्संगों से बचना चाहिए। प्रश्न उठता है फिर सत्संग किसे कहा जाय ? वास्तविक सत्संग की कसौटी क्या हो ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सत्संग उसे ही कहा जाना चाहिए, जिससे हमारे व्यक्तिगत जीवन में वाणी से, चरित्र से उत्कृष्टता की दिशा में अग्रसर होने के लिए आवश्यक प्रकाश तथा प्रेरणायें प्राप्त होती हों। फिर वह प्रवचन या उपदेश के रूप में हो अथवा व्यक्तिगत सम्पर्क के रूप में। सत्संग का अर्थ केवल व्याख्यान सुनना ही नहीं है। बल्कि उसमें हर वह प्रक्रिया आ जाती है, जिसके आधार पर व्यक्ति को अपनी तथा समाज की वर्तमान समस्याओं का सामयिक, व्यावहारिक और आदर्शवादी समाधान प्राप्त हो सके। सत्संग में प्रायः प्राचीन कथा-इतिहासों, पुराणों और धर्मग्रन्थों के आधार पर प्रवचन दिये जाते हैं तथा उन्हीं के आधार पर निष्कर्ष निकाले जाते हैं। तब की और आज की परिस्थितियाँ एक समान तो नहीं हैं। उदाहरण के लिए, मध्यकाल में शील रक्षा के लिये कन्याओं के विवाह छोटी उम्र में ही कर दिये जाते थे। उस समय की परिस्थितियों में वह आवश्यक प्रतीत हुआ होगा पर आज वैसी परिस्थितियाँ नहीं हैं। यदि इन दिनों में किसी प्रकार का शील संकट उत्पन्न हुआ भी है, तो उसका कारण बाहरी कम है, युवक-युवतियों में बढ़ रही आन्तरिक उच्छृंखलता ही अधिक है।

यदि मध्यकाल के आधार पर शील, संकट और उसके समाधान का प्रतिपादन किया जाय तो बाल-विवाह के प्रचलन की प्रेरणा ही उसमें निहित होगी। उच्छृंखलता का समाधान बाल-विवाह से तो होगा नहीं, बाल-विवाह के रूप में एक और विकृति को जीवित रखने का आधार तैयार हो जायेगा।

कथा-इतिहास के आधार भले ही लिये जायें पर समाधान तो आज की परिस्थितियों के अनुरूप ही होना चाहिए। जिस सत्संग में इस तरह की व्यावहारिक विशेषता हो वही उपयोगी है। सत्संग से लाभ उठाने की व्यवस्था में एक अवरोध है, इस व्यस्तता के युग में समय का अभाव और सत्संग के लिए उपयुक्त व्यक्तियों की कमी। समय न मिलने की शिकायत तो प्रायः सभी की रहती है फिर श्रेष्ठ पुरुष अधिक संख्या में मिल सकें, यह भी तो आसान नहीं है। इसी दशा में तथाकथित सत्संगों में पहुँचने और वहाँ से प्रतिगामी चिन्तन लेकर आने का खतरा और भी ज्यादा रहता है।

सत्संग करते समय अपनी विवेक की आँख को खुला रखना चाहिए। यह ठीक है कि सत्संग के साधन जब भी उपलब्ध हों, सत्पुरुषों के साथ विचार-विनिमय एवं सान्निध्य जब भी सम्भव हो तब उसका लाभ उठाया जाय पर यह आसान नहीं है। ऐसे सत्पुरुषों का सान्निध्य सरलता से उपलब्ध नहीं है, जिनके विचारों से उचित अंश ग्रहण करके अपना ज्ञानकोष पूरा किया जा सके और फिर कोई व्यक्ति सत्पुरुष है भी तो उसे सर्वथा निर्भ्रान्त नहीं कहा जा सकता। यदि उसके सभी विचारों को ठीक माना जाय तो उस सत्पुरुष में जो भ्रान्ति थी, वह अपने पल्ले भी पड़ जायेगी। भगवान बुद्ध अति उच्च कोटि के त्यागी, तपस्वी महापुरुष थे, उनकी अधिकांश शिक्षायें भी बड़ी उत्तम और ग्रहणीय हैं पर ईश्वर के अस्तित्व को न मानने का उनका सिद्धान्त उचित नहीं माना जा सकता। यदि कोई व्यक्ति भगवान बुद्ध के प्रति अनन्य श्रद्धा रखे और उनके विचारों में से उचित-अनुचित का विवेक न करे, तो उसे अनीश्वरवादी बनना पड़ेगा और उस मान्यता के दुष्परिणाम को भुगतना पड़ेगा।

सत्संग किया जाय—परन्तु जिनका सत्संग किया जा रहा है, उनके प्रति अन्धश्रद्धा न रखी जायेगी। भले ही कोई सत्पुरुष अपने स्थान पर ठीक हो परन्तु यह भी तो हो सकता है कि उसके प्रतिपादन हमारे स्तर पर अव्यावहारिक सिद्ध हों। कोई भी सिद्धान्त एक स्थान पर ठीक किन्तु किसी दूसरे स्थान पर एकदम विपरीत परिणाम प्रस्तुत करने वाले होंगे। जैसे कहा जा सकता है—भगवान राम के राज्य में लोगों को एक-दूसरे पर इतना विश्वास था कि वे कहीं जाते, तो अपने घरों में ताला नहीं लगाते थे और मकान खुले ही छोड़ देते थे। समाज में इस स्तर की नैतिकता का विकास होना चाहिए, हो सकता है और उस समय की सामाजिक स्थिति आदर्श है हर काल के लिए। वैसी स्थिति लाने के लिए हर किसी को प्रयास करना चाहिए। प्रवचनकर्त्ता कह रहा है कि ऐसा विश्वास हम रख सकें तो अच्छा है। रामराज्य के प्रति हमारे अन्तःकरण में श्रद्धा है और हम उस श्रद्धा को अन्धश्रद्धा की तरह कार्यरूप में उतारें तथा उसी तरह घरों को खुला और असुरक्षित छोड़कर कहीं जाने-आने लगें, तो क्या परिणाम होगा ? कहना आवश्यक नहीं है।

अन्ध श्रद्धा के—जैसा कहा जा रहा है बिना विचार किये वैसा ही स्वीकार कर लेने के अतिरिक्त भावुकता भी सत्संग का एक दोष है। भावुकता के कारण लोग अपनी स्थिति और सिद्धान्त की गुरुता को समझने का प्रयास नहीं करते तथा प्रवचनकर्त्ता का अनुकरण करने की कोशिश में लग जाते हैं। उस दशा में दूसरी विकृतियाँ उत्पन्न होने लगती हैं। जैसे किसी महात्मा के तेज, प्रभाव, ज्ञान और व्यक्तित्व से प्रभावित होकर हम यह सोचने लगें कि संन्यासी बनना हर तरह से श्रेयस्कर है। कोई महात्मा तपस्वी, त्यागी हो सकता है और समस्त दुर्गुणों से रहित भी हो यह भी सम्भव है। लेकिन हम भी संन्यासी बनने के लिए, महात्मा होने के लिए, आतुर हो जायें तथा घर-परिवार छोड़कर भाग खड़े हों तो कितनी परेशानियाँ पैदा हो जायेंगी, परिवार वालों के लिए भी और स्वयं अपने लिए भी। हमारी अनुपस्थिति में परिवार की जिम्मेदारियाँ निभाने वाला कोई होगा नहीं, वहाँ की व्यवस्था अस्त-व्यस्त होगी और परिवार से विलग हो जाने के कारण अपने चित्त में अशान्ति बनी रहेगी सो अलग। बुद्ध के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनेकों युवक संन्यास के लिए, भिक्षु बनने के लिए तैयार हुए। उन्होंने बुद्ध से इस तरह का आग्रह किया पर बुद्ध ने कईयों को इस कारण मना कर दिया कि उनके साथ पारिवारिक उत्तरदायित्व जुड़े हुए थे।

कुछ लोगों ने कहा कि आप भी तो अपनी पत्नी और पुत्र को छोड़कर भिक्षु बन गये थे। बुद्ध ने उत्तर दिया कि—मित्रो, मेरी और तुम्हारी स्थिति भिन्न है। मैंने अपनी पत्नी और पुत्र को छोड़ा तो ऐसी बात नहीं थी कि मेरी अनुपस्थिति में उन्हें असुविधा पैदा हो। राज्य था, राजकोष था, जीवनयापन के लिए समस्त सुविधायें थीं पर तुम्हारे साथ वैसी स्थिति नहीं है। यशोधरा और राहुल के लिए मेरे अतिरिक्त सब कुछ उपलब्ध था पर तुम्हारे लिए तुम्हारे साथ-साथ और सब कुछ भी उपलब्ध नहीं है।

बुद्ध तो यह समझा सके। पर उनके बाद भी कई पलायनवादियों ने घर छोड़कर संन्यास लिया और स्वयं भी अशान्त रहे तथा पारिवारिक शान्ति भी नष्ट-भ्रष्ट की। भावुकता का यह दोष है कि आदमी अपनी स्थिति पर विचार किये बिना अनुकरण करना चाहता है—जो प्रायः अव्यावहारिक सिद्ध होता है और कई दुष्परिणाम आते हैं। महात्मा गाँधी ने बत्तीस वर्ष की आयु में अपनी पत्नी को—कस्तूरबा को माँ कहना आरम्भ कर दिया। गाँधीजी से प्रभावित और भावुकता से युक्त व्यक्ति भी अपनी पत्नी से माँ कहना आरम्भ कर दें, तो सौ में से निन्यानवे व्यक्ति उस सम्बोधन की गरिमा बनाये रखने में असमर्थ होंगे। गाँधीजी के कई अनुयाइयों के साथ ऐसा हुआ भी है।

दिशा सुनिश्चित हो

यह तो हुई किसी एक सत्पुरुष के प्रति अन्धश्रद्धा रखने और भावुकता में बहने की बात। किसी एक सत्पुरुष का सान्निध्य-सत्संग निरन्तर नहीं मिल सकता। सत्संगति के लिए अनेकों सत्पुरुषों के सम्पर्क में आना पड़ता है। यदि सभी के साथ भावुकता में बहा जाने लगे, तो व्यक्ति किसी एक सिद्धान्त पर स्थिर हो ही नहीं सकता। आज हिन्दू धर्म की विशेषतायें सुनीं, तो हिन्दू सिद्धान्तों के प्रति आस्था उदित हुई और वेद-शास्त्रों का अध्ययन करने की योजना बनाई जाने लगी। कल इस्लाम धर्म का भाषण सुना तो इस्लाम मान्यताओं को अपनाने की इच्छा उठने लगी। ईसाई पादरी का भाषण सुनकर ईसा के अनुकरण की उत्कण्ठा जगने लगी। आध्यात्मिक सत्संगों में राम के गुणगान सुनकर राम के प्रति झुकाव हुआ तो बालकृष्ण भक्ति की महिमा सुनकर कृष्ण के प्रति अनुराग जागा। भावुकता के कारण इसी तरह की अनिश्चय, अस्थिर और चंचल मनःस्थिति बनी रहती है। उसमें स्थिरता नहीं आ पाती फलस्वरूप सत्संग करते हुए भी अभीष्ट आध्यात्मिक लाभ नहीं मिल पाता।

सत्संग किया जाय पर उसे परामर्श से अधिक न मानें। यह न समझें वक्ता जो कह रहा है, वही अन्तिम सत्य है—या हमें उसी का पालन करना चाहिए। मूलतः सत्संग का उद्देश्य वातावरण और व्यक्तित्व का सान्निध्य प्राप्त करना है, विचार कर सुन लेना सत्संग नहीं है। अतः विचार सुनने और सिद्धान्तों को समझने के साथ-साथ अपने तर्क और विवेक को भी जाग्रत रखना चाहिए।

सत्संग के विभिन्न रूप

आत्मिक प्रगति में सहायता प्राप्त की जा सके, अपनी तथा समाज की वर्तमान समस्याओं का व्यावहारिक समाधान खोजा जा सके—उस स्तर के सत्संगों की व्यवस्था करनी पड़ेगी। वैसे सत्संग आज कहीं होते नहीं हैं और होते भी हैं तो उन तक सबका पहुँचना सम्भव नहीं होता। प्राचीनकाल में तो विभिन्न रूपों में धार्मिक आयोजनों की व्यवस्था इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए की जाती थी। विद्वान और सत्पुरुषों के निवास का एक निश्चित स्थान रहता था। धार्मिक विभूतियाँ प्रायः तीर्थ स्थानों में ही रहा करतीं। ऐसे तीर्थ देश के कई क्षेत्रों में रहते और लोग तीर्थयात्रा के बहाने वहाँ पहुँचकर सत्पुरुषों की संगति का लाभ उठाया करते। लेकिन ऐसी स्थिति में भी सर्वतोमुखी प्रतिभासम्पन्न विभूतियों का सान्निध्य एक ही स्थान पर प्राप्त नहीं किया जा सकता था। विभूतिवान व्यक्तित्व देशभर में बिखरे रहते थे और उनकी संख्या बहुत कम रहती थी। उन सबका सान्निध्य एक ही स्थान पर सम्मिलित रूप से प्राप्त किया जा सके। इसके लिये जगह-जगह पर वर्ष में एक-दो बार सार्वदेशिक धार्मिक आयोजन रखे जाते थे। कुम्भ पर्व, सोमवती स्नान, धार्मिक मेले आदि इसी तरह की व्यवस्थायें थीं। जिनमें वे लोग भी सत्संग का लाभ उठा सकते थे, जो किन्हीं कारणों से दूरवर्ती तीर्थस्थानों में जाकर सत्पुरुषों के सत्संग-साहित्य का लाभ नहीं उठा पाते थे।

यज्ञ आयोजन, वाजपेय यज्ञ भी इसी तरह का आयोजन था। जिन्हें सुविधानुसार समय-समय पर आयोजित किया जाता था और उनमें आस-पास या दूरवर्ती लोग इकट्ठे होकर प्रवचनों तथा उपदेशों से तो लाभ उठाते ही थे, सत्पुरुषों से व्यक्तिगत विचार-विनिमय कर भी अपनी समस्याओं का समाधान प्राप्त करते थे।

आज भी उसी तरह के सत्संगों का प्रचलन आवश्यक है। कई स्थानों पर सभायें और सम्मेलन हुआ करते हैं। उन्हें सत्संग तो नहीं कहा जा सकता क्योंकि उनका उद्देश्य केवल अपनी विचारधारा की जानकारी देना तथा क्षणिक उत्तेजना पैदा करना होता है। जैसे चुनावों के समय राजनीतिक सभायें होती हैं। उन सभाओं का एक ही उद्देश्य होता है कि जनमानस को अपने पक्ष में मोड़ा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाय और उससे राजनैतिक लाभ उठाये जायें। इस तरह के सभा-सम्मेलनों को सत्संग नहीं कहा जा सकता। सत्संग तो वह है जिससे आदर्शवादी प्रेरणायें प्राप्त हों, समस्याओं के समाधान का रास्ता दिखाई दे। इसके लिए उन विभूतिवान व्यक्तियों को आगे आना चाहिए, जो जीवन की हर समस्याओं पर सुलझा हुआ समाधानकारी दृष्टिकोण रखते हों। जो व्यक्ति इसकी आवश्यकता, अनुभव करते हैं वे ऐसे सम्मेलनों, शिविरों की व्यवस्था कर सकते हैं। उनमें ऐसे सत्पुरुषों को ही आमन्त्रित किया जाय, जो प्रत्येक समस्या के आदर्शवादी समाधान की प्रेरणा दे सकें और शिविर-सम्मेलन में शामिल हुए व्यक्तियों को सुख-शान्ति से लेकर आत्मिक प्रगति तक का सन्मार्गदर्शन करा सकें।

सत्संग का एक स्वरूप धार्मिक कथाओं का आयोजन भी है। रामायण या भागवत की सर्वप्रिय कथाओं के आधार पर सामाजिक और व्यावहारिक सत्प्रेरणायें जगाई जा सकती हैं। सामान्य ढंग से इन कथाओं के आयोजन हर कहीं चलते हैं। प्रवचनकारों में यह आस्था जगाई जाये कि वे इन धर्म माध्यमों से जन-समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत करें। प्रश्नोत्तर शैली में भी सत्संग चलाये जा सकते हैं। अधिकारी सत्पुरुष इसके लिए बैठ जाये, लोग उससे प्रश्न पूछें और वह उनके उत्तर देता चले। लोग समस्यायें रखें और वह उनका समाधान करता जाय। यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात ने जनमानस को अपनी विभूति का लाभ देने के लिए यही पद्धति अपनाई थी। लोग उनसे प्रश्न पूछते और वे प्रश्नों का उत्तर देते थे। कई मर्तबा वे स्वयं भी लोगों से प्रश्नों के माध्यम से ही उनका उत्तर देते थे। सत्संग का यह ढंग भी अपनाया जा सकता है। इस पद्धति में काम की बातें ही उभर कर आती हैं। सीधे-सीधे प्रवचन देने में तो कई व्यर्थ के विषय भी उभरकर आने लगते हैं पर जब प्रश्न चर्चा की शैली अपनाई जाती है, तो लोग केवल काम की बात ही पूछते हैं और उनका जो उत्तर दिया जाता है, उसे गम्भीरतापूर्वक लेते भी हैं। अन्यथा प्रवचनों में जाने वाले लोग आधी से ज्यादा बातें इस कान सुनकर उस कान निकाल देते हैं। क्योंकि वे उन बातों की आवश्यकता और महत्त्व ही नहीं समझते। जैसे प्रकरण चल रहा है अर्थ-सन्तुलन का और इसमें बताया जा रहा है कि कम आमदनी में किस प्रकार गुजारा किया जाय। इस विषय को सुनते समय वे लोग उदासीन ही रहेंगे, जिन्हें पर्याप्त आमदनी हो जाती है या विषय चल रहा है कि ईश्वर को कैसे प्राप्त किया जाय ? सुनने वालों में अस्सी प्रतिशत तो अपनी समस्याओं का समाधान चाहते थे। सोचा था कि इनका कोई हल मिल सकेगा। उन समस्याओं से ग्रस्त व्यक्तियों के लिए ईश्वर प्राप्ति का विषय ही नीरस हो जायेगा। यदि यह कहा जाय कि प्रश्न चर्चा एक अति उपयोगी और सबके काम में आने लायक सत्संग शैली है, तो उचित ही होगा। इसके अतिरिक्त भी सत्संग की और कई पद्धतियाँ हो सकती हैं।

व्यक्तिगत रूप से भी सत्संग की आवश्यकता पूरी की जा सकती है। इसके लिए उन व्यक्तियों के पास जाया जाय, जो हमारी समस्याओं को समझ सकें और उन्हें सुलझाने का मार्गदर्शन दे सकें। सत्पुरुषों से सम्पर्क साधने और उनका मार्गदर्शन प्राप्त करने के पूर्व यह जानना आवश्यक है कि सत्पुरुषों की कसौटी क्या है ? इसके लिए सम्बद्ध व्यक्ति का चरित्र, उसका व्यक्तित्व और उसके गुण ही कसौटी होंगे। उन्हीं के आधार पर किसी की महानता आँकी जा सकती है। सम्भावना तो यह भी रहती है कि जिन्हें हम सत्पुरुष समझें, वे सत्पुरुष होने का ढोंग भर कर रहे हों और वास्तव में सत्पुरुष न हों। इस सम्भावना के दुष्परिणाम को निरस्त करने के लिए अपने विवेक को निर्णायक बनाना चाहिए। वर्तमान परिस्थितियों में यह भले ही सूझता हो कि उनके समाधान का रास्ता क्या है ? पर किसी के द्वारा राह दिखा दी जाने के बाद तो जाना ही जा सकता है कि यह राह सही है अथवा गलत। अँधेरे चौराहे पर रास्ता भले ही न दिखाई दे, पर जब प्रकाश हो जाय, कोई व्यक्ति दीपक जला दे या उजाला कर दे तो हमारी आँखें यह तो पहचान सकती हैं कि सही रास्ता किधर है ? बाहरी व्यक्ति परामर्श ही दे सकता है, उसके औचित्य और अनौचित्य का विवेक तो हममें ही होना चाहिए। रास्ते पर चलना तो हमें ही पड़ेगा।

पत्र व्यवहार के द्वारा भी व्यक्तिगत सम्पर्क बनाया जा सकता है। जिनके प्रति हमारे अन्तःकरण में श्रद्धा हो, जिन्हें हम सत्पुरुष समझते हों, यह जानते हों कि वे हमारी समस्याओं में रुचि ले सकते हैं तथा उनका समाधान कर सकते हैं तो उनसे पत्र द्वारा सम्पर्क स्थापित कर मार्गदर्शन प्राप्त किया जा सकता है। समस्याओं के समाधान हेतु ही पत्र व्यवहार किया जाय—सत्संग के लिए इतना मात्र ही काफी नहीं है। जिन सत्पुरुषों का सत्संग हम चाहते हैं और उनसे दूर होने के कारण वह मिल नहीं पाता, तो पत्राचार उनका लाभ उठाने का एक सरल साधन है।

सत्पुरुषों से सम्पर्क—भले वह व्याख्यान के द्वारा हो या विचार-विमर्श के द्वारा, उनका साहित्य पढ़ने से हो अथवा पत्र व्यवहार से—हमारा हर तरह से हित करता है। प्राण शक्ति का लाभ, दिशा प्राप्ति का लाभ, उलझनों को सुलझाने तथा अपने व्यक्तित्व को विकसित करने का लाभ कई दृष्टियों से वह सम्पर्क या सान्निध्य हमारे लिए हितकारी ही होता है। उस सान्निध्य को पारस और सोने का स्पर्श कहा जा सकता है। लोहा पारस को छूकर सोना बन जाता है या नहीं। पारस कहीं है या नहीं ? कहा नहीं जा सकता। पर सत्पुरुषों के रूप में उन्हीं क्षमताओं से सम्पन्न ऐसी व्यवस्था परमात्मा ने जरूर हमारे लिए सुलभ करा रखी है, जिसके द्वारा हम अपने व्यक्तित्व को कंचन में बदल सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वाध्याय और मनन मानसिक परिष्कार के दो साधन

मन वैसाखी गधे की तरह है, जिसे नहला धुला देने पर भी मलीनता प्रिय लगती है और दूसरे ही दिन धूलि में लोटकर फिर पहले जैसी गन्दगी में लिपट जाता है। हाथी की आदत भी ऐसी ही होती है। नदी, तालाब में बैठा स्वच्छ होता रहेगा पर जब बाहर निकलेगा तो सूँड में रेत भरकर सारे बदन पर डाल लेगा। न जाने गन्दगी में इन्हें क्या मजा आता है ?

मन की आदत भी ऐसी ही गन्दी है। स्वाध्याय और सत्संग के सम्पर्क में आकर कुछ समय के लिए ऐसा सज्जन बन जाता है मानो संत हो। रामायण, गीता सुनते समय आँख में आँसू आते हैं। नरक की पीड़ायें जानकर पश्चाताप भी होता है और मृत्यु की जब याद दिलाई जाती है, तब डर भी लगता है कि मौत के दिन समीप आ पहुँचे। जिन्दगी बीत चली। अब बचे-खुचे दिनों का तो सदुपयोग कर लें। पर यह ज्ञान देर तक नहीं ठहरता, किसी मुर्दे को जलाने जाते हैं तब मरघट में 'श्मशान वैराग्य' उठता है। काया नाशवान होने की बात सूझती और लगता है इस क्षणभंगुर जीवन के लिए क्या बुराइयाँ ओढ़नी, क्यों पाप करने, क्या अहंकार करना—किस बात पर इतराना। उस समय तो यही ज्ञान सही जँचता है पर घर आते-आते वह वैराग्य न जाने कहाँ हवा में उड़ जाता है और उसी पुराने ढर्रे पर गाड़ी के पहिये लुढ़कने लगते हैं।

यही स्थिति सदा बनी रहे तो ज्ञान, परमार्थ की बात बेकार है। चिकने घड़े की तरह यदि श्रेष्ठता भीतर घुसे ही नहीं तो बाहर की लीपा-पोती से क्या काम चलेगा ? ज्ञान की सार्थकता तो तब है, जब उसका प्रभाव अन्तःकरण पर पड़े और जीवन की रीति-नीति बदले। ऐसा न हो सका तो पढ़ने-सुनने के, पोथी के बेंगने भूख को कहाँ बुझाते हैं ?

हमें यह ध्यान में रखकर चलना चाहिए कि मन की मलीनता बढ़ाने के लिए कुछ बड़े और लगातार प्रयत्न करने पड़ते हैं, तब कहीं यह काबू में आता है। घोड़े को सही रास्ते पर चलाने के लिए उसके मुँह में लगाम लगानी पड़ती है और हाथ में चाबुक रखना पड़ता है। ऐसा ही प्रबन्ध मन के लिए किया जा सके तो ही वह रास्ते पर चलेगा।

नित्य स्वाध्याय की नियमित व्यवस्था रखनी चाहिए। स्वाध्याय का विषय केवल एक होना चाहिए—आत्म-निरीक्षण एवं आत्म-परिशोधन का मार्गदर्शन। जो पुस्तकें इस प्रयोजन को पूरा करती हैं, आन्तरिक समस्याओं के समाधान में योगदान करती हैं केवल उन्हें ही इस प्रयोजन के लिए चुनना चाहिए। कथा-पुराणों का उपयोग इस प्रसंग में निरर्थक है। पुस्तक पढ़ने की चिह्न-पूजा से कुछ काम नहीं चलेगा। आज की गुत्थियों को—आज की परिस्थितियों में—आज के ढंग से किस तरह सुलझाया जा सकता है—सो उसका दूरदर्शितापूर्ण हल प्रस्तुत करें, वही उपयुक्त स्वाध्याय साहित्य है। ऐसी पुस्तकों को हमें छाँटना और चुनना पड़ेगा। उन्हें नित्य-नियमित रूप से गम्भीरता और एकाग्रतापूर्वक पढ़ने के लिए समय नियत करना पड़ेगा। अन्तःकरण की भूख बुझाने के लिए यह स्वाध्याय साधना नितान्त आवश्यक है।

स्वाध्याय के बाद आता है मनन-चिन्तन। जो पढ़ा है, उस पर बार-बार कई दृष्टिकोणों से विचार करना चाहिए और यह देखना चाहिए कि उस प्रकाश को जीवन में धारण करने के लिए क्या किया जाना चाहिए ? यदि वे सत्प्रवृत्तियाँ अपने में नहीं हैं या कम हैं तो उन्हें बढ़ाने का क्या उपाय है ? आदर्शों को अपने व्यक्तित्व में घुलाने के प्रसंग पर ऊहापोह करना, मनन और चिन्तन का मुख्य उद्देश्य है—कमरे में नित्य झाड़ू लगाते हैं, स्नान रोज करते हैं, दाँत रोज साफ किये जाते हैं, बर्तन रोज साफ करने पड़ते हैं। मन को मलीनता की आदत से विरत करने के लिए उसे स्वाध्याय और मनन-चिन्तन के बन्धन में नित्य बाँधना चाहिए। रास्ते पर चलने के लिए वह तभी सहमत हो सकेगा।

स्वाध्याय का आधार मनन—चिन्तन

बतलाया जा चुका है कि स्वाध्याय के अन्तर्गत अध्ययन एवं सत्संग दोनों आते हैं। किन्तु मात्र पढ़ना, सुनना स्वाध्याय नहीं है। जब तक पढ़े हुए अथवा सुने हुए को अन्तःकरण की गहराइयों में उतारने की स्थिति न बन पड़े, तब तक उन्हें न तो स्वाध्याय की श्रेणी में प्रवेश मिल सकता है और न उनको अपेक्षित लाभ ही प्राप्त हो सकता है। वास्तव में स्वाध्याय शब्द में भी 'स्व' और 'अध्ययन' दोनों का समावेश है। जब मनुष्य स्वयं अपने अन्तःकरण की गहराइयों में मनन-चिन्तन के सहारे उतरता है, तभी वह वहाँ वांछित तत्त्वों का बीजारोपण अथवा अवांछनीय का उन्मूलन, निष्कासन कर पाता है। इस दृष्टि से मनन एवं चिन्तन को स्वाध्याय का मूल आधार कहना अत्युक्ति नहीं है।

स्थूल ज्ञान द्वारा हम अपनी सांसारिक जानकारियाँ बढ़ाकर अपने मस्तिष्क को अधिक उर्वर, सक्षम और समर्थ बना सकते हैं। यश, धन, व्यक्तित्व, शिल्प-कौशल आदि इस स्थूल ज्ञान के आधार पर ही प्राप्त किये जा सकते हैं, जिसे शिक्षा भी कहा जा सकता है। शिक्षा सांसारिक जानकारी देती है और उसकी पहुँच मस्तिष्क तक ही होती है। इससे गहराई तक जो पहुँचती है मस्तिष्क से आगे अन्तःकरण तक जिसका प्रवेश है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विद्या है। इस विद्या का आधार आध्यात्मिक ज्ञान है और उसकी उपलब्धि अध्ययन तथा सत्संग द्वारा होती है।

अन्तःकरण तक प्रवेश करने में सक्षम विद्या से लाभान्वित होने के लिए अपने सामने एक आदर्श होना अनिवार्य है। उस आदर्श का आधार अध्ययन द्वारा अर्जित ज्ञान भी हो सकता है तथा कोई ऐसा सत्पुरुष भी हो सकता है, जिसने इस विद्या को—तत्त्वज्ञान को हृदयंगम किया हो, आत्मसात् किया हो, अपने जीवन में उतारा हो। आधार प्राप्त न हो तो वह विद्या भी एक तरह की भौतिक शिक्षा मात्र बनकर ही रह जाती है और उससे अभीष्ट प्रयोजन पूरा नहीं हो पाता। आध्यात्मिक ज्ञान—तत्त्वज्ञान का उद्देश्य आन्तरिक प्रभाव, प्रकाश एवं प्रगति लाना है। लोग सांसारिक जानकारियों के बारे में बहुत चतुर, निपुण और निष्णात होते हैं, अपनी प्रतिभा के बल पर धन, यश, सुख और पद प्राप्त करते हैं। किन्तु खेद है कि अपने अस्तित्व, स्वरूप, उद्देश्य और कर्त्तव्य के बारे में तात्विक दृष्टि से अनजान ही बने रहते हैं। यों इन विषयों पर भी वे एक लम्बी स्पीच झाड़ सकते हैं, पर यह केवल उनका मस्तिष्कीय चमत्कार भर होता है, यदि आत्मज्ञान का थोड़ा भी तात्त्विक प्रकाश मनुष्य के अन्तःकरण में पहुँच जाय, तो उसकी जीवन दिशा में उत्कृष्टता का समावेश हुये बिना नहीं रह सकता। उसकी विचारणा, निष्ठा और गतिविधि सामान्य लोगों जैसी नहीं—असामान्य पाई जायेगी। सच्चा आत्मज्ञान केवल जानकारी भर बनकर नहीं रह सकता है। उसकी पहुँच अन्तःकरण के गहन स्तर तक होती है और उस स्थान तक पहुँचा हुआ प्रकाश जीवनक्रम में प्रकाशित हुए बिना नहीं रह सकता।

अध्यात्मवाद का प्रथम प्रशिक्षण आत्म-ज्ञान की उपलब्धि के साथ ही दिया जाता है। उपनिषदकार ने पुकार-पुकार कर कहा है—

आत्मा व अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।

"अपने को सुनो, अपने बारे में जानो, अपने को देखो और अपने बारे में बार-बार मनन-चिन्तन करो।" वस्तुतः हम अपने को शरीर मानकर जीवन की उन गतिविधियों का निर्धारण करते हैं, जिनसे केवल शरीर का ही यत्किंचित स्वार्थ सिद्ध होता है। आत्मा के हित और कल्पना के लिये हमारे जीवनक्रम में प्रायः नहीं के बराबर स्थान रहता है। यदि हम अपने को आत्मा और शरीर को उसका एक वाहन औजार मात्र समझें तो सारा दृष्टिकोण ही बदल जाय। समस्त गतिविधियाँ ही उलट जायें तब हम आत्मा के हित, लाभ और कल्याण को ध्यान में रखकर अपनी रीति-नीति निर्धारित करें।

यह दिशा अध्ययन और सत्संग द्वारा प्राप्त होती है। लेकिन केवल अध्ययन और सत्संग उस दिशा में अग्रसर नहीं कर पाते। उसके लिए चाहिये वह प्रखरता और निष्ठा, जो व्यक्ति को आत्मिक उत्कर्ष की दिशा में आगे कदम उठाने के लिए बाध्य करे। विकास के सभी चरण श्रमसाध्य होते हैं, जबकि पतन के लिए कुछ नहीं करना पड़ता। पहाड़ की चोटी पर चढ़ने के लिए भारी परिश्रम करना पड़ता है, पैर थक जाते हैं, कमर दुख चलती है, साँस फूलने लगती है, जगह-जगह विश्राम करने के लिए बैठना पड़ता है; पर पहाड़ से कूदकर आत्महत्या करने में क्षणभर भी नहीं लगता। पहाड़ की चोटी पर पहुँचकर एक कदम असावधानी का उठा कि गहरे खड्ड में जा गिरे। आध्यात्मिक उन्नति भी प्रयत्न और श्रमसाध्य है तथा उसके लिए कठिन पुरुषार्थ करना पड़ता है।

किसी भी व्यवसाय में लगने और सफल होने अथवा कोई लक्ष्य प्राप्त करने के पूर्व तीन बातों की आवश्यकता होती है। पहली तद्विषयक जानकारी प्राप्त करना, दूसरी अपनी स्थिति को तौलना कहाँ त्रुटि है ? यह जानना अपने पास कितनी पूँजी है, यह देखना तथा कितनी और आवश्यकता है ? यह पता लगाना। इसके बाद तीसरी आवश्यकता सम्भावित त्रुटियों को दूर करने, आवश्यकतानुसार पूँजी बढ़ाने तथा कार्य की सफलता के लिए योजना बनाने की है। आध्यात्मिक लक्ष्य प्राप्त करने के लिए आवश्यक जानकारी अध्ययन और सत्संग द्वारा प्राप्त होती है। इससे आगे की तैयारी के दो साधन हैं—मनन और चिन्तन। मनन अर्थात यह देखना कि हममें क्या कमियाँ हैं ? उन कमियों के कारण कहाँ त्रुटि हो रही है तथा उन्हें किस प्रकार दूर किया जा सकता है। चिन्तन उस प्रक्रिया का नाम है, जिसमें साधक मनन से प्राप्त निष्कर्षों के अनुरूप आत्मसमर्पण की योजना को क्रियान्वित करता है, उसकी व्यावहारिक योजना बनाता है।

मनन और चिन्तन एक ही साधना के अंग हैं, एक ही पग के दो चरण हैं पर उनकी गम्भीरता को देखते हुए दोनों को अलग-अलग समझना आवश्यक है। कोई भी व्यक्ति पूर्ण नहीं होता और साधक जब आत्मिक प्रगति का लक्ष्य प्राप्त करने की ठान लेता है, अध्ययन और सत्संग द्वारा उस लक्ष्य को प्राप्त करने की राह खोजता है, तो उसे अपनी त्रुटियाँ विकराल रूप में दिखाई देती हैं। उथली मनोवृत्ति के लोग जिन्हें आत्मिक प्रगति से कोई विशेष लगाव नहीं होता तो इस कान से सुनकर उस कान से निकाल देते हैं अथवा कहानी-उपन्यासों की तरह सत्साहित्य को भी हल्के-फुल्के मूड से पढ़कर डाल देते हैं। पर जिन्हें आत्मिक प्रगति से वस्तुतः लगाव है और जो किसी भी मूल्य पर अपने लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते हैं, अध्ययन और सत्संग में उच्चादर्शों से अवगत होकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं कि उन आदर्शों को कैसे व्यवहार में उतारें।

उसकी योजना अपने को ही बनानी पड़ती है। क्योंकि अपनी स्थिति की जानकारी अपने से अधिक और किसी को नहीं होती। दूसरे परामर्श दे सकते हैं, अपनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समस्यायें सामने रखने पर उसका समाधान सुझा सकते हैं। पर अपनी स्थिति और सामर्थ्य के अनुरूप आत्मविकास की मंजिलें तय तो हमें ही करनी होंगी। उन उच्चादर्शों को अपनी परिस्थितियों के अनुरूप क्रियान्वित करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि हममें क्या त्रुटियाँ हैं ? उन त्रुटियों की शोध, अपनी समीक्षा-मनन द्वार की जाती है।

मनन के लिए नियमित अभ्यास करना चाहिए। पूजा-उपासना का क्रम जिस प्रकार नियमित रूप से अपनाया जाता है, उसी प्रकार मनन-चिन्तन का भी नियमित क्रम बनाना चाहिए, उन्हें अपनी दिनचर्या में शामिल करना चाहिए। यह साधना-पूजा-उपासना की तरह ही उपयोगी और आवश्यक है। पूजा-उपासना से हम अपने इष्टदेव की छवि देखते, उनका सान्निध्य अनुभव करते और उनसे प्रेम निवेदन करते हैं तो मनन-चिन्तन द्वारा स्वयं को अपने इष्टदेव के चरणों में अर्पित करने योग्य बनाने की योजना तैयार करते हैं।

इस साधना को नियमित रूप से, नियत समय पर एकान्त स्थान में सम्पन्न किया जाय। पूजा की कोठरी या जहाँ एकान्त सुलभ हो सके, ऐसा स्थान मिल सके तो उत्तम हो। दिन भर की घटनाओं और शारीरिक, मानसिक तथा पारिवारिक उलझनों को उस समय मस्तिष्क से एकदम निकालकर बाहर कर दिया जाय तथा सूक्ष्म दृष्टि से यह देखने का प्रयास किया जाय कि हमारे भीतर क्या-क्या दोष भरे हुए हैं ? बहुत-सी बुराइयाँ ऐसी होती हैं जो बाहर से तो लोगों को दिखाई नहीं देतीं पर मनःक्षेत्र में उमड़ती-घुमड़ती हैं। उदाहरण के लिए कामुक विचार। कोई भी व्यक्ति सच्चरित्र है अथवा लम्पट इसका फैसला दूसरे लोग तो हमारे क्रियाकलाप देखकर ही कर सकते हैं। लेकिन हमारे भीतर कामुकता के विचार कितना सिर उठाते हैं, इस बात की जानकारी हमें स्वयं ही रहती है और इसी आधार पर हम अपने को सच्चरित्र या दुश्चरित्र मानते हैं।

कोई व्यक्ति भले ही न कहे पर आन्तरिक दोष व्यक्ति में हीनता का भाव जरूर उत्पन्न कर देते हैं। हमारे प्रति लोगों के मन-मस्तिष्क में क्या विचार अथवा क्या भावनायें उठ रही हैं यह तो देखा नहीं जा सकता। उनके क्रियाकलाप ही दिखाई देते हैं। इसलिए सीधे-सादे लोग दूसरों को सदाचारी तथा स्वयं को गिरा हुआ और पतित समझने लगते हैं। यह हीनता का भाव जब हीनता की ग्रन्थि बन जाता है, तो दूसरों में भी वे ही दोष दिखाई देने लगते हैं। विचार किया जाने लगता है, इसके मन में भी बुरी भावनायें तो उठती ही होंगी। दूसरों को मापदण्ड बना लेने के कारण व्यक्ति का ध्यान अपने दोषों की ओर जाता ही नहीं, जबकि मनन में अपने ही दोषों को देखने और ढूँढ़ने की प्रक्रिया अपनानी पड़ती है।

सिद्धान्त और आधार

उसके लिए एक पैनी दृष्टि, सूक्ष्म विवेचना शक्ति विकसित करनी पड़ती है। क्योंकि मन इतना चालाक और इतना जिद्दी है कि वह अभ्यस्त दुर्भावों और दुष्प्रवृत्तियों को आसानी से छोड़ना नहीं चाहता। जैसे साधारण-सी बात को लेकर किसी पर क्रोध आ जाता है, किसी से बैर-वैमनस्य उत्पन्न हो जाता है, तो मन उसमें प्रतिपक्षी को ही हर तरह से दोषी ठहराता है। उन्मत्त क्रोध से यह भी विचार उठने लगता है कि प्रतिपक्षी को निर्मूल कर दिया जाय और उसके लिए हजार तरह के तर्क देने लगता है। शत्रु को, आततायी को निर्मूल कर देने के लिए हजार तरह के उदाहरण दिखाई देने लगते हैं। राम ने रावण को मारा था, कृष्ण ने कंस का संहार किया था, परशुराम ने क्षत्रियों का विनाश किया था। इन अब धार्मिक आदर्श प्रसंगों से अपनी दुर्भावना की पुष्टि भी होती दिखाई दे तो औचित्य और अनौचित्य के नीर-क्षीर विवेक का आधार क्या है ? उसकी कसौटी क्या है ?

मनन-चिन्तन के समय विकसित चेतना ही काम आती है, जो उचित और अनुचित का निर्णय दे सकती है। ऐसी द्वन्द्वात्मक स्थिति में अपनी चेतना को एक न्यायाधीश की भाँति प्रतिष्ठित करना चाहिए और उसके सामने मन को तथा बुद्धि को तर्क-वितर्क करने देना चाहिए। आवश्यक मानसिक संस्कार और चिन्तन, परिष्कार के अभाव में कई बार न्यायाधीश बनी चेतना के लिये भी सुनिश्चित और आदर्शवादी निर्णय ले पाना कठिन हो जाता है। ऐसी दशा में श्रद्धास्पद और विश्वसनीय सत्पुरुषों का मार्गदर्शन लेना चाहिए, उनसे परामर्श करना चाहिए कि हमारे लिए क्या उचित है ? जैसे कभी इस विषय पर मनन चला कि हम प्रायः रुग्ण क्यों रहते हैं? न कोई ऐसी चीज खाते हैं, जिससे अमुक रोग हमारे पल्ले बँधे और न आहार-विहार में कोई ऐसी गड़बड़ी आने दी, जिसके कारण वह रोग उत्पन्न हुआ हो। इसी दशा में किसी ने मन में यह वहम पैदा कर दिया कि यह रोग जादू-टोना कर दिये जाने से हुआ है। कोई आपका बैरी है, जो आपकी प्रगति से ईर्ष्या करता है या आपके प्रति द्वेष रखता है और उसी का यह काम है।

मनन—अपनी त्रुटियों की समीक्षा करते समय मन को कई बार यह बात उचित जँचती है। आहार-विहार की विवेचना के बाद बुद्धि भी किसी कोण से इसका समर्थन कर देती है कि ऐसा हो सकता है। इस तरह के जादू-टोनों में व्यक्ति का विश्वास है, तो उसका आन्तरिक न्यायाधीश भी कोई चारा न देखकर इस निष्कर्ष का समर्थन कर देता है। लेकिन उस समय अन्तःकरण में एक कमी तो कसकती ही है कि कहीं कोई त्रुटि हो रही है। पर कोई और रास्ता न दिखाई देने के कारण उसी पक्ष को स्वीकार करना पड़ता है। उस द्वन्द्वपूर्ण अनिश्चय की दशा में किसी ऐसे सत्पुरुष से सम्पर्क स्थापित कर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उनका परामर्श लेना ही उचित होता है, जो हमारी शंकाओं का समाधान कर सकें और उन त्रुटियों का बोध करा सकें, जिनके कारण स्वास्थ्य में यह गड़बड़ी उत्पन्न हुई है।

उन गड़बड़ियों को दूर करने, अपनी स्थिति का ठीक-ठीक मूल्यांकन कर तदनुसार कदम उठाने की योजना, उसके लिए क्या किया जाना चाहिए ? इसकी रूपरेखा बनाना चिन्तन के अन्तर्गत आता है। लोग अपनी स्थिति को तो देखते नहीं और बड़ी ऊँची-ऊँची कल्पनायें कर लिया करते हैं। जैसे किसी के पास इतने आर्थिक साधन भी नहीं हैं कि दो वक्त का भोजन किया जा सके, न इतनी योग्यता है कि उससे अधिक कुछ उपार्जन कर सके पर अपने लिए सोच यह लिया कि हमें राकफेलर या विरला बनना है।

कहा जाता है कि मनुष्य जो चाहे बन सकता है। ठीक है यह, लेकिन चाहने भर से नहीं हो सकता। मनुष्य में इतनी सम्भावनायें तो हैं कि वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर ले पर इच्छा और संकल्प मात्र से ही उन क्षमताओं को जगाना तथा सम्भावनाओं को साकार करना असम्भव है। विपन्नता की स्थिति से उठने और सम्पन्नता, प्रचुर सम्पदा अर्जित करने के लिए योजनाबद्ध प्रयास चाहिए। मनन के अन्तर्गत अपनी कमियों को देखना और अपनी स्थिति को तौलना आता है, तो चिन्तन में उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए क्या कदम उठाने पड़ेंगे यह सोचना आ जाता है। हमारी आमदनी किस प्रकार बढ़े, हम कम से कम खर्च किस तरह करें ? ताकि हमारे पास बचत हो और उस बचत का उपयोग किस तरह किया जाय आदि बातें चिन्तन के अन्तर्गत आ जाती हैं।

आज की समस्याओं और आज की विकृतियों का समाधान खोजने के लिए आवश्यक है यह देखना कि उनकी जड़ कहाँ से चली आ रही है ? इसके लिए विगत जीवन की समीक्षा की जानी चाहिए। जैसे किसी विद्यार्थी के सामने यह समस्या है कि वह परीक्षा में फेल हो गया। विद्यार्थी मनन के अन्तर्गत यह समीक्षा करेगा कि मेरे फेल होने का क्या कारण है ? मनन के अन्तर्गत यह भी सोचा जा सकता है कि हमारे अध्यापकों से अच्छे सम्बन्ध नहीं हैं, मास्टर हमसे नाराज रहे हैं इस कारण हमें फेल कर दिया गया। यह जिम्मेदारी से बचने और अपनी गल्तियों पर पर्दा डालकर आत्मसंतोष कर लेने वाला पक्ष है। मनन का यह उथला स्तर है। वास्तविक कारणों को जानने के लिए गहराई तक जाना चाहिए कि पिछले वर्ष की अपेक्षा इस वर्ष हमने पढ़ाई पर कम ध्यान तो नहीं दिया ! यदि कम ध्यान दिया है तो हमारा ध्यान किन बातों की ओर बँटा रहा है ? और हमने किन कारणों से अपने ध्यान को बिखरने दिया ? इस वर्ष हमने खेल-कूद में ज्यादा रुचि तो नहीं ली और पढ़ाई की उपेक्षा कर दी हो, हम जासूसी उपन्यास और फिल्मी पत्रिकायें ही पढ़ते रहे हों या स्कूल की अपेक्षा मित्रों में मिलने-जुलने में, सैर-सपाटे में ज्यादा रुचि लेते रहे हों। यदि अपनी गतिविधियों और प्रवृत्तियों की गहन समीक्षा की जाय तो सभी गल्तियाँ और दोष सामने आ खड़े हो सकते हैं। जिनके कारण परीक्षा में असफलता का मुँह देखना पड़ा।

चिन्तन के अन्तर्गत उन दोषों और त्रुटियों को दूर करने के लिए योजना बनाने का विचार मन्थन चलता है। जैसे—विद्यार्थी अपने मित्रों में गपशप करने या सैर-सपाटे और मौज-मजों में अपना सारा समय नष्ट कर देने के कारण पढ़ाई पर ध्यान नहीं दे पाया, तो इन अवरोधों को कैसे दूर हटाया जाय ? तथा अध्ययन, अभ्यास में और किन विशेषताओं को सम्मिलित किया जाय ? ताकि हमारी ग्रहणशीलता और भी प्रखर हो। मित्रों की एकदम तो उपेक्षा नहीं की जा सकती लेकिन उनके कारण अभ्यासक्रम में दो व्यवधान आते हैं, उन्हें दूर हटाने के लिए अधिकांश समय उनके सम्पर्क में रहते हुए नहीं बिताया जा सकता। स्पष्ट रूप से मना कर मित्रों को नाराज करने की अपेक्षा है कि उस समय अध्ययन में व्यस्त हो जाया जाय। ऐसे समय में मित्र यदि साथ चलने और सैर-सपाटे करने का आग्रह करते हैं, तो उनसे क्षमा माँग ली जाय। यह भी हो सकता है कि शिक्षाभ्यास नियमित रूप से नहीं चल रहा हो। उसे नियमित बनाने की बात सोची जाय और जो-जो भी कारण शिक्षाभ्यास को नियमित नहीं होने देते, उन्हें दूर हटाने का कार्यक्रम बनाया जाय।

व्यावहारिक स्वरूप

दुकानदारी में पिछले वर्ष की अपेक्षा इस वर्ष कम लाभ हुआ है या घाटा हुआ है। मनन में इस घाटे का कारण खोजना पड़ता है। ग्राहक कम आने लगे। क्या वे जितना दाम देते थे उतने दाम की वस्तु है ? इस बात का उन्हें सन्तोष नहीं होता था अथवा ग्राहकों से गलत व्यवहार किया जाने लगा था या दुकान में सामान बेचने के बाद होने वाली आमदनी को बेहिसाब घर खर्च में लें लिया जाने लगा ? या उधार सामान ज्यादा दे दिया गया ? जिन लोगों ने उधार लिया, उन्होंने वापस चुकाया अथवा नहीं ? हिसाब-किताब में तो कोई गलती नहीं हुई ? ढेरों प्रश्न हो सकते हैं और अनेकों प्रश्न हैं, जो अपने से पूछे जा सकते हैं तथा जिन पर विचार किया जा सकता है।

जो भी कारण सामने आयें, उनके निराकरण की पृष्ठभूमि तथा वांछित लक्ष्य को प्राप्त करने की तैयारी चिन्तन में आती है। उदाहरण के लिए, दुकान पर ग्राहकों की संख्या घट गयी। मनन-समीक्षा से जो कारण सामने आये ग्राहक घटने के उन्हें दूर करने की योजना बनाई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाय। यदि ग्राहकों से कहीं व्यवहार, सम्बन्ध बिगड़ने लगे हैं, तो उन्हें कैसे सुधारा जाय ? उनसे मधुर व्यवहार किया जाय, सम्मानपूर्वक बोला जाय, उनकी सुविधाओं का ध्यान किस प्रकार रखा जाय ? यदि घाटे का कारण हिसाब-किताब में गड़बड़ी आना है, तो दुकान का हिसाब-किताब रोज का रोज लिखने की आदत डाली जाय। आमदनी में से कोई रकम बिना हिसाब मिलाये खर्च नहीं की जाय, न ही इस तरह खर्च की जाय कि वह मूलपूँजी में से ही निकलने लगे। उधारी अगर ज्यादा दी जा रही है, तो वसूल करने की योजना बनाई जाय।

स्वास्थ्य में गड़बड़ी है। पिछले साल हमारा स्वास्थ्य अच्छा था, इस साल स्वास्थ्य भी कमजोर हुआ है, उसके कारणों की जाँच करना, क्या रोग है और वह क्यों उत्पन्न हुआ, यह पता लगाना मनन है तथा उनके कारणों को किस प्रकार दूर किया जाय, नियमित दिनचर्या किस प्रकार अपनाई जाय ? आहार-विहार का क्या क्रम रखा जाय। यह जानना तथा इसकी रूपरेखा बनाना चिन्तन है।

परिवार में सुख-शान्ति नहीं है, स्वजनों के आपसी सम्बन्ध मधुर और स्नेहपूर्ण नहीं हैं, पति की पत्नी से नहीं बन रही है या पत्नी को पति से शिकायत है, तो उसके कारण ढूँढ़ने चाहिए। वहाँ प्रश्न उठता है कि सम्बन्धों में आ रहे इन तनावों का क्या कारण है ? हम कहाँ गल्ती कर रहे हैं ? सामान्य कार्यों को सम्पन्न करते हुए भी कहीं पत्नी की उपेक्षा तो नहीं हो रही है अथवा पति की आवश्यकताओं का ध्यान नहीं रखा जा रहा हो, इन त्रुटियों को देखने या और भी कोई त्रुटियाँ हों तो उन्हें समझने के साथ-साथ उनके निराकरण की योजना बनायें। किस प्रकार का व्यवहार किया जाये ? जिससे कि पति अपने को परिवार का बोझ वहन करने वाला मात्र न समझे या पत्नी यह अनुभव न करे कि मैं इस परिवार की अनावश्यक इकाई हूँ।

कई बार व्यक्ति जैसी अपेक्षा करता है, वैसा व्यवहार और दूसरों की सद्भावनायें प्राप्त नहीं कर पाता। वह किसी से कुछ न कहे, न किसी को कोई हानि पहुँचाये तो भी उसे दूसरों से उपेक्षा—अवमानना ही मिलती है। इसके कारणों की शोध करते समय यही प्रतीत होता है कि दूसरे लोग कृतघ्न हैं या अहंकारी हैं, जो हमारी ओर ध्यान नहीं देते। सच्चा आध्यात्मिक व्यक्ति उसके कारण अपने अन्दर खोजने की चेष्टा करता है और मनन-चिन्तन के साधन, अभ्यास का सम्बल लेता है। वह अपने भीतर यह पता लगाने की कोशिश करता है कि लोग मेरी ओर ध्यान किस कारण नहीं देते ? कहीं मुझे अनावश्यक और व्यर्थ तो नहीं समझते ? कहीं यह तो नहीं सोचते कि मैं फालतू और निकम्मा हूँ, जो केवल उनका समय बर्बाद करता हूँ ? अथवा मेरे व्यवहार में कहाँ त्रुटि है ? कोई त्रुटि है तो वह क्या है ? उन त्रुटियों को किस प्रकार दूर किया जाय ताकि हम दूसरों का प्रेम और दूसरों की मित्रता प्राप्त कर सकें ? इसकी रूपरेखा बनाना और निर्धारित रीति-नीति को किस प्रकार क्रियान्वित किया जाय। यह चिन्तन के अन्तर्गत आता है।

साधारण-सी बातों को लेकर कई बार मित्रों से सम्बन्ध बिगड़ जाते हैं। हमें लगता है कि यह तो छोटी-सी बात थी पर वह छोटी-सी बात मित्र इतनी गम्भीरता से अनुभव कर जाता है कि मैत्री क्षणभर में टूट जाती है। मन ऐसे समय में अपने को किसी भी मूल्य पर दोषी स्वीकार नहीं करता या अपनी गल्ती मानने को राजी नहीं होता है। हो सकता है कि हम सर्वथा निर्दोष हों पर अपनी गल्ती भी हो सकती है। इस बात का निर्धारण बिना मनन-चिन्तन किये नहीं हो पाता। मित्र के साथ जान-बूझकर वह व्यवहार नहीं किया अथवा हँसी-मजाक में ही कोई हल्की-फुल्की बात कह दी। लेकिन मित्र के स्वभाव को न समझ पाने की तो भूल हुई ? यह तो उस समय नहीं देखा कि मित्र किस मूड में है ? इस प्रकार कितने ही पक्षों से आत्मनिरीक्षण करते हुए अपनी गल्ती या निर्दोषिता का पता लगाया जा सकता है तथा इस त्रुटि को दूर करते हुए जिसके कारण कि मित्र नाराज हुआ, मित्र को पुनः मनाया जा सकता है।

इस प्रकार छोटी-छोटी बातों को लेकर बड़ी-बड़ी समस्याओं के कराण और समाधान ढूँढ़े जा सकते हैं तथा उन समस्याओं पर काबू पाया जा सकता है। उदाहरण के लिए, कोई युवक बेरोजगार है। पाँच वर्ष से कोई काम नहीं मिल रहा है और परिवार के लोग भी उसकी बेकारी से परेशान हैं। स्थूल दृष्टि से इस समस्या का एक ही समाधान है कि कोई नौकरी मिल जाय या किसी प्रकार थोड़ा-बहुत उपार्जन करने लगे। स्थूल दृष्टि से देखने पर यह सबकी समस्या लगती है और इसके सामाजिक समाधान ही हो सकते हैं। पर हम मनन-चिन्तन करें तो बेरोजगारी को दूर करने की आन्तरिक तैयारी कर सकते हैं। माना कि जहाँ कहीं भी काम के लिए दरवाजा खटखटाया जाता है, वहाँ कोई जगह खाली नहीं का उत्तर मिलता है। पर दूसरा कोई युवक तुरन्त काम पा जाता है या कोई न कोई धन्धा कर लेता है। क्या कारण है कि हम अकेले को ही कोई काम नहीं मिल रहा है ?

हममें योग्यता न हो—ऐसा भी तो हो सकता है ? या हम किसी कार्य-विशेष के लिए आग्रहशील हैं। सोचा जा सकता है कि हम योग्य होते हुए भी सम्बन्धित व्यक्तियों को अपनी योग्यता का विश्वास दिला नहीं पाते हैं अथवा नहीं ? या सम्बन्धित अधिकारी हमारे चेहरे पर आत्मविश्वास, दृढ़ता, लगन और श्रमनिष्ठा की चमक न पाकर तो निरुपयोगी नहीं समझ लेता। इन सब बातों की समीक्षा करते हुए अपनी त्रुटियों को खोजकर उन कारणों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का पता लगाया जा सकता है, जिसके कारण कि हम बेरोजगार हैं।

चिन्तन-साधना में उन त्रुटियों के संशोधन की योजना बनायी जाती है, जिन कारणों से हमें हर जगह से निराशाजनक उत्तर मिलता है, उन कारणों को दूर करने की बात सोचनी पड़ती है। इस निष्कर्ष पर भी पहुँचा जा सकता है कि कार्य-विशेष के प्रति ही क्यों आग्रह रखा जाय ? जो काम मिल जाय उसे ही अपना लेने में क्या हर्ज है ? नौकरी का ही क्यों मोहताज रहा जाय ? एक छोटी-सी दुकान ही क्यों न खोल लें ? आजकल एक साधारण-सी पान की दुकान करने वाला आदमी अच्छे पद पर काम करने वाले कर्मचारी से अधिक आमदनी कर लेता है या कोई और निजी कार्य आरम्भ किया जा सकता है। घर में खेती लायक जमीन है। वृद्ध पिता उसकी ठीक से देखभाल नहीं कर पा रहे हैं और हम नौकरी के पीछे ही दौड़ रहे हैं। अगर उस काम को सम्हालें तो कितना अच्छा रह सकता है। अनेकों दिशायें और अनेकों समाधान हैं, जिन पर क्रियान्वयन की दृष्टि से विचार किया जा सकता है और उसकी योजना बनाई जा सकती है।

मानसिक दृष्टि से भी चिन्तन-मनन की बड़ी उपयोगिता है। मन में हजार तरह की चिन्तायें घुमड़ रही हैं और उनके कारण चित्त बोझिल हो रहा है, तो चिन्ता क्यों उत्पन्न हुई है ? क्या चिन्ता का जो कारण हमें अनुभव हो रहा, वह कारण वास्तव में इतना गम्भीर है कि उसके लिए चिन्ता की जाय ? या हम अपनी मानसिक कमजोरी के कारण ही तो चिन्ता नहीं कर रहे ? यदि मानसिक कमजोरी के कारण चिन्ता उत्पन्न हो रही है तो उस दुर्बलता को दूर करने के क्या उपाय हैं ?

चिन्तन-सन्दर्भ में अपनी स्थिति को देखते हुए उस कमजोरी को दूर करने की योजना बनाई जा सकती है। हमसे भी बुरी स्थिति में कितने ही लोग हैं, उन्हें देखते हुए तो हम फिर भी ठीक हैं। यह सोचकर अपनी स्थिति में तात्कालिक सन्तोष तो प्राप्त किया ही जा सकता है, इस प्रकार हल्के चित्त से अपनी परिस्थितियों को दूर करने की पृष्ठभूमि तैयार की जा सकती है।

अन्तरंग स्वरूप भी समझें

चिन्तन-मनन का यह बहिरंग स्वरूप है। उसका आन्तरिक स्वरूप भी है, जो बहिरंग की अपेक्षा अधिक महिमामय और अधिक आवश्यक-उपयोगी है। मनन-चिन्तन के अन्तरंग स्वरूप में इस मूलसत्ता का विचार किया जाता है, जो वस्तुतः हम हैं ? और जो हमारा प्रधान जीवन लक्ष्य है। वस्तुतः हमारे सारे दुःखों और सारी समस्याओं की जड़ वहीं है, जहाँ से हम अपनी मूलसत्ता से सम्बन्ध तोड़ बैठे हैं। अपने उस शाश्वत स्वरूप को न पहचान पाने के कारण ही हम प्रायः दुःखी रहते हैं क्योंकि हम बाहरी वस्तुओं, इन्द्रियगम्य भोग-पदार्थों से सुख प्राप्त करना चाहते हैं, जबकि सुख और आनन्द का स्रोत कहीं और ही है, वह हमारे अपने भीतर ही है। इस तथ्य को जानते और मानते सभी हैं किन्तु अपनाने से सभी डरते हैं, सभी उसकी अन्तरंग कक्षा में प्रवेश होने से दूर भागते हैं। कभी यह विचार तक नहीं करते कि इस विश्वव्यापी प्रक्रिया का कारण क्या है ? हम क्या हैं ? और जीवन धारण करने का हमारा क्या लक्ष्य है ? ढेर सारी सम्पदायें मिली हैं इसलिए कि इनका उपयोग अन्तदर्शन के लिए किया जाय। अपने को भी नहीं पहचान पाये तो इस शरीर का, बौद्धिक शक्तियों का क्या सदुपयोग रहा ?

'मैं' और 'मेरा शरीर' दो भिन्न वस्तुयें हैं। एक कर्त्ता है, दूसरा कर्म। एक क्रियाशील है, दूसरा जड़। एक सवार है, दूसरा वाहन। मानव जीवन की लक्ष्य प्राप्ति के लिए शरीर आत्मा का वाहन मात्र है। दोनों की एकरूपता का कोई आधार समझ में नहीं आता। यदि ऐसा होता तो मृत्यु के उपरान्त भी यह शरीर क्रियाशील रहा होता। खाने-पीने, उठने, बोल लेने और जीवन के अनेकों व्यवसाय वह उसी तरह सम्पन्न करता है, जैसे जीवित अवस्था में। तब फिर उचित यह प्रतीत होता है कि अपने कर्त्तापन का ज्ञान प्राप्त करें। अपने वाहन को तरह-तरह के रंगीन लुभावने वस्त्राभूषणों से सजाते घूमें और आत्मतत्त्व उपेक्षित पड़ा रहे तो इसे बुद्धिमत्ता की बात मानेगा ? घोड़ा घास खाये और सवार को पानी भी न मिले तो फिर यात्रा-उद्देश्य कहाँ पूरा हुआ ?

आत्मा की सिद्धियाँ अनन्त हैं। स्वर्ग-मुक्ति विराट के दर्शन का केन्द्र-बिन्दु आत्मा है। वह अनन्त सामर्थ्यों का स्वामी है। इन्हें प्राप्त कर मनुष्य, अणु से विभु, लघु से महान, बन्धन-मुक्त बनता है, किन्तु आत्मानुभूति किये बिना यह सब सम्भव नहीं। अपने नीचे की जमीन में ही असंख्यों मन सोना, चाँदी, हीरा, जवाहरात जमा हो और उसका ज्ञान न हो तो उस बहुमूल्य खजाने और मिट्टी के ठीकरों में भला क्या अन्तर रहा ? अपनी तिजोरी में रखी हुई पिस्तौल दुश्मन को नहीं मार सकती। जिस शक्ति का ज्ञान ही न हो उसको प्रयोग में कैसे लाया जा सकता है ?

"आत्म-दर्शन भारतीय संस्कृति का प्राण है। यहाँ समय-समय पर जो भी महान पुरुष हुये हैं, उन्होंने आत्मज्ञान पर ही अधिक जोर दिया है। सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय इसी से ओतप्रोत है। जीवन के प्रत्येक व्यवसाय से अन्तर्दर्शन की बात अवश्य जोड़ दी गई है ताकि मनुष्य भौतिक जीवन जीते हुये भी आत्मतत्त्व में विस्मृत न रहे। अपने जीवनोद्देश्य को कभी भी न भूले। इसी पर सब मनीषियों ने देश, काल और परिस्थितियों के अनुरूप भिन्न-भिन्न रूप से बल दिया है। सभी महापुरुषों, ऋषियों, सन्तों और लोकनायकों ने मनुष्य को दुःख और विनाश की परिस्थितियों से ऊँचा उठाने के लिए आत्मिक ज्ञान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर ही अधिक बल दिया है। भारतीय जीवन में भौतिक सम्पदाओं की अवहेलना का भी यही अर्थ है। मानवीय चेतना अपने मूल स्वरूप में पहचानने की दिशा में सतत् आरूढ़ रहे।

आत्मा का स्वाभाविक स्वरूप अत्यन्त शुद्ध, पवित्र, अलौकिक और दिव्य है। उसकी अन्तिम अवस्था धर्माचरण और ईश्वर साक्षात्कार है। यह शरीर के माध्यम से ज्ञान और प्रयत्न करने से मिलती है। शरीर को जब एक विशिष्ट उपकरण मानकर इन्द्रियों की दासता से ऊपर उठते हैं, तो स्वयं ही आत्मानुभूति होने लगती है। जो आदमी इस सत्य को गहराई तक अपने हृदय में बिठा लेता है, वह नाशवान वस्तुओं के अनुचित मोह को त्याग कर आत्मिक पवित्रता की ओर अग्रसर होता है। ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध आदि अनात्म तत्त्वों से उसकी रुचि हटने लगती है। विचारों और व्यवहारों में पवित्रता उत्पन्न होती है। जितना वह आत्म-साक्षात्कार के समीप बढ़ता है, उसी अनुपात से दैवी-गुणों का उसमें समावेश होता चलता है, फलस्वरूप सच्चे सुख-शान्ति और सन्तोष के परिणाम भी सामने आते रहते हैं।

लेकिन यह उपलब्धि तभी अर्जित की जा सकती है, जबकि हम इस स्थिति के लिए साधना और अभ्यास करें। मनन-चिन्तन उस स्थिति को प्राप्त करने के लिए आवश्यक तैयारी, व्यवस्था जुटाने की साधना है। आध्यात्मिक परिपूर्णता प्राप्त करने के लिए यह जानना और निर्धारित करना आवश्यक है कि हमें यह मनुष्य जन्म क्यों मिला है ? तथा इस जीवन का क्या लक्ष्य है ? मनुष्य जन्म की महत्ता और लक्ष्य का बोध स्वाध्याय-सत्संग द्वारा हो जाता है पर उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए क्या किया जाय ? अपनी वर्तमान स्थिति में रहते हुये ही उसके लिए किस तरह के कदम उठाये जायें यह निर्धारण मनन-चिन्तन द्वारा ही सम्भव है।

आध्यात्मिक ज्ञान की चर्चा प्रत्येक व्यक्ति के मुँह से सुनने को मिल जाती है। लेकिन जहाँ तक उसे अपने जीवन और व्यवहार में उतारने की बात है, वहाँ पर कोई पीछे रह जाता है। बहुत-से साधकों की निष्ठा भी असंदिग्ध होती, फिर भी उस दिशा में दो कदम नहीं चल पाते। कारण एक ही है कि साधक को अपनी सामर्थ्य, अपनी विवशता और अपनी कमजोरियों का ज्ञान नहीं होता और वे अभीष्ट दिशा में कदम उठाते ही गिर पड़ते। यदि मनन-चिन्तन द्वारा अपनी भूलों, त्रुटियों और स्वभाव में घुसी हुई बुराइयों को बारीकी से देखा जाय, उन्हें दूर हटाने के उपाय खोजें जायें तो आध्यात्मिक साधना उतनी जटिल नहीं रह जाती है।

मनन-चिन्तन का एक लाभ यह भी है कि इस प्रक्रिया को सम्पन्न करते हुए व्यक्ति का सारा रुख अपनी ओर ही उन्मुख होने लगता है। जब हम अपनी बुराइयों, वर्तमान समस्याओं, बाधाओं और अड़चनों को आत्मिक उत्थान का दृष्टिकोण रखते हुए उन्हें दूर करने के लिये सजग रहते हैं, तो हमारा ध्यान अपने लक्ष्य पर केन्द्रित रहता है। जिस प्रकार बन्दूक की गोली एक छोटे-से दायरे से—छोटी-सी नली से गुजर कर बड़ी तेजी के साथ निशाने की ओर बढ़ती है तथा उसे बेधती है, उसी प्रकार हमारी चित्तवृत्तियाँ जब मनन-चिन्तन के अभ्यास से अपने लक्ष्य पर केन्द्रित हो जाती हैं, तो उसमें भी वैसी ही शक्ति और वैसी ही तेजी उत्पन्न हो जाती है।

आध्यात्मिक ज्ञान को व्यक्तिगत सन्दर्भ में व्यावहारिक रूप देने के लिए भी मनन-चिन्तन प्रबल सहायक होता है। एक तो व्यक्ति किसी विषय में प्रवेश करने से इसलिए झिझकता है कि उसे सम्बन्धित विषय की जानकारी नहीं रहती। जानकारी हो तो भी दिग्भ्रान्त स्थिति रहती है कि उसे किस प्रकार क्रियान्वित किया जाय। बचपन में दी गयी शिक्षा और पड़े हुए संस्कारों से व्यक्ति अन्धकार में जाने से डरता है। उसे हाथ में टार्च दे दी जाय तो भी एकबारगी भी उसे संकोच होगा। लेकिन जब अन्तर्मुखी होकर वह यह सोचे कि अन्धकार में जाने से हम क्यों डर रहे हैं ? वहाँ कोई भूत-प्रेत है। चोर-डाकुओं के आक्रमण का खतरा है या साँप-बिच्छू का डर है, इन सम्भावित खतरों का मुकाबला, किस प्रकार किया जाना चाहिए ? इसका भी विवेक हो तो फिर डरने का कोई कारण ही नहीं है। आध्यात्मिक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आत्मबोध, सद्ज्ञान, प्रकाश के साथ उस अन्धकार में घुसने और मार्ग में सम्भावित खतरों से बच निकलने के लिए मान्यता और क्रियाक्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने पड़ते हैं तथा उन्हें आत्मसात करना होता है।

व्यक्ति के व्यक्तित्व से उन अवांछनीय तत्त्वों को निकाल बाहर करने और उसके स्थान पर सद्ज्ञान को, आत्मसाधना को, आदर्शों को व्यवहार में उतारने की व्यावहारिक दिशा मनन-चिन्तन द्वारा ही प्राप्त होती है। इसीलिए इसे स्वाध्याय के अविच्छिन्न अंग के रूप में समझा और स्वीकारा जाना चाहिए।

स्वाध्याय में प्रमाद न करें

कहा जा चुका है कि गुरुकुल में प्रवेश के समय शिष्य को आचार्य तीन शिक्षाएँ देता है और इन्हें नियमित रूप से पालन करने के लिए निर्देश देता है। **'सत्यं वद'** अर्थात सत्य ही बोलो। **'धर्मं चर'** अर्थात् धर्म का ही आचरण करो और **'स्वाध्यायान्मा प्रमदः'** अर्थात स्वाध्याय में प्रमाद न करो। सन्मार्ग पर चलने की शिक्षा अनेक हैं, पर उनमें तीन ही प्रमुख हैं, जो उन्हें पालन करता है, समझना चाहिए कि धर्माचरण का सार उसने हृदयंगम कर लिया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यहाँ स्वाध्याय पर प्रकाश डाला जा रहा है। उसकी तुलना सत्य और धर्म के समतुल्य ही की गई है। उपनिषद वचन है कि जो जिस दिन स्वाध्याय नहीं करता, उस दिन उसकी तुलना चाण्डाल जैसी हो जाती है। शरीर को नित्य स्नान कराना आवश्यक है, अन्यथा मैल जम जायेगा। बदबू निकलेगी, अनेकों रोग उपजेंगे। ठीक उसी प्रकार मन को स्नान कराने के लिए स्वाध्याय की व्यवस्था है। उसमें प्रमाद करने से मन के ऊपर विकारों की परत जम जाती है। मनोविकार उपजते हैं, मानसिक रोगों का उद्भव होता है। मन की मलीनता से शरीर तो रुग्ण होता ही है। कषाय-कल्मषों का अम्बार जमा हो जाता है। यह इतनी बड़ी हानि है जिसे असाधारण ही कह सकते हैं। शरीर का स्वास्थ्य गँवा बैठना बुरा है। इससे भी बुरा मन का स्वास्थ्य गँवा बैठना है। स्वाध्याय की अपेक्षा करना, उसमें प्रमाद बरतना, मन को रोगी बनाने के समान है।

स्वाध्याय क्या है ? यह समझने की बात है। 'स्व' माने अपने आपका। अध्याय माने अध्यापन करना। अपने आपको पढ़ना अर्थात अपने को समझना। अपने को समझना अर्थात अपनी समस्याओं को समझना और उनकी जानकारी प्राप्त करना।

पाठशालाओं में जो पढ़ाया जाता है। उसमें बाह्य संसार का विवरण होता है। भूगोल, इतिहास, भाषा, गणित आदि ऐसे प्रसंग हैं, जिनका सम्बन्ध बाह्य संसार से है। अपने निज के सम्बन्ध में उसमें कोई—जानकारी नहीं होती। स्कूली शिक्षा का उद्देश्य निर्वाह की समस्या हल करना है। पढ़ने के बाद अधिकांश छात्र नौकरी तलाश करते हैं। इसके अतिरिक्त जो बचते हैं, वे पैतृक व्यवसाय से रोजी-रोटी कमाने का प्रबन्ध करते हैं। शिक्षा का प्रयोजन ही यही है। इसीलिए पढ़ते हैं, पढ़ाए जाते हैं। शिक्षा और आजीविका एक ही बात है। जो पुस्तकीय ज्ञान विद्यालयों में पढ़ाया जाता है, वह आजीविका का, निर्वाह का उद्देश्य भरपूरा करता है, पर होना चाहिए निर्माण की समस्या का हल। निर्वाह सामान्य बात है, उसे बिना पढ़े भी कमा लेते हैं। इन दिनों बढ़ई, राज, मोची आदि को प्रायः पचास रुपये रोज मिलते हैं। फेरी, खोमचा लगाने वाले इससे भी अधिक ही कमा लेते हैं। चोरी, उठाईगीरी करने वाले इससे भी अधिक कमाते हैं। जिनके पास कोई पैतृक व्यवसाय है वे उससे भी ज्यादा कमाते हैं। निर्वाह ही सब कुछ नहीं है। महत्त्वपूर्ण बात है—'निर्माण'। जीवन का निर्माण, शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का निर्माण। गुण-कर्म स्वभाव का निर्माण। विद्या का उद्देश्य यही है। मनुष्य जीवन के साथ जुड़ी हुई अगणित समस्यायें हैं। उनका कारण, स्वरूप और समाधान समझा जा सके तो समझना चाहिए कि व्यक्तित्व का निर्माण सीखा गया। जिसे यह आता है, समझना चाहिए कि उसे सब कुछ आता है। जिसे यह नहीं आता, समझना चाहिए कि उसे कुछ भी नहीं आता।

मनुष्य का मूल्यांकन उसके व्यक्तित्व के आधार पर होता है। व्यक्तित्व के आधार पर मनुष्य महान अथवा क्षुद्र बनता है। प्रामाणिक अथवा अप्रामाणिक ठहरता है। जिसका भरोसा नहीं, उसे कोई पास तक नहीं बैठने देता। कोई बड़ी जिम्मेदारी का काम नहीं सौंपता। ऐसे व्यक्ति प्रतिष्ठारहित होते हैं। जहाँ-तहाँ ठोकरें खाते फिरते हैं। जिनका निर्माण नहीं हुआ है, वे अनगढ़ रह जाते हैं। निर्माण किसका ? चरित्र का। आदमी का असली मूल्य यही है, अन्यथा कमाने की योग्यता झटका लगते ही बिखर जाती है। स्वास्थ्य गड़बड़ाने लगे तो समझना चाहिए कि निर्वाह की समस्या समाप्त हुई। किन्तु जिसका व्यक्तित्व उच्चस्तरीय है, वह स्वास्थ्य के गड़बड़ाने पर भी मजबूती से अपने स्थान पर खड़ा रहता है। आद्य शंकराचार्य को भगन्दर का फोड़ा हो गया था। उसी कारण उनका ३२ वर्ष की आयु में निधन हो गया। किन्तु बीमार रहते हुए भी उनके व्यक्तित्व को कोई आँच नहीं आई।

स्कूलों में आदमी बहुत कुछ पढ़ लेते हैं। मैकेनिक, इन्जीनियर, डॉक्टर, प्रोफेसर आदि हो जाते हैं और अपने काम में कुशलता दिखाते हुए समुचित आजीविका भी कमाते हैं। पर अपने निज से सम्बन्धित समस्याओं का स्वरूप और समाधान न समझने के कारण व्यक्ति निरन्तर खिन्न, उद्विग्न बना रहता है। भगवान ने सभी को अच्छा-खासा शरीर दिया है। इसे कितने आदमी जानते हैं फिर बीमार होने पर हकीम, डाक्टरों के यहाँ झक मारते फिरते हैं। वह तौर-तरीका मालूम नहीं होता, जिससे अपना रहन-सहन, आहार-विहार बदल लेने के कारण खोए हुए स्वास्थ्य को फिर से लौटाया जा सके।

मनुष्य के पास सबसे बहुमूल्य सम्पदा उसका मस्तिष्क है। मन, बुद्धि, चित्त के सन्तुलित होने पर मनुष्य अपनी समस्याओं को हल कर लेता है, उलझनें सुलझा लेता है और प्रगति का द्वार खोल लेता है। जिसका चिन्तन अस्त-व्यस्त है वह चरित्र खो बैठता है। दुश्चरित्र से हर किसी के साथ दुर्व्यवहार ही बन पड़ेगा। दुर्गति अपनाने पर दुर्गति ही होती है। इसके विपरीत जिसका दृष्टिकोण सुलझा हुआ है, उसे गुत्थियों का सामना नहीं करना पड़ता । उसका व्यवहार ऐसा होता है कि जिससे जीवन शान्ति के साथ व्यतीत होता रहे और जिन लोगों के साथ सम्बन्ध-सम्पर्क हों वे भी सदा प्रसन्न और सन्तुष्ट रहें। सहानुभूति बरतें और सहायक सिद्ध होते रहें। यह मानसिक स्वच्छता और प्रखरता का प्रतिफल है।

आदतें आदमी की निज की डाली हुई होती हैं। फिजूल खर्च, तुनकमिजाजी, जल्दबाजी की आदतें भी ऐसी हैं, जो आर्थिक कठिनाइयाँ उत्पन्न करती हैं और जिनके साथ सम्बन्ध हैं, उनसे कटुता उत्पन्न कर लेती हैं। आलस्य, प्रमाद की आदत ऐसी है जो आदमी को निकम्मा बनाकर रख देती है। इन आदतों से कैसे बचा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाय और यदि वे पीछे लग गई हैं तो उनसे कैसे पीछा छुड़ाया जाय, यह तक लोगों को नहीं आता। नशेबाजी के शिकार होने पर स्वास्थ्य, पैसा, इज्जत और परिवार का सत्यानाश कर लेते हैं, पर उन्हें छोड़ नहीं पाते। इसे व्यक्तित्व की हीनता ही कहा जायेगा।

परिवार में कई व्यक्ति होते हैं। उनके साथ प्रेमपूर्वक सहयोग के साथ कैसे रहा जाय। आपस में कोई झंझट खड़ी होती है तो उसे कैसे सुलझाया जाय। यदि इतना भी आदमी को नहीं आता तो उसे अनगढ़-अनाड़ी ही कहा जायेगा। भले ही उसने ग्रेजुएशन, पोस्ट ग्रेजुएशन की परीक्षा, फर्स्ट डिवीजन से ही क्यों न पास कर ली हो।

एक आदमी अपने गुण, कर्म, स्वभाव के कारण महापुरुषों की श्रेणी में गिना जाता है और दूसरा इन्हीं बातों में खोट रहने के कारण जन-जन द्वारा दुत्कारा जाता है और पग-पग पर असफलताएँ प्राप्त करता है। इसके लिए कोई और जिम्मेदार नहीं है। व्यक्तित्व बिगाड़ लेने का ही परिणाम है कि अवसर सामने होते हुए भी व्यक्ति ठोकरें खाता-फिरता है। यदि अपना दृष्टिकोण परिष्कृत हो तो गई-गुजरी परिस्थितियाँ होते हुए भी आदमी निरन्तर ऊँचा उठता जाता है।

इसी को निर्माण कहते हैं। इसके लिए जीवन निर्माण में सहायता करने वाला साहित्य पढ़ना तो आवश्यक ही है, इसके अतिरिक्त उच्चस्तर वाले व्यक्तियों का सान्निध्य-सम्पर्क रखना भी आवश्यक है। स्वाध्याय में मनन-चिन्तन भी शामिल है। अपनी समस्याओं का सही स्वरूप समझना और उन्हें विवेकपूर्ण ढंग से सुलझाना, यह भी स्वाध्याय है।

कई व्यक्ति शास्त्र-पुराणों का पाठ करते रहना ही स्वाध्याय समझते हैं। उसकी चिह्न पूजा कर लेने से कोई काम नहीं बनता। साहित्य पढ़ना हो तो जीवन की समस्याओं का स्वरूप और समाधान बताने वाला साहित्य पढ़ना चाहिए। इसके लिए विचारशील, दूरदर्शी लोगों का लेखन ही चयन करना चाहिए। स्वाध्याय के नाम पर उल्टी-सीधी पुस्तकें पढ़ लेने से काम नहीं चलता, भले ही थोड़ा पढ़ा जाय पर उसे चिन्तन-मननपूर्वक पढ़ा जाय। साथ ही यह परखते चला जाय कि आदर्शों का हम अनुकरण कर रहे हैं या नहीं। यदि नहीं तो भूल को तुरन्त सुधारा जाय। यदि कर रहे हैं तो उस दिशा में और भी दृढ़ता अपनानी चाहिए। इस मनःस्थिति के साथ समाधानपरक साहित्य पढ़ा जाय। यही स्वाध्याय है। आत्मनिर्माण की, व्यक्तित्व के विकास की प्रेरणा देने वाली विचारपद्धति ही स्वाध्याय है। स्वाध्यायशील दिन-दिन ऊँचे उठते हैं। इसलिए उसे नियमित रूप से अपनाये रहने के लिए शास्त्रकारों ने निर्देश दिया है। उसमें प्रमाद नहीं ही करना चाहिए।

स्वाध्याय जीवन को परिपूर्ण बनाता है

पुस्तकों का अध्ययन तीन विभिन्न प्रकारों से हमारी सहायता करता है। पुस्तकें हमारे एकान्त में साथियों की तरह होती हैं—बुढ़ापे या जीवन के शेष दिनों में भी साथियों की तरह हमें प्रसन्नता देती रहती हैं। दूसरी बात यह है कि पुस्तकें अच्छी भाषा विकसित करने की शिक्षा देती हैं, भाषा को आकर्षक और प्रभावशाली बनाने में मदद करती हैं। विवाद या तर्क-वितर्क के समय इसका बड़ा व्यापक लाभ होता है क्योंकि हम अपनी बहस प्रभावशाली ढंग से नहीं कर सकते, यदि भाषा पर हमारा अचूक अधिकार नहीं है। तीसरी बात यह है कि हम अपनी मानसिक शक्तियों का विकास अध्ययन के द्वारा ही कर पाते हैं और कठिन परिस्थिति आने पर शीघ्रता से उचित निर्णय भी ले पाते हैं और व्यावहारिक दुनिया की स्थितियों को अधिक प्रभावशाली ढंग से व्यवस्थित और नियन्त्रित करते हैं।

जीवन के व्यावहारिक अनुभव निस्संदेह रूप से मनुष्य की व्यावहारिक समस्याओं के बीच व्यवस्था पैदा करने में सहायक होते हैं, लेकिन एक सुपठित मनुष्य बड़ा अच्छा सलाहकार होता है क्योंकि वह खूब अच्छे ढंग से योजनायें बनाता है और हर चीज की ठीक व्यवस्था करता है। पुस्तक पढ़ने के ये सभी लाभ हैं। लेकिन अधिक पढ़ना या अधिक मात्रा में पुस्तकसेवी होना घातक है क्योंकि इससे आदमी निष्क्रिय तथा अव्यावहारिक हो जाता है।

पुस्तक पढ़ने की आदत मनुष्य की जन्मजात योग्यता के विकास में सहायक होती है, पुस्तक प्रेम से ही मनुष्य की नैसर्गिक क्षमता का विकास होता है। यह कार्य उसी तरह होता है, जैसे पौधों के अति विकसित अंगों को छाँटने या कतरने से उनका विकास होता है। लेकिन पुस्तकों के अध्ययन के साथ जीवन के व्यावहारिक अनुभवों का मिश्रित होना अनिवार्य है, नहीं तो सभी भाव और विचार अस्पष्ट रह जायेंगे।

हम लोगों को इसलिए अध्ययन नहीं करना चाहिए कि केवल दूसरों के वक्तव्य को काटें और उनकी बात को गलत साबित करें। केवल इसलिए अध्ययन करना निरर्थक है कि पुस्तकों में जो भी छपा है, वह विवादों से परे है, उसका हर तथ्य सही है। पुस्तकों में विवाद के विषयों की खोज करते रहने के लिए अध्ययन करना भी ठीक नहीं है। अगर इन उद्देश्यों को ध्यान में रख कर हम अध्ययन करते हैं तो अध्ययन का वास्तविक उद्देश्य है। अच्छे और बुरे में क्या भेद है, उसे पहचानने-समझने की शक्ति प्राप्त करना और वस्तुओं के वास्तविक मूल्यों की खोज करना।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सभी पुस्तकें समान महत्त्व की नहीं होतीं। किताबें कई प्रकार की होती हैं और उनका अध्ययन भी भिन्न-भिन्न तरह से होना चाहिए। अनिश्चित मूल्यों की भी कई पुस्तकें हैं। ऐसी पुस्तकों का सम्पूर्ण अध्ययन नहीं होना चाहिए। ऐसी पुस्तकों का सम्पूर्ण अध्ययन नहीं होना चाहिए। जैसे मामूली किस्म के भोजन और पेय पदार्थ केवल स्वाद लेने के लिए होते हैं और उनको अलग कर दिया जाता है, ठीक उसी तरह से ऐसी पुस्तकों का आंशिक अध्ययन ही पर्याप्त होता है। कुछ पुस्तकें उत्तम हैं लेकिन सर्वोत्तम नहीं कही जा सकतीं। जैसे कुछ खाद्य तथा पेय-पदार्थ अच्छे तो होते हैं, लेकिन इतने अच्छे नहीं कि धीरे-धीरे खाकर उनका स्वाद ले-लेकर आनन्द लिया जाए। ऐसी पुस्तकें साधारण तौर पर पढ़ने लायक होती हैं, उन पर ज्यादा ध्यान देना जरूरी नहीं होता। ऐसी पुस्तकें एक ग्रास में ही निगलने लायक होती हैं। किन्तु कुछ पुस्तकें सर्वोत्तम कोटि की होती हैं। उनका अध्ययन धीमी गति से तथा सावधानी से ठहर-ठहर कर होना चाहिए। भोजन के लिए बैठा हुआ आदमी जैसे उत्तम कोटि के खाद्य और पेय-पदार्थ को कंठ में पहुँचाने से पहले देर तक उसका आनन्द लेता है, ठीक उसी तरह से ऐसी पुस्तकें आनन्द देने वाली होती हैं।

परिवर्तन का केन्द्र-बिन्दु—सद्ज्ञान

परिस्थितियों में परिवर्तन के लिए मनुष्य के विचारों और कार्यों में परिवर्तन होना आवश्यक है। भीतरी स्थिति का स्वरूप ही बाहर दृष्टिगोचर होता है। नशा पी लेने से जिस प्रकार शरीर की चेष्टाएँ और क्रियाएँ अस्त-व्यस्त हो जाती हैं, उसी प्रकार संकीर्णता की निम्नगामी गतिविधियाँ अपना लेने पर मनुष्य कुविचारों और दुर्भावों को अपनाता है, फलस्वरूप जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में, नाना प्रकार की कठिनाइयाँ और विपत्तियाँ सामने खड़ी होती हैं। मनुष्य का समूह ही समाज है। विभिन्न व्यक्तियों की दुष्प्रवृत्तियाँ मिलकर सामाजिक विपन्नताओं का रूप धारण करती हैं और उसी से सर्वत्र अशान्ति, क्लेश एवं पतन के नारकीय दृश्य उपस्थित होते हैं।

देश, समाज और संसार में जो कुछ भी अशुभ हमें दृष्टिगोचर होता है, उसका कारण लोगों के व्यक्तिगत दोष ही होते हैं। उन दोषों का उद्भव दूषित दृष्टिकोण के कारण होता है। भोग प्रधान आकांक्षाएँ रखने से मनुष्यों की अतृप्ति बढ़ती जाती है, वे अधिक सुख-सामग्री चाहते हैं। श्रम से बचने और मौज-मजा करने की इच्छाएँ जब तीव्र हो उठती हैं, तो उचित-अनुचित का विचार छोड़कर लोग कुमार्ग पर चलकर ऐसे कर्म करने लगते, जिनका परिणाम उनके स्वयं के लिये ही नहीं, सारे समाज के लिए घातक होता है। इस अदूरदर्शितापूर्ण प्रक्रिया को अपनाने से ही संसार में सर्वत्र दुःख-दैन्य का विस्तार हुआ है।

विश्वशान्ति के लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ उत्पन्न करना केवल एक ही प्रकार सम्भव हो सकता है कि मनुष्य भोग-प्रधान नीति का परित्याग कर त्याग-प्रधान दृष्टिकोण अपनाये। वासना और तृष्णा की तुच्छता अनुभव करे और तप, संयम और आदर्श का उत्कृष्ट जीवन बिताने में गर्व एवं गौरव का आनन्द माने। जब तक वासनाओं और तृष्णाओं के तुच्छ प्रलोभनों में मनुष्य रस लेता रहेगा और उन्हें ही जीवन का लक्ष्य मानता रहेगा, तब तक उसके द्वारा उन गतिविधियों का अपना सकना सम्भव न होगा, जिन पर स्वर्गीय वातावरण का विनिर्मित होना सम्भव होता है।

युग-परिवर्तन के लिए मानवीय दृष्टिकोण में वह परिवर्तन होना आवश्यक है, जिसका उल्लेख उपरोक्त पंक्तियों में किया गया है। भोगपरक, भौतिकवादी दृष्टिकोण अपना कर मनुष्य स्वार्थी, लोभी, आलसी, उतावला और असन्तोषी बनता है। इन दोषों के कारण पाप और पतन भरे कुकर्म ही बन पड़ते हैं। इसलिए जीवन का दर्शन ऊँचा उठाया जाना आवश्यक है। पतित भावनाओं वाले व्यक्ति के लिए लांछना एवं आत्मग्लानि की व्यथा कष्टदायक नहीं होती, वह निर्लज्ज बना कुकर्म करता रहता है। लोक निन्दा और परलोक का भी उसे भय नहीं होता। ऐसे लोगों से उन श्रेष्ठ कार्यों की आशा नहीं की जा सकती, जो विश्वशान्ति के लिए आवश्यक हैं। गन्दी प्रकृति के मनुष्य गन्दे मुहल्ले में, गन्दे घरों में, दुर्गन्धपूर्ण जलवायु में, गन्दे साधनों और गन्दी परिस्थितियों में प्रसन्नतापूर्वक रह लेते हैं। पर जिसे स्वच्छता प्रिय है, वह गरीब होते हुए भी गन्दगी स्वीकार नहीं करेगा। इसी प्रकार जिनका दृष्टिकोण निकृष्ट है, उन्हें न लोक-लज्जा की परवाह होती है और न आत्मग्लानि की। वे दुष्टतापूर्ण दुष्कर्म करते रहते हैं और इसी में अपना बड़प्पन मानते हैं। इस स्थिति का परिवर्तन करके धर्म, आत्मगौरव और पुण्य, परमार्थ की महत्ता को अनुभव करके कर्त्तव्य की मनोभूमि बनाई जानी चाहिए। जब लोकमानस का स्तर भावनात्मक दृष्टि से ऊँचा उठेगा, तो ही जीवन में श्रेष्ठता आवेगी और उसी के आधार पर विश्वशान्ति की मंगलमय परिस्थितियाँ उत्पन्न होंगी।

सत्कर्म अनायास नहीं बन पड़ते। उनके पीछे एक प्रबल दार्शनिक पृष्ठभूमि का होना आवश्यक है। सस्ती नामवरी लूटने के लिए किसी आवेश में आकर, कभी-कभी घटिया स्तर के लोग भी कुछ बड़े काम कर बैठते हैं, पर उनमें स्थिरता नहीं होती। यश कामना की पूर्ति की हर घड़ी नहीं होती रह सकती, न आवेश ही स्थिर रखा जा सकता है। ऐसी स्थिति में निम्न मनोभूमि के लोग श्रेष्ठ कार्य भी निरन्तर नहीं कर सकते। यदि जीवन में दो-चार बार ऊपरी मन से कुछ अच्छे काम कर दिये जायें और भीतर-ही-भीतर दुष्प्रवृत्तियाँ काम करती रहें तो जीवन में बुराइयाँ ही अधिक होंगी। सत्कर्मों का निरन्तर होते रहना और कठिनाई आने पर भी दृढ़

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बने रहना, तभी सम्भव है जब मनोभूमि को उत्कृष्ट स्तर पर विकसित एवं परिपक्व किया जाय। श्रेष्ठ कार्यों और श्रेष्ठ परिस्थितियों से परिपूर्ण वातावरण इन्हीं परिस्थितियों में बन सकता है।

हम चाहते हैं कि संसार में सुख-शान्ति रहे। इसके लिए एक ही उपाय है कि लोग दुष्कर्मों को छोड़कर निरन्तर सत्कर्म करते रहने के अभ्यस्त बनें। यह कदम तभी उठेगा जब जीवन-दर्शन बदले। निकृष्ट आदर्शों का परित्याग कर लोग उच्च आदर्शों के प्रति निष्ठावान बनें। श्रेष्ठ विचारधाराओं को जनमानस में गहराई तक प्रवेश करा देने से ही यह सम्भव होगा। इसलिए सुख एवं शान्ति का आधार एक ही, केवल एक ही है कि हम अपनी और अपने समीपवर्ती लोगों की भावनाओं का स्तर ऊँचा उठावें। आसुरी सम्पत्तियों से घृणा करें और दैवी सम्पदाएँ बढ़ाने के लिए उत्साहपूर्वक कटिबद्ध हों।

जीवन का दर्शन, उद्देश्य, लक्ष्य बदलने से ही दुष्टता का परिवर्तन श्रेष्ठता के रूप में हो सकेगा। इसलिए उच्च विचारधारा की जो न्यूनता सर्वत्र दिखाई पड़ती है, उसकी पूर्ति के लिए प्रबन्ध करना होगा। दुर्भिक्ष पीड़ितों के प्राण अन्न की व्यवस्था होने से ही बचते हैं। सद्भावनाओं का दुर्भिक्ष पड़ने से आज सर्वत्र हाहाकारी दृश्य उपस्थित हो रहे हैं, इन्हें बदलना तभी सम्भव है जब उच्च विचारधाराओं की अभिवृद्धि के लिए आवश्यक वातावरण बनाया जाय। हमें यही तो करना है। इसी संजीवनी बूटी से मूर्छित समाज की मोहनिद्रा जगेगी। सुख-सुविधा की साधन-सामग्री बढ़ाकर संसार में सुख-शान्ति और प्रगति होने की बात सोची जा रही है और उसी के लिए सब कुछ किया जा रहा है। पर साथ ही हमें यह भी सोच लेना चाहिए कि समृद्धि तभी उपयोगी हो सकती है, जब उसके साथ-साथ भावना स्तर भी ऊँचा उठता चले। यदि भावनायें निकृष्ट स्तर की रहें तो बढ़ी हुई सम्पत्ति उल्टी विपत्ति का रूप धारण करती है। दुर्बुद्धिग्रस्त मनुष्य अधिक धन पाकर उसका उपयोग अपने दोष-दुर्गुण बढ़ाने में ही करते हैं। जुआ, नशेबाजी व्यसन, व्यभिचार, आडम्बर आदि की बढ़ोत्तरी खाते-पीते मूर्खों में ही होती है। गरीबों को इसकी सुविधा ही नहीं मिलती।

सम्पन्न लोगों का जीवन निर्धनों की अपेक्षा कलुषित होता है। उसके विपरीत प्राचीनकाल में ऋषियों ने अपने जीवन उदाहरण प्रस्तुत करके यह सिद्ध किया था कि गरीबी की जीवन व्यवस्था में भी उत्कृष्ट जीवन जिया जा सकना सम्भव हो सकता है। यहाँ सम्पन्नता एवं समृद्धि का विरोध नहीं किया जा रहा है, हमारा प्रयोजन केवल इतना ही है कि भावना स्तर ऊँचा उठाने के साथ-साथ समृद्धि बढ़ेगी, तो उसका सदुपयोग होगा और तभी उससे व्यक्ति एवं समाज की सुख-शान्ति बढ़ेगी। भावना-स्तर की उपेक्षा करके यदि सम्पत्ति पर ही जोर दिया जाता रहा, तो दुर्गुणी लोग उस बढ़ोत्तरी का उपयोग विनाश के लिए ही करेंगे। बन्दर के हाथ में गई हुई तलवार किसी का क्या हित साधन कर सकेगी ?

सन्मार्ग पर चलने वाली प्रेरणा देने वाली विद्या एवं आदर्श के प्रति निष्ठा करने वाला ज्ञान मानव जीवन की सच्ची सम्पत्ति है। इसी को बढ़ाने में शोक-सन्तापों से छुटकारा मिल सकना सम्भव होगा। भौतिक समृद्धियाँ बढ़ाने में बहुत लोग लगे हैं और उसकी दिशा में बहुत कुछ किया भी जा रहा है। मानव जाति को विनाश के गर्त में गिरने से बचाने के लिए एकमात्र उपाय यही रह जाता है कि सद्भावनाओं के बढ़ाने के लिए तत्परता से प्रयत्न आरम्भ किये जायें।

विद्या की सम्पत्ति बढ़ाते ही चलें

पिछले दिनों, पत्रों में पेरिस का समाचार छपा था कि बर्फ जैसे सफेद बालों वाली एक परदादी साठ वर्ष पूर्व शादी में अनबन और पति से मतभेद के कारण छोड़ी गई थी। वृद्धा के पास बहुत-सा फालतू समय था और अब बाल-बच्चों को पालने जैसे कोई बड़ी जिम्मेदारी भी नहीं थी। पढ़ने की उत्कट लालसा उसे शुरू से ही थी, पर विवाहित जीवन की उलझनों में वह पढ़ न सकी। ८० वर्ष की आयु में वह फिर सारबोन विश्वविद्यालय में लौट आई और नई लगन और उत्साह से अध्ययन शुरू कर दिया।

८० वर्षीय यह उत्साही महिला १९०५ में भी सारबोन विश्वविद्यालय की विशिष्ट छात्रा थी, क्योंकि उस जमाने में वह विज्ञान का अध्ययन कर रही थी। इस वृद्धा के तीन पुत्र, सात पोतियाँ तथा एक प्रपौत्री है। इस उम्र में उसने अँग्रेजी और जर्मन पढ़ने के लिए विश्वविद्यालय में प्रवेश किया था।

यदि सच्ची लगन और पढ़ने की इच्छा हो, तो अध्ययन का काम भी चालू किया जा सकता है। पढ़ाई-लिखाई तथा योग्यता बढ़ाने के लिए उम्र का कोई नियन्त्रण नहीं है, बड़ी-बड़ी आयु के लोगों ने अध्ययन से प्रचुर लाभ उठाया है। नई-नई जानकारियाँ प्राप्त की हैं और ज्ञानवर्धन किया है। अधिक ज्ञान और विकसित मस्तिष्क से ही मनुष्य उन्नतिशील बनता है।

न्यूयार्क का भी इसी प्रकार का एक समाचार है। ६६ वर्षीय श्रीमती रूथ स्थिम ने ४० वर्ष तक अध्ययन करने के बाद हाल में ही बी. ए. की डिग्री प्राप्त की है। डिग्री शिकागो की रूजवेल्ट यूनिवर्सिटी ने दी है। श्रीमती स्मिथ सन् १९२५ से विश्वविद्यालय में पढ़ रही थीं। बीच में अपने बच्चों के लालन-पालन और शिक्षा के सिलसिले में उनकी पढ़ाई-लिखाई छूट-सी गई थी, पर ग्रेजुएट बनने की इच्छा उनके मन में दबी रही। वे अच्छे अवसर की प्रतीक्षा में रहीं। अन्त में वह ढलती उम्र में बी. ए. की डिग्री प्राप्त करने में कामयाब हो गईं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वाराणसी के डॉ. राजकुमार चौबे ने जिनकी आयु इस समय ७० वर्ष की थी, इस उम्र में भी उन्होंने अपनी शिक्षा समाप्त नहीं की। उन्होंने यह संकल्प किया था कि सब विषयों में एम. ए. पास करेंगे और विश्व का अधिक से अधिक संचित ज्ञान अपने अन्दर पैदा करेंगे। शुरू से ही वे पढ़ते और एम. ए. पास करते रहे। तब तक उन्होंने १७ विषयों में एम. ए. पास कर लिया। इसके बाद उन्होंने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की कला और स्थापत्य कला में एम. ए. परीक्षा पास की। आचार्य की इन डिग्रियों के अलावा उन्होंने एल-एल. बी. और बी. टी. परीक्षाएँ भी पास कीं। हॉलैण्ड के एक विश्वविद्यालय ने उन्हें डाक्टर ऑफ लॉज की उपाधि दी थी। उन्होंने गत ४५ साल में अनेक विश्वविद्यालयों में पढ़ाया था। अन्त तक वह काशी विद्यापीठ में संस्कृत के अवैतनिक प्रोफेसर रहे। अनेक विश्वविद्यालयों ने उन्हें अपने यहाँ भाषण देने के लिए निमन्त्रित किया था। स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण उन्होंने कुछ समय पूर्व एक रूसी प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया था।

मनुष्य जितना अधिक विकसित होता जाता है, उतना ही उसे अधिक पढ़ने और अपनी योग्यता बढ़ाने की लगन बढ़ती जाती है। ज्ञान प्राप्ति स्वयं अपने आप में एक सात्त्विक आनन्द प्रदान करने वाला तत्त्व है। संसार का कोई भी विषय पृथक नहीं है, सभी मिलकर एक ज्ञानसागर की बूँदें हैं। एक विषय के व्यक्ति को दूसरे में भी रुचि और उत्साह लेना चाहिये।

चण्डीगढ़ के एक रिटायर्ड विद्यालय इन्सपेक्टर जिनकी आयु ५६ वर्ष की थी, पुनः विद्यार्थी बन गये। उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय की एम. ए. कक्षा में प्रवेश के लिए प्रार्थना-पत्र दिया। ३३ वर्ष पूर्व उन्होंने बी. ए. की परीक्षा दी थी। ऐसे विद्या के प्रेमियों से ही मानवता धन्य हुई है।

गोरखपुर में महात्मा गाँधी इण्टर कॉलेज परीक्षा केन्द्र पर दो व्यक्तियों ने अपने-अपने पुत्रों के साथ इण्टर की परीक्षा दी थी। एक पिता-पुत्र पहले फेल हो गये थे, पर उन्होंने हिम्मत न छोड़ी और निरन्तर अपना अध्ययन क्रम चालू रखा। अन्त वक्त में उन्होंने परीक्षा दी और उत्तीर्ण होकर रहे। जहाँ बड़ी उम्र में भी विद्या का ऐसा उत्कट प्रेम हो, बूढ़े शरीर में भी युवक से ज्ञान प्राप्ति की होड़ हो, वहाँ मनुष्य की उन्नति में किसे सन्देह हो सकता है ?

सन् १९५१ में काशी के सरकारी संस्कृत कॉलेज में जिन ढाई सौ स्नातकों को उपाधियाँ दी गईं, उनमें श्री महेशचन्द्र शर्मा भी थे। ये जन्म से अन्धे थे और उस साल उन्होंने व्याकरण के आचार्य की उपाधि प्राप्त की थी, वे वास्तव में व्याकरण के ही नहीं, उत्साह, धैर्य और अध्यवसाय के भी आचार्य थे और अपने शिक्षा प्रेम और श्रम से उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि मनुष्य में ज्ञान के प्रति गहरी इच्छा हो और उनके लिये उद्योग करने का उत्साह हो तो साधनहीनता मनुष्य के रास्ते में रोड़ा नहीं अटका सकती।

जिस आदमी को ज्ञान के प्रति सच्चा अनुराग है, उत्कट लगन है, उसके सामने विघ्न-बाधाएँ और परेशानियाँ रोड़ा नहीं अटका सकतीं। ज्ञान से ही सच्चा प्रकाश मिलता है। कहा गया है—

यां मेधा देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥

—यजुर्वेद ३२/१४

अर्थात—विद्वान, तत्त्वदर्शी तथा आत्मज्ञानी आदमी जिस मेधावी बुद्धि द्वारा संसार में श्रेष्ठ कर्मों का सम्पादन करते हैं, हे ईश्वर ! हमें भी वह मेधा बुद्धि (चाहे किसी भी आयु में क्यों न हो) प्रदान कर। हमें उच्चतम ज्ञान का प्रकाश दे।

उदीर्ष्व जीवो असुर्न आगादप प्रगात्तम आ ज्योतिरेति।
आरैक्पन्थां यातवे सूर्यायागन्म यत्र प्रतिरन्तु आयुः॥

—ऋग्वेद १/११३/१६

याद रखिये, (अब आप ज्ञान का महत्त्व समझ गये हैं) अब अन्धकार समाप्त हो रहा है। अतः पुरानी बातों पर शोक करना छोड़कर नवजीवन के प्रकाश में ऊपर उठने का प्रयत्न करो। देखो तुम्हारे चारों ओर लोग कैसे तरक्की करते जा रहे हैं ? ज्ञान-सूर्य चारों ओर अपना तेज प्रकाश फैला रहा है।

आओ, हम भी अपनी (शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त करें। अब हम धर्मानुष्ठान करेंगे, अधिक से अधिक पढ़ेंगे और मस्तिष्क के विकास द्वारा अपने समाज में यश प्राप्त करेंगे।

आश्चर्यजनक विद्वान : आप भी उनका अनुकरण करें

एक व्यक्ति ने संसार की लगभग तीन सौ भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया है और अभी लगभग दो सौ भाषाओं का परिचय प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

इस समय उसकी आयु ७० वर्ष है। मामूली आदमी ७० वर्ष की आयु में मरने के दुःस्वप्न देखते हैं, उनकी कमर झुककर कुबड़ी हो जाती है, बाल सन की तरह श्वेत और आँखें गड्ढों में धँस जाती हैं। वे अपने को संसार में किसी भी मतलब का नहीं मानते, पर जर्मनी के महाविद्वान डॉक्टर हेरल्ड सुज इस वृद्धावस्था में भी अपने विद्या प्रेम के अनुकरणीय उदाहरण हैं। वे चमत्कारी व्यक्ति हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चमत्कारी आदमी प्रायः वह कहा जाता है, जो जादू जैसा कोई अद्भुत, आश्चर्यजनक तथा अभूतपूर्व कार्य कर दुनिया को विस्मय में डाल देता है। सिद्ध, योगी और जादूगर प्रायः एक से एक हैरतअंगेज करिश्मे दिखाते हैं, जो आदमी को अचरज में डाल देते हैं। इस दृष्टिकोण से डॉ. हेराल्ड सुज कोई जादूगर या सिद्धयोगी नहीं कहे जा सकते।

उनका विद्याप्रेम और अबाध अध्यवसाय ही हैरत में डालने वाला है। उन्होंने अपने परिश्रमपूर्ण अध्यवसाय से जो अद्भुत करिश्मा कर दिखाया, वह निःसन्देह एक चमत्कार जैसा आश्चर्यचकित करने वाला है।

सन्तोष की बात यह है कि इतनी मेहनत के बावजूद वे शरीर से पूर्ण स्वस्थ हैं। मन में अपने कार्य से आत्मतुष्टि का भाव रखते हैं और आज भी उसी रफ्तार से विद्याध्ययन में पूरी तरह तत्पर रहते हैं।

उनका इतनी बड़ी संख्या में नई-नई भाषायें सीखने का आखिर क्या रहस्य है ?

आपका सवाल उचित है, पर इसका उत्तर उन्हीं के मुँह से सुनिये—

"मैंने जिन्दगी के शुरू में ही यह जान लिया था कि आदमी में तरह-तरह की अद्भुत शक्तियों का अनन्त और अक्षय भण्डार भरा हुआ है और यदि किसी को किसी कार्य में सच्ची लगन हो, निरन्तर अदम्य उत्साह का स्रोत मन में बहता रहे, वह उस काम को करने के लिये सच्चे मन और श्रम से लगा रहे, तो कोई कारण नहीं कि वह उसमें पूरी तरह कामयाब न हो।

"यह विश्वास आखिर आप में कैसे जमा था ?"

"शाबास ! यह पूछा है आपने मतलब का सवाल। यहीं से तो मेरे शुभ संकल्प और जीवन कार्य का श्रीगणेश हुआ था। मैं मनुष्य के विश्वास और उसके दृढ़-संकल्प को ही उसकी सफलता की आधारशिला मानता हूँ। मैंने सदैव ही मानव की अमोघ शक्तियों और उनका उपयोग करने में अखण्ड विश्वास रखा है। यह मेरे उसी विश्वास का पुरस्कार है कि मैं संसार का विभिन्न तीन सौ भाषाओं का ज्ञान कर सका हूँ।"

"डॉ. सुज ! आप अपनी जिन्दगी का निचोड़ किन बातों को समझते हैं ?"

उनकी अध्ययनशाला में एक कागज चिपका हुआ है, जिसमें बड़े-बड़े अक्षरों में कुछ लिखा है। उसे दिखाते हुए उन्होंने कहा—

'यह रहे मेरे सिद्धान्त' वे बोले, "अपनी सारी जिन्दगी मैंने इन्हीं नियमों के अनुसार व्यतीत की है। शुरू से ही मैं इन नियमों के अनुसार काम करता आया हूँ।" मेरे तीन सिद्धान्त हैं—

१. गम्भीर ध्यान से भरा अध्ययन,

२. ज्ञान प्राप्ति की सदा नई जिज्ञासा,

३. अनवरत श्रम और लगन।

इन तत्त्वों पर उन्होंने जीवन भर अमल किया है। पहले इन्हें आदत डालने में उन्हें कुछ कठिनाई पड़ी थी, किन्तु अनवरत परिश्रम और आत्मसंयम के अभ्यास से उनका मानसिक जीवन इन्हीं के अनुसार ढल गया है। आज इन्हीं महान आदतों को मानसिक जीवन का अंग बना लेने के कारण उनका समूचा जीवन ज्ञानमय, कीर्तिमय हो उठा है, वे ज्ञान के प्रति आत्मनिर्भर रहे हैं और उन्होंने अपने स्वाध्याय और परिश्रम से ही अपने आपको सुशिक्षित किया है। वे कहा करते हैं, "स्वाध्याय (नया ज्ञान प्राप्त करना) ही मनुष्य का बड़प्पन है। पढ़ने-लिखने से मत थको। अध्ययन को भार मत समझो। ज्ञान वृद्धि जीवन की कला का सार है। अध्ययन में अपनी आत्मा को रमा दो। उसी मनुष्य का जीवन धन्य है, जो पढ़ा-लिखा है। ज्ञान के रहस्य को समझता है।"

बिना ज्ञान प्राप्त किये मनुष्य की उन्नति नहीं हो सकती। यह वह पूँजी है, जो सच्चे अर्थों में मनुष्य का उत्थान करने वाली और उसे यश दिलाने वाली है। विद्या ही मनुष्य का सच्चा गौरव है।

ऊँचे उठने के लिए पहले विद्या प्राप्त कीजिये

मनुष्य की सबसे बड़ी विशेषता क्या है ? आदमी का असली गौरव किसे कहा जाय ? मानवता की दैवी विभूति वास्तव में क्या है ?

शास्त्रकारों ने इन प्रश्नों का उत्तर इन शब्दों में दिया है—

"गतेऽपि वयसि ग्राह्या विद्या सर्वात्मना बुधैः।
यद्यपि स्यान्न फलदा, सुलभा सान्जयन्मनि॥"

"हे मनुष्यो ! उम्र बीत जाने पर भी यदि विद्या प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हो, तो तुम निश्चय ही बुद्धिमान हो। (क्योंकि विद्या ही मानव की सर्वोत्तम विभूति है) विद्या इस जीवन में फलवती न हुई, तो भी दूसरे जन्मों में वह आपके लिए सुलभ बन जायेगी।"

सच्चा मनुष्य वही है, जिसके पास विद्यारूपी धन है। बिना ज्ञान के व्यक्ति अन्य जानवरों के समान निरा पशु ही है। विद्या से ही मनुष्य जीवन सार्थक होता है, क्योंकि वही मनुष्य के आत्मविकास का साधन है। संसार में विद्या से बढ़कर कोई मित्र और अविद्या से बढ़कर कोई शत्रु नहीं है। विद्या के कारण ही मनुष्य समाज, परिवार और जीवन के आनन्द, उल्लास, सम्मान आदि का सुख लूटता है और अन्त में मोक्ष प्राप्त करता है। अविद्या या अज्ञान ही सब असफलताओं की जड़ है। जन्म से सब मनुष्य थोड़े-बहुत अन्तर के साथ बराबर से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होते हैं, पर किसी विशेष क्षेत्र का ज्ञान, शिक्षण और विशेष अध्ययन ही उन्हें दूसरों से आगे बढ़ाता है। जिस आदमी के पास जमीन-जायदाद, रुपया आदि नहीं है, विद्या उसका सहायक और परम मित्र होती है, जीविका उपार्जन का साधन बन जाती है।

एक विचारक के शब्दों में "विद्या नवयुवक का सहारा, धनवान का यश और प्रौढ़ व्यक्ति का सुख-साधन होता है। विद्या मिलने से मनुष्य विचारशील, एकाग्रचित्त और परिश्रमशील बनता है। विद्या हमारी समृद्धि में आभूषण, विपत्ति में शरण स्थान और समस्त कालों में मनोरंजन का साधन होता है। विद्या का अन्तिम ध्येय परमात्मा को जानना है।"

मनुष्य को परखने की कसौटी उनके पूर्वजों द्वारा कमाया गया धन, सम्पत्ति या जमीन-जायदाद नहीं है, न रूप सौन्दर्य ही है। विद्या, बुद्धि, सद्ज्ञान, सद्बुद्धि और विवेक के मापदण्ड से ही मनुष्य के व्यक्तित्व की श्रेष्ठता की परख होती है। इस दुनिया में पैसे वाले को नहीं विद्वान को ही सच्चा धनी कहना चाहिये। सच पूछा जाय तो आदमी की योग्यता, विद्वता और प्रतिभा ही उसके बड़प्पन की कसौटी है।

दुनिया के समझदार आदमी विद्वान का ही आदर और जनता उसी का सार्वजनिक सम्मान करती है। महान पुरुष सदैव ऐसे ही अधिकारी पुरुषों का सान्निध्य प्राप्त करने की अभिलाषा करते हैं, जिन्हें विद्या के माध्यम से ही प्रवीणता प्राप्त हुई हो।

महाराज धृतराष्ट्र को, कौरवों तथा पाण्डवों को शस्त्र-प्रशिक्षण के लिए किसी सुयोग्य आचार्य की आवश्यकता थी, किन्तु कोई विद्वान राजगुरु उन्हें दिखाई न दिया। एक दिन द्रोणाचार्य भी उनकी सभा में आये। धनुर्विद्या में इतने प्रवीण आचार्य का पाण्डित्य देखकर महाराज मुग्ध हो गये और उन्होंने समझ लिया कि इनके पास रहकर बालकों के चरित्र का विकास हो सकेगा। अकेले शस्त्र-प्रशिक्षण की बात रही होती, तो वह कार्य कोई भी कर सकता था। नैतिक स्तर ऊँचा उठाने के लिये चरित्र, सद्ज्ञान, विद्वता और प्रतिभा सभी एक साथ एक ही व्यक्ति में मिलना जरूरी था।

प्राचीनकाल में अध्यापन कार्य इसीलिये सबसे कठिन काम समझा जाता था और कोई हर प्रकार से उन्नत चरित्र वाला विद्वान ही शिक्षक बनने का साहस कर सकता था। ऐसे व्यक्ति को शिक्षण का कार्य सौंपा जाता था, जो अक्षर ज्ञान के साथ मनुष्य की प्रतिभा विकसित करने के लिए सामर्थ्यवान हो सके। यह तत्त्व विद्या ही है, जो मनुष्य को श्रेष्ठ बनाती है और ऊँचे स्तर पर पहुँचाती है। गिरे हुए समाज के उद्धार के लिए भी विद्या की अनिवार्य आवश्यकता है।

आधुनिक विद्या का स्वरूप कुछ बदल गया है। उसमें नैतिक शिक्षण और चरित्र-निर्माण के लिये कोई स्थान नहीं है, कोरी बौद्धिक उन्नति की ओर ही प्रयत्न है। विद्यार्थियों का चरित्रबल, कर्मशक्ति, आशा, विश्वास, उत्साह, पौरुष, संयम और सात्त्विकता जाग्रत करने की शक्ति उसमें नहीं है।

जिस विद्या में कर्त्तव्यशक्ति को प्रेरणा न मिलती हो, स्वतन्त्र रूप से विचार करने की बुद्धि न आती हो, परिस्थितियों से टकराने की सामर्थ्य जो न दे सके, वह विद्या निस्तेज है, बिल्कुल निष्प्राण है।

आज का युग ऐसी दिखावटी विद्या ही दे रहा है। हमारे असंख्य विद्यार्थी कला, विज्ञान और वाणिज्य की डिग्रियाँ प्राप्त करके निकलते हैं, तो उनमें छल-कपट, धूर्तता, दुश्चरित्रता, फैशनपरस्ती, विलासिता, द्वेष और अहंकार के अतिरिक्त कुछ नहीं दिखाई देता। आज के कलियुगी विद्यार्थियों की करतूतें किससे छिपी हैं ? तनिक-तनिक-सी बातों पर हड़तालें, मार-पीट, लूट-खसौट, झगड़ेबाजी, परीक्षा में नकल, लड़कियों से गन्दा मजाक, अशिष्ट शब्दों का प्रयोग, भारी खर्च करने की आदत, सिनेमा, सिगरेट और पान इत्यादि व्यसन हर कोई देख सकता है। स्वतन्त्र चिन्तन का उनमें बिल्कुल अभाव होता है।

विचारों की पराधीनता का नाम अविद्या है, जिस पाठ्यक्रम में ऊपर बताई गई त्रुटियाँ हों, वह अविद्या ही कही जायेगी।

जो ज्ञान मनुष्य के अच्छे संस्कारों को जाग्रत करे, मनुष्य के चरित्र के सर्वोत्कृष्ट तत्त्वों को विकसित करे और उसकी उत्तम वृत्तियों को बढ़ाकर ऊँचा उठा दे, वही विद्या माननी चाहिये। ज्ञान मनुष्य को स्वाधीन बनाये, साहसी बनाये, विद्या कहलाने का गौरव उसे ही मिल सकता है। अध्यात्म रामायण में बड़े ही सुन्दर शब्दों में विद्या-अविद्या का उल्लेख मिलता है—

देहोऽहमिति या बुद्धिरविद्या सा प्रकीर्तिता।
नहि देहश्चिदात्मेति बुद्धिर्विद्येति मन्यते।।

अर्थात—'मैं देह हूँ'—इस बुद्धि का नाम अविद्या है। मैं देह नहीं आत्मा हूँ। इसका ज्ञान प्राप्त करना ही सच्ची विद्या है।

विकास का अर्थ इहलौकिक सम्पदाओं की विपुलता प्राप्त कर लेना नहीं है, वह विशुद्ध रूप से आध्यात्मिक जाग्रति का लक्षण है। मनुष्य का स्वत्त्व उसकी आत्मा और उसकी विशेषताएँ—सद्गुण, सत्प्रवृत्ति और सदाचार। आत्मा की इन विशेषताओं की उपलब्धि करना ही इस जन्म का उद्देश्य है और जो इस दशा में हमारी चेतना को अग्रसर करे, वही सच्ची विद्या है। क्रमशः आदमी इस स्तर तक ऊँचा उठ सकता है।

जो ज्ञान मनुष्य को सही दिशा, उन्नति का सही मार्ग और जीवन का सच्चा प्रकाश दिखाती है, उसे अध्यात्म कहते हैं। इस अध्यात्म को जाग्रत करने का काम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आपको शुरू से ही करना होगा। विवेक जगाने वाली विद्या न रही तो पतित होना स्वाभाविक ही है। मनुष्य के भीतर जो पशुत्व है, जो गन्दगी है, उसे दूर करने का एकमात्र उपाय विद्या की प्रवीणता ही है। जब तक जीवन की दिशा सात्त्विक नहीं हो तो गुण, कर्म और स्वभाव में सत्तत्त्वों का समावेश नहीं होता, मनुष्य की जड़ता और पशुता तब तक दूर नहीं हो सकती। अध्यात्म विद्या सुखी जीवन की प्रमुख आवश्यकता है।

आप मनुष्य की सर्वोत्तम विभूति उस विद्या, उस विद्वता और सद्ज्ञान को अधिकाधिक प्राप्त कीजिये। जिस विद्वता से मनुष्य स्वयं ही अपना योग्य साथी बनता है, जिससे वह अपनी जीविका कमाता है, जिन्दगी सुख और सम्पन्नता से कटता है, उसके लिए सच्ची लगन और गम्भीर अध्ययन की आवश्यकता है। विद्या आत्मा की प्यास है। इसकी पूर्णाहुति आत्मज्ञान से ही होती है। जीवन लक्ष्य की पूर्ति के लिये विद्या की प्रमुख आवश्यकता है। कठोर प्रयत्नों से भी इसे प्राप्त किया जाना चाहिये।

स्वाध्याय : जीवन को विकसित, उच्च और पवित्र बनाने का साधन

स्वाध्याय का अर्थ है—स्वअध्याय अर्थात स्वयं पढ़ना और ज्ञान प्राप्त करना, खुद अपने ज्ञान की अभिवृद्धि करना, अपनी नालेज बढ़ाना। स्वाध्याय ही नया ज्ञान प्राप्त करने का तरीका है। स्वाध्याय से ज्ञान की बढ़ोत्तरी होती है, मन में परिपक्वता आती है, आचरण में पवित्रता आती है तथा आत्मा में प्रकाश आता है।

यदि आदमी कुछ पढ़ता-लिखता न रहे, पुस्तकें, समाचार-पत्र, मासिक पत्र इत्यादि कुछ न कुछ न देखता रहे तो पढ़ी हुई पुरानी बातें भी भूल जाती हैं। जैसे सीखने की क्रिया है, वैसे ही भूलने की क्रिया भी तीव्र है। प्रायः देखा जाता है कि कोई उपाधि प्राप्त कर लेने के बाद जो विद्यार्थी, वकील अथवा डाक्टर अपना अध्ययन और नई-नई पुस्तकों को पढ़ना बन्द कर देता है, उसका ज्ञान पुराना पड़ जाता है। जो नये ज्ञान को लगातार संग्रह करता रहता है और अपना ज्ञान अप-टू-डेट रखता है, वह दूसरों का विश्वास पा जाता है।

आपको शायद मालूम नहीं कि संसार की विचारधारा को मोड़ देने वाले विचारक, विद्वान, पत्रकार और लेखक प्रतिदिन घण्टों स्वाध्याय में लगे रहते हैं। जो स्वाध्यायशील रहता है, उसका ज्ञान आधुनिक और विद्या जाग्रत रहती है। प्रतिदिन कुछ न कुछ पढ़ते रहने वाले अपने ज्ञानकोष में बूँद-बूँद इकट्ठा करके उसे अक्षय बना लिया करते हैं। यदि आपमें अपने ज्ञान को बढ़ाने की सच्ची और तीव्र इच्छा हो, तो आप अवश्य ही खुद पढ़ेंगे, फालतू समय को व्यर्थ के कार्यों से बचाकर नये ज्ञान की प्राप्ति में लगायेंगे।

जीवन को सफल, उच्च और परिपक्व बनाने के लिए गुणों से संचित मानव-जाति की बड़ी जरूरत है। इस पुराने ज्ञान से हमें जीवन का अनुभव प्राप्त होता है। इन लाखों-करोड़ों तत्त्वों को जल्दी ही अपने आप प्राप्त करने के लिये स्वाध्याय की सबसे ज्यादा जरूरत है। किसी भी व्यक्ति को क्यों न देख लिया जाय, जिसने प्रसिद्धि और उच्चता के सोपानों पर चरण रखा है, उसके जीवन में खुद पढ़ने-लिखने और अपने ज्ञान को निरन्तर बढ़ाने की उत्कट लालसा रही है। वह स्वाध्याय के प्रेमी रहे हैं।

दूसरी ओर स्वाध्याय के अभाव में कोई भी व्यक्ति मामूली विद्या से महान अथवा ज्ञानवान नहीं बन सकता। प्रतिदिन नियमपूर्वक उत्तमोत्तम ग्रन्थों, मासिक पत्रों, समाचार-पत्रों का अध्ययन करते रहना चाहिये। इससे नवीनतम ज्ञान इकट्ठा होता है, बुद्धि तीव्र होती है, विवेक बढ़ता है और मनुष्य की पाशविक कुप्रवृत्तियाँ दब जाती हैं। इसका स्पष्ट और व्यावहारिक कारण है—वह यह है कि सद्ग्रन्थों के अध्ययन करते समय मन उत्तम सृजनात्मक विचारों में लगा रहता है और ग्रन्थ के सद्विचार उस पर पवित्र संस्कार डालते हैं।

ज्ञान बढ़ाने के लिए प्रतिदिन कोशिशें करते रहना चाहिये। दो-चार दिन में कोई विशेष अन्तर नजर नहीं आता, महीने-चार-महीने में फर्क नजर आने लगता है और स्मरण शक्ति तीव्र हो जाती है। जितना पढ़ते हैं, जितनी विद्या बढ़ती है, उतना ही और अधिक पढ़ने और अध्ययन को मन करता है—यदि ज्ञान की रुचि बन गई, तो अधिकाधिक उधर प्रवृत्ति होती जायेगी। यदि आप कुछ मास पढ़ना-लिखना छोड़ देगें, तो सीखा-सिखाया भी भूल जायेंगे।

निरन्तर पढ़ने-लिखने से मनुष्य का ज्ञान जाग्रत और नवीन बना रहता है। भाषण देने वाले के लिये ज्ञान से सम्पन्न होना आवश्यक है। अध्ययनशील व्यक्ति की वाणी सफल, सार्थक तथा प्रभावोत्पादक बन जाती है। वह जिस समाज में जाता है, उसकी ज्ञान-मुखर वाणी उसे विशेष स्थान दिलाती है। जनता की नजरों में वह शिष्ट और ऊँचा गिना जाता है। अध्ययनशील व्यक्ति का ही कथन प्रामाणिक और तथ्यपूर्ण माना जा सकता है। बिना अध्ययन किये बोलने वालों की वाणी बकवास से अधिक कोई महत्त्व नहीं रखती। वे कभी कुछ, कभी कुछ बिना तारतम्य तथा तर्क के अन्ट-शन्ट बोलते जाते हैं। स्वाध्याय निःसन्देह सामाजिक प्रतिष्ठा दिलाने वाला तत्त्व है।

यह जरूरी नहीं कि योग्यता केवल स्कूल या कॉलेजों में दाखिला लेकर ही बढ़ाई जा सके, यद्यपि विद्यालयों में दाखिला पाकर ज्ञान बढ़ाना आसान हो जाता है। संसार के इतिहास में ऐसे असंख्य व्यक्ति भरे पड़े हैं, जिनको जिन्दगी भर विद्यालय के दर्शन नहीं हो सके,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किन्तु खुद पढ़ने-लिखने की रुचि और उत्साह के बल पर वे विश्व के विशेष विद्वान व्यक्ति बने हैं। साथ ही ऐसे व्यक्तियों की भी कमी नहीं है, जिनकी जिन्दगी का अच्छा-खासा भाग विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में व्यतीत हुआ था, किन्तु उसके बाद स्वाध्याय में प्रमाद करने के कारण उनकी पुरानी इकट्ठी की हुई योग्यता भी गायब हो गई और वे अपनी तपस्या का न तो लाभ उठा पाये और न सुख ! इसलिये पुराने ज्ञान और योग्यता को बनाये रखने के लिए स्वाध्यायशील होना बेहद जरूरी है।

कॉलेज की कक्षाओं या जनता में, सार्वजनिक मंच पर धाराप्रवाह बोलने वाले प्रोफेसरों और वक्ताओं का दैनिक जीवन देखने से पता चलता है कि वे अपना कर्त्तव्य निबटाने के बाद अपना सारा जीवन स्वाध्याय में ही व्यतीत करते हैं। भाषण से पूर्व बहुत-सा तथा आकर्षक ज्ञान जनता को देने के लिये तैयार और संग्रह करके ले जाते हैं। उनके मुख द्वारा धाराप्रवाह बातें निकलना और कुछ नहीं, तेज से पूर्ण योग्यता का ही विकास और प्रवाह है। यह वह ज्ञान है जो वह अपना बहुमूल्य समय का क्षण-क्षण लगाकर स्वाध्याय द्वारा इकट्ठा किया करते हैं।

यह दुनिया लगातार बड़ी तेज रफ्तार से बहु दिशाओं में निरन्तर तीव्रगति से आगे बढ़ती जा रही है। मनुष्य की सच्ची बौद्धिक सम्पत्ति तो आखिर ज्ञान ही है। आज के प्रबुद्ध मनुष्य हर क्षेत्र में नये-नये अनुसन्धान, नई-नई खोजें और जानकारियाँ प्राप्त कर रहे हैं, ढेरों रिसर्च हो रहे हैं। ज्ञान के नये-नये स्त्रोत खुल गये हैं। विदेशों में असंख्य लोग विज्ञान के क्षेत्र में तीव्रगति से प्रगति और उन्नति करते जा रहे हैं। इस नवीनतम इन्जीनियरिंग, चिकित्सा, विज्ञान, उद्योग, व्यापार के समुन्नत-समृद्ध ज्ञान के बल पर ही आज का प्रगतिशील मनुष्य अपने को पूर्व पुरुषों से श्रेष्ठतर और अधिक विकसित मानता है। नया ज्ञान ही मानवता की सबसे कीमती पूँजी है। अध्ययनशील व्यक्ति को यह पूँजी सहज ही में उपलब्ध रहती है। वह एक जागरूक नागरिक की तरह ही जीवन में जीने का सुख पाता है। वह मूढ़मति जैसा नहीं होता कि उसे अपने आस-पास गुजरने वाली वस्तुस्थिति का भी ज्ञान न हो।

अध्ययनशीलता एक प्रकार का उत्तम सत्संग है। इस शुभ कार्य के लिये उसे समय बचाना पड़ता है। इसलिए वह संयम सीखता है, उसके सोने-जागने, विश्राम और मनोरंजन करने का समय निश्चित हो जाता है। व्यर्थ का एक क्षण भी वह नष्ट नहीं करना चाहता। अपनी बुद्धि को बलवती बनाने के लिये वह आहार-विहार में भी संयमशील रहता है। आलस्य और प्रमाद की मनोवृत्तियाँ उसके समीप नहीं आती हैं। वह जीवन का सच्चा सुख लूटता है और उसमें आलस्य और प्रमाद की प्रवृत्तियाँ स्वयं दबी रहती हैं। रोग की दशा में अध्ययनशील व्यक्ति रोग के कारणों का अध्ययन करता है, जिससे न तो रोग ही उसे अधिक पीड़ित कर पाता है और न अधिक समय ठहर पाता है। अध्ययनशीलता सुख-दुःख, हानि-लाभ, सम्पत्ति-विपत्ति, उत्थान-पतन, गिरी हुई या ऊँची स्थिति में सदा सहायक होती है।

विद्वानों ने अध्ययन को पथ-प्रदर्शक, नेता और प्रकाश की किरणों जैसा उपकारी माना है। अध्ययन तो दूसरों का उपयोगी अनुभव है। यह वह रास्ता है जिस पर दूसरे चले हैं, उससे लाभ उठाया है। हम उसी सद्भावना को अपने अन्दर धारण करके लाभ उठाते हैं।

वेदों में कहा गया है, "जो मनुष्य सत्पथ-दर्शक अपने सच्चा सखा स्वाध्याय का परित्याग कर देता है, उसकी नाड़ी आदि इन्द्रियों पर अधिकार नहीं रहता। अध्ययन छोड़ने से नाड़ी अति अनर्गल और अन्य इन्द्रियाँ उच्छृंखल हो जाती हैं, जिससे उसे दुःखों का भागी बनना पड़ता है। वास्तव में यह बात ठीक भी है। स्वाध्याय जैसे मित्र को छोड़ने से व्यक्ति की मानसिक एकाग्रता नष्ट हो जाती है।

मौलिक चिन्तन की कसौटी पर कसिये

नीतिकार ने कहा है—

"दृष्टि-पूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिवेज्जलम्"

दुनिया में सबसे श्रेष्ठ और काम की बात यह है कि सामने अच्छी तरह देखकर ही कदम रखिये, हो सकता है कि सामने बड़ा भारी खतरा हो। छानकर पानी पीजिये, हो सकता है पानी में कोई विषैली वस्तु हो।

जो ज्ञान आपको पुस्तकों, भाषणों या दूसरों से मिले उसे अपनी निजी व्यवहार की कसौटी पर कसिये और देखिये कि वह किस हद तक खरा है ? किसी की बात को इसलिये मत मान लीजिये कि उसे किसी व्यक्ति विशेष ने कहा है या किसी ग्रन्थ में लिखा है अथवा एक बहुत बड़ा मानव समुदाय उसके अनुसार चलता है। प्रत्येक बात, विचार, परम्परा को मौलिक चिन्तन की कसौटी पर ही सही-सही परखे बिना व्यवहार में नहीं लाना चाहिये।

अपनी बुद्धि को किसी भी तरह आग्रह प्रधान, मोहाशक्त और एकांगी नहीं रखना चाहिये। पुराने ग्रन्थों में वर्णित ज्ञान-विज्ञान भी प्राप्त करना चाहिये और आधुनिक युग का भी। इन दोनों को खूब पढ़कर, खूब तौलकर वही ग्रहण करना चाहिये जो अपने स्वतन्त्र विचार की कसौटी पर अपने तथा समाज के लिये हितकार हो।

हममें से बहुत-से लोग अपनी बुद्धि को निष्पक्ष, निर्लेप रख पाते हैं। जाने-अनजाने अधिकांश तो किन्हीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संस्थाओं, विचार प्रणालियों, चली आ रही रूढ़ियों, मान्यताओं अथवा नये विचारों को आँख मूँदकर, बुद्धि पर पर्दा डालकर मान लेने के अभ्यासी हैं। हमारे जो विश्वास बन गये हैं, धीरे-धीरे जो मान्यताएँ हमारी निजी हैं। उनसे हम इस तरह चिपक जाते हैं कि उनसे परे उनसे ऊपर उठकर कुछ सोचने-समझने और मानने की गुंजायश ही नहीं रहने देते।

इस तरह का दृढ़ाग्रह, जिद की प्रवृत्ति हमारी बुद्धि को विकसित न कर उसे कुण्ठित करना ही है। इसलिए सब पढ़-लिखकर, देखकर और सुनकर भी अपनी बुद्धि को स्वतन्त्र रखना, उसमें मौलिकता का जीवन डालना आवश्यक है।

स्वतन्त्र बुद्धि की कसौटी पर जो आपको सत्य लगे समाज और व्यक्ति के लिए लाभदायक हो उसे स्वतन्त्रतापूर्वक व्यक्त करना, दूसरों को सिखाने की क्षमता और साहस का होना भी आवश्यक है।

आप सम्भव है बहुत बुद्धिमान हों, जल्दी ही किसी निर्णय पर पहुँच जाते हों, लेकिन वे साहस से अपने अनुभवों को प्रकट नहीं करते। उपयोगी समझते हैं, उसे कहते नहीं, लिख या बोलकर सबके सामने प्रस्तुत नहीं करते। इस प्रकार से बुद्धि को दबाने से वह कुण्ठित हो जाती है और उसकी बढ़ने वाली क्षमता नष्ट हो जाती है।

जिन्दगी में आपको जो उपयोगी अनुभव मिले हैं, उन्हें साहस के साथ प्रकट कीजिये और दूसरों को सिखाइये। चाहे आपको ही कितने विरोधों-अवरोधों का सामना करना पड़े, आपकी बुद्धि जो निर्णय देती है, उसका गला मत घोंटिये। आप देखेंगे कि भाषण और लेखन—दोनों ही द्वारा आपकी बौद्धिक तेजस्विता, विचारों की प्रखरता और अभिव्यक्ति बढ़ेगी और बुद्धि अधिक कार्यकुशल व समर्थ बनेगी।

अपनी योग्यता बढ़ाने और बुद्धि का विकास केवल प्राचीन ग्रन्थों के पाठ मात्र से काम न चलेगा, न आज के युग की उच्छृंखलता में बह जाने से कुछ प्रयोजन सिद्ध होगा। अपने बौद्धिक विकास के लिए खुद अच्छी पुस्तकों, अच्छे संग, अच्छी पत्र-पत्रिकाओं का चुनाव करना होगा। प्राचीन और अर्वाचीन का मेल, नये-नये प्रयोग, नई सूझ-बूझ का परिचय देना और नई राह निकालनी पड़ेगी। आज हमारी बुद्धि भ्रमित है। हमारे अधिकांश युवक किसी भी क्षेत्र में सही निर्णय नहीं कर पा रहे हैं, जिधर की हवा आती है, वे उधर ही बह जाते हैं। केवल अपनी बुद्धि और चरित्र विकास करना ही हमारा लक्ष्य होगा।

ज्ञान दो प्रकार से बढ़ता है—१. स्वाध्याय तथा २. दूसरों के द्वारा दिये गये ज्ञान को मन में जमाने से। यदि हममें नई बातें सीखने की प्रबल इच्छा है, तो हम जरूर कुछ न कुछ सीखने की भावना लेकर पुस्तक पढ़ना शुरू करेंगे। इसलिए मन में नव ज्ञान संग्रह की भावना को लेकर अध्ययन करना लाभदायक है।

पढ़ने का मूड महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। मूड का मतलब मन की ग्रहणशील अवस्था है। जब मन नई बातें सीखने की स्थिति में हो, तो लाभदायक अध्ययन होता है। थके हुए मन से या उद्विग्न अवस्था में कभी भी गम्भीर अध्ययन नहीं हो पाता। प्रायः पढ़ने का सर्वोत्तम काल प्रातःकाल है। रात्रि में सोने के बाद मस्तिष्क तरोताजा और ग्रहणशील बन जाता है। मन शान्त अवस्था में रहता है। प्रातःकाल को ईश्वर का समय कहा गया है, जिससे पवित्रता का बोध होता है। माता सरस्वती का श्रद्धापूर्वक पूजन कर अध्ययनक्रम चालू कर देना चाहिए। अध्ययन को धार्मिक कार्य बना लेने से गुप्त ईश्वरीय सहायता हमारे साथ रहती है। हमें अपने बुद्धि-विवेक का उच्च लक्ष्य सदा याद रहता है। लक्ष्य सिद्धि के लिए धार्मिक दृष्टिकोण की आवश्यकता है। जो व्यक्ति अध्ययन को धर्म का अंग समझकर पढ़ता है, वह निश्चय ही अधिक लाभ उठाता है।

गम्भीर साहित्य का अध्ययन किया करें

गम्भीर पुस्तकों को पढ़ने की आदत विकसित करें। हमारा मन बड़ा चंचल है। तितली की तरह इधर-उधर दूसरे फूल पर भागा-भागा फिरता है। इसे किसी गम्भीर विषय पर एकाग्र करना, मर्म को पकड़ना, नई बात को स्मरण रखना और याददाश्त को तरोताजा बनाये रखना ही अध्ययन की सफलता है।

लोग हल्की-फुल्की कहानी, उपन्यास या फिल्मी पत्रिकायें खूब पढ़ते हैं। यह सस्ती किताबें मस्तिष्क की ग्रहणशक्ति को ढीला बनाती हैं। ऐसा व्यक्ति ठोस पुस्तक या गहन विषयों पर अपना ध्यान एकाग्र नहीं कर पाता। मन बहलाने के लिए हल्की पुस्तकें थोड़ी देर पढ़ लें, यह और बात है, पर वास्तविक पढ़ना गम्भीर विषयों का निगूढ़ अध्ययन ही है। पहले कठोर विषयों को पूरे ध्यान से पढ़ लिया जाय। जब मस्तिष्क तरोताजा होता है, गम्भीर विषयों को खूब पकड़ता है। अध्यात्म, मनोविज्ञान, गणित, अर्थशास्त्र, राजनीति और विज्ञान सबका अध्ययन प्रातःकाल करना चाहिए।

पुस्तकालयों का जाल बिछा दिया जाये

स्वाध्याय की महिमा अतुल है, जिसने पढ़ने का महत्त्व जान लिया, उसने सौभाग्य का द्वार पा लिया। जिसने विचार की आवश्यकता अनुभव कर ली, उसने विकास का आधा पथ पार कर लिया, यह जानना चाहिए।

''स्वाध्याय से बढ़कर आनन्द कुछ नहीं''

—गाँधीजी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

''मुझे नरक में भेज दो वहाँ भी स्वर्ग बना दूँगा, यदि मेरे पास पुस्तकें हों''

—लोकमान्य तिलक

इन दोनों मूर्धन्य महापुरुषों ने ज्ञान की महत्ता उपरोक्त शब्दों में गाई है।

डनफर्मलाइन (स्काटलैण्ट) में एक बालक जन्मा। उसकी माँ केक बनाती थी और एक छोटी-सी कोठरी में बैठकर उन्हें बेचा करती थी। पिता फेरी लगाता था, शाम को उतने पैसे मिल जाते थे, जितने से तीनों प्राणी पेट भर लेते थे और आधे फटे कपड़े पहन लेते थे। गरीबी से दुःखी लड़का एक दिन घर से भाग गया और अमेरिका पहुँचकर एक इस्पात कम्पनी में चपरासी हो गया। काम उतना था नहीं, इसलिये अपने साहब की अलमारी से कोई किताब निकाल लेता और पढ़ने लगता और कर्मचारी आते और उसे बातचीत में लगाना चाहते पर वह उन्हें किसी न किसी बहाने से टरका देता और फिर अपने पढ़ने में लग जाता। वह इतनी तल्लीनता से पढ़ता कि पुस्तक की अधिकांश बातें एक पाठन में ही याद हो जातीं।

एक दिन एक मीटिंग थी। कोई प्रश्न आ पड़ा, उसे मैनेजिंग डाइरेक्टर भी सुलझाने में असमर्थता अनुभव कर रहे थे। वह लड़का पास ही खड़ा था, उसने एक किताब उठाई, बीच में से शीघ्रता से एक पृष्ठ खोलकर डाइरेक्टर के आगे बढ़ा दिया। यही वह उत्तर था, जिसकी खोज हो रही थी। बालक की इस असाधारण प्रतिभा से सब हक्के-बक्के रह गये। वह बालक अपनी बुद्धि से उस उद्योग की तमाम तकनीक सीख गया और एक दिन करोड़पति होकर एन्डरू कार्नेगी के नाम से विख्यात हुआ। वह श्रेय—जिसने उसे जमीन से उठाकर आसमान पर पहुँचा दिया—उसकी स्वाध्याय बुद्धि को ही दिया जा सकता है।

एक और वैसा ही निर्धन बालक दक्षिण-भारत में भी हुआ है, जिसे अपनी स्वाध्याय की आकांक्षा को तृप्त करने के लिए सड़कों में जलने वाली बत्तियों के नीचे पढ़ना पड़ता था। किताबें खरीदने के लिए पैसे नहीं होते थे, इसलिए वह भी पुस्तकालय की शरण लेता था। इस तरह उसने ज्ञानवृद्धि की साधना सतत् जारी रखी और और एक दिन उसकी बौद्धिक प्रतिभा इस योग्य हुई कि बिटिश सरकार ने उसे मद्रास हाईकोर्ट का न्यायाधीश नियुक्त किया। वह बालक—सर टी. एस. मुत्तुस्वामी अय्यर पहले भारतीय थे, जिनको इस तरह का महत्त्वपूर्ण पद प्रदान किया गया।

ज्ञानार्जन के इस लाभ को जिसने भी समझा, वह गई-गुजरी स्थिति से निकलकर कुछ से कुछ हो गया। ऐसे सैकड़ों उदाहरण हैं, जिनसे पुस्तकालयों की उपयोगिता का पता चलता है। सम्पन्न घरों के लोगों को तो पुस्तकों की कोई कमी नहीं रहती पर एक साधारण नागरिक को जिसे ज्ञान वृद्धि और व्यक्तित्व के विकास की इच्छा होती है, उनके लिये पुस्तकालय ही उपयोगी माध्यम हैं। उनसे हजारों व्यक्ति सम्पन्न परिवार की तरह अपनी ज्ञानार्जन पिपासा शान्त कर लेते हैं और इस तरह समाज के सैकड़ों लोग जो विचार और बौद्धिक क्षमता के अभाव में आगे बढ़ने से रह जाते हैं—अपनी उन्नति के लिये भी मार्ग खोल लेते हैं।

इस तथ्य को कनाडा ने अनुभव किया। कनाडा तब निर्धन देश था, जिन दिनों की बात कह रहे हैं। अभी पौने दो-सौ वर्ष ही हुए होंगे, वहाँ शिक्षा की बड़ी कमी थी। सरकार ने बच्चों के लिए शिक्षा अनिवार्य कर दी, पर जो शेष नागरिक थे, क्या उन्हें इसी स्थिति पर पड़ा रहने दिया जाए, यह एक गम्भीर समस्या थी। उधर उद्योगों के लिए कुछ शिक्षित लोगों की आवश्यकता अनुभव की गई। वहाँ के नेताओं ने परस्पर विचार किया और सारे देश में पुस्तकालयों का जाल बिछा दिया। जो बालक पढ़ रहे थे, उन्हें बीच में पढ़ाई छुड़ाकर धन्धों में लगा दिया जाता था, इस बीच वे पुस्तकालयों में जाकर ज्ञानार्जन करते रहते थे, क्रम न टूटने पाता था। कुछ वर्ष बाद उन्हें फिर से विशेष हाई-स्कूलों में शिक्षा दी जाती थी। वयस्क हो जाने पर फिर उन्हें पुस्तकालयों में पढ़ने के लिए पुस्तकें दी जाती थीं। अधिक से अधिक सेवा के लिए वहाँ लाइब्रेरियनों को प्रशिक्षण देने की व्यवस्था बनाई गई। कुशल पुस्तकालयाध्यक्षों के मार्गदर्शन में लोगों को अपने व्यक्तित्व के विकास का समुचित अवसर मिला और कनाडा देखते ही देखते दुनिया के समृद्ध और विकसित देशों की पंक्ति में जा खड़ा हुआ।

प्रसिद्ध विद्वान डॉ. एस. आर. रंगनाथन ने एक बार जापान की यात्रा की। ओसाका में उन्होंने एक स्थान पर कतार में खड़े लोगों को पुस्तकें पढ़ते देखा। पढ़ने वालों की अधिक संख्या देखकर उन्हें कुछ आश्चर्य हुआ, उन्होंने वहाँ जाकर पता लगाया तो मालूम हुआ कि यह एक पुस्तकालय है, जहाँ प्रतिदिन लोग भारी संख्या में पुस्तकें पढ़ने आते हैं। पूछने पर पुस्तकालय के अध्यक्ष ने बताया कि यह पुस्तकालय 30 वर्ष पहले बना था। तब थोड़े से आदमियों के आने का अनुमान था, इसलिए उतने ही स्थान की व्यवस्था की गई थी। अब लोग बहुत अधिक आते हैं, इसीलिए सीट रिजर्व कर दी गई हैं। जिनका नम्बर नहीं आता, वे लोग अपनी अध्ययन की आकांक्षा को तृप्त करने के लिए बाहर खड़े होकर पढ़ते हैं। हम इस कमी को दूर करने के प्रयत्न में हैं।

जापानी लोगों की इस स्वाध्याय वृत्ति से वहाँ के जीवन में क्या कोई क्रान्ति हुई है ? इस प्रश्न पर विचार करें तो मालूम होगा कि जापान ने इतनी अधिक उन्नति कर ली है कि वह एशिया के विकसित देशों में अपना प्रथम स्थान रखता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धन कमाना कोई बड़ी बात नहीं है। पढ़े-लिखे और विचारवान व्यक्तियों के लिए तो वह सबसे छोटी समस्या है। ज्ञान का उद्देश्य व्यक्तिगत जीवन में शान्ति और सामाजिक जीवन में सभ्यता और व्यवस्था लाना है, वह भी शिक्षा और ज्ञान के अभाव में पूरा नहीं हो सकता। इसलिए पढ़ना सब दृष्टि से आवश्यक है। पुस्तकालय एक ऐसी व्यवस्था है, जहाँ औसत नागरिक भी अधिकतम ज्ञान और विचार अर्जित कर सकता है।

पुस्तकालय समाज की अनिवार्य आवश्यकता है। मनुष्य को भोजन, कपड़े और आवास की व्यवस्था हो जाती है, तो वह जिन्दा रह जाता है, शेष उन्नति तो वह उसके बाद सोचता है। समाज यदि विचारशील है, तो वह शान्ति और सुव्यवस्था की अन्य आवश्यकताएँ बाद में भी पूरी कर सकता है, इसलिए पुस्तकालय समाज की पहली आवश्यकता है, क्योंकि उससे ज्ञान और विचारशीलता की सर्वोपरि आवश्यकता पूर्ति होती है, किन्तु इतना ही काफी नहीं है कि एक स्थान पर पुस्तकें जमा कर दी जायें, उनके विषय चाहे जो कुछ हों।

गन्दे और दूषित विचार देने वाली पुस्तकों से तो अनपढ़ अच्छा, जो बुराई करता है पर बढ़ाता नहीं। जितनी बुराइयाँ बन चुकी हैं, उन्हीं तक सीमित रह जाता है। यथार्थ की आवश्यकता की पूर्ति उन पुस्तकों से होती है, जो प्रगतिशील विचार दे सकती हैं। जो समस्याएँ हल कर सकती हैं, जो नैतिक और सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक, सामाजिक और विश्वबन्धुत्व की प्रेरणायें और शिक्षायें भी दे सकती हैं।

एक बार इंग्लैण्ड में भी ऐसी ही क्रान्ति उठी थी। वहाँ भी जनता के लिए स्थान-स्थान पर पुस्तकालय स्थापित किये गये। काफी समय तक इसमें अधिक कोई दिलचस्पी न ली गई, पर द्वितीय विश्वयुद्ध के समय शासनाध्यक्षों ने पाया कि चारित्रिक और नैतिक दृष्टि से इंग्लैण्ड का स्तर बहुत नीचे गिर गया है। उसके कारणों की विस्तृत खोज-बीन की गई तो यह पाया गया कि वे पुस्तकालय ही इसके कारण हैं, जिन्हें जनता के बौद्धिक विकास के लिए स्थापित किया गया था। हुआ यह कि वहाँ के अधिकांश युवकों ने उपन्यास और कामोत्तेजक साहित्य में ज्यादा रुचि ली। सृजनात्मक साहित्य उपेक्षित पड़ा रहा। जैसे विचार लोगों ने पढ़े वैसी ही मनोवृत्ति बनती गई।

अब वहाँ एक योजना बनाई गई। पुस्तकालयाध्यक्ष प्रशिक्षित किये गये और उन्हें बताया गया कि यदि कोई स्त्री पुस्तक लेने आती है, तो पहले यह पूछो कि उसकी समस्यायें क्या हैं ? उदाहरणार्थ, यदि वह कम शिक्षित है तो उसे हल्की-फुल्की साहस और नैतिकता की पुस्तकें पढ़ने को दो और यह भी कहो कि वह यह कहानियाँ बच्चों को भी सुनाया करे। इसी प्रकार यदि कोई शिक्षित स्त्री है तो उसे बाल-समस्या, बाल-कल्याण, परिवार मनोविज्ञान की पुस्तकें दो। इस योजनाबद्ध तरीके से वहाँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नये-नये अनुसन्धान प्रारम्भ हुए। अँग्रेजी साहित्य ही आज एकमात्र ऐसा साहित्य है, जिसमें मनुष्य जीवन के किसी भी पहलू पर विचार और शोध, जानकारियाँ मिल सकती हैं, यह उसी योजनाबद्ध 'पुस्तकें पढ़ाओ' अभियान का चमत्कार है। वहाँ 80 प्रतिशत से भी अधिक लोग पुस्तकालयों का लाभ उठाते हैं। जहाँ पुस्तकें नहीं हैं, वहाँ भी चल-पुस्तकालयों द्वारा पुस्तकें पहुँचाई जाती हैं।

इससे लोगों की सुख-समृद्धि का द्वार खुल गया। बैकबेल नामक एक गाँव के एक युवक ने पुस्तकालय में उपलब्ध 'इलेक्ट्रॉनिक्स' की तमाम पुस्तकें पढ़ीं, वह बेरोजगार था। इन पुस्तकों के सहारे वह रेडियो बनाना सीख गया, यही नहीं रेडियो इन्जीनियरी की भी बहुत-सी तकनीकें उसने सीखीं। इंग्लैण्ड का औसत नागरिक विश्व समस्याओं, परिस्थितियों और ज्ञान-विज्ञान से लेकर छोटे-छोटे उद्योगों तक की इतनी जानकारी रखता है, जितनी भारतवर्ष का एम. ए. उत्तीर्ण छात्र भी नहीं जानता होगा, यह सब उनकी स्वाध्यायवृत्ति का ही प्रतिफल है।

यह छोटे उदाहरण इस बात के प्रमाण हैं कि मस्तिष्क को संस्कारवान और ज्ञान से परिपूर्ण कर लेने पर मनुष्य व्यक्तिगत उन्नति ही नहीं, सामाजिक और राष्ट्रीय समृद्धि का भी द्वार खोलता है। इन लाभों को देखते हुए भारतवर्ष में भी पुस्तकालयों का जाल बिछाने की आवश्यकता अनुभव हो रही है। यदि कुछ विचारवान व्यक्ति अथवा राजनैतिक नेता इसे एक अभियान का स्वरूप प्रदान करें, तो देश देखते-देखते धरती से आकाश में पहुँच सकता है।

अपने रहने की दुनिया आप बनाएँ

जिस दुनिया में हम रहते हैं उसमें श्रेष्ठता प्रयत्नपूर्वक तलाश करनी पड़ती है। निकृष्टता के तो हर दिशा में पहाड़ दिखाई देंगे। नैतिक, पराभव और पतन की परिस्थितियाँ मक्खी-मच्छरों की तरह उपजती, बढ़ती रहती हैं, पर उपयोगी प्राणियों को तो प्रसन्नतापूर्वक ढूँढ़ना और पालना पड़ता है। ओछापन, ओछी परिस्थितियों की ओर आकर्षित होता है। सुसंस्कृत मनुष्य सदा अल्पमत से रहे हैं, फिर श्रेष्ठता का प्रभाव क्षेत्र भी उतना विस्तृत नहीं होता जितना निकृष्टता का। पानी नीचे की ओर बहता है और मनुष्य की पशु-प्रवृत्तियाँ उसे नीचे की ओर धकेलती ही नहीं, पृथ्वी की आकर्षण शक्ति की तरह अपनी ओर घसीटती भी हैं। सामान्य बुद्धि को सांसारिक विकृतियाँ ही प्रभावित करती हैं।

संकीर्ण स्वार्थपरता का इन दिनों दौर-दौरा है। आदर्शों की ओर कदम बढ़ाने की अपेक्षा लोग निकृष्ट क्रिया-कृत्यों की ही बात सोचते हैं। उज्ज्वल भविष्य का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निर्माण करने की अपेक्षा लोगों को तात्कालिक लाभ कमाने में अधिक रुचि है, भले ही उसके लिए अनीति का मार्ग ही क्यों न अपनाना पड़ता हो। परिस्थितियाँ कुछ ऐसी हैं कि धूर्तों में से कितने ही सफल और सुसम्पन्न भी दीखते हैं। अस्तु, सहज ही सामान्य बुद्धि का रुझान नीतिमत्ता की दूरदर्शिता अपनाने की अपेक्षा—किसी भी उपाय से तुरन्त लाभान्वित होने की ओर ही होता है। दृष्टि पसार कर हम अपने चारों ओर ऐसा ही वातावरण छाया देखते हैं। उसका प्रभाव भी पड़ता है। बहुमत का अनुकरण मनुष्य की एक ऐसी ही दुर्बलता है, जिसे कठिनाई से ही रोकना और बदलना सम्भव हो पाता है।

श्रेष्ठता की दिशा में चलना हो, यदि उत्कृष्टता और आदर्शवादिता को लक्ष्य बनाना हो तो भी उसके लिए प्रेरक वातावरण बनाना पड़ेगा। ऐसा परिकर जहाँ हो वहाँ रहने का भी प्रभाव पड़ता है। श्रेष्ठ व्यक्तियों को निकटवर्ती वातावरण सम्पर्क में आने वालों को प्रभावित करता है और उसकी गतिविधियों में उपयोगी परिवर्तन प्रस्तुत करता है। पर ऐसा वातावरण हर जगह, हर किसी के लिए कहाँ उपलब्ध होता है ? फिर उसमें रह सकने की परिस्थितियाँ कितनों को उपलब्ध होती हैं ? जनसाधारण को तो आजीविका, उपार्जन एवं परिवार पोषण के क्रियाकृत्यों में ही व्यस्त रहना पड़ता है। दो-पाँच दिन कहीं चले भी जायँ तो उतने भर से काम भी क्या बनेगा ? अधिक दिन सत्संग का लाभ लेने के लिए जा सकना आर्थिक तथा दूसरे कारणों से कहाँ बन पाता है ?.

ऐसी दशा में श्रेष्ठता की दशा में अग्रसर कर सकने वाला प्रभावोत्पादक वातावरण अपने आप ही बनाना पड़ता। मस्तिष्क पर छाया छोड़ने वाला एक ऐसा समानान्तर संसार विनिर्मित करना होता है, जो स्वार्थ संलग्न दुनिया के प्रभाव को निरस्त कर सके। यह निर्माण प्रत्यक्ष नहीं परोक्ष ही हो सकता है। स्वाध्याय और चिन्तन के सहारे यह निर्माण खड़ा किया जा सकता है। अपनी रुचि के भविष्य का मार्गदर्शन कर सकने वाले जीवन चरित्रों का संग्रह करना चाहिए। उन्हें ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिए और उनमें जो प्रेरक प्रसंग हों—अपनी वर्तमान परिस्थितियाँ कार्यान्वित हो सकने योग्य हों, उन्हें अलग से नोट कर लेना चाहिए। जब भी अवकाश मिले उन प्रसंगों के कल्पना चित्र मस्तिष्क में सुनियोजित फिल्म की तरह प्रस्तुत करने चाहिये। श्रेष्ठ मार्ग पर चलते हुए समुन्नत स्थिति तक पहुँचे हुए दृढ़तापूर्वक जड़ें जमा सकें और अनायास ही स्मरण आती रहें, तो समझना चाहिए कि बाहरी दुनिया के पतनोन्मुख प्रभाव को निरस्त कर सकने वाला स्वनिर्मित वातावरण बनकर तैयार हो गया।

अपनी मानसिक दुर्बलताएँ, अभ्यस्त आदतें—विकृत-अभिरुचियाँ निकृष्टता की ओर खींचती हैं। कुटुम्बियों के स्वार्थ, मित्रों के दबाव तथा चाल लोक प्रवाह अपनी संयुक्त शक्ति से सामान्य मनुष्य को वैसी ही गतिविधियाँ अपनाने के लिए प्रेरित करते हैं। जैसा कि दुनियादारों ने अपना रखी हैं। श्रेष्ठता की प्रेरणा भर देने वाले और उत्कृष्टता की ओर बढ़ चलने का मार्गदर्शन करने वाले प्रेरक प्रसंगों को तो इतिहास के पृष्ठों पर ही खोजा जा सकता है। आज भी वैसे जो लोग हैं उनके साथ मानसिक सम्बन्ध ही बनाया जा सकता है। न तो अपने लिए उनके पास निरन्तर रहना सम्भव है और न वे ही अपना निवास अपने पड़ौस में बना सकते हैं। व्यावहारिक मार्ग एक ही है कि अपनी एक भावनात्मक दुनिया अलग ही बसाई जाय, जिसमें श्रेष्ठ महामानवों को ही निवास करने के लिए आमन्त्रित किया जाय। उसमें प्रेरणाप्रद घटनाओं की हलचलें ही दृष्टिगोचर होती रहें, भले ही वे आज की न होकर भूतकाल में ही घटित क्यों न हुई हों। यही बात परामर्श के सम्बन्ध में भी है। श्रेष्ठ सज्जनों से वार्तालाप कर सकना उनके साहित्य द्वारा बड़ी सरलतापूर्वक सम्भव हो सकता है। जीवित लोगों से परामर्श करने के लिए उनके पास जाने और उन्हें अवकाश होने न होने की भी कठिनाई आती है, पर स्वाध्याय के माध्यम से तो यह सुविधा हर घड़ी उपलब्ध हो सकती है। जिस भी महामानव से कुछ पूछताछ करनी हो, उसके साहित्य में से अपने काम के प्रसंग ढूँढने और पढ़ने का कार्य कठिन नहीं सरल है। वह अपनी सुविधा के समय कभी भी किया जा सकता है।

प्रस्तुत समस्याओं का समाधान और प्रगति पथ पर अग्रसर होने का पथ-प्रदर्शन कर सकने वाली पुस्तकें खरीदने के लिए कुछ बजट नियत रखना चाहिए। शरीर और परिवार पर ढेरों समय और धन खर्च किया जाता है। यदि मन और अन्तःकरण का मूल्य एवं महत्त्व समझा जा सके तो उनके परिपोषण पर कुछ खर्च करते रहना भी आवश्यक प्रतीत होगा। अनुपयोगी समझी जाने वाली बातों की उपेक्षा करनी पड़ती है और उन्हीं के लिए पैसे तथा समय की कमी का बहाना खोजना पड़ता है। महत्त्वपूर्ण समझे जाने वाली आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तो प्राथमिकता एवं प्रमुखता ही मिलती है। यदि बौद्धिक एवं भावना क्षेत्र का महत्त्व समझा जा सके और उसके परिष्कृत होने पर मिलने वाले लाभों की कल्पना की जा सके, तो निश्चय ही उस प्रयोजन के लिए नियमित रूप से कुछ धन और समय लगाते रहने में तनिक भी कठिनाई प्रतीत न होगी। स्वास्थ्य को आहार के समतुल्य ही महत्त्वपूर्ण समझा जाना चाहिए।

ऐसा सत्साहित्य समीपवर्ती पुस्तकालयों में भी मिल सकता है। थोड़ी मासिक फीस देते रहने पर उसकी सुविधा हो सकती है। सही रूप में वापस लौटाने का विश्वास दिलाया जा सके तो अन्य उदार स्वाध्यायशील व्यक्ति भी अपनी पुस्तकें पढ़ने को दे सकते हैं। सरसरी नजर से पढ़ने और पुस्तकें एक ओर पटकते जाने से बहुपठित होने का दावा तो किया जा सकता है, पर वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लाभ नहीं मिल सकता, जो स्वाध्यायशीलों को मिला करता है। आवश्यक है कि प्रेरक प्रसंगों और सन्दर्भों की नोटबुक बनाकर रखी जाय और जो हृदयग्राही लगा हो उसे उसमें नोट करते चला जाय। यह संकलन निश्चय ही समुद्र-मन्थन के फलस्वरूप निकले हुए रत्नों की तरह बहुमूल्य होगा। इस संग्रह को अवकाश के समय बहुत ध्यानपूर्वक पढ़ा जाय और यह सोचा जाय कि इन प्रसंगों के अनुरूप कदम बढ़ा सकना किस प्रकार सम्भव हो सकता है ? सद्विचारों को व्यवहार में उतारने में क्या कठिनाई पड़ेगी और उसका किस सीमा तक निराकरण सम्भव हो सकता है।

स्वाध्याय से मार्गदर्शन मिलता है। घटनाएँ सामने आती हैं और परामर्श मिलते हैं। पर बात इतने भर से नहीं बन जाती। सोचना यह भी होगा कि प्रगति पथ पर चलना आज की स्थिति में कितना और किस प्रकार सुलभ हो सकता है। योजना तो हर काम की बनानी पड़ती है। उसके बिना तो छुट-पुट दैनिक कार्य भी नहीं हो पाते। कृषि-व्यापार आदि में योजनाबद्ध कदम उठाते हैं। सरकारें तो योजना निर्माण विभाग पर ढेरों साधन खर्च करती हैं। जीवन विकास की प्रक्रिया भी अनायास ही नहीं बन जाती और इस दिशा में प्रगति जादू की छड़ी घुमाने भर से सम्भव नहीं हो सकती। अनभ्यस्त को अभ्यास में उतारना निश्चय ही एक बड़ी बहादुरी का काम है। ढर्रे को बदलकर नये सिरे से कोई न कोई आधार खड़े करने में सुदृढ़ संकल्प शक्ति की आवश्यकता पड़ती है इस परिवर्तन में आने वाली कठिनाइयों की कल्पना करनी पड़ती है और उनके निवारण करने के उपाय खोजने होते हैं किस क्रम में, क्या कदम कब उठाये जायें ? और किस तरह लम्बी मंजिल को निश्चय और साहस के साथ पूरा किया जाय, इसकी सुव्यवस्थित रूपरेखा बनाकर चलने से ही अभीष्ट मनोरथ सिद्ध होता है।

श्रेष्ठता के मार्ग पर चलने के सत्परिणामों की कल्पना करने से उत्साह बढ़ता है और उस दिशा में उत्कण्ठा प्रबल होती है। मात्र कठिनाई और हानि की बात सोचते रहने से मन छोटा पड़ता है और अचेतन उसे टालने या अस्वीकार करने की भूमिका बना देता है, फलतः सपने ज्यों के त्यों धरे रह जाते हैं। कल्पनाएँ तो उठती हैं, पर ऐसे ही पानी के बुलबुलों की तरह दूसरे ही क्षण समाप्त हो जाती हैं। महामानवों ने आदर्शवादिता को दृढ़तापूर्वक अपनाये रहने पर अन्ततः जिन सत्परिणामों को प्राप्त किया है, उन पर विचार करने और अपनी स्थिति भी कभी उन्हीं जैसी हो जाने का कल्पना-चित्र आदि मनःक्षेत्र पर अधिक स्पष्ट रूप से उतारा जा सके तो उससे निश्चय ही उत्साहवर्धक प्रेरणा मिलेगी और उधर कदम उठाने का साहस बढ़ेगा।

तत्काल थोड़ा-सा लाभ उठाने के प्रलोभन में भविष्य को अन्धकारमय बना देने वाले लोगों के वृतान्त तो अपने इर्द-गिर्द ही खोजे जा सकते हैं। उनके लिए इतिहास पढ़ने या साहित्य पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। कितने ही व्यक्ति ऐसे हैं, जिन्होंने जिस-तिस तरह कमाया तो बहुत पर वह दुर्व्यसनों में गँवाते रहे। जो बचा उसे कुपात्रों ने हड़प लिया। इन कुपात्रों में ठग, तस्कर भी हो सकते हैं और तथाकथित प्रियजन भी। उपयोगी वह—जिससे हितसाधन हो सके। अनुदान वह—जिससे सत्प्रवृत्तियाँ बढ़ सकें। इन कसौटियों पर जो खरा नहीं उतरा, वह उपयोग और अनुदान अबुद्धिमत्तापूर्ण ही माना जायेगा। ऐसी ही विडम्बनाओं में उलझा और नष्ट हुआ जीवन किस प्रकार सफल कहा जायेगा ? ओछा, हेय एवं निकृष्ट जीवन व्यतीत करते हुए किसी प्रकार मौत के दिन पूरे कर लेने में क्या समझदारी रही ? उचित और उपयुक्त यही है कि इस सुर-दुर्लभ अवसर का ऐसा उपयोग किया जाय, जिससे आत्म-गौरव बढ़े—अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत हो—लोकश्रद्धा बरसे और ईश्वर की प्रसन्नता का आनन्द मिले। यह सार्थकता श्रेष्ठता के सम्मान पर चलने से ही सम्भव हो सकती है। स्पष्ट है कि ऐसे अवसर उन्हीं को मिलते हैं, जिन्होंने अपने लिए एक आदर्शवादी प्रेरणाओं से भरा-पूरा भावनामय संसार अपने ही हाथों से गढ़ा और खड़ा किया है।

उत्कृष्ट विचारों का सतत् सान्निध्य रहे

सद्विचारों की महत्ता का अनुभव तो हम करते हैं पर उनकी दृढ़ता नहीं रह पाती। जब कोई अच्छी पुस्तक पढ़ते या सत्संग, प्रवचन सुनते हैं, तो इच्छा होती है कि इसी अच्छे मार्ग पर चलें। पर जैसे ही वह प्रसंग पलटा कि दूसरी प्रकार के, पूर्व अभ्यास, विचार पुनः मस्तिष्क पर अधिकार जमा लेते हैं और वही पुराना घिसा-पिटा कार्यक्रम पुनः चलने लगता है। इस प्रकार उत्कृष्ट जीवन बनाने की आकांक्षा एक कल्पनामात्र बनी रहती है, उसके चरितार्थ होने का अवसर प्रायः आने ही नहीं पाता।

कारण यह है कि अभ्यस्त विचार बहुत दिनों से मस्तिष्क में अपनी जड़ जमाये हुए हैं, मन उनका अभ्यस्त भी बना हुआ है। शरीर ने एक स्वभाव एवं ढर्रे के रूप में उन्हें अपनाया हुआ है। इस प्रकार उन पुराने विचारों का पूरा आधिपत्य अपने मन और शरीर पर जमा हुआ है। यह आधिपत्य हटे और नये उत्कृष्ट विचार वह स्थान ग्रहण करें, तो ही यह सम्भव है कि मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और अन्तःकरण चतुष्टय बदले। जब अन्तःभूमिका बदलेगी तब उसका प्रकाश बाह्य कार्यक्रमों में दृष्टिगोचर होगा। परिवर्तन का यही तरीका है।

उच्च विचारों को बहुत थोड़ी देर हमारी मनोभूमि में स्थान मिलता है। जितनी देर सत्संग, स्वाध्याय का अवसर मिलता है, उतने थोड़े समय ही तो अच्छे विचार मस्तिष्क में ठहर पाते हैं। इसके बाद वही पुराने कुविचार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आँधी-तूफान की तरह आकर उन श्रेष्ठ विचारों की छोटी-सी बदली को उड़ाकर एक ओर भगा देते हैं। निकृष्ट विचारों से तात्कालिक लाभ और आकर्षण स्वभावतः अधिक होता है, चिरकाल से अभ्यास में आते रहने के कारण उनकी जड़ें भी बहुत गहरी हो जाती हैं। इन्हें उखाड़कर नये श्रेष्ठ विचारों की स्थापना करना सचमुच बड़े अध्यवसाय का काम है।

दस-पाँच मिनट कुछ पढ़ने, सुनने या सोचने, चाहने से ही परिष्कृत मनोभूमि का बन जाना और उसके द्वारा सत्कर्मों का प्रवाह बहने लगना कठिन है। इसलिए क्रमबद्ध, योजनाबद्ध, दीर्घकालीन और सुस्थिर प्रयत्न करना होता है। फैलाया हुआ पानी नीचे की ओर आसानी से बिना प्रयत्न के बहने लगता है। पर यदि उसे ऊपर पहुँचाना हो तो इसके लिये कई उपकरण जुटाने की व्यवस्था की जाती है। बिना विशेष प्रयत्नों के पानी ऊपर नहीं चढ़ सकता है, इसी प्रकार स्वल्प प्रयत्नों से मनोभूमि का परिवर्तन भी सम्भव नहीं और बिना आन्तरिक परिवर्तन के बाह्य जीवन में श्रेष्ठता की स्थापना हो ही कैसे सकती है ?

शराबी अपने विचारों में पक्का होता है। बदनामी, धनहीनता और स्वास्थ्यनाश की परवाह न करके ही वह शराब पीता है। मन और कर्म की इस एकता से जो दृढ़ता उसमें रहती है, उसके फलस्वरूप कई अन्य कमजोर प्रकृति के मनुष्य भी उसके प्रभाव में आकर शराब पीना सीख जाते हैं। चरित्र शिक्षण की यही पद्धति सफल होती है। बुरे स्तर के व्यक्ति अपनी बुराइयों में तन्मय रहकर दूसरे अनेकों को अपना साथी बनाते और बुराई सिखाते हैं।

बुराई की ही भाँति अच्छाई में भी अपनी शक्ति एवं विशेषता होती है, पर वह प्रभावशाली तभी बनती है, जब मन-वचन और कर्म में एकता हो। यदि प्रौढ़ और परिपक्व आचरण के श्रेष्ठ व्यक्ति कभी प्रकाश में आते हैं, तो उनसे भी अगणित लोग प्रेरणा प्राप्त करते हैं। गाँधी का प्रभाव अभी पिछले ही दिनों हम लोगों ने आँखों से देखा है। उनकी प्रेरणा से अगणित व्यक्तियों की भावनाएँ बदलीं और लाखों व्यक्तियों ने हँसते-हँसते भारी बलिदान की जोखिम उठाई।

उत्कृष्ट एवं प्रौढ़ विचारों को अधिकाधिक समय तक हमारे मस्तिष्क में स्थान मिलता रहे, ऐसा प्रबन्ध यदि कर लिया जाय तो कुछ ही दिनों में अपनी इच्छा, अभिलाषा और प्रवृत्ति उसी दिशा में ढल जायेगी और बाह्य जीवन में वह सात्विक परिवर्तन स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगेगा। विचारों की शक्ति महान है, उससे हमारा जीवन तो बदलता ही है, संसार का नक्शा भी बदल सकता है।

आज की परिस्थितियों में जो भी सम्भव हो, ऐसा हमें साहित्य तलाश करना चाहिए, जो प्रकाश एवं प्रेरणा प्रदान करने की क्षमता से सम्पन्न हो। उसे पढ़ने के लिए कम से कम एक घण्टा निश्चित रूप से नियत करना चाहिये। धीरे-धीरे समझकर विचारपूर्वक उसे पढ़ना चाहिए। पढ़ने के बाद उन विचारों पर बराबर मनन करना चाहिए। जब भी मस्तिष्क खाली रहे, यह सोचना आरम्भ कर देना चाहिए कि आज के स्वाध्याय में जो पढ़ा गया था, उस आदर्श तक पहुँचने के लिए हम प्रयत्न करें, जो कुछ सुधार सम्भव है, उसे किसी न किसी रूप में जल्दी ही आरम्भ करें। श्रेष्ठ लोगों के चरित्रों को पढ़ना और वैसा ही गौरव स्वयं भी प्राप्त करने की बात सोचते रहना, मनन और चिन्तन की दृष्टि से आवश्यक है।

जितनी अधिक देर तक मन में उच्च भावनाओं का प्रवाह बहता रहे उतना ही उच्छा है। ऐसा साहित्य हमारे लिये संजीवन बूटी का काम करेगा। उसे पढ़ना और अपने अत्यन्त प्राणप्रिय कामों में से एक बना लेना चाहिए। सुलझे हुये विचारों के सच्चे मार्गदर्शक न मिलने के अभाव की पूर्ति इस साहित्य से सम्भव है। आज उलझे हुए विचारों के लोग बहुत हैं। धर्म के नाम पर आलस्य, अकर्मण्यता, निराशा, दीनता, कर्त्तव्य की उपेक्षा, स्वार्थपरता, संकीर्णता की शिक्षा देने वाले सत्संगों से जितनी दूर रहा जाय, उतना ही कल्याण है।

कहीं से भी, किसी प्रकार से भी जीवन को सुसंस्कृत बनाने वाले, सुलझे हुये उत्कृष्ट विचारों को मस्तिष्क में भरने का साधन जुटाना चाहिए। स्वाध्याय से, सत्संग से, मनन से, चिन्तन से, जैसे भी बन पड़े वैसे यह प्रयत्न करना चाहिए कि हमारा मस्तिष्क उच्च विचारधारा में निमग्न रहे। यदि इस प्रकार के विचारों में मन लगने लगे, उनकी उपयोगिता समझ पड़ने लगे, उनको अपनाते हुये आनन्द का अनुभव होने लगे तो समझना चाहिए कि आधी मंजिल पार कर ली गई।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुस्तकालयों का महत्त्व देवालय जितना

ज्ञान ही जीवन धन है

भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है—इसकी बुद्धिनिष्ठा, ज्ञान के प्रति आग्रह। अन्ध-श्रद्धा, अन्धमान्यता के लिए हमारे यहाँ कोई स्थान नहीं है। भारतीय संस्कृति के आदि आविष्कर्ताओं ने प्रारम्भ से ही किसी एक प्रमाण-तथ्य को महत्त्व न देकर बुद्धि को ही धर्म-संस्कृति का निर्णायक बनाया। विवेक एवं ज्ञान भारतीय संस्कृति की आत्मा है। इसका इतना बड़ा महल बुद्धि के ऊपर ही खड़ा है। बौद्धिक आधारशिला पर ज्ञान का सर्वांगीण विकास और उसकी शोध हमारी अपनी एक विशेषता रही है। इस विशेषता को हटा दें तो, भारतीय संस्कृति का कोई अस्तित्व ही नहीं रहेगा।

भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता के मूल स्रोत वेद हैं। वेद का अर्थ है—ज्ञान और ज्ञान बुद्धि की साधना का परिणाम। ज्ञान, बुद्धि की देन है। अस्तु, हमारी समस्त जीवन पद्धति का संचालन बुद्धि के द्वारा होता आया है। कौटिल्य ने कहा है—"जिस मनुष्य की बुद्धि का विकास नहीं होता अथवा जो बुद्धिद्रोही और अविवेकी होता है, वह मनुष्यता से गिर जाता है।" शास्त्रकार ने बुद्धि को सर्वोपरि बतलाया है।

ज्ञान प्रगति का मूल आधार—प्रगति के लिए ज्ञान की नितान्त आवश्यकता है। ज्ञान के अभाव में मनुष्य भी अन्य जीव-जन्तुओं की तरह आत्मिक दृष्टि से हीन अवस्था में पड़ा रह सकता है। वन्य प्रदेशों में एकाकी रहने वाले आदिवासी—मानवीय सद्वृत्तियों से वंचित रह जाते हैं। शिक्षण के अभाव में न तो प्रस्तुत क्षमताओं का विकास हो सकता है और न परिष्कार। ऐसी दशा में शरीर की प्रेरणाओं के आधार पर ही जीवनयापन करना पड़ता है। ऐसे जीवन को पाशविक जीवन ही कहा जा सकता है। ज्ञान प्राप्ति की जो व्यवस्था न कर सकेगा, विवेक की आँखें जिसकी न खुल सकेंगी, उसे अज्ञान के अन्धकार में भटकते हुए निम्नस्तरीय जिन्दगी काटनी पड़ेगी।

मनुष्य को धर्म से प्रतिबन्धित करने का उद्देश्य ही उसे ज्ञानवान बनाना रहा है, ताकि वह अधोगामी परिस्थितियों में पड़ा न रहकर ज्ञान के माध्यम से अपने आपको बन्धन-मुक्त कर ले। धर्म ज्ञान का ही पुत्र है। एक-बार पितामह भीष्म से पूछा गया—"ब्रह्मेऽयं धर्म कुतो धर्म।" यह धर्म कौन है ? कहाँ से आता है ? पितामह ने उत्तर दिया—"विचारशील व्यक्ति चिन्तन, मनन और अध्ययन करके धर्म का निर्माण करते हैं।"

विचार और जीवन निर्माण—ज्ञान का उद्देश्य विचारवान बनना है। विचारों का हमारे जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। मनुष्य का जीवन वस्तुतः उसके विचारों का ही प्रतिबिम्ब है। सफलता-असफलता, उन्नति-अवनति, तुच्छता-महानता, सुख-दुःख, शान्ति-अशान्ति, सन्तोष-असन्तोष आदि सभी पहलू मनुष्य के विचारों पर निर्भर करते हैं। मनुष्य को कायर-वीर, स्वस्थ-अस्वस्थ, प्रसन्न-अप्रसन्न कुछ भी बनाने में उसके विचारों का महत्त्वपूर्ण हाथ होता है। तात्पर्य यह है कि अपने विचारों के अनुरूप ही मनुष्य का जीवन बनता-बिगड़ता है। अच्छे विचार उन्नत बनायेंगे तो हीन विचार मनुष्य को गिरायेंगे।

स्वामी रामतीर्थ ने कहा है—"मनुष्य के जैसे विचार होते हैं वैसा ही उसका जीवन बनता है।" स्वामी विवेकानन्द ने कहा था—"स्वर्ग और नर्क कहीं अन्यत्र नहीं इनका निवास हमारे विचारों में ही है।" भगवान बुद्ध ने अपने शिष्यों को उपदेश देते हुए बताया—"भिक्षुओ ! वर्तमान में हम जो कुछ हैं अपने विचारों के ही कारण हैं और भविष्य में जो कुछ भी बनेंगे वह भी अपने विचारों के ही कारण।" शेक्सपीयर ने लिखा है—"कोई वस्तु अच्छी या बुरी नहीं है। अच्छाई बुराई का आधार हमारे विचार ही हैं।" ईसामसीह ने कहा था—"मनुष्य के जैसे विचार होते हैं वैसा ही बन जाता है।" प्रसिद्ध रोमन दार्शनिक मार्क्स आरीलियस ने लिखा है—"हमारा जीवन जो कुछ भी है हमारे अपने विचारों का ही प्रतिफल है।" प्रसिद्ध अमरीकी लेखक डेल कार्नेगी ने अपने अनुभवों पर आधारित तथ्य प्रकट करते हुए लिखा है—"जीवन में मैंने सबसे महत्त्वपूर्ण कोई बात सीखी है तो वह है विचारों की अपूर्व शक्ति और महत्ता। विचारों की शक्ति सर्वोच्च तथा अपार है।"

विचार और ज्ञान का आधार—मनुष्य का ज्ञान जिस क्षेत्र में विकसित हुआ होता है, वैसे ही उसके विचार भी होते हैं। सम स्वभाव के पदार्थ एक-दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं, इस नियम के अनुसार विचार भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सजातीय विचारों को आकर्षित करते रहते हैं। व्यवसायी व्यक्तियों के मस्तिष्क में व्यवसाय की बातें ही सूझती हैं, व्यभिचारी व्यक्तियों के मस्तिष्क में केवल वासना सम्बन्धी ऊहापोह चला करते हैं। धार्मिक व्यक्ति विचार द्वारा सूक्ष्म जगत की कौतूहलपूर्ण बातों का ज्ञान प्राप्त किया करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि विचारों की शक्ति और सामर्थ्य अपार है। वे हमें उठा भी सकते हैं और गिरा भी सकते हैं। आशावादी, उदार, दिव्य, पुरोगामी, उत्कृष्ट विचार व्यक्तित्व का विकास करते हैं, पर हीन विचारों में ग्रस्त मनुष्य संसार में केवल कष्ट ही भोगते हैं।

जिन्हें हीन आन्तरिक स्थिति अखरती हो और जो महापुरुषों जैसी मनोभूमि प्राप्त करके बाह्य जीवन में उत्कृष्ट परिस्थितियों का आनन्द लेना चाहें, उनके लिए यह अनिवार्य रूप से आवश्यक है कि वे ज्ञान प्राप्त करें, ऐसे लोगों की समीपता प्राप्त करें, जो वाणी से नहीं चरित्र से भी महान हों। पर आज तथाकथित सत्संगों का ढोंग जगह-जगह खड़ा दीखता है और लोग इधर-उधर की बेसिर-पैर की बातें भी उपदेश-प्रवचन के नाम पर बकते-झकते रहते हैं। इस व्यावसायिक कोलाहल में आडम्बर बहुत और काम की बात प्रायः बहुत ही कम रहती है। इसलिए इस प्रकार के जंजालों में जाने से पूर्व यह परख लेना चाहिए कि वहाँ व्यक्तित्व को विकसित करने का कुछ व्यावहारिक वातावरण भी है अथवा अण्ड-सण्ट की बातों में ही समय की बर्बादी होती है। ज्ञानी पुरुष उसे ही कहना चाहिए, जो हमारे व्यक्तिगत जीवन में वाणी से नहीं, चरित्र से हमें उत्कर्ष की दिशा में आवश्यक प्रेरणा और प्रकाश प्रदान कर सकें।

ज्ञान सम्पदा और उसकी प्राप्ति

मनुष्य और उसकी सभ्यता का विकास उसके द्वारा अर्जित ज्ञान-सम्पदा के द्वारा ही सम्भव हो सका है—यह तथ्य समझ लेने के बाद प्रश्न उठता है, स्वयं भी उस ज्ञान-सम्पदा की प्राप्ति किस प्रकार की जाय ? किन्तु अधिकांश व्यक्तियों को तो उसकी आवश्यकता ही अनुभव नहीं होती और न वे कुछ सीखने की जरूरत ही समझते हैं। कहा भी जा सकता है कि अन्य पशु-पक्षी, जीव-जन्तु या पिछड़ी और असभ्य जातियाँ जितनी समझ-बूझ उनके पास होती है, उसी से काम चला लेती हैं। फिर ज्ञान का विशेष महत्त्व क्या रहा ? वर्तमान समझ-बूझ और सीमित जानकारियों को यथावत ही रहने देकर किसी प्रकार काम तो चलाया जा सकता है, परन्तु उस स्थिति को मानवीय जीवन की गरिमा और सार्थकता की कसौटी पर कसें तो असन्तोष ही करना पड़ेगा।

कहा जा सकता है कि जितना ज्ञान आवश्यक है, उतना अपने आस-पास के वातावरण से, अपने ही समान दूसरे व्यक्तियों से अपने आप सीख लिया जाता है। उदाहरण के लिए, बच्चा जन्म लेने के बाद अपने भाई-बहनों और अभिभावकों को देखकर चलना-फिरना और खाना-पीना सीखता है। दूसरे जीव-जन्तु भी प्रकृति की प्रेरणा से अथवा वातावरण के प्रभाव से बहुत-सी बातें सीख लेते हैं तो जन सामान्य भी इस तरह का शिक्षण अपने आस-पास के वातावरण से-सीख सकता है। उसके लिए विशेष परिश्रम करने की क्या आवश्यकता ?

जहाँ तक खाने-पीने और चलने-दौड़ने की बात है। ये क्रियायें दूसरों को देखकर सीख ली जाती हैं। एक तो प्रकृति भी इसके लिए प्रेरणा देती है, दूसरे ये क्रियायें जीवन का स्वाभाविक अंग भी हैं। किन्तु जब सभ्य और सुसंस्कृत जीवन जीने का प्रश्न आता है, तो उसमें देख सुनकर या अनुकरण द्वारा कुछ कर लेने से बात नहीं बनती, उसके लिए प्रयत्नशील ज्ञानार्जन की साधना भी आवश्यक है। पेट भरने और वंश परम्परा चलाने का ज्ञान तो प्राणिमात्र को होता है, जिसे वे अपने आस-पास के वातावरण से अथवा अपने अन्य सजातियों से प्राप्त करते हैं। किन्तु मनुष्य का व्यक्तित्व परम्परा अथवा अनुकरण द्वारा सीखे गये ज्ञान से विकसित नहीं हो सकता, उसके लिए प्रयासपूर्वक ज्ञान साधना करनी पड़ती है। औसत स्तर का और सभ्यजनोचित जीवन जीने की योग्यता प्राप्त करने के लिए ही मानव शिशु को वर्षों तक स्कूल-कालेजों में शिक्षा प्राप्त करनी होती है और वहाँ जीवनोपयोगी ज्ञान अर्जित करना पड़ता है।

अनायास ही नहीं प्रयासपूर्वक भी

यदि उस तरह की कोई व्यवस्था न की गई होती तो ज्ञान परम्परा ही लुप्त हो जाती। यद्यपि आज के समय में सभ्य समाज में रहने योग्य सामान्य ज्ञान लोग दूसरों को देखकर भी सीख लेते हैं। परन्तु स्तर को बनाये रखने और उसे ऊँचा उठाने का कार्य ज्ञान धारा से सम्बद्ध होने योग्य स्थिति वाले व्यक्ति ही कर सकते हैं। उस परम्परा को जीवित भी शिक्षित व्यक्तियों द्वारा ही रखा जाता है और उनके सम्पर्क में रहना भी एक प्रकार का शिक्षण लाभ प्राप्त करना है क्योंकि आरम्भ से ही जिन व्यक्तियों के बीच रहने, ज्ञानार्जन करने की आवश्यकता पड़ती है, यद्यपि इस तरह का सामान्य ज्ञान भी समाज में रहने से प्राप्त होता रहता है। जैसे वातावरण में रहने का अवसर मिलता है, उसी के अनुरूप विकास भी होता है यदि किसी को आरम्भ से ही मनुष्यों से अलग रखा जाय या किसी एकान्त स्थान में रखा जाय, तो वह एकदम कोरा और जड़ ही बना रहेगा। यदि उसे पशुओं के साथ पाला जाय तो वह उन्हीं जैसे हाव-भाव और क्रियाकलाप सीखने लगेगा। वातावरण से इस प्रकार मनुष्य का स्वतः शिक्षण होता चलता है। यदि शिक्षा की आवश्यकता न समझी जाय तो भी मनुष्य व्यक्तित्व की दृष्टि से हीन बना रहता। उसका कोई सुनिश्चित और दृढ़ स्वरूप नहीं बन पाता। वातावरण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बदलते ही उसकी दिशा भी बदल जायेगी और व्यक्तित्व भी विघटित होने लगेगा। अपने व्यक्तित्व को सुनिश्चित स्वरूप देने तथा ज्ञान सम्पदा को परिश्रमपूर्वक अर्जित करने के लिए आवश्यक है कि सम्बन्धित विषयों का समुचित शिक्षण प्राप्त करते रहा जाय।

इस शिक्षण का समापन स्कूली शिक्षा प्राप्त कर लेने से ही पूरा नहीं हो जाता, स्मरण रखा जाना चाहिए कि संसार दिन-प्रतिदिन आगे बढ़ रहा है और संसार का ज्ञान भी प्रतिपल विकसित होता जा रहा है। नवीनतम निष्कर्षों से अवगत न हुआ जा सके तो संसार का ज्ञान समुद्र इतना अथाह है कि पूरी तरह उसकी थाह पा लेना अभी तक किसी के लिए सम्भव नहीं हो सका। न्यूटन जैसे प्रभृति वैज्ञानिक जिन्होंने सैकड़ों आविष्कार किये और जिन्हें अपने समय का अद्वितीय विज्ञानविद् समझा जाता रहा, ने अपनी स्थिति का उल्लेख करते हुए कहा था कि मैं तो ज्ञान के समुद्र तट पर बैठा रहा और कुछेक घोंघे सीपियाँ ही प्राप्त कर सका हूँ और भी विद्वान हुए हैं सबने अपनी स्थिति इसी प्रकार की बताई है। फिर हम सामान्य लोग किस आधार पर यह कह सकते हैं कि हमें जो सीखना चाहिए, जो ज्ञान अर्जित करना चाहिए वह प्राप्त कर लिया। लौकिक विषयों में ही जानने और सीखने के लिए इतना बड़ा क्षेत्र खुला पड़ा है कि कई जन्मों तक उसे पूरी तरह नहीं सीखा जा सकता।

ज्ञान की सीमा असीम

बहुत-से व्यक्ति यही सोचकर निराश होने लगते हैं कि जानने और समझने लायक तो दुनिया में बहुत-सी बातें हैं। उन सब विषयों का ज्ञान कई जन्म लगाकर भी प्राप्त नहीं किया जा सकता, फिर क्यों व्यर्थ प्रयास किया जाय ? यह ठीक है कि ज्ञान का समुद्र अथाह है, उसकी कोई थाह नहीं पा सकता किन्तु इस कारण ज्ञान साधना से विरत हो जाने का कोई औचित्य नहीं है, ज्ञान सम्पदा का जितना संचय किया जा सके, उतना ही लाभ उठाया जा सकता है। कोई व्यक्ति संसार की सारी धन सम्पदा का स्वामी बनना चाहता है। यह जानते हुए भी कि ऐसा सम्भव नहीं है, वे अधिक से अधिक उपार्जन करने के लिए अपने प्रयत्न छोड़ नहीं देते। कारण कि धन-सम्पदा का जितना ही अर्जन किया जा सके, उतनी ही लाभदायक लगती है। संसार का सारा ज्ञान प्राप्त कर लेना सम्भव न होते हुए भी जितना अधिक प्राप्त किया किया जा सके, उतना ही अच्छा है। सब कुछ या कुछ भी नहीं की नीति को कोई भी विवेकसम्मत नहीं बता सकता। इस सम्बन्ध में 'जितना गुड़ उतना ही मीठा—मानकर अधिक से अधिक प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। धन प्राप्ति की आकांक्षा और दौड़ एक सीमा पर पहुँचकर व्यर्थ भी हो जाती है और कई अवसरों पर हानि भी पहुँचाने लगती है। दूध बहुत अच्छा होता है, पौष्टिक और स्वास्थ्य को मजबूत बनाने वाला भी रहता है, परन्तु उसका आवश्यकता से अधिक सेवन स्वास्थ्य को चौपट भी कर देता है। धन आवश्यक है, उससे जीवन में सुख-सुविधायें प्राप्त की जा सकती हैं। परन्तु एक स्थिति ऐसी आती है, जब धन की विपुलता व्यक्ति में अहंकार उत्पन्न कर देती है किन्तु ज्ञान साधना से ऐसी कोई अनर्थकारी सम्भावनायें नहीं हैं। उसमें जितनी ही अधिक वृद्धि होती है और जितनी सफलता मिलती चलती है, व्यक्ति उतना ही गम्भीर, उदार, विनम्र और महान होता है। अत: अपनी ज्ञान सम्पदा को बढ़ाने के लिए उसी प्रकार उत्साह बरतना चाहिए, जिस प्रकार कि हम भौतिक सम्पदा अर्जित करने के लिए बरतते हैं बल्कि उससे भी अधिक उत्साह बरतना चाहिए। वस्तुत: भौतिक सम्पदा की अपेक्षा ज्ञान सम्पदा अधिक सार्थक और उपयोगी है। इस ज्ञान को लौकिक विषयों तक ही सीमित नहीं मान लेना चाहिए। ज्ञान साधना का मूल उद्देश्य अनुभव और बुद्धि-विवेक का विकास और परिमार्जन करना ही अधिक है। जानकारियाँ एकत्रित करना तो ज्ञान साधना का एक छोटा-सा अंग है। उसका मूल प्रयोजन तो व्यक्तित्व को परिष्कृत और सुगठित बनाना है। प्राचीनकाल में ज्ञान साधना का यही उद्देश्य रहता था। इसी के परिणामस्वरूप भारत में एक से एक बढ़ी-चढ़ी विभूतियाँ जन्मीं। यद्यपि उन दिनों ज्ञान प्रसार के साधन न आज की तरह सुगम थे, न उन्नत ही थे। न पुस्तकें छपती थीं और न साहित्य सरलता से उपलब्ध होता था। फिर भी लोगों में ज्ञान प्राप्ति की आकांक्षा इस प्रकार जगी रहती थी कि उसके लिए वे दूर-दराज क्षेत्रों की यात्रा किया करते थे और वहाँ रहने वाले महर्षियों से सम्पर्क स्थापित करते थे, उनके प्रवचन और व्याख्यान सुनते थे तथा वे तप:पूत ऋषि-महर्षि ही उन्हें ब्रह्मविद्या का शिक्षण दिया करते थे, जिसके प्रकाश में जिज्ञासु व्यक्ति साधना, उपासना, गुणों के विकास और क्षमताओं के अर्जन द्वारा अपने व्यक्तित्व का विकास करते थे। उसी आधार पर लौकिक हितों का सम्पादन और पारलौकिक उद्देश्यों की सिद्धि करते थे। ज्ञानरूपी पारस का संस्पर्श प्राप्त कर अपने व्यक्तित्व को कंचन में परिवर्तित करने के लिए ही लोग तीर्थयात्रा, देशाटन, सत्संग, एकान्तवास करते और तीर्थ पर्वों में भाग लिया करते थे। उन दिनों ज्ञान-विज्ञान में पारंगत ऋषि मुनिगण जीवन्त पुस्तकों की आवश्यकता पूरी कर दिया करते थे। उनका प्राणवान तेजस्वी व्यक्तित्व वह सब कुछ देने में भी समर्थ रहता, जो पुस्तकों द्वारा नहीं मिल पाता है क्योंकि उन विभूतियों का उद्देश्य केवल अधिकाधिक ज्ञान और अनुभव प्राप्त कर नई-नई बातें सोचना और जीवन निर्माण सम्बन्धी उपयोगी तत्वों का प्रसार करना था। इसीलिए उनके द्वारा प्रदत्त ज्ञान सम्पदा के कारण लोग पुस्तकों की कमी अनुभव नहीं करते थे। कारण कि तप:पूत महर्षियों, से पुस्तकों से कुछ अधिक ही मिल जाता था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सत्संग की पूर्ति स्वाध्याय

ज्ञानार्जन के लिए हमारे शास्त्रों में सत्संग की महिमा इसीलिए सर्वोपरि बतायी गई है। किन्तु आज वैसे व्यक्ति मिल पाना दुर्लभ ही है, कहीं मिलते भी हैं तो उनसे उपयोगी ज्ञान और कल्याणकारी विचार थोड़े मिलते हैं, उससे अधिक दिक्भ्रान्त करने वाली संगति बन जाती है। लेकिन सद्ग्रन्थों के रूप में उन महापुरुषों का सान्निध्य आज भी उपलब्ध है। यही नहीं उन महामानवों की परम्परा में आगे भी जिस ज्ञानधारा का विकास हुआ है, वह भी पुस्तकों के रूप में उपलब्ध है। इसीलिए कहा गया है कि उत्तम पुस्तक उसके रचयिता, मनीषी के व्यक्तित्व का ही प्रतिबिम्ब है। उत्तम ग्रन्थ जिन विचारकों द्वारा सृजित किये गये हैं, वे उनका सजीव संपर्क सान्निध्य प्रस्तुत करते हैं और उसके माध्यम से हर किसी के लिए लाभ उठाने का अवसर मिलता है।

सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय सत्संग की तुलना में इसलिए अधिक महत्त्वपूर्ण है कि वह हर घड़ी उपलब्ध रहता है। सत्पुरुषों का सान्निध्य विशेष अवसर पर ही पाया जा सकता है और उसके लिए नियत स्थान पर—दूर हो अथवा पास जाना पड़ता है। ऐसे अवसर भी आते हैं, जब उनके पास पहुँचकर भी लाभ उठाने से वंचित रह जाना पड़े। किन्तु पुस्तक रूपी ऋषि का सान्निध्य इन सभी अड़चनों से मुक्त है। जब कभी निराशा छाई हो, कोई रिक्तता कमी या ऊब अनुभव हो रही हो तो उपयुक्त विषय की पुस्तक मनःस्थिति की अस्तव्यस्तता को दूर करने में तुरन्त प्रस्तुत रहती है।

प्राचीन काल में जब पुस्तकें नहीं थीं तो लोगों के सामने ज्ञान प्राप्ति का एक ही मार्ग था—सत्पुरुषों का सत्संग। यद्यपि वह सदैव सुलभ नहीं था, पर इसके अतिरिक्त कोई उपाय भी नहीं था। इस दृष्टि से आधुनिक जीवन में यह सौभाग्य उपस्थित हुआ मानना चाहिए कि पुस्तकें प्रचुर मात्रा में हर कहीं उपलब्ध हैं। प्रेस की सुविधा और लोगों में शिक्षा का प्रसार होने के कारण पुस्तकों के मुद्रण और विक्रय का बहुत बड़ा क्षेत्र खुला है। पहले एकाध पुस्तकें तैयार भी होती थीं, तो उसे तैयार करने के लिए भारी श्रम करना पड़ता था। एक व्यक्ति काफी दिनों तक नकल करने बैठता और तब कहीं जाकर दूसरी प्रति तैयार हो पाती थी। उसमें भी लिखने वाले का ध्यान कहीं बटता तो पुस्तक की सही प्रतिलिपि तैयार नहीं हो पाती थी।

लिखने में लगने वाले इस श्रम के कारण अब से दो सौ वर्ष पूर्व की दुनिया में कोई भी पुस्तक इतनी प्रचारित नहीं हो पाई जितनी कि दो सौ वर्ष के इस काल में। 'रामचरितमानस, पुस्तक ही इन दो सौ वर्षों में इतनी लोकप्रिय हुई है कि उसकी लाखों-करोड़ों प्रतियाँ लोगों के हाथ में पहुँच सकी हैं। यह प्रेस की सुविधा उपलब्ध होने के कारण ही सम्भव हो सका है, अन्यथा जिन दिनों प्रेस नहीं थे, उन दिनों रामचरितमानस की कुछ सौ प्रतियाँ ही लोगों पास रही होंगी। कहने का अर्थ यह कि विज्ञान की सहायता से लोगों को ज्ञान-विज्ञान के साधन भी सहजता से उपलब्ध होने लगे हैं और पुस्तकें बहुत सस्ती तथा सहज ही उपलब्ध होने लगी हैं।

आज का अखरने वाला अभाव—इस व्यस्तता के युग में सत्संग के लिए समय की कमी की शिकायत प्रायः सभी को रहती है। फिर श्रेष्ठ व्यक्तियों का इन दिनों बहुत कुछ अभाव-सा है। इस बात को प्रायः सभी जिज्ञासु जन समझते हैं और सम्भवतः इसीलिए नेक और ईमानदार लोग इस युग में सत्संग के नाम से कतराते रहते हैं। धूर्तता इतनी बढ़ गई है कि अच्छे व्यक्तियों की पहचान करना कठिन हो गया है। श्रेष्ठ पुरुष अधिक संख्या में मिल सकें यह भी असम्भव-सा ही है। चरित्र की दृष्टि से उत्तम दीखने वालों में से भी अनेकों के विचार और विश्वास भ्रान्त, अनुपयुक्त एवं निरर्थक मूढ़ता से भरे हो सकते हैं। महान व्यक्ति जो किसी उज्ज्वल नक्षत्र की भाँति लोगों को पूर्ण प्रकाश दे सकें, जो चरित्र ही नहीं सुलझे हुए विचारों की दृष्टि से भी सही हों—सम्भव है किसी युग में बहुत अधिक रहे हों पर आज तो इस सम्बन्ध में निराशा ही हाथ लगती है। उनका अपनी पहुँच के उपयुक्त समीपवर्ती क्षेत्र में होना तो और भी अधिक कठिन है। इसलिए मनचाही दिशा में सत्संग के लिए आज मुड़ा भी नहीं जा सकता, उससे हानि होने की सम्भावना अधिक है।

कहीं दूर प्रदेश में कोई ऐसे महात्मा या सन्त निवास करते हों, जो सद्ज्ञान की सुलझे हुए जीवन समाधानों की सही शिक्षा दे सकें तो वहाँ तक पहुँचने के लिए समय और धन की व्यवस्था भी सबके लिए सम्भव नहीं। ऐसा केवल कुछ साधन सम्पन्न व्यक्ति ही कर सकते हैं। महान चरित्र और आदर्शवान व्यक्तियों का समय भी खाली नहीं रहता। उनकी महानता का चिह्न ही व्यस्तता है। जो जितना फालतू रहता होगा, उसे उतना ही प्रमादी समझा जा सकता है। जीवन का सदुपयोग एक-एक क्षण को क्रमबद्ध रीति से व्यतीत करने में ही तो है। महात्माओं को अपने आत्मकल्याण के लिए भी कुछ न कुछ समय तो चाहिए ही, फिर यदि दिन में दो चार घण्टे का अवकाश निकालकर प्रवचन करने के लिए वे राजी हो भी जायें, तो जीवन-दर्शन जैसी गूढ़ और प्रश्न भरी समस्या को उतनी देर में कैसे सुलझाया जा सकता है ? प्राचीनकाल में शिष्यगण एवं आत्मकल्याण की इच्छा रखने वाले लोग चिरकाल तक ऋषियों के आश्रमों में रहते थे और कठिन सेवा-व्रत और तपश्चर्या द्वारा अपनी निष्ठा और पात्रता की परीक्षा देते थे, तब कहीं उन्हें महान आत्मा बनने का दुर्लभ सौभाग्य उपलब्ध होता था। पर अब लोगों में वैसी निष्ठा, वैसी परिपक्व मनोभूमि भी नहीं रही, जिससे महापुरुषों के समीप रह कर उनके व्यक्तित्व और चरित्र के प्रकाश में आन्तरिक जीवन के विकास की सम्भावना को बढ़ा सकें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इन परिस्थितियों में जीवन-निर्माण के लिए एक ही उपाय शेष रह जाता है कि सत्पुरुषों के पुस्तकबद्ध विचार पढ़कर उनमें से जो प्रेरणायें अपने लिए उपयुक्त हों, उन्हें ग्रहण करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहा जाय। जीवनोत्कर्ष के लिए जिस सद्ज्ञान की आवश्यकता है वह सत्संग से प्राप्त होता है और उपयुक्त सत्संग के लिए आज सबसे सरल और सबसे प्रभावशाली उपाय यह है कि स्वाध्याय के माध्यम से सत्पुरुषों का सत्संग निरन्तर प्राप्त करते रहा जाय। यह कार्य श्रेष्ठ साहित्य द्वारा सम्भव है, उसमें कोई अड़चन या परेशानी भी नहीं है।

डॉक्टर को रात के बारह बजे बुलाना हो तो उसे फीस देकर बुला सकते हैं। टेलीफोन पर अपने किसी स्वजन-सम्बन्धी को बुलाना हो, कह दीजिए आपके सुविधानुकूल समय पर वह आ जायेंगे। साधन और समीपवर्ती क्षेत्र में जो वस्तुयें सुविधापूर्वक मिल सकती हैं, उनका लाभ किसी भी समय पर प्राप्त किया जा सकता है। महापुरुषों के विचारों का लाभ भी इसी तरह स्वाध्याय से किसी भी क्षण प्राप्त किया जा सकता है। रात्रि के बारह बजे आप टॉलस्टाय से मिलना चाहें, झट से अलमारी खोलकर उनकी पुस्तक निकाल लें, तुलसीदास से मिलना हो रामायण उठा लीजिये, भगवान कृष्ण का दर्शन करना हो और उनकी दिव्य-वाणी का आनन्द लेना हो तो गीता उठा लीजिए, आपको साक्षात कृष्ण भगवान प्रवचन करते जान पड़ेंगे। महापुरुषों का सत्संग विचारों द्वारा ही होता है। शरीर से तो वे दूर ही रहते हैं। हम यदि पुस्तकों को ही उनका शरीर मानलें तो उनकी सत्संगति का लाभ किसी भी क्षण प्राप्त कर सकते हैं। महात्मा ईसा, हजरत मुहम्मद, बुद्ध और महावीर, कन्फ्युशस, सुकरात, स्वेटमार्डेन, जेम्स एलेन, रबीन्द्रनाथ टैगौर, मदनमोहन मालवीय आदि किसी भी सन्त-महात्मा, विचारक अथवा लेखक से आप १,२,४,६,१२ बजे, कभी-भी मिल सकते हैं। किसी भी क्रम से किसी भी प्रश्न को लेकर मिल सकते हैं। जिस तरह प्रत्यक्ष में उनसे विचार-विमर्श किया जा सकता था लगभग वैसी ही प्रेरणा पुस्तकों द्वारा स्वाध्याय से प्राप्त की जा सकती है और अपनी स्थिति के अनुकूल उनका लाभ भी प्राप्त किया जा सकता है।

व्यक्तिगत सत्संग में एक खतरा यह रहता है कि उनकी अनुपयुक्त विचारधारा एवं कार्य पद्धति भी अपने को प्रभावित करके दिक्भ्रान्त कर सकती है। सत्साहित्य के माध्यम से व्यक्तित्व का दबाव न रहने से उस पर अधिक विचार कर सकने और जो उपयुक्त हो, उसे ही स्वीकार करने की सुविधा रहती है। अपने आदर्श एवं लक्ष्य के अनुरूप अनेक ऐसे महापुरुष सत्साहित्य के माध्यम से ढूँढ़े जा सकते हैं, जिन्होंने उसी मार्ग पर चलकर सफलता प्राप्त की हो।

विकृत रुचि और अस्वास्थ्यकर साहित्य

आज पुस्तकों की सहज सुलभता के कारण एक अनर्थ भी हुआ है। प्रेस और प्रकाशन की सुविधा का लाभ उठाकर कई लोग साहित्य के माध्यम का दुरुपयोग भी करने लगे हैं, कई व्यावसायिक वृत्ति के लोग मनोरंजन के लिए निकृष्ट स्तर का साहित्य प्रकाशित करते हैं तथा लोगों को दिक्भ्रान्त करने वाला साहित्य देकर उनकी रुचि को विकृत बनाते हैं। लोग भी मनोरंजन के लिए उस ओर सहज ही झुक जाते हैं। जैसा कि देखा जाता है अधिकांश व्यक्ति स्वास्थ्यवर्धक फलों और खाद्य पदार्थों की अपेक्षा चाट, चाय, सिगरेट आदि का शौक ज्यादा बढ़ाते हैं। कारण कि इनसे विकृत खाद की अभ्यस्त जीभ को तृप्ति मिलती है। उसी प्रकार लोग ज्ञानवर्धक, सुरुचिपूर्ण और जीवन में सत्तत्वों का अभिवर्धन करने वाले साहित्य की अपेक्षा उत्तेजक सस्ता मनोरंजन करने वाली पुस्तकें ज्यादा पढ़ते हैं। इस प्रकार की कुत्सा भड़काने वाली पुस्तकों की लोकप्रियता और उनसे होने वाले दुष्परिणामों के लिए पाठक, लेखक और प्रकाशक तीनों ही जिम्मेदार हैं।

इस प्रकार की पुस्तकों के प्रति आकर्षण और रुझान का कारण यही हो सकता है कि पुस्तकें सरलता से उपलब्ध होने के कारण उनका उद्देश्य मनोरंजन ही मान लिया गया है, जबकि ज्ञानवर्द्धन और जीवन-उत्कर्ष की प्रेरणा व मार्गदर्शन प्राप्त करना होना चाहिए। मनोरंजन के उद्देश्य से पुस्तकें न पढ़ जायें, कहने का अर्थ यह नहीं है वरन् केवल मनोरंजन के लिए ही पुस्तकें पढ़ना चाहिए यह किसी भी दृष्टि से उपयुक्त नहीं कहा जा सकता है। अध्ययन या सत्साहित्य के स्वाध्याय का अर्थ मात्र मनोरंजन करना या समय काटना नहीं है, वस्तुतः उसका उद्देश्य ज्ञान और अनुभव बढ़ाना है। साहित्य का अर्थ यह है कि जो हमारा अधिक से अधिक हित करें, अस्तु सत्साहित्य के द्वारा अपने जीवन और व्यक्तित्व को उत्कर्ष की दिशा में अग्रसर करने के लिए नित्य निरन्तर प्रयत्नशील रहना चाहिए।

अच्छी पुस्तकें—सच्चे मित्र

सत्साहित्य का अध्ययन जीवन उत्कर्ष के लिए उसी प्रकार आवश्यक है, जिस प्रकार कि जीवन रक्षा और शरीर निर्वाह के लिए भोजन। अन्य प्राणी अपना स्वाभाविक आहार प्राप्त करके ही शरीर का पोषण कर लेते हैं, किन्तु मनुष्य एक बौद्धिक प्राणी है, इसलिए उसे शरीर का पोषण प्राप्त करने के साथ-साथ बुद्धि का पोषण भी चाहिए—बौद्धिक आहार भी उसके अस्तित्व की रक्षा और व्यक्तित्व के विकास की अनिवार्य आवश्यकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बहुधा लोग यह कहकर साहित्य से सम्पर्क बनाये रखने की आवश्यकता को टाल देते हैं कि पुस्तकें पढ़ना तो विद्यार्थियों का काम है या जिनका लक्ष्य विद्वान बनना है उन्हें पुस्तकें पढ़नी चाहिए। यह सोचना अपने विकास के आधार को नष्ट कर देने जैसा है। स्कूलों से पढ़कर आवश्यक बातें सीखी और जरूरी जानकारियाँ प्राप्त की जाती हैं किन्तु स्कूल-कॉलेज छोड़ देने के बाद पुस्तकों से सम्बन्ध तोड़ देना वैसा ही है जैसे बचपन में खाने पीने के बाद जवान हो जाने पर भोजन लेना ही बन्द कर देना। बचपन की उम्र बाढ़ की उम्र होती है, इस उम्र में शरीर का अंग-अंग बढ़ता और पुष्ट होता है, इसलिए बचपन में पौष्टिक आहार चाहिए। किन्तु शरीर की बाढ़ एक उम्र में रुक जाती है और फिर कद, ऊँचाई, लम्बाई एक सीमा पर पहुँचकर रुक जाते हैं। परन्तु शरीर का पोषण तब भी आवश्यक होता है और उसके लिए भोजन भी करना पड़ता है, व्यायाम भी करना पड़ता है। सोने-जागने का नियमित क्रम रखना तब भी आवश्यक होता है। स्कूली पढ़ाई को बचपन में मिलने वाला प्रारम्भिक और पौष्टिक आहार कहा जा सकता है। वह स्कूली शिक्षा पूरी कर लेने के बाद अनावश्यक नहीं हो जाता। शिक्षा पूरी कर लेने के बाद भी पुस्तकों से, साहित्य से, ज्ञानराशि से निरन्तर अपने मस्तिष्क की क्षुधा मिटाते रहना आवश्यक हो जाता है।

स्कूली शिक्षा पूरी करने के बाद ही यदि पुस्तकों से सम्पर्क तोड़ दिया जाय तो पढ़ी हुई विद्या भी विस्मृत हो जाती है, तब नया ज्ञान प्राप्त करने का प्रश्न ही नहीं उठता। कहीं भी और कभी भी यह देखा जा सकता है कि कक्षा पास कर लेने और उपाधि प्राप्त कर लेने के बाद यदि विद्यार्थी, वकील अथवा डॉक्टर आदि अपना स्वाध्याय बन्द कर देते हैं, तो वे आगे चलकर सफल नहीं हो पाते। संसार की विचारधारा को मोड़ देने वाले लेखक और पत्रकार प्रतिदिन घण्टों स्वाध्याय करते हैं क्योंकि ज्ञान की जन्मभूमि इस संसार में नित्यप्रति नई-नई जानकारियों, नये-नये विचार, नये तथ्य, नये तर्क और विद्याओं का जन्म होता रहता है। जो व्यक्ति पुस्तकों से, साहित्य से नियमित सम्पर्क बनाये रहते हैं, उन्हें पता रहता है कि संसार में कहाँ क्या हो रहा है ? कौन-सी पुरानी मान्यतायें बदल रही हैं, आज की परिस्थितियों में किस स्तर का समाधान व्यवहारिक है, संसार में कौन-सी नई प्रतिस्थापनायें हो रही हैं ? उसे यह भी ज्ञान रहता है कि इन बदलती परिस्थितियों में उसका क्या स्थान और क्या कर्त्तव्य है ? एक जागरूक नागरिक की भूमिका निभा पाना तभी सम्भव है, जबकि अपने आस-पास रहने वाले परिवर्तनों और चारों ओर होने वाली हलचलों का ज्ञान बना रहे।

सत्साहित्य अपने आप में एक विकसित मस्तिष्क होता है। अच्छी पुस्तकों को महामानवों के महान विचारकों के मस्तिष्क का ग्राफ कहा जा सकता है, मिल्टन ने कहा है—"अच्छी पुस्तक एक महान आत्मा का जीवन रक्त है क्योंकि उसमें उनके जीवन का विचार सार सन्निहित होता है।" व्यक्ति तो मर जाते हैं लेकिन ग्रन्थों में उनकी आत्मा बसती है, इसलिए ग्रन्थों को सजीव महापुरुष भी कहा जाता है। प्रसिद्ध विचारक लिटन ने यह सिद्धांत इन शब्दों में व्यक्त किया है—"ग्रन्थों में आत्मा होती है। सद्ग्रन्थों का कभी नाश नहीं होता।

अच्छी पुस्तकों में अच्छे विचार होते हैं। अच्छे विचार, उदात्त भावनायें, भव्य कल्पनायें जहाँ भी हैं वहीं स्वर्ग का-सा वातावरण बनता है और अच्छी पुस्तकों के अभाव में मनुष्य उस ज्ञान राशि से वंचित रह जाता है, फलस्वरूप मानसिक अस्तित्व निष्प्राण रह जाता है। इसीलिए सिसरो ने कहा है—"ग्रन्थ-रहित कमरा आत्मारहित देह के समान है।" जीवन को विकास और प्रगति की दिशा में अग्रसर करने के लिए पुस्तकों का साथ होना आवश्यक है क्योंकि सद्ग्रन्थों के द्वारा जीवन को मार्गदर्शक प्रकाश स्रोत मिलता है। वस्तुतः संसार के भीषण सागर में डूबते-उतराते सभी मनुष्यों के लिए पुस्तकें उस प्रकाश स्तम्भ की तरह सहायक होती हैं, जैसे समुद्र में चलने वाले जहाजों को मार्ग दिखाने वाले प्रकाश गृह।

महात्मा गाँधी ने कहा है— अच्छी पुस्तकें पास में होने पर हमें भले मित्रों की कमी नहीं खटकती वरन् मैं जितना अध्ययन करता हूँ, उतना ही अच्छी पुस्तकें मुझे उपयोगी मित्रों की तरह मालूम होती हैं।" मनुष्य का ज्ञान—संसार की ज्ञानराशि असंख्य अनेकताओं से भरी पड़ी है, मनुष्य का अपना स्वयं का मस्तिष्क ही इतने अधिक विचारों से भरा रहता है कि क्षण-क्षण नये विचारों की लहर उत्पन्न होती रहती है। इन अनेकताओं का परिणाम होता है अन्तर और बाह्यजीवन में अनेकों संघर्ष। विचार संग्राम में पुस्तकें मनुष्य के लिए प्रभावशाली शस्त्र सिद्ध होती हैं। एक व्यक्ति का ज्ञान सीमित और एकांगी हो सकता है लेकिन सद्ग्रन्थों का अध्ययन अपनी समस्याओं, अन्तर्द्वन्द्वों और परिस्थितियों का स्वयं समाधान खोज सकता है। विशेषतः विचार संघर्ष में पुस्तकें ही सहायक सिद्ध हो सकती हैं।

सद्ग्रन्थों का अध्ययन मनुष्य के विचारलोक में गति प्रदान कर सकता है। मनुष्य उस समय दृश्य जगत, शरीर और यहाँ के कई व्यापार भी भूल जाता है। विचार जगत में प्रवेश और निवास का यह आनन्द योगियों की समाधि अवस्था के आनन्द जैसा ही होता है। इस स्थिति में मनुष्य दृश्य जगत से उठकर अदृश्य संसार में, सूक्ष्म लोक में विचरण करने लगता है और वहाँ कई विचारों का स्पर्श प्राप्त करता है। यह ठीक उसी तरह है जैसे योगी दिव्य चेतना का सान्निध्य प्राप्त करता है। एकाग्रचित से पुस्तकों का अध्ययन ऐसी ही साधना है, जिससे हमारे जीवन का पर्याप्त विकास प्राप्त किया जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रत्येक विचारशील और ज्ञानप्रेमी व्यक्ति को चाहिए कि वह जीवन में अन्य सामग्री की तरह अच्छी पुस्तकों का संग्रह भी करें। जीवन के विभिन्न अंगों पर प्रकाश डालने वाले विविध विषयों की अच्छी पुस्तकें खरीदने के लिए बजट में सुविधानुसार आवश्यक राशि रखनी चाहिए, कपड़े, भोजन और मकान की तरह ही हमें पुस्तकों के लिए भी आवश्यक खर्चों की तरह ध्यान रखना चाहिए।

इसके साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि पुस्तकें कमरे को सजाने के लिए अथवा प्रदर्शनी लगाने के लिए न खरीदी जायें वरन् उनका नियमित अध्ययन भी जीवनक्रम में सम्मिलित रखा जाय। वे समाज का दर्पण ही नहीं हैं उसकी मार्गदर्शक और नियन्ता भी हैं। इतिहास का रुख मोड़ देने वाले घटना-चक्रों का यदि अध्ययन किया जाय तो प्रतीत होगा कि किसी भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन में—सामाजिक क्रान्ति में उस समाज के साहित्य ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निवाही है, आज संसार के अधिकांश देशों में प्रजातन्त्र है। किसी जमाने में सारा संसार राजतन्त्रात्मक शासन प्रणाली से संचालित था। प्लेटो ने एक पुस्तक का सृजन किया—'रिपब्लिक' जिसमें कि प्रजातन्त्र शासन पद्धति का प्रतिपादन किया गया था। उस पुस्तक से उद्धृत प्रजातन्त्र की विचारधारा ने सारे संसार को आच्छवादित कर दिया। कार्लमार्क्स की 'केपिटल' ने श्रमजीवी समानतावादी विचारों का एक समग्र जीवन-दर्शन ही प्रतिपादित किया और वह पुस्तक आज भी साम्यवादियों की प्रेरणा है। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में गीता, आनन्दमठ और रामायण जैसे ग्रन्थों ने किस प्रकार क्रान्तिकारियों को प्रेरित किया और उन्हें दिशा दी—इसका उदाहरण अभी पुराना नहीं है। साहित्य का जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है और वह व्यक्ति तथा समाज के जीवन को अनिवार्य रूप से प्रभावित करता है। उसका अध्ययन दूसरे नियमित कार्यक्रमों की तरह ही दिनचर्या का अनिवार्य अंग बनाया जाना चाहिए। पुस्तकों को मात्र संग्रहीत कर लेने से ही उनका लाभ नहीं मिल जाता है। उनका लाभ मिलता है, उनसे सम्पर्क स्थापित करने और अध्ययन का क्रम नियमित बनाने पर।

यह भी एक ध्यान देने योग्य बात है कि पुस्तकों का चयन करने में बड़ी सूझ-बूझ और सर्तकता बरती जाय। कारण कि विचार एक शक्ति है। उस शक्ति के सत्परिणाम जीवन को ऊँचा उठा सकते हैं, तो उनकी विषाक्तता मनुष्य को पतन के गर्त में भी धकेल सकती है। अच्छे विचारों का उत्कृष्ट परिणाम ही श्रेष्ठ हो सकता है और विचार शक्ति का जागरण साहित्य से होता है। साहित्य में ही वह शक्ति होती है, जो व्यक्ति की जीवन दिशा को बदलकर समाज की रूपरेखा भी बदल डालती है। इसलिए विचारक, मनीषियों ने कहा कि—किसी भी समाज की शक्ति और योग्यता की परख उसके साहित्य से ही होती है। विचारकों को ऊँचा उठाने वाला साहित्य ही अपने पास रखा जाय और उसी से सम्पर्क-सम्बन्ध स्थापित किया जाय, तो आत्मोन्नति का प्रथम प्रयास सफल ही समझना चाहिए।''

अच्छे साहित्य की आवश्यकता—जीवन निर्माण की प्रेरणा और प्रकाश की भूख तभी बुझाई जा सकती है, जब हम भावनाओं को ऊँचा उठाने वाले साहित्य से नियमित सम्पर्क बनाये रहें। इसके लिए स्कूली किताबें, नाटक, भजन या धर्म की लकीर पीटने वाली पुस्तकें ही पर्याप्त नहीं होतीं, उसके लिए ऐसे साहित्य की आवश्यकता होती है, जो तथ्यपरक और सन्मार्ग प्रेरक हों। साहित्य में उस सारे वाक्य को ले सकते हैं, जिससे अर्थबोध के साथ भावनाओं का परिष्कार भी होता है और प्रत्येक तथ्य की समीक्षात्मक व्याख्या भी होती है। पढ़ना और उसे समझना, समझकर उसके सत्यासत्य पर विचार करना तथा जीवन निर्माणकारी आदर्शों का व्यवहार में अनुकरण करना आरम्भ हो सके, तो समझना चाहिए कि हम साहित्य की आवश्यकता को अनुभव करने लगे हैं, रामायण पढ़ने का लाभ जब है जब हम भी राम, भरत या लक्ष्मण के सदृश्य बनने का प्रयत्न करें और रामायण का महत्त्व इसलिए है कि उससे आन्तरिक मलीनताओं को मिटाने तथा सदाचार का वरण करने की प्रेरणा मिलती है। सत्साहित्य से इस तरह का तालमेल बिठाया जा सके तो विचार दृष्टि से शक्तिशाली बनने में कोई कठिनाई नहीं रहेगी।

मस्तिष्क को विकसित करने वाले मानसिक भोजन की आवश्यकता

मनुष्य का शरीर दुबला हो तो प्रायः उससे जीवन में उतनी हानि नहीं होती, जितनी मस्तिष्क कमजोर होने से होती है। श्री विनोबा, पंडित जवाहरलाल नेहरू, महात्मा गाँधी इत्यादि महापुरुष जीवन भर शरीर से निर्बल रहे, किन्तु उनके पास सशक्त और पूर्ण विकसित मस्तिष्क थे। उन्होंने बुद्धि, तर्क, ज्ञान, अध्यात्म-विज्ञान और साहित्य के अध्ययन द्वारा अपने मस्तिष्कों को अधिकतम विकसित किया था, उनमें नये विचारों को सोच सकने, भावी-जीवन की संभावनायें, कल्पना करने और मौलिक चिन्तन करने की क्षमता थी। इस कारण उनके दुबले-पतले शरीर भी संसार को नये सिरे से बढ़ाने में समर्थ हुए। इस प्रकार के सैकड़ों महापुरुषों के उदाहरण मिल सकते हैं, जिनसे यह स्पष्ट होता है कि शरीर के भोजन की अपेक्षा मस्तिष्क का भोजन अधिक जरूरी है।

साधारणतः शरीर तो प्रकृति के नियमों के अनुसार स्वयं बढ़ता ही रहता है। पशु, पक्षी, कीट, पतंग, वृक्ष आदि की तरह मनुष्य का शरीर भी अपने आप बढ़ता जाता है और जानवरों की तरह हम भी जानवर ही हैं। अन्य जानवरों के शरीर खुद बढ़ते जाते हैं। अजगर, साँप, भैंस, गैंडा, बैल, सूअर, बड़ी-बड़ी मछलियाँ अनाप-शनाप शरीरों को बढ़ाते जाते हैं। उनका एक मात्र कार्य खाना-पीना और सन्तान उत्पादन ही होता है। उन्हें पता तक नहीं होता है कि उनके पास मस्तिष्क जैसा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विकसित किया जाने वाला अति अद्भुत और विलक्षण यन्त्र भी मौजूद है। मस्तिष्क के विकास से ही मनुष्य सब चीजों का सिरमौर कहलाता है।

वर्तमान अवस्था से ऊँचे उठकर समुन्नत बनने, विवेकशील और शक्तिशाली बनकर संसार पर राज्य करने की भावना सब मनुष्यों में होती है। इस उद्देश्य की पूर्ति तभी सम्भव है, जब आदमी के पास विकसित मस्तिष्क हो। वास्तविक प्रगति का सच्चा स्वरूप हम तभी समझ पाते हैं, जब हमारे मस्तिष्क में अच्छा-बुरा, हानि-लाभ, उन्नति-अवनति का स्वरूप समझने की शक्ति और विवेक हो।

आदि गुरु शंकराचार्य का ३८ वर्ष की छोटी-सी आयु में देहान्त हो गया था। शरीर से वे शुरू से ही दुर्बल थे। पतले-दुबले हाथ-पाँव जर्जर शरीर जैसे हिलता-डुलता अस्थिपिंजर ! खानपान में संयम रखने के कारण शरीर बाद में भी नहीं पनपा। पर उनके मस्तिष्क की ताकत विलक्षण थी। अध्यात्म और धर्म के गूढ़तम तथ्यों को सोच-समझ और प्रतिपादित करने की उनमें अद्भुत क्षमता थी। उनके ज्ञान का भण्डार असीम था। चिन्तन और मनन द्वारा उन्होंने चमत्कारिक रूप से ज्ञानवर्द्धन का कार्य किया था। हिन्दू-धर्म की जो मीमांसा उन्होंने की थी, वह अभूतपूर्व थी। कल्पना कीजिए, इतने कमजोर शरीर वाला व्यक्ति सशक्त मस्तिष्क के कारण ज्ञान के क्षेत्र में कितना अधिक काम कर गया।

इस संसार में दिमागी निर्बल प्राणियों के लिए कोई स्थान नहीं है। प्रकृति के सारे आघात कमजोर जानकारी पर ही होते हैं। संसार के संघर्ष में योग्य, साहसी और विचारशील व्यक्ति ही ठहर सकते हैं। जीवन के लिए विचारशक्ति की अनिवार्य आवश्यकता है।

जो व्यक्ति किन्हीं कारणों से कमजोर शरीर वाले भी हैं, वे भी अपने सशक्त मन के कारण खूब मानसिक और साहित्यिक कार्य कर सकते हैं। मनुष्य जीवन में शरीर की अपेक्षा मस्तिष्क और आत्मा का बहुत अधिक महत्त्व है। उन्नत मस्तिष्क ही उसे समस्त पशुओं का शासक बनाये हुए हैं। अपने विकसित ज्ञान से ही वह समग्र पृथ्वी पर निर्बाध शासन करता है। उसमें सोचने, भावी जीवन की कल्पना करने, दूसरों के अनुभवों से लाभ उठाने, समझाने से समझने, अपना ज्ञान बढ़ाने, अध्यापन, लेखन और भाषण देने की अद्भुत और आश्चर्यचकित करने वाली चमत्कारिक शक्तियाँ हैं। वही अच्छा सोच सकता है। उसके मस्तिष्क में नित नये-नये उपयोगी और विकासोन्मुख विचार आते रहते हैं। केवल वही विचारों की दुनिया में रह सकता है। शेष पशु भव्य विचारों, मधुर कल्पनाओं, सत्संकल्पों और सरस चिन्तन का आनन्द नहीं उठा सकते। अच्छे मस्तिष्क के आनन्द केवल आदमी के लिये ही बने हैं। अपने मस्तिष्क के सही विकास द्वारा ही यह सब सम्भव हो सकता है।

विचार एक सूक्ष्म तत्त्व है। बिजली की तेज तरंग की भाँति विचार तेजी से हमारे दिमाग में आते हैं। कभी-कभी बाह्य-जीवन के हर्ष, विषाद, उत्साह, करुणा, क्रोध, ईर्ष्या, भय, प्रेम, स्नेह, दर्प, महत्त्वाकांक्षा आदि भावनायें नये-नये मौलिक विचारों को जन्म देती हैं। वह ऐसे भाव और अनुभवों से परिपूर्ण और उत्प्रेरित रहता है, जो शब्दों के माध्यम से कविता की भाषा में ही कागज पर उतारे जा सकते हैं। मनुष्य अपनी पुरानी स्मृतियों को पुनः कल्पना-क्षितिज पर ला सकता है और अनुभवों को लिपिबद्ध कर सकता है। अन्य अविकसित जानवरों में दूसरों के अनुभवों से लाभ उठाने की क्षमता नहीं है। आदमी अपने अनुभव को लिख लेता है, उनसे पुस्तकें बना लेता है। असंख्य पुस्तकें बड़े-बड़े पुस्तकालयों में संग्रहीत हैं। ये पुस्तकें विचारवान मनुष्यों के बदले हुए स्वरूप हैं। इन ग्रन्थों में वह विचार और संसार के अनुभव भरे हुए हैं, जिनसे नई पीढ़ी बड़ा लाभ उठा सकती है।

जैसे शरीर को बढ़ाने, अंगों को परिपुष्ट करने, त्वचा को निखारने आदि के लिए तरह-तरह के भोजन की आवश्यकता पड़ती है, इसी तरह मस्तिष्क की ताकत बढ़ने, उसमें कल्पनाशक्ति, विचारशक्ति, सृजनशक्ति, विकसित करने के लिए मानसिक और बौद्धिक खुराक चाहिए।

साहित्य से बढ़कर मधुर कुछ नहीं

श्री विनोबा भावे का एक मार्मिक संस्मरण यहाँ दिया जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि सच्चा साहित्य सदा-सर्वदा मनुष्य को उत्साह देता है। वे लिखते हैं—

एक पुरानी बात याद आ रही है। बचपन में करीब दस साल तक मेरा जीवन एक छोटे देहात में व्यतीत हुआ। बाद में दस साल तक बड़ौदा जैसे शहर में बीते। जब मैं कोंकण के देहात में था, तब पिताजी कुछ अध्ययन और काम के लिए बड़ौदा में रहते थे। दीवाली के दिनों में प्रायः घर पर आया करते थे।

एक बार माँ ने कहा, 'आज तेरे पिताजी आने वाले हैं। वे शहर से तेरे लिए मेवा-मिठाई लायेंगे।'

पिताजी फौरन आये।

मैं खुशी-खुशी जल्दी से उनके पास पहुँचा और उन्होंने बड़े स्नेह से अपना मेवा का पैकेट मेरे हाथ में थमा दिया। मेवे को हम कुछ गोलगोल लड्डू ही समझते थे, लेकिन यह मेवे-मिठाई का पैकेट गोल न होकर चिपटा-सा था। मुझे लगा कि उसमें जरूर कोई खास तरह की मिठाई होगी।

जल्दी-जल्दी बड़े उत्साह से पैकेट को खोला।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ओफ ! मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसमें देखा कुछ किताबें रखी थीं।

कहाँ मैं मिठाई का शौकीन। कहाँ ये कागज की बनी सूखी किताबें।

मेरा मन बैठ गया। बड़ा बुरा लगा।

उन्हें लेकर माँ के पास पहुँचा और उसके सामने उन्हें पटक दिया। मन में बेहद आक्रोश और टूट-फूट थी।

माँ समझाते हुए प्यार भरे स्वर में बोलीं, 'बेटा, तेरे पिताजी ने तुझे आज जो मिठाई दी है, उससे बढ़कर मीठी और गुणकारी मिठाई दूसरी नहीं हो सकती।'

मैंने पुस्तकों को गौर से देखा।

वे किताबें रामायण और भागवत की कहानियों की थीं। मैंने उन्हें पढ़ा तो मनोरंजन भी हुआ और मेरा ज्ञान भी बढ़ा। आज तक वे किताबें मैंने कई बार पढ़ी हैं और हर बार उनसे लाभ उठाया है !

माँ का यह वाक्य मैं कभी नहीं भूला कि 'इससे बढ़कर और कोई मिठाई हो ही नहीं सकती।' इस वाक्य ने मुझे इतना पकड़ रखा है कि आज भी कोई मिठाई मुझे इतनी मीठी मालूम नहीं होती, जितनी सुन्दर विचारों की पुस्तक।

वैसे भगवान की अनन्त शक्तियाँ हैं, पर सत्साहित्य में उन शक्तियों की केवल एक ही कला प्रकट हुई है। भगवान की शिव शक्ति, (दूसरों को ज्ञान से अधिकाधिक लाभ देने की सत्प्रेरणा) कवियों और साहित्यिकों को साहित्य-निर्माण के लिये प्रेरित करती हैं। लेखक और विचारक ही उस शक्ति को जानते हैं, दूसरों को उनके माध्यम से उसका दर्शन होता है।

इस युग में स्वाध्याय सुगम हो गया है— प्राचीनकाल में पुस्तकें बहुत कम थीं। जो थीं, वे बड़ी कीमती थीं और सर्वसुलभ नहीं थीं। लेकिन आज प्रेस की सुविधाओं के कारण अच्छा साहित्य भी प्रचुरता से प्रकाशित हो रहा है। वह काफी सस्ता तथा सहज उपलब्ध होने वाला है। उत्तम साप्ताहिक दैनिक और मासिक पत्र सस्ते और सर्वसुलभ हैं, जितने पैसे में लोग पान खाते या सिगरेट पीते हैं अथवा सिनेमा शो देखकर फिजूलखर्ची करते हैं, उतने में तो एक छोटा-सा घरेलू पुस्तकालय स्थापित किया जा सकता है या एक दैनिक पत्र खरीदा जा सकता है।

कई प्रकाशक केवल लागतमात्र मूल्य में सद्ज्ञान और सत्साहित्य का प्रचार-प्रसार करते हैं। 'अखण्ड-ज्योति संस्थान, मथुरा' और 'गीता प्रेस गोरखपुर' के उपयोगी और सुरुचिपूर्ण प्रकाशन बेहद सस्ते हैं। इन संस्थाओं का उद्देश्य भारतीय दर्शन और धर्म का प्रसार करना रहा है। ये संस्थान उत्तम मानसिक भोजन का सर्वसुलभ साहित्य पहुँचाना चाहते हैं, जिससे भावी नागरिकों में सद्ज्ञान, कर्त्तव्य, संयम, नैतिकता और आस्तिकता की निरन्तर अभिवृद्धि होती रहे। दुश्चरित्रता की वेगवती नदी रोकी जा सके।

इन संस्थाओं द्वारा प्रकाशित धर्मग्रन्थों का निर्माण करने वाले लेखक जीवन भर अध्ययन करते और अनुभव इकट्ठे करते रहे हैं। उन्हें मन में धारण करना फायदेमन्द है। किसी भी बड़े आदमी के जीवन को ले लीजिए, आप पायेंगे कि उसने खुद नई-नई उपयोगी पुस्तकें पढ़कर व्यावहारिक ज्ञान हासिल किया है। स्वाध्याय के अभाव में कोई भी व्यक्ति महान अथवा ज्ञानवान नहीं बन सकता।

हमने साहित्य का उद्देश्य सिर्फ मनोरंजन समझा है

आज सस्ते कहानी-किस्से, उपन्यास और चित्रों वाली पुस्तकें या पत्र-पत्रिकाएँ पढ़कर या केवल उत्तेजक तस्वीरें मात्र देखकर पाठक अपना मनोरंजन कर लेते हैं। फिल्मी पत्रिकाओं में तो अश्लील चित्र देखने के अलावा पढ़ने योग्य कुछ भी नहीं होता। गम्भीरता से पढ़ने में मन पर जोर पड़ता है। इसलिए पन्ने पलटने मात्र को लोग साहित्य का उद्देश्य समझते हैं। सस्ते उपन्यासों में अक्सर दिलचस्पी बनाये रखने वाले रहस्य और रोमांचकारी, बनावटी घटनाओं के अतिरिक्त कुछ नहीं होता। अच्छे साहित्य का उद्देश्य महज मनोरंजन करना अथवा समय काटना नहीं है। उसका उद्देश्य ज्ञान और अनुभव बढ़ाना है। जिस साहित्य से हमारी ज्ञानवृद्धि नहीं होती, वह व्यर्थ का वाग्जाल है। अच्छा साहित्य मनन और आचरण योग्य उपयोगी विचार और फायदेमन्द योजनायें देता है। 'साहित्य' वह है, जो हमारा अधिक से अधिक हित करे, फायदा पहुँचाए। हमें जीवन में सच्चा मार्ग-प्रदर्शन करे। बुराइयों और खतरों से बचाये।

आज व्यक्ति, समाज और राष्ट्र में जो बुराइयाँ व्याप्त हैं, उनसे बचाने का कार्य सत्साहित्य का ही है। वह असंयम, व्यसन, विलासिता, शेखीखोरी या ऐसे ही दूसरे दुर्गुणों से बचाये, रोग, शोक, निराशा, द्वेष, संघर्ष एवं अशान्ति से हमारी रक्षा करें। इसी प्रकार सामाजिक और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ जैसे जातिवाद, महँगाई, दलबन्दी, खाद्य समस्या, जनसंख्या की वृद्धि, बेईमानी, भ्रष्टाचार, अशिक्षा, गरीबी, बेकारी, अपराधों का बढ़ना, उच्छृंखलता आदि अनेक समस्याएँ स्वस्थ साहित्य द्वारा ही दूर की जा सकती है। दुनिया में फैले शोषण, रंग भेद, गुटबन्दी, पक्षपात, युद्धोन्माद, साम्राज्यवाद आदि भी सत्साहित्य ही समाप्त कर सकता है। इस साहित्य का दायरा काफी विशाल है।

जैसे लोग चाय, पकौड़ी, आइसक्रीम जैसे चटपटे पदार्थ बड़े मजे में लेकर खाया करते हैं, वैसे ही सस्ते उपन्यास, कहानियाँ, हल्का मनोविनोद करने वाला साहित्य तो हम खरीदकर पढ़ लेते हैं, किन्तु चरित्र को मजबूत बनाने और अनुभवों को परिपक्व बनाने वाला गम्भीर साहित्य हम नहीं पढ़ते। यह हमारी एक बड़ी कमजोरी है। जैसे अभक्ष्य पदार्थ खाने से हाजमा खराब होता है, वैसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही दूषित और अश्लील साहित्य से मनुष्य में कुप्रवृत्तियाँ उद्दीप्त होती हैं। गन्दा साहित्य समाज और व्यक्ति में अश्लीलता फैला रहा है। उसे पढ़ते-पढ़ते हम गम्भीर साहित्य, शिल्प, कला, विज्ञान, उद्योग, अध्यात्म, धर्म और मनोविज्ञान आदि उपयोगी विषयों को छोड़ बैठे हैं। श्रम से घृणा करने लगे हैं और फिजूल की पुस्तकों में समय को बर्बाद करते हैं। घटिया भोजन से शरीर बिगड़ता है। ठीक इसी प्रकार घटिया किताबें पढ़ने, अपने पास रखने या माँगकर पढ़ने से मन और आत्मा का पतन होता है।

मनुष्य की मानसिक रचना गम्भीर साहित्य से सही दिशाओं में हो सकती हैं। अच्छे, उपयोगी और ऊँची शक्तियों का विकास करने वाले साहित्य से हमारा चरित्र और भविष्य बनता है।

बड़े नगरों में आजकल अश्लील पुस्तकों की खपत बढ़ रही है। सड़कों पर बैठने वाले, फेरी लगाने वाले पुस्तक विक्रेता ही नहीं, दुकानदार, बुकसेलर भी पैसे के लालच में आकर हल्का साहित्य बेचते हैं, जिसमें अत्यन्त अश्लील तस्वीरें और पथ-भ्रष्ट करने वाली गन्दी बातें भरी रहती हैं। नई उम्र के लड़के तथा मनचले युवक इन्हें चुपचाप खरीद ले जाते हैं और इनकी कुसंगति में रह कर जीवन नष्ट कर लेते हैं। इन विषैली पुस्तकों से बड़ा सावधान रहना चाहिए।

पतन की राह ढलानपूर्ण तथा रपटीली होती है, इस पर जब व्यक्ति का पाँव पड़ जाता है तब, वह बड़ी कठिनता से ही व्यक्ति को गिरने से रोक सकता है। साहित्य हमारे जीवन को दृष्टि और प्रेरणा दोनों देता है। हल्के और गन्दे साहित्य को पढ़ने से मन और विचार दोनों ही धीरे-धीरे दूषित होने लगते हैं। इसका प्रभाव व्यक्ति वर्तमान में ही घटित नहीं होता है अपितु, उसके भविष्य के कार्यों और विचारों में भी घटित होता है। अतएव, आवश्यक है कि, हम गन्दे साहित्य से अपने प्रियजनों को बचायें।

पहले पाठकों में सद्ज्ञान, सद्विचार, सत्साहित्य के प्रति बड़ा चाव था। वे अच्छी पुस्तकों की बड़ी तलाश किया करते थे, दूसरों से चुनाव सम्बन्धी सलाह लिया करते थे और जब उत्तम ग्रन्थ मिल जाता था तो अपने सौभाग्य पर गर्व करते हुए गहन अध्ययन किया करते थे।

पर आज स्थिति बदली हुई है। हमारे पास स्वस्थ मानसिक भोजन मौजूद है। विद्वान और विचारक एक से एक उपयोगी पुस्तकें प्रतिदिन लिख रहे हैं, छापेखाने सस्ते से सस्ते मूल्य में उन्हें छापकर हमें दे रहे हैं, पर खेद का विषय है कि हममें उस सात्विक भोजन को हजम करने वाला दिमाग ही नहीं है। हम गम्भीर साहित्य में कोई रुचि नहीं लेते हैं। पुस्तकालयों में जाकर भी अच्छी पुस्तकों का सत्संग नहीं करते हैं। लाइब्रेरी में कम से कम पैसे देकर अच्छे से अच्छे साहित्य से सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है, समाचार-पत्र तो मुफ्त में ही पढ़े जा सकते हैं, किन्तु हमारे पास रुचि और उत्साह ही नहीं है।

गम्भीर साहित्य के सत्संग के बिना मनुष्य का बौद्धिक और नैतिक विकास कदापि सम्भव नहीं है। ज्ञान और अनुभव बढ़ाने के लिए पुस्तकालयों का बड़ा भारी महत्त्व है। बौद्धिक और मानसिक भूख की तृप्ति करने वाले पुस्तकालयों को देव-मन्दिरों से कम महत्त्वपूर्ण नहीं माना जा सकता। धार्मिक पुस्तकें देवताओं से किसी भी दृष्टि में कम नहीं हैं।

हमारे देश में शिक्षा की कमी है। एक तो लोग पढ़ते ही नहीं, यदि पढ़ते भी हैं तो मामूली-सा ज्ञान प्राप्त कर इतिश्री कर देते हैं और हाथ पर हाथ रखकर पढ़ाई को खत्म हुआ समझ लेते हैं। वे लोग उतना ही पढ़ना काफी समझते हैं, जितना रोजी-रोटी कमाने के लिए अनिवार्य है। सद्ज्ञान और बुद्धि-विकास की उपयोगिता और आवश्यकता अशिक्षित तो क्या शिक्षित भी अभी नहीं समझ पाये हैं। जनता ने अभी यह बात नहीं समझी है कि मानसिक विकास के लिए मानव-जीवन तथा समाज की विविध समस्याओं को ठीक-ठीक समझना नितान्त आवश्यक है। उसके बिना कोई व्यक्ति बौद्धिक दृष्टि से प्रौढ़ता प्राप्त नहीं कर सकता। इस अभाव की पूर्ति श्रेष्ठ पुस्तकें ही कर सकती हैं। हमारे गरीब देश की जनता अपनी ज्ञान-क्षुधा की जरूरी सामग्री जुटाने में जितने खर्च की आवश्यकता है, उसे वहन नहीं कर सकती। इसलिए पुस्तकालय ही इस अभाव की पूर्ति कर सकेंगे।

बौद्धिक दृष्टि से मजबूत आदमी ही सांसारिक जीवन में ऊँचा उठता और तरक्की करता है। राष्ट्रीय उत्थान के लिए विचारशीलता की अभिवृद्धि आवश्यक है। या तो हम स्वयं थोड़े-थोड़े पैसे बचाकर सत्साहित्य खरीदें अथवा प्रतिदिन लाइब्रेरी में जाकर अच्छी पुस्तकों से सम्पर्क स्थापित करें। इस सम्बन्ध में कठिनाई यह है कि लोगों में पढ़ने की अभिरुचि नहीं है। जो पढ़ते हैं, वे मनोरंजन अथवा किस्से-कहानियों का हल्का साहित्य पढ़ते हैं। विचारोत्तेजक साहित्य पढ़ने की अभिरुचि पैदा करने के लिए पुस्तकालय के संचालकों को वही प्रयत्न करना होगा जो चाय, काफी या दवाई का प्रचार करने वाले एजेण्ट करते हैं। घर-घर जाकर सत्साहित्य का शौक पैदा करना ठीक रहेगा।

उत्कृष्ट विचारों की पूँजी जीवन को सफल बनाती है

अच्छे विचारों का बल निःसन्देह बहुत बढ़-चढ़कर है। दार्शनिक इमर्सन का कथन है—"आध्यात्मिक शक्ति लौकिक शक्तियों से बड़ी है। मजबूत विचार ही संसार में शासन करते हैं।"

सृजनात्मक विचारों और उन्नति के प्रयासों का परिणाम ही श्रेष्ठतर होता है। भविष्य का निर्माण भी योजनाबद्ध एक ही दिशा में बढ़ने वाले विचारों के अनुरूप ही होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उत्पादक और नये उपयोगी विचार ही शक्ति के स्रोत हैं, इस तथ्य को संसार के सभी मनीषियों ने स्वीकार किया है। किसी भी उच्च साधना की सफलता के लिए लाभदायक विचारों की आवश्यकता है। विचार जीवन का सही दिशाओं में संचालन करते हैं। इसलिए वे श्रेष्ठ हैं, इस बात से इन्कार करने का कोई कारण भी खोज में नहीं आया है।

बुरी पुस्तकें शत्रु से क्या कम हैं ?

सुश्री मिथिलेश कुमारी (एम. ए.) अपना एक अनुभव इन शब्दों में लिखती हैं, जो आँखें खोलने वाला है।

'मैंने कुछ दिन पूर्व सुना था कि एक सैनिक अधिकारी पुस्तकालय में इस विचार से गया कि—'युद्ध में आक्रमण कैसे करना चाहिए' विषय से सम्बन्धित कोई पुस्तक लाए। बड़ी खोज-खबर के पश्चात उसे इस विषय का विशद विवेचन करने वाली पुस्तक मिल गई। उसने उस किताब को दो बड़े-बड़े ग्रन्थों के बीच में रखा हुआ पाया। वह बहुत प्रसन्न हुआ। यथाशीघ्र उसने उस मनोवांछित पुस्तक को निकाला, किन्तु इसी क्रम में उसे ऐसा लगा जैसे उसकी अँगुली के पास कोई पिन चुभ गई।

वह पुस्तक के पन्ने पलट रहा था कि यकायक उसे पुस्तक में लिपटा साँप का एक बच्चा दिखाई दे गया। विश्वास न कर पा रहा था कि पुस्तक में साँप कहाँ से आ घुसा। उसने उसे झटककर नीचे गिराया और काले सपोले को फौजी बूट से कुचल दिया। साँप पिसकर मर गया। बात आई-गई हो गई। वह पुस्तक पढ़ता रहा, किन्तु दो घण्टे के पश्चात उसकी अँगुली में दर्द बहुत बढ़ गया। सूजन भी आ गई।

वह कुछ समझ न पाया कि क्या माजरा है ? वह डरकर सीधा डॉक्टर के पास गया, उपचार भी हुआ, पर लाभ न हुआ। सर्प का विष उसके शरीर में पर्याप्त मात्रा में फैल चुका था। इसी विष से तीसरे दिन उस सैनिक की मृत्यु हो गई।

यह घटना छोटी-सी जान पड़ती है, पर इसे मैं बहुमूल्य जीवन-सूत्र मानती हूँ। इसका अर्थ भी अति व्यापक लगाया जा सकता है। आजकल बहुत-सी पुस्तकों में नाना प्रकार के सर्प कुण्डली मारकर बैठे हैं। गन्दी, अश्लील और उत्तेजक पुस्तकों में छपे काले अक्षर विषधर सर्पराज से किसी भी प्रकार कम नहीं हैं।

गन्दे-गन्दे उपन्यासों की आज भरमार है। शरारत से भरी फिल्मी पत्र-पत्रिकायें और कुरुचिपूर्ण कहानियों की किताबें खूब धड़ल्ले से बिकती हैं। खतरनाक काम-विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकों की खपत बहुत है। कामुकवृत्ति के पाठक समय बरबाद करने के लिए इन्हें ढूँढ़-ढूँढ़कर पढ़ते रहते हैं। अश्लीलता और कुरुचि फैलाने वाला साहित्य आवारागर्द बदमाशों जैसा ही है।

एक भी गन्दी बात, अश्लील विचार या दूषित योजना किसी युवक-युवती के मन पर बैठ जाय तो वह पतन की ओर उन्मुख हो जाता है। अश्लील गन्दा साहित्य सर्प के विष की तरह समाज में तेजी से फैलता जा रहा है। यह वह मीठा विष है, जिसे पढ़कर आज नहीं तो कल हमारे बच्चे-बच्चियाँ दुश्चरित्रता की ओर अग्रसर होते हैं।

दूषित साहित्य के द्वारा फैलती हुई मानसिक विलासिता और कामुकता हमारे युवकों को अनुशासनहीनता, फैशनपरस्ती और शरारत की ओर ले जा रही है। जैसे सिनेमा में अर्द्धनग्न और वासना भड़काने वाले गन्दे दृश्य देखने को युवक लालायित रहते हैं, वैसे ही उत्तेजक गन्दे चित्रों से भरी अश्लील फिल्मी पत्रिकाओं को खरीद और पढ़कर अपने जीवन को विषमय बनाते हैं। वे ऐसे काल्पनिक संसार में रहने लगते हैं, जिसमें आनन्द, मस्ती, शरारत, प्यार, इश्क के अलावा कुछ भी नहीं है। आज के युवकों में पाई जाने वाली अनैतिकता, स्वच्छन्दता, अन्यायपूर्ण-कुतर्क, अवज्ञा, असंयम, सब दूषित साहित्य का ही विषैला असर है।

पुस्तकें जीते-जागते आदमी हैं। जैसे आदमी का संग होता है, वैसे ही पुस्तकों का संग है। गन्दी पुस्तकों में रहना कुसंग में रहने के बराबर हानिकर है। गन्दा मित्र गड्ढे में डालने वाला है। कुत्सित पुस्तकें कुमार्ग पर ले जाने वाली हैं। अत: जैसे समझ-बूझकर मित्र का चुनाव करते हैं, वैसे ही पढ़ने से पूर्व पुस्तकों का चयन करना बड़े दायित्व का कार्य है।

पतन की तरफ ले जाने वाली, कामुकता और दुश्चरित्रता फैलाने वाली पुस्तकों से व्यक्ति और राष्ट्र की शक्ति गलत दिशाओं और विध्वंसकारी मार्गों में लगने लगती है। आज समाज में इस बात के प्रमाण चारों ओर फैले दिखाई दे रहे हैं। विलासिता, कामुकता और अनाचार फैलाने वाले बाहर से आकर्षक किन्तु अन्दर से विषैले साहित्य की जो बाढ़ आई हुई है, उससे सामाजिक सामर्थ्यों का कितना विनाश हो रहा है, यह किसी से छिपा नहीं है।

लोगों का नैतिक चरित्र इतनी तेजी से गिरता जा रहा है कि विचारवान लोगों के हृदय इस आशंका से कांपने लगे हैं कि कहीं सामाजिक विद्रोह की ज्वाला न भड़क उठे। आज का अश्लील सस्ता साहित्य भी बहुत कुछ इस उच्छृखंलता और अनैतिकता के लिए जिम्मेदार है। गन्दे साहित्य से बच्चों के कोमल हृदयों को जितना ही बचाया जा सके, उतना ही सौभाग्य है।

यह तभी सम्भव है जब हम उनके सामने स्वस्थ और नैतिक साहित्य प्रचुरता से रखें। सत्साहित्य से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सद्विचार ग्रहण करते रहने की परम्परा चल पड़े। बढ़िया विचार और ऊँचे आदर्श प्रस्तुत करने वाले सद्विचार ग्रहण करते रहने की पुण्य-परम्परा चल पड़े तो नैतिक उत्थान के साथ मानसिक उन्नति भी होती रहेगी और समाज दुर्गुणों से बचा रहेगा।

पुस्तकों से सत्संग प्राप्त करने के मन्दिर

रोम्याँ रोलां नामक प्रसिद्ध लेखक ने एक बार अपने भाषण में एक बहुमूल्य बात कही थी—

"किसी राष्ट्र का लोकतन्त्रात्मक जीवन विघटित और विशृंखलित हो जाता है, तो उसे सभ्य और सुसंस्कृत बनाने के लिए मूक विचार क्रान्ति की जरूरत होती है।"

इस मूक विचार क्रान्ति से क्या मतलब है ?

उन्होंने जवाब दिया था, "पुस्तकालय। पुस्तकों से भरे घर। घरेलू पुस्तकालय। सार्वजनिक और सरकारी पुस्तकालय। ऐसे पुस्तकालय जो सद्ज्ञान के माध्यम से हमारे सामाजिक जीवन में व्याप्त बुराइयों, कमजोरियों और अन्धविश्वासों में योगदान दे सकते हों। पुस्तकालय ही हमारे धर्म, संस्कृति, सम्प्रदाय, छोटे-बड़े के भेदभाव से परे एक ऐसी दिव्य संस्था है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी ज्ञानशक्ति और क्षमताओं का विकास कर सकता है।"

साहित्य का सम्पर्क यदि आप पुस्तकें स्वयं खरीदकर नहीं कर सकते, खुद व्यय करने की क्षमता नहीं है, तो किसी भी पुस्तकालय में जाकर उत्तमोत्तम ग्रन्थों को पढ़ सकते हैं। जो व्यक्ति पुस्तकालय स्थापित करते हैं, या घर में ही सुरुचिपूर्ण ग्रन्थों को एकत्रित करते हैं। वे अपने तथा आने वाली पीढ़ी के लिए सच्चे मित्र और हितैषी छोड़ जाते हैं।

ऐसा एक उदाहरण हमें डाक्टर एस. आर. रंगनाथन का मिलता है, जिन्होंने पुस्तकालय विज्ञान पर अनेक मौलिक और उपयोगी शोधग्रन्थ लिखे हैं। भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मश्री' से विभूषित किया है। ग्रन्थ लिखना स्वयं में इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना अपने सिद्धान्तों को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करना है। रंगनाथन कोई उद्योगपति या साधन सम्पन्न व्यक्ति नहीं हैं। इस युग में भारत के लेखक की आय ही कितनी होती है। तो भी उन्होंने पुस्तकालय विज्ञान के विकास के लिए अपनी कमाई का कण-कण जोड़कर एक लाख रुपये की पूँजी मद्रास विश्वविद्यालय को भेंट की। इस अनुपम त्याग का महत्त्व बड़े से बड़े मठ, मन्दिर, धर्मशाला बनवाने से कम नहीं है क्योंकि इसके पीछे एक ही सत्संकल्प है कि हमारे देश का बौद्धिक विकास हो। पुस्तकालयों द्वारा ही सुसंस्कृत समाज की रचना हो सकती है, व्यक्ति और राष्ट्र को उदबुद्ध और उन्नतिशील बनाने का मार्ग पुस्तकालयों की स्थापना ही है—इस विषय पर उन्होंने कहा है—

"हम अपने मानव समाज में जिन मानवीय आदर्शों की स्थापना चाहते हैं, धर्म, अध्यात्म, संस्कृति और नैतिकता का प्रकाश समुपलब्ध करना चाहते हैं, उनकी पूर्ति न तो कानून कर सकता है और न प्रबुद्धतन्त्र। इसका आधार सामाजिक शिक्षा ही हो सकती है। एक ऐसी खिड़की होनी चाहिए, जो भीतर बैठे हुए व्यक्ति को सूर्य का प्रकाश लाकर देती रहे। पुस्तकालय ही वह माध्यम है, जो जिज्ञासा की अग्नि को प्रज्ज्वलित किये रह सकते हैं। सामाजिक शैक्षणिक संस्था के रूप में वे मानव-हृदय को नैतिकता की दिशा देते रह सकते हैं।"

उत्तम साहित्य से सम्पर्क स्थापित करने का सर्वोत्तम स्थान पुस्तकालय ही है। रूस की सामाजिक चेतना के विकास में पुस्तकालयों ने असाधारण रूप से काम किया है। स्टैलिन को हटे हुए अभी बहुत समय नहीं हुआ है। इतने थोड़े समय में आर्थिक, औद्योगिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक दिशा में जो भारी परिवर्तन हुए हैं, उनमें पुस्तकालयों का सर्वाधिक योगदान माना जाता है। उल्लेखनीय है कि दुनिया में सर्वाधिक पुस्तकालय रूस में हैं। किंवदन्ती है कि रूस के पुस्तकालयों में लगी हुई अलमारियाँ एक पंक्ति में लगाई जायें, तो मास्को और रोम को जोड़ा जा सकता है।

मनुष्य और राष्ट्र दोनों के लिए तथ्यों, घटनाओं, जीवन-चरित्रों, प्रेरक-प्रसंगों, निबन्धों का विविधातापूर्ण विचारपुँज चाहिए। पुस्तकों द्वारा मिलने वाला परिवर्द्धित ज्ञान ही बौद्धिक कार्यकुशलता को परिष्कृत बनाये रख सकता है। ज्ञान अनुभव और बुद्धि को बढ़ाकर ही विवेक की स्थायी प्रगति हो सकती है। इसलिए प्रत्येक समझदार आदमी को पुस्तकों का सत्संग आवश्यक है।

ज्ञान के रूप अनेक हैं। अनुभव का क्षेत्र अनन्त है। प्रत्येक आदमी के कडुवे अनुभवों से फायदा उठाया जा सकता है। विद्यालयों और स्कूलों में ये अनुभव देना मुमकिन नहीं है, क्योंकि उनका पाठ्यक्रम और विधियाँ सीमित रहती हैं। विद्यालय युवकों का बौद्धिक विकास करने में ही समर्थ है, व्यावहारिक अनुभव प्रदान करने में समर्थ नहीं है। व्यावहारिक जीवन का ज्ञान उन सैकड़ों ग्रन्थों से होगा, जो आपकी लाइब्रेरी में इकट्ठे रहते हैं। रुचि के अनुसार पुस्तकालयों से पुस्तकें चुनकर हम अपनी आवश्यकता के अनुकूल अपना सही रास्ता चुन सकते हैं। जिन्दगी के हर पहलू पर पुस्तकें जुटाई जा सकती हैं। मुहल्ले-मुहल्ले, गाँव-गाँव और हर विद्यालय में पुस्तकालय स्थापित किये जा सकते हैं। पुस्तकालय ही एकमात्र मस्तिष्कीय पोषण प्रदान कर सकते हैं।

ज्ञान गंगा से असंपृक्त न रहें

संसार में जितना भी ज्ञान-विज्ञान का विकास हुआ है, उसका अधिकांश विरासत में प्राप्त होता रहा है। किसी ने नया कुछ जोड़ा हो उसकी एक सीमा रहती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है—उससे भी अधिक पूर्व मनीषियों द्वारा शोध किया व संचित हुआ रहता है। उदाहरण के लिए किसी समृद्धतम परिवार को लिया जाय। अनायास कोई सौभाग्य आ प्रस्तुत हो तो बात अलग है अन्यथा आज के समृद्ध और अतुल वैभवशाली परिवारों की सम्पन्नता उनके पूर्वजों, पिछली पीढ़ी के व्यक्तियों द्वारा ही संचित है। करोड़पति परिवार यदि अपनी सम्पत्ति में दस पाँच लाख और जोड़ता है पर उसकी सम्पदा का एक बड़ा भाग तो विरासत में ही प्राप्त हुआ रहता है।

विज्ञान के क्षेत्र में ही लो जॉन डॉल्टन ने सर्वप्रथम परमाणु के अस्तित्व का पता लगाया। उसके बाद से अब तक सैकड़ों वैज्ञानिकों ने परमाणु का अध्ययन किया, उस दिशा में प्रयोग किये और परमाणु ज्ञान की नई धारायें जोड़ीं। उन सबका सम्मिलित समुच्चय ही आज परमाणु विज्ञान को उच्च स्थिति तक पहुँचाने में समर्थ हो सका। ऐसा नहीं है कि परमाणु शक्ति की उपलब्ध जानकारियाँ किसी एक वैज्ञानिक के एकाकी प्रयासों का ही परिणाम हों। इसे यों भी कहा जा सकता है कि ज्ञान का विकास परम्परागत रूप से होता है।

वैदिक और पूर्व वैदिक काल से अब तक अगणित ज्ञानसाधक, मनीषी, चिन्तक और शोधकर्ता हुए। तब लोगों के पास जितनी जानकारियाँ और जितने विचार थे, उससे अधिक ही विचार आज के समाज में हैं क्योंकि तब की जानकारियों में, उस समय की ज्ञानराशि में नित-निरन्तर कुछ न कुछ नया जुड़ता ही चला आया है और आज जो लोग ज्ञान साधना में लगे हुए हैं, नई शोधों में संलग्न हैं वे अब तक अर्जित ज्ञानराशि में कुछ न कुछ अभिवृद्धि करेंगे ही । इस प्रकार ज्ञान-विज्ञान की दृष्टि से मनुष्य और समाज दिनों-दिन समृद्ध सम्पन्न होता जा रहा है।

धन-सम्पदा भी इसी प्रकार परम्परा द्वारा आने वाली पीढ़ी को सौंप दी जाती है और नई पीढ़ी यदि समझदार हो, मेहनती हो, लगनशील हो तो उसमें कुछ-न-कुछ जोड़ती है अन्यथा उसे यों ही उड़ाकर वापस कंगाल बन जाती है। परन्तु ज्ञान के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहा जा सकता। ज्ञान सम्पदा में कुछ नया जोड़ा जा सके तो पूर्वस्थिति से उन्नत स्थिति बन जाती है किन्तु कुछ नया न जोड़ा जा सके तो वह नष्ट नहीं होता, अपनी पूर्व सीमा तक तो सुरक्षित ही रहता है।

जिन दिनों लेखन-मुद्रण की कला का विकास नहीं हुआ था, उन दिनों तक ज्ञान की यह धारा गुरु-शिष्य पम्परा से एक पीढ़ी द्वारा दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित कर दी जाती थी। गुरु अपने शिष्य को बता देता था और शिष्य गुरु बनकर अपने दूसरे शिष्य को बता देता था। कहा जाता है कि वेदों का ज्ञान आरम्भ में इसी प्रकार हस्तान्तरित होता रहा। वेदों का एक नाम श्रुति भी है, श्रुति अर्थात जो सुनकर सीखा गया। जब तक लिपि का विकास नहीं हुआ, तब तक इसी प्रकार वेद ज्ञान एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के पास पहुँचता रहा। जब लिपि का विकास कर लिया गया तो लिखकर सुरक्षित करने की परम्परा आरम्भ हुई।

ज्ञान-विज्ञान को जब लिपिबद्ध किया जाने लगा तो उससे जब चाहे तभी सम्पर्क करने की सुविधा बनी, उससे भी अधिक सुविधाजनक स्थिति तब हुई जब मुद्रण कला का विकास हुआ। फिर तो ज्ञान का द्वार जनसाधारण के लिए भी खुल गया, जिन्होंने पढ़ना-लिखना सीख लिया वही ज्ञान-विज्ञान से सम्पर्क सम्बन्ध जोड़ने की स्थिति में पहुँच गये। यही कारण है कि मुद्रण कला का विकास होने के बाद पिछले डेढ़ सौ वर्ष में जनसाधरण में ज्ञान की विभिन्न धारायें पहुँचने लगीं।

लेकिन यह स्रोत उन लोगों के लिए अभी भी निरर्थक है, कोई उपयोग में आने जैसा नही है। गंगा के किनारे रहकर भी उससे असंपृक्त रहा जा सकता है। घर में प्रकाश की व्यवस्था होने पर भी दीपक न जलाया जाय तो अँधेरे में रहने की स्थिति बनती है। ज्ञान से सम्बन्ध स्थापित करने की—सम्पर्क जोड़ने की व्यवस्था रहने पर भी अध्ययन की प्रवृत्ति न बनाई जाय, तो उससे अलग-थलग पड़े रहने के लिए किन्हीं दूसरे कारणों को दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

पुस्तकों को इतना महत्त्व इसलिए दिया गया है कि वे जीवन को प्रेरणा प्रदान करती हैं—अनुभूतियों और भावनाओं का परिष्कार करती हैं। प्राचीनकाल में तो लोग ज्ञान-साधना के लिए दूर-दूर की तीर्थयात्रायें करते थे, सन्त-महात्माओं का सानिध्य प्राप्त करते थे और अपने विषय के अधिकारी विद्वानों के पास जाते थे। ताकि समर्थ जीवनोपयोगी ज्ञान अर्जित कर सकें। लेकिन आज स्थिति इससे विपरीत है। पुस्तकों के रूप में ऐसे श्रेष्ठ पुरुषों के विचार सुलभ-उपलब्ध होने पर भी लोग उनसे लाभ नहीं उठा पाते।

कारण क्या है ? लोग ज्ञान का मूल्यांकन नहीं कर पाते अथवा व्यस्त जीवन में उन्हें इसके लिए अवकाश नहीं मिलता। विचारपूर्वक विश्लेषण किया जाय तो दोनों ही बातें प्रधान कारण नहीं हैं। मूल कारण है उपेक्षा भाव ज्ञान की आवश्यकता न पहले से कम हुई है और न ही व्यक्ति इतना व्यस्त हो गया है कि उसके पास पढ़ने के लिए एकाध घण्टे का भी समय न हो। वस्तुतः तो जो चीज आसानी से मिल जाती है, आमतौर पर लोग उसके सम्बन्ध में सामान्य गम्भीरता रो भी विचार नहीं करते। उदाहरण के लिए, पानी सर्वत्र मिल जाता है न उसका महत्व समझा जाता है और न ही उस पर विचार किया जाता है। उसका मूल्य तो तब पता चलता है, जब प्यास के मारे कण्ठ सूखा जा रहा हो और आस-पास पानी के दर्शन भी दुर्लभ हों या रेगिस्तानी इलाकों में पहुँचने पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पानी का मूल्य जाना जा सकता है। जहाँ लोग मीलों चलकर गहरे कुँओं से पानी खींचकर प्राप्त करते हैं।

प्रचुरता से उपलब्ध होने के कारण पानी व्यर्थ या असावधानी से उपयोग की जाने वाली चीज तो नहीं है, परन्तु उस प्रचुर मात्रा के कारण लोग पानी के प्रति सहज असावधान हो जाते हैं, इसी प्रकार पुस्तकें सर्वत्र उपलब्ध हैं, आसानी से दो-तीन रुपये खर्चकर मिल जाती हैं। इसलिए उनके सम्बन्ध में सहज ही यह धारणा बन जाती है कि उनके द्वारा कोई महत्त्वपूर्ण उपलब्धि प्राप्त की जा सकती है या उनसे कोई लाभ उठाया जा सकता है। उनका महत्त्व और मूल्यांकन तो तब पता चलता है जब किसी विशिष्ट अवसर पर कोई पढ़ी हुई बात याद आती है और अनुभव होता है कि अमुक अवसर पर हमने यह पढ़ा नहीं होता अथवा हमें यह जानकारी नहीं रहती तो इस समय क्या स्थिति होती ?

भूख और प्यास शरीर की आवश्यकतायें हैं। इसलिए उन आवश्यकताओं को पूरा करने की ओर तत्काल ध्यान जाता है और मनुष्य का जैसे-जैसे विकास होता चलता है, उसे अन्य आवश्यकताओं का अनुभव होने लगता है। बच्चा जन्मते ही दूध के लिए बिलखने लगता है। वह बड़ा होता है तो कपड़े भी पहनता है, बोलना भी सीखता है, स्कूल भी जाता है और पढ़ना-लिखना भी सीखने लगता है। प्रश्न उठता है कि ज्ञान भी मनुष्य की उसी स्तर की आवश्यकता है तो सभी लोग उसकी निरन्तर की साधना में क्यों नहीं लगते ? ज्ञान मनुष्य की निःसंदेह प्राथमिक आवश्यकता है। भोजन, वस्त्र और आवास के बाद विकसित मनुष्य की कोई प्राथमिक आवश्यकता हो सकती है, तो वह ज्ञान ही है, किन्तु कई ऐसे व्यक्ति भी हैं, जो ज्ञान ही नहीं अन्य दूसरी आवश्यकताओं को भी अनुभव ही नहीं करते। राजस्थान के गाड़िया लोहार और दूसरी कई घुमक्कड़ जातियाँ हैं जो कभी अपना घर बनाकर नहीं रहती। पूरे परिवार को साथ लेकर चलने वाले यह लोग जब भी जैसा अवसर मिलता है। अपने काफिले के साथ दस-पाँच दिन जी चाहे जहाँ ठहर जाते हैं और फिर आगे बढ़ लेते हैं। इसका अर्थ यह तो नहीं है कि मकान मनुष्य के लिए व्यर्थ है। जंगली जातियों के आदिवासी असभ्य लोग बिना वस्त्र पहने भी रह लेते हैं, इससे यह तो सिद्ध नहीं होता कि वस्त्र मनुष्य के लिए व्यर्थ और बेकार की चीजें हैं।

जितने भी विचारशील और विकसित बुद्धि के व्यक्ति हैं वे ज्ञान की—साहित्य की, पुस्तकों की आवश्यकता व उपयोगिता समझते हैं। अविकसित और पिछड़े व्यक्तियों की बात जाने दें। उनमें तो कई ऐसे भी हैं, जो मकान और कपड़े को भी आवश्यक नहीं समझते। पर विचारशील होने की गौरव घोषणा के साथ-साथ ज्ञान की पुस्तकों को व्यर्थ बताने का दुस्साहस नहीं किया जा सकता है। उस स्थिति की जरा कल्पना तो करें जब संसार से पुस्तकों का यकायक अस्तित्व ही समाप्त हो जाय और लोगों के पास बोलने, बात करने की सामर्थ्य भर रह जाय। तब ज्ञान की शोधपुनः क ख ग से करनी पड़ेगी और प्रत्येक व्यक्ति को नौसिखिये विद्यार्थी की तरह आवश्यक जानकारियाँ स्वयं जुटानी पड़ेंगी।

अध्ययन का सर्वप्रथम सत्परिणाम सत्वोद्रेक कहा गया है। सत्वोद्रेक अर्थात सात्विक भाव जागृत होना, संसार में कई ऐसे व्यक्ति हुए हैं, जो पुस्तकों के द्वारा अपनी जीवन दिशा को बदलने के लिए प्रेरित और उन्मुख हुए हैं संस्कृत के प्रमुख कवि आचार्य मम्मट ने अपने 'काव्य-प्रकाश' में लिखा भी है—

काव्यं यशसेऽर्थकृते, व्यवहार विदेशिवेतरक्षतये।

सद्यः परिनिवृत्तये कान्ता सम्मततयोपदेशयुजे।।

अर्थात—यश, धन, व्यवहार कुशलता, अमंगल से रक्षा, आनन्द और कान्ता के समान मधुर उपदेश— काव्य के छह प्रयोजन हैं। काव्य अर्थात साहित्य-ज्ञानराशि का संचित कोष—उस कोष का स्वरूप पुस्तकें।

यहाँ स्मरण रखना चाहिए कि साहित्य या पुस्तकों से तात्पर्य चाहे जिस तरह की पुस्तकें नहीं हैं, साहित्य की कसौटी पर वही पुस्तकें खरी उतरती हैं, जिनसे जीवन में आगे बढ़ने के लिए समुचित प्रकाश मिलता हो, जिनसे व्यक्तित्व को विकसित करने के लिए समर्थ आधार प्राप्त होता है।

इन दिनों जीवन उत्कर्ष और व्यक्तित्व विकास के इस महत्त्वपूर्ण आधार की हो रही उपेक्षा का एक प्रमुख कारण यह भी है कि साहित्य का उद्देश्य मनोरंजन या मानसिक विलासिता मात्र रह गया है, लोग अपना खाली समय व्यतीत करने के लिए ही हल्की-फुल्की पुस्तकें पढ़ते हैं। रोमांटिक कहानियों से लेकर जासूसी अपराध कथा की इन दिनों ऐसी बाढ़ आई हुई है कि उनकी चकाचौंध में अच्छा साहित्य होते हुए भी कहीं दिखाई नहीं देता। पुस्तकें कोष हैं और अध्ययन उस कोष का उपयोग नियोजन। इस कोष में मौज-मजा उड़ाने वाली सामग्री रखी जाय अथवा जीवन को सृजनात्मक दिशा देने वाले साधन रखे जायें। कोष निर्दोष हैं, दोषी हैं तो वे तत्व जो इस महत्वपूर्ण और मूल्यवान माध्यम का उपयोग अनुचित कार्यों में, अनुपयुक्त रीति से करते हैं यदि लाभ उठाने की, सत्प्रेरणायें प्राप्त करने की, सत्वोद्रेक जगाने का उद्देश्य रखकर ज्ञानराशि का उपयोग किया जाय तो यह स्वाभाविक ही होगा कि जीवन धन्य हो उठे। गंगा में स्नान कर कोई पाप-ताप से मुक्त हो या न हो पर यह निश्चित है कि ज्ञान गंगा में निमज्जित होकर प्रत्येक व्यक्ति सफल और सार्थक जीवन व्यतीत कर सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ज्ञान वृद्धि के लिए यह कीजिये

पुस्तकें पढ़ते समय अधिकांश पाठकों की दृष्टि इस तरह की नहीं होती कि उससे ज्ञान-साधना का उद्देश्य भी पूरा होता चले। प्रथम तो लोगों में पठन रुचि का ही अभाव होता है। अशिक्षित या अल्पशिक्षित व्यक्तियों में तो पठन रुचि का अभाव क्षम्य भी है क्योंकि उन्हें पढ़ना ही नहीं आता किन्तु पढ़े-लिखे व्यक्तियों द्वारा भी जब अध्ययन के प्रति उपेक्षा भाव बरता जाता है तो विचारशील वर्ग के लिए स्थिति सोचनीय हो जाती है। पढ़े-लिखे व्यक्ति जब तक स्कूल-कॉलेज में रहते हैं तभी तक पुस्तकों से सम्बन्ध रखते हैं। स्कूल-कॉलेज से निकलते ही उपार्जन और यापन के क्षेत्र में प्रवेश करते ही पुस्तकों से सम्बन्ध तोड़े लेते हैं। यद्यपि विद्यार्थी जीवन में भी उनका झुकाव ज्ञान साधना की ओर कम, डिग्री प्राप्त करने की ओर अधिक ही रहता है। फिर भी उन दिनों पुस्तकों से सम्बन्ध रहने का सन्तोष तो किया ही जा सकता है, किन्तु बाद में तो वह स्थिति भी नहीं रहती। पढ़ने-लिखने के बाद लोग नौकरी-पेशे में या रोजगार-धन्धे में इस तरह व्यस्त हो जाते हैं कि उन्हें पुस्तकों का सान्निध्य करने के लिए समय ही नहीं मिलता। कम से कम कहा तो यही जाता है। अन्यथा समय न मिलने की बात मजबूरी नहीं बुनती, पठन रुचि का अभाव ही पुस्तकों से कोई सम्बन्ध न रहने का मुख्य कारण रहता है।

सभी व्यक्तियों में पुस्तकों के प्रति उपेक्षा का भाव रहता हो ऐसी बात नहीं है, पर जो व्यक्ति पढ़ने-लिखने में रुचि रखते भी हैं, उनमें उपयोगी अध्ययन की प्रवृत्ति कम ही होती है। अधिकांश व्यक्ति खाली समय काटने के लिए जैसी हाथ में आ जाती है, वैसी ही किताबें पढ़ने लगते हैं। इस तरह के अध्ययन का उद्देश्य ज्ञानवर्धन नहीं मनोरंजन ही होता है, जिससे कोई लाभ तो नहीं होता है हानि ही अधिक होने की सम्भावना रहती है। पढ़ना एक श्रेष्ठ मनोरंजन है परन्तु उसके साथ कोई उद्देश्य न रखा जाय तो वह मनोरंजन भी अनावश्यक और हानिकारक हो जाता है।

ज्ञानवर्धन के लिए—बौद्धिक क्षुधा की पूर्ति के लिए प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति को नियमित रूप से समय निकालते रहना चाहिए। रेल, मोटरों में सफर करते हुए या खाली समय में पढ़ने के अतिरिक्त स्वतन्त्र रूप से केवल अध्ययन के लिए ही समय लगाने की व्यवस्था रखनी चाहिए। यह इस उद्देश्य से कि ज्ञान वृद्धि जीवन की एक अनिवार्य आवश्यकता है और उस आवश्यकता की पूर्ति उसी तत्परता से की जानी चाहिए, जिस तत्परता से हम अपने जीवन की दूसरी आवश्यकताओं को पूरा करते हैं।

ज्ञान वृद्धि के और भी उपाय हैं परन्तु पुस्तकों से प्रेम, सत्साहित्य का अध्ययन उन सभी उपायों में सर्वोत्तम और सर्वाधिक सुलभ उपाय है। जो भी पुस्तकें ज्ञानवर्धन में उपयोगी हो सकती हैं, उन सभी को खरीद लेना तो हर किसी के लिए सम्भव नहीं है, फिर भी अपने बजट में ऐसी व्यवस्था रखनी चाहिए, जिससे कि घर में एक छोटा-सा घरेलू पुस्तकालय बनता चले। लोग पुस्तकों पर खर्च करना फिजूलखर्ची समझते हैं। यह पुस्तकों का महत्त्व न समझ पाने के कारण ही है। एक कारण यह भी है कि आजकल जिस तरह की पुस्तकों से बाजार भरे पड़े हैं, वे जीवन को सीधा स्पर्श नहीं करतीं। केवल हल्का-फुल्का मनोरंजन देती हैं, जिससे पाठक उसको अनावश्यक और व्यर्थ समझने लगता है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि मनोरंजक पुस्तकों से बाजार भरे होने के कारण श्रेष्ठ साहित्य के महत्त्व को ही नकार दिया जाय। यदि साहित्य के महत्त्व को समझा जाय और उसके माध्यम से अपनी मानसिक क्षुधा की तृप्ति तथा आत्मविकास के प्रकाश की सहज उपलब्धि सम्भव समझी जाय, तो श्रेष्ठ साहित्य का अभाव नहीं रहेगा। अभाव इसलिए नहीं रहेगा कि तब लोग उसी तरह की पुस्तकें खोज-खोजकर पढ़ेंगे, जिनसे कोई दिशा या कोई प्रेरणा मिलती है। एक बार रस आने पर तो फिर दूसरे विषय जो मात्र हल्का-फुल्का मनोरंजन ही देते हैं, फीके लगने लगेंगे। यही नहीं उनकी उपेक्षा भी की जाने लगेगी।

अतएव विचारशील व्यक्तियों को चाहिए कि वे श्रेष्ठ साहित्य का महत्त्व दूसरों को समझायें और पठन रुचि के विकास तथा परिष्कार में सहयोग दें। समझदार व्यक्तियों के लिए भी यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे ज्ञान वृद्धि के लिए अध्ययन की रीति-नीति अपनायें अच्छी पुस्तकें खोज-खोजकर पढ़ें। उनके लिए अपने बजट में एक मद निश्चित रखें । इससे घर में एक छोटा-सा सुन्दर पुस्तकालय बनता चलेगा और उसमें रहने वाले सद्ग्रन्थों का इच्छानुसार सुविधापूर्वक लाभ उठाया जा सकेगा।

अध्ययन के लिए नियमित समय लगाया जाता रहे तो सामान्य और मध्यम वर्ग के लोगों के लिए सभी पुस्तकें खरीदकर पढ़ पाना सम्भव नहीं होता। इसलिए अपने शहर या कस्बे में कोई पुस्तकालय हो तो उसका सदस्य बना जा सकता है। वहाँ से पुस्तकें लाई जा सकती हैं और उनका अध्ययन करते रहा जा सकता है। यह भी एक उपाय हो सकता है कि अपने मित्रों और परिचितों का ऐसा स्वाध्याय मण्डल बना लिया जाय, जो पुस्तकें खरीदने के लिए अपनी आमदनी का एक अंश खर्च करते रहने के लिए सदैव तत्पर रहें। व्यक्ति कोई पुस्तक खरीदने से पहले अपने मित्रों-स्वाध्याय मण्डल के सदस्यों से परामर्श कर ले कि यह पुस्तक किसी दूसरे सदस्य के पास तो नहीं है। यदि है तो उस पुस्तक को छोड़कर दूसरी पुस्तक खरीदी जाय। इस प्रकार उस मित्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मण्डल के सभी सदस्य नई-नई पुस्तकें खरीदते रह सकते हैं और आपस में बदल-बदलकर पढ़ते रह सकते हैं। इसमें एक-दूसरे से परामर्श करने, परस्पर विचार-विमर्श करने की ही सुविधा नहीं रहती बल्कि प्रत्येक सदस्य के लिए अपने द्वारा खर्च की जाने वाली रकम से कई गुना रकम की पुस्तकों का लाभ मिलता रह सकता है।

पढ़ते समय एकाग्रता और स्थिर चित्त होना चाहिए सरसरी तौर पर पढ़ने से ज्ञान वृद्धि का प्रयोजन अधूरा ही रह जाता है। उथले चित्त से पढ़ने पर जो पढ़ा जाता है, वह भी दिमाग से उतर जाता है। इसलिए किताब के पन्ने पलटते भर न रहा जाय बल्कि जो कुछ पढ़ा जाय, उसे स्मृति में रखने, उस पर विचार करने और विवेक जगाने का प्रयत्न किया जाय। प्रेरणाप्रद साहित्य के अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण लाभ अपने विवेक को जागृत होने, विचारशीलता का विकास होने के रूप में देखा जा सकता है, जिससे भले-बुरे का ज्ञान, उचित-अनुचित का भेद और नीर-क्षीर विवेक की विश्लेषण बुद्धि निखरती है। अध्ययन किसी आध्यात्मिक साधना, ध्यान पूजा से कम महत्त्वपूर्ण या कम गम्भीर नहीं है।

ज्ञान वृद्धि के लिए पढ़ते समय यदि नोट्स लेने और पढ़े गये का सार लिखते चलने की आदत डाल ली जाय तो उससे न केवल पढ़ी गई बात स्मृति में जम जायेगी वरन् अपने पास जानकारियों का एक कोष ही संचित होता चला जायेगा, पढ़ी गई प्रेरणाओं या जानकारियों को स्मृति में बनाये रखने के लिए ऐसा कोई प्रयास नहीं किया जाता, तो अध्ययन ढालू छत पर बरसने वाले पानी की तरह जमीन पर बह जायेगा। इसलिए पढ़ने में समय लगाने के साथ-साथ लगाये गये उस समय को सार्थक करने के लिए भी ठोस व्यवस्था बनाये रखना चाहिए।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि ज्ञान संसार की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में यहाँ तक कहा है कि ज्ञान की उपासना मेरी ही उपासना है। जीवन को महान व श्रेष्ठ बनाने में समर्थ उस ज्ञान को प्राप्त करने के हजार उपाय हो सकते हैं। प्रकृति निरीक्षण, चिन्तन, मनन, अन्वेषण, पर्यटन, सत्संग और परामर्श जैसे कई उपाय हो सकते हैं। अध्ययन उनमें से सर्वश्रेष्ठ है और उसके लिए ज्ञान की महिमा और गरिमा को अनुभव करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को समय निकालते रहना चाहिए।

विद्यालयों के पूरक—पुस्तकालय

प्रस्तुत स्कूली पढ़ाई का दृष्टिकोण साक्षरता संवर्धन और बहुमुखी सामान्य ज्ञान कराना है। इससे बौद्धिक क्षेत्र के विस्तार का लाभ सोचा गया है। अपने दृष्टिकोण से वह योजना भी विचारशीलों ने चलाकर ठीक ही किया है। पर उसमें छात्र एक प्रकार से घाटे में रहता है। उसे भूगोल और इतिहास का सामान्य ज्ञान तो मिल जाता है। पर वह अभाव बना ही रहता है, जिसके आधार पर वह जीवन में आये दिन आने वाली ज्वलन्त समस्याओं का स्वरूप एवं कारण समझ सके और वर्तमान उलझी हुई परिस्थितियों में उपयोगी समाधान प्राप्त कर सके। न वह शरीर की दुर्बलता और रुग्णता का कारण समझ पाता है और न अपनी बुद्धि से आहार-विहार में परिवर्तन करके अपने बलबूते रोग मुक्त हो सकता है। उसे डॉक्टर की सलाह के लिए दौड़ पड़ता है। वहाँ भी दवा देकर भगा दिया जाता है। स्वास्थ्य के सम्बन्ध में क्या सावधानी बरतनी चाहिए ? दैनिक क्रिया-कलाप में अनन्तर करके उस गुत्थी को स्थाई रूप से कैसे सुलझाना चाहिए ? इतना सब बताने के लिए डॉक्टर के पास भी अवकाश नहीं होता। ऐसी दशा में दवाएँ लेते रहने पर भी टिकाऊ सुधार की कोई बात बन नहीं पड़ती।

यह बात उस निर्णय के सम्बन्ध में भी है जो शिक्षा के सम्बन्ध में स्कूल जाने के साथ ही लक्ष्य निर्धारित करना चाहिए था। बड़ा साहब बनने के अतिरिक्त न अभिभावकों के मन में कोई कल्पना रहती है और न छात्र ही यह सोच पाता है कि परिस्थितियों को देखते हुए दूसरा विकल्प क्या निर्धारित करें ? फलतः अँधेरे में ढेला फेंकते रहने पर जब उपयुक्त समय पर उसका अभीष्ट परिणाम नहीं निकलता, तब दोनों ही वर्ग खीजते और हैरान होते हैं।

विवाह को ही लें। लड़की-लड़के किशोर होते ही अभिभावकों को शादी की जल्दी पड़ती है। बच्चों के मन में भी विवाह का अर्थ सीधा कामोत्तेजना का रसास्वादन होता है। इसके साथ ही हजार प्रकार की जिम्मेदारियाँ जुड़ी होती हैं, उनसे अनजान रहने के कारण पति-पत्नी में से दोनों ही पक्ष हैरानी में पड़ जाते हैं और आरम्भ से ही उत्पन्न हुआ मनोमालिन्य तालमेल न बिठा पाने के कारण बढ़ता ही जाता है। ऐसे विवाहों को काम-चलाऊ तो कह सकते हैं पर सफल नहीं। इस सन्दर्भ में मार्गदर्शन कौन करे ? यह सारा विषय लज्जा का एवं गोपनीय समझा जाता है वस्तुतः वह वैसा है नहीं।

जीवन के साथ जुड़े हुए ऐसे असंख्यों प्रश्न हैं जिनकी रूपरेखा, परिणति और प्रतिक्रिया से ऊँचे दर्जे के छात्र तक अपरिचित रहते हैं और समस्याएँ सामने आने पर ठोकरें खाते हैं। तब उन्हें सूझ पड़ता है कि स्कूलों में पढ़ा तो बहुत कुछ पर उन प्रसंगों का मार्गदर्शन न पुस्तकों में मिला, न अध्ययन द्वारा मौखिक रूप से। ऐसी दशा में उन्हें खेद होता है कि आजीविका का न सही, स्वयं द्वारा उत्पन्न की हुई और जीवन में साथ जुड़ी हुई समस्याओं का स्वरूप समझने का अवसर मिल जाता तो भी उतने खर्चीले श्रम की कुछ उपयोगिता रहती।

वर्तमान समय में न तो शिक्षा प्रणाली बदली जा सकती है और न अध्यापकों या अभिभावकों से आशा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की जा सकती है कि जोश से भरे-पूरे और होश में अधूरे इन बालकों को उलझे युग की उलझी समस्याओं का समुचित समाधान प्रस्तुत कर सकें।

शक्य उपाय एक ही हो सकता है कि विद्यालयों की तरह पुस्तकालयों का भी एक स्वतंत्र तंत्र संचालित किया जाय, जिसमें जीवन की, समाज की, राष्ट्र की और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों से अवगत कराने वाली सर्वसुलभ सामग्री उपलब्ध कराई जाय और उसका संचालक अवैतनिक या वैतनिक ऐसा हो, जो प्रसुप्त अध्ययन रुचि वाले पढ़े-लिखों तक वह सामग्री पहुँचाने के साथ-साथ पढ़ने की अभिरुचि और प्रसंगों का महत्त्व भी समझा सकें इन दिनों का प्रचलन तो ऐसा है, जिसमें परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त अध्ययन को या तो नमस्कार कर लिया जाता है या मनोरंजन भर के लिए उल्टी-सीधी पुस्तक जब-तब पढ़ ली जाती है।

सरकारी प्रकाशन संस्थाएँ हैं तो और उनमें पुस्तकें भी बहुत छपती रहती हैं पर वे होती ऐसी हैं, जिनके द्वारा विशेषज्ञ विशेष प्रकार का ज्ञान अर्जित कर सकें। बाजारू पुस्तक विक्रेता भी आमतौर से जनता की माँग के अनुरूप कुरुचिपूर्ण साहित्य ही छापते बेचते रहते हैं। इसलिए बाजार में तलाश करने पर ऐसा साहित्य कम ही मिलता है, जो व्यक्ति निर्माण का, समाज निर्माण का उपयुक्त मार्गदर्शन कर सके। राष्ट्र निर्माण के संदर्भ में यह एक महती आवश्यकता है कि जैसा भी कुछ हम अपने जनसमुदाय को, समाज को बनाना चाहते हैं, उसके अनुरूप साहित्य लिखने, प्रकाशित करने और बेचने से लेकर पुस्तकालयों तक पहुँचाने का सुनियोजित तंत्र खड़ा किया जाय।

पढ़ों को पढ़ाने और बिना पढ़ों को सुनाने के लिए यह योजना विचारपूर्वक चल सकती है। बिना पढ़ों के लिए टेपरिकॉर्डर माध्यम से ऐसे टेप कराये जा सकते हैं जो देश की ज्वलन्त समस्याओं पर तर्क, तथ्य, प्रमाण एवं उदाहरणों समेत सारगर्भित विचार बहुभाषी भाषा देश के लिए उन्हीं को क्षेत्रीय भाषा में उपलब्ध करा सकें।

सामान्य पुस्तकालय जहाँ-तहाँ हैं पर वे अपनी-अपनी विलक्षणताओं से भरे हैं। सार्वजनिक पुस्तकालयों में ज्ञानवर्धक कम और मनोरंजक साहित्य अधिक मिलता है। स्कूल कॉलेजों की लाइब्रेरियों में कक्षाओं के विषयों में सहायता करने वाली पुस्तकें मिलती हैं। उनके लिए सरकारी सहायता का प्रावधान है पर उसके बदले भी कमीशनबाजी के फेर में अत्यधिक मँहगा और कूड़ा-करकट स्तर का साहित्य मिलता है और वह खरीदे जाने के दिन से लेकर अंत तक उन्हीं अलमारियों में रखा रहता है, जिसमें रखा गया था।

होना यह चाहिए कि व्यक्ति और समाज के सम्मुख उपस्थित प्रस्तुत समस्याओं पर प्रकाश डालने पर उद्देश्यपूर्ण सस्ता साहित्य उपलब्ध कराया जाय। यह कार्य सरकार करे या व्यक्ति अथवा संस्थाएँ, यह आगे की बात है पर हमें भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि विचार क्षेत्र में फैली हुई अगणित भ्रान्तियों का निराकरण कर सकने वाला और प्रगतिशीलता का, नैतिकता का समर्थक साहित्य पढ़ों के लिए पुस्तकों के रूप में तथा बिना पढ़ों के लिए टेप रूप में तैयार कराया जाय। ऐसे चित्र-पोस्टर भी छपें और इस प्रस्तुतीकरण के उपरान्त यह प्रबन्ध भी हो कि उसे घर-घर जाकर समझने-समझाने का सिलसिला चल पड़े। ज्ञान क्षेत्र के अभाव की पूर्ति इसी प्रकार हो सकेगी।

पुस्तकालयों का महत्त्व समझा जाय

अद्भिःगात्राणि शुध्यति, मनः सत्येन शुध्यति।

विद्यातपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।।

अर्थ—शरीर जल से, मन सत्य से, विद्या तप से शुद्ध होती है और बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है। यह निर्विवाद सत्य है।

हमारे जीवन के सारे कार्य बुद्धि पर निर्भर हैं। यदि बुद्धि ज्ञानपूर्ण है तो उसके जीवन में सफलता और अज्ञान पूर्ण बुद्धि से असफलता ही हाथ लगेगी। अतः हमें ज्ञान की नितान्त आवश्यकता है।

ज्ञान का अभाव मानव को दानव की कोटि में खड़ा कर सकता है। नर व अन्य जीवों में फिर क्या अन्तर है ? सृष्टि के निर्माण में मानव ही एक ऐसा प्राणी है, जिसे बुद्धि रूपी अमूल्य निधि भगवान से प्राप्त हुई। अतएव मनुष्य को ज्ञान के द्वारा बुद्धि का परिमार्जन करके भगवान प्रदत्त निधि का सदुपयोग करना चाहिए।

ज्ञान हमें विचारों से प्राप्त होता है। मनुष्य का विकास जिस क्षेत्र में होता है उसके विचार भी वैसे ही होते हैं। धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति अपने विचार द्वारा सूक्ष्म जगत का ज्ञान प्राप्त करने में लगते हैं और भौतिक एवं तामसी व्यक्ति सांसारिक मोहपाश की खोज में ही आनन्द लेते रहते हैं।

उत्कृष्ट जीवन बिताने के लिए सत्संग की आवश्यकता पड़ती है और सत्संग की खोज विवेकपूर्ण की जानी चाहिए क्योंकि सत्संग की ओट में आज आडम्बर अधिक हैं। अविवेकी व्यक्ति धर्मान्धता में पड़कर सही निर्णय नहीं ले पाता।

वास्तव में सत्संग वह है, जो हमें उत्कृष्ट जीवन बिताने की प्रेरणा दे सके। आज मनुष्य का जीवन इतना व्यस्त है कि सत्संग का लाभ भी इने-गिने व्यक्ति ही उठा पाते हैं। इसके अतिरिक्त अपने निवास स्थान से दूर यदि श्रेष्ठ महान व्यक्तियों का सत्संग प्राप्त होता है, तो वहाँ तक पहुँचने में भी हर व्यक्ति को कोई न कोई बाधा पड़ ही जाती है। दूर-दूर के सन्त, महात्माओं के दर्शन, वाणी-विचार प्राप्त करने का सौभाग्य हर किसी को नहीं मिल पाता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गरीब व्यक्ति धन से गरीब होने के कारण अपने मन को भी मारकर बैठ जाता है। बिना धन के साधन उपलब्ध नहीं होते। अत: अनेकों कारणों से सत्संग हर व्यक्ति कि लिए दुर्लभ है।

इन तमाम परिस्थितियों को देखते हुए जीवन-निर्माण चरित्र-निर्माण के लिए दूसरा साधन स्वाध्याय रह जाता है। अच्छे विचार वाली पुस्तकों के अध्ययन से धनहीनता, अपाहिजता, व्यस्तता सभी प्रकार की स्थिति में लाभ मिल सकता है।

हमें जिन महापुरुषों के विचार पढ़ना हो, वैसी ही पुस्तक लेकर उनके विचारों का आनन्द ले सकते हैं। तुलसीदास की रामायण, विनयपत्रिका, कृष्ण भगवान की गीता लगभग हर धार्मिक व्यक्ति के पास रहती है।

इन धार्मिक पुस्तकों के अध्ययन से मानसिक शांति मिलती है। भले ही हम कृष्ण व तुलसी के दर्शन न कर सकें पर उनके विचार अमर हैं, जिनसे आने वाला युग सदैव लाभ उठाता रहेगा।

वास्तव में सद्ज्ञान से भरी हुई पुस्तकें देवताओं के समान हैं, जो दिव्य विचारों से हर व्यक्ति को लाभान्वित करती हैं। ये दिव्य पुस्तकें मानवीय जीवन में प्रकाश स्तम्भ की भाँति ज्ञान की ज्योति देकर सद्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती रहती हैं।

संसार में बड़े-बड़े राष्ट्र, भवन धराशायी होते रहते हैं पर उत्कृष्ट विचारों से भरे ग्रन्थ सदैव जीवित रहते हैं सदियों पूर्व आदिकाल के ऋषि-महर्षियों की अमर वाणी वेदों के माध्यम से आने वाले युग-युगान्तर तक मानव को सन्देश दे रही है व देती रहेगी। जो शाश्वत सत्य, चिरन्तन लक्ष्य बनाने में सहयोगी है।

सत्संग के लिए पुस्तकें भी हर कोई अर्जित नहीं कर सकता। स्वाध्याय की रुचि रखते हुए भी बहुत-से व्यक्ति असमर्थ हो जाते हैं। इन्हीं बातों को दृष्टिगत रखते हुए पुस्तकालयों का महत्त्व बढ़ जाता है।

जिस तरह अन्य कितने ही महत्त्वपूर्ण कार्य सामूहिकता के आधार पर चलाये जाते हैं। इसी तरह पुस्तकालयों की व्यवस्था भी सामूहिक आधार पर होकर अनेकों को लाभान्वित करते हैं।

पुस्तकालयों का लाभ समानता से हर व्यक्ति अपनी सुविधानुसार ले सकते हैं, पर पढ़ने की, स्वाध्याय की रुचि, लगन होनी चाहिए। लगन होने पर मनुष्य को बिना स्वाध्याय के चैन नहीं पड़ता और वह किसी न किसी लगन के कारण स्वाध्याय का आनन्द लेकर ही छोड़ता है।

पुस्तकालय बनवाना भी एक पुण्य कार्य समझना चाहिए। जिस प्रकार दानी पुरुष किसी की यादगार में दान करते हैं या कुआँ, प्याऊ या मन्दिर, धर्मशालायें बनवा देते हैं। ठीक इसी प्रकार पुस्तकालयों की भी आवश्यकता को देखते हुए दान के माध्यम से स्मृति के रूप में इनकी स्थापना होनी चाहिए अथवा सहकारिता का आधार लेकर हजारों हाथों से दो-दो, पाँच-पाँच रुपये का आंशिक दान जा सकता है। यही लिया दान कौड़ी-कौड़ी आंशिक से विस्तृत रूप में परिवर्तित होकर एक अच्छा पुस्तकालय तैयार हो सकता है।

पुस्तकालय में पुस्तकों का चयन लोकोपकार की दृष्टि से करना चाहिए। सामाजिक जीवन एक सुव्यवस्थित, उत्कृष्ट रूप में बदल जाये। इस प्रकार का साहित्य पुस्तकालय में हो।

पुस्तकालय स्थापित करने के बाद दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य समाज, व्यक्ति, परिवारों में पढ़ने की रुचि पैदा करना है। जो कर्मचारी पुस्तकालय में व्यवस्था हेतु रखे जायें। यह उनका परम कर्त्तव्य हो जाता है कि वे आगन्तुक पाठकों के मन में ऐसी रुचि पैदा कर दें कि दूसरे दिन वह अपने पड़ौसी को भी प्रेरित करके साथ में लायें। हमारे पुस्तकालय में भी महापुरुषों की जीवनियाँ बालकोपयोगी, समाज सुधारों, नैतिक चरित्र के उठाने वाले होने चाहिए क्योंकि अधिकांश व्यस्त मनुष्य पुस्तकों के माध्यम से मनोरंजन द्वारा अपने श्रम को दूर करता है। उनके लिए शिक्षाप्रद उपन्यास पढ़ने में मनोरंजन और परिणाम में नैतिकता देने वाले होंगे।

ये नये ढंग के पुस्तकालय व उनके कर्मचारी दायित्वपूर्ण होने चाहिए। तभी ज्ञान-दीप के उजाले से प्रभावित करके समाज में परिवर्तन ला सकते हैं।

पुस्तकें हमारी गुरु हैं तो पुस्तकालय शिक्षणालय या देवालय हैं। जहाँ बुराइयाँ परिवर्तित होकर अच्छा रूप दृष्टिगोचर हो जाता है।

लोकमान्य तिलक, महात्मागाँधी आदि महापुरुषों से प्रेरणा मिलती है कि वे कितने स्वाध्यायी थे, जिन्होंने जेलों में भी अपने अमूल्य समय का सदुपयोग किया। और नित्यकर्म में स्वाध्याय, मनन आवश्यक समझा। तिलक ने 'गीता रहस्य' माँडले की जेल में ही लिखी। जो स्वाध्याय से तप कर निखर जाता है, वही लेखनी चलाने में भी सामर्थ्यवान हो सकता है।

पुस्तकालयों के महत्त्व की एक शृंखला वाचनालय भी हैं। जहाँ दैनिक, पाक्षिक, मासिक पत्र सब प्रकार के मिलते हैं । एक व्यक्ति सब प्रकार के समचार नहीं मँगा सकता और आज के युग में हर व्यक्ति को समचार पत्र इतना आवश्यक हो गया है, जितना आवश्यक कि भोजन, पानी। सारे संसार के समचार प्राप्त करना बहुत जरूरी है। संसार में कहाँ-कहाँ, क्या-क्या गतिविधियाँ हो रही हैं ? किस प्रकार उनमें लाभ ले सकते हैं या होने वाली हानियों से सुरक्षा कर सकते हैं ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अतः वाचनालयों की भी स्थापना पुस्तकालय के एक कक्ष में होनी चाहिए। जहाँ धार्मिक, नैतिक, राजनैतिक, सामाजिक पत्रिकायें व दैनिक समाचार पत्र आते रहें वह जनता को देश-विदेश की गतिविधियों से जानकारी पुस्तकालयों की सच्ची सफलता स्वाध्याय में रुचि उत्पन्न करने से है। पुस्तकालय में एक समिति होनी चाहिए जो पुस्तकालय की सच्ची प्रगति की ओर सदा जागरूक रहे व चल पुस्तकालय का रूप भी लेकर घर-घर पुस्तकें पहुँचाना व निश्चित अवधि पर वापस मँगाने का प्रबन्ध करें। यह रुचि उत्पन्न करने का एक साधन है जैसे विदेशी मिशनरियाँ करती हैं। उसी प्रक्रिया को पुस्तकालय आन्दोलन के लिए प्रयुक्त कर सेवा भावी और ज्ञानयज्ञ के भागीदार जब भी सेवा क्षेत्र में महती भूमिका निभा सकते हैं।

पुस्तकालय—ज्ञान देवता के देवालय

ज्ञान-संवर्द्धन की उत्कट अभिलाषा ने मानव विकास का द्वार खोल दिया। मानव-सृष्टि के प्रारम्भ में ही आवेष्ठनगत प्रतिक्रिया के फलस्वरूप ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा पैदा हुई। प्राचीन युग में प्राप्त-ज्ञान को दूसरों तक पहुँचाने तथा संरक्षण प्रदान करने की जिम्मेदारी गुरु सम्भालते थे। पीछे कुल-गोत्र के आविर्भाव के साथ पाठ्यसंरक्षण के रूप में पुस्तकालय का उदय हुआ। ज्ञान के संचित-भण्डार पुस्तकालय कहलाये।

प्राप्त-ज्ञान की सुरक्षा पुस्तकों से ही सम्भव है। मौखिक-ज्ञान कुछ समय के बाद उपयुक्त पात्र के अभाव में समाप्त हो सकता है, इसलिए उसे पुस्तकों में लिपिबद्ध करना आवश्यक था। हमारी पुस्तकें महापुरुषों के चिन्तन एवं मनन की उपज हैं। रचनाकार की साकार प्रतिमा उनका साहित्य है। साहित्य की सुरक्षा पुस्तकालय द्वारा होती है।

ज्ञान की अनन्त धाराओं का समावेश पुस्तकालय में देखने को मिलता है। राजनीति, धर्मनीति, साहित्य, विज्ञान एवं नीतिशास्त्र और समाजशास्त्र आदि की अनेक धारायें बह रही हैं। पुस्तकालय में विविध धारायें आकर मिलती हैं, इसलिए सभी ज्ञान-पिपासुओं की प्यास बुझती है।

किसी भी देश की संस्कृति एवं सभ्यता का मापदण्ड वहाँ का साहित्य है। प्राचीन भारत में तक्षशिला, नालन्दा, विक्रमशिला एवं औदन्तपुरी के पुस्तकालय ज्ञान-विज्ञान के केन्द्र थे, जहाँ विश्व के कोने-कोने से लोग आकर ज्ञान प्राप्त करते थे। यही कारण था कि भारत को जगतगुरु की प्रतिष्ठा प्राप्त थी।

भौतिक एवं आध्यात्मिक प्रगति का आधार हमारा पुस्तकालय है। समय के अनुरूप ज्ञान-भण्डार से उपयोगी सामग्रियों को लेकर आगे बढ़ सकते हैं। आज जो भी देश प्रगति की दौड़ में आगे आया है, उसमें पुस्तकालय का महत्त्वपूर्ण सहयोग है। विज्ञान और टैक्नॉलौजी के क्षेत्र में रूस सबसे आगे बढ़ा है, इसका सारा श्रेय वहाँ के पुस्तकालयों का है। संसार में सबसे अधिक ३,८१,००० लोक पुस्तकालय रूस में हैं।

पुस्तकालयों में हम अपने पूर्वजों एवं महामानवों के दर्शन कर सकते हैं। भौतिक-शरीर के रूप में नहीं, बल्कि विचार के रूप में हजारों वर्ष बाद आज भी उसी रूप में वे हमें मिलेंगे। चार्ल्स किंगजली ने कहा है—"वे मानव जो कभी इस लोक में थे और हमसे हजारों मील दूर थे, इन छोटे-छोटे पृष्ठों में हमसे बोलते हैं। हमें जगाते हैं। हमें आश्वासन देते हैं एवं बन्धु सदृश्य हमारे सम्मुख अपना हृदय खोल देते हैं।

पुस्तकालय हमारा मार्गदर्शन एवं प्रेरणा का केन्द्र स्थल है। वहाँ जाने से हमें प्रेरणा मिलती है तथा लगता है कि कोई हमें लक्ष्य की ओर चलने के लिए इंगित कर रहा है। लक्ष्य के अभाव में हम अपने अनमोल जीवन को खो न दें, इसका दिशा-बोध पुस्तकालय कराता है।

पुस्तकालय हमारा गुरु है, जो अन्धकार को दूर कर प्रकाश भर देता है। ज्ञान के अभाव का नाम अज्ञान है। प्रकाश का न रहना ही अन्धकार है। गुरु की कृपा की तरह पुस्तकालय भी हममें प्रकाश भरकर अज्ञान को मिटा देता है।

पुस्तकालय हमारी माँ भी है। माता शैशव-काल में स्नेह और दुलार से हमारी अँगुली पकड़कर चलना सिखलाती है। पुस्तकालय भी हमें प्यार देता है तथा क्रमिक-बौद्धिक विकास द्वारा उन्नति के उच्च शिखर पर खड़ा कर देता है।

पुस्तकालय सच्चा देवालय है। यहाँ मूर्तियों की पूजा नहीं होती। बल्कि ज्ञान-मन्दिर के रूप में विचारों की पूजा होती है। ज्ञान-पिपासु भक्त पुस्तकालयों में जाकर अपने विचारों की दुनिया में खो जाते हैं और सच्चा आत्मिक सुख प्राप्त करते हैं। ज्ञान-मन्दिर में प्रतिष्ठापित ज्ञान-देवता की पूजा-अर्चना करके आत्म-सुख की जितनी अनुभूति यहाँ की जा सकती है, उतनी अन्यत्र नहीं।

पुस्तकालय हमारी आध्यात्मिक एवं राष्ट्रीय एकता को कायम रखने में सहायक हैं। राष्ट्र-प्रेम एवं विश्व-प्रेम का पाठ पुस्तकालयों में पढ़ा जाता है। गेटे, शेक्सपीयर, गोर्की एवं शैली हमारे आत्मीय जैसे लगते हैं। ऋषियों की वाणी अमृत वर्षाती मिलती है तथा वहाँ राष्ट्र-प्रेम की वंशी सुनाई पड़ती है।

सामाजिक चेतना एवं पुनर्जागरण में नव चेतना का संचार पुस्तकालयों के माध्यम से हो सकता है। सामाजिक-क्रान्ति की भूमिका पुस्तकालय की पृष्ठभूमि में तैयार की जाती है। देश एवं मानव-जीवन का सही चित्र यहाँ देखने को मिलता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुस्तकालय लोगों को पुस्तकों से प्रेम करना सिखलाता है। पुस्तकों के प्रति सही दृष्टिकोण बनाकर राष्ट्र की सेवा करने का रहस्य पुस्तकालय बतलाता है। किसी देश के प्रकाशन एवं प्रसारण को देखकर उस देश की जनभावना को देखा जा सकता है। प्रकाशन एवं प्रसारण के क्षेत्र में रूस सबसे आगे है। वहाँ प्रति मिनट ७५,००० पुस्तकों का प्रकाशन होता है तथा ८१ भाषाओं में ९,९०० दैनिक समाचार-पत्र निकलते हैं।

विश्व की गति बड़ी तेजी से बदलती जा रही है। दिनानुदिन वैज्ञानिक, राजनैतिक एवं सामाजिक परिवर्तन होते जा रहे हैं। विश्व-हलचल से जनता को अवगत कराते रहने का माध्यम पुस्तकालय है। दैनिक-पत्रों तथा पत्रिकाओं के माध्यम से विश्व की गतिविधियों से जनता को परिचित करा सकते हैं।

जन-शिक्षा एवं प्रौढ़-शिक्षा का मूल आधार हमारा पुस्तकालय है। भारत की अधिकांश जनता अज्ञानता के अन्धकार में भटक रही है। विश्व के समस्त प्रौढ़-अनपढ़ों की एक तिहाई संख्या हमारे देश की है। डेनमार्क, स्वीडेन तथा पोलैण्ड जैसे छोटे देशों को पुस्तकालय के माध्यम से प्रौढ़-साक्षरता की दिशा में जादू जैसी सफलता मिली है।

समय के सदुपयोग एवं मनोरंजन का माध्यम पुस्तकालय है। रंग-बिरंगी पुस्तकों के साथ हमारा मनोरंजन हो सकता है। मिलन-मन्दिर के रूप में आपस में मेल-मिलापकर मन को हल्का बना सकते हैं। अवकाश के क्षणों में पुस्तकालय का उपयोग लाभदायक है। सिनेमा जैसे गन्दे चित्रों से लोगों का ध्यान पुस्तकालय ही मोड़ सकता है।

विद्यार्थियों के लिए पुस्तकालय अति उपयोगी है। विद्यालयों में प्राप्त ज्ञान का संरक्षण पुस्तकालय में मिल पाता है। "खाली मस्तिष्क शैतान का घर है।" कहावत के अनुसार अपने मस्तिष्क को शैतान बनने से पुस्तकालय बचा सकता है। दिल और दिमाग की क्रियाशीलता पुस्तकालय में बनी रहती है।

ऐसा कहा जाता है कि पुस्तकालय से सामान्य जनता का कोई सम्बन्ध नहीं। यह तो पढ़े-लिखे विद्वानों की चीज है। यह एक प्रकार की मानसिक गुलामी है। पुस्तकालय खेत में काम करने वाले श्रमिकों के लिए भी जरूरी है। सामान्य जनता को भी तो मार्गदर्शन पुस्तकालय के माध्यम से प्राप्त होता है।

ऐसी दलीलें दी जाती हैं कि पुस्तकालय केवल प्रौढ़ पढ़े-लिखे लोगों के लिये हैं, बालकों तथा प्रौढ़ अनपढ़ों के लिए नहीं। इस प्रकार की बातें बेबुनियाद हैं। पुस्तकालय हर वय: क्रम को ध्यान में रखते हुए, उपयोगी बनाया जा सकता है। बच्चों में कहानी तथा सुन्दर-सुन्दर रंग-बिरंगी पुस्तकें पढ़ने और देखने की स्वाभाविक अभिरुचि होती है। इसे दबाना ठीक नहीं। बल्कि बालोपयोगी सुन्दर पुस्तकों की एक छोटी-सी लाइब्रेरी का विभाग कायम कर देना उपयुक्त है।

देश की वर्तमान स्थिति को देखते हुए लोक-पुस्तकालय के अलावा 'डाक-पुस्तकालय' 'चल-पुस्तकालय' तथा 'झोला-पुस्तकालय' की स्थापना करनी होगी। लोकसेवी व्यक्तियों को 'झोला-पुस्तकालय' जैसे पवित्र कार्य को हाथ में लेना चाहिए।

पुस्तकालय-संचालन में पुस्तकालय अध्यक्ष के व्यक्तित्व तथा योग्यता का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अध्ययनशील और सौम्य-प्रकृति के पुस्तकालय अध्यक्ष लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। पुस्तकालय को उपयोगिता एवं अनिवार्यता को ध्यान में रखते हुए घर-घर इसकी स्थापना होनी चाहिए। अपनी ज्ञान-पिपासा की तृप्ति तथा आत्मसन्तोष की प्राप्ति के लिए भी पुस्तकालयों को जीवन का प्रधान अंग बनाना चाहिए।

रसोईघर की तरह पुस्तकघर भी जरूरी

स्थूल शरीर के पोषण और उदर-भरण की चिन्ता सबको स्वाभाविक ही रहती है और उस प्रयोजन के लिए हर परिवार का एक रसोईघर, अन्न भंडार होता है। लेकिन क्या मात्र पेट भरना ही पर्याप्त है ? मानसिक क्षुधा, अन्त:करण की प्यास की इतनी उपेक्षा क्यों ? यह प्रश्न हर व्यक्ति को स्वयं से पूछना चाहिए और यदि अन्त:करण तथा मस्तिष्क की आवश्यकता उपेक्षणीय न लगे, तो फिर रसोईघर की तरह हर घर में पुस्तकघर की, घरेलू पुस्तकालय की व्यवस्था भी आवश्यक समझनी चाहिए। अन्न-भंडार की ही तरह ज्ञान भंडार को भी गृह-व्यवस्था का अभिन्न अंग समझना चाहिए। जो चेतना का, चिन्तन का, दृष्टिकोण का, अन्त:करण का, भाव सम्वेदनाओं का कोई मूल्य नहीं समझते, जिनके लिए धन और विलास ही सब कुछ है, उन्हें ज्ञान सम्पदा का महत्व बताया, समझाया जा सकना कठिन है, पर जिन्होंने यह समझ लिया है कि मानवी सत्ता, चिन्तन और चेतना के स्तर पर ही समुन्नत अथवा पतित होती है—सम्पन्न या दरिद्र बनती है, उन्हें यह स्मरण भर दिलाना पर्याप्त है कि शरीर की तरह आत्मिक चेतना की भी कुछ भूख होती है और उसका साधन जुटाना पेट भरने की सामग्री जुटाने से कम नहीं वरन् कुछ अधिक ही आवश्यक है। यह तथ्य समझ लेने पर घर-घर में घरेलू पुस्तकालयों की आवश्यकता स्पष्ट होने में देर नहीं लगेगी। जिस प्रकार भोजन अपनी हैसियत और अपनी रुचि के अनुसार किया जाता है, उसी प्रकार घरेलू पुस्तकालय की भी व्यवस्था में आर्थिक स्थिति तथा रुचि का आकर्षण, ये दो आधार होते हैं। सुरुचि और सूझ-बूझ हो, तो कम खर्च में ही पुष्टिकर, प्राणवान भोजन की व्यवस्था करली जाती है। उसी तरह समझदारी से काम लेने पर थोड़े पैसों में ही सत्साहित्य से भरे-पूरे घरेलू पुस्तकालय की व्यवस्था सम्भव है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कूड़े-कचरे की तरह किस्सा-कहानियों की—धर्म ढकोसलों की—बेकार पुस्तकें हर घर में पाई जा सकती हैं, पर ऐसे विचारशील परिवार विरले ही मिलेंगे, जिनके घर के हर सदस्य का भावनात्मक परिष्कार कर सकने वाले साहित्य को प्रयत्न करके तलाश किया हो। अच्छी पुस्तकें खरीद ली जायें और उन्हें उपेक्षापूर्वक किसी मेज, अलमारी में पटक दिया जाय, तो उतने भर से भी कुछ काम नहीं चलता। उन्हें आवश्यक महत्त्व देने के लिए सुसज्जित स्थान पर—सुसज्जित रूप में रखना—उनका महत्त्व समझाना और स्नेह, दुलार के साथ पढ़ने या सुनने के लिए सहमत करना भी एक बड़ा काम है।

निम्नगामी मानसिक हलचलें उत्पन्न करने वाले—ओछे, उथले साहित्य में तो हर किसी की सहज रुचि होती है। पानी नीचे की ओर तो अपने आप बहता है, पर यदि उसे ऊपर लाना हो तो कई तरह के साधन जुटाने और श्रम करने की आवश्यकता पड़ेगी। ठीक यही बात कुरुचि को सुरुचि की ओर मोड़ने के सम्बन्ध में भी है। विवेकशीलता उत्पन्न करने वाला साहित्य आमतौर से नीरस समझा जाता है और उसे पढ़ने में अरुचि रहती है, इस ओर रुचि उत्पन्न करना—उपयोगी पुस्तक खरीद कर घर में रख देने से भी अधिक कठिन काम है। पैसा तो किसी प्रकार खर्च किया भी जा सकता है, पर यदि खरीदी पुस्तकों को किसी ने पढ़ा ही नहीं, तो घर में बेकार का कूड़ा-करकट बढ़ा और उद्देश्य कुछ भी पूरा न हुआ। अस्तु, जहाँ ज्ञान मन्दिर की उपयोगिता समझी जाय, वहाँ यह जिम्मेदारी भी मानी जाय कि सारी व्यवहार कुशलता का प्रयोग करके उन्हें पढ़ने के लिए प्रोत्साहन भी दिया जायेगा और इसकी देखभाल भी रखी जायगी कि वैसा हो भी रहा है या नहीं।

अब गुरुकुल रहे नहीं—धर्मोपदेश के नाम पर निरर्थक विडम्बनाएँ चलती और भ्रम फैलाती रहती हैं। जीवनोपयोगी शिक्षा के लिए घर के लोगों को किसी विद्यालय में पढ़ने भेजा जाय, यह भी सम्भव नहीं। ऐसे सुयोग्य शिक्षक अपने घर में आकर रहने लगें, यह भी असम्भव है। फिर ऐसे सूक्ष्मदर्शी प्रभावशाली लोग हैं भी कहाँ जो व्यक्ति की, समाज की वर्तमान समस्याओं का सही और सामयिक समाधान प्रस्तुत कर सकें। इन सब कठिनाइयों का समाधान घरेलू पुस्तकालय की स्थापना से ही सम्भव हो सकता है। जीवित या स्वर्गीय महामानवों की अति महत्त्वपूर्ण शिक्षा किसी भी समय—कितनी ही देर प्राप्त करते रहने—उनके साथ सत्संग करते रहने का उपाय एक ही है कि उनके ग्रन्थों को ध्यानपूर्वक—श्रद्धापूर्वक पढ़ा जाय और वह मनन किया जाय कि उस कसौटी पर अपनी स्थिति कितनी खरी उतरती है। साथ ही यह भी मनन किया जाय कि उत्कृष्टता अपनाने के लिए क्या कुछ किया जा सकता है ?

बड़े-बड़े धर्म-ग्रन्थों से घर की शोभा बढ़ती है। आध्यात्मिक और दार्शनिक ग्रन्थ-विशिष्ट लोगों के लिए, विशिष्ट प्रयोजनों के लिए लिखे हैं। परिवार के लोगों को उनके स्तर के अनुरूप उनकी समस्याओं का समाधान करने वाली सरल पुस्तकें ही उपयोगी हो सकती हैं। बछड़े की पीठ पर हाथी का हौदा नहीं लादा जा सकता। बच्चों, किशोरों, महिलाओं, छात्रों तथा काम-काजी, तरुणों की उनकी वर्तमान स्थिति में जो समस्याएँ सामने हैं, उनका व्यावहारिक हल बताने वाली पुस्तकें ही घरेलू पुस्तकालय के काम की हो सकती हैं। बड़े धर्म ग्रन्थों के प्रति श्रद्धा तो रखी जाय, पर साथ ही यह भी समझा जाय कि वे परिवार के सदस्यों का सामयिक एवं व्यावहारिक मार्गदर्शन नहीं कर सकते। ऐसी दशा में उन्हें पढ़ने का आग्रह किया जाय और वह कार्यान्वित होने भी लगे तब भी अभीष्ट प्रयोजन सिद्ध न होगा। अस्तु, घरेलू पुस्तकालय की स्थापना-पढ़ने के लिए प्रोत्साहन का क्रम बनाने के साथ उपयोगी पुस्तकों के चुनाव का भी अति सतर्कतापूर्वक ध्यान रखा जाना चाहिए।

इस प्रयोजन के लिए कुछ तो पैसा खर्च होना ही है। उसे अन्न, शाक, दूध, दवा, कपड़ा, साबुन स्तर का अनिवार्य रूप से आवश्यक दैनिक खर्च मानकर ही चलना चाहिए। कभी उत्साह, कभी उपेक्षा का उतार-चढ़ाव उसमें नहीं चलना चाहिए। यह दैनिक और अनिवार्य खर्च है ? इसको स्मरण रखने और आदत का अंग बनाने के लिए यह विधि अपनाई जानी चाहिए कि घर के किसी पवित्र स्थान पर, पूजा-स्थल पर ज्ञानघट स्थापित किया जाय और इस मद को जितना महत्त्व दिया गया हो उतना पैसा उस पेटी में नियमित रूप से डाला जाय। खुले पैसों की वैसे तो अब किल्लत नहीं रही, पर यदि उसमें झंझट लगता हो तो उतने पैसे की एक छोटी पर्ची उसमें डाली जा सकती है और उन्हें हर महीने नोट-रुपयों में बदला जा सकता है। इस राशि से हर महीने या कई महीने का पैसा इकट्ठा करके एक साथ कई नई पुस्तकें खरीदी जा सकती हैं।

आरम्भिक स्थापना के अवसर पर कुछ अधिक खर्च हो सकता है। इसके लिए अलग से एक सुन्दर कपाट बन सकता हो और उस पर ज्ञान मन्दिर का छोटा बोर्ड लग सकता हो तो घर में आने वाले अन्य लोगों को भी इसकी उपयोगिता समझने का अवसर एवं प्रोत्साहन मिल सकता है। आरम्भ में कुछ अधिक पुस्तकें खरीदने से ही तो यह स्थापना सम्भव होगी, इसलिए उसे रेडियो, टेलीविजन, जेवर, सिलाई की मशीन, बिजली का पंखा जैसी उपयोगी वस्तुएँ खरीदने की तरह ही आवश्यक कार्य मानकर साहसपूर्वक कुछ राशि खर्च कर देनी चाहिए। मुहल्ले का, गाँव का पुस्तकालय स्थापित करना भी इस प्रयोजन की पूर्ति का एक महत्त्वपूर्ण अंग है, उसके लिए भी उतना ही उत्साह, त्याग एवं प्रयत्न करना आवश्यक है जितना कि घरेलू पुस्तकालय के लिए। इस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सामूहिक पुस्तकालय से तो माँगकर भी अपने परिवार की आवश्यकता पूरी की जा सकती है। घरेलू पुस्तकालय का सचमुच महत्त्व समझने वाले उसकी उपेक्षा कभी नहीं कर सकते।

आदर्शवादी पुस्तकालयों की स्थापना हो

शरीर की भूख अन्न से तृप्त होती है, तो मस्तिष्क की क्षुधा ज्ञान से तृप्त होती है। ज्ञान प्राप्ति के यद्यपि कई स्रोत हैं परन्तु उनमें सर्वप्रमुख स्वाध्याय के माध्यम से ही प्राचीन काल से लेकर अब तक हुए महापुरुषों, विचारकों और सन्तजनों का सान्निध्य सुख व लाभ प्राप्त होता है। इन दिनों जबकि आस्था का संकट बढ़ता जा रहा है, तब तो यह सान्निध्य प्राप्त करना और उपलब्ध कराना और भी आवश्यक है। अच्छे विचार, उत्कृष्ट मान्यताएँ और आदर्शवादी आस्थाएँ जगाने का कार्य अच्छे स्तर के साहित्य से बड़ी सरलतापूर्वक पूरा हो सकता है।

इन दिनों शिक्षा का भी काफी प्रसार हुआ है। पहले की अपेक्षा लोग अब शिक्षा को अधिक महत्त्व देते हैं और विचारशील व्यक्ति अपने खाली समय को पुस्तकें पढ़ने में ही बिताना अधिक पसन्द करते हैं। प्रश्न उठता है कि लोग पढ़ते हैं, पुस्तकों में रुचि लेते हैं तो फिर आस्था संकट के निवारण में कोई सहायता क्यों नहीं मिलती ? इसका एक ही उत्तर है कि आजकल वैसे साहित्य का अभाव है, जो लोगों में सत्प्रेरणाएँ उत्पन्न कर सकें तथा सद्विचारों को जगा सके। आमतौर पर लोग घटिया, सस्ती और सरलता से प्राप्त होने वाली पुस्तकें ही पढ़ते हैं और केवल मनोरंजन के लिए ही पुस्तकों का उपयोग करते हैं। सुलभता की दृष्टि से वैसी ही पुस्तकें उपलब्ध होती हैं, अच्छे साहित्य का अभाव होने के कारण लोगों की रुचि उस ओर जाग्रत नहीं होती।

विचार क्रान्ति का उद्देश्य पूरा करने के लिए ज्ञान यज्ञ के अभियान में जहाँ अच्छी पुस्तकों के प्रति अभिरुचि जगाने को अपने कार्यक्रम का एक अंग बनाना चाहिए, वहीं उन्हें सरलता से उपलब्ध कराने की व्यवस्था भी बनानी चाहिए। प्रथम तो अच्छी पुस्तकें ज्यादा प्रकाशित ही नहीं होतीं और होती भी हैं तो अधिकांश व्यक्ति अपनी कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण उन्हें खरीद नहीं पाते। एक व्यक्ति अधिक से अधिक १००-५० पुस्तकें खरीदकर पढ़ सकते हैं। सामान्य आर्थिक स्थिति वाले व्यक्ति के लिए इससे अधिक खर्च उठा पाना सम्भव नहीं है। १००-५० पुस्तकें जितनी कीमत से प्राप्त होती हैं, उतनी कीमत में मुश्किल से २०-२५ पुस्तकें खरीदी जा सकती हैं क्योंकि अच्छी पुस्तकें प्रायः अपेक्षाकृत मँहगी होती हैं। इतनी पुस्तकों के अध्ययन से प्राप्त होने वाला ज्ञान अधूरा और एकांगी ही होगा। बौद्धिक विकास की आवश्यकता और ज्ञानार्जन की पिपासा इतनी सी पुस्तकों द्वारा कैसे पूरी तथा तृप्त हो सकती है ?

अतः उचित यही है कि स्वाध्याय के लिए, ज्ञानार्जन के लिए, सद्विचारों की प्रेरणा प्राप्त करने के लिए तथा जीवित और दिवंगत महापुरुषों का विचार सान्निध्य प्राप्त करने के लिए सामूहिक व्यवस्था की जाय। वह व्यवस्था पुस्तकालयों के रूप में ही हो सकती है। भारत की आत्मा हजारों वर्षों के अज्ञानान्धकार से उबरी है। उसे भ्रान्तियों से निकालने और यथार्थता अपनाने के लिए जीवित तथा दिवंगत मनीषियों का साहित्य उपलब्ध कराना चाहिए, यह सान्निध्य उन मनीषियों द्वारा उनकी संचित उपलब्धियों की पुस्तकों के रूप में सुरक्षित भण्डार से ही मिल सकता है।

वैसे भी किसी तत्त्वदर्शी, मनीषी, ऋषि, महामानव या अध्यवसायी महापुरुष से कुछ सुनना-सीखना चाहें, उनसे मिलने और वार्तालाप करने की इच्छा रखें तो यह कठिन ही है। ऐसे व्यक्ति अत्यधिक व्यस्त रहते हैं और शंका-समाधान, परामर्श जैसे कार्यों के लिए उन्हें अवकाश नहीं रहता। फिर जो लोग दिवंगत हो चुके उनसे भेंट करना तो असम्भव ही है। लेकिन पुस्तकालय वह सुविधा उपलब्ध कराते हैं कि किसी भी जीवित या दिवंगत विभूति से किसी भी समय, कितनी भी देर तक वार्तालाप किया जा सकता है।

इस तरह की व्यवस्था कोई भी धनीमानी व्यक्ति सरलता से कर सकता है। लोग पुण्य-परमार्थ के लिए कुँए खुदवाते हैं, अन्न क्षेत्र खोलते, मन्दिर बनवाते हैं। उन्हें यदि थोड़ा समझाया और दिशा दी जावे तो यह आवश्यकता भी सरलतापूर्वक पूरा हो सकती है और स्मरण रखा जाना चाहिए कि पुस्तकालयों का महत्त्व किसी देव मन्दिर से कम नहीं वरन् अधिक ही है। परमात्मा ज्ञानस्वरूप है विचार और प्रेरणा के रूप में ही वह मानवीय अन्तःकरण में प्रकाश उत्पन्न करता है। इसलिए जहाँ उस ज्ञान का अमृत कोष पुस्तकों के रूप में उपलब्ध हो, उसे देव मन्दिर या ज्ञानस्वरूप परमात्मा की प्रतिष्ठा का शुभ स्थान ही समझना चाहिए।

प्रतिमाओं वाले देव मन्दिर में बुराइयाँ भी पनप सकती हैं। उनमें कई स्थानों पर अन्धविश्वास, धोखाधड़ी, दगाबाजी और अन्यान्य अनैतिक क्रियाकलाप भी चलते देखे जाते हैं। पुस्तकालयों में ऐसी विकृतियाँ आने की कोई सम्भावना नहीं रहती। दूसरे मन्दिर बनवाने के वर्षों बाद वे टूट-फूटकर गिर भी जाते हैं और कोई देखभाल करने वाला न हो तो उनका महत्त्व ही समाप्त हो जाता है। लोग यह भूल जाते हैं कि यहाँ कोई देव मन्दिर था। परन्तु पुस्तकालय नष्ट नहीं होते। उनकी इमारतें गिर जायें तो भी ज्ञान मन्दिर की आत्मा पुस्तकों का अस्तित्व नष्ट नहीं होता। एक बार पुस्तकालय की स्थापना हो जाने पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी वह चिरकाल तक प्रकाश तथा प्रेरणा प्रदान करता रहता है तथा अपने निर्माणकर्त्ता की यश गाथा गाता रहता है।

लोग धर्म-कर्म की इच्छा होने पर कई तरह के पुण्यप्रद कार्य करते हैं। इन कार्यों से उन्हें यत्किंचित आत्म-शांति और आत्म-सन्तोष मिलता होगा। किन्तु इस युग की आवश्यकता को देखते हुए पुस्तकालयों की स्थापना को ही सबसे अधिक पुण्यप्रद कार्य समझा जाना चाहिए। दूसरी स्थापनाओं से प्राप्त होने वाला पुण्यफल तो फिर भी स्पष्ट नहीं है, किन्तु पुस्तकालय एक ऐसी स्थापना है, जिससे आत्मोन्नति और लोकसेवा का पुण्य निश्चित रूप से मिलता रहता है। जिनके पास साधन हैं और पुण्य-परमार्थ में जिनकी रुचि है, उन्हें चाहिए कि वे पुस्तकालयों की स्थापना को प्राथमिकता दें। जमीन, पुस्तकें, फर्नीचर, मकान, कमरे आदि साधनसम्पन्न व्यक्ति थोड़ी-सी उदारता बरतकर उपलब्ध करा सकते हैं।

जहाँ आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न व्यक्ति अधिक संख्या में नहीं हैं, वहाँ कई लोग मिलकर ऐसी व्यवस्था बना सकते हैं। पुस्तकालयों की स्थापना और विकास में इस बात का बराबर ध्यान रखना चाहिए कि उनमें संख्या बढ़ाने अथवा शोभा, सुसज्जा के लिए जैसी भी पुस्तकें, जहाँ-कहीं से भी प्राप्त हो जायें, उसे इकट्ठा न कर लिया जाय। जरा-सी खटाई जैसे बड़े-बड़े बर्तनों में भरे दूध को भी खराब कर देती है, वैसे ही गन्दी, बेहूदी, बेतुकी और अन्धविश्वास फैलाने वाली एक भी पुस्तक किसी आदर्शवादी पुस्तकालय की गरिमा नष्ट कर डालती है। यह सोचना भी निरर्थक है कि लागों की माँग के अनुसार पुस्तकें पत्रिकाएँ मँगाई जायें, तो अधिक लोग पुस्तकालय के सदस्य बनेंगे। यह मानकर चला गया तो किया कराया सब गुड़-गोबर हो सकता है। स्मरण रखा जाना चाहिए कि विचार क्रान्ति के लिए पुस्तकालयों की स्थापना लोगों की रुचि के आधार पर नहीं करनी है, बल्कि उनका उद्देश्य लोकरुचि का परिष्कार करना है। इस नीति को ध्यान में रखकर पुस्तक का चयन करना चाहिए।

पुस्तकालयों की स्थापना करने के साथ उसके लिए पुस्तकालयाध्यक्ष भी होना चाहिए, जो जनसम्पर्क बढ़ाये, लोगों की अभिरुचि जगाये तथा उन्हें छाँट-छाँटकर ऐसी पुस्तकें दें, जिन्हें पढ़कर उपयोगी ज्ञान का प्रकाश मिल सके, व्यक्तित्व विकसित हो सके और लोकमंगल के लिए कुछ करने का उत्साह प्राप्त कर सके। सामान्य ज्ञान वृद्धि वाला साहित्य भी यदि पुस्तकालय में रखा जाय तो वह परिष्कृत और प्रामाणिक होना चाहिए।

इस तरह के पुस्तकालयों की स्थापना में देव मन्दिरों के निर्माण से अधिक लगन और उत्साहपूर्वक प्रयत्न करना चाहिए। प्रत्येक गाँव में जिस प्रकार किसी मन्दिर का होना नगर ग्राम की शोभा माना जाता है, वैसा ही मान और महत्त्व पुस्तकालयों को मिलना चाहिए।

पुस्तकालय का महत्त्व देवालय जितना

धन की तरह ही ज्ञान की भी आवश्यकता है। कम धन से काम चल सकता है पर कम ज्ञान से नहीं। हमें अधिकाधिक विज्ञ होना चाहिए, ताकि सामयिक तथ्यों से परिचित हो सकें और जो ज्ञान भण्डार उपलब्ध हैं, उसका लाभ उठा सकें। यह प्रयोजन आवश्यक विषयों की पुस्तकें ही पूरा कर सकती हैं। हमें उद्योगी और क्रिया कुशल होना चाहिए, साथ ही अध्ययनशील भी। संसार के शत-प्रतिशत देशों के नागरिक अध्ययनशील होते हैं। जापान जैसे छोटे-से देश में समाचार-पत्र इतनी अधिक संख्या में छपते और पढ़े जाते हैं, जिसकी जानकारी प्राप्त करके हमें भारी आश्चर्य होता है। यही बात वहाँ के पुस्तक-लेखन, प्रकाशन एवं विक्रय व्यवससाय के सम्बन्ध में है। वह अन्न-वस्त्र के बाद तीसरे नम्बर का उद्योग है। इससे प्रतीत होता है कि प्रयत्नशील लोग ज्ञान सम्पदा से सुसम्पन्न होने की कितनी अधिक आवश्यकता समझते हैं और उसकी पूर्ति में कितना अधिक उत्साह रखते हैं ?

प्रगति पथ पर हमें भी चलना है। जीवन की असंख्य समस्याओं का समाधान खोजना है और गुत्थियों को सुलझाते आगे बढ़ना है। वैयक्तिक और सामाजिक प्रगति के लिए हमारा ज्ञान-वैभव बढ़ा-चढ़ा होना चाहिए, हमारी रुचियों में अध्ययन को प्रमुखता मिलनी चाहिए। ज्ञान सम्पदा के अभाव में सर्वतोमुखी सुसम्पन्नता की आशा नहीं की जा सकती। चिन्तन की प्रखरता अध्ययन की सहायता से ही सम्भव है। उसी उपलब्धि के सहारे समाज विकास का आधार बन सकता है। ज्ञान सम्पदा की दृष्टि से पिछड़े बने रहने पर तो हम सचमुच ही पिछड़े ही रहेंगे, भले ही धन-वैभव जैसी दूसरी चीजें बड़ी मात्रा में ही क्यों न मिल जायें ?

विज्ञान के साथ-साथ हर क्षेत्र का विकास हुआ है और उपयोगी जानकारियों का दायरा बढ़ा है। उससे अपरिचित रहकर हम पिछड़े बने रहते हैं और अपनी ही हानि करते हैं। आज के प्रगतिशील युग में सामाजिक, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय विषयों की जानकारी भी उतनी ही आवश्यक हो गई है जितनी कि शरीर, मस्तिष्क, परिवार एवं व्यवसाय का संतुलन बनाये रहने के लिए सामयिक दिशाधाराओं की प्रवीणता।

अपने युग में सुविधा-साधनों का अभाव नहीं। ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र का भी असीम विस्तार हुआ है। इसमें से बहुत कुछ अति महत्त्वपूर्ण है। उससे अनजान रहकर हम दूसरों की तुलना में पिछड़े हुए ही रह जाते हैं। जहाँ सड़क, बिजली, स्कूल, सिंचाई के साधन आदि नहीं हैं, उन देहातों में पिछड़ापन अन्यत्र की तुलना में कहीं अधिक रहता है। ठीक उसी प्रकार जीवन के विभिन्न क्षेत्रों और समाजगत विभिन्न हलचलों से अपरिचित व्यक्ति भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निश्चित रूप से पिछड़ेपन से भ्रमित रह जाता है और उस अभाव के कारण व्यक्ति ही गये-गुजरे स्तर का नहीं होता वरन् पग-पग पर अज्ञानजन्य कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ता है।

निरन्तर अध्ययन की आवश्यकता और उपयोगिता को स्कूली शिक्षा के समतुल्य ही समझा जाना चाहिए। और व्यक्तिगत तथा सामाजिक रूप से यह प्रयत्न होना चाहिए कि इस उपयोगिता से अधिकाधिक लोग परिचित हों, प्रयत्नशील रहें तथा आवश्यक साधन सरलतापूर्वक उपलबध करें।

सीधा तरीका तो यह है कि योजनाक्रम की तरह अध्ययन साधन जुटाने के लिए भी बजट में काफी गुंजाइश रखी जाय और उपयोगी साहित्य खरीदने में कृपणता न की जाय। संसार के प्रगतिशील देशों में हर व्यक्ति अपने नितान्त आवश्यक खर्चों में ज्ञान-संवर्धन के लिए पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ आदि खरीदने के लिए नियमत रूप से धनराशि खर्च करता है। उन पुस्तकों को खरीदने वाला स्वयं पढ़ता है और उस परिवार के सभी लोग उस सामग्री से लाभ उठाते हैं। धीरे-धीरे घर में एक अच्छा-खासा पुस्तकालय बनता जाता है। किसी की सम्पन्नता एवं सुरुचि देखनी हो तो उसके वस्त्र, उपकरण, फर्नीचर, मकान आदि को देखना ही पर्याप्त नहीं समझा जाता वरन् यह भी देखा जाता है कि उस परिवार का पुस्तकालय कितना सम्पन्न और किस स्तर का है ? व्यक्ति की सुरुचि का पता लगाने का यह पैमाना सही है कि उसकी अध्ययन रुचि को समझा जाय और वह कितना समय तथा धन उस प्रयोजन में लगाता है, इसे तलाश किया जाय।

पुस्तकालयों की स्थापना एवं अभिवृद्धि उतनी ही आवश्यक मानी जानी चाहिए, जितनी स्कूलों को खुलवाने और उन्हें साधन-सम्पन्न बनाने की चेष्टा। सकूलों से तो बच्चे ही लाभ उठा सकते हैं। पर पुस्तकालय से तो समूचे वयस्क समाज को प्रगतिशील, परिपक्व एवं परिष्कृत बनने का अवसर मिलता है। चरित्र दृष्टिकोण एवं व्यक्तित्व के निर्माण में इन पुस्तकालयों की ही प्रधान भूमिका रह सकती है, जबकि स्कूली शिक्षा बालकों को सामान्य जानकारियाँ ही दे सकने में समर्थ होती हैं। इस दृष्टि से पुस्तकालयों की उपयोगिता विद्यालयों से भी अधिक सिद्ध होती है। बच्चों को सुयोग्य बनाने के लिए शिक्षण व्यवस्था पर हमारा पूरा ध्यान रहना चाहिए, किन्तु यदि वयस्कों की ज्ञान सम्पदा को बढ़ाने की उपेक्षा की गई तो शिक्षा अधूरी और एकांगी हो जायगी। हमें अपूर्णता को अपर्याप्त मानना चाहिए और समग्र शिक्षा प्रसार के लिए विद्यालयों के समतुल्य ही पुस्तकालयों की भी आवश्यकता अनुभव करनी चाहिए।

निजी पुस्तकालय बनाना, उसके लिए बड़ी गुंजाइश निकालना सुसम्पन्न देशों के लिए सरल है। पर अपने देश की दरिद्रता के देखते हुए वह प्रयास सर्वसुलभ नहीं हो सकता। निर्वाह की अनिवार्य आवश्यकता ही जब पूरी तरह जुट नहीं पाती तो फिर पुस्तकें कैसे खरीदी भी जायें ? वह तब जब कि इस प्रकार के अध्ययन का महत्व ही लोगों को विदित नहीं है। अरुचि के रहते तो थोड़ा-सा समय एवं पैसा खर्च करना भी भारी पड़ता है। फिर उसके लिए नियमित खर्च कैसे किया जा सकेगा ? यदि रुचि होती हो और महत्त्व समझा गया हो तो अन्य खर्चों में कटौती करके भी इस आवश्यकता को पूर्ति के लिए बहुत कुछ किया जा सकता था, पर आज की स्थिति में बड़े पैमाने पर वैसा कर सकना कठिन दीखता है। जिनमें रुचि है तथा सुविधा भी, ऐसे लोग अपने घरेलू पुस्तकालय बनायें और इसे अपनी अति महत्त्वपूर्ण आवश्यकता की पूर्ति ही नहीं प्रतिष्ठा का प्रश्न भी बनायें। इसके लिए उन्हें प्रोत्साहित किया ज़ाना चाहिए। पर व्यापक समाधान के लिए तो पुस्तकालय स्थापना आन्दोलन को ही हाथ में लेना होगा।

पुस्तकों के सम्पर्क का लाभ अपने रुचिकर विषय के अनवरत अध्ययन के रूप में समझा जा सकता है। ज्ञान-संवर्धन का द्वार सर्वत्र खुला है और उससे आजीवन लाभान्वित होते रहने का स्कूली क्षेत्र में भी प्रतिबन्ध नहीं है। एक विषय में एम. ए. कर लेने के बाद भी अन्यान्य विषयों में एम. ए. करते रहा जा सकता है और जब तक जीना हो तो तब तक विविध विषयों को पढ़ते रहा जा सकता है। फिर निजी रुचि के विषय में पढ़ते रहने का अवसर तो और भी अधिक है। धन संचय कितना रुचिकर होता है, इसे सभी जानते हैं पर उससे भौतिक लाभ ही उठाये जा सकते हैं। ज्ञान संचय के फलस्वरूप व्यक्तित्व के विकास और दृष्टिकोण के परिष्कार का मूल्यांकन यदि किया जा सके तो प्रतीत होगा कि यह कितनी बड़ी उपलब्धि है ? पैसा तो यहीं पड़ा रह जाता है पर अध्ययन के आधार विकसित मानसिक चेतना जन्म-जन्मान्तरों तक संस्कार रूप में साथ चली जाती है और उसके कारण मनुष्य जन्मजात रूप से बुद्धिमान पैदा होता है। इस जन्म में छूट गई वह इच्छा बनी रहने के कारण अगले जन्म में उपलब्ध हो सके, ऐसा आधार बन जाता है।

सुरुचिपूर्ण अध्ययन एक उच्चस्तरीय मनोरंजन है। उसमें योगाभ्यास जैसी एकाग्रता और आनन्द की अनुभूति होती है। स्वाध्याय को योगाभ्यास का सीधा, सरल और प्रत्यक्ष लाभप्रद एक आधार माना गया है और शास्त्रकारों ने उसे दैनिक क्रियाकृत्यों का अविच्छिन्न अंग बनाने का निर्देश दिया है। ज्ञान सम्पदा का महत्त्व समझने वाले हर विचारशील व्यक्ति को अपने अनुभव से ही यह विदित रहता है कि सुरुचिपूर्ण अध्ययन वस्तुत: इतना सुखद एवं सत्परिणाम दायक है कि उसे अतिमहत्त्वपूर्ण दैनिक कार्यों में सम्मिलित करके रखा ही जाना चाहिए और उसके लिए नित्य ही समय निकाला जाना चाहिए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

२.२५ आत्मोत्कर्ष का आधार—ज्ञान

हमारा प्रथम प्रयास जनसाधारण को सुनिश्चितपूर्ण अध्ययन की उपयोगिता और आवश्यकता समझाना होना चाहिए और जिज्ञासु की आकांक्षा उभारनी चाहिए। इतना बन पड़े तो भारतीय प्रजाजनों को मानसिक दृष्टि से सुविकसित बन सकने का अवसर मिल सकेगा। यह वस्तुतः बहुत बड़ी उपलब्धि है। स्वस्थ शरीर और अर्थ संतुलन का जितना महत्त्व है, उससे कम मानसिक परिपक्वता का नहीं है। अध्ययन से हमारे ज्ञान नेत्र खुलते हैं अन्यथा आदमी कूपमंडूक ही बना रहता है। सीमित चिन्तन सीमित रहने पर मनुष्य की मानसिक स्थिति संकीर्ण बनी रहती है, वह एकपक्षीय पूर्वाग्रहों से घिरा रहता है। बहुमुखी जानकारियाँ होने से तुलनात्मक दृष्टि से विचार कर सकना और अधिक दूरदर्शी निष्कर्ष निकाल सकना सम्भव होता है। इस प्रकार की मानसिक प्रौढ़ता का महत्त्व किसी भी दृष्टि से कम नहीं है। यदि यह तथ्य जनसाधारण को समझाये जा सकें तो ज्ञान-संवर्धन की आकांक्षा जाग्रत होगी, अध्ययन के लिए व्याकुलता बढ़ेगी और उसकी प्रतिक्रिया व्यक्ति और समाज का बौद्धिक स्तर ऊँचा उठने के कारण अत्यन्त सुखद होगी।

वह आकांक्षा जितनी उभरे, उतनी ही श्रेयस्कर है। स्कूली शिक्षा को अनिवार्य बनाने की बात विज्ञ समाज के सामने है। ठीक इसी प्रकार की मान्यता विचारशील वर्ग की होनी चाहिए कि अध्ययन की पुण्य प्रक्रिया स्कूली पढ़ाई तक ही सीमाबद्ध होकर न रह जाय वरन् वह सुसंस्कृत आदत बनकर जीवन सहचरी की तरह आनन्द देती रहे।

स्वरूप और परिणाम प्रत्यक्ष न दीख पड़ने पर भी परोक्ष रूप से मानवी प्रकाश की इतनी प्रक्रिया है कि सुरुचिपूर्ण अध्ययन को सर्वतोमुखी प्रगति का अति महत्त्वपूर्ण आधार माना जा सकता है और उसे लोक रुचि का विषय बनाने के लिए अधिक से अधिक प्रयत्न करने को लोकमंगल का प्रमुख आधार मानकर चला जा सकता है। इसके लिए विचारशील वर्ग का प्रयास प्राणपण स्तर का होना चाहिए।

रुचि जागृति के अतिरिक्त इस दिशा में दूसरा प्रयास होना चाहिए, पुस्तकालयों की सर्वत्र स्थापना का प्रबल प्रयास । इसके लिए हर खाते-पीते आदमी को घरेलू पुस्तकालय बनाने और उसके लिए थोड़ी धनराशि पारिवारिक बजट में सम्मिलित करके रखना चाहिए। औसतन एक घण्टे में चालीस पृष्ठ पढ़े जा सकते हैं। अति व्यस्त व्यक्ति को कम से कम एक घण्टा और सामान्य कामकाजी लोगों को दो घण्टे रोज स्वाध्याय में लगाना चाहिए। इस गति से एक वर्ष में अति व्यस्त लोगों को प्रायः १४-१५ हजार और सामान्य लोगों को २९-३० हजार पृष्ठ पढ़ने चाहिए। औसत पुस्तक १५० पृष्ठ की मानी जाय तो एक वर्ष में ही व्यस्त व्यक्ति १०० और सामान्य लोग २०० पुस्तकें पढ़ लेंगे। इनकी लागत औसतन २०० एवं ४०० रुपया वार्षिक होती है। यह राशि उनके लिए तो बहुत भारी है, जो उसका महत्त्व ही नहीं समझते, पर जो समझते हैं वे न केवल अपनी वरन् पूरे परिवार को प्रकाश देने वाली अति महत्त्वपूर्ण आवश्यकता की पूर्ति के लिए इतना खर्च उठा सकते हैं। खाते-पीते आदमियों के लिए औसतन एक रुपया रोज इस प्रयोजन के लिए खर्च कर डालना कोई बड़ी बात नहीं है। सामान रखने के स्टोरों और अलमारियों को बरीकी से तलाश किया जाय तो पता लगेगा कि उनमें फिर कभी काम आने की बात सोचकर आधे से अधिक कबाड़खाना जमा किया होता है। घरों में दैनिक जीवन को नितान्त उपयोगी वस्तुएँ ही सुरक्षित रखी जायें और बेकार की चीजें दूसरे जरूरतमन्दों को बेचदी या उपहार स्वरूप दे दी जायें तो अपना घर भी साफ हो सकता है और दूसरे जरूरतमन्दों को भी इसका लाभ मिल सकता है। इस प्रकार स्थान बचाने और 'कबाड़ा' हटाने की नीति अपना ली जाय तो आज जितना स्थान अपने पास है, उतने में ही एक घरेलू पुस्तकालय की स्थापना सम्भव हो सकती है।

इस स्थापना के सत्परिणाम लिखकर या कहकर तो नहीं समझाये जा सकते पर प्रयोग एवं अनुभव द्वारा इसे आसानी से समझा जा सकता है। इस आधार पर अपनी सुरुचि घर भर में उत्पन्न की जा सकती है। परिवार के पढ़े-लिखे सदस्य अवकाश के समय का उपयोग पढ़ने में खर्च करने की आदत बना लें और जो लोग बिना पढ़े हैं, उन्हें सुनाने का नियम, तो पूरा परिवार सुसंस्कृत बनने की दिशा में अग्रसर होता रह सकता है। इसका परिणाम कुछ ही दिनों में इस प्रकार सामने आ सकता है कि घर में विचारशीलता बढ़ी, पारिवारिक सहयोग, सद्भावना का वातावरण बना और गुण-कर्म स्वभाव में शालीनता का विकास-क्रम चल पड़ा। इस लाभ को तराजू पर तौलकर या आँखों से दृश्य रूप में तो नहीं दिखलाया जा सकता पर सूक्ष्म निरीक्षण से यह सहज ही जाना जा सकता है कि घर-परिवार में उज्ज्वल भविष्य के निर्माण के एक उपयोगी आधार की स्थापना हो गई। परिवार के लोगों के लिए भोजन, वस्त्र, चिकित्सा, शिक्षा, शादी, आजीविका के साधन जुटाने में जिस प्रकार प्रयत्नशील रहा जाता है, उसी प्रकार चिन्तन में उत्कृष्टता के समावेश की भी यदि आवश्यकता समझी जा सके तो हर विचारशील को अपने परिवार के लिए सद्भाव संवर्द्धन की दृष्टि से पुस्तकालय की स्थापना भी अनिवार्य प्रतीत होती होगी और इसके लिए कुछ पैसा खर्च करना एवं स्थान घेरना किसी भी प्रकार भारी न पड़ेगा।

संसार भर के महामनीषियों का चिन्तन एवं अनुभवों का सार उनकी पुस्तकों में मौजूद है। वे अब इस संसार में नहीं रहे तो भी उनका सत्संग घण्टों तक अपनी सुविधा के किसी समय तथा कितनी ही देर तक करते रह सकना सम्भव है ? यह लाभ अति उच्चस्तर का है,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिसका मिल सकना असम्भव लगता है। पर पुस्तकों के आधार पर इस असम्भव को भी सम्भव बनाया जा सकता है। प्राचीन काल की परिस्थितियों और उस समय के समाधानों को इतिहास-पुराण पढ़कर समझा जा सकता है। पर समय तो बदलता है, तदनुसार परिस्थितियाँ भी बदलती हैं और उनके समाधान में नये स्तर, नये आधार पर खड़े किये जाते हैं। हर युग के अपने मनीषी होते हैं और वे अपने सामाजिक मार्गदर्शन एवं समाधान प्रस्तुत करते हैं। वस्तुत: उन्हीं की उपयोगिता भी है। रामायणकाल, महाभारतकाल, सामन्तकाल, पराधीनता की विवशता का काल अपने ढंग का था और उस समय की परिस्थितियों के अनुरूप उस समय के विचारकों एवं मूर्धन्य व्यक्तियों ने समाज का मार्गदर्शन किया था। उसमें से बहुत कुछ जानने, समझने और अनुभव एकत्रित करने की दृष्टि से उपयोगी है। इतने पर भी वह सब कुछ आज की स्थिति में फिट नहीं बैठता और उन उपायों को अपनाकर आज की समस्याओं का सुलझाया जा सकना सम्भव नहीं हो सकता।

उन दृष्टाओं के विचारों को ध्यानपूर्वक सुनना, समझना कितना आवश्यक है, उसे गहराई में उतर सकने वाला ही व्यक्ति सरलतापूर्वक समझ सकता है। यह लाभ अपने समय के उन पुरुषों के विचार सम्पर्क में रहकर ही पाया जा सकता है। पुस्तकें इस आवश्यकता की पूर्ति करती हैं। दूरस्थ स्थानों में रहने वाले व्यक्तियों के पास पहुँचकर उनसे सम्पर्क साधना कितना व्यय साध्य है, इसे हर कोई जानता है। फिर वे लोग अपने महत्त्वपूर्ण कार्यों में इतने व्यस्त होते हैं कि विभिन्न विषयों पर सत्संग, परामर्श के लिए उनका अधिक समय उपलब्ध नहीं किया जा सकता। अपने लिए भी अवकाश का समय जब-तब ही मिलता है। उसी समय घर बैठे उन पुरुषों का सत्संग परामर्श मिल सके, यह बात भी नहीं बनती। इन सब कठिनाइयों का हल उन महामानवों की पुस्तकें अपनी सुरक्षा के समय पढ़ लेने में मिल सकता है। पुस्तकें मात्र स्वस्थ्य मनोरंजन ही नहीं हैं वरन् उनमें वे प्रेरणाएँ भी भरी पड़ी हैं, जिन्हें अपनाकर हमारे लिए परिष्कृत जीवन जी सकना, समस्याओं को सुलझा सकना एवं प्रगति पथ पर अग्रसर होना सम्भव हो सकता है। यह सारा प्रयोजन सत्साहित्य का अवगाहन करने की प्रक्रिया अपनाये बिना और किसी भी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता।

संसार के महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों का अपना अध्ययन कब होता है और वे अत्यधिक व्यस्त होते हुए भी अपने विषय का अध्ययन करने के लिए समय निकालते हैं। स्वर्गीय नेहरूजी अपने प्रधानमंत्री काल में कितने व्यस्त थे, यह सर्वविदित है। फिर भी उनके निकटस्थ व्यक्ति बताते हैं कि वे गई रात में किसी न किसी प्रकार उपयोगी ज्ञान संचय की आवश्यकता समझते हुए प्राय: बिना नागा अध्ययन का समय निकालते थे। ठीक यही रीति-नीति अन्य महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के द्वारा अपनाई जाती रही है। वे पढ़ने की आवश्यकता समझते रहे हैं और उसके लिए हर परिस्थिति में किसी न किसी प्रकार समय निकालते रहे हैं। हम में से प्रत्येक व्यक्ति को उस प्रक्रिया का अनुकरण करके अपने-अपने कारबार में युग अनुरूप ज्ञान से अवगत रहने की आवश्यकता समझनी चाहिए और अपने यहाँ घरेलू पुस्तकालय के लिए प्रबन्ध करना चाहिए। घर के लोगों में पढ़ने की आदत उत्पन्न करना प्रत्येक सद्गृहस्थ का कर्त्तव्य है। इसके बिना पारिवारिक उत्तरदायित्वों के निर्वाह का एक अतिमहत्त्वपूर्ण पक्ष छूटा अथवा अधूरा ही रह जाता है।

इतने पर भी सार्वजनिक पुस्तकालयों की स्थापना की आवश्यकता बनी ही रहेगी। उसके बिना सर्वसाधारण को अध्ययन साधनों का लाभ नहीं मिल सकता, जिनकी आर्थिक स्थिति सोचनीय है, वे स्वभावत: पुस्तक खरीदने के खर्च से बचना चाहेंगे। फिर शिक्षा के अभाव के अतिरिक्त अध्ययन की उपयोगिता न समझ पाने की भी स्थिति तो अपने यहाँ है। शिक्षितों में भी इस दिशा में नगण्य-सा उत्साह रहता है । किसी को पढ़ता देखकर उसके स्वजन-सम्बन्धी कुढ़ते हैं और उसे निठल्लेपन के कामों में गिनते हैं। यह समय लगाना प्राय: साथियों को भी अखरता है। वे उस समय को अपने साथ मनोरंजन में तथा किसी अन्य हल्के काम में लगाना चाहेंगे, पढ़ने को अनुपयोगी मानेंगे। ऐसी दशा में उस कार्य के लिए पैसा खर्च करना ही नहीं समय लगा सकना भी कठिन है। स्वाध्याय की अरुचि को मिटाना ही एक बड़ा काम है। कुरुचिपूर्ण साहित्य पढ़ने वालों को प्रेरणाप्रद अध्ययन के लिए सहमत करना भी बड़ी सफलता है। ऐसी स्थिति में अभीष्ट प्रयोजन तभी पूरा हो सकता है, जब थोड़ा-सा मासिक चंदा देकर उपयोगी पुस्तकें पढ़ने की सुविधा अपने आस-पास ही मिल सके। यह प्रयोजन मात्र सार्वजनिक पुस्तकालयों की स्थापना से ही सम्भव हो सकता है। हर गाँव में कुँआ, तालाब होते हैं। उससे भी अधिक उपयोगी पुस्तकालय को समझा जाय और येन-केन प्रकारेण उसके संस्थापना का शुभारम्भ जहाँ भी सम्भावना हो वहाँ कर ही दिया जाय।

जहाँ पुस्तकालय मौजूद हैं वहाँ, उनमें व्यक्ति और समाज को अर्वाचीन समस्याओं के प्रगतिशील समाधान का साहित्य पढ़ाया जाय। ओछा, उथला और कुरुचिपूर्ण साहित्य जमा करके पुस्तकालयों का कलेवर बढ़ाने की बचकानी मनोवृत्ति को निरस्त किया जाय। कूड़े-कबाड़ स्तर की पुस्तकों को रखने नहीं देना चाहिए वरन् प्रयत्नपूर्वक उन्हें हटाया जाना चाहिए। ओछी मनोवृत्ति का पोषण करने के लिए पढ़ने वाले सदस्यों की संख्या बढ़ाने के लिए कुरुचिपूर्ण साहित्य जमा करते चलना तो सेवा के स्थान पर विनाश के विष बोना है। अवांछनीय साहित्य पढ़ने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की आदत से पाठक की मन:स्थिति का पतनोन्मुख होना स्वाभाविक है। आग में तेल डालते रहने से तो और भी अधिक भड़केगी, पैसा देकर गन्दी पुस्तकें खरीदने से तो खर्चे की बात सोचकर कुछ हाथ को रोकते तो ही अच्छा था। पर जब वह विषपान मुफ्त में ही मिलने लगा तब तो आगा-पीछा सोचने की बात भी नहीं रही। उस मदिरा को अधिक उच्छृंखलतापूर्वक पिया जायगा और फलत: पतनोन्मुख दुष्प्रवृत्तियों के गर्त में अपेक्षाकृत और भी जल्दी गिरने का दुर्भाग्य भुगता जायगा। अस्तु, पुस्तकों की संख्या बढ़ाने या अधिक पाठक एकत्र करने की ओछी दृष्टि अपनाकर कुरुचिपूर्ण साहित्य जमा करना पुस्तकालय के मूल उद्देश्य से ही विपरीत हो जाता है। सस्ती सफलता की अपेक्षा किसी को भी नहीं करनी चाहिए।

जहाँ पुस्तकालय स्थापित हैं, वहाँ सर्वप्रथम यही संशोधन किया जाय। जहाँ नहीं हैं, नया आरम्भ किया जा रहा है, वहाँ यह ध्यान रखकर चला जाय कि मात्र प्रेरक पुस्तकें ही उसमें रखी जायेंगी। उत्कर्ष का पथ प्रशस्त करने वाला साहित्य ही उसमें रहेगा। आवश्यक नहीं कि सभी पुस्तकें आध्यात्मिक हों, व्यक्ति और समाज को प्रभावित करने वाली सभी समस्याओं पर पुस्तकें रखी जा सकती हैं, पर वे सभी उत्कृष्टता की समर्थक, प्रगतिशील एवं प्रेरणाप्रद होनी चाहिए। अन्धविश्वासों एवं अवांछनीयताओं को प्रत्यक्ष, परोक्ष प्रोत्साहन देने वाली पुस्तकों की तुलना दूध में मिलने वाले विष से की जानी चाहिए और उनका सर्वथा बहिष्कार होना चाहिए।

पुस्तकालयों की स्थापना को देव मन्दिर बनाने जैसा ही पुण्य-परमार्थ मानने की भावना यदि पैदा हो सके तो उसके लिए श्रम और समय देने में कोई उदार व्यक्ति तनिक भी आनाकानी न करेगा। देवालय व शिवालय बनाने और उन्हें चलाने में कितने ही लोग व्यक्तिगत रूप से काफी धन खर्च करते हैं ? भगवान को प्रसन्न करने के लिए, उनके लिए स्थान बनाने और पूजा उपचार के सुविधा साधन जुटाने में जिस प्रकार पुण्य परमार्थ समझा जाता है, उसी प्रकार सद्ज्ञान देवता का मन्दिर बनाने में स्वपर कल्याण का प्रत्यक्ष लाभ देखा जा सकता है। भगवान के अनुग्रह का चिह्न यही है कि मनुष्य में सद्भावनाएँ एवं सत्प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हों और उस दिव्य अभिवर्धन के फलस्वरूप सुख, शांति तथा प्रगति के अनेक आधार उपलब्ध करें। ठीक यही प्रयोजन पुस्तकालयों द्वारा सम्पन्न हो सकता है। इनका लाभ और भी प्रत्यक्ष तथा असंदिग्ध है। सत्साहित्य से जो प्रेरणाएँ मिलती हैं, उनका प्रभाव व्यक्ति के चिन्तन एवं चरित्र पर पड़ता है और उसकी प्रतिक्रिया निश्चित रूप से दृष्टिकोण के परिष्कार एवं समुन्नत जीवनक्रम के रूप में सामने आती है।

उदार लोग अपनी सम्पन्नता को सार्थक बनाने के लिए कई तरह के परमार्थ कार्य करते हैं। इस प्रकार के कार्यों में पुस्तकालय की स्थापना एवं विकास को प्रथम श्रेणी का माना जा सके, तो उसके लिए सहज ही श्रेष्ठ व्यवस्था हो सकती है और जगह-जगह ऐसे ज्ञान मंदिर खुलते, विकसित होते दृष्टिगोचर हो सकते हैं। पूर्वजों की सद्गति एवं अपनी स्मृति के लिए कई लोग तरह-तरह के जनोपयोगी भवन बनाते देखे जाते हैं। वह सम्मान पुस्तकालय स्थापना की ओर मोड़ा जाना चाहिए। यदि ऐसे लोगों को यह सत्परामर्श मिल सके तो समझाने वाले और समझने वाले दोनों ही सच्चे परमार्थ के भागी बन सकते हैं।

सार्वजनिक रूप से ऐसी स्थापनाएँ और भी सरल हैं। प्रभावशाली लोग कहीं भी उठ खड़े होते हैं तो किसी भी उपयोगी, अनुपयोगी काम के लिए ढेरों चन्दा खड़ा कर लेते हैं। आये दिन कई तरह के उत्सव, मेले जहाँ-तहाँ होते रहते भी हैं और उनमें ढेरों पैसा खर्च होता है। वह चंदे से ही एकत्रित किया जाता है। थोड़े से प्रतिभाशाली लोग ही उसमें अग्रणी होते हैं। पुस्तकालय के सम्बन्ध में भी ऐसा ही प्रयत्न सम्भव हो सके तो सफलता सुनिश्चित है। इमारत अपनी बन सके, तो सर्वोत्तम अन्यथा उसकी प्रतीक्षा न करके किराये के अथवा माँगे हुए किसी कमरे से काम चलाया जा सकता है। उपयोगी साहित्य कितने ही व्यक्तियों के घरों में ऐसे ही पड़ा होता है। उन्हें पुस्तकालय के लिए दे देने को रजामंद किया जा सकता है, जो उस साहित्य को दान न दे सकें, वे चाहे जब वापस ले सकने की शर्त पर उधार भी दे सकते हैं। नई पुस्तकें खरीदने की राशि तो निश्चय ही होनी चाहिए। इस खरीद में अल्लम-गल्लम कबाड़खाना न खरीदा जाय वरन् कुछ विषय निर्धारित रहें और उन्हीं को प्राथमिकता दी जाय।

चिन्तन परिष्कृत करने वाली और चरित्र को ऊँचा उठाने वाली पुस्तकों की संख्या अधिकतम होनी चाहिए। इसके उपरान्त सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की वर्तमान परिस्थितियों के सामाजिक समाधान प्रस्तुत करने वाली विचारपूर्ण पुस्तकों को खरीदा जाय। कथा-साहित्य की आजकल भरमार है। लोकरुचि को देखते हुए खरीदा तो उन्हें भी जा सकता है, पर यह अत्यन्त सतर्कता से परखा जाय क्योंकि इन दिनों इसी स्तर के साहित्य में भयंकर विष घुला पड़ा मिलता है। अपने ज्ञान देवालय में विष मिश्रित आहार का एक ग्रास भी प्रवेश न होने देना चाहिए। कथा-साहित्य और उपन्यासों को आदर्शवादी प्रेरणाओं की कसौटी पर कसकर ही खरीदना चाहिए।

विषय तो अध्यात्म भी हो सकते हैं पर ध्यान इतना ही रखा जाना चाहिए कि वह व्यक्ति और समाज की सामयिक समस्याओं का स्वरूप और समाधान प्रस्तुत कर सकने, पाठकों का दृष्टिकोण परिष्कृत करने में समर्थ होता हो।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रबन्ध सम्बन्धी मोटी बातें सभी को विदित हैं। पुस्तकें रखने को अलमारियाँ, पत्र-पत्रिका फैलाने के लिए मेजें, कुर्सियाँ, घड़ी जैसे उपकरण चाहिए। जमीन पर बैठना हो तो फर्श और पत्र-पत्रिकाएँ फैलाने को लम्बा पटरा चाहिए। कोई पुस्तकालय दैनिक पत्र तथा प्रेरणाप्रद पत्रिकाओं के बिना पूर्ण नहीं हो सकता, अस्तु उनका प्रावधान रहता ही है। वैतनिक अथवा अवैतनिक पुस्तकालयाध्यक्ष ऐसा होना ही चाहिए, जो निर्धारित समय पर उसे खोल देने, पुस्तकों को वापस लेने, उनको सुरक्षित, सुव्यवस्थित रखने का उत्तरदायित्व सँभाल सकें। पुस्तकालय में बैठकर पढ़ना निःशुल्क रहे, पर घरों पर ले जाने को मासिक चंदा देना चाहिए और जमानत की आरम्भिक राशि जमा करनी चाहिए। पाठकों से मिलने वाली राशि तो स्वल्प ही होती है। इतने पर से नई पुस्तकें तथा पत्रिकाएँ खरीदने का तथा मकान, फर्नीचर, रोशनी, सफाई, कार्यकर्ता आदि का खर्च नहीं मिल सकता। इसके लिए मासिक एवं वार्षिक सहायता देने वाले सदस्यों की संख्या बढ़ानी चाहिए एवं अन्य उपायों से अर्थ साधन जुटाने चाहिए। साधनों की वृद्धि और कुशलता युक्त लगन के आधार पर संस्थाओं की उन्नति होती है, यह तथ्य स्पष्ट है।

उत्साही, कर्मनिष्ठ लोगों ने बड़े-बड़े संस्थान खड़े किये हैं। यदि पुस्तकालय की उपयोगिता एवं आवश्यकता समझी जा सके तो उसकी छोटी-बड़ी स्थापनाएँ हर जगह हो सकती हैं और सर्वसाधारण के लिए सद्ज्ञान-संवर्धन का एक अतिमहत्त्वपूर्ण आधार खड़ा हो सकता है।

हर घर में ज्ञान देवता के मन्दिर स्थापित हों

सही परामर्श देने वाले निस्वार्थी मित्र मिलना कठिन है। अच्छे मित्रों की तलाश के लिए प्रायः निराश ही होना पड़ता है। लेकिन अच्छी पुस्तकों से मैत्री सम्बन्ध बनाये जायें तो सच्चे मित्र, सगे परिजन, हितैषी—पथ प्रदर्शक और मार्गदर्शक की कमी अनुभव न होगी। अच्छी पुस्तकें सहानुभूति में मित्र, शिक्षण में गुरु और सम्पूर्ण जीवन में नेक राह पर चलने की प्रेरणा देने वाले परमात्मा की तरह होती हैं।

अच्छी पुस्तकों को अमूल्य सम्पत्ति भी कहा जा सकता है लेकिन अधिकांश व्यक्तियों का इस ओर ध्यान ही नहीं जाता जीवन में सुख-सुविधायें बढ़ाने वाली वस्तुओं के लिए तो सभी पैसा खर्च करते हैं किन्तु जीवन में प्रकाश उत्पन्न करने वाली पुस्तकों की ओर किसी का ध्यान ही नहीं जाता। इसका कारण पुस्तक प्रेम का अभाव तो है ही, निर्धनता भी एक बड़ा कारण है। पुस्तक पढ़ने की आदत मनुष्य की योग्यता बढ़ाने और क्षमता विकसित करने में बड़ी सहायक होती है किन्तु उसे पढ़ने की रुचि भी होनी चाहिए जिसके साथ-साथ पुस्तकों का भी प्रचार होना चाहिए था किन्तु एक तो लोग इस ओर ध्यान नहीं देते दूसरी ओर आर्थिक स्थिति की दुर्बलता पुस्तक प्रेम के प्रसार में आड़े आ जाती है। ये दोनों कार्य पुस्तकालयों द्वारा आसानी से चलाये जा सकते हैं। पुस्तकालयों की आवश्यकता मुख्य रूप से इस समस्या को हल कर देती है कि लोगों के पास आर्थिक साधनों का अभाव हो।

लोगों की आर्थिक स्थिति ऐसी हो जिसमें कि पुस्तकों के लिए आवश्यक धन जुटाया न जा सके तो इसके लिए सामूहिक व्यवस्था ही एक मात्र उपाय हो सकता है। रेलगाड़ी की व्यक्तिगत व्यवस्था कर भी लें तो उससे सारे देश का भ्रमण नहीं किया जा सकता क्योंकि इसमें अथाह धन की जरूरत पड़ती है। इसलिए रेलों की एक सामूहिक व्यवस्था बनाई गई है। सब लोग किराये के रूप में चन्दा देते रहते हैं जिससे रेलों, पटरियों, कर्मचारियों तथा अन्यान्य साधनों की व्यवस्था होती रहती है, एक व्यक्ति अस्पताल भी नहीं खोल सकता, पोस्ट ऑफिस नहीं चला सकता, अपने बच्चों को शिक्षा देने के लिए व्यक्तिगत रूप से स्कूल नहीं चला सकता। लेकिन इन कार्यों के लिए जब सामूहिक व्यवस्था की जाती है तो ये सभी कार्य बड़े-मजे से चलते रहते हैं और लोग उसका लाभ भी उठाते रहते हैं। रेलगाड़ी, मोटर और पोस्ट ऑफिस आदि के द्वारा लोगों को थोड़े पैसों में ही यातायात और डाकतार की सुविधायें उपलब्ध हो जाती हैं। इसी प्रकार ज्ञानार्जन और सद्विचार साधना के लिए पुस्तकों के स्वाध्याय की आवश्यकता भी सामूहिक रूप से—पुस्तकालयों द्वारा पूरी की जा सकती है।

पुस्तकों की सामूहिक व्यवस्था

एक व्यक्ति अपने काल में अधिक से अधिक हजार पाँच सौ रुपये की पुस्तकें खरीद सकता है। सामान्य आर्थिक स्थिति वाले व्यक्ति के लिए इससे अधिक का खर्च बर्दाश्त करना सम्भव नहीं। किन्तु इतने धन से अच्छी और मोटी पुस्तकें सौ-पचास से अधिक नहीं आ सकेंगी। इतनी पुस्तकों का ज्ञान कम और एकांगी ही होगा। बौद्धिक विकास और आत्मा की अनन्त ज्ञानार्जन प्यास इतने से कैसे बुझ सकती है ? उसके लिए सबसे अच्छी बात यही हो सकती है कि गाँव-गाँव और नगर-नगर में पुस्तकालय स्थापित किये जायें और वहाँ बैठकर व्यवस्थित रीति से घर ले जाकर पुस्तकें पढ़ने की सुविधा जुटाई जाय। यदि अध्ययनशील व्यक्ति १०-१० पुस्तकों की कीमत चुकाने को तैयार हो जायें और ऐसे १०० व्यक्ति भी तैयार हो जायें तो १००० पुस्तकों का सुन्दर पुस्तकालय प्रारम्भ में ही स्थापित किया जा सकता है। कुछ उदार व्यक्ति अधिक आर्थिक सहयोग करने के लिए प्रस्तुत हों, तो इससे ज्यादा पुस्तकें भी आ सकती हैं। इनकी संख्या पीछे और भी बढ़ सकती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह तो हुई सामूहिक रूप से स्वाध्याय की व्यवस्था। इन पुस्तकालयों का महत्त्व देव मन्दिरादकी तुलना में जरा भी कम नहीं है। पत्थर की मूर्तिवाले देव मन्दिरों में तो बुराइयाँ भी पनप सकती हैं, इनमें अंधविश्वास, धोखा और ठगी के कारोबार भी चलते देखे जाते हैं। मन्दिर टूट-फूटकर गिर जाते हैं तो उनका महत्त्व भी समाप्त हो जाता है और कुछ दिन में लोग यह भी भूल जाते हैं कि यहाँ कोई देवस्थान था। मध्य युग में आक्रमणकारियों ने हजारों मन्दिर तुड़वा दिये, जिनका आज पता भी नहीं। लेकिन पुस्तकालय नष्ट हो जाने पर भी उनकी आत्मा—पुस्तकों का अस्तित्व तो बना ही रहता है, जिनसे लोगों को काफी समय तक प्रकाश व प्रेरणायें मिलती रह सकती हैं। पुस्तकालयों में जाने वाले लोगों की स्वभावगत भावनाओं में कुछ स्थानगत उत्कृष्टताओं का समावेश होता है और उनके विचार ऊर्ध्वगामी बनते हैं।

उपासना धाम के समतुल्य

ऐसे पुस्तकालय भगवान की उपासना के सच्चे केन्द्र होते हैं। भगवान का स्मरण केवल उनके नाम और रूप द्वारा ही नहीं किया जाता वरन् भावनाओं के माध्यम से भी उनका स्मरण किया जा सकता है। अच्छे विचार भगवान की भावनात्मक उपासना ही है। अच्छी पुस्तकों का पढ़ना-पढ़ाना, भजन और पाठ-पारायण से कम नहीं। अतः जैसे देव मन्दिरों की स्थापना लगन से करते हैं वैसे पुस्तकालय के लिए भी लगनपूर्वक प्रयास होना चाहिए। चूँकि विचार सेवा सबसे अच्छी सेवा है, अतः समाज सेवियों—लोकसेवियों को पुण्य-परमार्थ की दृष्टि से पुस्तकालय स्थापित कराने चाहिए। किसी व्यक्ति को धर्म-कर्म की इच्छा होती है तो वह मन्दिर बनवा देता है। कुछ लोग धर्मशाला, कुँआ या बावड़ी का निर्माण करा देते हैं। वृक्ष लगाने, बाग लगाने, सदावत लगाने जैसे धर्म कृत्य सम्पन्न कर लोग स्वयं मुक्ति की कामना करते हैं। इनसे आत्मशांति और आत्मसन्तोष मिलता भी है किन्तु इस युग की आवश्यकता को देखते हुए पुस्तकालयों की स्थापना को सबसे अधिक पुण्यफलदायी कर्म मानना पड़ेगा। किसी की तात्कालिक समस्याओं को हल कर देना, उसका दुःख मिटा देना, सेवा धर्म समझा जाता है, पुस्तकालय द्वारा सेवा धर्म के इन अंगों का भली प्रकार पालन होता है क्योंकि जीवन समस्या को सुलझाने वाली पुस्तकें पढ़कर समस्याग्रस्त व्यक्ति अपना समाधान प्राप्त कर सकते हैं। प्रगति और उन्नति के आकांक्षी व्यक्ति जीवन निर्माण का साहित्य पढ़कर अपने प्रगति और उन्नति के लिए लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं।

एक पुस्तकालय से पुस्तकें पढ़कर पाँच व्यक्ति भी यदि सत्प्रेरणायें प्राप्त कर सकें और वे पाँच-पाँच अन्य व्यक्तियों को वैसी ही सत्प्रेरणायें दें तो अच्छे व्यक्तियों की संख्या बढ़ती ही जायेगी और यह पुण्य ल पुस्तकालय की स्थापना करने वाले व्यक्तियों को मिलता रहेगा। उनकी स्थापित पुस्तकों से सत्प्रेरणा ग्रहण करने वाले व्यक्तियों की संख्या दिनों-दिन बढ़ती जायेगी और उसका पुण्यलाभ चक्रवृद्धि ब्याज की तरह उन आत्माओं को मिलता रहेगा।

ऋषि-ऋण से मुक्त हों

परम्परा से चली आ रही ज्ञान की धारा का लाभ हम स्वयं भी उठाते हैं, यह ज्ञान पूर्वजों द्वारा किये गये परिश्रम और शोध से ही प्राप्त हो सका है। उसका लाभ हमें बिना मूल्य ही मिलता है किन्तु नैतिकता का तकाजा है कि उसका मूल्य किसी न किसी रूप में चुकाया जाय और ऋषि-ऋण से मुक्त हुआ जाय। ऋषि-ऋण से उऋण होने का एकमात्र उपाय उस ज्ञान-परम्परा को अगली पीढ़ी के लिए जारी रखने और वर्तमान पीढ़ी में उसके प्रसार की व्यवस्था बनाने के रूप में ही हो सकता है। पुस्तकालय इस व्यवस्था की सभी शर्तें पूरी करता है।

पुण्य लाभ, ऋषि-ऋण का भार चुकाने के साथ ही सद्ज्ञान की अभिवृद्धि एवं सभ्य व सुसंस्कृत समाज की रचना के लिए गाँव-गाँव में विद्यालयों और व्यायामशालाओं की तरह पुस्तकालय भी स्थापित किये जाने चाहिए। इसके साथ ही यह तथ्य भी ध्यान में रखना चाहिए कि पुस्तकालयों में संख्या वृद्धि के लिए नहीं—सद्ज्ञान, सद्विचार और सत्प्रेरणाओं का प्रवाह उत्पन्न करने के लिए अच्छे स्तर की पुस्तकें रखी जायें। यह ठीक है कि विचार की योग्यता मनुष्य में साहित्य से आती है। साहित्य के द्वारा समाज में विचारशीलता उत्पन्न होती है किन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि व्यक्ति और समाज के पतन का कारण भी विचार ही होते हैं। हीन विचारों के कारण ही लोग दुष्कर्मों में प्रवृत्त होते हैं और अपनी शक्ति का अपव्यय करते हुए योग्यता नष्ट करते हैं तथा समाज के लिए हानिकारक, अनर्थमूलक परिस्थितियाँ उत्पन्न करते हैं। अतः पुस्तकालयों में पुस्तकें एकत्रित करते समय उनके चयन का भी मापदण्ड रखना चाहिए कि वह विचारों को ऊँचा उठाने वाली और नैतिक, धार्मिक, सामाजिक, उत्थान का पथ प्रदर्शन करने वाली भी हैं अथवा नहीं।

स्तर और गरिमा बनाये रखें

आजकल कई पुस्तकालयों में सदस्य संख्या बढ़ाने अथवा भीड़-भाड़ बनाये रखने के लिए बाजारू निम्नस्तर की कहानियाँ, रोमांटिक उपन्यास आदि की पुस्तकें रखी जाती हैं, उनसे पुस्तकालयों का उद्देश्य सही मायनों में पूरा नहीं होता। यदि शोभा-सुसज्जा का ख्याल करते हुए पुस्तकालय में लोगों की भीड़ बनाये रखने के लिए इस तरह का कूड़ा जमा कर लिया जाय तो फिर लोग उन्हीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की ओर आकर्षित होंगे। थोड़ा बहुत अच्छा साहित्य रखा भी जाता है, तो लोग उन्हें पढ़ते नहीं। यह भी सम्भव है कि अच्छा साहित्य विपुलमात्रा में होते हुए भी थोड़ा-सा बाजारू साहित्य लोगों को उस ओर से विमुख ही कर दे और पुस्तकालय के उद्देश्य को ही नष्ट करने लगे। एक सेर दूध में यदि एक रत्ती जहर घोल दिया जाय तो सारा दूध निरर्थक ही नहीं हानिकारक भी बन जाता है। इसी प्रकार अच्छे साहित्य के साथ गंदी, बेहूदी, बेतुकी और अन्धविश्वास फैलाने वाली एक पुस्तक किसी आदर्शवादी पुस्तकालय की सारी गरिमा को नष्ट कर देती है।

यह तर्क निराधार है कि लोगों की माँग के अनुसार पुस्तकें मँगानी पड़ती हैं। स्मरण रखा जाना चाहिए कि आदर्शवादी पुस्तकालयों को लोकरुचि पर नहीं चलना है वरन् लोकरुचि का परिष्कार करना उनका उद्देश्य है। इस बात को यदि ध्यान में न रखा जाय तो सारा किया-कराया गुड़गोबर हो जायेगा ।

इस दिशा में बड़ी गम्भीरता से विचार करना चाहिए और पुस्तकों का चयन करते समय बड़ी सावधानी बरतनी चाहिए। जिन पुस्तकों से उच्च नैतिक गुणों के समावेश की प्रेरणा मिलती हो, जो मनुष्य के चरित्र को ऊँचा उठा सके वही पुस्तकालयों के लिए सापेक्ष हो सकती हैं। जीवन निर्माण के लिए ऐसे साहित्य की आवश्यकता होती है, जो हमारी भावनाओं को ऊँचा उठाने की क्षमता रखता हो, जिस साहित्य से हमारी सुरुचि नहीं जागती। मानसिक, आध्यात्मिक तृप्ति नहीं मिलती, उसे पुस्तकालय में नहीं रखना चाहिए। अच्छी पुस्तकों का मापदण्ड यह हो सकता है कि उससे उत्तम विचार मिलते हैं, कठिनाइयों पर विजय पाने का संकल्प सुदृढ़ होता है तथा जिसे पढ़ने से पाठक को प्रकाश मिलता है।

पुस्तकालय में कैसी पुस्तकें रखी जायें, यह निश्चित हो जाने के साथ ही यह प्रश्न उठता है कि पुस्तकालयों की स्थापना किस प्रकार की जाय ? सम्पन्न और उदार व्यक्ति इस दिशा में ठोस सहयोग दे सकते हैं। ऐसे बहुत हैं, जिनकी धार्मिक कार्यों में बड़ी रुचि होती है। धर्मशालायें बनवाना कुँए खुदवाना, देवालय चलाना आदि कार्यों के लिए कई लोग अकेले ही व्यवस्था कर देते हैं। अथवा उनमें उदार सहयोग प्रस्तुत करते हैं। ऐसे साधन सम्पन्न और उदारचेत्ता व्यक्तियों को पुस्तकालय के लिए सहयोग हेतु प्रेरित किया जा सकता है। यह सहयोग अन्य सामाजिक अथवा धार्मिक कार्यों में दिये जाने वाले दान की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ और उत्कृष्ट हैं, क्योंकि उससे बहुत लोगों का जीवन स्तर विकसित होगा, अनेकों सुसुप्त आत्माओं को प्रकाश मिलेगा। कहा भी गया है कि ब्रह्मदान सब दानों से सर्वश्रेष्ठ दान है, ब्रह्म की भेंट किसी को दी नहीं जा सकती परन्तु उसका परिचय-बोध कराने वाला ज्ञान, उसके समान बनाने वाली दिशा और उससे संयुक्त करने वाली प्रेरणायें तो प्रदान की ही जा सकती हैं।

जो लोग पुस्तकालयों की स्थापना और संचालन को समाज की अनिवार्य आवश्यकता समझते हैं, उन्हें चाहिए कि वे इस दिशा में ठोस कदम उठाने के लिए अपने समान व्यक्तियों को तलाशें और एक समिति बना लें। ऐसे व्यक्ति स्वयं भी सहयोग प्रस्तुत करें और लोगों से भी सहयोग प्राप्त करें। थोड़े-से प्रयत्नों से ही इस लायक व्यवस्था तो बनाई ही जा सकती है कि पुस्तकालय का आरम्भ किया जा सके। यह कोई आवश्यक नहीं है कि सहयोग आर्थिक रूप में ही प्रस्तुत किया जाय। इसके लिए अलमारियाँ, मेज, कुर्सी अथवा बैठकर पढ़ने के लिए बिछावन आदि भी दिये जा सकते हैं। किसी का कोई मकान खाली पड़ा हो तो वे लोकोपकार की दृष्टि से उसे पुस्तकालय के लिए दे सकते हैं। अस्थायी प्रबन्ध के लिए मकान का कोई हिस्सा अथवा दो एक कमरों की व्यवस्था भी की जा सकती है।

स्थापना ही नहीं जनसम्पर्क भी

इस प्रकार पुस्तकालय की प्रारम्भिक व्यवस्था जुटाकर उसके लिए एक पुस्तकालय नियुक्त कर दिया जाय, जो नियमित रूप से निश्चित समय पर पुस्तकालय खोले, सदस्यों को पुस्तकें जारी करें और पुस्तकालय की देखभाल करें। सदस्यों से अमानत धन के रूप में पाँच, दस रुपये जमा भी कराये जा सकते हैं और उनसे एक या दो रुपये पुस्तकालय का सदस्यता शुल्क भी लिया जाता रह सकता है, जिससे कि पुस्तकों की मरम्मत और नई पुस्तकों की खरीद की जाती रहे।

पुस्तकालयाध्यक्ष में जनसम्पर्क बढ़ाने की योग्यता भी होनी चाहिए। आरम्भ में लोगों की रुचि सत्साहित्य पढ़ने में नहीं भी हो सकती है अत: उनमें अभिरुचि जागृत करने का कार्य तो पुस्तकालयाध्यक्ष करे ही।

पुस्तकालय के संचालकों को भी चाहिए कि वे अपने प्रभाव क्षेत्र के लोगों को पुस्तकालय का सदस्य बनने के लिए तैयार करें और यह तथ्य भी ध्यान में रखना चाहिए कि केवल पुस्तकें एकत्रित करने और पुस्तकालय खोलने से ही सद्ज्ञान और सद्विचार का प्रसार नहीं हो सकता, उसके साथ लोगों में अभिरुचि जागृत करने के लिए भी प्रयत्न किये जाने चाहिए।

इस प्रकार के पुस्तकालय जहाँ-कहीं भी होंगे सद्ज्ञान, सद्विचारों का प्रकाश उत्पन्न करते रहेंगे। उनकी सार्थकता किसी देवमन्दिर से कम नहीं है। उपयोगिता की दृष्टि से उन्हें गाँव या नगर के बिजलीघरों के समकक्ष रखा जा सकता है। बिजलीघरों से घर-घर में विद्युत जाती है और प्रकाश व शक्ति पहुँचती है। पुस्तकालयों की पुस्तकें जीवन क्षेत्र में प्रकाश पहुँचाती हैं तथा कर्मक्षेत्र में आगे बढ़ने की प्रेरणा व शक्ति प्रदान करती हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जनरुचि जगाने का श्रेष्ठ साधन

आत्मकल्याण और जीवनोत्कर्ष की दिशा में आशाजनक प्रगति तभी सम्भव हो सकती है, जब उस दिशा में बढ़ने के लिए आशाजनक प्रेरणा और प्रकाश प्राप्त हो सके। यह प्रेरणा और प्रकाश केवल सत्साहित्य के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि सत्साहित्य से सम्पर्क स्थापित करके ही वह विवेक विकसित किया जा सकता है। जिसके द्वारा जीवन में आने वाली गुत्थियों को सुलझाया जा सके। इन दिनों व्याप्त उलझनों और गुत्थियों का भी यही कारण है कि लोग किसी भी बात को विवेकपूर्वक सोचने-समझने की स्थिति में नहीं हैं। इस कारण उस स्तर की प्रेरणाओं और दशाओं का अभाव है।

प्रस्तुत संकटों और समस्याओं का निराकरण करने के लिए आवश्यक है कि कुविचारों और अवांछनीय मान्यताओं को हटाया जाय और उनके स्थान पर सद्विचारों तथा आदर्शवादी निष्ठाओं को प्रतिष्ठापित किया जाय। यह परिवर्तन ही युग परिवर्तन है और इसी परिवर्तन के द्वारा तुच्छ मनुष्यों को महामानवों के रूप में परिणित किया जा सकता है। प्रचीनकाल में साधु और ब्राह्मण यही किया करते थे। तप, संयम, साधना द्वारा अपने व्यक्तित्व को निर्मल एवं प्रकाशपूर्ण बनाकर लोगों को सही विचार और सही दिशा प्रदान करते रहते थे, यही सबसे बड़ी सेवा भी है। किसी के दुःख-दारिद्रिय में सामयिक सहायता पहुँचाकर उसका तात्कालिक निवारण किया जा सकता है किन्तु चिरस्थायी समाधान तो विचार शुद्धि के द्वारा ही हो सकता है। इस पुण्य-प्रयोजन की पूर्ति के लिए सत्साहित्य का प्रसार एक पुण्य फलदायी सत्कार्य हो सकता है।

इस सम्बन्ध में कठिनाई यह आती है कि सत्साहित्य के अध्ययन की आदत न होने से लोगों की इस ओर रुचि नहीं होती। प्राय: तो लोग अध्ययन को व्यर्थ का काम समझते हैं। अनपढ़ लोगों को तो अक्षरज्ञान भी नहीं होता, इसलिए वे कैसे पढ़ें ? प्रश्न उनका नहीं है। पढ़े-लिखे व्यक्ति भी अध्ययन से विरत पाये जाते हैं। या तो उनमें पढ़ने की रुचि नहीं, होती भी है तो वे पढ़ने को खाली समय काटने का साधन मात्र समझते हैं, ऐसी दशा में अच्छी पुस्तकों का प्रचार-प्रसार, सत्साहित्य को लोकप्रिय बनाना भी एक महत्त्वपूर्ण और श्रमसाध्य कार्य है। विचारशील व्यक्ति ही सत्साहित्य का महत्त्व समझते हैं और वातावरण बदलने, उत्कर्ष की प्रेरणा देने अथवा समाज में सुखद परिस्थितियाँ निर्मित करने के लिए अच्छी पुस्तकों की भूमिका महत्त्वपूर्ण मानते हैं, उन्हें चाहिए कि वे सत्साहित्य को लोकप्रिय बनाने के लिए उत्साहपूर्वक प्रसार करें।

रुचि जगाना भी एक कार्य

यह कार्य केवल पुस्तकालयों द्वारा ही नहीं किया जा सकता। पुस्तकालय तो एक ही स्थान पर स्थित रहते हैं। उनसे वही लोग सरलतापूर्वक लाभ उठा पाते हैं, जो पुस्तकालयों में आते-जाते हैं अथवा जिनकी उनमें रुचि होती है। जिन लोगों में अच्छे साहित्य के प्रति रुचि ही नहीं है, जो सद्ज्ञान का महत्त्व ही नहीं समझते उनके लिए पुस्तकालय की उपयोगिता नहीं रह जाती। उनमें रुचि जगाने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षित व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित किया जाय उनमें अच्छा साहित्य पढ़ने की रुचि जगाई जाय और सद्विचार तथा सत्प्रेरणायें प्रदान करने वाला सत्साहित्य उपलब्ध कराया जाय। प्राचीनकाल में भी साधु-ब्राह्मण घर-घर जाकर अलख जगाते थे और जनमानस को शुद्ध करने के लिए उनके अन्तस्तल तक धर्म एवं अध्यात्म का प्रकाश पहुँचाते थे। इन दिनों सत्साहित्य पहुँचाने की बात घर-घर जाकर अलख जगाने और सद्ज्ञान सन्देश पहुँचाने के ब्राह्मण धर्म का ही निर्वाह करती है।

सत्साहित्य के प्रचलन हेतु उसके प्रति अभिरुचि जगाने को प्राथमिक महत्त्व दिया जाना चाहिए। लोग इस अभिरुचि का अभाव होने के कारण ही सत्साहित्य का अध्ययन नहीं करते। ज्वरग्रस्त व्यक्ति की जिस प्रकार भूख मारी जाती है, उसी प्रकार हमारी मनोभूमि पर तृष्णा और वासना का इतना सघन पर्दा पड़ा रहता है कि हमें अपनी मानसिक क्षुधा का आभास ही नहीं होता। हानि-लाभ न समझने या स्वादलिप्सा पर नियन्त्रण न होने के कारण लोग जिस प्रकार खाद्य-अखाद्य वस्तुएँ खाते रहते हैं, उसी प्रकार कुछ लोग पाशविक वृत्तियों को भड़काने वाला अथवा कोई उद्देश्य पूरा न करने वाला साहित्य पढ़ते हैं। उन्हें पशुता को देखने, उसका चित्रण पढ़ने में ही रस आता है। इस स्थिति को खेदजनक ही समझना चाहिए कि अधिकांश लोगों की रुचि इसी स्तर की बनी हुई है और उन्हें कामुकता, अपराध, मखौल या मनोरंजन करने वाली पुस्तकें ही अच्छी लगती हैं। इसी कुत्सित रुचि के कारण प्रेरणाप्रद साहित्य पूर्णत: उपेक्षित पड़ा रहता है और उसके द्वारा मिल सकने वाले लाभों से समाज वंचित हो जाता है।

झोला पुस्तकालय उपयोगी प्रयास

इस दिशा में युग निर्माण योजना के सदस्यों ने झोला पुस्तकालय का कार्यक्रम चलाकर सत्साहित्य को लोगों तक पहुँचाने का कार्य बड़े प्रभावशाली ढंग से किया है। इस तरह का प्रयास विचारशील और सत्साहित्य को लोकप्रिय बनाने की आवश्यकता समझने वाले सत्साही व्यक्ति भी सफलतापूर्वक एवं सरलता से चला सकते हैं। कार्य की दृष्टि से यह जरा भी कठिन नहीं है। हाथ में कपड़े, जीन या प्लास्टिक के हैण्ड बैग आमतौर से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पढ़े-लिखे लोग लिए रहते हैं। यह झोले शिक्षित होने की पहचान है। इसमें आवश्यक कागज-पत्र लेकर पढ़े-लिखे लोग चलते हैं। अब तो ऐसे सुन्दर और खूबसूरत झोले भी आने लगे हैं, जिन्हें हाथ में रखने या कन्धे पर लटकाने में शोभा और शान बढ़ी प्रतीत होती है। ऐसा एक झोला साथ रखा जाय और उसमें पच्चीस-तीस ट्रेक्ट या पुस्तक डाल ली जायें। यह करने में किसी को कोई कठिनाई सहने अथवा अतिरिक्त भार उठाने जैसे स्थिति का सामना नहीं करना पड़ता।

यह झोले हर समय साथ रखे जा सकते हैं और किसी निश्चित समय भी इन्हें लेकर स्वतन्त्र रूप से मित्रों-परिचितों को सत्साहित्य पढ़ाने के लिए निकला जा सकता है। वैसे हर समय साथ रखने में भी कोई परेशानी नहीं आती। काम तो प्रायः सभी के घर से बाहर ही करना पड़ता हैं। जहाँ काम करने जाते हैं, वहाँ साथियों से तथा उस काम से सम्बन्ध रखने वाले लोगों से सम्पर्क भी बनता है। जिनसे सम्पर्क होगा उनसे काम की या बेकाम की कुछ न कुछ बातें भी होती हैं। उसी वार्तालाप में यदि प्रसंग के अनुरूप सद्विचारों और सत्प्रेरणाओं के महत्व की चर्चा भी छेड़ दी जाय तो उससे बातचीत का आनन्द बढ़ता ही है घटता नहीं।

जिस विषय की पुस्तकें अपने झोले में हों वह चर्चा-प्रसंग भी उसी विषय का ही होना चाहिए। बात आगे बढ़ चले और साथी-मित्र उसमें रुचि लेने लगें तो उसे बताना चाहिए कि इस विषय की महत्त्वपूर्ण पुस्तक भी अपने पास है और पढ़ने के लिए अभी हाल मिल सकती है। यदि वह उत्सुकता प्रकट करे तो छेड़े हुए विषय से सम्बन्धित एक पुस्तक उसे दे दें और विवरण लिखने के उद्देश्य से झोले के साथ रहने वाली कापी में उसे नोट कर लिया जाय। इस प्रकार दिन भर में जिन लोगों से वास्ता पड़े, जिनसे चर्चा चल सकें और रुचि उत्पन्न होती दिखाई देने लगे तो उन्हें पुस्तक देते रहा जा सकता है और फिर दूसरे या तीसरे दिन लौटाने का तकाजा किया जा सकता है। यह क्रम चलता रहे तो उस बीच जिन व्यक्तियों को अच्छी पुस्तकें पढ़ने का चस्का लग जायेगा पीछे वे स्वयं ही पढ़ने के लालायित रहते और माँगते दिखाई देने लगेंगे।

झिझक और उपेक्षा

काम नया होने से शुरू में कुछ लोगों को झिझक भी हो सकती है। अजनबीपन भी अनुभव होने लग सकता है और संकोच भी हो सकता है कि न जाने देखने वाले लोग क्या कहेंगे ? कहीं अपनी प्रतिष्ठा तो नहीं गिर जायेगी ? कहीं कोई दिल्लगी तो नहीं उड़ाने लगेगा। पर आमतौर पर देखा गया है कि ऐसा होता कुछ भी नहीं। ये आशंकायें सर्वथा निराधार ही सिद्ध होती हैं। सच्चाई तो यह है कि चर्चा यदि ढंग से की गई हो, चर्चा छेड़ने वाला समझदार और साथ वाले की मनोभूमि, प्रकृति, आवश्यकता और उलझन को भाँप सके, उसी प्रसंग पर चर्चा छिड़े तो निश्चित रूप से बात सटीक रहेगी, और जिस पर प्रयास किया गया है, वह अपनी सामयिक समस्याओं सम्बन्धी साहित्य पढ़ना आरम्भ करेगा तथा धीरे-धीरे सत्साहित्य का ही अध्ययन करने लगेगा।

नया और तत्काल कोई लाभ न दिखाई देने वाला प्रयास होने के कारण उपेक्षा भी हो सकती है। लेकिन उपेक्षा तब होती है, जब सामने वाले की प्रकृति कुछ हो और उसे अप्रसांगिक चीज थमा दी जाय। इसी प्रकार बिना कुछ पूर्व चर्चा किए यों ही दवादारू के विज्ञापनों की तरह किसी के हाथ में यकायक पुस्तक थमा देने की प्रतिक्रिया भी निराशाजनक होती है। आज के जमाने में हर आदमी जो कुछ काम करता है, उसमें उसका स्वार्थ छिपा रहता है। आदमी दूसरे के अनुरोध के पीछे उसका स्वार्थ छिपा होने की आशंका करता है, जब यकायक उसके हाथ में पुस्तक थमा दी जाती है और कुछ बताया नहीं जाता है, तब वह सोचता है कि यह किताब बेचने की भूमिका न हो और पीछे उसके गले मूल्य चुकाने की आफत न पड़ जाय, ऐसा सोचकर वह उसे लेने में अरुचि दिखाने लगता है, ले भी ले तो अरुचिपूर्वक पढ़ने की फुरसत न मिलने आदि का बहाना करके लौटा देता है। बहुत करके उसका अभिप्राय किसी अप्रत्याशित व्यय से बचने की भूमिका होती है। इस स्थिति की आशंका को पहले ही समाप्त कर देना चाहिए और अपना प्रयोजन ठीक तरह से समझा देना चाहिए, ताकि इस प्रकार की उपेक्षा से सहज ही दूर रहा जा सके।

इस प्रकार सम्पर्क करें

पहले लोगों की मनोभूमि भाँपकर आरम्भ उसकी रुचि जगाने से करना चाहिए। झोला पुस्तकालय का क्षेत्र आरम्भ यहीं से होता है। उसके द्वारा लोगों में जीवन निर्माणकारी साहित्य के प्रति जागृत करने और वैसा साहित्य उपलब्ध कराने का उद्देश्य ही प्रमुख रहता है। एक तो लोग अच्छा साहित्य खरीदने में पैसा नहीं भी लगाना चाहते हैं, दूसरे बहुतों की वैसी स्थिति भी नहीं होती। झोला पुस्तकालय से इन दोनों ही कठिनाइयों को दूर किया जा सकता है। अरुचि और अनिच्छा को हटाना तथा रुचि और आकांक्षा जागृत कराना ही एक कार्य रह जाता है जिसे यदि पूरा किया जा सके तो समझना चाहिए कि आधी मंजिल पार कर ली गई। इसके लिए अपने सम्पर्क के उन पढ़े-लिखे व्यक्तियों को पहले टटोलना चाहिए, जिनमें विचारशीलता के थोड़े भी बीजाकुंर हों, जो रोटी-कपड़े से बाहर की बात भी कभी सोचते और कहते सुनते पाये जाते हों। ऐसे लोगों से इस दिशा में कुछ आशा की जा सकती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उनका नाम नोट कर उनकी प्रकृति, आवश्यकता, उलझन और रुचि को देखकर तद्नुरूप साहित्य देना आरम्भ करना चाहिए। ज्योतिषी, हाथ देखने वाले, पण्डे, ठग आदि लोग दूसरों की मनोभूमि भाँपने में प्रवीण होते हैं। अपनी पकड़ भी वैसी ही होनी चाहिए। जिनसे सम्पर्क किया जा रहा है, उनके स्तरानुकूल अपने पास क्या साहित्य है ? इसकी जानकारी स्वयं को भी होनी चाहिए। इसके लिए अपने पास की सभी पुस्तकें मनोयोगपूर्वक स्वयं पढ़ ली गई हों तो सम्पर्क करते समय यह आसानी से निश्चित किया जा सकता है कि सामने वाले को कौन-सा साहित्य दिया जाना चाहिए ?

यदि इतना कर लिया गया और जिनसे सम्पर्क किया जा रहा है, उनमें रुचि तथा आकांक्षा जाग्रत करने के लिए लगन व उत्साहपूर्वक लग जाया जाय तो फिर कठिनाई जरा भी नहीं रहती। चाय और बीड़ी वालों ने जनता में रुचि जगाने और उनका अभ्यस्त बनाने में कमाल किया है। अब से पचास वर्ष पहले लोग इन्हें जानते तक न थे। जो जानते, वे इस्तेमाल करते हुए डरते और तरह-तरह की आशंकायें किया करते थे। उन्हीं लोगों को प्रचारकों ने इन चीजों का इस तरह आदी बना दिया कि अब इनके बिना उनका गुजारा नहीं चलता। चाय वालों ने घर-घर जाकर मुफ्त चाय पिलाई और उसका भरपूर गुणगान किया। 'चाय पियो—बहुत दिन जियो' 'गरमी में गरम चाय ठण्डक पहुँचाती है' आदि नारे भले ही झूठे हों किन्तु उन्होंने इन नारों को लोगों के गले उतार दिया और अपनी चीजों का पूरी तरह प्रचलन करने में सफलता प्राप्त कर ली। नवनिर्माण की उत्कृष्ट विचारधारा को जनमानस में प्रतिष्ठापित करने के लिए हम चाय वालों से बहुत कुछ सीख सकते हैं।

जो पुस्तक पढ़ने को देनी हो, उसका भरपूर गुणगान करना चाहिए और उस व्यक्ति को इस मानसिक स्थिति में घसीट लाना चाहिए कि उसकी उत्सुकता और बढ़ जाय चाहे इसके लिए पुस्तक एक दिन बाद दी जाय, तत्काल पुस्तक हाथ में थमा देने से उसका आकर्षण कम हो सकता है इसलिए जहाँ आवश्यक हो वहाँ यह मनोवैज्ञानिक प्रयोग भी करना चाहिए कि पहले दिन इतना किया जाय कि व्यक्ति की आवश्यकता समझकर उसके अनुरूप एक बहुत अच्छी पुस्तक अपने पास होने की बात कहीं जाय और पूछा जाय कि यदि उसे पढ़ने का इच्छुक हो तो कल उपलब्ध कराई जाय। दूसरे दिन जब वह पुस्तक दी जाय तो उस सम्बन्ध में थोड़ी चर्चा एवं प्रशंसा फिर कर दी जाय। किसी को उसे पढ़ने से प्रेरणा मिली हो या लाभ हुआ हो तो उसकी चर्चा विस्तार पूर्वक अवश्य ही कर देनी चाहिए। रुचि बढ़ाने का यह अच्छा-खासा उपाय है।

कार्य क्षेत्र का चुनाव

बहुत-से शिक्षित लोग अपने नगर में हो सकते हैं—उनसे सज्जनतापूर्ण सम्पर्क बनाया जा सकता है और यदि पहले सत्साहित्य पढ़ने में रुचि न रही हो तो भी उसे जगाया जा सकता है। बहुत-से लोगों के पास ढेरों अवकाश रहता है, समय काटने के लिए वे गपशप, मटरगश्ती या और कुछ तास, चौपड़ का शुगल ढूँढ़ते रहते हैं। ऐसे लोगों को कोई बुद्धिमान व्यक्ति धीरे-धीरे पढ़ने का व्यसन लगा सकता है। जब रस आने लगता है तब वह स्वाध्याय किसी भी मजेदार व्यसन से अधिक मजेदार लगने लगता है।

कुछ घरों में पढ़ी-लिखी लड़कियाँ स्त्रियाँ भी होती हैं। उनके पास समय भी होता है और रुचि भी। पर घर वाले उन्हें इस तरह की सुविधा नहीं देते फलस्वरूप वे अधिक प्रकाश प्राप्त कर सकने में असमर्थ ही रहती हैं। स्मरण रखा जाना चाहिए नारी भावी संसार की नये समाज की निर्मात्री है। उसके मानसिक स्तर के अनुभव लेकर ही बालक जन्मते हैं और वैसे ही नागरिक बनते हैं। इसलिए नारी पर ध्यान दिया जाना और भी आवश्यक है। घरों में, परिवारों में, दफ्तरों में, कारखानों—स्कूलों में, ऐसी महिलायें तलाश की जा सकती हैं, जो पढ़ने में रुचि ले सकें। अध्यापिकाएँ और छात्रायें स्थानीय विद्यालयों से मिल सकती हैं। इन तक प्रेरक सत्साहित्य पहुँचना चाहिए। यदि कोई महिला इस कार्य को हाथ में ले तो वह आसानी से घरों में जा सकती हैं और सम्पर्क बना सकती है।

तरुण वर्ग का भी विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए। वृद्ध व्यक्ति एक खास किस्म के दकियानूस हो जाते हैं। उन्हें अपने पुराने लोगों की तरह हर पुरानी बात ही अच्छी लगती है। हर नवयुवक को बेवकूफ समझने तरह हर नये विचार को भी वे अनुपयुक्त मानते हैं। यों वृद्ध पुरुषों और अधेड़ों में भी कुछ समझदार व्यक्ति होते हैं। उन्हें भी युग साहित्य से अवगत कराया जाय किन्तु नई पीढ़ी में नवनिर्माण की विचारधारा पहुँचाने से एक अच्छा कार्यक्षेत्र बन सकता है। नई पीढ़ी में उच्छृंखलता भले हो किन्तु उनमें धूर्तता नहीं है और वह उच्छृंखलता भी इसलिए है कि उन्हें स्वाभाविक उत्साह को सृजन की ओर मोड़ने के लिए उपयुक्त दिशा नहीं मिल पाती।

नवयुवकों, छात्रों के साथ-साथ अध्यापकों को भी अपने कार्यक्षेत्र में शामिल करने को प्राथमिकता दी जा सकती है। एक तो अध्यापकों की जीविका सात्विक होती है। दूसरे अध्ययन का कार्य करने के कारण उनमें दूसरों की अपेक्षा जरूरी विचारशीलता भी आ जाती है। अध्यापकों और छात्रों का वर्ग एक ऐसा वर्ग है, जिसमें यदि मानवीय आदर्शों का प्रकाश बुद्धिसंगत ढंग से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पहुँचाया जाय, तो उसे वहाँ तिरष्कृत या अस्वीकृत नहीं किया जावेगा। अपने झोला पुस्तकालयों से इस वर्ग को अछूता नहीं रहने देना चाहिए। देहाती क्षेत्रों में भी हर गाँव में अध्यापक होते हैं, कस्बों में हाईस्कूल होते हैं, प्राइमरी स्कूलों में तो नहीं किन्तु हाईस्कूलों में अधिकांश किशोर और युवा होते हैं। बड़े कस्बों में इस प्रकार के छात्रों और अध्यापकों की संख्या मिलकर हजारों नहीं तो सैकड़ों में जरूर होती है। शहरों में तो निश्चित ही वे हजारों की संख्या में होते हैं। इस वर्ग से सम्पर्क बनाकर झोला पुस्तकालयों द्वारा जीवन निर्माण का साहित्य पढ़ने के लिए देने और वापस लेने का क्रम आसानी से चलाया जा सकता है।

यह शिकायत भी पैदा होती है कि लोग ऐसी पुस्तकें नहीं लेते अथवा पढ़ने में रुचि नहीं दर्शाते अथवा वापस करने में परेशान करते हैं, दुबारा लेने में उपेक्षा करते हैं, झोला पुस्तकालय की हँसी उड़ाते हैं, उसे चलाने वाले को सनकी या किसी संस्था का नौकर बताते हैं। ये कठिनाइयाँ उन लोगों के बीच पैदा होना स्वाभाविक है, जिन्हें विचार शक्ति का कोई मूल्य अथवा महत्व मालूम नहीं। जिन्होंने विचारतत्त्व की गरिमा को कभी सुना या समझा नहीं, उनसे इस तरह की उपेक्षा मिलती है, तो इससे निराश होने की आवश्यकता नहीं है। यदि कोई हीरे को काँच का टुकड़ा समझकर तिरस्कार पूर्वक फेंक दे तो उसे दोष देना व्यर्थ है, हीरे का मूल्य उसे समझाया बताया किसने ? अतः इस तरह लोगों से उपेक्षा, तिरस्कार मिलने पर निराश होने की आवश्यकता नहीं है।

उत्साहपूर्वक आगे आयें

लोगों से उपेक्षा और तिरस्कार मिलने पर भी विचार शक्ति का महत्त्व समझाने के लिए, लोगों को विचार तत्त्व की गरिमा बताने के लिए प्रबुद्ध व्यक्ति को उत्साहपूर्वक आगे आना चाहिए। कोई दीन-दरिद्र झोली लेकर भिक्षा माँगने भी जाते हैं, पर अपना झोला उससे भिन्न है। यह अमृत बाँटने का, प्रकाश बाँटने का, कल्याण बाँटने का अभियान है। यह असीम दान और अनुपम पुण्य परमार्थ है, आत्मा की भूख, अंतःकरण की प्यास, बुझाकर हम उतना पुण्य संचय कर सकते हैं। जितना नगर भोज या राज्य भोज की व्यवस्था करने, करोड़ मन अन्नदान और लाख मन वस्त्रदान करने पर भी सम्भव नहीं। शरीर की सेवा-सहायता भौतिक रूप से करना भी उत्तम है। पर किसी की आस्था को जन्म देना किसी के अंतःकरण में प्रकाश उत्पन्न कर देना इतनी बड़ी सेवा-सहायता है कि उसकी तुलना में अन्य कोई सेवा-सहायता नहीं ठहरती। झोला पुस्तकालय इसी पुण्य को अर्जित करने का सर्वश्रेष्ठ साधन है।

चल पुस्तकालय ज्ञान देवता के रथ

अपने देश में लोगों की पढ़ने की ओर रुचि बहुत कम या नहीं के बराबर ही पाई जाती है। अन्य देशों के निवासी निर्वाहोपयोगी आवश्यकताओं की मद के साथ ही स्वाध्याय साहित्य के लिए भी खर्च की व्यवस्था रखते हैं। परन्तु अपने देश में इसे फिजूलखर्ची समझा जाता है। कारण जो भी हो इस स्थिति का दुष्परिणाम बौद्धिक स्तर पर पिछड़ेपन के रूप में ही सामने आता है। अशिक्षित और बिना पढ़े-लिखे व्यक्तियों में अध्ययन रुचि का अभाव तो स्वाभाविक है, किन्तु पढ़े-लिखे शिक्षित व्यक्तियों द्वारा भी इस ओर उदासीनता ही बरती जाती है, तो स्थिति खेदजनक या निराशापूर्ण ही बनी रहती है। शिक्षित व्यक्ति भी जितना स्कूल में पढ़ लिया उतना ही काफी समझ लेते हैं और स्कूल कालेजों में भी ज्ञानार्जन अथवा योग्यता वृद्धि के उद्देश्य से नहीं पढ़ा जाता। वहाँ भी परीक्षा पास कर लेने का उद्देश्य ही सामने रहता है। यही कारण है कि उच्च शिक्षित व्यक्तियों का बौद्धिक स्तर भी जनसामान्य से जरा ऊँचा नहीं उठ पाता। आये दिनों समाचार-पत्रों में इस तरह की घटनायें छपती रहती हैं, जिनसे विदित होता है कि उच्च शिक्षित व्यक्तियों में भी सामान्य ज्ञान का कितना चिन्तनीय अभाव है।

कारण कुछ और नहीं अध्ययनशीलता का अभाव ही है। कहा जा चुका है कि अपने यहाँ पढ़ना, अध्ययन करना बेकार का काम समझा जाता है और उसी कारण हम लोग ज्ञानक्षेत्र में पिछड़े हुए हैं। जबकि अध्ययनशीलता अच्छे भोजन, गहरी नींद और अन्य आवश्यकताओं से प्राथमिक आवश्यकता है। यह आवश्यकता नियमित रूप से सत्साहित्य का अध्ययन करने, पुस्तक प्रेम को विकसित करते रहने से पूरी होती है। पश्चिमी देशों में साहित्य और स्वाध्याय को अन्य आवश्यकताओं के समान ही महत्त्व दिया जाता है। यही कारण है कि वहाँ की सामान्य जनता का ज्ञानक्षेत्र अपने देश की जनता से हजारों गुना अधिक विकसित हुआ है। केवल सोवियत संघ में ही ९,८०० दैनिक पत्रों की ५७८ लाख प्रतियाँ छपती हैं अर्थात वहाँ की जनसंख्या के अनुपात से प्रति व्यक्ति पीछे दो समाचार-पत्र हैं, जबकि अपने यहाँ १०० में एकाध व्यक्ति ही समाचार पत्र खरीदता है। इसके अतिरिक्त वहाँ लगभग साढ़े तीन हजार अन्य पत्र छपते हैं, पत्रिकायें छपती हैं, जिनकी ५५ करोड़ ३० लाख प्रतियाँ बिकती हैं। पुस्तकों का प्रकाशन तो वहाँ और भी बड़े पैमाने पर होता है। केवल फ्रान्सीसी भाषा की पुस्तकें इतनी प्रकाशित हुई हैं कि यदि उन्हें एक अलमारी में रखा जाय तो उसकी लम्बाई पेरिस से मास्को तक होगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अमेरिका में कई पत्रिकाओं की संख्या ५० लाख से भी अधिक है। जबकि अपने देश में किसी बड़े पत्र की प्रसार संख्या डेढ़-दो लाख होना भी बहुत ज्यादा समझा जाता है। कनाडा, आस्ट्रेलिया और ब्रिटेन जैसे छोटे-छोटे देशों में भी पत्र-पत्रिकाओं की १०-१० लाख प्रतियाँ आसानी से बिक जाती हैं। ये आँकड़े बताते हैं कि पश्चिमी देशों में साहित्य और स्वाध्याय के प्रति लोगों में कितनी निष्ठा है ? इन आँकड़ों की तुलना अपने देश के प्रकाशनों और उनके प्रसार क्षेत्र से करते हैं तो प्रतीत होता है कि अपने यहाँ पुस्तक प्रेम का घोर अभाव है। इसके लिए निर्धनता भी उतना बड़ा कारण नहीं है जितना कि ज्ञानार्जन की रुचि का अभाव क्योंकि निर्धन व्यक्ति भी भोजन, वस्त्र आदि की शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करते ही हैं जो अशिक्षित हैं उनकी बात अलग है पर पढ़े-लिखे व्यक्ति में भी पुस्तक प्रेम का खलने वाला अभाव एक चिन्तनीय कारण है, जो देश का औसत बौद्धिक स्तर ऊँचा नहीं उठने देता।

पठन रुचि का अभाव और विकास

कुछ व्यक्ति किसी तरह थोड़ा-बहुत पढ़ते भी हैं किन्तु उनकी पठन रुचि का स्तर देखते हैं तो उससे और भी निराशा ही होती है क्योंकि अधिकांश व्यक्ति प्राय: रोमांटिक, जासूसी या रोमांचकारी साहित्य पढ़ने तक ही अपना पुस्तक प्रेम सीमित रखते हैं, जबकि अच्छे स्तर के साहित्य का स्वाध्याय ही अधिक आवश्यक और उपयोगी है, किन्तु इस तरह के साहित्य की ओर जनसाधारण की रुचि प्राय: नहीं के बराबर ही रहती है अत: लोगों में इस स्तर की अभिरुचि जागृत करने के लिए प्रबल प्रयास करना आवश्यक है।

सत्साहित्य का प्रचार इसलिए भी आवश्यक है कि इसके द्वारा लोगों तक व्याप्त बुराइयों के निराकरण और समस्याओं के समाधान का प्रकाश पहुँचाया जा सके। इसके द्वारा ही लोगों को जीवन उत्कर्ष व आत्मनिर्माण की प्रेरणायें प्रदान की जा सकती हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति में लोग सत्साहित्य का महत्त्व समझते हैं, उन्हें चाहिये कि वे इस दिशा में लोकरुचि जाग्रत करने के लिए प्रयास करें। लोगों में अच्छे साहित्य को पढ़ने की रुचि नहीं है इसलिए सत्साहित्य के माध्यम का उपयोग न किया जाय। इस तर्क में कोई औचित्य कहाँ है ? लोगों की रुचि तो नशा करने और अखाद्य पदार्थों का सेवन करने में भी होती है। घर सुधार वर्ग के व्यक्ति उन्हें इन दुष्प्रवृत्तियों की हानियाँ समझाकर अच्छी आदत डालने के लिए प्रयत्न करते रहते हैं। सत्साहित्य की आवश्यकता इतनी उथली नहीं मान लेनी चाहिए कि लोग उसे नहीं पढ़ते तो इस दिशा में प्रयास ही न किया जाय और न घटिया स्तर के साहित्य को नशों, दुर्व्यसनों से कम हानिकारक ही समझना चाहिए। लोगों को घटिया स्तर की पुस्तकें पढ़ना अधिक अच्छा लगता है, तो उन्हें घटिया स्तर के साहित्य का दुष्प्रभाव और हानियाँ समझाकर सत्साहित्य के अध्ययन की रुचि जगानी चाहिए। इसके लिए अच्छे स्तर का साहित्य लेकर लोगों के पास पहुँचाने से लेकर उन पर अपने व्यक्तिगत प्रभाव का उपयोग करने तक के विविध तरीके अपनाये जा सकते हैं।

कुछ व्यक्तियों में यदा-कदा अच्छा साहित्य पढ़ने की रुचि जागृत भी होती है, परन्तु वैसा साहित्य उपलब्ध न होने के कारण यह रुचि जैसी उठती है, वैसी ही शान्त हो जाती है। मनोरंजक और घटिया पुस्तकें पढ़ने का तो लोगों को तो चस्का लगा रहता है, इसलिए उस तरह की पुस्तकें तो लोग ढूँढ़-ढूँढ़कर भी पढ़ते हैं। जिन्हें नशे की तलब लगती है, वे आसानी से नशा न मिलने पर उसे खोजते फिरते हैं और जब तक वह मिल नहीं जाता तब तक उन्हें चैन नहीं पड़ता। यही बात घटिया साहित्य के सम्बन्ध में भी लागू होती है, जिन्हें उसकी चसक बैठ जाती है, वे उसे ढूँढ़-खोजकर अपना शौक पूरा करते हैं। किन्तु उनमें अच्छे साहित्य के अध्ययन की कोई गहन रुचि उत्पन्न नहीं हुई है, उन्हें कभी-कभी उस तरह की इच्छा होती है तो वे अच्छी पुस्तकों को ढूँढ़ने के लिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं करते। मिलती है तो पढ़ लेते हैं, नहीं मिलती है तो कोई कोशिश भी नहीं करते, वह इच्छा बिना पूरी हुए ही मर जाती है।

सत्साहित्य को लोकप्रिय बनाने के महाकार्य में लगे लोगों को इस तरह का प्रयास करना चाहिए कि सर्वसाधारण को अच्छे स्तर का साहित्य सरलतापूर्वक उपलब्ध हो सके। झोला पुस्तकालय द्वारा इस दिशा में कुछ व्यक्तिगत प्रयास किये जा सकते हैं पर उतना मात्र ही संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। एक तो झोला पुस्तकालय का कार्यक्षेत्र सीमित होता है। उसके द्वारा अपने परिचितों और सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों तक ही सत्साहित्य पहुँचाना सम्भव होता है। पर उनका व्यक्तिगत परिचय क्षेत्र बहुत सीमित होता है और उसमें भी कुछ व्यक्ति अशिक्षित या अल्पशिक्षित हो सकते हैं, जिनके लिए पढ़ पाना सम्भव नहीं रहता।

सरल व प्रभावी व्यवस्था

दूसरे, झोला पुस्तकालय द्वारा केवल उन्हीं पुस्तकों से दूसरों को परिचित कराया जा सकता है, जो अपने पास उपलब्ध हों और उनमें भी जो झोले में रखी जा सकें। यद्यपि व्यक्तिगत तौर पर यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य है, किन्तु सार्वजनीन सुलभ व्यवस्था बनाने के लिए ऐसे प्रयास भी किये जाने चाहिए, जिससे सत्साहित्य परिचित-अपरिचित, जाने-अनजाने सभी क्षेत्रों में आसानी से पहुँच सके। इसके लिए चल पुस्तकालयों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्थापना और उसके माध्यम से जनक्षेत्रों में पहुँचना एक बहुत ही प्रभावशाली उपाय हो सकता है। चल पुस्तकालय के द्वारा लोगों को सत्साहित्य का महत्त्व, उसकी आवश्यकता समझाते हुए उनमें रुचि भी जगाई जा सकती है और उस साहित्य को सरलता से उपलब्ध भी कराया जा सकता है।

हल्के रबड़ के पहियों की गाड़ी तैयार करवाकर उसका उपयोग चल पुस्तकालय के रूप में किया जा सकता है। इस गाड़ी में रखी पुस्तकों को धूप, हवा और वर्षा से बचाने की व्यवस्था हो और पहियों को तीन तरफ से घेरे हुए टीन या कपड़े के साइनबोर्ड, बस हो गया चल पुस्तकालय तैयार। इसके लिए कोई अधिक पूँजी की जरूरत भी नहीं पड़ती। सामान्यत: एक अच्छी ढक्कनदार गाड़ी २००-२५० रुपये में तैयार हो जाती है। पुस्तकालयों के लिए साहित्य खरीदने पर प्राय: सभी प्रकाशक कमीशन देते हैं। यदि उस कमीशन को न्यूनतम २५ प्रतिशत भी माना जाय तो एक हजार रुपये का साहित्य ७५० रुपये में आता है। इस प्रकार एक हजार रुपये की पूँजी से यह चल पुस्तकालय आसानी से तैयार हो जाता है। यदि कहीं इतने धन की व्यवस्था न हो सके या उपलब्ध साधन कम पड़ते हों तो बिना ढक्कन की गाड़ी से भी काम चलाया जा सकता है। वह डेढ़-दो सौ रुपयों में आसानी से तैयार हो सकती है। यदि पर्याप्त मात्रा में साहित्य न मँगाया जा सके तो अखण्ड ज्योति और युग निर्माण पत्रिकाओं के पुराने अंकों पर मोटे कागज का कवर लगाकर चल पुस्तकालय की व्यवस्था बनाई जा सकती है। इस व्यवस्था में चार-पाँच सौ से अधिक की पूँजी नहीं लगती। इसकी व्यवस्था आसानी से की जा सकती है।

उच्चकोटि का देवाराधन

यदि चल पुस्तकालयों के महत्त्व को समझ लिया जाय तो उत्साही व्यक्तियों के लिए इतनी रकम जुटाना जरा भी असम्भव नहीं है, यह न केवल सर्वोपरि समाज सेवा है वरन् धार्मिक दृष्टि से भी इसे एक उच्चकोटि का देवाराधन मानना चाहिए। ज्ञान निसंदेह संसार का सबसे बड़ा देवता है, उसका अनुग्रह प्राप्त करते ही मनुष्य हर दृष्टि से धन्य हो उठता है। उसे पारस भी माना जा सकता है, जिसका संस्पर्श प्राप्त करने और प्रभाव ग्रहण करने से अपने जीवन को उत्कृष्ट बनाया जा सकता है। सद्ज्ञान को कल्पवृक्ष भी कहा जा सकता है क्योंकि जहाँ यह रहता है, इसके सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों की मनोकामनायें परिष्कृत होती हैं और उनकी पूर्ति की व्यवस्था पग-पग पर बनती रहती है। ज्ञान अमृत है, मनीषियों ने कहा है कि मृत्यु से छुटकारा दिलाने वाला अथवा पी लेने पर अमर बना देने वाला कोई पेय होता है अथवा नहीं इस सम्बन्ध में तो निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता, किन्तु ज्ञान ऐसा अमृत है, जिसे प्राप्त कर मृत्यु के भय से मुक्त हुआ जा सकता है। सचमुच सद्ज्ञान अमृत को प्राप्त कर जीवन और मृत्यु की वास्तविकता समझी जा सकती है। इसके द्वारा न केवल मृत्यु के भय से वरन् सभी प्रकार के भयों से मुक्त हुआ जा सकता है।

सद्ज्ञान के द्वारा मनुष्य देवताओं की पंक्ति में जा विराजता है और वह जहाँ-कहीं भी रहता है, वहीं दिव्य वातावरण विनिर्मित होने लगता है। इसलिए ज्ञान को सबसे बड़े देवता की संज्ञा दी गई है। देवी-देवताओं के कई एक मन्दिर होते हैं, उनमें देवी-देवताओं की प्रतिमायें स्थापित की जाती हैं, जो उनके स्वरूप का प्रतिनिधित्व करती हैं। यद्यपि प्रतिमायें पाषाण की होती हैं, मानने वालों के लिए वह भगवान हैं। उनकी पूजा-अर्चना के सत्परिणाम भी भावनाओं और श्रद्धा के अनुरूप मिलता है, किन्तु ज्ञान एक ऐसा देवता है कि जिसकी प्रतिमा सम्पर्क में आते ही लाभान्वित करने लगती है। ज्ञान देवता की जीवन प्रतिमा पुस्तकों के द्वारा कोई भी व्यक्ति किसी भी क्षण ज्ञान देवता से सम्पर्क स्थापित कर सकता है। अन्य देवताओं से प्रतिमा के द्वारा सम्पर्क स्थापित करने के लिए लम्बे समय तक आराधना की आवश्यकता पड़ती है, परन्तु ज्ञानदेवता की प्रतिमा पुस्तक तत्काल सम्पर्क का प्रभाव डालती है।

ज्ञान देवता की रथयात्रा

इस ज्ञान देवता का सम्पर्क जन-जन को कराने के लिए उनकी रथयात्रा निकाली जाना चाहिए। देवदर्शन का यह भी एक प्रकार है और मंदिर की व्यवस्था चलाने से अधिक श्रेयस्कर है। कई लोग नित्यप्रति देवदर्शन करते हैं किन्तु जिन दिनों रथयात्रा का आयोजन होता है, उन दिनों रथयात्रा में भाग लेने का पुण्य विशेष होता है, जगन्नाथ जी के मंदिर में रोज हजारों तीर्थयात्री दर्शन करने आते हैं। किन्तु जिन दिनों रथयात्रा उत्सव चलता है उन दिनों यात्रियों की संख्या लाखों तक हो जाती है। जगन्नाथ रथयात्रा में जगन्नाथ जी की प्रतिमा को रथ में बिठाकर घुमाया जाता है। वृन्दावन में भी इसी प्रकार रंगजी के मंदिर में रंगजी की प्रतिमा का रथोत्सव होता और हजारों लोग रथ खींचने के लिए मथुरा वृन्दावन पहुँचते हैं। ज्ञानदेवता की रथयात्रा को भी इसी स्तर का पुण्य फलदायी समझना चाहिए।

यात्रा का बड़ा महत्त्व है और ज्ञानदेवता की रथयात्रा का तो कहना ही क्या ? यदि ज्ञान को देवता माना जाय तो उस देवता की प्रतिमायें चल पुस्तकालय, रथयात्रा के रूप में घुमाई जा सकती हैं इस यात्रा का अपना महत्त्व है। यह चलता-फिरता ज्ञान देवालय गतिशील गायत्री मंदिर है। श्रवण कुमार कंधे पर काँवर रखकर माता-पिता को तीर्थयात्रा कराने गये थे। शिवरात्रि पर शिव की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रतिमाओं पर गंगाजल चढ़ने के लिए आज भी लोग काँवर आदि ले जाते हैं। दक्षिण भारत में विष्णु भगवान एवं दूसरे देवताओं को तीर्थयात्रा आदि कराने के लिए सवारी में ले जाया जाता है। इसी प्रकार का माहात्म्य चल पुस्तकालयों का भी मानना चाहिए और उन्हें चलाने की हर जगह व्यवस्था करनी चाहिए।

सर्वश्रेष्ठ समाज सेवा

चल पुस्तकालयों को इतना महत्त्व इसलिए भी दिया जाना चाहिए कि जनसाधारण में सत्साहित्य के प्रति प्रेम और उसे पढ़ने की सुगम व्यवस्था इनके द्वारा बड़ी सरलता से की जा सकती है। सामाजिक दृष्टि से यह एक उच्चकोटि की समाज सेवा इसलिए है कि इस माध्यम से सत्साहित्य जनसाधारण तक पहुँचाकर लोगों की समस्याओं तथा उलझनों का व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत किया जा सके। सत्साहित्य कहा भी उसे जाना चाहिए, जिससे लोगों को अपना जीवन उठाने और व्यक्तित्व का परिमार्जन करने की प्रेरणा मिले। आजकल क्या व्यक्तिगत और क्या सामाजिक जीवन सभी क्षेत्र समस्याओं से ग्रस्त हैं। उसका कारण व्यक्ति की मान्यताओं और जीवन मूल्यों में आया पतन ही है। उस पतन का निराकरण नैतिक मूल्यों तथा जीवन आदर्शों के पुनःनिर्माण से ही सम्भव है। यह कार्य सत्साहित्य के माध्यम से आदर्शवादी प्रेरणायें उभारकर ही किया जा सकता है।

समाज में व्याप्त समस्याओं के समाधान हेतु विभिन्न स्तर के प्रयास आवश्यक हैं। उन सभी प्रयासों में सत्साहित्य का प्रसार-सद्ज्ञान और सत्प्रेरणाओं का विस्तार अधिक उपयोगी और अधिक श्रेयस्कर है। समस्याओं का स्थाई समाधान उस स्तर की दिशायें देने से ही सम्भव हो सकता है। तात्कालिक समाधान के रूप में कुछ सहयोग प्रस्तुत भी किया जा सकता है किन्तु स्थायी हल उसके मूल कारणों को हटाकर ही किया जा सकता है, प्रस्तुत समस्याओं के सभी कारण मूलतः हमारे विचार क्षेत्र में ही विद्यमान रहते हैं। विचारों के द्वारा ही हमारी मान्यतायें बनती हैं, धारणायें बदलती हैं और उनके अनुरूप ही क्रियायें ढलती हैं। अध्यात्मवाद भौतिक दर्शन से इन्हीं अर्थों में भिन्न और विशिष्ट है कि उसके द्वारा अधिक गहराई तक प्रवेश होता है तथा वस्तुस्थिति के अधिक निकट पहुँचा जा सकता है। उदाहरण के लिए आर्थिक समस्याओं को ही लें। पर्याप्त उपार्जन होते रहने पर भी बहुत-से लोगों को उपलब्ध साधन कम पड़ते हैं। कारण व्यय करने की कला से अनभिज्ञ रहना हो सकता है। बहुधा होता भी यही कारण है। इसके रहते उपार्जन बढ़ाने के लिए कितने ही प्रयास किये जायें तो भी समस्या का समाधान नहीं हो सकता, उसके लिए अपनी खर्चीली आदतों पर नियन्त्रण करना ही पड़ेगा। यह दिशा और प्रेरणा सत्साहित्य से ही मिल सकती है। समाज के विभिन्न वर्गों में व्याप्त समस्याओं के लिए भी समाज के विभिन्न करने और परामर्श तक जन जागृति का संदेश पहुँचाना उतना ही आवश्यक है जितना कि अन्य स्तर के प्रयास, जैसे बेकारी मिटाने के लिए रोजगार के अवसर प्रस्तुत करने के कार्यक्रम बनाये जाते हैं, रोग बीमारियों से निपटने के लिए स्वास्थ्य चिकित्सा सुविधायें उपलब्ध कराई जाती हैं। उसी प्रकार इन समस्याओं के कारण पर विचार करके निराकरण प्रस्तुत करना भी उतना ही आवश्यक है। यही नहीं विचार परिष्कार उपरोक्त प्रकार के कार्यक्रमों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण, अधिक आवश्यक और अधिक प्रभावशाली है। रोजगार के अवसर उपलब्ध कराये जायें किन्तु लोगों में श्रमशीलता, तत्परता और कार्य के प्रति निष्ठा ही न हो तो उन अवसरों के प्राप्त करने के बाद भी आदमी बिना लाभ उठाये ही उन्हें गँवा देगा। चिकित्सा सुविधायें उपलब्ध कराई जायें किन्तु लोगों के पास स्वस्थ कैसे रहा जाय, निरोग जीवन कैसे व्यतीत किया इसकी दिशा ही न हो तो पुनः असंयम और अनियमित जीवन बिताने के कारण वैसी ही रोग बीमारियाँ खड़ी हो सकती हैं या और दूसरी विकृतियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। कहने का आशय यह है कि यदि समस्याओं के मूलकारणों पर दृष्टिपात न किया गया और उन्हें दूर करने का प्रयास न किया गया तो समस्याओं के बाहरी समाधान तत्काल तो कोई प्रभाव दिखा सकेंगे पर कुछ समय बीतने पर समस्या वापस ज्यों की त्यों उठ खड़ी होगी।

सम्पर्क की सुविधा

विचार परिष्कार का कार्य सत्साहित्य के द्वारा भली-भाँति किया जा सकता है। इतना प्रभावशाली माध्यम कोई दूसरा नहीं मिल सकता, जिससे जब चाहे तब सम्पर्क किया जा सके और लाभ उठाया जा सके। सद्विचारों के प्रचार हेतु होने वाले सम्मेलनों और सभाओं में समय की पाबन्दी रहती है, निश्चित स्थान पर पहुँचना पड़ता है और वैसी व्यवस्था कभी-कभी ही उपलब्ध हो पाती है। यदि समय से न पहुँचे तो अवसर निकल जाता है, स्थान दूर हो तो पहुँचना कठिन हो जाता है और हर घड़ी वैसी व्यवस्था बन पाना तो सम्भव है ही नहीं। जबकि सद्विचारों की आवश्यकता हर घड़ी और अनिवार्य रूप से बनी रहती है। इसलिए उसे सुगमतापूर्वक उपलब्ध कराने की व्यवस्था बनानी चाहिए।

प्रकृति का भी यही नियम है। जो चीज जितनी आवश्यक है वह उसी मात्रा में वैसी ही सुविधा के साथ मिलती है। हवा के बिना प्राणी जिंदा नहीं रह सकते तो प्रकृति ने हर समय उसे सबको सब जगह उपलब्ध करा रखा है। उसे प्राप्त करने के लिए किसी को विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता। साँस लेने और छोड़ने का क्रम सहज ही चलता रहता है। साँस छोड़ने में जो हवा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निकलती है, प्रकृति उसे बहाकर स्वयमेव ले जाती है और पेड़-पौधों में बाँट देती है तथा उसके स्थान पर नई ताजी हवा बहकर आ जाती है।

पानी हवा से जरा कम मात्रा में चाहिए किन्तु अन्य दूसरी वस्तुओं से उसकी आवश्यकता प्राथमिक है। इसीलिए कुँए, तालाब, झरने, नदियाँ आदि जगह-जगह मिल जाते हैं। उनमें भी पानी सूख जाता है तो प्रकृति बादलों द्वारा पानी बरसा देती है और प्राणी उससे अपनी आवश्यकतायें पूरी कर लेते हैं। इसके बाद खाद्य पदार्थों का क्रम आता है, तो वह पानी के बाद सबसे ज्यादा आसानी से मिल जाता है। सद्विचारों को भी हवा, पानी और खाद्यान्न की तरह आवश्यक समझना चाहिए और उसके आधार—सत्साहित्य को सब जगह उपलब्ध कराने की व्यवस्था बनानी चाहिए। विलासिता की चीजें बड़े शहरों और किन्हीं विशेष बाजारों में ही मिलती हैं किन्तु अनाज, शाक-सब्जियाँ और तत्सम्बन्धी अन्य वस्तुएँ छोटे-छोटे गाँवों में भी मिल जाती हैं। सत्साहित्य मानसिक आहार है और उसे उपलब्ध कराने की व्यवस्था भी आहार सम्बन्धी वस्तुओं की तरह होनी चाहिए।

खाने-पीने और पेट भरने की चीजें जिन मौहल्लों या गाँवों में दुकानों पर उपलब्ध नहीं होती, वहाँ फेरी लगाने वाले पहुँचते हैं और लोगों को ऐसी वस्तुएँ बेचते हैं। सत्साहित्य जिसकी आवश्यकता शौकिया स्वादिष्ट वस्तुओं जैसी नहीं, आवश्यक खाद्य आहार के समान माननी चाहिए और सर्वसाधारण को उसी प्रकार उपलब्ध कराना चाहिए। चल पुस्तकालयों द्वारा फेरी लगाने वालों की-सी सुविधा और रुचि उत्पन्न करने का जागृति प्रयास चलाना चाहिए। चल पुस्तकालय भले ही संस्थागत योजना के रूप में चलाये जायें अथवा व्यक्तिगत रूप से एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। फेरी लगाने वाले विक्रेताओं में भी कई किसी संस्थान से सम्बद्ध होते हैं और बहुत से व्यक्ति स्वयं व्यक्तिगत रूप से भी चलाते हैं। मुख्य प्रश्न यह नहीं है कि चल पुस्तकालय संस्थागत रूप से चलाये जा रहे हैं अथवा व्यक्तिगत रूप से। उन्हें किसी भी रूप में चलाया जाय, यह तथ्य ध्यान देने और व्यवहार में लाने की आवश्यकता है। इनकी व्यवस्था सर्वत्र की जानी चाहिए। इस प्रकार सत्साहित्य का परिचय और प्रचार चल पुस्तकालयों द्वारा देखते-देखते ही सारे नगर एवं क्षेत्र में हो जाता है और जिन लोगों में पुस्तक प्रेम का अभाव है, वे भी सत्साहित्य के अध्ययन को अपने स्वभाव में सम्मिलित कर लेते हैं। विचारशील व्यक्तियों द्वारा इस स्तर का सत्साहित्य लेकर सर्वसाधारण में पहुँचने भर की आवश्यकता है। उत्साही व्यक्तियों को जीवन निर्माणकारी साहित्य लेकर नियमित रूप से प्रतिदिन ऐसे स्थानों पर पहुँचना चाहिए, जहाँ कि लोगों से सम्पर्क किया जा सके। उसे लेकर एकाकी व्यक्ति भी निकलता रह सकता है। इससे पूर्व यह बात ध्यान देने योग्य है कि किस समय कहाँ-कैसे व्यक्ति उपस्थित होते हैं ? उदाहरण के लिए, मन्दिर को लें तो वहाँ प्रायः सुबह शाम जाया करते हैं और जो मन्दिर में जाते हैं उनमें से अधिकांश व्यक्ति धार्मिक भावनाओं वाले होते हैं। मन्दिरों में उपासना-साधना का साहित्य लेकर पहुँचा जाय तो धार्मिक भावना वाले लोग सरलता से आकर्षित हो सकते हैं। इसी प्रकार पार्क, स्कूल, दफ्तर, कारखाने, बाजार, सिनेमा आदि स्थान चल पुस्तकालय लेकर जाने के लिए उपयुक्त हो सकते हैं। इन स्थानों पर लोग किस समय इकट्ठे होते हैं इसका पहले से ही अनुमान लगा लेना चाहिए।

कौशल और निष्ठा का समन्वय

धकेल गाड़ी पर लगे हुए साइन बोर्ड अपना परिचय आप दे सकते हैं। आवाज लगाकर या बोलकर भी अपना प्रयोजन बताया जा सकता है। बाजार में नई वस्तुओं की बिक्री के लिए एजेण्ट या प्रचारकगण बड़ी प्रभावशाली और लच्छेदार भाषा में अपनी कम्पनी के उत्पादनों का प्रचार करते हैं और इसी पद्धति से नये-नये उत्पादनों को लोकप्रिय बनाते हैं। व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए किये गये प्रचार कार्य, जिनमें कि लोगों की जेब से पैसा जाता है—तक सफलतापूर्वक चल सकते हैं, तो फिर क्या कारण है कि विशुद्ध परमार्थ से किया जाने वाला साहित्य प्रचार का कार्य सफल न हो सके। कई लोग प्रारम्भ में मिलने वाली असफलताओं से हतोत्साहित हो जाते हैं और बड़े उत्साह से आरम्भ किए गए चल पुस्तकालय को थोड़े दिन चलाने के बाद रोक देते हैं। उसका कारण निष्ठा का अभाव नहीं है। वस्तुतः उनमें निष्ठा होती है किन्तु प्रारम्भ में आशा के अनुरूप सफलता न मिलने से उत्साह मन्द पड़ जाता है। इसके लिए हतोत्साहित नहीं होना चाहिए वरन् अपनी कार्यशैली में कुशलता लाने के लिए तत्पर रहना चाहिए। विश्वास रखना चाहिए कि व्यावसायिक प्रयोजन के लिए एजेण्ट और प्रचारक लोग केवल अपने वाक्कौशल के द्वारा अपना उद्देश्य पूरा कर लेते हैं। फिर अपने साथ निष्ठा, कार्य के प्रति श्रद्धा, परमार्थ-प्रयोजन के लिए ध्येयशक्ति का सम्बल उपलब्ध रहता है। उसके साथ कार्य-कौशल मिल जाय तो सफलता और सुनिश्चित हो जाती है।

इस प्रकार निष्ठा और कौशल का समन्वय कर जन क्षेत्रों में चल पुस्तकालय खड़ा किया जाय। उस क्षेत्र में पहुँचकर, बोलकर जब लोगों को परिचय दिया जाता है तो लोग धकेल के आस-पास खड़े हो जाते हैं। जो लोग चल पुस्तकालय के आस-पास आकर खड़े हो जायें, उन्हें पढ़ने के लिए पुस्तकें दी जा सकती हैं। घर पर लगाने के लिए पोस्टर और चित्र दिये जा सकते हैं। लोगों से वार्तालाप द्वारा उनकी रुचि मालूम की जा सकती है, उन्हें सत्साहित्य की आवश्यकता और महत्ता बताई जा सकती है। अर्थात—इस तरह के कितने ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपाय किए जा सकते हैं, जिनसे जनसाधारण को इस साहित्य की ओर आकृष्ट किया जा सके। परिचय द्वारा आकर्षण उत्पन्न करने के साथ ही उन्हें विक्रयार्थ पुस्तकों का परिचय भी दिया जा सकता है और उनमें लिखे हुए प्रतिपादन का महत्त्व समझाया जा सकता है। साप्ताहिक अवकाश के दिन तो पूरे समय ही यह चल पुस्तकालय चलाया जा सकता है। उस दिन दफ्तर बन्द होंगे तो बाजार खुला होगा—बाजार बन्द हों तो दफ्तर खुले रहेंगे। वहाँ जाकर युग निर्माण अभियान का प्रयोजन तथा उसके साहित्य का विवरण बताया जा सकता है।

युग निर्माण योजना—चल पुस्तकालय प्रयोग

लोक शिक्षण करने अथवा जनमानस को दिशा देने के लिए युग निर्माण साहित्य अपने आप में एक समग्र जीवन दर्शन के लिए प्रस्तुत है। युग निर्माण परिवार शाखाओं द्वारा तो इस प्रकार के चल पुस्तकालय कई स्थानों पर चलाये भी जा रहे हैं। इस प्रकार सद्विचारों और सत्प्रेरणाओं का प्रवाह प्रवाहित करने के लिए चल पुस्तकालयों द्वारा किया जाने वाला जनसम्पर्क दो दृष्टियों से लाभदायक होता है। एक तो चल पुस्तकालय चलाने वाले का व्यक्तित्व प्रभावशाली बनता है। लोग समझते हैं और देखते हैं कि ज्ञानरथ संचालक अपना समय और श्रम एक अच्छे उद्देश्य के लिए लगा रहा है और वह उसके निजी लाभ के लिए नहीं, हमारे हित के लिए प्रयत्नशील है।

दूसरा लाभ लोगों को अपने जीवन स्तर ऊँचा उठाने की प्रेरणा और दिशा के साथ-साथ ही समाज को भी ऊँचा उठाने की प्रेरणा का मिलता है। बताया जा चुका है कि जनमानस को किसी कार्यक्रम का परिचय देने के लिए आयोजित होने वाले सम्मेलन से कभी-कभी ही वैसा अवसर प्रस्तुत होता है और दूसरे उसमें भी सभी लोग लाभ उठा नहीं पाते। इसके साथ प्रतिपादन शैली भी गम्भीरता के प्रभाव से संयुक्त नहीं हो पाती क्योंकि तब बात सभी लोगों को लक्ष्य कर कही जाती है और प्रतिपादन सामान्य हो जाता है। चल पुस्तकालय के साथ संवाद द्वारा जो प्रतिपादन किया जाता है, वह सामान्य नहीं होता। उसमें व्यक्तिगत स्तर की चर्चा भी सम्भव है। जनसभाओं अथवा सम्मेलनों में किये जाने वाले प्रतिपादन प्रायः परिचयात्मक या विवेचनात्मक स्तर के होते हैं किन्तु व्यक्तिगत रूप से जो चर्चा की जाती है—जो संवाद होते हैं, वे अधिक प्रेरणा देने वाले होते हैं। चल पुस्तकालय के साथ जब १०-१० व्यक्तियों से चर्चा की जाती है, तो वह वार्तालाप उपस्थित थोड़े-से व्यक्तियों की मनोभूमि और रुचि देख कर निर्धारित किया जाता है। इससे उसका प्रभाव भी अधिक पड़ता है। इस प्रकार प्रतिदिन चलने वाले सम्मेलन, हर समय होने वाली गोष्ठी और चल पुस्तकालयों के साथ चलने वाले संवाद से विचारशील व्यक्तियों को जनजागृति की प्रेरणा और उसके लिए क्या किया जाना चाहिए, इसकी दिशा दी जाती रह सकती है। उनसे वार्तालाप करते हुए साहित्य देने, उसे पढ़ने का आग्रह करने और उनकी प्रतिक्रिया सुनने का अवसर भी चल पुस्तकालय के साथ मिलता रह सकता है।

इस प्रकार विचारशील वर्ग से नियमित सम्पर्क बनने—उन्हें जनजाग्रति का संदेश सुनाने के साथ-साथ भावनाशील और उत्साही व्यक्तियों को प्रशिक्षण देते रहने की प्रक्रिया भी जारी रखी जा सकती है। प्रायः लोग उन स्थानों पर नियमित जाने लगते हैं, जहाँ उन्हें रुचि होती है। सरकस और रामलीला के कार्यक्रम प्रायः एक ही ढर्रे के होते हैं किन्तु लोग उन्हें बार-बार देखते हैं। मैजिक शो एकाध दो बार देखने पर मालूम पड़ जाता है कि जादूगर प्रायः एक ही तरह की जादूगरी बताते हैं किन्तु कौतूहलवश लोग उन्हें बराबर देखे बिना नहीं रहते। फिर चल पुस्तकालय के साथ तो उपयोगी विचार और सुलझा हुआ परामर्श भी प्राप्त करते रहने का आकर्षण जुड़ा रहता है। वहाँ समझदार व्यक्तियों का इकट्ठा होना स्वाभाविक है और यह भी स्वाभाविक है कि जिन लोगों के गले बात उतरने लगे, वे नियमित रूप से ही वहाँ आने लगें। ऐसे उत्साही व्यक्तियों का नियमित शिक्षण नव निर्माण के लिए कर्मठ कार्यकर्ता तैयार करने का प्रयोजन भी सिद्ध कर सकता है।

चल पुस्तकालय व्यवस्थित ढंग से चले

चल पुस्तकालयों की आवश्यकता और महत्त्व को स्वीकार कर उनकी स्थापना तुरन्त की जा सकती है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि चल पुस्तकालयों द्वारा जनजागृति का संदेश तथा सत्साहित्य का प्रचार-विस्तार बड़े प्रभावशाली ढंग से किया जा सकता है। किन्तु इसके साथ अपनी कुछ शर्तें भी जुड़ी हैं। पहली और मुख्य तो यही है कि चल पुस्तकालय नियमित रूप में चलते रहें। प्रायः यह भी होता है कि चल पुस्तकालय का महत्त्व और उपयोगिता समझने पर अथवा कहीं से चलाये जाते देखकर लोग तुरन्त उसे स्थापित कर लेते हैं, परन्तु वह उत्साह कुछ समय तक इतना बढ़ा-चढ़ा रहता है कि चलाने वाले अपना अधिकांश समय उसी में लगाने लगते हैं और कुछ समय बाद जब उत्साह थोड़ा ठण्डा पड़ता है तो चल पुस्तकालय बन्द हो जाते हैं।

स्वयं पूरा समय दे पाने पर आपत्ति भी की जानी चाहिए क्योंकि अपने दैनिक कार्यों में समय देने के बाद प्रत्येक व्यक्ति के पास दो तीन-घण्टे का समय ही आसानी से बचता है। इस समय को या तो चल पुस्तकालय चलाने में लगा दिया जाय अथवा अन्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कार्यक्रमों में। यद्यपि चार घण्टे का समय आसानी से इसे चलाने में लगा सकते हैं, परन्तु अन्य कार्यों में भी दिमाग उलझा रहने से वैसा कर पाना हर किसी के लिए सहज सम्भव नहीं होता क्योंकि क्रम अनवरत चलाया जाना चाहिए। यदि बदल-बदलकर कार्यकर्ता अपनी ड्यूटी देते रहें तो भी हिसाब-किताब की कठिनाई सामने आती है। यह भी होता है कि पहले वाले कार्यकर्ता ने किसी परिचित व्यक्ति को चल पुस्तकालय में से कोई पुस्तक पढ़ने के लिए दी है, तो वह व्यक्ति ड्यूटी बदलने पर आने वाले दूसरे कार्यकर्ता के लिए अपरिचित हो।

प्रारम्भ में कार्यकर्ता बड़े उत्साह के साथ इसे चलाने लगते हैं। उस समय यह कार्यक्रम सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण लगता है। कुछ दिनों तक पुस्तकालय चलाने के बाद कोई दूसरा कार्यक्रम महत्वपूर्ण जँचने लगता है और चल पुस्तकालय गौण हो जाता है। इससे भी कार्यकर्ताओं का ध्यान बँटता है और वे चल पुस्तकालय छोड़कर दूसरे कार्यक्रमों में लग जाते हैं। परिणाम यह होता है कि चल पुस्तकालय जैसी महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया बीच में ही अवरुद्ध हो जाती है। कहने का आशय यह नहीं है कि सभी सेवाभावी व्यक्ति अन्य कार्यक्रमों को उपेक्षित कर चल पुस्तकालय पर ही अपना सारा ध्यान केन्द्रित कर दें और न ही यह कहा जा रहा है कि चल पुस्तकालय किसी भी कार्यक्रम से कम महत्त्व का है। इसे बराबर महत्त्व दिया जाना चाहिए और निरन्तर चल पुस्तकालय चलता रहे ऐसी व्यवस्था बनानी चाहिए। चल पुस्तकालय को एक अनिवार्य और नियमित चलते रहने वाला कार्य माना जाय तथा उसी तरह का प्रबन्ध किया जाय।

इसके लिए किसी सेवाभावी स्थायी कार्यकर्ता की नियुक्ति एक उपयोगी व्यवस्था हो सकती है। उसमें ध्यान बटने के कारण चल पुस्तकालय की उपेक्षा होने अथवा हिसाब-किताब बदलने से व्यवस्था में कोई कठिनाई आने की सम्भावना भी नहीं रहती। नियुक्त कार्यकर्ता अपना कार्य नियमित रूप से करता रहेगा और उसका सारा ध्यान चल पुस्तकालय पर ही बना रहेगा। ऐसे कार्यकर्ताओं की नियुक्ति पूरा समय चल पुस्तकालय को ही देते रहने के उद्देश्य से की जाय। किसी को वेतन या पारिश्रमिक देना तो किन्हीं भी लोकसेवियों के बस की बात भी नहीं हो सकती और सैद्धान्तिक दृष्टि से भी उसमें सेवाभावना का समुचित विकास नहीं हो पाता क्योंकि तब नियुक्त कार्यकर्ता की दृष्टि में लाभ उठाने वाली बात अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है और उसके साथ जुड़ा हुआ लोकसेवा का, जनजागृति का, सत्साहित्य के प्रसार का उद्देश्य गौण हो जाता है। अतः चल पुस्तकालय चलाने के लिए मिशनरी भावना से काम करने वाले व्यक्तियों को ही नियुक्त किया जाना चाहिए। कहा जा चुका है कि वेतन या पारिश्रमिक चुकाना हर किसी के लिए सम्भव नहीं हो सकता किन्तु ऐसे लोकसेवियों को पारितोषिक दिया जा सकता है। सेवा निवृत्त अथवा दूसरे प्रकार के ऐसे व्यक्ति इस कार्य के लिए उपयुक्त हो सकते हैं, जो नियमबद्ध रूप से सेवा करने का अवसर पाने के साथ-साथ थोड़ा-बहुत जेब खर्च मिलने का सौभाग्य भी प्राप्त करते रह सकें।

इस सम्बन्ध में कार्यकर्ता का यह दृष्टिकोण पहले से ही विकसित रहना चाहिए कि भौतिक जीवन में धन लाभ को ही गौरव की बात समझा जाता है। उसमें सफलता और शान इसमें समझी जाती है कि कौन कितना धन कमा सकता है ? तथा कौन कितना वैभव जुटा सकता है ? किन्तु आत्मिक जीवन में इससे भिन्न दृष्टिकोण अपनाना पड़ता है। उस जीवन की गरिमा ही इसमें बनती है कि जितना कम हो सके, उतना कम लाभ लिया जाय। प्राचीनकाल से लेकर अब तक लोकसेवियों की यही परम्परा रही है और जिन्होंने समाज से जितना कम लिया है, उस त्याग के बदले उतना ही अधिक पुण्य और यश मिला है। इस तरह का दृष्टिकोण रखने वाले व्यक्ति ढूँढ़ने का प्रयत्न किया जा सके तो निश्चित रूप से हर जगह ऐसे कार्यकर्ता मिल सकते हैं, जो नियमित रूप से इस कार्य में जुटे रह सकें। पूरा या आधा समय लगाने अथवा देने की बात स्थानीय परिस्थितियों और व्यक्तियों को ध्यान में रखते हुए निर्धारित की जा सकती है। इसके बदले उन्हें पारितोषिक के रूप में साधारणतया १०० रुपये से लेकर २०० रुपये की राशि दी जा सकती है।

किस कार्यकर्ता की नियुक्ति की जाय, उसमें कुछ योग्यताएँ भी देखनी चाहिए और कुछ बातें भी समझाई जानी चाहिए। जैसे कार्यकर्ता संकोची स्वभाव का न होना, चल पुस्तकालय चलाते समय विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों से सम्पर्क करना पड़ता है, उन्हें तरह-तरह से समझाना पड़ता है और निस्संकोच अपनी बात लोगों के सामने रखने का साहस रखना पड़ता है। संकोचशील व्यक्ति जन सम्पर्क के कार्यों में प्रायः इसी कारण असफल होते हैं कि जहाँ जो बात कही जानी चाहिए, उसे कहने में वे संकोच कर जाते हैं।

कार्यकर्ता को चल पुस्तकालय के उद्देश्य से अच्छी तरह परिचित भी होना चाहिए। वह अध्ययनशील तो हो ही, विभिन्न विषयों पर उसका दृष्टिकोण भी सुलझा हुआ रहना चाहिए। अध्ययनशील होने के साथ-साथ सत्साहित्य के प्रचार हेतु हर घड़ी प्रस्तुत भी रहना चाहिए। कम से कम आठ घण्टा समय तो चल पुस्तकालय के लिए लगाना ही चाहिए। जो सेवाभावी दो लिए तो दस घण्टे सोने खाने के अतिरिक्त १० घण्टे सेवा में ही संलग्न रहना चाहिए। आठ घण्टे तो नौकरों के लिए हैं, पर मिशनरी को तो नहरी भीड़ में जो जाने के अतिरिक्त प्रायः १८ घण्टे अपने कार्य के लिए, चिन्तन एवं श्रम करने में ही बिताने पड़ते हैं। जो चल पुस्तकालय चलाने वाले कार्यकर्ता भी अपने को मिशन का एक महत्त्वपूर्ण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अंग समझते हुए अधिक से अधिक समय शाखा के कार्यों में लगाते रह सकते हैं। यह नहीं मानना चाहिए कि हमें पारिश्रमिक या वेतन लेना है और उसका बदला अपने श्रम से चुकाना है। पारिश्रमिक जैसी कोई बात है ही नहीं। शाखा द्वारा भी जो कुछ दिया जा रहा है—वह पारिश्रमिक नहीं पारितोषिक है, जो अपना पूरा समय लोकसेवा के कार्य में लगाने और अन्य किसी कार्य में समय न देने की सेवा-भावना को सम्मानित करने के लिए किया जाता है। उसके साथ पारितोषिक शब्द इसलिए जुड़ा हुआ है कि पूरा समय देने पर अन्य साधनों से कुछ कमाने का अवसर तो मिलता नहीं, जिससे अनिवार्य आवश्यकताएँ पूरी होती रहें। उनका पूरा होना भी आवश्यक है। न्यूनतम लेने और अधिक श्रम करने की ब्राह्मण वृत्ति लोकसेवी का आदर्श है, इस दृष्टि से कुछ पाने के बावजूद भी उन कार्यकर्ताओं के लिए गौरव और सम्मान सुरक्षित है।

अन्य व्यक्तियों को भी चाहिए कि वे ज्ञानरथ संचालक का पूरा-पूरा सम्मान करें। उन्हें वैतनिक कर्मचारी नहीं, लोकसेवी कार्यकर्ता समझा जाय और वैसी ही प्रतिष्ठा दें। यदि प्रत्येक ऐसे स्थान पर जहाँ चल पुस्तकालय चलाये जायें, पूरा समय देने वाले ऐसे कार्यकर्ता नियुक्त कर लिए जायें तो जनजागरण की दूसरी गतिविधियाँ भी चलाई जाती रह सकती हैं।

युग निर्माण शाखाओं द्वारा जहाँ भी चल पुस्तकालयों की स्थापना की गई है, उनमें से कई स्थानों पर इस तरह के कार्यकर्ता नियुक्त किये हैं, जो अपना पूरा समय शाखा-संगठनों को देते हैं और चल पुस्तकालय चलाने के साथ-साथ संगठन की अन्य ऐसी गतिविधियाँ भी चलाते हैं। ऐसे स्थानों पर जहाँ युग निर्माण शाखाओं ने चल पुस्तकालय आरम्भ किये हैं और उनके लिए कार्यकर्ताओं की नियुक्ति की है, वहाँ नियुक्त कार्यकर्ता प्रातःकाल का समय जनसम्पर्क और संगठन परक गतिविधियों को सुदृढ़ बनाने हेतु सुरक्षित रखते हैं। स्वतन्त्र रूप से चलाये जाने वाले चल पुस्तकालयों में यदि गतिविधियाँ आवश्यक नहीं होतीं तो वहाँ सुबह के समय भी चल पुस्तकालय चलाया जा सकता है। दो घण्टे सुबह और चार घण्टे शाम को चल पुस्तकालय चलाया जाय तो कार्यकर्ता का पारितोषिक साहित्य के कमीशन से ही निकलता रह सकता है। पुस्तक विक्रेताओं को सामान्यतः प्रकाशक से साहित्य पर पच्चीस प्रतिशत कमीशन मिलता है। हर दिन पच्चीस-तीस रुपये का साहित्य बेच लेना किसी मिलनसार स्वभाव के व्यक्ति के लिए कठिन भी नहीं होना चाहिए। इतने में पाँच-सात रुपये कमीशन के आसानी से बच सकते हैं। यदि कम पड़ें तो नियुक्त कार्यकर्ता के पारितोषिक की पूर्ति लोकसेवियों द्वारा अपने जेब से पूरी की जा सकती है। इस प्रकार के जोड़-तोड़ मिलाकर उत्साही सेवा भावी व्यक्तियों द्वारा अपने यहाँ चल पुस्तकालय की स्थापना और उसके साथ कार्यकर्ता की नियुक्ति का दोहरा प्रयोजन पूरा किया जा सकता है।

युग निर्माण शाखाओं द्वारा चलाये जाने वाले चल पुस्तकालयों में कार्यकर्ता रात्रि के समय प्रचार कार्य भी करते हैं। रात्रि समय प्रचार के लिए कथा कहने और स्लाइड प्रोजैक्टर दिखाने के दो प्रमुख कार्य अपनाये गये हैं। सत्यनारायण कथा, भागवत कथा, गीता कथा की अभिनव शैली जो युग निर्माण योजना द्वारा विकसित की गई है, घरों और मुहल्लों में सत्संग प्रकाश फैलाने के लिए बड़ी ही उपयोगी सिद्ध हुई है। कथा आयोजनों के अतिरिक्त स्लाइड प्रोजैक्टरों से भी लोगों को जनजागरण का संदेश सुनाया जा सकता है। यद्यपि स्लाइड प्रोजैक्टरों की तुलना सिनेमा से तो नहीं की जा सकती पर उसके सहारे डेढ़ घण्टे का प्रवचन बहुत ही आकर्षक रीति से दिया जा सकता है, उसे देखने-सुनने के लिए कौतूहलवश भी अधिक व्यक्ति इकट्ठे होते हैं और रुचिपूर्वक नवयुग का संदेश सुनते हैं। लोकमंगल का यह तरीका लोकरुचि के अनुसार उपयुक्त भी बैठता है और इस माध्यम से जनता को आसानी से इकट्ठा भी किया जा सकता है।

उपरोक्त कार्यों का जिम्मा भी नियुक्त कार्यकर्ता को सोंपा जा सकता है। इनमें चल पुस्तकालय तो प्रमुख है ही। जहाँ भी इस तरह की नियुक्ति की गई है, वहाँ कार्यक्रमों के सुचारु रूप से चल पड़ने की उत्साहवर्धक सफलतायें भी तुरन्त मिलती दिखाई देने लगीं, इस व्यवस्था से जहाँ चल पुस्तकालय थे और शिथिलता अथवा निष्क्रियतावश बन्द पड़ गये थे, वे भी पुनः आरम्भ किये जा सकते हैं। कार्यकर्ताओं का पारितोषिक चल पुस्तकालय से स्वयं ही निकल सकता है। शाखा को अलग से कोई व्यवस्था नहीं करनी पड़ती, न उस ओर कोई विशेष ध्यान ही देना पड़ता है और विचार-विस्तार का उद्देश्य स्वतः एक सीमा तक पूरा होता चलता है।

जहाँ-कहीं भी इस तरह के प्रयास चलें, व्यवस्थित ढंग से उनका आरम्भ किया जाना चाहिए और योजनाबद्ध ढंग से नियमित उन्हें चलाना चाहिए। आज के युग में अनाथालय, औषधालय, धर्मशाला, प्याऊ आदि खोलना तो पुण्य का कार्य है ही, सद्ज्ञान प्रसार और सद्विचार जगाने वाले सत्साहित्य का प्रचार भी उस तरह के पुण्य कार्यों से किसी रूप में कम नहीं है बल्कि व्यक्ति और समाज को ऊँचा उठाने में सुदृढ़ आधार प्रस्तुत करने की दृष्टि से उन पुण्य प्रयासों की तुलना में भी अधिक श्रेष्ठ है, जो अपने को इस स्थिति और इस स्तर का अनुभव करते हैं कि उच्चकोटि का यह पुण्य-परमार्थ कर सकें, उन्हें इस पुण्य साधना में लगाना ही चाहिए।

इस युग की महानतम आवश्यकता

मानवीय महत्ता का मूल स्रोत उसकी विचारशीलता ही है। जीव-विज्ञान की दृष्टि में अति सामान्य स्तर के प्राणी मनुष्य को—सृष्टि का मुकुटमणि बना देने का श्रेय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसकी इस विचारकता को ही है। सतयुग जैसे श्रेष्ठ समय जब कभी आते हैं और इस धरती पर स्वर्गीय वातावरण का मंगलमय दर्शन होता है, तब उसके मूल में उत्कृष्ट स्तर की विचारधारा का ही चमत्कार छिपा रहता है। यह स्तर जैसे-जैसे गिरता जाता है, वैसे-वैसे व्यक्ति का व्यक्तित्व और समाज का वर्चस्व भी गिरता चला जाता है। निकृष्ट विचारधारा मनुष्यों को रोग, शोक, दुःख, दरिद्र, क्लेश-कलह के गर्त में ढकेलती चली जाती है और स्थिति यहाँ तक गिर जाती है कि मनुष्यों को नर पशु या नर-पिशाचों के रूप में तथा समाज को नारकीय युग में युद्धों, महामारियों, अपराधों, अभावों, द्वेष-दुर्भावों, संघर्षों एवं असन्तोष-उद्वेगों के बीच गई-गुजरी परिस्थितियों में समय गुजारते देखा जाता है।

विचारणा की उच्च स्थिति बनाये रखने के लिए अध्यात्म और धर्म का विशालकाय ढाँचा खड़ा किया गया है। स्वाध्याय और सत्संग की इतनी अधिक महिमा और व्यवस्था का जो महत्त्व प्रतिपादित किया गया है, उसके पीछे भी यही तथ्य सन्निहित है कि मनुष्य की विचार पद्धति आदर्शवादिता और उत्कृष्टता के स्तर पर बनी रहे, नीचे न गिरने पाये। विचार ही मनुष्य को बनाते, बिगाड़ते हैं और उन्हीं के आधार पर समाज की स्थिति में उत्थान-पतन के दौरे आते-जाते हैं। युगों का परिवर्तन और कुछ नहीं मानवीय विचारणा के स्तर का बदलना मात्र ही है। नर-पिशाच, नर-पशु, नरसिंह, नर-देव, नर-नारायण के आकाश-पाताल जैसे जो अन्तर मनुष्यों प्राणियों के बीच दीख पड़ते हैं, उनका रहस्य, विचार, पद्धति एवं दृष्टिकोण का अन्तर मात्र ही है। शरीर और बनावट की—रक्त और माँस की दृष्टि से प्रायः सभी मनुष्य एक समान हैं, पर उनमें से किसी को पतित और किसी को समुन्नत, किसी को घृणित किसी को सम्मानास्पद, किसी को सफल किसी को असफल, किसी को दुःखग्रस्त, किसी को सुखी-सन्तुष्ट देखा जाता है। उसका कारण और कुछ नहीं व्यक्ति की आस्था, विचार पद्धति, अभिमान और आकांक्षा मात्र ही है। आन्तरिक स्तर के अनुरूप बाह्य जीवन की परिस्थिति भी विनिर्मित होती है। जो जैसा सोचता है वह वैसा करता है और जिसका क्रियाकलाप जैसा है वैसी ही परिस्थितियाँ, सुविधाएँ सामने आकर खड़ी हो जाती हैं। सहायक और साधन भी वैसे ही बन जाते हैं या मिल जाते हैं। विचार मूल है—और कर्म तथा साधन उसके प्रतिफल। लोगों ने साधनों का महत्त्व तो समझा पर मूल आधार, विचार को शक्ति और क्षमता के मूल को आँख से ओझल रखा। साधन जुटाने में लगे रहे पर विचार-शोधन की ओर से मुँह मोड़ लिया। इसी भूल का परिणाम है कि व्यक्ति और समाज को हम भूल-भूलैयाँ में भटकता और उलझनों में पैर पटकता देखते हैं।

प्राचीनकाल के सुख-शान्ति भरे स्वर्णयुग-सतयुग का इतिहास जब हम पढ़ते हैं तो आश्चर्य होता है कि उस जमाने में हमारे पूर्व पुरुषों ने कैसा सुख-शांति भरे—साधन-सम्पन्न युग का आनन्द लाभ लिया होगा। उस समय किसी वस्तु का अभाव न था, कहीं अशांति न थी, क्योंकि मनुष्यों के बीच सहयोग और सद्भावना का बाहुल्य था। ऐसी परिस्थितियाँ तभी उपलब्ध हो सकती हैं जब जनमानस में उत्कृष्ट आदर्शवादिता की भावनाएँ प्रौढ़ता के साथ विद्यमान हों। हमारे पूर्व पुरुष उस आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए प्राण-पण से प्रयत्नशील रहते थे। साधु और ब्राह्मण का जीवन इसी महान प्रक्रिया को सम्पन्न करते रहने के लिए नियोजित रहता था, वे मानव जाति की आवश्यकता की पूर्ति में संलग्न रहते थे, विश्व मानव की इसी महान सेवा-साधना के लिए अपना जीवन उत्सर्ग करते थे। धर्म एवं अध्यात्म की शोध में उसे जनमानस में गहन स्तर तक प्रतिष्ठापित करने में ही उनका सारा क्रियाकलाप सीमित था। अपने प्रति पुरुषार्थ से वे लोकमान्यताओं में उत्कृष्टता बनाये रहने एवं बढ़ाते रहने में सफल हुए, अतएव सतयुग के कर्णधार भी उन्हें ही माना गया है। शास्त्रों की—धर्म ग्रन्थों की पूजा-प्रतिष्ठा का एकमात्र कारण यही है कि वे हमारे सोचने की प्रक्रिया में स्वार्थ को बहिष्कृत और परमार्थ को प्रतिष्ठित करने की प्रेरणा करते हैं। यही प्रेरणा व्यक्ति के उत्कर्ष और समाज के वर्चस्व की कुन्जी है। इसी के ऊपर विश्व-शांति का आधार अवलम्बित है।

उन्नति, श्री, समृद्धि, स्थिरता, प्रसन्नता और सुख-शान्ति के लिये भौतिक साधन जुटाने और व्यवस्थाएँ बनाने में अगणित बुद्धिमानों की बुद्धि, प्रतिभा वालों की प्रतिभा और धन वालों की समृद्धि लगी दिखाई पड़ती हैं। उन आधारों पर बहुत कुछ क्रियाकलाप होना और सरंजाम जुटाया जाना दीख पड़ता है। उसका परिणाम साधन-कलेवरों की अभिवृद्धि मात्र तक सीमित दीखता है, वे परिणाम सामने नहीं आते, जिनकी आशा में यह सारे प्रयत्न आरम्भ किये गये थे। मानवीय सुख-शांति—श्री और समृद्धि की अभिवृद्धि के साथ बढ़ नहीं रही है। अमेरिका जैसे धन-कुबेर माने जाने वाले देश में भी विक्षुब्ध मनुष्यों की संख्या ही अधिक है। वहाँ दिल की धड़कन, अनिद्रा, मधुमेह, रक्त-चाप जैसे रोगों की आँधी-तूफान की तरह बढ़ोत्तरी और अपराधों का उफान, सुख-शान्ति और व्यवस्था को तिनके की तरह उड़ाये लिए जा रहा है। सुविधाएँ उनके पास बहुत हैं—साधनों की कमी नहीं। फिर भी उद्विग्नता और अशांति की दिन-दूनी रात-चौगुनी अभिवृद्धि को देखते हुए यही सोचना पड़ता है कि कहीं कोई मौलिक भूल रह गई है।

भारतीय राष्ट्र अथवा विश्व के किसी भी भाग में सुख-समृद्धि की स्थापना एवं अभिवृद्धि की बात सोचने वालों को यह भी जानना होगा कि केवल साधन जुटा देने या धन बढ़ा देने मात्र से सुख-शान्ति और प्रगति का उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। सुख पदार्थों में नहीं दृष्टिकोण में है। शान्ति के लिए समृद्धि की नहीं, सद्भावना की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आवश्यकता है। इसलिए भौतिक साधनों को जुटाने और बढ़ाने के साथ-साथ यह भी सोचना होगा कि जनसाधारण का भावनात्मक स्तर उत्कृष्टता की दिशा में ऊँचा उठाने के लिए भी कुछ प्रयास किया जा रहा है या नहीं ? यदि इस दिशा में उपेक्षा बरती जायगी, तो स्मरण रखना चाहिए कि अभीष्ट उद्देश्य तक पहुँच सकना मृग-मरीचिका की तरह असम्भव ही बना रहेगा। अस्पताल, कॉलेज कारखाने और न्यायालय अपने स्थान पर उपयोगी हैं। वैज्ञानिक अनुसंधान, अस्त्र-शस्त्र, उद्योग, व्यवसाय, कला विनोद का भी अपना महत्त्व है। इनकी बढ़ोत्तरी होनी चाहिए। पर साथ ही यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि इन सारे प्रयत्नों के बावजूद मानवीय सुख-शान्ति में तब तक रत्ती भर भी अभिवृद्धि न होगी, जब तक भावनात्मक स्तर ऊँचा उठाने की ओर समुचित ध्यान न दिया जाय। यह भूलना नहीं चाहिए कि पतित विचार पद्धति इतना अधिक विघटन करती है कि छुट-पुट सृजन उनकी क्षति पूर्ति नहीं कर सकते। पैंदे में छेद हो तो उसमें भरा हुआ दूध देर तक नहीं रह सकता। समृद्धि में उत्पन्न हुई प्रसन्नता क्षणिक कौतुक दिखा सकती है पर स्थिर सन्तोष, आनन्द, साहस एवं उल्लास तो भावनाओं की ऊँचाई पर ही अवलम्बित है। निर्बल और अशिक्षित व्यक्ति भी पारस्परिक स्नेह, सहयोग और सद्भाव के होने पर स्वर्गीय जीवन जी सकते हैं किन्तु धन-वैभव से जिनके भण्डार भरे पड़े है, वे भी दुर्बुद्धिग्रस्त होने पर कुमार्गगामी बनते चले जाते हैं और किसी के साथ सच्ची आत्मीयता बनाये रहने में सफल नहीं होते। सुसम्पन्न लोगों को जितना ईर्ष्या-द्वेष, असन्तोष और असन्तुलन का शिकार रहना पड़ता है, उतना किसी सद्भावना सम्पन्न निर्धन को नहीं रहना पड़ता। गरीब भीख माँग सकता है पर बड़े अपराध तो साधन सम्पन्न लोग ही करते हैं। इसलिए गरीबी दूर करने के लिए समृद्धि के साधन जुटाने जितनी आवश्यकता है, उससे हजार गुनी आवश्यकता उत्कृष्ट विचारणा के अभिवर्धन की है। भावना स्तर को ऊँचा उठाकर हम अपनी, अपने परिवार की, अपने समाज, अपने विश्व एवं अपने युग की सबसे बड़ी सेवा कर सकते हैं।

कैसा अच्छा होता—यदि हम समृद्धि के सच्चे स्वरूप और प्रगति के सच्चे मार्ग को जान सके होते। कैसा अच्छा होता यदि हमने विचारणा और भावना की उत्कृष्टता का मूल्य, महत्त्व समझा होता। कैसा अच्छा होता—यदि हमारे प्रयत्न आर्थिक स्थिति सुधारने के साथ-साथ भावना स्तर ऊँचा उठाने की दिशा में नियोजित हुए होते। यदि हमारी विवेकशीलता थोड़ा साथ देती तो अपना और समस्त संसार का हित साधन हम सद्भावनाओं के अभिवर्धन में सन्निहित देखते और उस उपेक्षित तथ्य को सर्वोपरि मानकर ऐसे साधन जुटाने में संलग्न होते, जिससे जनसाधारण की आदर्शवादी विचारशीलता में बढ़ोत्तरी सम्भव होती। यदि प्रयत्न इस दिशा में भी हुए होते तो आज की दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियाँ बिल्कुल बदलती हुई होतीं। तब हम गाँधीजी की कल्पना के राम-राज्य में निवास कर रहे होते। भावनाशील नेतृत्व हमें मिला होता तो हर प्रजाजन के मानस में भावनाएँ उमड़ रही होतीं। स्मरण रखने और नोट करने की बात है कि प्रगति चाहे वह किसी भी दिशा में क्यों न हो भावनाओं के उत्कृष्ट प्रवाह पर ही निर्भर है हीन भावना वाले लोग भार होते हैं, भार रहते हैं और भार बढ़ाते हैं। भावनाएँ उफन रहीं हों तो गई-गुजरी परिस्थितियों को चीरकर अभीष्ट दिशा में द्रुतगति से प्रगति की जा सकती है।

गणेशों को बुद्धि कौन दे ? सारा देश राजनीतिज्ञों से पटा पड़ा है। योरोप, अमेरिका जैसी समृद्धि देश में लाने के लिए साधन सम्पन्न लोग बहुत पुरुषार्थ कर रहे हैं। उनसे कुछ कहना व्यर्थ है। यह तथ्य किन्हीं दूसरों को समझाना कठिन है कि भावनात्मक उत्कर्ष की सुव्यवस्थित और व्यापक योजना बनाई जाय तो थोड़े साधनों और थोड़े प्रयत्नों से भी हम ठोस प्रगति करते चलेंगे और सामने उपस्थित हर कठिनाई पर अपने सद्गुणों द्वारा विजय प्राप्त कर लेंगे। अन्न की उतनी कमी हमारे देश में नहीं जितनी उदारता और संयम की। आधी रोटी का अनाज हर व्यक्ति आसानी से कम कर सकता है और उसकी पूर्ति शाक-भाजियों से की जा सकती है। सप्ताह में एक समय उपवास या शाकाहार करके भी काम चलाया जा सकता है। इतने मात्र भावनात्मक सुधार से अन्न की सारी कमी पूरी की जा सकती है। न किसी से अन्न दान लेकर अपना स्वाभिमान खोना पड़े और न दिन-दिन विदेशी ऋण के बन्धनों में अधिक जकड़े जाने के लिए विवश होना पड़े। गौरक्षा, भाषा, प्रान्त, अभाव, शिक्षा, बेकारी, अपराध जैसी अगणित समस्यायें सद्भावना के अभिवर्धन के साथ-साथ चुटकियों में हल हो सकती हैं। अन्यथा हर उलझन दुर्भावों के बीच, चिंगारी से बढ़कर दावानल का रूप धारण करती चलेगी। इस भावनात्मक उत्कर्ष की महत्ता को हम, हमारे मूर्धन्य व्यक्ति समझ सके होते और अपना आधा, चौथाई ध्यान भी इधर दे सके होते तो कितना अच्छा होता ?

पर किसी का मुँह ताकने से क्या लाभ ? किसी की भूल बताने और दोष निकालने से क्या काम चलेगा ? उचित यही है कि हम अखण्ड ज्योति परिवार के थोड़े से लोग मिल-जुलकर ऐसा प्रयास आरम्भ करें—जिसे देखकर, जिसके परिणामों से प्रेरित होकर—अन्यान्य लोगों को यह सोचने का अवसर मिले कि रास्ता यही ठीक है। प्रगति के स्वप्न इसी रास्ते पर चलने से साकार हो सकते हैं। आलोचना करने वाले बहुत हैं—माथा-पच्ची भी बहुत लोग कर सकते हैं। इन्हें कुछ ऐसे काम करने में जुट जाना चाहिए, जो भावनात्मक उत्कर्ष की दिशा में कुछ महत्त्वपूर्ण परिणाम प्रस्तुत कर सकें। युग-निर्माण योजना, ऐसे ही प्रयास का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नाम है। हमें विचारणा की शक्ति और महत्ता की वास्तविकता जनमानस में प्रतिष्ठापित करने के लिए इस योजना के अन्तर्गत कुछ ऐसे प्रयोग कर दिखाने चाहिए, जो हर व्यक्ति को यह सोचने के लिए विवश करें कि मानवीय प्रगति और विश्वशांति का एकमात्र तरीका यही है—

प्राथमिक आवश्यकता इस बात की है कि उत्कृष्ट विचार पद्धति का जनसाधारण को परिचय कराया जाय। जिस तथ्य को इस युग में एक प्रकार से पूर्णतया-विस्मृत कर दिया गया है, उसका स्मरण कराया जाय। लोग केवल वस्तुओं और परिस्थितियों का मूल्य समझते हैं, उन्हें इस बात का तनिक भी आभास नहीं रहा कि आन्तरिक उपलब्धियों के अनुरूप बाह्य परिस्थितियों का निर्माण होता है। सुख-शांति के प्यासे लोगों को यह तथ्य हृदयंगम कराया जाना चाहिए कि वे मानसिक दृष्टि से स्वच्छ, सुलझे हुए और सुविकसित बनने का प्रयास करें और देखें कि उन्हें प्रगति के लिए आवश्यक साधन, वातावरण तथा सहयोग कितनी प्रचुर मात्रा में, कितनी जल्दी—कितनी सरलतापूर्वक उपलब्ध होते हैं। विचारों का मूल्य यदि समझ लिया गया तो विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि व्यक्ति और समाज की प्रगति भी हाथ बाँधकर सामने खड़ी दृष्टिगोचर होगी। यह उद्बोधन कार्य हमें अपने छोटे हाथों में लेना चाहिए और अपना छोटा शंख इस उत्साह के साथ बजाना चाहिए कि सोये हुए लोगों को जागने के लिए विवश होना पड़े।

यदि इस प्रथम आवश्यकता को पूरा कर लिया गया तो आगे की मंजिलें अति सरल हो जायेंगी। जिन कठिनाइयों ने समाज की और जिन कुण्ठाओं ने व्यक्ति की प्रगति का पथ अवरुद्ध कर रखा है, उसके खुलने में देर न लगेगी। बेशक सामाजिक कुरीतियों ने हमारे जातीय जीवन को जर्जर कर रखा है, बेशक हमारी आर्थिक दुर्बलता जीवनोपयोगी आवश्यकताओं से वंचित कर रही है, बेशक शारीरिक दुर्बलता और रुग्णता, शिक्षा की कमी, अपराधों की वृद्धि, आन्तरिक विग्रह आदि समस्याओं ने उग्र रूप धारण किया हुआ है और उनके निवारण के लिए प्रबल प्रयत्नों तथा व्यापक उपायों की जरूरत पड़ेगी, पर वे सही रीति से सम्भव तभी होंगे जब हम वस्तुस्थिति को समझ लें और मानलें कि इन सब समस्याओं के मूल में मानवीय बुद्धि का उल्टी दिशा में होना ही एकमात्र कारण है। जब जनमानस की दिशा बदलने की बात को सामने रखकर कुछ सार्थक प्रयत्न किये जायेंगे तो रोग का ठीक निदान होने पर ठीक चिकित्सा बन पड़ने की तरह इन वर्तमान समस्याओं का उपाय भी सही निकल आवेगा और उसका परिणाम आशाजनक भी होगा और उत्साहवर्धक भी।

भारत एक हजार वर्ष की गुलामी से अभी-अभी मुक्त हुआ है। यह मुक्ति राजनैतिक है। बौद्धिक दृष्टि से अभी उस पराधीनता के बन्धन हमारे विचार-संस्थानों को जकड़े बैठे हैं। सही विचार कर सकने की, सही निर्णय करने की क्षमता अभी हममें उत्पन्न ही नहीं हुई है। बौद्धिक दासता हमारे रोम-रोम को जकड़े बैठी है। यही दशा विभिन्न कारणों से, विभिन्न परिस्थितियों से, विभिन्न स्वरूपों से संसार के अन्य भागों में व्याप्त है। कोई शोषक है तो कोई शोषित। कोई भ्रम उत्पन्न करता है तो कोई भ्रमित है। असंगत विश्वास, झूठी मान्यताओं, मिथ्या अहंकारों और अन्य परम्पराओं से मनुष्य का मन पक्षपाती, दुराचारी और स्वार्थ पोषक बन गया है। सही सोचने की शक्ति ही एक प्रकार से चली गई। सघन अन्धकार की व्यापकता ने विवेक का संबल ही हाथ से छीन लिया। ऐसी दशा में सचाई समझ में कैसे आये ? समस्याओं का स्वरूप और उन्हें सुलझाने की सही पद्धति कैसे हाथ लगे ? प्रगति और शांति के सच्चे मार्ग पर चल सकने का सुयोग कैसे बने ?

अस्तु, हमारी प्राथमिक आवश्यकता विचार-क्रान्ति की है। भ्रम-जंजालों से हमारा मस्तिष्क स्वच्छ होने पर ही सत्य के सूर्य का दर्शन किया जा सकेगा। ज्ञान यज्ञ इस युग का सबसे बड़ा यज्ञ है। ज्ञान-दान से बढ़कर आज की परिस्थितियों में और कोई दान नहीं। ज्ञान साधना ही युग की सबसे बड़ी साधना है। जनमानस में जो विवेक की आस्था प्रतिष्ठापित कर सके—सही दृष्टिकोण देकर सान नेत्रों का जो उन्मीलन कर सके। आज ऐसी ही लोक सेवा अभीष्ट है। जो इन आवश्यकताओं को पूरा कर सकने के लिए त्याग, बलिदान कर सके, वही इस युग का सच्चा लोकसेवक, सच्चा परमार्थी—सच्चा ज्ञानी, सच्चा विवेकवान और सच्चा ईश्वर-भक्त माना जायगा।

ज्ञान दान इस युग का सबसे बड़ा परोपकार-परमार्थ

सेवा धर्म सबसे बड़ा धर्म है। परोपकार-परमार्थ का जीवनक्रम में जितना समावेश होगा, उतना ही चरित्र उज्ज्वल रहेगा, सद्गुण बढ़ेंगे और आत्मा को सन्तोष मिलेगा। जो अपने स्वार्थ के लिए ही जिया, आपा-धापी में ही लगा रहा, उसने भले ही दौलत इकट्ठी कर ली हो, भले ही ऐश-आराम से दिन काट लिए हों, फिर भी मानवीय आदर्शों की कसौटी पर कसने के उपरान्त यही कहा जायगा कि उसका जीवन व्यर्थ चला गया। स्नान, शयन आदि दैनिक कृत्यों से कोई आर्थिक लाभ नहीं होता, फिर भी उन्हें शरीर की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता मानकर पूरा करना ही होता है। परमार्थ अभिलाषा में लौकिक दृष्टि से भले ही समय तथा धन की हानि दीख पड़ती हो, फिर भी वह आत्मा की अनिवार्य आवश्यकता है—इतनी अनिवार्य—जितनी कि शरीर के लिए भोजन की। ऐसी आवश्यकता की उपेक्षा कर आत्मा को भूखों मारना, शरीर को भूखा मार डालने की अपेक्षा अधिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हानिकारक और अधिक अदूरदर्शितापूर्ण है। इसलिए विवेकशील व्यक्ति अपने जीवनक्रम में परमार्थ को अनिवार्य रूप से जोड़े रहते हैं, उसकी उपेक्षा नहीं करते।

परमार्थ में स्वयं कष्ट सहकर भी दूसरों की सुविधा बढ़ाने के क्रम को अपनाना पड़ता है। ऐसे पुण्य कर्म दो भागों में बाँटे जा सकते हैं—एक वे जिनसे दूसरों की शारीरिक सुविधायें बढ़ती हैं या लौकिक आवश्यकतायें पूरी होती हैं। दूसरी वे जिनसे आन्तरिक, सद्गुणों का विवेक एवं उत्कृष्टता का अभिवर्धन होता है। शारीरिक सहायता की दृष्टि से अन्नदान, ब्रह्मभोज, गोदान, वस्त्र दान, प्याऊ, तालाब, धर्मशाला, बाग, दवाखाना आदि की गणना होती है। इनकी उपयोगिता तभी है जब उनका लाभ सत्पात्रों को, वास्तविक जरूरतमन्दों को मिले। यदि इनका लाभ समर्थ और हरामखोरों को मिलने लगे तो उससे उल्टा अहित होता है, वे मुफ्तखोरी की बुरी आदत के अभ्यस्त बनते हैं और उस अनुचित लाभ से प्राप्त सुविधा के कारण मिली क्षमता का दुरुपयोग करते हैं। ऐसे दान लेने वाला परावलम्बी और दीन प्रवृत्ति का बनता हैं। कष्टग्रस्त, असहाय और असमर्थों को सामयिक सहायता मिले यह बात ठीक है पर यह नितान्त अनुचित है कि दानी की धर्मवृत्ति का समर्थ लोग लाभ उठाकर अपने पतन का पथ प्रशस्त करें ।

असमर्थों को भी दान उतने समय तक—उतने स्तर तक—मिलना चाहिए, जिससे वे अपने पाँवों पर खड़े हो सकें। सदा के लिए किसी को दान का आदी नहीं बनाया जाना चाहिए। असहाय, वृद्ध, कोढ़ी अथवा अपंग लोगों की बात दूसरी है। पर अन्धे-लंगड़े भी चाहें तो अपने उपयुक्त काम ढूँढ़कर, यदि वे शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ हैं तो अपनी रोटी परिश्रमपूर्वक कमा सकते हैं। आर्थिक अनुदान विवेकपूर्ण मात्रा में—वास्तविक अधिकारियों को ही मिलना चाहिए। पर देखा यह जाता है कि धर्मभीरु लोगों की दानवृत्ति का लाभ उठाने वालों में तीन चौथाई वे लोग होते हैं, जिन्हें वस्तुतः किसी की सहायता अपेक्षित नहीं। फिर भी यदि कोई अविवेकी उन्हें दान देता है, तो समझना चाहिए कि संसार में अनीति और अवांछनीयता का पाप ही बढ़ता है। भावुक किन्तु अविवेकपूर्ण दान मानव जाति को अपार हानि पहुँचाने से ही उससे दानी को पुण्य नहीं मिलता, पाप ही लगता है।

फिर ऐसे दान किसी की शारीरिक आवश्यकताओं को थोड़ी देर के लिए एक समय ही पूरा करते हैं। सदा के लिए तो उससे किसी की आवश्यकता पूरी नहीं होती। एक दिन किसी को रोटी खिलादे तो दूसरे दिन फिर उसकी आवश्यकता ज्यों की त्यों। तात्कालिक आवश्यकता पूरी कर भी दी गई तो भी सदा का समाधान कहाँ हुआ? इसलिए ऐसे धन दान जो व्यक्तियों को दिये जाते हैं—एक सीमित आवश्यकता ही पूरी कर पाते हैं और पुण्य तभी उत्पन्न करते हैं, जब उनका लाभ सच्चे सत्पात्रों को मिला हो। अतएव धनीमानियों को अपनी सम्पन्नता का बोझ हल्का करने के लिए ऐसे दान भी ठीक हैं पर उपयोगिता सीमित रहने से उनका प्रतिफल सीमित एवं स्वल्प ही रहता है। हाँ, उन दृश्य कार्यों से कर्ता के दानीपन का विज्ञापन खूब हो जाता है। आमतौर से इसी प्रवृत्ति से प्रेरित होकर लोग ऐसी दान विडम्बना करते रहते हैं। इमारतें बनाने में यह दानी लोग सबसे आगे रहते हैं ताकि देखने वाले उनकी दानशीलता को देखते और प्रशंसा करते रहा करें। इस मानसिक दुर्बलता से भरा दान उपहासास्पद है। दीवारों पर या अखबारों में अपनी दवादारू का विज्ञापन छपा देने का जितना पुण्य होता होगा, उतना ही पुण्य इन विज्ञापन के प्रयोजन में किये हुए तथाकथित दान पुण्यों का है। इसलिए वास्तविकता की कसौटी पर कसे जाने के उपरान्त अर्थदान के प्रयोजन धनीमानयों के कई व्यसनों में से एक माने जा सकते हैं। इसलिए उनका स्तर बहुत ही छोटा गिना गया है। यों असमर्थों-आपत्तिग्रस्तों की सहायता करना आवश्यक है और वह यथा अवसर करते भी रहनी चाहिए। मनुष्यता की आवाज कष्ट-पीड़ितों की सहायता करने की है, सो धन ही नहीं समय और श्रम देकर भी की जा सकती है। उदार मनुष्य जब भी ऐसे अवसर आते हैं—कर्तव्यपालन में चूकते नहीं हैं। पर विज्ञापन के लिए दान का ढोंग बनाने से उन्हें अरुचि ही रहती है।

भारतीय धर्म संस्कृति में **'परोपकारायमिदं शरीरम्'** जैसे सूत्रों में परोपकार की बड़ी महिमा बताई गई है।

परोपकार का आशय है किसी का भला करना अथवा हित करना। मानव समाज एक-दूसरे की सहायता पर ही निर्भर है। जीवन धारण करने से लेकर जीवनयापन और समापन करने तक मनुष्यों को परस्पर सहयोग और सहायता की आवश्यकता पड़ती है। इसके अभाव में जीवन चल सकना सम्भव नहीं।

किन्तु इस प्रकार की समाजव्यापी सहायता और सहयोग को परोपकार नहीं कहा जा सकता। यह तो जीवन-निर्वाह की एक सार्वजनिक व्यवस्था है। इस सेवा और सहायता का आधार विनिमय है। इसमें एक मनुष्य एक तरह से सहयोग करता है, तो दूसरी तरह से उसका बदला पाता है। परोपकार का आधार त्याग एवं उत्सर्ग होता है। किसी की, की हुई किसी भलाई का जब किसी प्रकार का कोई मूल्य अथवा बदला नहीं लिया जाता तो वह सुकृत्व परोपकार कहा जा सकता है। इसी प्रकार के उपकार का आध्यात्मिक महत्त्व होता है और इसी का भारतीय धर्म संस्कृति में बखान किया गया है।

परोपकार के बहुत-से प्रकार और बहुत-से रूप हो सकते हैं। जिन्हें प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्रेणी में बाँटा भी जा सकता है। इस विभाजन को समझने के लिए तृतीय श्रेणी से चलिये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तृतीय श्रेणी का परोपकार वह होता है, जिसके द्वारा किसी व्यक्ति का सामयिक हित होता है। जैसे किसी भूखे को भोजन करा देना, किसी रोगी अथवा आहत को अस्पताल पहुँचा देना, किसी याचक को पैसा दे देना, शीत-पीड़ित को वस्त्र अथवा खोये को उसके गन्तव्य स्थान तक पहुँचा देने की सहायता कर देना आदि तृतीय श्रेणी का परोपकार होता है।

तृतीय श्रेणी के इन उपकारों से किसी का कोई सामयिक हित ही हो सकता है, उसका कोई स्थाई हित नहीं होता और न इस प्रकार का उपकार किसी के जीवन को स्थिरता प्रदान कर सकता है। जिस उपकार से किसी को जीवन विकास में जितनी कम सहायता मिलती है, वह उतनी ही सामान्य कोटि का उपकार माना जाता है।

द्वितीय श्रेणी के परोपकार उनको कहा जा सकता है, जिससे किसी का दूरगामी हित होता है। जैसे किसी की नौकरी करा देना, उसकी जीविका का प्रबन्ध करा देना। कार-रोजगार में निःस्वार्थ सहायता कर देना, किसी को घातक रोगों से मुक्ति दिला देना। किन्हीं व्यक्तियों अथवा परिवारों का वैमनस्य मिटा देना, किसी को निराशा अथवा निरुत्साह के अन्धकार से निकाल देना अथवा किन्हीं की स्थायी शत्रुता को मिटा देना आदि सत्कर्म द्वितीय श्रेणी के परोपकार माने गये हैं।

द्वितीय श्रेणी के इन उपकारों से निश्चय ही किन्हीं को दूरगामी लाभ तो होता है, तथापि जीवन-समस्याओं का स्थायी समाधान नहीं होता। एक अवधि के बाद उपकृत के जीवन में पुनः उसी प्रकार की समस्यायें उठ सकती हैं और उसके लिए पुनः किसी उपकारी की आवश्यकता हो सकती है। द्वितीय श्रेणी के उपकारों से किसी को दूरगामी लाभ तो हो सकता है किन्तु समस्याओं का स्थायी हल नहीं होता।

जिन उपकारों से मनुष्य का स्थायी हित होता है, वह अपने जीवन के विकास और उसकी समस्याओं का हल करने की क्षमता पाता है, वह उपकार प्रथम श्रेणी का माना जावेगा। मनुष्य को इस योग्य बनने में सहायता देना कि उसे किसी पर निर्भर न रहना पड़े, किसी का आश्रय न देखना पड़े और किसी का सहारा लेकर न खड़ा होना पड़े, निस्सन्देह प्रथम श्रेणी के परोपकार हैं। इस श्रेणी में वे सारे उपकार आ जाते हैं, जिनसे किसी में जीवन-जीने की योग्यताओं का विकास होता है।

किसी को शिक्षा दिला देना अथवा किसी को कोई कार-रोजगार करा देना, निश्चय ही प्रथम श्रेणी का परोपकार है। किन्तु यह धन-साध्य परोपकार है। ऐसे उपकारों का पुण्य ले सकना सबके सामर्थ्य की बात नहीं है। यह तो साधन-सम्पन्न तथा धनवान व्यक्ति ही कर सकते हैं। किन्तु परोपकार का पुण्य सबके लिए वांछनीय है और सभी क्यों न चाहेंगे प्रथम श्रेणी का परोपकार करना। ऊँचे से ऊँचा परोपकार सबको ही करना चाहिए क्योंकि इसके बिना जीवन को उच्च गति नहीं मिलती।

अब प्रश्न यह है कि जो सामान्य व्यक्ति हैं, जो साधन-सम्पन्न और धनवान नहीं हैं, तो वे क्या जीवन भर प्रथम श्रेणी का परोपकार कर सकने से वंचित ही रह जायेंगे ? नहीं ऐसा नहीं। परोपकार उपकारों के अतिरिक्त प्रथम श्रेणी के उपकारों के और भी प्रकार हैं, जिनका निर्वाह कोई भी सामान्य से सामान्य व्यक्ति कर सकता है। वे उपकार हैं ज्ञान-दान और गुण, अथवा चारित्र-निर्माण।

किसी को ज्ञान-दान करने के लिए किसी को धन अथवा साधनों की आवश्यकता नहीं रहती। आवश्यकता रहती है, केवल इस बात की कि उपकारभावी व्यक्ति प्रयत्नपूर्वक स्वतः भी ज्ञान संचय करता रहे। भारतीय ऋषि-मुनियों के पास न कभी साधनों की प्रचुरता रही और न धन की। तथापि वे समाज के सर्वश्रेष्ठ उपकारी माने जाते हैं। संसार में सबसे अधिक सम्मान उनको मिला। अपने जीवन काल में तो उनकी पूजा होती ही रही, आज हजारों वर्ष बीत जाने पर भी जनमानस में उनका वही स्थान बना हुआ है।

भारतीय ऋषि-मुनियों को सर्वश्रेष्ठ उपकारी माने जाने का एकमात्र कारण यही है कि उन्होंने अज्ञान के अन्धकार में भटकती हुई मानवता को ज्ञान का आलोक दिया। समाज के प्रति उनका यह बहुत बड़ा उपकार था। ज्ञान का आलोक पाया हुआ मनुष्य संसार के सारे दुःखों से छूट जाता है। उसे न तो त्रयताप व्यग्र कर पाते हैं और न कोई अभाव दुःखी कर पाता है। ज्ञान के आधार पर वह अपनी सारी समस्यायें और कठिनाइयाँ स्वयं हल कर लिया करता है। इसके लिए उसे किसी का मुखापेक्षी नहीं बनना पड़ता और न किसी का सहारा खोजना पड़ता है। इसीलिए ज्ञान-दान को प्रथम श्रेणी का उपकार माना गया है।

ज्ञान-दान से बढ़कर संसार में कोई दान नहीं। जिसे यह प्राप्त होता है उसका जीवन कृतार्थ हो जाता है। धन अथवा साधन देकर किसी का उतना उपकार नहीं किया जा सकता, जितना कि ज्ञान देकर। किसी से धन की सहायता पाकर कोई मनुष्य, माना अपना विकास कर सकता है। कार-रोजगार बढ़ा सकता है। तब भी ज्ञान के अभाव में धन उसको वह वांछित सुख नहीं दे सकता जिसकी मानव जीवन में अपेक्षा की जाती है। वह सुख, वह शाश्वत सुख तो केवल ज्ञान से ही प्राप्त हो सकता, है, जिसको पाकर आत्मा संतुष्ट हो जाती है। कोई व्यक्ति जीवन में कितनी ही उन्नति क्यों न कर ले, किन्तु जब तक उसकी आत्मा को सुख-चैन नहीं मिलेगा उसका कल्याण न होगा वह एक अभाव और अशांति से निरन्तर व्यग्र बना रहेगा।

इतना ही क्यों अज्ञान की दशा में उसका धन और उसका भौतिक विकास अन्ततः उसके पतन का कारण बन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जायेगा। ज्ञानहीन धनाढ्यता की दशा में संसार के नाशकारी भोग-विलास और विषय-वासना की अनुचित वृत्तियाँ मनुष्य पर अपना घेरा डाल देती हैं। उसमें इच्छाओं और तृष्णाओं का जंगल उत्पन्न कर देती हैं। धन की सहायता की अपेक्षा ज्ञान की सहायता कहीं श्रेष्ठ है। भारतीय ऋषि-मुनियों ने मानव-समाज की यही तो सहायता की है, जिसके लिए वे आज भी पूज्य बने हुए हैं और युग-युग तक मानवता उनका उपकार मानती रहेगी।

लेकिन वे आदरणीय मनीषी संसार का यह उपकार तभी कर सके हैं, जब उन्होंने पहले प्रचण्ड साधना द्वारा स्वत: ज्ञान का भण्डार एकत्र किया था। यों ही वे कुछ थोड़ी-सी पुस्तकें पढ़कर ही ज्ञानी नहीं बन बैठे थे। उन्होंने जीवन का अधिकांश भाग अध्ययन, मनन और चिन्तन में लगाया था। संयम और साधना द्वारा अपना विवेक परिपक्व किया था और अपने ज्ञान भण्डार को अनुभव की तुला पर तौलकर प्रामाणिक बना लिया था और तब इतनी साधना करने के बाद वे समाज को ज्ञान-दान करने के योग्य हो पाये थे। उन्होंने उस ज्ञान के बल पर मानवता के प्रति सर्वश्रेष्ठ उपकार किया। जिसके लिए वे तब भी पूजित रहे, आज भी हैं और आगे भी पूजनीय बने रहेंगे। ज्ञानोपकार से बढ़कर संसार का कोई अन्य परोपकार है ही नहीं।

ज्ञान-दान से मनुष्य का सर्वांगीण, अक्षय और स्थायी लाभ होता है। ऋषियों के दिए उस मूलभूत ज्ञान को ही आधार बनाकर मनुष्यता तब से अब तक विकास करती चली आ रही है। यदि उन पूर्व पुरुषों ने यह उपकार न किया होता और केवल अर्थ की साधना ही सिखाई होती, केवल वही साधन खोजकर दिए होते जिनसे शारीरिक भोगों की ही सुविधा हो सकी होती तो शायद मनुष्य अब तक मानव-पशु की अवस्था में ही होता। न तो उसे आत्मा का ज्ञान हो पाता और न ईश्वर का परिचय। शरीर ही उसकी आत्मा होती और शरीर ही परमात्मा, जिसकी तृप्ति करते रहना ही उसकी पूजा होती। वह आज की तरह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को क्रम-क्रम से प्राप्त कर सकने का मार्ग न पा पाता। आज की सुन्दर सभ्यता, आनन्ददायी संस्कृति और कल्याणकारी धर्म, जिसके कारण हम मनुष्य संसार के सर्वश्रेष्ठ प्राणी बने हैं, उन ऋषि-मुनियों का वह उपकार ही है, जिसको उन्होंने ज्ञान-दान के रूप में हम पर किया है। ज्ञान-दान संसार का सर्वश्रेष्ठ उपकार है।

गुण अथवा चरित्र विकास भी प्रथम श्रेणी के उपकार माने गये हैं। यह भी ज्ञान-दान के अन्तर्गत ही आते हैं। जो दिया हुआ ज्ञान मनुष्य को गुणी अथवा चरित्रवान नहीं बना सकता, वह या तो ज्ञान नहीं है अथवा उसका देने वाला स्वयं चरित्रवान नहीं। अन्यथा गुण एवं चरित्र तो ज्ञान के अनिवार्य अनुबन्ध हैं। ज्ञान के साथ उनका आ जाना अपरिहार्य होता है।

संसार का सर्वश्रेष्ठ उपकार करने के लिए मनुष्य को स्वयं ज्ञानी, गुणी तथा चरित्रवान बनना चाहिए और इन विशेषताओं को बिना किसी स्वार्थ अथवा लोभ के समाज में वितरित करना चाहिए। किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि जो सर्वश्रेष्ठ उपकार कर सकने की परिस्थिति में नहीं है, वह उपकार के कार्यों की ओर से विमुख अथवा उदासीन हो जाये। जो प्रथम श्रेणी का उपकार नहीं कर सकता, उसको द्वितीय अथवा तृतीय श्रेणी का ही उपकार करते रहना चाहिए। समाज के जीवन और संसार के विकास के लिए परोपकार की प्रवृत्तियाँ बहुत आवश्यक हैं वह चलती ही रहनी चाहिए।

परोपकार-परमार्थ का उच्चस्तरीय स्वरूप दूसरों को आत्मा से प्रकाश उत्पन्न करना, उसकी प्रवृत्तियों को सन्मार्ग की दिशा में मोड़ना है। इस अनुदान से पथ-भ्रष्टों का, दिग भ्रान्तों को सन्मार्ग की ओर मोड़ा और प्रवृत्त किया जा सकता है। ऐसे मोड़ जो कोई दे सकता हो वास्तव में वही महान ज्ञानी और अक्षय पुण्य का अधिकारी है। बाल्मीक, अंगुलिमाल, आम्रपाली जैसे पतित लोगों की जीवन दिशा जिन ज्ञानियों ने मोड़ दी, उनकी सेवा-सहायता समुद्र और पर्वत से भी बड़ी थी। अभावग्रस्त अपराधी और दीन-दु:खी लोगों में अधिकांश पथ भ्रष्ट होते हैं यदि उनका जीवनक्रम कोई मोड़ दे तो वे ही लोग समाज की महान सम्पदा बन सकते हैं और अपना ही नहीं—असंख्य दूसरों का भी भला कर सकते हैं। प्राचीनकाल के साधु-ब्राह्मण इसी परमार्थ में अपना जीवन उत्सर्ग करते थे, इसलिए उनका यश गान सदा सर्वदा होता है। उनके प्रति अनन्त काल तक असीम श्रद्धा व्यक्त की जाती रहेगी। उनके वंशधरों और वेशधरों को जनता बड़प्पन प्रदान करती है। वस्तुत: ज्ञान दान ही इतने ऊँचे स्तर की वस्तु है, जिसकी तुलना इस संसार में और किसी वस्तु से नहीं की जा सकती।

विवेकशील व्यक्ति जानते हैं कि संसार के समस्त दु:खों का—व्यक्ति के समस्त कष्टों का—समाज के समस्त संकटों का एकमात्र कारण विचारों का विकृत हो जाना ही है। आज यदि दु:खों के स्थान पर सुखों की स्थापना अभीष्ट हो तो उसका उपाय भी एक ही है—"सही ढंग से सोचने की कला सिखाना।" क्या अमीर, क्या गरीब, क्या शिक्षित, क्या अशिक्षित रोटी कमाने की विधि ही किसी तरह सीख गये हैं, वस्तुत: वे जीवन जीने की कला—सही विचार करने की रीति-नीति से सर्वथा अपरिचित ही प्रतीत होते हैं। यदि वे इस कला से परिचित रहे होते तो शारीरिक ही नहीं—मानसिक और आन्तरिक दृष्टि से भी वे सुसम्पन्न एवं समुन्नत दिखाई पड़ते हैं। उनके सम्पर्क में जो भी आता स्वर्गीय सुख-शान्ति का अनुभव करता और उस सान्निध्य की सराहना करते-करते न थकता। फूल ही सुगन्धित नहीं होता, मनुष्य के सद्गुण भी चिरस्थायी और सच्ची सुगन्धि ही फैलाते हैं। चन्द्रमा ही सुन्दर नहीं है—उज्ज्वल चरित्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का सौन्दर्य उससे बड़ा है। इसलिए जिसे सही सोचने वाला, सही करने वाला बना दिया गया, उसके साथ असीम उपकार किया गया। मानना चाहिए और जो इस पुण्य-परमार्थ को कर सके उसकी गणना धरती के देवताओं में करनी चाहिए। भूसुर ब्राह्मण को कहते हैं। ब्राह्मण अर्थात सद्ज्ञान प्रसार के लिए—जनजागरण के लिए—जीवन उत्सर्ग करने वाला, टंट घंट कर अपना उल्लू सीधा करने वाला प्रपंचपरायण संस्कृतज्ञ नहीं।

सद्ज्ञान ही वह अमृत है, जिसकी कुछ बूँदें पाकर मृतकों में जीवन संचार होता है। ऐसे अमृत का मान जो जनसाधारण तक पहुँचा सके, उसके पुण्य-परमार्थ की महत्ता अकूत है। नारद देवर्षि इसलिए थे कि तप-साधना द्वारा स्वर्ग-मुक्ति की आकांक्षा न करके द्वार-द्वार पर सद्ज्ञान का अमृत छिड़कते हुए निरन्तर भ्रमण करते रहते थे। नारद की सीधी पहुँच भगवान पर थी। वे क्षीर सागर में सोते हुए भगवान को कभी भी जा जगाते थे, यह अधिकार और किसी को मिला नहीं था, भगवान को इतना प्रिय और कोई ऋषि देवता नहीं था। कारण भी स्पष्ट है। भगवान ज्ञान रूप हैं। जहाँ जितना सद्ज्ञान है समझना चाहिए वहाँ उतना भगवान् है। ज्ञान-परायण व्यक्ति वस्तुतः भगवान में ही रमण करता है और उन्हीं में लीन माना जाता है। नारदजी की स्थिति ऐसी ही थी। वे मानते थे कि दुःखी प्राणियों का कल्याण एकमात्र सद्ज्ञान से ही हो सकता है। भगवान का सच्चा उपासक भी ज्ञानवान ही हो सकता है। यह संसार स्वर्ग के रूप में ज्ञान द्वारा ही विकसित हो सकता है, इसलिये ज्ञान-ज्ञान-ज्ञान निरन्तर प्राणियों पर ज्ञान ही बरसाना चाहिए। उनकी वीणा इसी महान प्रयोजन के लिए झंकृत रहती थी और जनमानस में अपनी झंकार का गुंजन उत्पन्न करती थी। ऐसे उच्चकोटि के परमार्थ से बढ़कर भगवान की प्रसन्नता का आधार और कुछ हो भी नहीं सकता। अस्तु, नारद को सर्वोपरि पद पाने वाला देवर्षि माना गया तो यह उचित मूल्यांकन ही हुआ।

आज की परिस्थितियों में व्यक्ति और समाज के कल्याण का मानसिक उपय—सद्गति का व्यापक प्रसारण ही हो सकता है। उसके बिना जनमानस का परिवर्तन सम्भव नहीं, जब तक भावनाएँ न बदलेंगी, विषम परिस्थितियों से रत्तीभर भी सुधार न होगा। सच तो यह है कि शिक्षा और सम्पन्नता बढ़ने से सर्प को दूध पिलाने की तरह वर्तमान दुष्टता एवं कुमार्गगामिता और भी तेजी से बढ़ेगी। अतएव सद्ज्ञान के प्रति उपेक्षा बरतने के इस वातावरण में कल के लिए यही आशा करनी चाहिए कि बढ़ी हुई शिक्षा और सम्पन्नता संसार के लिए विपत्तियों का ही अभिवर्धन करेंगी, सच्चा सुधार तो उस समय होगा, जिस दिन यह अनुभव कर लिया जायेगा कि मानवीय उत्थान पतन के आधार, 'सद्विचारों' को जनमानस में पूरी-पूरी तत्परता के साथ प्रतिष्ठापित किया जाय। सच्चे नेतृत्व का उदय हुआ उस दिन माना जायेगा जिस दिन उदार व्यक्ति सब काम छोड़कर जनजागरण के पुण्य-परमार्थ में सर्वतो भावेन प्रवृत्त होंगे। जब कभी ऐसी पुण्य प्रक्रिया दृष्टिगोचर होने लगे—जानना और मानना चाहिए कि संसार के सौभाग्य सूर्य का उदय होने में अब देर नहीं।

अज्ञानान्धकार में भटकते मानव समाज को प्रकाश देने के लिए दीपक की तरह अपने को जलाने वाले भावनाशील लोग आगे बढ़ें, तो युग बदले। युद्ध में लाखों-करोड़ों मनुष्यों ने अपना रक्त बहाया। शान्ति के लिए, कुछ ही व्यक्ति अपना जीवन समर्पण कर सकें, तो काम चले। ऐश-आराम की जिन्दगी के सपने सँजोने में सब लोग लगे हैं, कुछ ऐसे भी 'पागल' निकलने चाहिए जो तन ढकने और पेट भरने की आवश्यकता पूर्ति को पर्याप्त मानकर संसार के भावनात्मक उत्कर्ष के लिए अपना जीवन होम कर सकें। युग पुरुष—महाकाल ऐसे भावनाशील नर-नारियों को आँखें फाड़-फाड़कर खोजता, पुकारता और बुलाता है। पर सन्नाटे को चीरती हुई कोई आवाज नहीं आती, यह कितना बड़ा दुर्भाग्य है ? धर्म और अध्यात्म का ढोंग बनाये लाखों लोग बैठे हैं पर जनता के लिए वस्तुतः कुछ करने की जिनमें भावना उमड़ती हो, ऐसे लोग ढूँढ़े नहीं मिल रहे हैं। भारत माता के उस दुर्भाग्य के, कलंक को पलट देने के लिए कुछ बलिदानों की आवश्यकता है। ऐसे बलिदानी जो सिर कटाने के लिए नहीं, जनजागरण का अलख जगाने में तिल-तिल आपको खुशी-खुशी बलि देने के लिए उल्लासपूर्वक आगे बढ़ आवें।

सन्तों की परम्परा में 'अलख जगाना' एक बहुत बड़ा अध्यात्म साधन है। गोरख पन्थी तथा दूसरे साधु घर-घर जाकर अलख जगाते थे, उद्बोधन करते थे। मुसलमान फकीर भी बड़े तड़के गली, मुहल्लों में उच्च स्वर से जनजागरण के गीत गाया करते थे, पर अब वे परम्पराएँ लुप्त होती चली जा रही हैं। मनुष्य स्वार्थी और आरामतलब होता जाता है। अपना अहंकार घटाना नहीं बढ़ाना चाहता है। किसी के दरवाजे पर हम क्यों जायें ? इससे अपनी हेटी और बेइज्जती लगती है। शान तो रहनी ही चाहिये। बड़प्पन की परिभाषा यह हो गई है कि वह किसी के यहाँ बिना बुलाये या कम आग्रह पर पहुँच जाने में घटता और आग्रह, बहुत खुशामद, बहुत सम्मान, और बहुत आदर मिलने पर बढ़ता है। ऐसा अहंकार पूरा हो सके तो तथाकथित सिद्धान्तवादी और बड़े आदमी भी ज्ञान सुधार के लिए तैयार हो सकते हैं। पर ऐसा सम्भव कैसे हो ? जिस सद्ज्ञान के लिए जनता को कोई परिचय नहीं, कोई रुचि नहीं, उत्साह नहीं तो उसके लिए किसी को बुलाने का आग्रह कौन करे ? और वैसा आग्रह हो तो जाय कौन ? अहंकार का पहाड़ आगे आ रहा है। बेइज्जती संकोच पैरों में बेड़ी डाले हैं। वे मीराएँ नहीं मिलीं जो पैरों में घुँघरू बाँधकर हाथ में इकतारा लेकर अपने भगवान के गुणानुवाद चौराहे-चौराहे पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुनायें। वे सूर, कबीर भी दृष्टिगोचर नहीं होते जो शोक-पात्र ग्रस्त जनता की व्यथा हरने के लिए अश्विनी कुमारों की तरह उसका दरवाजा खट-खटाने के लिए करुणार्द्र बिना बुलाये जा पहुँचे। न जाने ऐसे उदार नर-नारी सद्ज्ञान का अमृत बरसाने के लिए कब वापस मेघों की तरह इस विश्व आकाश के प्रांगण में विचरण करने के लिए निकलेंगे।

शिक्षा की महिमा लोगों ने समझ ली है। विद्या की महत्ता समझनी अभी बाकी है। पेट पालने में सहायक शिक्षा अपने बच्चों को दिलाने के लिए हर अभिभावक तैयार है। उसके लिए खर्च भी करता है। पर उस विद्या की जो व्यक्ति को सद्गुणों, सद्भावनाओं, सत्प्रवृत्तियों से परिपूर्ण बनाकर नरदेव, नर-नारायण बना सकती है, कहीं आवश्यकता अनुभव नहीं की जाती। शिक्षा प्रसार के लिए सरकार भी धन खर्च करती है और जनता भी इसमें सहयोग देती है। लोकमंगल में रुचि रखने वाले व्यक्ति भी ऐसी शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना एवं अभिवृद्धि में उत्साह प्रदर्शित करते हैं। यह उचित भी और आवश्यक भी क्योंकि अपने देश में शिक्षितों की संख्या २० प्रतिशत और अशिक्षितों की ८० प्रतिशत है। ऐसी दशा में शिक्षा की अभिवृद्धि की उपयोगिता सहज ही समझ में आती है और उसे बचाने का औचित्य भी स्पष्ट है। पर साथ ही यह तथ्य भुला नहीं देना चाहिए कि शिक्षा अधिक कमाने की चतुरता एवं क्षमता ही बढ़ा सकती है, व्यक्ति के व्यक्तित्व को परिष्कृत नहीं कर सकती। यह कार्य विद्या का है। विद्या वह है जो मनुष्य के अन्तःकरण की—आस्था, मान्यता एवं आकांक्षा की दिशा विनिर्मित करती है। कोई अशिक्षित भी विद्वान हो सकता है और सुशिक्षित अज्ञानग्रस्त भी। प्राचीनकाल में सर्वत्र विद्यालय थे। शिक्षा उनमें एक गौण प्रक्रिया थी। आज स्कूल मात्र शिक्षालय हैं। उनमें उदर पोषण की कला सिखाई जाती है। जीवन विद्या का महत्त्व न अध्यापकों को विदित है न शिक्षार्थी उसकी आवश्यकता अनुभव करते हैं और न सरकार ने उसके लिए कोई व्यवस्था की है। और न वर्तमान परिस्थितियों में कोई ऐसी आशा ही है कि शिक्षा में संस्थाओं को विद्या संस्था बनाये जाने के लिए कोई कारगर कदम उठाया जायेगा। ऐसी दशा में यही मार्ग रह जाता है कि हम विद्या विस्तार के लिए स्वतंत्र योजना लेकर आगे चलें। अन्ततः तो शिक्षालयों को ही विद्यालयों से परिणत करना पड़ेगा पर आज तो छात्रों को ही नहीं प्रौढ़ों और वयस्कों सभी को विद्या का मूल्य, महत्व उपयोग समझाना है। उसका स्वरूप और माहात्म्य तब समझा जाय, तभी यह सम्भव होगा कि उसकी भूख बढ़े और उपलब्धि की व्यवस्था का आधार तैयार किया जाय।

राज की स्थिति में विद्या का आरम्भिक परिचय हमें घर-घर जाकर करना होगा। उसकी उपयोगिता और आवश्यकता समझानी पड़ेगी। विद्या के अभाव में कितनी अपार हानि हो रही है और उसे प्राप्त करने पर व्यक्ति एवं समाज का कितना भारी उत्कर्ष हो सकता है ? इस तथ्य को जब समझा-समझाया जायगा और वस्तुस्थिति को जान लिया जायगा तो हर व्यक्ति यह अनुभव करेगा कि **'विद्ययाऽमृतमश्नुते'** विद्या से ही अमृत को प्राप्त किया जायगा, तो यह धरित्री देवताओं और देवियों से भरी पूरी होगी। उन सम्भावनाओं को साकार कर सकने वाले ज्ञान-योगियों की आज जितनी अधिक आवश्यकता है, उतनी इससे पहले कभी नहीं रही।

इस पुण्य प्रक्रिया में हमारा भी कुछ योगदान रहे

अग्नि में प्रचण्ड शक्ति विद्यमान है इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। पर यह भी एक तथ्य है कि ईंधन के सहारे ही वह जीवित रहती, बढ़ती और फैलती है। ईंधन के अभाव में वह बुझकर समाप्त हो जाती है। विचारों के सम्बन्ध में भी यही बात है। प्रेरक विचार अनन्त सामर्थ्य और असीम क्षमता से परिपूर्ण होते हैं, पर उनकी सामर्थ्य तभी प्रकट होती है, जब व्यक्तियों द्वारा उन्हें धारण किया जाता है। संसार के महामनीषियों ने बड़ी उपयोगी और महत्त्वपूर्ण विचारणाएँ प्रस्तुत की हैं, पर उनमें से पनपी केवल वे ही जिनके अनुयायी और प्रचारकों की भावना सन्तोषजनक रही। सामर्थकों और सहयोगियों के अभाव में अनेक उपयोगी विचारधारायें शिथिल एवं समाप्त हो गईं। पर कम महत्वपूर्ण विचारधाराएँ भी इसलिए बढ़ीं और फली-फूलीं कि उन्हें स्वीकार करने और फैलाने वाले व्यक्ति बहुत मिल गये।

भावनात्मक नव-निर्माण की विचारधाराएँ अपने स्थान पर—अपने ढंग की अद्भुत हैं। सामयिक परिस्थितियों के अनुरूप व्यक्ति और समाज की व्यापक समस्याओं के सर्वांगीण हल जिस खूबी के साथ इस विचारधारा के अन्तर्गत किये गये हैं, उतना गहन चिन्तन सम्भवतः अन्यत्र नहीं हुआ। यह हल काल्पनिक नहीं पूर्णतया व्यावहारिक है। इनका प्रचलन अभी थोड़ा ही हुआ है पर इतने से भी यह आशा, विश्वास का रूप धारण करती चली जा रही है कि अगले दिन यह व्यापक बनेगी और मानव-जाति का महत्त्वपूर्ण पथ-प्रदर्शन एवं समुज्ज्वल भाग्य निर्माण करेंगी। किन्तु यह होगा तभी जबकि इन चिंगारियों को फैलाने, बढ़ाने वाले—कार्यान्वित करने वाले—कर्मठ कार्यकर्ताओं का वर्ग उपलब्ध हो जाय। यदि यह आवश्यकता पूर्ण न हुई तो इतिहासों के पृष्ठों पर अंकित एक से एक बढ़कर विचारधाराओं की भाँति इस चिंगारी का बुझ जाना भी असम्भव नहीं।

ईसाई धर्म केवल अपनी विशेषताओं के कारण ही दुनिया के एक तिहाई मस्तिष्कों पर छाया हुआ नहीं है। सच तो यह है कि असंख्य पादरियों का योगदान और आत्मोत्सर्ग ही उसे इस सफलता तक पहुँचाने में समर्थ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हुआ। इस्लाम धर्म के बारे में भी यह बात कही जा सकती है। शंकराचार्य को राजा मान्धाता के राज्यकोष और सेना की सहायता उपलब्ध थी, इसलिए वे दिग्विजय का साहस कर सके। बुद्ध धर्म को समस्त एशिया पर आच्छादित कर देने का बहुत कुछ श्रेय सम्राट अशोक को है, जिन्होंने बुद्ध धर्म को व्यापक बनाने में अपने समस्त प्रभाव, मनोयोग, राज्यकोष एवं परिवार का पूरी तरह उत्सर्ग कर दिया था। उन बुद्ध अनुचरों का श्रेय भी कम नहीं, जिन्होंने अपनी समस्त सुख-सुविधाओं का परित्याग कर उस महान विचारधारा को प्रदीप्त करने में अपने को दीपकों की तरह जलाया। कल-परसों गाँधीजी का प्रचण्ड आन्दोलन देश के कोने-कोने में हलचल उत्पन्न कर रहा था, उसके पीछे भी प्राणवान प्रबुद्ध व्यक्तियों का आत्मदान एवं सहयोग ही सफलताओं का स्रोत रहा। वह विचारधारा तो गोखले और तिलक के जमाने में भी थी पर फली-फूली तब, जब अनुयायियों, सहयोगियों और प्रचारकों की आवश्यकता पूरी होने का अवसर आया। यह तथ्य प्रत्येक आन्दोलन और विचार-प्रवाह के ऊपर लागू होता है। युग-निर्माण आन्दोलन में भी विचारधारा की सर्वांगपूर्णता में न तो त्रुटि है और न न्यूनता। प्रश्न इतना भर है कि क्या उसे समर्थकों और सहयोगियों की आवश्यक मात्रा उपलब्ध हो सकेगी? यदि हो सकी तो इस चिंगारी को दावानल का रूप धारण करते देर न लगेगी और यदि जैसा कि खुदगर्जी, कायरता, क्षुद्रता का वातावरण किसी श्रेष्ठ परिवार में कोई महा पुरुष, उदारमना लोकसेवी उत्पन्न नहीं होने देता वैसा ही अन्धकार छाया रहा, लोग बातें बनाने को आगे और काम करने को पीछे रहने की दुरंगा चाल चलते रहे तो इस आन्दोलन का भविष्य भी अन्धकारपूर्ण रहेगा।

हनुमान, लक्ष्मण, अर्जुन, अशोक, मान्धाता, जमनालाल बजाज—जैसे अनुयायी अपना आत्मदान देकर स्वयं छोटी स्थिति के होने पर भी उतना काम कर सकते हैं, जितने उनके आराध्य देवदूत एकाकी रहने पर न कर सके होते, युग-निर्माण के लिए भी ऐसी ही अपेक्षा की जाती है। जिन्हें यह विचारधारा उपयुक्त जान पड़े, उनके कन्धों पर तुरन्त एक जिम्मेदारी आ जाती है कि 'जो अच्छा है उसे बढ़ाने में योगदान दिया जाय।' अच्छे का समर्थन और बुरे का विरोध एक पवित्र मानवीय कर्त्तव्य है। हर भावनाशील व्यक्ति को इसका पालन करना ही चाहिए। इस युग की यह अनुपम विचारधारा यदि मुरझा जाती है, असफल रहती है तो दोष उनका रहेगा, जो इससे परिचित थे, महत्त्व को स्वीकार करते थे, पर साहस और त्याग के अभाव में उसे आगे बढ़ने में सहयोग न दे सके। जो अपरिचित हैं, उनसे क्या आशा की जाय? पर जो इस प्रकाश के सम्पर्क में हैं, वे उसे बुझ जाने देते हैं तो यही कहा जायगा कि उनने अपने समय के पवित्रतम कर्त्तव्य की उपेक्षा की और उस उपेक्षा के कारण विश्व का भविष्य उज्ज्वल कर सकने की क्षमता से सुसम्पन्न एक जलती हुई ज्योति सहयोग का तेल न पाकर बुझ गई। जहाँ इस प्रकाश के सम्पर्क में आने वालों का सौभाग्य सराहा जा सकता है कि उन्होंने सचाई को निकटतम स्थल में देखा, वहाँ उन पर यह दोषारोपण भी होगा कि ऐसे यज्ञ को तनिक-सी समिधाएँ प्रदान करने में कंजूसी बरतकर इन लोगों ने अश्रद्धालुओं अथवा अकर्मण्यों की तरह दुःखद रूप में असफल हो जाने दिया।

जिन्हें इस विचारधारा का परिचय हो चुका है, जो उससे सहमत हैं, उन्हें अधिक नहीं तो इतना त्याग और सहयोग तो करना ही चाहिए कि उसे व्यापक बनाने में कुछ न कुछ न्यूनतम योगदान तो करें ही। प्राथमिक आवश्यकता इस विचारधारा का क्षेत्र बढ़ाने की है ताकि अधिक लोग उससे परिचित और प्रभावित हो सकें। सीमित क्षेत्र में बँधी रही तो यह दिव्य-ज्योति समस्त विश्व को प्रभावित प्रकाशित कैसे कर सकेगी ? इसलिए सोचना होगा कि व्यस्त व्यक्ति भी क्या इसके प्रसारण में कुछ योग दे सकते हैं ? उत्तर में यही कहा जा सकता है कि यदि भावना सच्ची हो तो गृह-जंजालों में फँसे हुए और अयोग्य व्यक्ति भी बहुत कुछ कर सकते हैं। क्या कर सकते हैं इसकी कुछ सम्भावनाएँ इस प्रकार हैं—

(१) घर में छोटा नव-निर्माण पुस्तकालय रखा जाय, हर मास नवीनतम भावनाओं और प्रेरणाओं से भरा जो साहित्य—दो पत्रिकाओं तथा ट्रैक्टों के रूप में तथा नियमित रूप में विनिर्मित हो रहा है, उसे मनोयोगपूर्वक नित्य-क्रम के रूप से पढ़ते रहा जाय और अपनी भावनाओं को अधिकाधिक परिष्कृत करना चाहिए।

(२) रात्रि को समस्त परिवार की एक ज्ञान गोष्ठी की जाया करे जिसमें घर का एक सदस्य नव-निर्माण साहित्य को पढ़कर सुनाया करे और घर के सब लोग सुना करें। उस पारिवारिक ज्ञान-गोष्ठी के लिए थोड़ा समय आवश्यक रूप में निकाला जाय।

(३) झोला पुस्तकालय चलाया जाय, घर के बाहर अपने सम्पर्क के जितने भी व्यक्ति कुछ विचारशील स्तर के हों, उन्हें इस साहित्य को पढ़ने देने और वापस लेने का क्रम आरम्भ किया जाय। इसके लिए एक छोटा पुस्तकों का झोला—जब भी घर से बाहर जाना हो—साथ लेकर चला जाय। जहाँ उपयुक्त व्यक्ति दिखाई पड़े, वहीं पर पुस्तक पढ़ने देने की प्रक्रिया आरम्भ कर दी जाय।

(४) अशिक्षित वर्ग में इस विचारधारा को पढ़कर सुनाने की व्यवस्था बनाई जाय।

(५) संगीत को नव-निर्माण विचारधारा का माध्यम बनाया जाय। जिनका गला मधुर है जो बाजा बजाना जानते हैं, वे जहाँ भी अवसर मिले थोड़ा या अधिक लोगों के बीच प्रेरक गीत गाने का अवसर न चूकें। कोकिल की तरह कूकते, भौंरों की तरह गूँजते रहने में ही अपनी उस ईश्वर प्रदत्त विभूति की सार्थकता समझें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संगीत विद्यालय चलावें। नये गायक उत्पन्न करें और अपनी प्रान्तीय अथवा क्षेत्रीय भाषाओं में प्रेरक कविताऐं रचें—अथवा रचावें। कीर्तन, कविता-पाठ, गायन-गोष्ठी संगीत सम्मेलन आदि के जहाँ भी अवसर सम्भव हों, उनके लिए प्रयत्नशील रहें। कुछ मीरा और नारद इस क्षेत्र में उतरें तो सारी हवा ही बदल जाय।

(६) चित्रकला को जनजागरण के लिए प्रयुक्त किया जाय। महापुरुषों, के लोकसेवियों के चित्र छापने, बेचने की प्रक्रिया चलाई जाय। ऐसे चित्रों की प्रदर्शनियाँ जगह-जगह पर लगाई जायें—जो वर्तमान दुष्प्रवृत्तियों के प्रति घृणा और सत्प्रवृत्तियों के प्रति आकर्षण पैदा करते हों। आदर्श वाक्य घरों में चित्रों का स्थान ग्रहण करें। हर दीवार एक सन्देश प्रसारित करने वाली बने, इसके लिए सुन्दर-सचित्र आदर्श वाक्यों को घरों में अधिकाधिक स्थान मिले, ऐसा प्रयत्न किया जाय। गली, मुहल्लों में दीवारों पर आदर्श वाक्य सुन्दर ढंग में लिखे जायें। उत्सव, आयोजन और मेले-ठेलों में केन्द्रित स्थानों पर बड़े-बड़े पोस्टर-चित्र लगाकर दर्शकों को प्रेरणा दी जाय। मैजिक लालटेन में दिखाये जाने वाले चित्र भी बड़े प्रभावशाली होते हैं।

(७) जो अभिनय कला जानते हों वे रामलीला, रासलीला, नौटंकी, नाटक, छाया, अभिनय, मूक अभिनय, एकांकी नाटेक, प्रहसन जैसे आधार लेकर नव-निर्माण की विचारधारा को जनमानस में प्रविष्ट करने के लिए नये आधार विनिर्मित करें और उन्हें लोकप्रिय बनावें।

फिल्म निर्माण है तो बड़ा काम पर संगठित रूप में वह किया जा सकता है। कुछ धनी व्यक्ति इस उद्योग में प्रवेश कर जनमानस में नव-निर्माण की चेतना भरने वाले फिल्म बना सकते हैं। इस दृष्टि से ग्रामोफोन के रिकार्ड जो लाउडस्पीकरों पर काम आ सकें, बनाना भी बड़ा उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

(८) छोटी गोष्ठियों और बड़े सम्मेलनों के रूप में आयोजन करके उपस्थित लोगों को आवश्यक प्रेरणा दी जाय। पारिवारिक उत्सवों में षोडश संस्कार एवं जन्मोत्सव, विवाहोत्सव बड़े प्रेरक सिद्ध होते हैं। मुहल्ला या ग्राम स्तर पर पर्व-त्यौहारों को सामूहिक ढंग से मनाया जा सकता है। विशेष आयोजनों में गीता सम्मेलन, रामायण सम्मेलन, गायत्री यज्ञ आदि की क्षेत्रीय स्तर पर बड़ी व्यवस्था की जा सकती है। इन आयोजनों में नव-निर्माण की विचारधारा का व्यवस्थित एवं क्रमशः बड़े रूप में समावेश करके जनजागरण एवं भौतिक, सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भूमिका बनाई जा सकती है।

(९) प्रातःकाल प्रभातफेरियों के रूप में कई व्यक्ति हों, ठीक अथवा एक दो व्यक्ति भी गली-चौराहों में एक जगह खड़े होकर एक भजन गाने दूसरी जगह खड़े होकर दूसरा भजन गाने, का क्रम चलाते हुए प्रभात जागरण किया करें। भजनों को बदलते रहने से सुनने वालों में और अधिक आकर्षण रहता है। फकीर लोगों का यह प्रिय माध्यम था। वे सबेरे के दो-तीन घण्टों में ही अपना पूरा सन्देश किसी नगर या गाँव को भली प्रकार सुना देते थे। यह पद्धति अभी भी अपनाये जाने योग्य है। सड़क पर गाने वाले, गली-मुहल्लों में भीड़ इकट्ठी करके अपना मन्तव्य सुनाने वाले आज इसलिए छोटी दृष्टि में देखे जाते हैं क्योंकि वे भिक्षा माँगते हैं। यदि माँगने का उद्देश्य न हो तो गा सकने की क्षमता वाले लोग इस माध्यम से भारी काम कर सकते हैं।

(१०) पुस्तकालयों की स्थापना, प्रौढ़ पाठशालाएँ बनाना, व्यायामशालाएँ, गृह-उद्योग शिक्षण जैसे शिक्षा-संस्थान चलाकर उनसे उपस्थित लोगों में भावनाएँ भरी जा सकती हैं। भौतिक एवं सांस्कृतिक ज्ञान की परीक्षाएँ लेने और प्रमाणपत्र देने का प्रचलन किया जा सकता है। लोकमंगल के कार्यों में संलग्न व्यक्तियों का अभिनन्दन, सत्पुरुषों की जयन्तियाँ, प्रतियोगिताएँ, सांस्कृतिक मेले आदि कितने ही प्रकार के ऐसे उपाय किये जा सकते हैं, जहाँ लोग विभिन्न आकर्षणों से एकत्रित हों और उस अवसर पर पूर्ण नियोजित विचार प्रसार से लाभान्वित हों।

इन दस कार्यों के अतिरिक्त एक और भी बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य है, वह है नव-निर्माण साहित्य के विक्रय की व्यवस्था करना। सद्ज्ञानवर्द्धन के लिए सद्ज्ञान साहित्य एक अनिवार्य आवश्यकता एवं अद्वितीय उपाय है। कोई चीज देर तक अथवा अधिक मात्रा में मुफ्त नहीं दी जा सकती। मुफ्त की चीज को कुपात्र तो मँगाते हैं और सत्पात्र संकोचवश उसे नहीं लेते। इसलिए प्रेरक साहित्य सस्ते मूल्य पर बेचने की भावनापूर्ण व्यवस्था हो सके तो उसे हर क्षेत्र में व्यापक बनाया जा सकता है। इसलिए सत्साहित्य के विक्रय के संस्थान हर जगह होने चाहिए। लोग अनेक तरह की दुकानें चलाते हैं। किताबें बेचते हैं। पर हर तरह की चीजें बेचने में कोई आकर्षण या उद्देश्य नहीं रहता। आवश्यकता इस बात की है कि कुछ ऐसे सत्साहित्य विक्रेता हों, जो केवल नव-निर्माण की प्रखर प्रेरणा का ही प्रयास करें। ऐसे व्यक्ति ही मिशन भावना का परिचय देंगे। उन्हें आदर्शवादी और धर्म प्रचारक माना जायगा। लेकिन जो चूं-चूं का मुरब्बा—निर्माण और विनाश का मिल-जुला घोल बेचते हैं, वे विक्रेता मात्र रहेंगे। नव-निर्माण मिशन के प्रसार में आदर्शवादी विक्रेता एक महान योगदान कर सकते हैं। वे ग्राहक को खरीददार मात्र न समझकर उसे अपना सेवा-साधना मानेंगे और बहुत देर तक अनेक बातें समझाकर उस विचारधारा का प्रसार करने में महत्त्वपूर्ण योगदान करेंगे।

इस प्रकार सत्साहित्य के प्रसार में योगदान करके जनसाधारण के अज्ञानान्धकार को दूर करने का महत्त्व कितना अधिक है, इसका कुछ अनुमान ईसाई मिशनरियों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के उदाहरण से हो सकता है। कोई जमाना था कि वे अपने मजहब की छोटी-बड़ी पुस्तकें जनता में मुफ्त बाँटा करते थे। बिना मूल्य के मिलने वाली रद्दी से रद्दी चीज के लेने में भी किसी को एतराज क्यों होने लगा ? इसलिए उस समय उनकी पुस्तकें बँट तो खूब जाती थीं, पर उनको कोई पढ़ता न था। वे अधिकांश पंसारी की दुकान पर पहुँचकर पुड़िया बनाने के काम ही आती थीं। यह स्थिति देखकर उन्होंने अपनी कार्य-प्रणाली को बदला और पुस्तक को एक-एक, दो-दो पैसा मूल्य रखकर उनको बेचने लगे। इस कार्य को छोटे-बड़े सभी ईसाई धर्मोपदेशक तथा उस धर्म में श्रद्धा रखने वाले अन्य सज्जन नि:संकोच भाव से करते थे। ठेठ विलायत से आये हुए अँग्रेज पादरी, जिनका मासिक वेतन कई-कई सौ रुपया होता था, बाजार में खड़े होकर ईसाई-धर्म के सीधे-सादे भजन गाकर सुनाते और लोगों को बुला-बुला कर पुस्तकें खरीदने का आग्रह करते थे। यहाँ के लोग प्राय: उनकी बातें सुनकर हँसी-दिल्लगी करते थे, पर वे इससे कुछ भी खिन्न न होकर उनकी हँसी में सहयोग देते हुए बराबर उनके हाथ अपनी पुस्तकें बेचने का प्रयत्न करते थे। इस प्रकार की बिक्री से जो दो-चार आना मिल जाते थे, उसका कोई महत्त्व न था, पर इस बात की प्रशंसा की जाती थी कि उन लोगों को अपने धर्म में कितनी अधिक संलग्नता है कि एक अनजान देश और अनजान लोगों में मान-अपमान का ख्याल न करके प्रचार-कार्य में निरन्तर संलग्न रहते हैं और अन्त में कुछ न कुछ ठोस काम करके दिखा ही देते हैं।

'यही बात कम्युनिस्ट पार्टी के प्रचारकों में देखी जाती है। कॉलेज में पढ़ने वाले प्रतिभाशाली छात्रों तथा छात्राओं को हमने बाजारों, मेलों और बस तथा रेलवे स्टेशनों के समीप कम्युनिस्ट साहित्य बेचते देखा है। उसे बेचने के साथ वे ग्राहकों से बात-चीत करते हुए अपने आर्थिक और राजनैतिक सिद्धान्त भी ग्राहक के कानों में डाल देते हैं और कितनों को ही उसी माध्यम से अपना सहकारी अथवा सहानुभूति रखने वाला भी बना लेते हैं। इनमें से कुछ छात्र-छात्राएँ वास्तव में स्वावलम्बी भी होते हैं, अर्थात वे अपनी पढ़ाई का बोझा किसी दूसरे के सिर पर न डालकर स्वयं अपने पैरों पर खड़े होकर आगे बढ़ना चाहते हैं। वे लोग भी अपने 'प्रोपेगैण्डा' के आधार पर सैकड़ों व्यक्तियों को सहानुभूति रखने वाला बना लेते हैं और विपरीत परिस्थितियों में भी बहुत कुछ सफलता प्राप्त करते हैं।

ये दो उदाहरण हमने इसीलिये दिये हैं कि हमारे यहाँ के जो युवक अथवा वृद्ध सज्जन हाट-बाजार में पुस्तक बेचने के कार्य को छोटा समझते हैं या उसमें अभ्यासवश जिन्हें संकोच होता है, वे यह समझ लें कि किसी श्रेष्ठ सेवा-कार्य के लिए अथवा जनसाधारण में ज्ञान-प्रकाश को फैलाने के लिये, सड़क के एक किनारे बैठकर या किसी जगह खड़े होकर भी छोटी-छोटी पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिकायें बेचना कोई संकोच या लज्जा की बात नहीं है वरन् एक श्रेष्ठ—पुण्यदायक सेवा-कार्य है। हमारा कहने का आशय यह नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति जोर से आवाज लगाकर या गाना गाकर ही पुस्तकें बेचें वरन् अपनी स्थिति और विक्रय-क्षेत्र की परिस्थितियों को देखते हुए जो कार्य-प्रणाली अनुकूल और समयोचित हो उसी से काम लिया जाय। सद्ज्ञान का प्रकाश करने वाले साहित्य को जिस प्रकार भी फैलाया जाय, वह प्रशंसनीय और कल्याणकारी ही माना जायगा।

रिटायर्ड—गृह-निवृत्त—वयोवृद्ध लोग जो आमतौर से बेकार ही रहते हैं। बस 'गोरस बेचन हरि मिलन, एक पंथ दो काज' वाली—सत्साहित्य विक्रय की पुण्य प्रक्रिया को अपनालें तो उससे जनजागरण के कार्य में भारी योगदान दे सकते हैं। विक्रय के कमीशन के रूप से उन्हें थोड़ा हाथ खर्च जितना आर्थिक लाभ भी मिल सकता है। आधे समय झोला पुस्तकालय के रूप में वे लोगों को पुस्तकें पढ़ने देने जाया करें और सायंकाल किसी शिक्षितों की भीड़-भाड़ वाले स्थान पर जमीन पर दुकान लगाकर बैठ जाया करें। नव-निर्माण का आकर्षक बोर्ड लगालें। जो पुस्तकें देखने को आकर्षित हों उन्हें मिशन का उद्देश्य और स्वरूप समझावें। इस तरह यह सस्ते और आकर्षक ट्रैक्ट बड़ी आसानी से बिकते रह सकते हैं। अपने घर पर या बाजार में दुकान लेकर भी ऐसे विक्रय केन्द्र चलाये जा सकते हैं। झोला पुस्तकालय चलाने में लोग कई पुस्तकें बहुत पसन्द करते हैं। उन्हें वे पुस्तक खरीदने की प्रेरणा दी जा सकती है। दूसरे दिन उनके घर पर भी वह पुस्तकें पहुँचाई जा सकती हैं कई व्यक्ति ऐसे भी तैयार किये जा सकते हैं, जो उस साहित्य को अपने घरों पर पुस्तकालय के रूप में रखना चाहते हैं, उन्हें नये छपते रहने वाले साहित्य की सप्लाई की जा सकती है। उपहार में देने के लिए लोग ऐसी चीज पसन्द करते हैं। स्थानीय पुस्तकालयों में ऐसे साहित्य की माँग रहती है। समीपवर्ती मेले-ठेले, सभा-सम्मेलन, नुमायश, हाट-बाजार भी ऐसे विक्रय के केन्द्र बनाये जा सकते हैं। घूम-घूम कर घर-गाँवों में, स्कूलों में, कारखानों में छुट्टी के समय, मन्दिरों में दर्शनों के समय, पार्कों में, स्टेशनों पर, मोटर अड्डों पर इस प्रकार का साहित्य लगाया जा सकता है। समझाने की क्षमता हो तो विचारशील क्षेत्रों में उसे उत्साहवर्धक मात्रा में बेचा जा सकता है। जिनके पास अवकाश है, उनके लिए यह स्वर्ण सुयोग है। जो अन्य प्रकार की स्टेशनरी, कपड़ा आदि की दुकानें चलाते हैं, वे भी अपने यहाँ यह साहित्य एक अलमारी में सजाकर रखें और अपने ग्राहकों को उन्हें भी दिखाते-बताते रहें, तो जरूर थोड़ी बहुत बिक्री होती रह सकती है। इस प्रकार नव-निर्माण विचारणा के प्रसार का महत्त्वपूर्ण परमार्थ सम्पन्न करने के साथ-साथ अपने बचे समय का सदुपयोग और हाथ खर्च के लिए कुछ पैसे भी प्राप्त कर सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुस्तक विक्रय कोई छोटा धन्धा नहीं। इसे उच्च कोटि का पुण्य-परमार्थ मानना चाहिए। उसमें संकोच की बेइज्जती अनुभव करने की कोई बात नहीं। गोपियाँ भगवान कृष्ण से मिलने के लिए दही बेचने का बहाना लेकर जाया करती थीं। हम विश्व मंगल के लिए पुस्तक बेचने का बहाना लेकर एक पुण्य-प्रक्रिया अपना सकें तो वह निश्चय ही 'गोरस बेचन हरि मिलन—एक पंथ दो काज' वाली अक्ति अक्षरशः चरितार्थ होगी।

झोला पुस्तकालय—अमृतकलश

'झोला' जीवनोपयोगी एक आवश्यक वस्तु है। थोड़ा आवश्यक सामान साथ रखना हो तो उसके लिए झोला की आवश्यकता पड़ेगी। बाजार से छोटी-मोटी चीजें खरीदने जाना हो तो भी उसे साथ ले जाना आवश्यक है। बच्चे स्कूल जाते हैं तो जलपान तथा पुस्तकें उसी में रखकर ले जाते हैं। सन्त महात्माओं के लिए—पूजा-पाठ करने वालों के लिए तो उसकी अधिक आवश्यकता रहती है। इस प्रकार झोला की उपयोगिता आज सर्वमान्य बन गई है। इसलिए वे बनते, बिकते भी बहुत हैं। विज्ञापन छपे झोले उपहार में देने का रिवाज बढ़ रहा है। हाथ में टँगा यह उपकरण विज्ञापित वस्तु का प्रचार अनायास ही करता रहता है। फेरी वाले दुकानदार अब अपना माल बड़े-बड़े झोलों में ही भरे रहते और जहाँ जरूरत पड़ती है, इस हल्के बक्से से अपनी वस्तुएँ ग्राहक के सामने उपस्थित करते हैं। सार्वजनिक कार्यकर्ताओं के लिए तो वह एक फैशन की वस्तु भी बन गया है। सैनिक से लेकर स्वयंसेवकों तक उसका उपयोग अपने यात्रा-काल में अनिवार्य रूप से करते हैं।

यों भिक्षा के लिए भी झोली सामने आती है, इसलिए कई बार उसे छोटी अथवा हीन वस्तु समझ कर प्रयोग करने में संकोच-सा लगता है पर जब दूसरी ओर दृष्टि डाली जाती है और देखा जाता है कि वह कितना उपयोगी तथा आवश्यक है तो उसे साथ रखने और सहचर बनाने के लिए उत्साह भी उठता है। अब झोला लेकर चलना कोई तुच्छ समझी जाने वाली बात नहीं रही वरन् एक सर्वोपयोगी सर्वत्र प्रचलित मान्यता प्राप्त आवश्यकता बन गई है। अब उसे कंधे पर लटकाये या हाथ में लेकर चलते हुए किसी को संकोच नहीं होता। फिर इधर तो प्लास्टिक के, केनवेश के तरह-तरह की बढ़िया-बढ़िया डिजायन और तर्जों के ऐसे झोले भी बने हैं, जिन्हें साथ ले चलने में बेइज्जती नहीं वरन् खूबसूरती लगती है। पढ़ी-लिखी महिलायें तो हैण्डबेग जैसी एक छोटी झोली आवश्यकता न होने पर भी हाथ में लटकाकर चलना एक फैशन ही मानने लगी हैं। ऐसे सर्व सहचर झोले की उपयोगिता को देखते हुए अब उसे छोटा मानने या तिरस्कार समझने की कोई आवश्यकता नहीं रह गई।

झोला पुस्तकालय आन्दोलन ने ही उसकी उपयोगिता एवं महत्ता को हजार गुना अधिक बढ़ा दिया है। जनमानस में नवजागरण की पुण्य प्रेरणा भरने और सर्वतोमुखी पुनरुत्थान का प्रकाश उत्पन्न करने के लिए उससे बढ़कर और कोई माध्यम नहीं। कहने की आवश्यकता नहीं कि मानव जीवन की गरिमा उसकी विचारशीलता पर निर्भर है। विचारों का स्तर गिर जाने से मनुष्य नीच, तुच्छ, हेय, दीन, घृणित, पतित, नारकीय पशु और पिशाच बन जाता है। विचारों की उत्कृष्टता से गई-गुजरी स्थिति में रहने वाला व्यक्ति भी सफल, समुन्नत, स्वस्थ, प्रगतिशील, श्रद्धास्पद, सर्वोपयोगी श्रेष्ठ, सज्जन, महापुरुष, देवदूत एवं अवतार बन जाता है। हाड़-माँस की दृष्टि से इस तुच्छ शरीर में जो कुछ महिमामयी महत्ता है। वह विचारों की ही है। इसी को सच्ची सम्पत्ति एवं विभूति माना गया है। असद्विचारों के अनुभव से मणिहीन सर्प की तरह मानव प्राणी की स्थिति पशु, पक्षियों जैसी नगण्य ही बनी रहती है पर जब उसके भीतर उत्कृष्ट विचारणा जग पड़ती है, तो देखते-देखते वह आकाश छू सकने जैसा महान बन जाता है। पारस की तरह वह जिसे छू देता है वही धन्य हो जाता है।

आज वैयक्तिक जीवन में और सामूहिक जीवन में अगणित अभाव, शोक-सन्ताप, विग्रह, संघर्ष, उद्वेग, असन्तोष, अपराध एवं संकट आच्छादित दीखते हैं, उनका केवल मात्र एक ही कारण है—जनसाधारण की भावनात्मक स्थिति का दुर्बल हो जाना, विचारणाओं का स्तर गिर जाना, आकांक्षाओं में स्वार्थ एवं संकीर्णता का समाविष्ट हो जाना। इसी गड़बड़ी ने इस ईश्वर की हर्षोल्लास भरी धरित्री को नारकीय दुःख-दारिद्र्य से भर दिया है। उससे छुटकारा पाने की यदि सच्ची इच्छा हो तो सांसारिक समृद्धि बढ़ाने मात्र से काम न चलेगा—जनमानस में विवेक, दूरदर्शिता, सज्जनता, उदारता, सच्चाई एवं कर्त्तव्यनिष्ठा की सत्प्रवृत्तियों का बीजारोपण एवं पुनरुत्थान करना होगा। इस प्रयास के बिना सुख-शांति एवं प्रगति समृद्धि के सपने कभी भी साकार न हो सकेंगे। काँटा निकाले बिना दर्द कैसे दूर होगा ? आज की विवेक, दरिद्रता ने मानव प्राणी को दीन-दुःखी, आतंकित, उद्विग्न असहाय प्राणी की स्थिति में पहुँचा दिया है। उसका सुधार समाधान उसी दिन आरम्भ होगा जिस दिन विचार पद्धति को बदल डालने के प्रखर समर्थ और संगठित प्रयास आरम्भ किये जायेंगे। लगता है वह शुभ घड़ी आ पहुँची। युग-निर्माण-योजना के अन्तर्गत इसी स्तर के प्रयास आरम्भ किये गये हैं। अखंड-ज्योति परिवार के परिजन जिस तत्परता से उस योजना को कार्यान्वित एवं गतिशील बनाने में कटिबद्ध हैं, उसे देखते हुए विश्वासपूर्वक यह आशा की जा सकती है कि विचार क्रांति की युग पुकार को पूरा किया जा सकेगा और मनुष्य को वर्तमान दुर्दशा से उठाकर उसके प्राचीन गौरव जैसी स्थिति तक पहुँचाया जा सकेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लोहा लोहे से कटता है, काँटा काँटे से निकाला जाता है, विष को विष मारता है, इसी प्रकार ओछे विचारों की काट उत्कृष्ट विचारों से होती है। प्राचीनकाल में उत्कृष्ट विचारणा हर मनुष्य के अन्तःकरण में प्रतिष्ठापित थी तो वह महामानवों एवं नर-रत्नों का भाण्डागार बना हुआ था, आज निकृष्ट विचारणायें जनमानस में जम गईं तो नर-पशुओं और नर-पिशाचों का ही बाहुल्य दृष्टिगोचर होने लगा है। इस स्थिति को बदलने के लिए एक विचारात्मक, भावनात्मक संघर्ष छेड़ना पड़ेगा। कुविचारों को सद्विचारों से काटना पड़ेगा। अविवेक का समाधान विवेक से करना पड़ेगा। अज्ञान का अन्धकार सद्ज्ञान के प्रकाश से ही हटाया जा सकेगा। आज की यही सबसे बड़ी आवश्यकता है। अन्य सभी समस्यायें सभी आवश्यकतायें इसकी तुलना में गौण हैं। इस युग का सबसे बड़ा पुण्य-परमार्थ जनमानस में छाये हुए अन्धेरे को उत्कृष्टता एवं आदर्शवाद के प्रकाश से प्रकाशित करना ही होगा।

युग-निर्माण-योजना के अन्तर्गत यही प्रयास व्यवस्थित एवं संगठित रूप में आरम्भ हुआ है। कुविचारों पर तीखे चोट करने वाले सद्विचारों का क्रमबद्ध प्रणयन किया गया है और समझाया गया है कि वे लाभदायक हैं जैसा कि समझा नहीं जाता। इसी प्रकार उत्कृष्ट विचारणा के बारे में फैले हुए इस भ्रम का भी निराकरण किया गया है कि उसको हृदयंगम करना कठिन एवं हानिकारक है। बुद्धि संगत ढंग से, तर्क, प्रमाण एवं उदाहरणों के आधार पर कोई बात समझाई जा सके, तो बुद्धिजीवी मनुष्य उसे समझ सकता है और स्वीकार कर सकता है। पिछले दिनों इस प्रकार के प्रयास बन्द हो गये। अवांछनीय विचार प्रवाह का निर्माण एवं प्रसार हुआ तो वैसी स्थिति भी उत्पन्न हो गई। अब जबकि आदर्शवादिता के प्रतिपादन में विवेकसंगत शैली से प्रतिपादन आरम्भ हुआ है, तो विश्वास करना चाहिए कि बुद्धिमान मनुष्य उसे अपने ही हित साधन की दृष्टि से स्वीकार भी करेगा और कार्यान्वित भी।

वैयक्तिक आदर्शों और सामाजिक परिस्थितियों का हमें निश्चित रूप में युग-निर्माण करना पड़ेगा। वर्तमान ओछी मान्यताओं के रहते न व्यक्ति का कल्याण होगा, न समाज का उत्थान। इसलिए सचाई और विवेक की कसौटी पर खरे उतरने वाले आदर्शों के प्रति अभिरुचि और मूढ़ता एवं अनैतिकता के प्रति अरुचि उत्पन्न करने में समर्थ जिस विचार पद्धति की आज महती आवश्यकता थी, उसका क्रमबद्ध सृजन युग-निर्माण-योजना के अन्तर्गत किया गया है। मथुरा में इस तरह की विचार-पद्धति का छोटे-छोटे ट्रैक्टों के रूप में यह सृजन क्रम चल रहा है। शैली की अपनी अद्भुत विशेषता है। वह हर पढ़ने, सुनने वाले पर चोट करती है और एक हलचल उत्पन्न करती है, जिससे उस प्रकाश के सम्पर्क में आने वाले को अपना तथा सम्बद्ध वातावरण का परिवर्तन करना एक अनिवार्य आवश्यकता प्रतीत होने लगे। पिछले थोड़े समय के प्रयोग ने यह सिद्ध कर दिया है कि यह विचारधारा पत्थरों को पिघला देने में समर्थ है। आँधी-तूफान की तरह उसका प्रभाव होता है। यह विचार जहाँ भी पहुँचते हैं वह अपना प्रभाव छोड़ते हैं। वस्तुस्थिति पर सोच-विचार करने के लिए मनुष्य को विवश करते हैं और अन्ततः उसे वही आधार स्वीकार करने के लिए झुकाते हैं, जो उचित एवं आवश्यक है। इन थोड़े-से दिनों में लाखों व्यक्तियों की दिशाओं में जो भारी परिवर्तन इस नव-निर्माण की विचारधारा ने प्रस्तुत किया है, उसे देखते हुए उसकी उपयोगिता वास्तविकता, प्रखरता, उत्कृष्टता, सामर्थ्य एवं सृजनात्मक शक्ति में कोई सन्देह करने की गुंजाइश नहीं रही है।

गतिरोध यहाँ उत्पन्न हो गया है कि प्रेरक विचार पद्धति व्यापक कैसे बने ? सृजन जितना आवश्यक है प्रसार उससे भी अधिक आवश्यक है। प्रसार न हो सके तो उत्तम सृजन भी एक कोने में पड़ा सड़ता रह सकता है। युग निर्माण-योजना युगान्तर प्रस्तुत करने वाली विचारधारा का सस्ते सत्साहित्य रूप में सृजन कर रही है पर उसका प्रसार होने में गतिरोध उत्पन्न करने जैसी बाधा उपस्थित है। यह एक तथ्य है कि लोगों में इस स्तर का साहित्य पढ़ने की रुचि तनिक भी नहीं। वे न उसकी माँग करते हैं, न खरीदते हैं। पुस्तक प्रकाशक और विक्रेता इस तरह की चीजें छापते ही नहीं। बेचारे पूँजी क्यों फँसायें ? जो चीज बिके ही नहीं उसे छाप कर क्यों व्यर्थ का जंजाल ओढ़ें ? जो अति उत्साह में छाप लेते हैं, उनकी वस्तुयें गोदामों में पड़ी सड़ती रहती हैं।

ऐसी दशा में इस विचारधारा के सृजन ही नहीं प्रकाशन का कठिन उत्तरदायित्व भी युग-निर्माण-योजना को ही वहन करना पड़ा है। अब भी प्रश्न फिर प्रचार का शेष ही रह गया। छाप लेने मात्र से किसी वस्तु का प्रसार नहीं हो सकता। पुस्तक विक्रेताओं को भी इसके लिए सहमत नहीं किया जा सकता कि जिन चीजों की माँग ही नहीं, जो चलती या बिकती ही नहीं उन्हें वे मँगाकर अपनी दुकान घेरें और पूँजी फँसायें !

आज की स्थिति में एक ही उपाय है, जिससे इस युगान्तरकारी प्रबल प्रेरणा को घर-घर तक, जन-जन तक पहुँचाया जा सकता है। वह उपाय है—झोला पुस्तकालय। विचारशील व्यक्ति जिनके मन में देश, धर्म, समाज, संस्कृति के प्रति दर्द हो, जो मानवीय आदर्शों को फलता, फूलता देखने के इच्छुक हों—जिन्हें सुन्दर और सुव्यवस्थित नवयुग के प्रति आकर्षण हो—वे अपना थोड़ा समय और थोड़ा पैसा खर्च करने लगें। जीवन साहित्य को अपने थैले में रखें—स्वयं पढ़ें और अपने हर शिक्षित सदस्य को पढ़ावें और अशिक्षितों को सुनावें। इसके अतिरिक्त अपने पड़ौसी, मित्र, रिश्तेदार, परिचित, अपरिचित जहाँ तक अपना प्रभाव और सम्पर्क पहुँच सके, वहाँ तक उस विचारधारा को पहुँचाने और पढ़ाने का प्रयत्न करें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह कार्य सरल भी है और कठिन भी। सरल इसलिए कि एकाध घण्टे का थोड़ा समय और दस पैसे जितना तुच्छ धन व्यस्त से व्यस्त और निर्धन से निर्धन व्यक्ति भी यह भावना सम्पन्न हो तो बड़ी आसानी से निकाल सकता है। मिलनसारी, भलमनसाहत और बातचीत करने की कला जिसमें थोड़ी-सी भी है, वह अपनी बुद्धिमत्ता से किसी को भी इस बात के लिए सहमत कर सकता है कि इन प्रेरणाप्रद पुस्तकों को पढ़ने के लिए मुफ्त में प्राप्त कर लिया करें और ठीक तरह वापस लौटा दिया करें। यह कार्य कठिन इसलिये है कि आजकल परमार्थ कार्य में तनिक भी रुचि दिखाने वाले को उसके घर वाले तथा यार दोस्त मूर्ख बताते और हँसी भी उड़ाते हैं। ताश, सिनेमा, नशा, व्यसन और तरह के समय में पैसे की बर्बादी से उन्हें कोई ऐतराज नहीं, पर सार्वजनिक सेवा-परमार्थ में रत्ती भर भी रुचि लेना उन्हें असह्य है। निकृष्ट स्तर के समाज में इसके अतिरिक्त और आशा ही क्या की जा सकती है ? प्रथम कठिनाई यही बहुत बड़ी है। दूसरी कठिनाई यह है कि अपने को भी यह एक झंझट लगता है, किसी के पास जाना, देश-धर्म की बात कहना एक संकोच जैसी बात ही है। आजकल खुराफात भरी बातों में ही सब लोग रस लेते हैं। उनमें घण्टों सर खपाइये लोग सुनते-सुनते थकते नहीं, मजलिस घण्टों चलती रहेगी, पर आदर्शवादिता की बात सुनने में भार लगता है। लोग शीघ्र ही ऊब जाते हैं और चर्चा छोड़ने वाले की हँसी करते हैं। इससे अपने को झेंप लगती है, झिझक आती तथा संकोच प्रतीत होता है। तीसरी कठिनाई लोगों में इस तरह की प्रवृत्ति के प्रति आकर्षण न होने, उसकी उपयोगिता विदित न होने से अरुचि की है। अभिरुचि न होने पर किसी को मुफ्त में साहित्य पढ़ने तक के लिए सहमत कर सकना कठिन है। इन कारणों से जहाँ वह कार्य सरल है वहाँ कठिन भी। मनस्वी लोग कठिन को सरल बना लेते हैं और दुर्बल मनोवृत्ति वाले को सरल बात भी बड़ी कठिन लगती है। यह व्यक्ति की अपनी स्थिति मात्र है। वस्तुतः सद्ज्ञान प्रसार एक सीधी-सादी प्रक्रिया है न कठिन, न सरल है। अपने उत्साह, अनुत्साह, साहस, संकोच पर सारा आधार निर्भर है।

प्रबुद्धता और विचारशीलता का यह तकाजा है कि हमें व्यक्ति और समाज के पुनरुत्थान के महान अभियान में दर्शक या तटस्थ बने रहना चाहिये वरन् कुछ न कुछ हाथ बँटाना चाहिए। झोला-पुस्तकालय इस दृष्टि से सबसे सरल किन्तु सबसे उच्च स्तर का पुण्य-परमार्थ है। इसके लिए थोड़ा समय निकालना ही चाहिए, छुट-पुट पुण्य-परमार्थ समझे जाने वाले धार्मिक कर्म-काण्डों में हर हिन्दू गृहस्थ के घरों में ढेरों पैसा खर्च होता है। आवश्यक व अनावश्यक कार्यों में भी सारी कमाई खर्च होती है। तब कब इतने बड़े परमार्थ के लिए अपने घर में नव-निर्माण पुस्तकालय स्थापित करने के लिए प्रतिदिन दस पैसा जैसी तुच्छ धनराशि व्यय करते रहना ही ऐसा असह्य भार बन सकता है, जो उठाया न जा सके। भावना न हो तो एक मिनट और एक कौड़ी भी भारी पड़ती है पर भावनाशीलों के लिए अपना प्राण और सर्वस्व भी परमार्थ में समर्पण करते हुए भारी नहीं पड़ता।

हमारी उदारता, आध्यात्मिकता, स्वार्थपरता और परमार्थ-परायणता यदि उतनी जग सके कि जरा सा समय और थोड़ा-सा योग नित्य व्यय करने की बात बन जाय तो समझना चाहिए कि इतने से योगदान द्वारा भी इस युग की एक महती आवश्यकता की पूर्ति में अपना महत्त्वपूर्ण सहयोग हो सकता है और उतने से भी नवयुग निर्माण की दिशा में भारी प्रगति की सम्भावना बढ़ सकती है।

झोला भीख माँगने के लिए हमें हाथ में नहीं लेना है वरन् सद्ज्ञान का वरदान बाँटने के लिए 'अमृत-कलश' की तरह उसे हाथ में उठाना है। धनीमानी लोग अन्न, मिष्ठान्न, औषधि के बण्डल वितरण करके जो पुण्य प्राप्त करते हैं, हम निर्धन लोग सद्ज्ञान का अमृत बाँटकर उससे हजारों-लाखों गुना पुण्य प्राप्त कर सकते हैं। मनुष्य की प्रवृत्ति और दिशा आदर्शवादिता की ओर मोड़ देने से बढ़कर और कोई परमार्थ इस धरती पर नहीं हैं। विश्व-शान्ति के लिये किये गये समस्त उपायों में ज्ञान यज्ञ सर्वोपरि है। इस महान अभिप्राय के लिये क्या हम तनिक भी सहयोग नहीं दे सकते हैं ? इस युग के सबसे प्रबल और महान युग-निर्माण अभियान में क्या हमारा कुछ भी योगदान नहीं हो सकता ? यह प्रश्न अपने आपसे पूछना चाहिए और यदि अन्तरात्मा कहे कि व्यस्तता और आर्थिक कठिनाई के रहते हुए भी कुछ तो हो ही सकता है तो सबसे पहले इसी सर्वोपरि परमार्थ-ज्ञान-यज्ञ में सम्मिलित होना चाहिये। झोला पुस्तकालय हाथ में उठाना चाहिए और अपने सभी स्वजन परिजनों पर अमृत वर्षा करनी आरम्भ कर देना चाहिये।

जो पुस्तकालय चलाते हैं— जीवन दान देते हैं

पुस्तकालय साहित्य एवं लिखित-चित्रित ज्ञान राशि के रूप में यह संस्कृति का भण्डार है। संस्कृति का वाहक है। लोकतन्त्री संस्था के रूप में पुस्तकालय अध्ययन और अनुभूति के मार्ग से प्रेरणा, ज्ञान, सूचना एवं जानकारी प्रदान करके सर्वसामान्य की प्रतिभा के पूर्ण विकास में योग देता है। ज्ञान की ज्योति जगाता है प्रत्येक व्यक्ति के विकास के लिए समान सेवायें और अवसर प्रदान करता है। ज्ञान के माध्यम से सभी के संताप और क्लेश निवारण में योग देता है। जाति, धर्म, रंग और ऊँच-नीच का भेद किये बिना समान रूप से, प्रत्येक की क्षमताओं का विकास करता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिस प्रकार की समाज रचना हम चाहते हैं, उसी के अनुरूप व्यक्ति के मस्तिष्क और मन को तैयार करना आवश्यक है। हमें हिटलर का प्रयत्न स्मरण है। केवल छः वर्ष में उसने अपनी कामना का समाज खड़ा कर लिया। सोवियत रूस भी अपने अभीष्ट समाज की रचना और सामाजिकों की अपेक्षित योग्यता तथा गुणों की दिशा में जागरूक है, प्रयत्नशील है। लक्ष्य के अनुरूप नागरिकों का मानसिक विकास करने से ही अभीष्ट समाज की रचना सम्भव है। पुस्तकालय शिक्षा का सार्वभौमिक व सर्वकालिक आधार है। समाज के विभिन्न क्षेत्रों व स्तरों पर नये ढंग के पुस्तकालयों की व्यवस्था करने से वांछित लोकतंत्री समाज की रचना अत्यन्त सुगम ही जावेगी।

विचार, विश्वास, धर्म, अभिव्यक्ति, उपासना और दान की स्वतन्त्रता लोकतन्त्र का प्राण है। मानव जीवन के मूल्यों एवं व्यक्तिगत जीवन-मूल्यों में लोकतन्त्र की गहरी आस्था है। यह प्रत्येक व्यक्ति के जीवन को एक अनूठा साहस माँगता है। व्यक्ति के साहस को उचित दिशा-निर्देश के लिए नियमित एवं आजीवन शिक्षा आवश्यक है। शिक्षा अज्ञान, अन्धविश्वास एवं संकुचितता से मुक्ति दिला सकती है। तथ्य, घटनाओं एवं जीवन-मूल्यों को जानने के लिए व्यक्ति को प्राकृतिक विज्ञानों, कला तथा मानविकी एवं सामाजिक विज्ञानों की ज्ञान प्राप्ति होना चाहिए। विद्यालयों से मिलने वाला ज्ञान निश्चित क्षेत्रों तक सीमित होने के साथ-साथ एक सीमित आयु तक ही उपलब्ध होता है। नियमित एवं आजीवन ज्ञान प्राप्ति के लिये हमें पुस्तकालयों की ओर ही देखना पड़ता है। यदि हम इतिहास उठाकर देखें तो मालूम होगा कि उत्तरोत्तर पुस्तकालयों में उद्देश्यों, कार्यों एवं व्यवस्था में इसी दृष्टिकोण से आश्चर्यजनक परिवर्तन हुए हैं। आज जो पुस्तकालय जीवन-शक्ति का केन्द्र (पावर हाउस) बन गया है। स्वतन्त्रता के प्रभाव के कारण पुस्तकालय में अध्यक्षताओं को पूर्ण स्वतन्त्रता दी जाने लगी है और प्रत्येक पाठक को महत्त्वपूर्ण समझा जाने लगा है। फलतः पुस्तकालय विज्ञान के इन दो सिद्धान्तों 'प्रत्येक पाठक की अपनी पुस्तक' (एवरी रीडर्स हिज आर हर बुक) और 'पाठकों का समय बचना चाहिए' (सेव दी टाइम ऑफ दी रीडर्स) की स्थापना हुई। प्रत्येक पाठक की अपनी पुस्तक के अन्तर्गत उन सभी प्रक्रियाओं और सेवाओं का समावेश है, जो कि प्रत्येक व्यक्ति की मानसिक व बौद्धिक आवश्यकताओं व पूर्ति से सम्बन्ध रखती हैं। 'पाठक का समय बचाइये' के अन्तर्गत वे सभी रीतियाँ-नीतियाँ और व्यवस्थायें सम्मिलित हैं, जिससे प्रत्येक व्यक्ति के बहुमूल्य क्षण वांछित सामग्री प्राप्त करने में नष्ट न हों।

आज धन को ही प्रतिष्ठा, गौरव, सम्मान, ज्ञान एवं योग्यता का मापदण्ड मान लिया गया है। इसलिए धन एकत्र करने की भावना घर करती जा रही है। धनी, समाज में सभी गुणों का अधिष्ठाता माना जाता है। चाहे उसने ज्ञान, चरित्र, धर्म और नैतिकता का संस्पर्श भी न किया हो। संग्रह और परिग्रह की भावना प्रबल हो गई है। अब मानव का मूल्य धन से आँका जाता है, ज्ञान और अनुभव से नहीं। परिग्रह के साथ ही अनैतिकता, प्रपंच, लूट, हत्या आदि अनेक अमानुषिक कृत्यों को बढ़ावा मिल रहा है। यदि धन का स्थान ज्ञान ले ले, तो सामाजिक मापदण्ड बदल जायेंगे और मानव मूल्यों की स्थापना हो सकेगी। यह कार्य पुस्तकालयों के द्वारा किया जा सकता है।

समाजवाद राजवाद से ऊपर की वस्तु है। समाजवाद की स्थापना का अर्थ है, मानव का नव-निर्माण। आवश्यकता है जनता में एक नया रुख उत्पन्न करने की, एक नया जनमत तैयार करने की, प्रत्येक व्यक्ति का आत्मशोधन करने की, अहंकार के निराकरण की और यह सब होगा ज्ञानदान से। पुस्तकालयाध्यक्ष और पुस्तकालय के कार्यकर्ताओं का ज्ञान-जगत से सीधा सम्बन्ध है। वे ज्ञान के आदान-प्रदान और वितरण में सक्रिय भाग लेते हैं, महत्त्वपूर्ण सहयोग देते हैं। किन्तु अनेक बन्धुओं की सम्भवतः मालूम नहीं है कि वे कितने महत्त्वपूर्ण स्थान पर बैठे हैं? उनके सक्रिय जीवन का आधे से अधिक जीवन पुस्तकालय में व्यतीत होता है और यदि इसी काम को वे सेवा (मिशन) के संकल्प के साथ स्वीकार कर लें तो उसे जीवनदान की ही संज्ञा दी जायेगी, क्योंकि "जीवनदान एक विशेष कार्य के लिए जीवन की एक विशेष योजना है।" इसी प्रकार के संकल्प की अहिंसक क्रान्ति के लिए व्यूह भेद करने वाला अग्र चरण मानना होगा। इस दृष्टि से यह समय पुस्तकालयाध्यक्षों और पुस्तकालय के कार्यकर्त्ताओं के लिए आत्मजागरण का है। कोई असम्भव या बड़ा कठिन काम नहीं करना है, जो कुछ कर रहे हैं उसके साथ केवल 'संकल्प' जोड़ना है, न किसी वस्तु का त्याग करना है, न कोई तपस्या करनी है। केवल सेवा के संकल्प मात्र से जीवन बदल जायेगा। अब तक जो कुछ अपने लिए करते रहे हैं, वही तब औरों के लिए, समाज के लिए होने लग जायेगा। पद्मश्री डा. एस. आर. रंगनाथन का जीवनदान हमारे सामने है। उन्होंने जीवनभर ज्ञान का अलख जगाया। पुस्तकालय, सूचना एवं प्रलेखन विज्ञान के क्षेत्रों में असंख्य वैज्ञानिक उत्पन्न किये। पुस्तकालय विज्ञान से सम्बन्धित लगभग ५० ग्रन्थ लिखे। यही नहीं अपने उपार्जन का कण-कण जोड़ा। एक आचार्य की आय ही क्या होती है ? फिर भी एक लाख रुपया पुस्तकालय विज्ञान विभाग के विकास के निमित्त मद्रास विश्वविद्यालय को भेंट कर दिये। यह है जीवनदान का समाज के लिए आत्मोत्सर्ग का अनुकरणीय उदाहरण। रंगनाथन का जीवन हमें जगा रहा है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सामाजिक जागरण और सामाजिक निर्माण का शंखनाद ज्ञान-स्थलों से ही हो सकता है। अन्धकार में आलोक दीपक से ही होगा। आज सर्वप्रथम पुस्तकालय से की जाने वाली आशा के अनुरूप उनका पुनर्निर्माण आवश्यक है। सच्चे अर्थों में नूतन पुस्तकालयों की स्थापना से व्यक्तियों का निर्माण होगा और इस प्रकार अभीष्ट समाज की रचना का स्वप्न पूरा होगा। तब ही पद्मश्री डा. रंगनाथन के शब्दों में 'पुस्तकालय राष्ट्र के समस्त दु:ख-दारिद्र्य को दूर करने के लिए संजीवनी बूटी का कार्य करेगा।

सद्ज्ञान—सबसे बड़ा दान-पुण्य

दानों में विद्यादान को सबसे श्रेष्ठ माना गया है। वस्तुओं का दान कुछ समय के लिए राहत दे पाता है, कुछ ही समय में उसका प्रभाव समाप्त हो जाता है। अन्नदान से एक समय की भूख बुझ जाती है, परन्तु कुछ ही घण्टों बाद फिर से भूख जाग जाती है और बुभुक्षित स्थिति में पहुँचना पड़ता है। वस्त्रदान का भी यही हाल है। वे कुछ ही समय में फट जाते हैं। सर्दी के कपड़े गर्मी में और गर्मी के सर्दी में काम नहीं आते। औषधि दान नीरोगी के लिए भी बेकार है तथा जिस पर उसका प्रभाव न हो उसके लिए भी। कुआँ, बावड़ी, देवालय आदि का लाभ भी स्थान विशेष पर ही मिलता है। धन दान से भी अच्छे परिणाम तब निकलते हैं, जब वह सत्पात्र के हाथों पड़े और सदुपयोग में लगे। दुरुपयोग होने पर तो वह पाने वाले और दाता दोनों के लिए पाप-पतन का कारण बन जाता है।

पुण्य मिलता है परमार्थ के आधार पर। दी गई वस्तु का सदुपयोग बन पड़े तो पुण्य और दुरुपयोग होने पर पाप होता है। दुरुपयोग से दुष्प्रवृत्तियाँ बढ़ती हैं। भिक्षा व्यवसाय अपनाकर स्वार्थ साधने वाले लोग सामाजिक परम्पराओं को, मानवी गरिमा को नीचे गिराते हैं। ऐसी दशा में यह बार-बार सोचना पड़ता है कि उदारता और सहृदयता का विकास करने वाले दान धर्म को व्यवहार में लाते समय क्या-क्या सावधानियाँ बरती जायें ?

ऐसे में यही कहा जा सकता है कि दुर्घटनाग्रस्तों, अपंगों आदि की सहायता उस सीमा तक की जानी चाहिए, जहाँ तक वे अपने पैरों खड़े होने योग्य बन सकें। तात्कालिक प्रयोग में आने योग्य दयाधर्म, विपत्ति से उबारना हो सकता है। इसमें इतना ही ध्यान रखना चाहिए कि पाने वाला हीनतायाचक प्रवृत्ति अपनाकर अपना पतन न करने लगे। दाता को अहंकार दिखाने और पाखण्डी बनने का अवसर न मिलने लगे। ये दोनों क्रम, पक्षों को नीचा गिराते हैं, जबकि दान का उद्देश्य दोनों पक्षों को ऊँचा उठाने का होता है। इसलिए आर्थिक दान के क्रम में इस प्रकार की जाँच-पड़ताल विशेष रूप से की जानी चाहिए।

ज्ञान दान उन सभी असमंजसों से बचा हुआ है। उसकी महत्ता और उपयोगिता असंदिग्ध है। सद्ज्ञान यदि अन्त:करण में प्रवेश कर जाय तो उसका प्रभाव जीवन भर ही नहीं, जन्म-जन्मान्तरों तक बना रहता है। पाने वाला उसका लाभ जब तक प्राप्त करता रहता है, तब तक दाता को भी पुण्य प्राप्त होता रहता है। अन्नदान, सुविधादान आदि के लाभ किसी योनि में मिल सकते हैं, परन्तु ज्ञान दान का प्रतिफल तो मनुष्य योनि में ही मिल सकता है। कोई दुष्कर्म बन पड़ने पर दण्डस्वरूप अन्य प्रकार के कष्ट मिल सकते हैं, किन्तु ज्ञान दान करने वाले को उसका परिणाम पाने के लिए मनुष्य जन्म तो मिलेगा ही। यही लाभ इतना बड़ा है, जिसकी बराबरी किसी और से नहीं की जा सकती है। ज्ञान दान के अतिरिक्त और कोई परमार्थ इतनी उच्चकोटि के प्रतिफल देने वाला सिद्ध नहीं हो सकता।

शिक्षा और विद्या ये दो अंग हैं ज्ञान के। शिक्षा में साक्षरता से लेकर सामान्य ज्ञान बढ़ाने वाले और धन पैदा करने का द्वार खोलने वाले सभी कौशल गिने जाते हैं। इनका लाभ ऐसी योग्यतायें पैदा करना है, जो जीवन में कई प्रकार की सुविधायें प्रदान कर सकें। इस उपार्जन का लाभ शरीर को और उससे सम्बन्धित लोगों को मिलता है। इसलिए पहले कदम के रूप में शिक्षा की आवश्यकता भी स्वीकारी गई है। स्कूल कॉलेज इसीलिए खुलते हैं, कृषि, उद्योग, कला, शिल्प आदि की योग्यता पाने के लिए बहुत कुछ पढ़ा और पढ़ाया जाता है। उसके लाभ भी मिलते हैं। कुशलता के बल पर अन्यों की तुलना में प्रशंसा-प्रतिष्ठा भी अधिक प्राप्त होती है। इन प्रत्यक्ष लाभों के कारण शिक्षकों, शालाओं और शिक्षार्थियों की संख्या बढ़ती जा रही है। यह उचित भी है और आवश्यक भी। शर्त एक ही है कि इस प्रकार बढ़ी जानकारियों, उभरी प्रतिभाओं का दुरुपयोग न होने लगे।

ज्ञान का दूसरा पक्ष है विद्या। बोलचाल की भाषा में इसे अध्यात्म, तत्त्व ज्ञान और धर्मधारणा के नाम से भी जाना जाता है। चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में शालीनता विद्या के माध्यम से ही आती है। व्यक्तित्व के परिष्कार, देव मानव बनने तथा प्रामाणिकता और प्रखरता पाने की संभावना इसी के साथ जुड़ी है। जीवन का उत्थान और पतन इसी पर पूरी तरह आधारित है।

अशिक्षा को अभिशाप कहा गया है। अनपढ़ व्यक्ति हर दृष्टि से पिछड़े रहते हैं और उस कारण तरह-तरह की परेशानियाँ झेलते हैं। अभाव उन्हें घेरे रहते हैं और दुर्व्यसन पीछा नहीं छोड़ते। फूहड़पन और असफलताओं का साथ बना ही रहता है। परिस्थितियों से पैदा हुई कठिनाइयाँ असल में मन:स्थिति के पिछड़ेपन के कारण उत्पन्न होती हैं। एक बार उनका उपचार हो जाय तो कदम-कदम पर होने वाली भूलों के कारण फिर से घेर लेती हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धनी लोग अपना पैसा पुण्य-प्रयोजनों में खर्च कर सकते हैं। परन्तु जो इच्छा या अनिच्छा से निर्धन हैं, वे यह सुयोग कैसे पायें ? साधु और ब्राह्मण तो स्वभाव से ही अपरिग्रही होते हैं, वे धन दान कैसे कर पायें ? सन्त, सुधारक और शहीद धन दान न कर सकें तो भी धरती के देवता कहे जाते हैं। इसका कारण यह है कि उनसे अनेकों को प्रकाश मिलता है। उनसे लोग आत्मसुधार में अपने कुसंस्कारों से जूझते हुए उन्हें उलट देने में समर्थ होते हैं।

इन सब तथ्यों पर ध्यान देने से सद्ज्ञान दान की श्रेष्ठता स्वीकार करनी ही पड़ती है। इसलिए हर समझदार को एकनिष्ठ भाव से, सद्ज्ञान प्रसार को सर्वश्रेष्ठ आधार मानते हुए, उसको जन-जन के हृदय में बिठाने के लिए प्रयास करने चाहिए। आज इसी प्रयास की आवश्यकता सबसे अधिक है। आस्था संकट आज सबसे बड़ा अभिशाप है, प्रगति की सबसे बड़ी रुकावट है। इसी एक विकृति ने हर क्षेत्र में ढेरों समस्यायें और उलझनें पैदा की हैं। भयानक मुसीबतें इसी के कारण से उमड़-घुमड़ कर आती हैं।

सद्ज्ञान का अर्थ उन भाव संवेदनाओं से है जो व्यक्तित्व को निखारती हैं, उसकी प्रामाणिकता और प्रखरता बढ़ाती हैं। वे ही गुण, कर्म, स्वभाव के क्षेत्र में मनुष्य को आदर्शवादी और ऊँचे स्तर का बनाती हैं। इस प्रकार के ज्ञान दान करने का अधिकारी वही व्यक्ति होता है, जो अपने आपको ऐसे ढाँचे में ढाल लेता है स्वभाव, संस्कारों और क्रियाकलापों से दूसरों को गहरी प्रेरणा मिल सके। आमतौर से आदर्शों को केवल कहने सुनने तक ही सीमित रखा जाता है। उन्हें अव्यावहारिक कहकर इस कान से सुना और उस कान से निकाल दिया जाता है। धर्मधारणा के बारे में भी कुछ ऐसा ही है। चर्चा प्रसंगों में तो लोग रस लेते हैं, परन्तु जब उन आदर्शों को जीवन में उतारने-कार्य रूप में लाने की बात आती है तो वे बगलें झाँकने लगते हैं। वैसा कुछ करने का साहस नहीं जुटा पाते।

इस अटपटेपन का कारण यह है कि मान लिया गया है कि आदर्शों को अपनाना सामान्य व्यक्तियों के बस की बात नहीं, उन्हें तो कोई सन्त, मनीषी, विरक्त, एकान्तवासी रहकर ही निभा सकते हैं। यह भ्रान्ति जन-जन के मनों में जड़ जमाये हुए है। ऐसी दशा में मान लिया गया है कि धर्म चर्चा को सुन भर लेने से पुण्य फल मिल जाता है। कथा सत्संग सुनने का महत्त्व इसलिए था कि उससे कुछ करने की प्रेरणा मिलती है। परन्तु अब सुनने को, करने की संगति को नकार दिया गया है। मन बहलाने वाली चित्र-विचित्र चर्चाओं को सुनकर पुण्य मिल जाने की मान्यता ने कर्मनिष्ठा-सदाचार का आधार ही एक प्रकार से समाप्त कर दिया है।

इन भ्रान्तियों को दूर करने का एक ही ढंग हो सकता है। वह यह कि आदर्शवादी व्यक्तियों के कुछ नमूने सामने रहें, ताकि यह विश्वास किया जा सके कि सिद्धान्तों का पालन संभव है—असंभव नहीं। प्रत्यक्ष उदाहरणों से ही यह विश्वास दिलाया जा सकता है कि सन्मार्ग पर चलना सरल है—कठिन नहीं। सत्कर्मों का लाभ परलोक में ही नहीं, इस लोक में भी मिलता है। आदर्शवाद नगद धर्म है। इसके बदले आत्मसंतोष, लोक-सम्मान और देव-अनुग्रह जैसे अनेक चमत्कारी लाभ हाथोंहाथ मिलते हैं।

मनुष्य अनुकरणप्रिय है। वह जैसा होते देखता है वैसा करने की प्रेरणा उभरती है। जन-जन में आदर्शवादी, मानवी गरिमा के अनुकूल जीवन जीने की उमंग पैदा करने के लिए उसकी उपयोगिता प्रत्यक्ष रूप से सिद्ध करनी होगी। प्रत्यक्ष उदाहरण स्वाध्याय-सत्संग की अपेक्षा अधिक प्रभाव डालने वाले सिद्ध होते हैं। प्राचीनकाल में धर्मोपदेशकों का प्रभाव इसीलिए गहरा पड़ता था कि वे अपनी कथनी और करनी एक जैसी रखते थे। आज उच्चस्तरीय सिद्धान्तों को व्यवहार में उतारने वाले उदाहरण लोगों को अपने आस-पास दिखाई नहीं देते, इसलिए वे उन्हें कठिन समझते हैं और अपनाने का साहस नहीं कर पाते।

यह कठिनाई दूर की जानी चाहिए। आज धर्मोपदेशकों को वक्ता ही नहीं, श्रेष्ठ साधक भी बनाना होगा। लोभ, मोह और अहंकार से बचने के लिए संयम साधना पूरी तरह अपनानी होगी। धर्म और अध्यात्म में जिस आदर्शवादिता का उल्लेख है, वह जनसाधारण के लिए सरल और व्यावहारिक है, इसे अपने प्राणवान और प्रामाणिक व्यक्तित्व से सिद्ध करना होगा। इसी विशेषता के कारण प्राचीन समय में साधु-ब्राह्मण, लोक मानस में श्रद्धा संचार करने में सफल होते थे।

जन समस्यायें सुलझाने के लिए सद्ज्ञान की अनिवार्य आवश्यकता है। शिक्षा, सभ्यता और सम्पन्नता दिनों दिन बढ़ने पर भी लोग रोग, शोक, कलह, उद्वेग, दरिद्रता और आशंकाओं से घिरे हुए हैं। शायद कोई विरला ही उनसे बचा हो। इस विडम्बना का कारण साधनों का अभाव नहीं, सही दृष्टिकोण अपनाकर सौभाग्य भरा जीवन जी सकने की जानकारी न होना ही है। लोगों की जानकारियाँ बहुत बढ़ गई हैं, पर वे इस सम्बन्ध में अनजान ही बने हुए हैं कि जीवन का मूल्य और सदुपयोग क्या हो सकता है ? जीवन को पतन के खड्ड में गिरने से रोककर उसे किस प्रकार हर दिशा में प्रगतिशील बनाया जा सकता है ? जियो और जीने दो का सिद्धान्त अपनाकर किस प्रकार सुख-शान्ति भरा वातावरण बन सकता है ? ये सब समाधान ज्ञान दान द्वारा ही पाये और दिलाये जा सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रात्रि के फैले अन्धकार का अन्त सूर्योदय पर ही होता है। जीवन का अन्धकार सद्ज्ञान से ही मिटता है। शिल्प, व्यवसाय, कला, साहित्य आदि की जानकारी देने को ज्ञान दान मानना बचकानी बात है। वास्तविक ज्ञान जीवन के महत्त्व और सदुपयोग समझने और उसके योग्य साहस जुटाने में सहायक होता है। सद्ज्ञान केवल जानकारी को नहीं कहते, उसके साथ वह प्राणवान प्रखरता भी जुड़ी होती है, जो व्यक्तित्व की हर धारा को आदर्शों से ओत-प्रोत कर सके।

समय के साथ विचार भी बदलने होंगे

कोई भी आचरण क्रिया में उतरने से पहले विचार क्षेत्र में प्रवेश करता है। बीज बोना, पेड़ पैदा करने की पहली सीढ़ी है। इसी प्रकार महानता की पहली सीढ़ी है, उत्कृष्टता का पक्ष लेने वाले विचारों के साथ गहरा सम्बन्ध बनाना। चिन्तन कर्म का बीज है। इसी आधार पर लोग सत्कर्म और दुष्कर्म करते हैं। अपने को क्षुद्र या महान बनाते हैं, पतन के गर्त में गिरते या स्वर्ग की ऊँचाइयों तक पहुँचते हैं। इसलिए सद्ज्ञान पाना, शरीर निर्वाह और साधन जुटाने से भी अधिक आवश्यक माना गया है। पेट भूखा रहने पर केवल शरीर को ही नुकसान होता है, परन्तु ज्ञान के अभाव में तो नर-पशु से लेकर नर-पिशाच तक की अन्धी गलियों में जीवन भर भटकना पड़ता है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर माता-पिता अपने बच्चों को गुरुकुलों में भेजा करते थे। वहाँ उन्हें सांसारिक व्यवहार और कौशल सिखाने के साथ ही गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से सुसंस्कारवान बनाया जाता था।

सद्ज्ञान को पारस कहा गया है। इसे हृदय में बिठाने पर लोहे जैसा सामान्य व्यक्तित्व भी सोने जैसा सुन्दर और मूल्यवान बन जाता है। यह न होने पर, बिना आँख वाले की तरह मनुष्य सच्चाई को देख-समझ नहीं पाता। यों चतुराई से उत्पन्न कौशल को भी ज्ञान कहा जाता है, परन्तु वह सस्ती वाहवाही, सम्पन्नता के क्षणिक लाभ दिलाने के अलावा और कुछ दे नहीं पाता। ज्ञान की वास्तविकता और गम्भीरता बताने वाली कसौटी यह है कि वह व्यक्ति को सद्गुणों से सम्पन्न और विवेकवान बनाये। उसमें ऐसी रीति-नीति अपनाने की प्रेरणा भरे जो आत्म परिष्कार और लोकमंगल के लिए लगातार उत्साहित करती रहे। वह जानकारियाँ प्रदान करे जो समय की सभी समस्याओं के समाधान सुझाये तथा अपनाने का साहस बढ़ाये।

समय के साथ परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं। इस बदलाव के अनुसार समाधान भी अलग से निकलते हैं। कई बार तो उनका स्वरूप पहले की अपेक्षा बिल्कुल विपरीत होता है। श्रीराम ने भ्रात प्रेम के निर्वाह पर बहुत बल दिया और उस आदर्श की स्थापना के लिए ढेरों कष्ट सहे। ठीक इसके विपरीत श्री कृष्ण ने पाण्डवों को अपने भाइयों—कौरवों से संघर्ष कराया। उनकी इच्छा न होते हुए भी उन्हें उकसाया तथा उस घोर कर्म में अपना सक्रिय सहयोग भी दिया। उपरोक्त दो अवतारों की श्रेष्ठता-निकृष्टता की विवेचना, उनके इन विपरीत दिखने वाले कार्यों के आधार पर नहीं की जा सकती। इसे परिस्थितियों की भिन्नता या वक्त का तकाजा ही कहा जा सकता है। युगधर्म के रूप में भी इस अन्तर को समझाया जा सकता है। बदलते हुए संसार में समयानुसार रीति-नीति बदलनी ही पड़ती है।

स्मृतियाँ २४ हैं, वे सब अपने समय से सम्बन्धित हैं। भगवत्-गीता के स्तर की २४ गीताएँ मिलती हैं। इन स्मृतियों और गीताओं के प्रतिपादनों में भिन्नता तो है ही, कई स्थानों पर तो वे प्रतिकूल भी हैं। ऐसी स्थिति में उन प्रतिपादन करने वालों पर दोष नहीं लगाया जाना चाहिए, बल्कि उन्हें समय की बदलती हुई परिस्थितियों की देन मानना चाहिए।

भिन्न-भिन्न युगों में परिस्थितियाँ और वातावरण भिन्न-भिन्न रहे हैं। उनसे मान्यताएँ और प्रथाएँ भी प्रभावित होती रही हैं। हर परिवर्तन क्रम में तौर-तरीके बदलने के लिए चिन्तन के आधार बदलने पड़े हैं। प्रचलन और पूर्वाग्रह गहरी जड़ जमा चुके हों तो सुधार की गति धीमी करनी पड़ती है। परिस्थितियों से ताल-मेल बिठाते हुए आगे बढ़ने का क्रम अपनाना पड़ता है। इसी को युगधर्म कहते हैं। वे समय के साथ बदलते रहते हैं। बदलने चाहिए भी। उत्कृष्टता और आदर्शवादिता का शाश्वत सत्य तो सदा एक-सा रहता है। वह तो हर समय, हर स्थान और हर वर्ग के लिए समान है। फिर भी उसका व्यावहारिक स्वरूप तो सामयिक परिस्थितियों को साथ जोड़ते हुए ही बनाना पड़ता है। इसके बिना गाड़ी बिल्कुल रुक ही जाती है।

सर्दियों-गर्मियों के रहन-सहन, खान-पान, पहनावे आदि में भारी हेर-फेर करना पड़ता है। इसी प्रकार समय के अनुसार दृष्टिकोण, जीवनचर्या, विधि-व्यवस्था आदि में बदलाव लाना ही पड़ता है। किसी समय भारत में रंग बिरंगी पगड़ियाँ बाँधी जाती थीं। बाल-विवाह, छुआछूत, जाति-पाँति का बोलाबाला था। आज उनका समर्थन किसी भी रूप में नहीं किया जा सकता।

विज्ञान ने अनेक सुविधाएँ पैदा कर दी हैं और पिछले उपचारों को पीछे छोड़ दिया है। मकान और रास्ते बनाने की नई विधियाँ चल पड़ी हैं। रोशनी के लिए बिजली, यात्रा के लिए तेज गति के वाहन, समाचार लेने देने के लिए डाक तार, टेलीफोन आदि के विकास ने पुराने ढंगों का स्थान ले लिया है। पूर्वजों के तौर-तरीके छूटते जा रहे हैं। उन्होंने तो रेडियो, टेलीवजन की कल्पना भी नहीं की थी। सेल्स टैक्स, इन्कम टैक्स, चुंगियों आदि का पहले अस्तित्व नहीं था। उनको इस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आधार पर नकारा नहीं जा सकता कि वे पूर्वजों के समय प्रचलित नहीं थे। इस आधार पर ट्रैक्टरों और सिंचाई के साधनों की उपेक्षा कोई नहीं करता। गरदन तोड़ बुखार और एड्स जैसे रोग पहले नहीं होते थे, पर अब वे हैं और उनसे बचाव के लिए साधन भी सोचने ही पड़ेंगे। परिवार नियोजन, अणु-आयुधों से बचाव, प्रक्षेपास्त्रों से रक्षा आदि इसी युग की आवश्यकताएँ हैं। इन्हें नकारा कैसे जा सकता है ? इन प्रस्तुत समस्याओं से जन-जन की रक्षा के कार्य को कर्त्तव्यों में शामिल होने से कैसे रोका जा सकता है ?

ऊपर ये नमूने के उदाहरण इसलिए दिये गए हैं कि जो नई-नई समस्याएँ या आवश्यकताएँ जीवन के साथ जुड़ गयी हैं, उनके बारे में हमें नये सिरे से सोचना ही होगा। उनके गुण-दोषों पर नये सिरे से विचार करना होगा कि उन दोषों की हानियों से कैसे बचें तथा उनके लाभ पाने के लिए क्या नये निर्धारण किए जायें ? इस प्रकार के प्रसंगों को युग समस्याएँ कह सकते हैं। उनके सम्बन्ध में विचार करने के लिए हमें सामयिक बनना होगा। रूढ़िवादी चिन्तन तथा पुराणों के पन्ने पलट कर हल निकालने के प्रयास कारगर होना कठिन है। जो कठिनाइयाँ और आवश्यकताएँ उस समय थीं ही नहीं, उनके बारे में कोई शास्त्रकार प्रकाश डालता भी कैसे ?

प्रेस जैसी सुविधा-साधनों ने भला-बुरा सब कुछ बड़ी मात्रा में छापना शुरू कर दिया है। वह सस्ता भी है और सर्वसुलभ भी। उसका असर अच्छा भी पड़ता है और बुरा भी। इस सम्बन्ध में सतर्कता कैसे बरती जाय, यह आज सोचने की बात है। प्राचीनकाल में ग्रन्थ हाथ से लिखे जाते थे। उन्हें तैयार करने और खरीदने में विचारक, मनीषियों का ही हाथ रहता था। इसलिए विचार तंत्र पर उनका पूरा अधिकार था। सामान्य जनता तक विचार, सन्तों पुरोहितों के कथा-प्रवचनों के माध्यम से ही पहुँचते थे। उन्हें शास्त्र कथन मानकर लोग सहज स्वीकार कर भी लेते थे। परन्तु अब तो साहित्य क्षेत्र में हर किसी का प्रवेश बिना रोके-टोक के हो गया है। इसलिए यह प्रश्न भी उठ खड़ा हुआ है कि कुविचारों को भड़काने वाले साहित्य से कैसे बचा जाय ? कैसे उसके कुप्रभाव को रोका जाय ? भूतकाल में यह समस्या थी ही नहीं इसलिए उस पर क्या विचार किया जाता ? क्यों विचार किया जाता ?

समय के साथ परिस्थितियाँ बदलती हैं और उसी के अनुसार नये निर्धारण, परिवर्तन करने पड़ते हैं। वर्षा आते ही धरती पर हरियाली छा जाती है। मक्खी-मच्छर जैसे कीड़े-मकोड़ों की बाढ़-सी आ जाती है। खेतों-रास्तों में पानी फैला-फैला फिरता है। उस अचानक हुए परिवर्तन में क्या क्रम अपनाया जाय, इसे सोच-समझकर लोग अपनी रीति-नीति बना लेते हैं। पतझड़ के दौरान पेड़ों के नीचे पत्तों के ढेर लग जाते हैं। उसका क्या किया जाय, यह व्यवस्था उस क्षेत्र के लोग बना लेते हैं। बसन्त में फूल खिलते हैं, सब जगह रंग-बिरंगी बहार छा जाती है। उसकी खुशी मनाने के लिए तितलियाँ, मोरों, कोयलों जैसे प्राणी उभर आते हैं। वसन्तोत्सवों की धूम मच जाती है। परिस्थितियाँ अपने अनुरूप बदलने के लिए मार्ग सुझाती और प्रेरणा देती हैं।

ऋषियों ने अपने समय की बदली हुई परिस्थितियों के अनुरूप स्मृतियाँ बनाई हैं। शेष तो पुरानी पड़ गईं, पर याज्ञवल्क्य स्मृति अभी भी हिन्दू कानून का आधार बनी हुई है। भारत का संविधान जब बना था, तब उसे पूर्ण माना गया था। परन्तु समय की आवश्यकताओं ने उसकी अनेक धाराओं में परिवर्तन करने के लिए मजबूर किया। कई परिवर्तन-संशोधन किए जा चुके हैं। आगे चलकर उसमें और हेर-फेर न करना पड़ेगा इसकी गारण्टी कौन दे सकता है ?

हर युग की अपनी समस्याएँ होती हैं। उनके समाधान अपने-अपने समय के युग द्रष्टा-मनीषी निकालते रहे हैं। उस निर्धारण के अनुसार नये सूत्रों से जनसाधारण को परिचित कराया जाता था। कुम्भ जैसे महापर्वों पर उनकी घोषणा की जाती थी।

इन दिनों वह कार्य लोकसभाओं, विधानसभाओं पर आ पड़ा है। सामाजिक और धार्मिक संगठनों को भी बदली हुई परिस्थितियों के अनुरूप निर्धारण करने होते हैं। पुराने रीति-रिवाज जब समय की दौड़ में पिछड़ जाते हैं तब उन्हें बदलने के लिए सामाजिक और धार्मिक क्रान्तियों के उफान आते हैं। वे समय की माँग के अनुरूप अपने प्रयोजन पूरे करते हैं। ईसाई धर्म में प्रोटेस्टैन्ट, हिन्दू धर्म में बुद्धवाद, आर्य समाज आदि ने यही कार्य किया था। दुराग्रही तब भी हठ करते रहे होंगे, परन्तु विचारशीलों ने हमेशा ऐसे परिवर्तनों की आवश्यकता स्वीकार की है।

यह संसार न तो जड़ है और न स्थिर। यहाँ हर घड़ी जड़ और चेतन अपने-अपने ढंग से हलचल करते रहते हैं। सभी जगह पैदा होने, बढ़ने और बदलने का क्रम चलता रहता है। इसी को उद्भव, अभिवर्धन और परिवर्तन कहते हैं। बालकों, प्रौढ़ों और वृद्धों की आकृति, प्रकृति और आवश्यकताएँ बदलती रहती हैं। इसलिए उन्हें अपने-अपने ढंग से उपक्रम तलाशने और तालमेल बिठाने पड़ते हैं। प्राणियों और पदार्थों में भी यह प्रक्रिया अपने ढंग से चलती रहती है। किसान और माली अंकुर उगते समय एक नीति अपनाते हैं, फसल बढ़ाने के लिए दूसरी और फसल पकने पर उससे बिल्कुल अलग प्रकार के ढंग अपनाते हैं। वे सब भिन्न-भिन्न दिखने पर भी एक ही शृंखला के अनिवार्य अंग होते हैं।

चिन्तन, चरित्र और व्यवहार के सम्बन्ध में भी यही है। उनके मूलभूत सिद्धान्त आदर्शवाद और उत्कृष्टता के रूप में अक्षय बने रहते हैं, परन्तु उनके प्रयोग और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वरूप अनिवार्य रूप में बदलते रहते हैं। प्रगति के लिए, नव-निर्माण के लिए इस क्रम को विवेकपूर्वक हमेशा गतिशील रखना होता है। परिष्कृत विचारों का व्यापक चक्र चलाना आज भी अनिवार्य हो गया है।

सद्विचार प्रगति का मेरुदण्ड

कोई समय था जब मनुष्य जीवन का दायरा बहुत सीमित था। रोटी, कपड़ा और मकान तक का स्तर साधारण और कम खर्च वाला था। समस्याएँ भी उतनी नहीं थीं। कृषि और पशुपालन निर्वाह के प्रधान साधन थे। अन्य आवश्यकताएँ जुलाहा, बढ़ई, लुहार, तेली जैसे छोटे कुटीर उद्योगों से पूरी हो जाती थीं। छोटे गाँवों में एक दो दुकानों से जरूरत की चीजें मिल जाती थीं। कहीं दूर जाना हो तो घोड़े, बैलगाड़ी जैसे साधन पर्याप्त होते थे। न तो महत्वाकांक्षाएँ थीं, न प्रतिस्पर्धाएँ। सादगी का सीधा-सादा जीवन सरलता से चल जाता था। अमीर गरीब सब एक परिवार के सदस्य की तरह रहते थे। इसलिए ईर्ष्या, द्वेष, चोरी, बदमाशी की गुंजायश ही नहीं थी।

सोचने के लिए भी स्वार्थ-परमार्थ का दायरा सीमित था। भौतिक जीवन प्रचलित प्रथा-परम्पराओं के आधार पर चल जाता था। कभी कोई गुत्थी उलझी, तो पंच लोग मिल बैठकर सुलझा देते थे। न कुरीतियाँ पनप पाती थीं न दुष्प्रवृत्तियाँ। चिन्तन में परलोक की बात भी सीधी सादी थी। थोड़े-से पूजा उपचार के सहारे, भक्ति भावना के उभार से, आत्मशोधन का क्रम चलता रहता था। धर्म के नाम से जो नैतिकता-सामाजिकता निभाई जाती थी, वह भी थोड़ी-सी थी। **'सत्यं वद, धर्मं चर'** जैसे छोटे सूत्रों से ही सज्जनता की दिशा देना काफी होता था।

उस समय विज्ञान का इतना विस्तार नहीं हुआ था और बुद्धिवाद की इतनी शाखा-प्रशाखाएँ भी नहीं थीं। जनसंख्या थोड़ी थी, भूमि पर्याप्त थी। वृक्ष वनस्पतियों से निर्वाह सहज ही हो जाता था। सीधा-सादा, सौम्य जीवन जीने में किसी को कठिनाई नहीं होती थी। परिपाटियाँ ऐसी थीं कि लोग एक-दूसरे से प्रेरणा लेते हुए अच्छा-भला सहकारी जीवन जी लेते थे। शिक्षा भले ही कम रही हो, पर भ्रान्तियाँ और विकृतियाँ दीख नहीं पड़ती थीं। कथा-पुराणों के माध्यम से मनोरंजन के साथ ऊँचे आदर्शों की शिक्षा दी जाती थी। जो कुछ था उससे लोग सन्तुष्ट थे।

इन दिनों वह बात नहीं रह गई है। परिस्थितियाँ बुरी तरह उलट-पुलट हो गई हैं। जनसंख्या बढ़ी, कल-कारखाने और तेज गति के वाहन बढ़ गए। एक ओर अमीरी बढ़ी, दूसरी ओर गरीबी। इससे लोकजीवन का सन्तुलन बिगड़ गया। महत्वाकांक्षाएँ और विलासिताएँ हद दर्जे तक बढ़ गई हैं। श्रम से होने वाली कमाई काफी नहीं लगती इसलिए चोरी, बेईमानी स्तर के तरीके कमाई के लिए अपनाए जाने लगे हैं। इसीलिए अवरोधों की बाढ़ आने लगी है। दुष्प्रवृत्तियाँ स्वभाव में आ गई हैं। व्यसन और व्यभिचार तो शालीनता की सभी मर्यादायें तोड़-मरोड़कर रख देना चाहते हैं।

समाज में वर्ग भेद बढ़ गया है। भाषा, सम्प्रदाय, क्षेत्रवाद के विग्रह जगह-जगह खड़े हो गये हैं। नर-नारी और जाति-पाँति के भेद ने समता-एकता के सन्तुलन पर कुठाराघात कर दिया है। आहार-विहार की मर्यादाएँ नहीं रहीं। असंयम को बड़प्पन की निशानी समझा जाने लगा है। राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्रों में उठने वाले तूफानों ने अनेक वाद और दर्शन पैदा कर दिए हैं। प्रत्यक्षवाद और तर्कवाद ने भ्रान्तियों के ऐसे जंजाल खड़े कर दिए हैं कि क्या सही क्या गलत, यह निर्णय करना कठिन हो गया है।

अपने-अपने दल और अपने-अपने धर्म के पक्ष में बौद्धिक प्रतिपादन इतने तर्क देते हैं कि क्या सुनें क्या न सुनें, यह समझ नहीं पड़ता। जो धर्म, जो दल जब अपना पक्ष प्रस्तुत करने लगता है, तो उसी की बात सर्वथा उचित लगने लगती है। परन्तु एक के समाप्त होते ही दूसरे का प्रतिपादन उससे भी अधिक जोरदार ढंग से आता है। पिछले प्रतिपादनों के धुर्रे बिखेरता हुआ वह पक्ष अपना औचित्य सिद्ध करता है।

जन सामान्य में वह विवेक नहीं होता कि इन तर्कों के बीच रास्ता चुन सके। कोई पक्ष अपना मत प्रगट करके रह जाय तो भी तालमेल बिठाया जा सकता है। परन्तु इतने भर से सन्तोष नहीं होता है। दूसरे पक्ष भी उसी पैनेपन से प्रत्याक्रमण करते हैं। विचार भिन्नता से बात शुरू होती है और उत्तेजनाजनक प्रदर्शन से होती हुई, खून-खराबे तक जा पहुँचती है। धार्मिक-राजनैतिक मान्यताओं के नाम पर कितना रक्तपात हुआ है ? यह किसी से छिपा नहीं है। हर गुट अपने मत के समर्थन और दूसरे गुट के दमन को पुण्य मानने लगता है। व्यक्तिगत स्वार्थ और द्वेष भी सार्वजनिक बना दिये जाते हैं। इन सबके तहत शील अपहरण, आक्रमण, अनाचार और अपराध सभी अपने-अपने ढंग से विस्तार पाते रहते हैं।

आश्चर्य यह होता है कि विचारशील कहलाने वालों में विवेकशीलता नहीं दिखाई पड़ती। एक ही सूत्र है, हमारा पक्ष पूरी तरह सही और दूसरे गलत हैं। निष्पक्ष रूप से समीक्षा, विश्लेषण, वर्गीकरण कोई करता नहीं दीखता। नीर-क्षीर विवेक स्तर के प्रयास लुप्त जैसे हो गये हैं। यह सम्भव रहा होता तो अनुपयुक्त दुराग्रहों में कमी आती, लोग सत्य के निकट पहुँचते, उसे अंगीकार करते और विग्रह की जड़ें कट जातीं। औचित्य अपनाते ही गुटबाजी और अनेक समस्याएँ अपने आप समाप्त हो जाती हैं।

इन्हीं सब कारणों से सामाजिक जीवन अनीतियों, कुरीतियों, अवांछनीयताओं का भण्डार बन जाता रहा है। असन्तोष, आशंका, आतंक और अविश्वास का बोल-बाला

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हो रहा है। समाज में रहते हुए लोग अपना दम घुटता हुआ-सा अनुभव करते हैं। सहकारिता, सद्भावना और आत्मीयता के आधार पर जो सुखद वातावरण बन सकता था, उसकी संभावना दिन-दिन कम होती जा रही है।

व्यक्तिगत जीवन की हालत भी बद से बदतर होती जा रही है। बढ़ते असंयम के कारण स्वास्थ्य खोखले हो रहे हैं। बुरे चिन्तन ने मानसिक सन्तुलन डगमगा दिया है। अपव्यय ने हर किसी को अभावों में ठेल दिया है। आलस्य-प्रमाद, कर्त्तव्यों की उपेक्षा और अधिकारों के प्रति अति आग्रह ने, विग्रह पैदा कर दिया है। थोड़ा मतभेद दिखते ही मित्र भी शत्रु जैसा लगने लगता है। दूसरे की स्थिति में अपने को रखकर देखने की प्रवृत्ति समाप्त होती जा रही है। अपने साथ हम जैसा व्यवहार चाहते हैं, उससे बिल्कुल भिन्न व्यवहार दूसरों के साथ करते हैं।

आवश्यकताएँ बढ़ रही हैं। ललक और लिप्साएँ आसमान छू रही हैं। महत्त्वाकांक्षाओं का कोई ठिकाना नहीं। हर व्यक्ति अपने गर्व और घमण्ड में दबा जा रहा है। इसके लिए वह दूसरे को नीचा दिखाने में जरा भी नहीं झिझकता। बड़प्पन पाना तो कठिन है, उसके झूठे प्रदर्शन के लिए हर कहीं अधीरता, आतुरता दिखती है। ऐसी स्थिति में न तो कोई स्वयं चैन पा सकता है और न आसपास वालों को चैन से बैठने दे सकता है। अशान्ति से अशान्ति और अविश्वास बढ़ रहा है। आग में ईंधन पड़ने से वह और भड़कती है। इन दिनों ऐसा ही हो रहा है।

देखने से तो ऐसा ही लगता है कि इन सब बेचैनियों का कारण परिस्थितियों का प्रतिकूल होना ही है। परन्तु वास्तव में यह बात है नहीं। विचार ही क्रियाकलाप के बीज हैं। मनःस्थितियाँ ही परिस्थितियों को गढ़ती हैं। विचार कार्यों का रूप धारण करते हैं, वे ही अनुकूल या प्रतिकूल वातावरण पैदा कर देते हैं। ऊपर से देखने में तो उलझनें अनेक आधार वाली दिखती हैं, परन्तु असल में उनके पीछे मुख्य कारण चिन्तन में घँसी हुई भ्रान्तियाँ-विकृतियाँ ही होती हैं। वास्तविक संकट या विग्रहों को तो बुद्धिमानी से सरलतापूर्वक सुलझाया जा सकता है। बाहर से आने वाली विपत्तियाँ उतनी भयंकर नहीं होतीं जितनी भीतर से उपजने वालीं। वे भीतर से उभरकर सारे क्षेत्र को घेर लेती हैं।

समय के बढ़ते दबाव ने मनुष्य के निजी और सामाजिक जीवन में अगणित समस्याएँ खड़ी कर दी हैं। तमाम संकट और विग्रह पैदा कर दिए हैं। ये सभी विचार संकट के कारण ही हैं। भ्रान्तियों-विकृतियों का निवारण इसी उपाय से हो सकता है कि सद्प्रवृत्तियों को जन्म देने वाले सद्विचारों का बीजारोपण किया जाय, उन्हें अंकुरित-विकसित होने का अवसर दिया जाय। परिवर्तन का क्रम विचार क्षेत्र से ही आरम्भ किया जाता है। मनुष्य का शरीर, मन सभी कुछ विचारचालित ही है। उसी पर उसका वर्तमान और भविष्य टिका रहता है।

पेड़ कोई भी क्यों न हो, उसका आधार जड़ें ही होती हैं। जड़ों की पोषण करने की शक्ति समाप्त हो जाय या उनमें दीमक लग जाये तो उसके सूखने उखड़ने में देरी नहीं लगती। इसी प्रकार जीवन की जड़ों में, विचार-संस्थान में विकृतियों का दीमक लग जाये, उसकी सद्विचार ग्रहण करने की शक्ति समाप्त हो जाय तो जीवन वृक्ष सूखने की स्थिति में ही पहुँच जाता है। सामूहिक चिन्तन में विकृतियाँ घुसते ही समाज का पतन होने लगता है।

मनुष्य को भगवान ने सर्वांगपूर्ण बनाया है। उसके साथ प्रगति की, समृद्धि और सुख-शान्ति की सभी संभावनाएँ जुड़ी हैं। यदि चिन्तन का क्रम ठीक प्रकार चलता रहे तो कोई कारण नहीं कि पतन का, दुःख का मुँह देखना पड़े। चिन्तन जिस दिशा को भी चल पड़ता है, उसी दिशा में प्रयास चल पड़ता है। जीवन उसी दिशा में गति पाने लगता है। अस्वस्थता, मूर्खता, निर्धनता, अपमान, असफलता आदि और कुछ नहीं, विचारों में आये विकारों की ही प्रतिक्रियाएँ हैं। नहीं तो भगवान का राजकुमार मनुष्य स्वयं अपने लिए तो सुख-शान्ति की व्यवस्था कर ही सकता है, अपनी नाव में बिठाकर असंख्यों को भी पार कर सकता है। स्वयं हँसी-खुशी का जीवन जीते हुए, इस विश्ववाटिका को भी हरा-भरा, सुन्दर बनाकर रखने की भूमिका निभा सकता है।

आजकल परिस्थितियाँ सुधारने के लिए काफी कुछ सोचा और किया जा रहा है। परन्तु उसके लिए केवल साधन-सुविधाएँ बढ़ाने को काफी मानकर चला जा रहा है। इतने भर से सुयोग-सौभाग्य मिलने की अपेक्षा की जाती है। विचार परिष्कार के पक्ष की ओर उतना ध्यान नहीं दिया जा रहा है, जितना दिया जाना चाहिए। यह समझना आवश्यक है कि सद्विचार ही वह दैवी अनुग्रह है, जिनकी मात्रा के अनुसार ही मनुष्य गौरव और संतोष पाता है।

आवश्यक हो गया कि हर व्यक्ति अपने जीवन में सुख, शान्ति और प्रगति लाने के लिए सुलझे हुए श्रेष्ठ विचारों को अपने अन्तराल में बिछाने के लिए नियमित प्रयास करता रहे। जो पुण्य-परमार्थ करना चाहते हैं, दूसरों को विपत्तियों से बचाना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि अपने सम्पर्क क्षेत्र में सद्विचारों को फैलाने-स्थापित करने के लिए प्रयास करें। प्रगतिशील विचार जहाँ भी रहेंगे वहाँ सुख-शान्ति की कमी नहीं रहेगी। सम्पन्नता और सफलता किसी भी स्तर की हों, ध्यान से देखने पर उनके पीछे विचारों का सुलझा हुआ क्रम ही मिलेगा। इसीलिए कहा जाता है कि सद्विचारों का प्रसार ब्रह्मदान है। उससे बढ़कर कोई पुण्य-परमार्थ और हो ही नहीं सकता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सद्ज्ञान संवर्धन की श्रेष्ठ साधना

तेजाब जहाँ भी पड़ेगा, वहाँ जलाने या गलाने का क्रम चलायेगा। इसके विपरीत इत्र जहाँ भी रहेगा, वहाँ सुगन्ध फैलायेगा। कुविचार तेजाब की तरह है। वे जिस किसी के भी मन-मस्तिष्क में अड्डा जमा पाते हैं, उसी के लिए नये-नये जंजाल खड़े कर देते हैं। कहीं राग, कहीं रोष, कहीं छल-कपट, हर जगह तनाव, भय, अहंकार का वातावरण बना देते हैं। रंगीन चश्मा पहनने से सभी चीजें उसी रंग की दिखती हैं, परन्तु वास्तव में वैसी होती नहीं हैं। चश्मा उतारते ही या चश्मा रंग बदलते ही नजारे बदल जाते हैं। इत्र माहौल को सुगन्धित बना देता है, वहीं कोई तीव्र दुर्गन्ध रख दे तो माहौल दुर्गन्धयुक्त हो जायेगा।

परिस्थितियाँ सुधारने के प्रयास किये जाते हैं, किए जाने चाहिए भी। परन्तु उनकी जड़ तो विचारणा के साथ जुड़ी होती है। जड़ें ठीक हों तो एक टहनी तोड़ते ही दूसरी उपजने लगती है। खेत में अधिक पानी भरा हो तो कहीं न कहीं से फूटकर निकलता है। बुरे विचार देखते-देखते बुरी प्रवृत्तियों—बुरे अभ्यास के रूप में बाहर निकलते हैं। उनके कारण नये-नये विग्रह और संकट पैदा होते रहते हैं। इसके विपरीत जो लोग अपने भाव संस्थान में, मान्यता और विचारों में सुधार लाने की साध सँजोये रहते हैं, उनकी कार्य करने की प्रवृत्तियाँ भी सुधरती, सँवरती रहती हैं। वे कठिन परिस्थितियों में भी चलते रहने का रास्ता बना लेते हैं। पैरों में जूते पहन लेने पर काँटों-कंकड़ों से भरे रास्ते पर भी चलने में कठिनाई नहीं होती।

संसार की सभी समस्याओं का हल एक ही आधार पर हो सकता है, वह चिन्तन में मानवीय गौरव-गरिमा के अनुरूप उत्कृष्टता का समावेश। उसी के अनुसार अपने व्यक्तित्व में आदर्शवादी शालीनता का विकास। इतना बन पड़े तो मनुष्य हर स्थिति में अपने लिए अनुकूलता का रास्ता बना लेता है। संसार का इतिहास साक्षी है कि जिनने भी अपने आप को इस ढंग से ढाल लिया, उनके लिए बड़ी से बड़ी अड़चनें भी सरल हो गईं। लोग देख, सुनकर आश्चर्य करते हैं कि ऐसी खराब, अभाव भरी स्थिति में वे कैसे आगे बढ़ने, ऊँचे उठने में सफल हो सके ? परन्तु गहराई में जाने पर यही पता लगता है कि यह चमत्कार उनके उस आदर्श चिन्तन का था, जो उनके स्वभाव और अभ्यास का अंग बनकर चरित्र और व्यवहार में प्रकट होने लगा।

कहा गया है कि अपना सुधार संसार की सबसे बड़ी सेवा है। इस भ्रम-जंजाल भरे समय में ऐसे व्यक्ति मिलते नहीं, जिन्हें देखकर लोग आदर्शों की दिशा में बढ़ने की प्रेरणा पा सकें। एक नशेबाज या व्यभिचारी के प्रभाव से अनेक व्यक्ति उस धारा में खिंच जाते हैं। इसी प्रकार एक व्यक्तित्व सम्पन्न व्यक्ति ढेरों व्यक्तियों को सदाचारी और सेवा-भावी बनाने में सफल हो सकता है। यह क्रम चक्रवृद्धि ब्याज के ढंग से चलता है। महामानव अकेले ही अपने चुम्बकत्व से आकर्षित करके, लोगों को कल्याण पथ पर चला देते हैं। बुद्ध, ईसा, महावीर, विवेकानन्द, विनोबा आदि नाम इसी श्रेणी में आते हैं। ऐसे उदाहरण हर देश और हर समय में प्रकट होते रहते हैं। बुराई की आसुरी शक्ति की क्षमता को झुठलाया नहीं जा सकता, किन्तु भलाई की शक्ति को भी हमेशा रोके रहना संभव नहीं होता। संकल्पवान, दृढ़चरित्र व्यक्तियों ने अनेक बार गिरते हुए मनुष्य समाज को सत्प्रवृत्तियों से जोड़कर उन्हें सुख-शान्ति और प्रगति का अधिकारी बनाया है।

इस युग को अन्धकार युग कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। निकृष्ट चिन्तन और दुष्प्रवृत्तियों ने, आम रीति-रवाजों का रूप ले लिया है। आदतें ऐसी बन गयीं हैं कि लोग तात्कालिक लाभ के लिए अनाचार का, पशुता का रास्ता भी अपना लेते हैं। उन दुष्परिणामों पर किसी का ध्यान ही नहीं जाता, जो अपने और अनेकों के लिए भयानक प्रतिक्रिया पैदा करते हैं। उस दूरदर्शी विवेक का कहीं अता-पता नहीं दीखता, जो शालीनता को महत्त्व देता है, उसे अपनाता है। विवेक के बिना कुप्रथाओं की चुनौती स्वीकार करते हुए आत्मविश्वास के बलबूते सन्मार्ग पर अकेले चल पड़ने का निर्णय कौन करे ?

यही है आज की मनोदशा का संक्षिप्त किन्तु सार भरा विश्लेषण। इसका प्रतिफल भी सामने है। हर किसी को संकीर्ण-स्वार्थपरता, अस्वस्थता, मानसिक उद्विग्नता और आर्थिक अभावों से घिरा हुआ देखा जा सकता है। मर्यादाएँ टूट रही हैं। न करने योग्य करने में शर्म के स्थान पर गौरव का अनुभव किया जाता है। इन्हीं हीनताओं ने, बढ़ी हुई सम्पत्ति और शिक्षा से मिलने वाले लाभों को निगल लिया है। जिसे देखो वही असंतुष्ट, खिन्न, उद्विग्न, भयभीत, शंकाशील है। सभी अनिश्चय और अविश्वास की आग में जल रहे हैं। भूतकाल डरावना, वर्तमान निराशा से भरा और भविष्य अन्धकारमय दिखता है। इन विपन्नताओं से भरे जीवन को प्रत्यक्ष नरक भी कहा जा सकता है। विज्ञान के कारण बढ़ती सम्पन्नता, शिक्षा और सुविधा सामग्री के होते हुए भी, ऐसा हीन जीवन जीना पड़े तो इसे विचित्र विडम्बना ही कहा जा सकता है।

शिकायतें करने और दुर्भाग्य का रोना रोने से काम नहीं चलेगा। उपाय-उपचार सोचना पड़ेगा। इससे कम में काम चलने वाला नहीं है। देर करने से सर्वनाश के अतिरिक्त और कुछ बचता ही नहीं। काम बेशक बड़ा और व्यापक है, फिर भी हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाना भी तो उचित नहीं है। बड़े काम बड़ों को करने चाहिए। वे अपनी विशिष्टता और वरिष्ठता का परिचय दें तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दूसरों के लिए मार्ग बनाएँ और राह दिखाएँ। बड़े काम में बड़े साधन भी लगते हैं। यह सब ठीक है। पर यदि वैसा सुयोग न बन पड़े तो भी काम रुकने नहीं दिया जाना चाहिए। उस हालत में जीवन्त लोगों को, अपने सीमित साधनों से समस्या का हल करने के लिए, युग धर्म की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आगे कदम बढ़ाना चाहिए। समर्थों और साधनों की प्रतीक्षा में बैठे रहने की अपेक्षा यही उचित है। टिटहरी की कथा प्रसिद्ध है, जिसने समुद्र को अपने अण्डे वापस करने को मजबूर किया था। गंगा को स्वर्ग से धरती पर लाने वाले भागीरथ एकाकी ही तो घर से बाहर निकले थे। गाँधी, बुद्ध, दयानन्द आदि का प्रयास मात्र अपने संकल्प बल को लेकर ही आरम्भ हुआ था। अनेक वैज्ञानिकों, समाज-सुधारकों और महान निर्माताओं ने अपनी धुन का धनी होकर ही कार्य हाथों में लिया था और लगन के बल पर समयानुसार सफलता के लक्ष्य तक पहुँचे थे। अँधेरी रात में एकाकी दीपक की तरह हमें जलना, चलना चाहिए और अपने प्रभाव क्षेत्र में उजाला उत्पन्न करने का उदाहरण बनना चाहिए। हो सकता है कि आगे चलकर दीपावली की रात्रि में जगमगाने वाली दीपमालिका की परम्परा चल पड़े और आप अग्रणी माने जायें। जब सूर्य चन्द्र छिप जाते हैं तो टिमटिमाने वाले तारे भी तो इतना प्रकाश उत्पन्न कर देते हैं, जिससे पथिकों को राह दीख पड़े और उन्हें अँधेरे में ठोकरें न खानी पड़ें। ऐसे प्राणवानों की वंश परम्परा अभी सर्वथा नष्ट नहीं हुई है। इन पंक्तियों के पाठकों में से भी कितने ऐसे हो सकते हैं, जो अपने को जीवित, जाग्रत और प्राणवान प्रतिभाओं की अग्रिम पंक्ति में खड़ा कर सकें। एक से अनेक होने का सिद्धान्त अविश्वसनीय नहीं है। परमात्मा एक से अनेक बना है। एक बीज से सौ बीज उत्पन्न होने की कहावत असत्य नहीं है। प्राणवानों में से प्रत्येक ने समय-समय पर यही कर दिखाया है।

अपने लिए काम चुनने में, इस प्रसंग में हमें पत्ती और टहनियों को सींचने के लिए नहीं भटकना चाहिए। निश्चयपूर्वक जड़ सींचने और उसे सुरक्षित रखने की योजना बनानी चाहिए। एक ही प्रयास को सर्वोपरि महत्त्व का और नितान्त सामयिक मानना चाहिये। वह है विचार क्रान्ति अभियान-ज्ञान यज्ञ, लोकमानस का परिष्कार। इस उक्ति को हमें गिरह में बाँध लेना चाहिए कि—

''एकै साधे सब सधे, सब साधे सब जाय।''

अस्पताल खुलवाने, धर्मशाला बनवाने, मन्दिरों का निर्माण करने, सदावर्त चलाने, प्याऊ लगाने जैसे अनेक कार्यों की परमार्थ में गणना होती है। पर ध्यान रखने योग्य बात एक ही है कि इन माध्यमों से जिनकी सहायता की जाती है, उनकी तात्कालिक थोड़ी-सी सहायता ही बन पड़ती है। वह लाभ देर तक रहता नहीं। कुछ ही समय बाद सुविधा समाप्त हो जाती है। दूसरों की प्रत्यक्ष भौतिक सहायता की एक हानि यह भी है कि लेने वाले को उपकृत होना पड़ता है। उसे आत्महीनता घेरती है और ऋणी होने जैसा मानस बनता है। देने वाला अहंकार प्रदर्शित करता है। यह अहंता प्रकारान्तर से आत्मिक पतन का निमित्त कारण बनती है। इस प्रकार दुर्घटनाओं या नितान्त असमर्थता जैसे यदा-कदा आने वाले अवसरों को छोड़कर, सही रीति से परमार्थ सम्पादन करने का एक ही तरीका है कि जनमानस के परिष्कार का जो भी उपाय बन पड़े, उसे करने में हर सम्भव प्रयत्न करना चाहिए। कुछ लोग बड़प्पन के अहंकार में, किसी दूसरे की सलाह सुनने में भी अपना अपमान अनुभव करते हैं। उन्हें अपने से बड़े लोगों के लिए छोड़कर, उस समुदाय को ज्ञान दान की सेवा के लिए चुनना चाहिए, जो मानसिक दृष्टि से सद्विचारों को सुनने की मनःस्थिति में हों। तलाश करने पर ऐसे लोग हर किसी को बड़ी संख्या में मिल सकते हैं। शंकर भगवान अपने सहचर उस वर्ग के लोगों को बनाए हुए हैं, जो गई-गुजरी स्थिति में हैं। यही नीति हर सद्ज्ञान प्रचारक को अपनानी चाहिए। अहंता और व्यस्तता की बात हर समय कहने वालों के साथ अपना समय बर्बाद न किया जाय तो ठीक है।

उत्कृष्टता और आदर्शवादिता के पक्षधर विचारों का प्रचार-विस्तार करना, मनुष्य की, समस्त विश्व की सबसे बड़ी सेवा है। उसे उच्चकोटि का परमार्थ भी कह सकते हैं। यह वह बीजारोपण है, जिसे जहाँ भी बोया, उगाया-बढ़ाया जायगा, वहीं हर स्तर की प्रसन्नता और सुव्यवस्था ही उत्पन्न होगी। हम मनुष्यों का अन्तराल इस स्तर का बना हुआ है कि यदि उसमें तर्क, तथ्य, प्रमाण और उदाहरण समेत युगधर्म की फसल उगाई जा सके तो उस आधार पर बढ़ी हुई समृद्धि, सबके लिए, सब प्रकार से कल्याणकारक ही होगी। दानों में महादान यही है। साधु और ब्राह्मण प्राचीनकाल में इसी प्रयोजन के लिए समर्पित भाव से लगे रहते थे। इसी आधार पर वे मनुष्य में देवत्व और धरती पर स्वर्ग के अवतरण का उद्देश्य पूरा करते रहे हैं।

साधन दान, यदि कुपात्रों के हाथ चला जाय तो वह मुफ्तखोरी की अनैतिकता बढ़ावेगा। उससे आलस्य प्रमाद पनपेगा। उस आधार पर उपलब्ध सुविधा यदि कुकर्मों की दिशा में बढ़ चली हो तो उससे मात्र अनर्थ ही उत्पन्न होगा। ऐसी दशा में देने वाला और पाने वाला, दोनों ही पाप के भागी बनेंगे। किन्तु सद्ज्ञान के कल्पवृक्ष का आरोपण ऐसा है, जिसमें व्यक्ति और समाज का सब प्रकार सर्वतोमुखी हित साधन ही होता है।

समग्र परिवर्तन की रूपरेखा

युगान्तरीय चेतना को अग्रगामी बनाने के लिए यदि मिल-जुलकर काम करना संभव हो सके, तो उसका फल निश्चित रूप से और भी अधिक उत्साहवर्धक हो सकता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। एक जैसे विचार वाले, एक जैसे उत्साह सँजोये रखने वाले दो व्यक्ति मिलें, तो एक और एक ग्यारह बनने की उक्ति चरितार्थ होती है। अधिक संख्या में लोग एक मन एक दिल होकर एक ही उद्देश्य के लिए काम करें, तब तो कहना ही क्या ? संगठन की शक्ति सभी जानते हैं। तिनकों से मिलकर रस्सा और धागों से मिलकर कपड़ा बनते सभी देखते हैं, लोकमंगल के लिए मिल जुलकर किये गये प्रयासों के चमत्कारी परिणामों को कभी भी देखा-सुना जा सकता है।

वर्तमान समय में देववृत्तियों को उभारने एवं संगठित करने के लिए दीपयज्ञों को माध्यम बनाया गया है। दीपयज्ञ आयोजनों ने पिछले एक वर्ष में विचार क्रान्ति की दिशा में असाधारण भूमिका सम्पन्न की है। इस धर्म तन्त्र से लोक शिक्षण का महान उद्देश्य जितनी सरलता और जितनी सफलता के साथ सम्पन्न हो रहा है, उसे निकट से देखने वाले प्रत्येक विचारशील को आश्चर्य ही होता है। उसे नवयुग के अरुणोदय काल की, सामूहिक दीपदान अभ्यर्थना का नाम दिया जा रहा है। लगता है यह प्रक्रिया अगले दिनों बुद्ध की 'धर्म चक्र प्रवर्तन' की दूसरी अनुकृति बनकर रहेगी। हर जगह सज्जनों-सद्भावनाशील प्रतिभाओं के संगठन बनते जा रहे हैं। बीजांकुर की प्रगति देखते हुए इस विधा को वट वृक्ष की तरह विकसित और पल्लवित होने की असाधारण संभावना व्यक्त की जा रही है।

साहसिक प्रयत्नों में दूसरा चरण है—नारी जागरण अभियान। मिशन की पत्रिका के पाँच लाख स्थाई ग्राहकों में से प्रत्येक को कहा गया है कि वे अपने घर की एक प्रतिभावान महिला को, इस आधी जनसंख्या को पुनर्जीवन प्रदान करने वाले आन्दोलन के निमित्त कुछ करने की छूट दें। उन्हें उत्साहित करें, मार्गदर्शन दें, साधन जुटाएँ और अवसर प्रदान करें। इस प्रकार पाँच-पाँच सदस्यों वाले एक लाख नारी संगठन खड़े होंगे। हर सदस्या अपने सम्पर्क क्षेत्र में घर-घर जाकर पाँच सदस्य बनायेगी। इस प्रकार एक लाख संगठन बन जायेंगे और उनकी लाखों सदस्यायें होंगी। 'हम पाँच—हमारे पच्चीस' के क्रम से इस आन्दोलन के बढ़ने और चलने की पूरी संभावना बन गई है। हर संगठन—शिक्षा संवर्धन, स्वास्थ्य संरक्षण, स्वावलम्बन, कुरीति निवारण और सत्प्रवृत्ति संवर्धन के रचनात्मक कामों में जुटेगा, तो उसकी प्रतिक्रिया असाधारण होगी। आधी जनसंख्या में नवजीवन का संचार एक ऐसा काम है, जिस पर इतिहास में अब तक हुई समस्त क्रान्तियों को न्योछावर किया जा सकता है। इक्कीसवीं सदी में नव युग के अवतरण की संभावना को यदि नारी जागरण आन्दोलन के साथ जोड़ा जाय, तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति न होगी।

संगठित प्रयत्नों द्वारा अनेकानेक रचनात्मक कार्य बन पड़ने की पूरी-पूरी संभावना है। प्रौढ़ शिक्षा अपने समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है। इसके लिए मुहल्ले-मुहल्ले, गाँव-गाँव अवकाश के समय चलने वाली नर और नारियों की पाठशालाएँ तो खड़ी करानी और चलानी ही पड़ेंगी। पर साथ ही इस आन्दोलन में यह भी प्राण फूँकने पड़ेंगे कि हर शिक्षित व्यक्ति अशिक्षितों को पढ़ाने का संकल्प ले और उसे हर हालत में पूरा करके रहे। स्वयं समय न निकाल सकने पर अन्य किसी को पैसा देकर वह कार्य पूरा कराया जाय। यह कार्य जन स्तर पर ही हो सकता है। सरकार के लिए इतनी बड़ी राशि जुटाना और इतनी लगन, इतनी चेतना उभारना सम्भव न होगा।

साक्षरता के आगे का कदम है—सद्ज्ञान संवर्द्धन। इसके लिए देव मन्दिरों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण और प्रत्यक्ष पुण्य फलदायक पुस्तकालयों को समझा जाना चाहिए। कारण यह है कि शिक्षा का मुख्य प्रयोजन "सद्ज्ञान संवर्द्धन" उन्हीं के द्वारा पूरा होता है। अन्यथा साक्षर भर रहने से इतना ही बन पड़ता है कि घरेलू हिसाब-किताब लिखने जैसी छोटी-मोटी आवश्यकतायें पूरी कर ली जायें। पुस्तकालय की अपनी इमारत हो और उसकी व्यवस्था के लिए एक व्यक्ति नियुक्त रहे, तब तो सबसे अच्छा हो, अन्यथा कोई सेवाभावी व्यक्ति अपने घर की एक ही आलमारी इसके लिए सुरक्षित रख सकता है और अपना निजी काम-धंधा करने के साथ-साथ माँगने वालों को पुस्तकें देते लेते रहने या उनके घर पहुँचाने का काम भी स्वयं सँभाल सकता है। अपने साथियों से भी मदद ले सकता है। जीवन के प्रत्यक्ष पहलुओं पर सही प्रकाश डालने वाली पुस्तकें बाजार में नहीं के बराबर मिलती हैं। बुकसेलरों की दुकानें मनोरंजन वाले साहित्य से भरी पड़ी रहती हैं। उन्हीं की माँग भी रहती है। इसलिए लेखकों, प्रकाशकों, विक्रेताओं की अभिरुचि उस वाले पक्ष पर ही रहती है। इतने पर भी जहाँ-तहाँ से ढूँढ़कर कुछ न कुछ साहित्य अपने काम का पाया ही जा सकता है। पुस्तकालयों में ऐसी ही सद्ज्ञान संवर्धक सामग्री रहनी चाहिए, भले ही उनकी संख्या कम ही क्यों न हो। विचार क्रान्ति अभियान में समग्रता उसी आधार पर आ सकती है।

अच्छा होता एक ऐसी सुनिश्चित व्यवस्था बनती, जो समय की वैयक्तिक, पारिवारिक और सामाजिक समस्याओं पर समग्र विचार प्रस्तुत करने में समर्थ हो। इसके लिए लेखक तैयार करके लेखन-प्रकाशन का ऐसा तन्त्र बने, जो सस्ते मूल्य पर उपयुक्त साहित्य तैयार कर सके। पुस्तक निर्माता ऐसे काम में कम लाभ देखकर स्वयं हाथ नहीं डाल सकते। इसलिए उसका विक्रय तन्त्र भी ऐसा खड़ा करना होगा, जो मिशनरी भावना से युग साहित्य को जन-जन तक पहुँचाये। कमीशन के लोभ-लालच को प्रधानता न दे। इस आदर्शवादी योजना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को आद्योपान्त कार्यान्वित करने के लिए एक समर्थ तन्त्र खड़ा होना चाहिए, जो लेखन, प्रकाशन, विक्रय की अपनी स्वतन्त्र व्यवस्था खड़ी कर सके।

यह बात कठिन मालूम होती है। पर यदि ईसाई मिशनों, कम्युनिस्ट प्रकाशनों और वितरकों की कार्यविधि पर ध्यान दिया जाय तो निश्चित रूप से उस महती आवश्यकता की पूर्ति की जा सकती है, जिस पर कि देश का, विश्व का, मानव का भविष्य पूरी तरह निर्भर है। सोई मानवीय अन्तरात्मा सदियों बाद सोकर उठी है। इसे यथार्थवादी मार्गदर्शन की अत्यधिक भूख है। इसे पूरा न किया जायेगा तो भूख कुछ भी खाने लगेगी और उसका दुष्परिणाम कुछ भी भुगतना पड़ सकता है। सदियों बाद गुलामी से उबरे, अन्धकार युग से बाहर निकलने का अवसर पाने की इस बेला में, सबसे महती आवश्यकता यह है कि लोकचिन्तन को सही दिशा देने की महती आवश्यकता पूरी की जाय। यह कार्य घर-घर ज्ञान आलोक पहुँचाने वाले लोगों के माध्यम से ही सम्भव हो सकता है।

सुयोग संयोग की बात है कि ऐसा तन्त्र युग निर्माण योजना ने विनिर्मित और सक्रिय किया है। यदि लोक क्रान्ति का कार्य सत्साहित्य के माध्यम से करने का दायित्व सौंपा जाय तो विश्वास किया जाना चाहिए कि वह उसका निर्वाह करने से पीछे नहीं हटेगा। आवश्यकता इस बात की है कि धीमी गति से चलने वाले युग साहित्य सृजन को नवीन चेतना और उत्साह, स्फूर्ति प्रदान की जाय। उसके लिए अभीष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सामर्थ्य और सामग्री जुटाई जाय। उसके लिए यही उपयुक्त समय है। भारत में प्राय: १४ भाषाएँ प्रमुख रूप से बोली और लिखी जाती हैं। हर किसी के लिए अपने क्षेत्र की भाषा ही ज्ञानवृद्धि का प्रमुख माध्यम बनी हुई है। इस हेतु आवश्यक यह है कि इन दिनों जिन महत्त्वपूर्ण प्रेरणाओं को जन-जन तक पहुँचाया जाना है, उसे देश की सभी भाषाओं में प्रकाशित किया जाय और उसे जन-जन तक पहुँचाने के झोला पुस्तकालयों की, ज्ञानरथों की योजना को कार्यरूप में परिणित किया जाय।

इन दिनों दिग्भ्रान्त और हेय विचारों के प्रवाह ने, व्यक्ति का चिन्तन-चरित्र और व्यवहार सभी कुछ उलटकर रख दिया है। उस उल्टे को उलटकर सीधा करने की आवश्यकता है। उसके बिना न सही राह मिलेगी और न सही लक्ष्य तक पहुँचा जायगा। लोग विलासिता, तृष्णा और अहंता के व्यामोह में अपनी बहुमूल्य शक्तियों को बर्बाद करते रहेंगे और उत्थान के स्थान पर पतन की राह पकड़ेंगे। आवश्यकता इस बात की है कि समूची मानवी सत्ता पर बेतरह आक्रमण कर रहे इन विषाणुओं को नष्ट करने के लिए, ज्ञान यज्ञ की प्रचण्ड ज्वाला जलाई जाय। भटकाव से विमुख कर लोकचेतना को राजमार्ग पर चलाया जाय।

इसके लिए एक ऐसा विशालकाय तन्त्र खड़ा होना चाहिए, जिसमें लेखनी और वाणी का समान रूप से प्रयोग किया जाय। महत्त्वपूर्ण निर्धारण युग दृष्टाओं के चिन्तन से निकलकर बाहर आते हैं, इसके बाद अनेक युग प्रचारक उन्हें अपनी वाणी द्वारा जन-जन तक पहुँचाते हैं। अनुपयुक्त को छोड़ने और उपयुक्त को अपनाने के लिए रचनात्मक कामों की दृश्यमान प्रक्रिया भी खड़ी करनी पड़ती है। रचनात्मक कार्यक्रम इन्हीं को कहते हैं। इन तीनों के समन्वय से ही वह विधा बन पड़ती है, जो युग क्रान्ति की सर्वतोमुखी आवश्यकता को पूरी कर सके। आज की परिस्थितियों में यह कार्य प्रमुखता देने योग्य है।

वहाँ एक बात और भी ध्यान में रखने योग्य है कि लोक चेतना को दिशा देने में संगीत का अपना स्थान है। गायन-वादन हृदय की भाव लहरी को लहराता है। उसमें जहाँ कामुकता, आक्रामकता जैसी दुष्प्रवृत्तियों को भड़काने का काम सफलतापूर्वक सम्पन्न होता देखा गया है, वहाँ यह भी पूरी तरह संभव है कि उत्कृष्ट आदर्शवादिता के लिए एक नई निर्झरणी उमगाई और बहायी जा सके। युग चिन्तन को उत्कृष्टता की ओर ले जाने के लिए जहाँ लेखनी, वाणी के रचनात्मक क्रियाकलापों को उभारने की आवश्यकता है, वहाँ यह भी एक अनिवार्य आवश्यकता है कि अभीष्ट परिवर्तन की प्रेरणा से भरा-पूरा लोक संगीत सृजा जाय और उसका अनुवाद देश की हर भाषा में उपलब्ध कराया जाय।

कभी कथा साहित्य द्वारा लोक शिक्षण का कार्य धीमी गति से—परोक्ष रूप से पूरा किया जाता था। आज आवश्यकता इस बात की है कि व्यक्ति द्वारा अपनाये गये गुण, कर्म, स्वभाव की कड़ी जाँच-पड़ताल की जाय और नीर-क्षीर विवेक के आधार पर उसका परिमार्जन किया जाय। इसी प्रकार समाज में कुप्रचलनों की भरमार है। रूढ़ि-परम्पराओं ने झूठी मान्यताओं का स्तर अपना लिया है। उसमें अनैतिकता, अवांछनीयता और अदूरदर्शिता के तत्त्व बेतरह घर गये हैं। इन्हें सम्हालने, सुधारने के लिए युगान्तरीय चेतना को दावानल की तरह अपनी क्रान्तिकारी भूमिका निभानी होगी।

संगीत की उपेक्षा न हो

कोई समय था जबकि लोकसेवियों का ज्ञान, ताप और प्रकाश एक से एक ऊँचे स्तर के रहते थे। उनके सम्पर्क-सान्निध्य-सत्संग की जन-जन प्रतीक्षा किया करता था। वे जहाँ जायें, वहीं भावनाशीलों की भीड़ लग जाती थी। अनायास ही सत्संग चल पड़ता था। इस आधार पर मिली हुई प्रेरणाओं को लोग श्रद्धापूर्वक हृदयंगम करते थे। तीर्थ स्थिर होते थे, पर सन्तों के द्वारा जाग्रत तीर्थों की आवश्यकता पूर्ण होती थी। तीर्थ सेवन के लिए लोगों को उन तक चलकर पहुँचना पड़ता था, पर जाग्रत अर्थात 'जंगम तीर्थ' स्वयं चलकर बादलों की तरह जहाँ-तहाँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पहुँचते और घटाटोप जलधारा की वर्षा करते थे। खेत चलने में समर्थ नहीं होते पर सुयोग्य किसान उन तक बीज, खाद, पानी आदि पहुँचाने की आवश्यकता पूरी करा देता है।

यह पुराने समय की, सतयुग की बात थी। वह सच्चे साधु ब्राह्मणों का युग था। उन्हीं के पुण्य-प्रताप से जन-जन को देवत्व के अवगाहन का लाभ मिलता था। समूचा वातावरण सुख-शान्ति से भरा-पूरा रहता था। न कहीं दुष्प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ती थीं, न अभाव, दरिद्र और पतन का वातावरण पनपता था। वह स्थिति अब नहीं रही। साधु ब्राह्मण का वेष और वंश ही बचा है। यदि वह जीवन्त और प्राणवान रहा होता, तो जनमानस की उत्कृष्टता का स्तर गिरने जैसा संकट कहीं दीख ही न पड़ता।

जो सामने है, उसी से काम चलाना पड़ेगा। कभी एकाकी महापुरुषों का व्यक्तित्व ही इतना चुम्बकत्व से भरा-पूरा होता था, कि उनके पहुँचते ही वातावरण महकने लगता था और जिनमें उसके प्रति थोड़ी भी संवेदना होती थी, वे लौह कण की भाँति चुम्बकत्व के आकर्षण से खिंचे चले जाते थे। अब वैसा सम्भव नहीं रहा। इसलिए लोक शिक्षण के लिए लोगों को एकत्रित, आकर्षित करने के लिए दूसरे माध्यम ढूँढ़ने पड़ेंगे। अकेले ही जन चेतन को आकर्षित कर सकने योग्य व्यक्तित्व तत्काल न बन सकने के कारण दूसरा उपाय यही रह जाता है कि जन समुदाय को आकर्षित करने वाली मण्डलियाँ गठित की जायँ। इस सन्दर्भ में संगीत मण्डलियों का माध्यम सबसे सरल और सबसे उपयुक्त दीख पड़ता है। उनके निर्वाह का सुयोग इस प्रकार बिठाया जा सकता है कि या तो कोई संगठित तन्त्र उनकी अर्थ व्यवस्था करे या फिर स्थानीय लोग ही मिल-जुलकर उस भार को वहन करें।

उलटी दिशा में बहने वाले लोकप्रवाह को किसी प्रकार उलटकर सीधा करने के लिए प्रभावी प्रेरणाओं का सरंजाम जुटाना आवश्यक है। इस प्रयोजन के लिए अभिनय मंच खड़े न किये जा सकें, तो कम से कम संगीत मण्डली का प्रबन्ध तो होना ही चाहिए। यह कार्य हर क्षेत्र का; हर गाँव का प्रबुद्ध वर्ग मिल-जुलकर सम्पन्न करे। हर गाँव की एक संगीत मण्डली होनी चाहिए। उसका अभ्यास बराबर चलता रहना चाहिए, ताकि प्रतिभावानों का इस क्षेत्र में पर्दापण बना रहे और कौशल में अभिवृद्धि होती रहे। उन्हें संगीत के माध्यम से जन चेतना जगाने की कला में कुशल बनाया जाना चाहिए।

मुख्य उद्देश्य है व्यक्तित्व में, दृष्टिकोण में मानवी गरिमा के अनुरूप उत्कृष्टता के अभिवर्धन का। उसके लिए तेजस्वी धर्म प्रचारकों के गाँव-गाँव तक पहुँच सकने के अभाव में संगीत मण्डलियों द्वारा उस अभाव की आंशिक पूर्ति की जानी चाहिए। मनस्वी युग सृजेताओं को यह आन्दोलन अपनी सूझ-बूझ और प्रयत्नशीलता के आधार पर चलाना चाहिए। जिनमें गायन-वादन की थोड़ी भी प्रतिभा दृष्टिगोचर हो, उन्हें इस कला-कौशल के माध्यम से स्वार्थ और परमार्थ का दुहरा लाभ सधने की बात बतायी जाय। उनके गर्व-गौरव को उभारा जाय तो सहज ही ऐसी संगीत टोलियाँ हर क्षेत्र में खड़ी हो सकती हैं। प्रयत्न करने पर उनके प्रशिक्षण वाले ऐसे सत्र भी, शिविर भी जगह-जगह लगाए-चलाए जा सकते हैं, जिनके सहारे योग्यता अभिवर्धन का सिलसिला चलता रहे और बात आगे बढ़ती रहे।

महिलाएँ अपने समुदाय के लिए अपनी मण्डलियाँ अलग गठित कर सकती हैं। उनमें सुविधा से पर्व त्योहारों, संस्कारों एवं ऋतुओं आदि के अनुरूप गीत-वाद्यों के आयोजन होते रह सकते हैं। अनिवार्यता इस बात की होनी चाहिए कि उनमें से सभी प्रगतिशीलता के, आदर्शवादिता के पक्षधर हों। ऐसे गीतों की आवश्यकता सभी क्षेत्रों में है। शहरों, कस्बों में मनोरंजन के साधन तो खड़े हो गये हैं, परन्तु उनमें संस्कारों के स्थान पर विकार ही अधिक भरे रहते हैं। वहाँ भी स्वस्थ दिशा दे सकने वाले मनोरंजन चाहिए। ग्रामीण क्षेत्र में जहाँ दो तिहाई भारत रहता है, वहाँ तो इस तरह के प्रयासों की अत्यधिक आवश्यकता है। असली भारत जो आर्थिक दृष्टि से ही नहीं, सांस्कृतिक दृष्टि से भी पिछड़ा हुआ है, चिन्ता उसी की करनी है, व्यवस्था उसी की बनानी है।

इस सन्दर्भ में एक महती आवश्यकता इस बात की है कि थोड़ी-थोड़ी दूर पर बदल जाने वाली ग्राम्य भाषाओं में, वहाँ की प्रचलित शैली व धुनों में लोक गीत रचे जायें। वे भी ऐसे ही हों जो उस क्षेत्र के प्रचलनों में प्रगतिशीलता लाने की दृष्टि से समय के अनुरूप बैठते हों। स्थानीय कवि शुद्ध हिन्दी की ऐसी नई प्रेरक रचनाओं का क्षेत्रीय बोली में सरस अनुवाद कर सकते हैं। उन्हें छपवाने और लागत मूल्य पर जन-जन तक पहुँचाने की व्यवस्था भी की जाय। यह भी एक कार्य है, जिसके सहारे गायक मण्डली का अभ्यास बढ़े और जन गायन चलते-फिरते गुनगुनाते रहने की प्रथा चल पड़े।

आवश्यक नहीं कि मँहगे और बड़े बाजारों में मिलने वाले, देर में सीखे जा सकने वाले वाद्य यन्त्रों को ही प्रयोग में लाया जाय। स्थानीय प्रचलन के अनुरूप कितने ही प्राचीन परम्परा के वाद्य यन्त्र अभी भी गाँव में मिल ही जाते हैं। उनका निर्माण भी स्थानीय लोग ही अपने सीमित साधनों से कर लेते हैं। उनकी टूट-फूट की मरम्मत भी वहाँ हो जाती है। अस्तु, लागत की दृष्टि से भी स्थानीय वाद्य यन्त्र सस्ते पड़ते हैं। इस गायन-वादन को अपनाए जाने पर, सहज ही मानवी अन्तरात्मा में प्रसुप्त स्थिति में पड़ी हुई कला संवेदना को उल्लसित होने का अवसर मिल सकता है। साथ ही संगीत का प्रवाह भी उत्कृष्टता की दिशा में मुड़ जाने पर, इस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधारण से प्रयास द्वारा अशिक्षितों या पिछड़ों में सदाशयता, सद्भावनायें जगाने के लिए एक आवश्यक आधार खड़ा हो सकता है। इस उत्पादन को किन्हीं मधुर फलों की फसल हस्तगत होने जैसी बहुमूल्य उपलब्धि कहा जा सकता है।

जानकार जानते हैं कि संगीत में न केवल भाव संवेदना में कोमलता के तत्त्व उगाने की क्षमता है, वरन् शारीरिक, मानसिक स्तर को अक्षुण्य रखने से लेकर सुधारने तक की क्षमता विद्यमान है। पशु, पक्षियों, वनस्पतियों पर भी उसका उपयोगी प्रभाव पड़ता देखा गया है। वातावरण में सरस संवदेनाओं का संचार होता है। यह असामान्य लाभ है। इन दिनों इनकी आवश्यकता आपत्तिकालीन युग धर्म के निर्वाह का उद्देश्य हाथ में लेकर सामने आई है। लोक चिन्तन में विकृतियों की भरमार घुस पड़ने के कारण, जन साधारण का दृष्टिकोण गड़बड़ा गया है। फलत: दुष्प्रवृत्तियाँ बरसाती नदियों की तरह उबल पड़ी हैं। इनके निराकरण के लिए किसी कानून का दबाव और संगठित समुदाय का प्रभाव भी किसी सीमा तक ही अपना काम कर पाता है। लेखनी और वाणी में उत्कृष्टता का तत्त्व दर्शन सँजोकर ही बहुत कुछ किया जा सकता है। सत्ता तन्त्र के रेडियो, टेलीविजन जैसे सशक्त माध्यम काम आ सकते हैं। शिक्षित वर्ग में पत्र-पत्रिकाओं का भी अपना स्थान है। सभी वर्ग अपने ढंग से अपने-अपने क्षेत्र में चेतना उभारने के लिए कुछ न कुछ करते रहने की साध सँजाये, मानवी गरिमा के पुनर्जीवन की दिशा में बहुत कुछ हो सकता है।

जो कार्य प्रमुखतापूर्वक हाथ में लिया जाना चाहिए, वह है लोक संगीत। उसका सृजन, संगठन, शिक्षण तो आवश्यक है ही, इनमें भी प्रमुखता प्रचलन को मिलनी चाहिए। ऐसे प्रयास किये जाने चाहिए, जिनमें गायकों को अपनी कला प्रदर्शित करने और श्रोताओं को उससे लाभ उठाने का अवसर जल्दी-जल्दी मिल सके। यह शिक्षितों और अशिक्षितों के लिए, बाल-वृद्ध और नर-नारियों के लिए समग्र रूप से आकर्षक एवं प्रेरणाप्रद हो सकता है। विशेष अवसरों पर विशेष संगीत आयोजन होते रहें, परन्तु पर्व-त्यौहारों पर तो उनकी अनिवार्य व्यवस्था रहनी ही चाहिए। देवालयों के संचालक मन्दिरों को, इस विद्या के विकास का केन्द्र बना सकते हैं। अन्य स्वयंसेवी संगठन भी लोक मंगल के प्रयोजनों में इन विद्याओं को विशेष रूप से सहयोग कर सकती हैं। लोक क्रान्ति के इस अजस्र और अभीष्ट माध्यम को प्रमुखता मिलनी ही चाहिए, जिससे कि जन-जन तक उसका संदेश पहुँचाया जा सके।

मध्यकालीन सन्त, संगीत को धर्म धारणा के लिए प्रधान रूप से अपनी कार्य पद्धति में सम्मिलित रखते थे। देवता भी इस काम में पीछे न थे। शंकर का डमरू, कृष्ण की वंशी, सरस्वती की वीणा, नारद का मृदंग सर्वविदित है। चैतन्य महाप्रभु, कबीर, सूर, दादू, नामदेव, मीरा आदि ने संगीत मण्डलियाँ गठित की थीं और वे अपने प्रभाव क्षेत्र में जाकर भक्तजनों को अभीष्ट शिक्षा संगीत के माध्यम से दिया करते थे। उन्होंने अन्य प्रान्तों में जाकर भी इस प्रकार के लोक शिक्षण की प्रक्रिया सफलतापूर्वक सम्पन्न की थी। आर्य समाज ने भी अपने प्रचार आयोजनों में संगीत को प्रमुखता दी है। विचार क्रान्ति अभियान में आयोजनों की, विचार-गोष्ठियों की धूम रहेगी। उनमें प्रचार के अन्यान्य माध्यमों में ध्यान देने के अतिरिक्त यह न भूल जाना चाहिए कि संगीत माध्यम का भी भरपूर प्रयोग किया जाना है। जहाँ अभिनय का समावेश संभव हो सके, वहाँ उसके लिए भी प्रयत्नशील रहने की महती आवश्यकता है।

कवि सम्मेलनों की भी लोकप्रियता है। उनमें वे कवि बुलाये जाते हैं, जिन्होंने कवितायें रची हैं। यह खर्चीला उपक्रम है। इसका सस्ता और सरल तरीका यह हो सकता है कि किन्हीं भी कवियों की चुनी हुई आदर्शवादी कविताएँ सुनाने के लिए कविता सम्मेलन स्कूलों में कहीं भी सुविधानुसार समय-समय पर किये जा सकते हैं। मधुर स्वर वाले बालकों-व्यक्तियों द्वारा उपयुक्त हाव-भाव सहित उन्हें प्रस्तुत किया-कराया जाय। उनमें साजों की जरूरत भी नहीं पड़ती। जिनके कंठ मधुर हों, उन्हें गायन की प्रतियोगिताओं में सम्मिलित करके प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इस प्रकार कविता सम्मेलनों और संगीत टोलियों का विवेकपूर्वक उपयोग करके युग प्रेरणायें जन-जन तक पहुँचाने में असाधारण सफलता पाई जा सकती है।

अन्धकार से निपटने के लिए प्रकाश प्रज्ज्वलन करें

प्रकाश न होने का ही नाम अन्धकार है। प्रकाश ही लाया ले जाया जाता है। अन्धकार लाया या ले जाया नहीं जा सकता। प्रकाश जो चाहते हैं, वे अन्धकार से लाठी लेकर नहीं लड़ते, बल्कि दीपक जलाने जैसा प्रयास करते हैं। क्रम चल पड़ता है तो सूर्य-चन्द्र जैसे प्रकाश पुंज भी उदय हो जाते हैं।

संसार की तमाम विपत्तियों का कारण दुश्चिन्तन और दुराचरण ही है। उन्हें दूर करना ही व्यक्ति कल्याण और लोक निर्माण का उपाय है। इसलिए सुख-शान्ति चाहने वालों और प्रगति की योजनायें बनाने वालों के लिए भी उचित है कि इसी केन्द्र पर अपना ध्यान लायें। प्रगति के लिए प्रथम चरण यही है कि भटकाव में पड़ें लोगों को ऐसा मार्गदर्शन दिया जाय ताकि वे उलझनें सुलझाते हुए उज्ज्वल भविष्य के अधिकारी बन सकें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस सन्दर्भ में सिद्धान्त समझाने के लिए सामूहिक गोष्ठियों का उपयोग किया जा सकता है। व्यावहारिक चरण समझाने, सिखाने के लिए व्यक्ति की निजी परिस्थितियों का ध्यान रखते हुए मार्गदर्शन किया जाता है। किसी को कुछ समझाने के पहले यह आवश्यक है कि उसे विश्वास में लिया जाय। यदि विश्वास की कमी के कारण कोई अपनी सलाह नहीं मानता है तो उस पर झल्लाना नहीं चाहिए। यदि व्यवहार में कटुता आ गई है तो उचित परामर्श भी न मानना, प्रतिष्ठा का प्रश्न बन जाता है। यदि सद्भाव बनी रहे तो एक ढंग से न सही दूसरे ढंग से, इस बार न सही अगली बार बात समझाई जा सकती है।

अनौचित्य के प्रति रोष, अवांछनीयता के प्रति आक्रोश स्वाभाविक रूप से आता है। उसे रोकने के उपाय करने को मन करता है। अनीति का प्रतिरोध करने के सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते। परन्तु ध्यान रहे, प्रतिरोध का उद्देश्य भी सुधार ही होता है। कहीं ऐसा न हो कि होम करते हाथ जले। कहीं ऐसा न हो कि सुधार तो हो न पाय, पर परस्पर विग्रह खड़ा हो जाय। चिढ़ पैदा हो जाने पर सरल काम भी कठिन हो जाता है।

प्रतिरोध सद्भावपूर्वक किया जा सकता है। भर्त्सना प्रताड़ना का प्रयोग लगता तो सुगम है पर बहुधा वह वैमनस्य और विग्रह पैदा कर देते हैं। सुधार के स्थान पर चुनौतियों का भद्दा क्रम चल पड़ता है। सुधारकों को, विशेष करके विचार परिवर्तन का लक्ष्य लेकर चलने वालों को, इस उलझन से बचकर वह राह पकड़नी चाहिए, जिससे लक्ष्य की दूरी और बढ़ न जाय।

जनसाधारण के लिए अनीति के विरुद्ध अड़ जाने की नीति ही ठीक है। अन्याय के आगे सिर न झुकाने में ही मनुष्य की गरिमा है। अनुचित के साथ असहयोग, विरोध, संघर्ष करना जैसा को तैसा की लोक रीति ही सही है। विरोध न होने से दुष्टों का साहस बढ़ता है। किसी को आतंक से, किसी को लालच से वे अपनी ओर कर लेते हैं इसलिए समाज में अनीति के विरुद्ध संघर्ष की नीति ही सही है। कानून, सुरक्षाकर्मी, सुरक्षा स्वयं सेवक सब इसी क्रम में लगे रहते हैं।

इतना सब होते हुए भी, समाज सुधार जैसे व्यापक उद्देश्य लेकर चलने वालों को औरों की अपेक्षा अधिक उदार चेता होना चाहिए। उन्हें आदर्श डॉक्टर्स जैसी रीति-नीति अपनानी होती है। रोगी विरोध करे, दुर्व्यवहार करे, कटुवचन कहे तो भी डॉक्टर उसके व्यवहार को नहीं, अपने कर्त्तव्य को ही महत्त्व देता है। मान-अपमान, निन्दा-प्रशंसा पर ध्यान दिये बिना वह उसी योजना पर आगे बढ़ता रहता है, जिससे रोग को मारा और रोगी को बचाया जा सके। दुष्प्रवृत्तियों का विरोध भी उन्हें रोकता है और सुधार भी उन्हें दूर करता है। जन सामान्य विरोध का मार्ग अपना सकता है, परन्तु लोकसेवी को सुधार का क्रम ही अपनाना चाहिए।

अपने को झंझट से बचाने के लिए 'अपने काम से काम' वाली नीति कायरतापूर्ण है। इससे समाज में दुष्प्रवृत्तियाँ बढ़ती हैं और सत्प्रवृत्तियों पर चोट पड़ती है। स्वयं को झंझट से बचाने वाला लोगों की निगाह में सिद्धान्तहीन-कायर ठहराया जाता है। ऐसे व्यक्ति अन्ततः अकेले छोड़ दिये जाते हैं। इसलिए मनुष्य में समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी के साथ-साथ बहादुरी भी होनी चाहिए। अनीति अपने साथ हो या किसी और के साथ, उससे विरोध, असहयोग प्रकट किया ही जाना चाहिए। सार्वजनिक हित को अपने व्यक्तिगत हित से अलग नहीं सोचना चाहिए। दुष्प्रवृत्तियों से निपटने के लिए ऐसी विशेषतायें बहुत आवश्यक हैं।

लोकसेवी को अपनी विशेषतायें और अधिक प्रखर बनानी होती हैं। यह अनाचार के कारणों की जड़ तक जाता है और उनका उपचार करता है। आमतौर से लोगों को यह भान नहीं होता कि दुर्गुण-दुष्प्रवृत्तियों से अपने निजी जीवन और सम्पर्क क्षेत्र को कितनी हानि उठानी पड़ती है। अपने मौज-मजे की संकीर्ण स्वार्थपरता में डूबा हुआ व्यक्ति, यह नहीं देख पाता कि उसके अनुचित कार्यों से कितने अनर्थ पैदा हो रहे हैं ? इसलिए लोग नशेबाजी, दहेज, जाति-पांति, विलासिता, महिला उत्पीड़न जैसे कुकृत्यों को अपने जीवन का अंग बना लेते हैं। इन प्रचलनों का अनुकरण करना उन्हें कुछ अनुचित नहीं लगता है।

लोगों की इस नादानी को दूर करना विचारशील लोकसेवियों का कार्य है। विचारशील की दिशा में उनके उपेक्षा भाव को दूर करने के लिए, उनके सामान्य लगने वाले घातक पक्ष उजागर किये जाने चाहिए। इनके कारण कितनों को कितना कष्ट-क्लेश सहना पड़ता है, यह स्पष्ट किया जाना चाहिए। करुणा और आक्रोश जगाना दो बड़े उपाय हैं। इसके लिए अन्याई को सीधी गलियाँ देना पर्याप्त नहीं है। हानियों और हानि उठाने वाले वर्ग की पीड़ा को इतना उजागर किया जाय कि सुनने वाले की भाव-संवेदनायें उसके साथ उमड़ पड़ें। वह इतना संवेदनशील हो उठे कि उनसे निपटने के लिए उसमें प्रबल संकल्प जाग उठे।

किसी की निन्दा करने से तो उसे व्यक्तिगत राग-द्वेष मान लिया जाता है। ऐसी स्थिति में लोग अपने आपको अलग ही कर लेना चाहते हैं। अनीति के सुधार उन्मूलन की बात टल ही जाती है; परन्तु यदि किसी व्यक्ति का उल्लेख न करके पीड़ित वर्ग की पीड़ा का सजीव चित्रण किया जाय तो बात बनती है। अनीति करने वाले से लेकर, देखने वालों तक को उसके उन्मूलन के लिए कुछ करने की प्रेरणा मिलती है। उसके अनुकरण के दोष से लोग बचते हैं और क्षेत्र में उस अनाचार को फैलने न देने का प्रयास करते हैं। अनीति पर उतारू व्यक्ति भी अपने इस दोष को दूर करने के लिए उपचार या सर्जरी जैसी प्रक्रिया स्वीकार करने को तैयार हो जाते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ध्यान रखा जाय, अनीति से बचने के लिए प्रतिरोध और सुधार दोनों ही मार्ग हैं। लोकसेवियों को सुधारने के लिए किन्हीं दोनों की निन्दा-आलोचना में उत्पन्न दुर्दशा का कम चित्रण करके करुणा उभारने में अधिक रुचि लेनी चाहिए। विरोध और सुधार के लिए यही तरीका अधिक कारगर है। ऐसा करने से सुधारक की शालीनता भी सुरक्षित रहती है और सफलता भी अधिक मिलती है। प्रकाश फैलाने की इस विधा को जितनी कुशलता से अपनाया जाय, उतना ही कार्य अधिक अच्छा और अधिक मात्रा में किया जा सकता है।

नव जागरण के लिए—युग साहित्य का स्वाध्याय

साधन-सुविधाओं की दृष्टि से अपना समय पूर्वजों की तुलना में कहीं अधिक सुसम्पन्न है। वैज्ञानिक, आर्थिक और बौद्धिक प्रगति ने इन दिनों इतनी साधन-सामग्री प्रस्तुत की है, जिसकी कि पूर्वजों ने भी कल्पना तक न की होगी। इतने पर भी जनसाधारण के स्वास्थ्य, सन्तोष, और सन्तुलन के क्षेत्रों में बेतरह गिरावट आ रही है। आर्थिक तंगी, परिवारों में खींचतान और समाज में विसंगठन, अपराधों का प्रचलन निरन्तर बढ़ रहा है। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में इस कदर समस्यायें बढ़ रही हैं कि किसी भी क्षण महाविनाश की घड़ी सामने आ सकती है। अपराध, बहुप्रजनन, दुर्व्यसन, विग्रह, आक्रमण का माहौल, भविष्य को अधिकाधिक अन्धकारमय बनाता जा रहा है। सरकारों द्वारा अपनाये जाने वाले सुधार प्रयत्न सफल हो नहीं रहे हैं। साज-सँभाल की सीमा है किन्तु बढ़ती हुई अनैतिकता जैसी अराजकता उत्पन्न करती है, उसकी रोकथाम बाहरी नियन्त्रण के आधार पर बन पड़ना कठिन है।

असंख्य समस्याओं, विपत्तियों और विभीषिकाओं का एकमात्र कारण है—मानवी दृष्टिकोण में आदर्शों के प्रति अनास्था की अभिवृद्धि, चिन्तन और चरित्र में निकृष्टता का समावेश। यह क्रम यथावत चलता रहा तो मात्र शासकीय या आर्थिक उपायों से समाधान हो नहीं सकेगा। बनाने की तुलना में बिगाड़ने का क्रम आगे रहा तो एक दिन सर्वनाशी गतिरोध प्रस्तुत होकर ही रहेगा।

सामयिक समस्याओं का समाधान और उज्ज्वल भविष्य का निर्धारण इसी एक तथ्य पर आधारित है कि जितना प्रयास सुविधा-साधनों के संवर्द्धन के लिए किया जा रहा है, उतना ही ध्यान लोकमानस को परिष्कृत करने, व्यक्तित्वों में उत्कृष्टता बढ़ाने पर दिया जाय। प्राचीनकाल में इसी पक्ष को समुन्नत बनाये रहने के लिए मूर्धन्यों के प्रबल प्रयास नियोजित रहते थे। फलतः यह देश नर-रत्नों की खदान था। यहाँ देवता रहते थे और इस धरती पर स्वर्ग बिखरा पड़ा था। इस उक्ति का तात्पर्य इतना ही है कि सतयुगी वातावरण में व्यक्ति की आस्थायें, संवेदनायें, आकांक्षायें, विचारणायें और गतिविधियाँ उत्कृष्टता के साथ सुसम्बद्ध थीं। फलतः व्यवहार में स्नेह-सहयोग की कमी नहीं थी। जो साधन उपलब्ध थे, उन्हीं को मिल-बाँटकर खाते और हँसती-हँसाती, हल्की-फुल्की जिन्दगी जीते थे। जहाँ ऐसे मनःस्थिति और परिस्थिति रहेगी, वहाँ सृष्टा की सर्वोत्तम संरचना के रूप में प्रकट हुआ मनुष्य स्वयं सुखी रहेगा और सर्वत्र सुख-शान्ति की वर्षा करेगा।

इन दिनों प्रवाह उलट गया है। चिन्तन और चरित्र में निकृष्टता घुसी और व्यवहार-प्रचलन पर दुष्टता, भ्रष्टता के तत्त्वों ने अपना आधिपत्य जमा लिया है। परिणिति सामने है। हम असंख्य समस्याओं से उलझे हैं और सर्वनाश के दलदल में क्रमशः अधिकाधिक गहरे धँसते चले जा रहे हैं। इन दिनों छाया अनास्था संकट, दुर्भिक्ष से भी भयंकर हैं। मर्यादायें तोड़ डालने पर—बाँध टूटने पर जल-जंगल एक कर देने वाले संकट से भी अधिक विनाश होता है। संकीर्ण-स्वार्थपरता का प्रवाह ऐसा है, जिसकी बाढ़ में सब कुछ बहता चला जाता है। उच्छृंखलता का प्रचलन सब कुछ तोड़-मरोड़कर रख देने वाले तूफान से अधिक भयावह है। महामारियों में मनुष्यों के शरीर मरते हैं पर निकृष्टता के प्रति बढ़ती अभिरुचि तो आत्मा को ही अर्द्ध मृतक बनाकर दिवंगतों से भी बुरी दशा में ला टपकती है। सामूहिक आत्महत्या और महाविनाश के पथ पर जिस प्रकार मनुष्य समुदाय इन दिनों उत्साहपूर्वक घुड़दौड़ लगा रहा है, उसे देखते हुए रोमांच हो उठता है और लगता है कि भविष्य को अन्धकारमय बनाने वाले इस प्रवाह को कोई दैवी चमत्कार ही रोक सकता है।

इन दिनों की चित्र-विचित्र आकृति, प्रकृति वाली अनेकानेक समस्याओं, विपत्तियों, विभीषिकाओं का एक मात्र कारण आस्था संकट है। अदूरदर्शिता, स्वार्थपरता जैसी निकृष्टतायें मिल-जुलकर आस्था संकट उत्पन्न करती हैं। और जब-जब वह दावानल भड़कता है, तो उसकी लपेट में गीले-सूखे सभी आते हैं। शिक्षित-अशिक्षित, धनी-निर्धन, समर्थ-असमर्थ, सभी उस माहौल से सर्दी, गर्मी की तरह प्रभावित होते हैं। इन दिनों यही हो रहा है। मानवीय गरिमा को अपनाए रहना तो दूर उसे अनुभव करना, स्वरूप और उत्तरदायित्व तक समझना कठिन हो रहा है। इस संमूची स्थिति का पर्यवेक्षण करने के उपरान्त चिन्तन करने पर एक ही निष्कर्ष निकलता है कि जनमानस को शालीनता का पक्षधर बनाया जाय तथा लोक-चिन्तन में दूरदर्शी विवेकशीलता का सघन समावेश किया जाय। इससे कम में बात बनती ही नहीं। यदि आदर्शवादिता की पक्षधर विचार क्रान्ति न हो सकी, यदि सर्वतोमुखी नवसृजन का आधारभूत उपचार—प्रज्ञा अभियान व्यापक न बन सका तो समझना चाहिए कि मानवी गरिमा ने पराजय स्वीकार कर ली और आत्मरक्षा के लिए निमित्त हस्तगत हुए अस्त्र-शस्त्रों को पटककर पतन-पराभव की शरण में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहने की नीति अपना ली। यदि ऐसा हुआ तो समझना चाहिए संस्कृति ने आदिमकाल के वनमानुषों की विरादरी में वापस होने का रास्ता जाने-अनजाने में अपना लिया।

ऐसी दशा में अपने को, अपने प्रियजनों को, अपने समाज, विश्व को, संस्कृति को विनाश पथ से विरत करने का एक ही उपाय है कि जनसाधारण को वस्तुस्थिति की जानकारी कराई जाय और परित्राण का उपाय भी ढोल पीटकर सुझाया जाय कि प्रचलित मान्यताओं, आकांक्षाओं, आदतों, परम्पराओं, क्रियाकलापों में अधिकांश ऐसी हैं, जिसमें औचित्य कम तथा अनौचित्य का अनुपात अधिक बढ़ गया है। भ्रान्तियों, विकृतियों और अवांछनीयताओं की इतनी अधिक मात्रा जीवन के, समाज के हर क्षेत्र में भर गई कि उसे ऊपरी लीपा-पोती से नहीं सुधारा जा सकता है। इसके लिए कुछ बड़े कदम उठाने होंगे। बड़े का तात्पर्य है—गलाई-ढलाई जैसा उपक्रम। टूटे-फूटे धातु खण्डों के लिए यही नीति अपनानी पड़ती है। उन्हें हानिकारक कूड़े-कचरे के रूप में जगह घेरने और ठोकरों के व्यवधान खड़े करने की स्थिति में नहीं रहने देना हो तो फिर एक उपाय शेष रह जाता है कि एक बार दुस्साहस सँजोया जाय और उस कचरे को भट्टी में गलाकर, उपयुक्त साँचों में ढाला और ऐसे उपकरणों में बदला जाय, जिन्हें उपयोगी, आवश्यक महत्त्वपूर्ण, मूल्यवान कहा जा सके।

लोक चिन्तन में उत्कृष्टता की, आदर्शवादिता की प्रतिष्ठापना के इस प्रयास-पुरुषार्थ को संक्षेप में विचार क्रान्ति कहा जा सकता है। इसमें नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक क्षेत्र की अवांछनीयताओं के उन्मूलन तथा सत्प्रवृत्ति-संवर्द्धन के द्विपक्षीय प्रयासों का समावेश है। अपने समय की यह सबसे बड़ी आवश्यकता है। उलटे को उलटकर ही सीधा किया जा सकता है। विचारों को विचार ही काटेंगे, काँटे से काँटा निकलेगा और विष उपचार विष से ही होगा। अनुपयुक्त विचारणाओं को, प्रवचनों को निरस्त करने के लिए मानवी अन्तराल को सुसंस्कृत बनाने वाली उन विविध विभूतियों को अर्जित करना होगा, जिन्हें अध्यात्म की भाषा में श्रद्धा, प्रज्ञा और निष्ठा कहते हैं। प्रज्ञा साहित्य इसी प्रयोजन के लिए युगान्तरीय चेतना के रूप में इन दिनों प्रकट हुआ। दूरदर्शी विवेकशीलता का पुनर्जीवन उसका लक्ष्य है। संक्षेप में इन प्रयासों को लोकमानस के परिष्कार के निमित्त अग्रगामी बनाये गए प्रचारात्मक, रचनात्मक और सुधारात्मक प्रयत्नों का समुच्चय कह सकते हैं। चिन्तन से चरित्र बनता है। मनःस्थिति परिस्थितियों की जन्मदात्री है। इस तथ्य को सर्वोपरि मान्यता देते हुए परिवर्तित प्रयत्नों की रूपरेखा खड़ी की गई है।

युग परिवर्तन के इस पुण्य-प्रयास का शुभारम्भ—श्रीगणेश चिन्तन और चरित्र में आदर्शवादिता का—दूरदर्शी विवेकशीलता का समावेश करने वाले स्वाध्याय उपक्रम को व्यापक बनाने की योजना के साथ किया गया है। निकृष्टता सहज साध्य है। पानी ढलान की ओर बहता है और वस्तुएँ ऊपर से नीचे की ओर गिरती हैं। मनुष्य के सम्बन्ध में भी यही बात है। पर यदि ऊँचा उठना उठाना है तो समर्थ साधन जुटाने पड़ते हैं। जनमानस में उत्कृष्टता का अभिवर्द्धन भी ऐसे ही प्रबल प्रयासों की अपेक्षा रखता है। चिन्तन को प्रभावित करने वाले माध्यम हैं—स्वाध्याय, सत्संग, चिन्तन और मनन। इन चारों में स्वाध्याय प्रमुख है। शेष तीनों की सुव्यवस्था इस प्रथम चरण के उपरान्त ही पूरी बन पड़ती है।

यों स्वाध्याय के नाम पर कथा-पुराणों के पठन, श्रवण का ढर्रा चलता रहता है और सत्संग के नाम पर—परलोक, देवलोक का उहापोह कहा, सुना जाता है। इससे इस पुण्य प्रक्रिया का वास्तविक उद्देश्य पूरा नहीं होता। युग धर्म की माँग है कि व्यक्ति के जीवन से सम्बन्धित व्यवहार में आये दिन काम आने वाली और समय, समाज को प्रभावित करने वाली तात्कालिक समस्याओं के कारणों और निवारणों का समाधान प्रस्तुत करने वाले तथ्यों पर आधारित यथार्थवादी विचारणा के साथ सम्पर्क सधे। स्वाध्याय की आवश्यकता इससे कम में पूरी होती ही नहीं। 'स्व' का अर्थ है अपना, 'अध्याय' का अर्थ है प्रसंग-अध्ययन। जिससे अपने व्यक्तित्व से सम्बन्धित उत्थान-पतन का निरूपण हो उसी साहित्यिक अध्ययन का नाम स्वाध्याय है।

इस उद्देश्य के लिए भटकाव में प्रकाश उत्पन्न करने वाला, व्यवहार में आ सकने वाला साहित्य आज एक प्रकार से अनुपलब्ध ही है। इस कमी को प्रज्ञा अभियान ने पूरा किया है और जितना बन पड़ा उतना साहित्य ऐसा छापा है, जो संव्याप्त अन्धकार के बीच प्रकाश स्तम्भ की तरह सर्वसाधारण का मार्गदर्शन कर सके।

इन दिनों सत्संग की आवश्यकता भी स्वाध्याय ही पूरी करता है क्योंकि तत्त्वदर्शी युग-मनीषियों तक पहुँच सकना, उनके साथ यथेष्ट समय तक परामर्श करते रहना, बढ़ती हुई व्यस्तता के कारण सम्भव नहीं रहा। फिर मुद्रण कला का विकास होने के उपरान्त वैसी आवश्यकता भी नहीं रही। अब अपनी सुविधा के समय में, यथेष्ट मात्रा में, अभीष्ट विषयों पर उच्चस्तरीय युग-मनीषियों का सत्संग लाभ ले सकना युग साहित्य के माध्यम से सरलतापूर्वक उपलब्ध है। सत्संग के नाम पर सिर-फिरे लोगों की सनकें सुनने और अपना समय तथा मस्तिष्क खराब करने की अपेक्षा यही उत्तम है कि प्रज्ञा साहित्य घर बैठे पढ़ा जाय और इस माध्यम से स्वाध्याय और सत्संग की उभयपक्षीय आवश्यकता एक साथ पूरी कर ली जाय।

लगता यह है कि यह कार्य असम्भव-सा है। इतने बड़े जनमानस को प्रभावित कर उन्हें सही दिशा देना लगता तो कठिन है, पर उसका समाधान तो सरल है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यापक अन्धकार को एक टिमटिमाता दीपक चुनौती दे सकता है। जागृत आत्माओं में से थोड़े से भी संकल्पवान उभरें तो अग्रिम पंक्ति में खड़े होकर वह मोर्चा सँभाल सकते हैं, जिसे अकेले हनुमान द्वारा समूची लंका उजाड़ देने की, अकेले अगस्त्य द्वारा समुद्र सोख लेने की, अकेले भागीरथ द्वारा गंगावतरण की उपमा दी जा सके। जो करने योग्य काम है, वह एक ही है—जनसमुदाय के प्रवाह को उलटा जाय। उलटे को उलटकर सीधा किया जाय। वही जनमानस की परिष्कार-प्रक्रिया के अन्तर्गत होगा। इस विशाल योजना का शुभारम्भ कैसे हो ? इसके लिए गाँधीजी द्वारा कुछेक को साथ लेकर नमक सत्याग्रह आरम्भ किये जाने और फिर उस विद्रोह का विस्तार होते-होते 'करो या मरो' वाली महाक्रान्ति तक जा पहुँचने की अभी-अभी घटित हुई ऐतिहासिक प्रक्रिया का स्मरण किया जा सकता है।

युग चेतना को अग्रगामी बनाने का उत्तरदायित्व महाकाल ने प्रज्ञा परिवार की जाग्रत आत्माओं के कन्धों पर पटका है। उन्हें अग्रिम मोर्चे पर खड़ा किया है और लोक मानस के परिष्कार की प्राथमिक आवश्यकता पूरी करने को जुट पड़ने के लिए प्रेरित एवं बाधित किया। चुनौती को स्वीकार करते हुए प्रत्येक सृजन शिल्पी को अपना कार्यारम्भ इसी प्रकार करना चाहिए कि युग चेतना को हृदयंगम कराने वाले प्रज्ञा साहित्य से जन-जन को अवगत-अनुप्राणित करने का प्रयास करें। इसके लिए घर-घर अलख जगायें। स्वाध्याय मण्डलों का गठन इसी दृष्टि से किया गया है, यह संगठन बिना किसी प्रकार काम हर्ज किए, क्षति उठाये या त्याग-बलिदान का साहस सँजोये, मात्र इतना प्राथमिक प्रयास करने भर से चल पड़ेगा कि अपने सम्पर्क क्षेत्र में जो भी विचारशील आते हों, उनमें से न्यूनतम पाँच को प्रज्ञा साहित्य नियमित रूप से पढ़ाने, वापस लेने का व्रत लें और उसे निभायें। जो आधा घण्टा नित्य युग चेतना को पढ़ें या सुनें वे सभी इस स्वाध्याय संगठन के सदस्य माने जायेंगे। इस प्रयास को जितने उत्साहपूर्वक जिस क्षेत्र में चलाया जाएगा, उसमें उसी अनुपात से नवजागरण के चिह्न प्रकट होंगे। कारण यह कि प्रज्ञा साहित्य जिस युग मनीषा द्वारा सृजा गया है, उसकी ऊर्जा असाधारण है। जो पढ़ेगा, सुनेगा वह आलोक के क्षेत्र में प्रवेश करेगा और स्वयं को बदलने तथा समय को पलटने में सुनिश्चित रूप से संलग्न दृष्टिगोचर होगा।

भव्य संरचना का आरम्भिक शिलान्यास

पिछले एक हजार वर्ष का समय चिन्तन क्षेत्र का अज्ञानान्धकार युग कहा जा सकता है। उसमें भ्रान्तियों, विकृतियों और दुष्प्रवृत्तियों का इतना अधिक कूड़ा-करकट घुसा है, जिसकी सड़ाँध से सर्वत्र विषाक्तता ही भरी दीखती है। प्रस्तुत अगणित विपत्तियाँ और विपन्नतायें उसी को देन हैं। चिन्तन चेतना के इसी स्वरूप को यदि यथावत रहने दिया जाय तो लगा हुआ घुन शहतीर को खोखला ही करेगा। विषाणुओं का परिकर यदि फेफड़े में छोटा-सा स्थान बना लें, तो फिर देर-सबेर में सुडौल काया का भी अन्त होकर रहेगा। आज का चिन्तन-प्रवाह प्रायः इसी स्तर का है। उसके प्रभाव क्षेत्र में आने के उपरान्त शरीर, मन, परिवार, वैभव, समाज, सब कुछ विषाक्त होता चला जा रहा है। समृद्धि, शिक्षा, कला, सुविधा-सामग्री की प्रस्तुत अभिवृद्धि को मानवी इतिहास में अद्भुत, असाधारण कहा जा सकता है। यदि चिन्तन भी मानवी गरिमा के अनुरूप रहा होता तो स्थिति-परिणिति ऐसा रही होती जिस पर देवता ईर्ष्या करते और स्वर्ग को निछावर किया जा सकता है।

अपने समय की एक भूल है—चिन्तन की उत्कृष्टता को महत्त्व न मिलना। व्यक्तित्व को सुसंस्कारी बनाने की आवश्यकता एवं परिणति ओर ध्यान न जाना। सुविधा-साधनों की आवश्यकता से इन्कार नहीं किया जा सकता, पर यह भुला नहीं दिया जाना चाहिए कि उसका प्रयोक्ता यदि हेय स्तर का रहा हो तो फिर तो कुछ भी हाथ लगेगा उसका दुरुपयोग ही बन पड़ेगा। आग की चपेट में जो भी सस्ती-मँहगी वस्तु आयेगी वह भी मात्र ईंधन की तरह जलेगी। घटिया चिन्तन और ओछा व्यक्तित्व रहते, न तो उचित रीति से, उचित मात्रा में वैभव अर्जित हो सकेगा और यदि हुआ भी तो उसका उपयोग अपने लिए, दूसरों के लिए, मात्र संकट खड़े करने भर के लिए होता रहेगा। समृद्धि से तात्कालिक लिप्सा तो कोई भी पूरी कर सकता है किन्तु यदि उसका सत्परिणाम अभीष्ट हो तो फिर यह अनिवार्य होगा कि प्रयोक्ता का दृष्टिकोण एवं प्रयोगक्रम उच्चस्तरीय बने।

चिन्तन की निकृष्टता के रूप में जो कूड़ा-कचरा जमा पड़ा है और जनमानस को प्रभावित करता रहा है, उसे बुहारने के लिए सामान्य बुहारी की नहीं वरन् तूफान जैसे अन्धड़ की आवश्यकता पड़ेगी। इन दिनों नियति की सन्तुलन व्यवस्था ने ऐसा ही प्रवाह उत्पन्न किया है, जिसे विचार क्रान्ति या प्रज्ञा अभियान कहा जा सकता है। इसके अन्तर्गत नवयुग की ऐसी विचारधारा का प्रस्तुतीकरण किया गया है, जो प्रस्तुत मान्यताओं, आदतों और परम्पराओं का नये सिरे से पर्यवेक्षण और निर्धारण कर सके। युगान्तरीय चेतना के अन्तर्गत ऐसी ही सर्वांगपूर्ण विचार प्रक्रिया का निर्माण किया गया है—और उसे प्रज्ञा साहित्य के रूप में जनसाधारण के लिए प्रस्तुत किया गया है। इस छोटे प्रयास से निकट भविष्य में आशातीत और आश्चर्यजनक परिवर्तन होने की अपेक्षा की जा सकती है।

इस नितान्त सस्ते, सर्वसुलभ किन्तु उच्चस्तरीय, सर्वथा व्यवहारिक तत्त्व चिन्तन से भरे-पूरे साहित्य को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अधिकाधिक लोगों द्वारा पढ़ा जाना वह उपाय है, जिसके सहारे विचार क्रान्ति की व्यापक आवश्यकता को सामान्य प्रयत्नों से ही पूरा किया जा सकता है। इतना बन पड़ा तो व्यक्ति का दृष्टिकोण बदलेगा, चिन्तन बदलेगा और उसका सीधा प्रभाव चरित्र पर पड़ेगा। युग परिवर्तन का यही मार्ग है। व्यक्ति बदले तो युग बदले। हम सुधरेंगे तो युग सुधरेगा। यह सुधार-परिवर्तन ही प्रस्तुत अगणित समस्याओं का एकमात्र हल है।

विचारों की शक्ति कितनी प्रबल-प्रचण्ड होती है, इसे व्यक्तिगत जीवन में हुए महान परिवर्तन पर दृष्टिपात करके सहज ही समझा जा सकता है। नारद के प्रखर परामर्श ने बाल्मीकि, ध्रुव, प्रहलाद, पार्वती आदि असंख्यों की दिशा धारा बदल दी। बुद्ध के परामर्श से अंगुलिमाल, हर्षवर्धन, अशोक आदि ने अपने पूर्व प्रवाह का कायाकल्प ही कर डाला था। सूरदास, तुलसीदास आदि कितनों ने अपनी पुरानी केंचुल पूरी तरह बदलकर फेंक दी थी। संसार के महामानवों में से प्रत्येक की दिशा धारा मोड़ने मरोड़ने में मात्र विचार शक्ति की ही भूमिका रही है, भले ही वह कहीं से भी प्राप्त क्यों न हुई हो ? शंकराचार्य, तुकाराम, गाँधी आदि जन्म से ही वैसे नहीं थे, जैसे उच्चस्तरीय विचारों के अवलम्बन से उनके प्रयासों ने नया जामा पहना और नया कार्यक्रम अपनाया। यह प्रक्रिया हर छोटे-बड़े महामानव के व्यक्तिगत जीवन में किसी न किसी माध्यम से सम्पन्न हुई है।

व्यापक सामाजिक क्रान्तियों के मूल में वही प्रखर प्रेरणा काम करती दृष्टिगोचर होगी, भले ही बाद में उनका घटनाक्रम किसी भी रूप में घटित क्यों न होता रहा हो ? साम्यवाद की विचारधारा से आज संसार का आधे से अधिक जनसमुदाय पूरी तरह या आंशिक रूप से प्रभावित है। घटनाक्रम का पर्दा उठाकर देखा जाय तो उसके पीछे कार्लमार्क्स की लेखनी को डायनामाइट की विशालकाय सुरंग जैसी भूमिका निभाते देखा जा सकता है। उसी चिंगारी ने दावानल की तरह प्रकट होकर विश्व के अधिकांश भाग को अपनी लपेट में ले लिया है। प्रजातन्त्र के जन्मदाता रूसो की लेखनी किस प्रकार संसार भर की विवेक-विचारणा को झकझोरने में समर्थ हुई, किसी की समझ में न आने वाला, सर्वथा असंभव दिखने वाला—'जनता द्वारा जनता पर स्वयं का शासन' सिद्धान्त कार्यान्वित हुआ। यह एक जादुई सपने जैसा चमत्कार है। रूसो की लेखनी न उठी होती तो सम्भवतः आज भी प्रजातन्त्र किन्हीं अन्यान्य तत्त्वदर्शनों में से एक होता और किन्हीं पुस्तकालयों में विराजता। जबकि राजमुकुटों के श्मशानों पर प्रजातन्त्रीय व्यवस्था सुरम्य उद्यानों की तरह लहलहाती देखी जा सकती है। तीन चौथाई विश्व में आज प्रजातन्त्रीय शासन व्यवस्था है। इसे विचार चेतना का प्रस्फुरण कह सकते हैं।

अमेरिका में दास प्रथा की गहराई तक घुसी जड़ों को उखाड़ने का श्रेय श्रीमती स्टो की एक पुस्तक 'टाम काका की कुटिया' को दिया जाता है। वह न लिखी गई होती, तो वहाँ इतना प्रचण्ड आन्दोलन न उभरा होता और लाखों निरीहों को न जाने कब तक उत्पीड़न सहते रहना पड़ा होता ? योरोप को पोपवाद के अन्धविश्वास से छुड़ाने में मार्टिन लूथर की भूमिका अनन्त काल तक स्मरण की जाती रहेगी। भारत में दयानन्द, विवेकानन्द, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, तिलक, अरविन्द आदि ने जो विचार जनसाधारण को प्रदान किये उनके लिये पीढ़ियाँ उनकी कृतज्ञ रहेंगी।

ईसाई धर्म के विस्तार में क्रिश्चियन मिशन द्वारा संसार की समस्त भाषाओं में किये गये विचार प्रसार का, साहित्य प्रकाशन का असाधारण महत्त्व है। किसी की विचारणा प्रभावित करके ही उसे अभ्यस्त ढर्रे से विरत करके उत्थान-पतन के असाधारण मार्ग पर चलाया जा सकता है। गीता, रामायण का भारतीय जनमानस पर कितना गहरा प्रभाव है ? उसे देखते हुए सहज ही समझा जा सकता है कि साहित्य की कितनी क्षमता होती है ? भारतीय संस्कृति के रूप में ऋषियों ने जो महान अनुदान दिये हैं, उनका एकमात्र माध्यम उनके द्वारा रचा गया शास्त्र साहित्य ही है, जो अनन्त काल तक अपना दिव्य आलोक ज्योतिर्मय किये रहेगा। उसकी महत्ता प्रत्यक्ष एवं सामयिक प्रवचनों से कहीं अधिक है।

उपरोक्त विवरणों से किसी भी विचारशील को यह समझने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि उच्चस्तरीय विचारों को जनजीवन में प्रवेश कराने के लिए आलोक भरे साहित्य का कितना अधिक प्रभाव है। अब तो सत्संग भी साहित्य में ही केन्द्रीभूत हो गया है। महान मनीषियों का सान्निध्य सदा उपलब्ध न होना और मुद्रण काल के आविष्कार से सत्साहित्य सरलतापूर्वक मिल सकना, यह दोनों ही संयोग मिलकर इसी निष्कर्ष पर मिलकर पहुँचते हैं कि विचार क्रान्ति के लिए युगान्तरीय चेतना को शिक्षित लोग पढ़ें और अशिक्षित सुनें तो वह प्रयोजन पूरा हो सकता है, जिसे 'लोकमानस का परिष्कार' कह सकते हैं। यदि यह प्रक्रिया सचमुच ही चल पड़े और यह प्रयास वस्तुतः व्यापक हो सके, तो समझना चाहिये कि प्रज्ञा अभियान के प्रतिपादनों से—जन-जन के मन-मन को युग-चिन्तन के साथ जोड़ने और अवांछनीयता से विरत करके औचित्य का पक्षधर बनाने में सफलता मिल सकती है।

उथले व्यक्तियों के उथले प्रतिपादन तो ऐसे ही बे पर की उड़ानें बनकर छितराते, लाते, खाते और उपहासास्पद बनते रहते हैं परन्तु युग ऋषियों द्वारा काल-मन्थन की प्रज्ञा साधना का आधार लेकर जो प्रतिपादन प्रस्तुत किये जाते हैं। उनके बारे में बात ऐसी नहीं है। विवेक समर्थित तथ्यों पर आधारित ऐसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

युगान्तरीय चेतना तो सदा व्यापक बनती और सफल होती रही है। पहले उन्हें विशेषज्ञ अपनाते हैं, बाद में जनसाधारण के गले उतरने योग्य बन जाती है। प्रभात किरणें सर्वप्रथम पर्वत शिखरों पर चमकती हैं। बाद में उनके आलोक से समूचा धरातल ज्योतिवान होने लगता है। ऋतुप्रभावों की क्षमता ऐसी होती है कि जड़-चेतन को उनकी क्षमता मानने और तदनुरूप अपनी गतिविधियाँ बदलने के लिए विवश होना पड़ता है। वर्षा में जल-जंगल एक होते और धरातल पर हरे कालीन बिछते देखे जा सकते हैं। शीत से सभी सिकुड़ते हैं, पेड़ तक अपने पत्ते गँवा बैठते हैं। गर्मी में चक्रवात घूमते, अन्धड़ चलते और गर्मी से प्राणियों को हाँफते, मुँह छिपाने के लिए छाया ढूँढ़ते देखा जा सकता है। बसन्त आया नहीं कि वनस्पतियाँ फलों से लदती हैं, पशु-पक्षी कुदकते-फुदकते हैं और कोयलों, भौरों के झुण्ड अपनी तान सुनाते फिरते हैं। यह ऋतु प्रभाव का चमत्कार है। प्रचण्ड विचारों के प्रवाह को भी ऐसे स्तर का समझा जा सकता है। वातावरण बना तो फिर अनुगमनकर्त्ता की कमी नहीं रहती। बुद्ध को लाखों परिव्राजक मिले। गाँधीजी को सत्याग्रहियों की कमी नहीं पड़ी। राम दल में न जाने कहाँ-कहाँ से रीछ-वानर आ घुसे ? गोवर्धन उठाने वाले ग्वाला-बालों का संख्याबल, साहस और उत्साह देखते ही बनता था। इसी को कहते हैं ऋतु प्रभाव जैसा वातावरण।

स्वाध्याय मण्डलों की स्थापना वाला प्रज्ञा अभियान का प्रस्तुत चरण ऐसा ही है, जिसके पीछे युगान्तरीय चेतना की अदृश्य प्रचण्ड प्रेरणा अपनी प्रखरता का परिचय देती हुई देखी जा सकती है। ऐसे प्रसंगों का विस्तार होते देर नहीं लगती। एक चिंगारी देखते-देखते दावानल बन सकती है और सुविस्तृत क्षेत्र को भस्मासात कर सकती है। ईसा, बुद्ध, गाँधी आदि के रूप में उत्कृष्टता की पक्षधर क्रान्तियाँ भी आँधी-तूफान की तरह उठीं और अपना प्रयोजन पूरा करने के उपरान्त ही रुकीं। इस महत कार्य के लिए संकल्पवान परिजनों के उठ खड़े होने भर की देर है। संकल्प की शक्ति महान है। यह एक सुनिश्चित तथ्य है कि जो भी अपने संकल्प के प्रति सच्चा होगा और उसके प्रति निष्ठा, लगन, परिश्रम का परिचय देगा, वह सीमाबद्ध होकर नहीं रह सकता। प्रबल प्रेरणा अपने सम्पर्क क्षेत्र को प्रभावित करती और अनुयाई बनाती रहती है। प्रबल मन और कर्म का एकीकरण करने के उपरान्त चोर, लबार, व्यभिचारी, शराबी, जुआरी, दुर्व्यसनी अपना गिरोह बनाते और परम्परा चलाने में सफल होते रहते हैं, तो कोई कारण नहीं कि प्राणवान, निष्ठावान और संकल्पवानों को सीमाबद्ध होकर न रहना पड़े। वंश वृद्धि की तरह विचार विस्तार का भी अपना क्षेत्र है और उसमें भी एक से अनेक होने की सृष्टा के मूल संकल्प की तरह परिपूर्ण गुंजाइश है।

स्वाध्याय मण्डल प्रक्रिया के विस्तार की बात सोचनी हो तो उसके लिए पूरी-पूरी गुंजायश विद्यमान है। बीस लाख प्रज्ञा परिजनों में से सौ के पीछे एक भी प्रज्ञा पुत्र स्तर का हो और वह मात्र एक स्वाध्याय मण्डल बनाता चले तो बीस हजार मण्डल बन सकते हैं। प्रत्येक के तीस सदस्य होने पर उस पुण्य-प्रयोजन में निरत व्यक्तियों की संख्या छह करोड़ हो जाती है। इतने व्यक्ति एक से पाँच वाली छलाँग मात्र तीन बार लगा दें तो उसकी लपेट में संसार भर में बसने वाला ४५० करोड़ मनुष्यों का समुदाय सरलतापूर्वक आबद्ध हो सकता है। स्वाध्याय एक व्यक्ति तक सीमित हो तो वह नगण्य हो सकता है पर यदि उसके साथ एक से पाँच के विस्तार वाली चक्रवृद्धि प्रक्रिया जुड़ जाती है, तो समझना चाहिए कि अपनी उपयोगिता और वरीयता के कारण उसको विश्वव्यापी बनाने की पूरी-पूरी सम्भावना विद्यमान है। आरम्भ में ही प्रयास लड़खड़ा जाय और होली की आग बुझ जाय तो निराशा का अवसर आ सकता है।

स्मरण रहे बात भजन-पूजन की तरह स्वाध्याय के रूप में पन्ने उलट देने की चिह्न-पूजा कर देने जैसी नहीं है। इसके पीछे पढ़ने वाले को झकझोर डालने वाले और उठाकर खड़ा कर देने वाले प्रभातकाल जैसी ऊर्जा एवं प्रेरणा भरी पड़ी है। जो प्रज्ञा साहित्य नियमित रूप से पढ़ेगा वह कुछ नये ढंग से सोचेगा और अन्ततः "हम बदलेंगे के साथ-साथ युग बदलेगा" की भूमिका निभाते हुए भी दृष्टिगोचर होगा। उसी विचारणा को जीवन्त कहा जा सकता है, जो कार्य रूप में विकसित हो। बीज वही सराहनीय है जो अंकुरित होने का समय आने पर अपने जीवित होने का प्रमाण प्रस्तुत करे। युगान्तरीय चेतना इस दृष्टि से प्राथमिक परीक्षा में उत्तीर्ण हो चुकी है। एक बीज ने गलकर जिस वृक्ष के रूप में विकास किया है, उससे उत्पन्न हुई फसल को बीस लाख दानों के रूप में अँगुलियों पर गिना जा सकता है। प्रज्ञा परिवार के वर्तमान बीस लाख सदस्य इस बात के साक्षी हैं कि उन्हें युग साहित्य के माध्यम से मिलने वाली ऊर्जा ने कितना नरम-गरम किया है और बदलकर कहाँ से कहाँ ला टिकाया है। इतनी साक्षियों पर किसी को विश्वास हो सके तो उसे यह भी अनुभव करना चाहिए कि प्रज्ञा साहित्य के स्वाध्याय का प्रचलन यदि छोटे श्रीगणेश से आरम्भ होकर क्रमशः अधिकाधिक व्यापक और विस्तृत होता चला गया तो उसकी क्या परिणति हो सकती है। सृष्टा के **'एकोऽहं बहुस्याम'** संकल्प की ही तरह वंश वृद्धि की सर्वत्र दीख पड़ने वाली प्रक्रिया विचार-विस्तार पर भी लागू हुए बिना रह नहीं सकती। शर्त एक ही है कि उसके मूल में तथ्य एवं सत्य हो और ज्वलन्त करने के लिए प्राणवान ऊर्जा स्रोत व्यक्तित्व। स्वाध्याय मण्डलों की स्थापना के पीछे वह सभी आधार विद्यमान हैं।

देर श्रीगणेश भर की है। देरी बिगुल बजाने वालों की है। समय की माँग, मानवी गरिमा की गुहार, एक सुसज्जित सेना की तरह कमर बाँधे खड़ी है। उसे प्रयाण का आदेश मिलने भर की देर है। चतुरंगिणी कहाँ से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कहाँ जा पहुँचेगी और क्या से क्या कर गुजरेगी ? इसे अपनी यही आँखें देख और उन दृश्यों को जादू चमत्कार जैसा अनुभव कर सकती हैं। स्वाध्याय मण्डलों की स्थापना का छोटा काम इसी दृष्टि से प्रज्ञा परिजनों को सौंपा गया है कि इसे एक कल्पवृक्ष उद्यान का बीजारोपण मानकर उसे सरलतापूर्वक सम्पन्न कर सकें और नव सृजन में अपनी भागीदारी का एक ऐतिहासिक अध्ययन पूरा कर सकें।

स्वाध्याय मण्डल—छोटे प्रज्ञा संस्थान

प्रज्ञा संस्थान २४०० से बढ़कर अब २४००० से अधिक जा पहुँचे। प्रज्ञा परिवार की असंख्य आत्मायें ऐसी हैं, जो इमारत बनाने के लिए आवश्यक सहयोग एवं साधन उपलब्ध न कर सकीं। एकाकी प्रयत्नों से वह प्रक्रिया बन नहीं पड़ रही थी। इस असमंजस को दूर करने के लिए असंख्य प्रज्ञा-पुत्रों ने अपने पुरुषार्थ से कोई चिरस्मरणीय संरचना खड़ी कर सकने की दृष्टि से इस वर्ष स्वाध्याय मण्डलों की स्थापना का अभियान चलाया है। इसे प्रकारान्तर से बिना इमारत वाले, बिना प्रतिमा वाले प्रज्ञा संस्थान ही कहना चाहिए, क्योंकि उत्तरदायित्व तो उन्हें भी छोटे रूप में वही निभाने होंगे, जिन्हें बड़े शक्तिपीठों, प्रज्ञापीठों को निभाने के लिए आरम्भ में ही कहा गया था और अब भी कहा जा रहा है।

युग सन्धि की इस विषम वेला में २४ हजार स्वाध्याय मण्डलों की स्थापना का लक्ष्य रखा गया है। इस छोटे सृजन को कोई भी भावनाशील प्रज्ञा-पुत्र सहज ही अपने एकाकी बलबूते सम्पन्न कर सकता है। उसके साथ जुड़े हुए उत्तरदायित्वों को बिना किसी कठिनाई के भली प्रकार वहन कर सकता है। यह प्रत्येक जागृत आत्मा की प्रतिभा, प्रखरता को परखने की कसौटी भी है, जिसमें जाँच-पड़ताल की जाती है कि क्या वह प्रवाह के साथ बहने वाला तिनका मात्र है या उसमें निज का भी कुछ दम-खम है। समूह में कुछ पता नहीं चलता। गधे घोड़े सब एक पंक्ति में चलते हैं पर जब उन्हें अलग से घुड़दौड़ में अपनी-अपनी विशेषता दिखाने का अवसर मिलता है तो विदित होता है कि कौन कितने पानी में है ? व्यक्तिगत प्रतिभा और वरीयता समूह में प्राय: प्रकट ही नहीं हो पाती है और सफलता का श्रेय प्राय: सभी में बँट जाता है।

· **बिना इमारत के प्रज्ञा संस्थान**—स्वाध्याय मण्डल बनाने और चलाने में लगन, सेवा और तत्परता की दृष्टि से इस विभेद को स्पष्ट करके रख देते हैं। "एकला चलो रे ....." रबीन्द्र का उद्‌बोधन ऐसे अवसरों पर न केवल साहस प्रदान करता है वरन् आत्मविश्वास भी उत्पन्न करता है। सृजन का शुभारम्भ और उसको पूर्णता तक पहुँचाने वाला संकल्पवान प्रयास ही मानवी प्रतिभा का मापदण्ड है। संकल्प तभी सार्थक है, जब स्वयं प्रज्ञा परिजन स्वाध्याय के प्रति उत्साह दिखायें। अपना व्रत निभाने पर ही दूसरों पर प्रभाव डालने वाला आत्मबल उभरता है और वाणी प्रभाव की क्षमता निखरती है। अपने सम्पर्क क्षेत्र से चार ऐसे व्यक्ति ढूँढ़ निकालना तब कोई कठिन कार्य नहीं जो मण्डल की नैष्ठिक सदस्यता के लिए सहमत हो जायें। इतना भर हो गया तो समझा जा सकता है कि प्रारम्भिक गठनपूर्ण हो गया।

आरम्भ में इस समुदाय को पिछली अखण्ड ज्योति, प्रज्ञा अभियान, युग निर्माण आदि पत्रिकाओं से भी स्वाध्याय शुभारम्भ कराया जा सकता है। कुछ न कुछ पुस्तकें भी युग साहित्य की पास में हो सकती हैं या अन्यान्यों से माँगी जा सकती हैं। इन्हें अदल-बदल कर पढ़ते रहने का नियमित क्रम चल पड़े तो समझना चाहिए कि स्वाध्याय मण्डल का उपक्रम ढर्रे पर चल पड़ा परन्तु यह स्थाई व्यवस्था तो नहीं हुई। इसके लिए खरीदने का खर्च भी उठाना पड़ेगा। इसकी व्यवस्था ठीक इसी प्रकार हो सकती है कि मण्डल के सूत्रधार पाँच नैष्ठिक सदस्य अपने-अपने ज्ञानघट रखें और उसमें दैनिक अनुदान जमा करें। पचास वर्ष पूर्व जब युग निर्माण योजना का प्रारम्भ हुआ था। उसमें परिजनों की सदस्यता शुल्क 'दस पैसा' और एक घण्टा समय नित्य देते रहने की शर्त लगी थी। ईमानदार सदस्य तब से लेकर अब तक उस शपथ का निर्वाह भी करते आ रहे हैं। आस्था विहीनों की बात दूसरी है, जिन्हें स्वार्थ भर याद रहता है, कर्त्तव्य चुटकी बजाते विस्मृत हो जाता है। अब पचास वर्ष मँहगाई कहाँ से कहाँ पहुँची, अखण्ड ज्योति का चन्दा पचास वर्ष पूर्व डेढ़ रुपया वार्षिक था, अब कई गुना अधिक है। उसमें भी घाटा पड़ता है। ऐसी दशा में ज्ञानघट की राशि दस पैसा से बढ़ाकर बीस पैसा कर दी गई तो उसे भी वहन किया जाना चाहिए। स्वाध्याय मण्डलों के नैष्ठिक पाँच सदस्य अपने ज्ञानघटों में बीस-बीस पैसा नित्य डालें तो महीने में तीस रुपये बन जायेंगे। इतने में तीस सदस्यों को एक पौष्टिक आध्यात्मिक भोजन नियमित रूप से अच्छे जलपान की तरह मिलना आरम्भ हो जायगा। भूख बढ़ेगी तो उसका भी प्रबन्ध होगा, पर आरम्भिक ढर्रा घुमाने के लिए मण्डल की आरम्भिक व्यवस्था पाँच ज्ञानघटों की राशि से ही हो सकती है और एक सुनियोजित रचनात्मक कार्य सुव्यवस्थित रूप से चलता रह सकता है।

स्वाध्याय मण्डलों की प्रज्ञा संस्थानों के रूप में भूमिका इससे आगे की बात है। बिना इमारत के प्रज्ञा संस्थानों के रूप में इन्हें एक प्रकार के छोटे ट्रस्ट ही कहा जा सकता है। अतएव छोटे रूप में उत्तरदायित्व भी उनके वही हैं, जो बड़ों के लिए, बड़े रूप में, बड़े क्षेत्र में निर्धारित किये गये हैं। पाँच नैष्ठिक सदस्य एक प्रकार से ट्रस्टी हैं। सूत्र संचालक, कार्यवाहक मैनेजिंग ट्रस्टी, अध्यक्ष वह है, जिसने मण्डल का शुभारम्भ किया और अपने को अग्रिम मोर्चे पर खड़ा करके सहयोगियों का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक परिवार सँजोया। सूर्य ने भी यही किया है। उसका सम्बन्ध नवग्रहों से है। इन ग्रहों के अपने-अपने चन्द्रमा हैं। इसी प्रकार स्वाध्याय मण्डल को एक-एक सौर परिवार और अनु सदस्यों को उपग्रह कहा जा सकता है। संस्थापक को इस परिवार का सूर्य कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

प्रज्ञा-संस्थानों का प्रथम कार्य अपने क्षेत्र के हर शिक्षित को घर बैठे नियमित रूप से प्रज्ञा साहित्य पढ़ाने, वापस लेने के लिए ज्ञानरथ चलाना है। अन्य चार निर्धारण इसके बाद के हैं। स्वाध्याय मण्डलों को भी उसी विधा को अपनाने के लिए कहा गया है। संस्थापक को स्वाध्याय की नियमितता शपथपूर्वक मुख्यमन्त्री, प्रधानमन्त्री की तरह निभानी होती है। पाँच सदस्यों वाला मंत्रिमण्डल वैसा ही व्रत ग्रहण करता है। आधार स्तम्भों का यह समुच्च्य संकल्प का निर्वाह करेगा तो ही उनसे सम्बन्धित अन्य पाँच-पाँच सदस्य भी उस अनुबन्ध का निर्वाह करेंगे। जड़ें ही सूखें तो फिर टहनियों और पल्लवों का ईश्वर ही रक्षक है। प्रज्ञा अभियान का मेरुदण्ड स्वाध्याय है। यह व्यवस्था न चले तो समझना चाहिए बिना मेरुदण्ड का शरीर अधर में लटका है। स्वाध्याय मण्डल छोटे हैं तो क्या, इस प्रथम प्रयास से, अपनी छोटी परिधि के अन्तर्गत, इस अनुबंन्ध का प्रतिपालन नियमित रूप से चलाने की परिपूर्ण तत्परता बरतनी होगी।

दूसरे, तीसरे, चौथे कार्यक्रमों का रास्ता सभी के लिए खुला है। दूसरा चरण सत्संग है, तीसरा संगठन। छोटे रूप में यह जन्म दिवसोत्सवों की प्रक्रिया अपनाने पर सहज ही चल पड़ेगी। इन छोटे आयोजनों में सत्संग तो प्रमुख हैं ही, साथ ही एक विचारधारा के लोग, जब एक उद्देश्य से, एक जगह एकत्रित होते हैं तो सहज ही संगठन बनने लगता है। स्वाध्याय मण्डलों को प्रज्ञा साहित्य के पठन, श्रवण का क्रम चलाने के साथ ही सदस्यों अनुसदस्यों के जन्म दिवसोत्सव मनाने की सत्संग प्रक्रिया को भी इसी उत्साह से सम्पन्न करना चाहिए। यदि अपने ही मण्डल को लिया जाय एवं तीस सदस्यों के बारह महीनों में तीस जन्म दिवसोत्सव मानें तो एक महीने में औसतन ढाई की बात बनती है। इतने प्रयोजन होते रहें सदस्यगण, एक-दूसरे के घरों पर पहुँचते रहें तो आत्मीयता निश्चित रूप से बढ़ेगी और घनिष्ठता का, संगठन का वातावरण बनता चला जायेगा। फिर हर जन्म दिवसोत्सव में मित्र, पड़ौसियों, स्वजन सम्बन्धियों को बुलाने का भी तो उपक्रम चलता है। इस प्रकार सदस्य और सम्पर्क वाले मिलकर सहज ही पचास-सौ का समुदाय बन जाता है, इसमें सत्संग प्रक्रिया भली प्रकार चलती रह सकती है। गायत्री यज्ञ एवं जन्मदिन का धार्मिक कर्मकाण्ड तो होगा ही साथ ही स्थानीय लोगों के संगीत प्रवचन भी होते रहें, तो उपस्थित लोगों को मिशन के सम्बन्ध में अधिकाधिक जानने, सम्पर्क में आने और लाभ लेने का अवसर मिलेगा। यदि टेररिकार्डर की व्यवस्था हो तो शान्तिकुंज से प्रेषित युग संगीत एवं पूज्य गुरुदेव के प्रवचन भी सुनाये जा सकते हैं। प्रज्ञा साहित्य का कोई अंश भी पढ़कर सुना सकते हैं।

यह एक सुविदित तथ्य है कि—प्रज्ञा-संस्थानों की इमारतों में प्रतिमाओं पर हजारों-लाखों का धन लगा है। स्वाध्याय मण्डल यदि पाँच नैष्ठिक सदस्यों के ज्ञानघटों से ही अपनी अर्थव्यवस्था चलाने भर में समर्थ हो तब तो उनसे कुछ कहना नहीं। विवशता में इतना ही बहुत है किन्तु यदि उनमें से कोई प्रतिभावान हो, तो थोड़ी और अर्थव्यवस्था जुटायें और वे उपकरण एकत्रित करें, जो लागत में स्वल्प होते हुए भी लोकमानस के परिष्कार में नितान्त आवश्यक हैं। उन्हें प्रज्ञा अभियान की आलोक वितरण योजना का अविछिन्न अंग माना गया है। यह चार उपकरण हैं—(१) ज्ञानरथ, (२) स्लाइड प्रोजेक्टर, (३) टेपरिकार्डर, (४) लाउडस्पीकर। यह चारों ही प्रायः समान मूल्य के हैं और कुल मिलाकर तीन हजार में भली प्रकार उपलब्ध हो जाते हैं। औसतन एक-एक के लिए सात सौ के करीब लागत आती है। उन्हें एक-एक करके या एक साथ खरीदने की जितनी अर्थव्यवस्था की आवश्यकता पड़ती है, वह ऐसी नहीं है जिन्हें मिल-जुलकर तीस व्यक्तियों का परिवार एक ही साथ उत्साह भरी उमंग में पूरा न कर सके। डेढ़ तोले सोने जितनी राशि को एक सामान्य व्यक्ति भी विवाह-शादियों की आवश्यकता पूरी करने की तरह अकेला ही प्रबन्ध कर सकता है फिर कोई कारण नहीं कि तीस में से किन्हीं दो-चार में भी भावना और उदारता जैसा तत्व विद्यमान हों तो इतने छोटे प्रबन्ध के लिए बगलें झाँकनी पड़ें, आशा की जानी चाहिए कि प्रज्ञा संस्थान की इमारत न बन सकने पर भी उसकी आत्मा का छोटा संस्करण उपरोक्त चार उपकरणों के रूप में प्रत्येक जीवन्त स्वाध्याय मण्डल देर-सबेर में अवश्य ही उपलब्ध कर लेगा। प्रज्ञा साहित्य पिछले दिनों ढेरों छपा है। हर महीने नया भी छपता रहता है। इसमें से किस क्रम से किसे मँगाया जाय ? इस झंझट में न पड़कर उचित यही है कि गायत्री तपोभूमि मथुरा के पते पर यह लिख भेजा जाय कि अपने पास इस समय क्या साहित्य है ? उस सूची को देखकर शेष प्रकाशन मथुरा से स्वयं ही इस प्रकार भेजा जाता रहेगा कि सदस्यों को उपयुक्त ढंग से क्रमबद्ध पठन-श्रवण की सुनिश्चित सुविधा मिलती रहे। स्वयं चुनाव के झंझट में न पड़कर यह कार्य गायत्री तपोभूमि को सुपुर्द करके स्वयं निश्चिन्त हो जाना चाहिए। वहाँ यह विशेष प्रबन्ध किया गया है कि तीस रुपये मिलने पर पुस्तकों को जो रजिस्ट्री पार्सल भेजा जाय उस पर डाक खर्च मथुरा से ही कमीशन के रूप में लगा दिया जाय करे और तीस रुपये की पुस्तकें बिना किसी आन्तरिक खर्च के घर बैठे पहुँच जाया करें।

मिशन को अगले दिनों निरक्षरता, गरीबी, रुग्णता जैसी विपन्नताओं से निपटना है। संकीर्ण स्वार्थपरता,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विलासिता, अहमन्यता के कुचक्र के दल-दल में फँसी हुई जनचेतना को उबारना है। अपराधों और आक्रमणों का आतंक समाप्त करना है। अवांछनीयता, अनैतिकता, मूढ़ मान्यता, अन्ध परम्परा का चक्रव्यूह बिदारना है। यह सुधार के निमित्त भट्टी गरम करने और अनुपयुक्त प्रचलनों को गलाने वाला पक्ष हुआ। इसी सामग्री से नये ढाँचे में ढलाई भी तो करनी है। नये युग का, नये समाज का, नये मानव का, नये दृष्टिकोण का ऐसा निर्माण भी करना है, जिसे युग निर्माण कहा जा सके। उत्कृष्ट चिन्तन, आदर्श चरित्र, नीतियुक्त व्यवहार और क्षतिपूर्ति कर सकने वाला बहुमुखी सृजन कार्य, जैसी अनेकानेक आवश्यकताओं को भी तो पूरा करना है। आपरेशन से मवाद निकाल देना ही नहीं, घाव को सही ढंग से भर देना भी चिकित्सक का उत्तरदायित्व है। समग्र परिवर्तन में समर्थ विचार क्रान्ति का शुभारम्भ स्वाध्याय मण्डलों की स्थापना के साथ नये सिरे से, नये रूप में किया जा रहा है। समझना चाहिए कि अंकुर फूटेंगे, पौधे लहलहायेंगे, छायादार वृक्ष बनेंगे, फल-फूलों से लदेंगे। स्वाध्याय मण्डलों का श्रीगणेश व्यक्ति निर्माण, परिवार निर्माण और समाज निर्माण के रूप में दृष्टिगोचर होगा। जागृत युग चेतना उन अनेकानेक कार्यक्रमों को हाथ में लेगी और पूरा करके दम लेगी जो उज्ज्वल भविष्य की संरचना के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक है। प्रज्ञा अभियान के संचालकों ने स्वाध्याय मण्डलों की स्थापना के साथ ऐसे ही सपने सँजोये और संकल्प किये हैं। उनके पूरा होने की प्रतीक्षा-अपेक्षा वे सभी लोग कर सकते हैं, जिन्हें इस मिशन के पीछे स्रष्टा की महती प्रेरणा और योजना होने जैसा विश्वास है। संचालकों ने इसी कारण इस वर्ष स्वाध्याय मण्डलों को प्रज्ञा-संस्थानों के समतुल्य महत्त्वपूर्ण माना है क्योंकि छोटे होते हुए भी उद्देश्य और कार्यक्रम की दृष्टि से बड़े प्रज्ञा-संस्थानों से बढ़कर ही है। एकाकी प्रयत्न से बन पड़ने तथा किन्हीं थोड़ों के परिपूर्ण उत्तरदायित्वों एवं मनायोग के द्वारा चलाये जाने के कारण उनका महत्त्व किसी भी प्रकार कम नहीं आँका जायगा। स्वाध्याय मण्डलों की स्थापना जो लक्ष्य है, उसे पूरा करने के लिए सभी प्राणवान प्रज्ञापुत्रों से विशेष आग्रह भरा अनुरोध किया गया है कि वे इस उत्तरदायित्वों को निभाने के लिए आगे आयें और अपने क्षेत्र में ऐसी स्थापनायें करने के लिए परिव्राजकों की तरह परिभ्रमण करें, अलख जगायें और हजारी किसान का उदाहरण प्रस्तुत करें।

सद्ज्ञान का आलोक सर्वत्र फैले

जीवनोपयोगी व्यावहारिक ज्ञान की कमी और तद्विषयक प्रामाणिक साहित्य की कमी, शिक्षित समुदाय का अनुपात मात्र ३० प्रतिशत एवं जनसाधारण में सुरुचि पूर्ण साहित्य पढ़ने के अनुत्साह जैसे कारणों से एक बड़ी कठिनाई आज हम सबके समक्ष है कि आसन्न समस्याओं का समाधान कहाँ से किस प्रकार उपलब्ध हो ? देशवासियों की आर्थिक स्थिति भी ऐसी नहीं है कि ऐसा साहित्य लगातार ज्ञान वृद्धि के लिए खरीदते रहा जाय। फिर एक और कठिनाई है कि इस किस्म का प्रामाणिक साहित्य जहाँ से उचित मूल्य पर मिल सके, ऐसे प्रकाशकों का भी कुछ अता-पता नहीं है, है भी कि नहीं, यह भी संदिग्ध है।

प्रामाणिक पुस्तकें अध्ययन, अनुभव, तथ्यों एवं मंथन के बिना लिखी नहीं जा सकती हैं। इसके लिए गम्भीर ज्ञानवानों की कलम उठनी चाहिए। पर इन दिनों हो यह रहा है कि मुंशी लोग जिस-तिस की किताबों का कतर-ब्योंत करके शब्दों में तनिक-सी इधर-उधर की हेरा-फेरी करके अपने नाम से भड़कीले हैडिंगों वाली किताबें लिख देते हैं। घास-कूड़ा बेचने वाले छापते और जिस-तिस भाव उन्हें बेचते-खोंचते रहते हैं। मूल्यों का कोई स्तर नहीं। एक रुपया लागत की किताब का दस रुपया मूल्य छापने और आठ रुपया कमीशन दे देने में उन्हें कोई हिचक नहीं होती। आखिर विक्रेता को भी तो ग्राहक पटाना पड़ता है। सरकारी लाइब्रेरियों में माल खपाने वालों को दस जगह भेंट-पूजा चढ़ानी पड़ती है। ऐसी दशा में जीवनोपयोगी साहित्य इन दिनों तलाश कर पाना और उसे उचित मूल्य पर हस्तगत कर सकना नितान्त कठिन है। इस अभाव की पूर्ति के लिए बालू में से तेल निकालना पड़ेगा। आज पाठक को जो मिलता है, वह अँग्रेजी का भोंड़ा अनुवाद होता है। पाश्चात्य चिन्तन और परिस्थितियों का भारत की स्थिति के साथ बहुत कम ताल-मेल बैठता है। इसलिए इस आधार पर कोई पाठक अपनी ज्ञान वृद्धि करना चाहें, तो उसके लिए बहुत कठिन है। पुस्तक विक्रेताओं की दुकानों में ८० प्रतिशत बाजारू उपन्यास भरे रहते हैं। शेष २० प्रतिशत में भी ऐसा कचरा होता है, जिसे दिनभर छाँटते रहने पर कदाचित कोई एकाध पुस्तक काम की मिले।

इन्हीं परिस्थितियों में रहते हुए हमें छात्र-छात्राओं के लिए मार्गदर्शक साहित्य खोजना पड़ेगा। न केवल उनके लिए वरन् उनके अभिभावकों के लिए भी क्योंकि शिक्षण सम्बन्धी नीति-निर्धारण करने और व्यवस्था बनाने में बच्चे ही अपनी मनमर्जी से सब कुछ निर्णय नहीं कर लेते। अभिभावकों की सलाह का भी उसमें काफी योगदान रहता है। दोनों पक्षों के बीच मतभेदों के रहने पर गाड़ी एक पटरी पर नहीं लुढ़क सकती।

स्कूली पाठ्यक्रम में आकाश-पाताल की भरमार रहती है। इतिहास, भूगोल, विज्ञान के वे पक्ष उनमें होता है, जो परीक्षा की उत्तर पुस्तिकाओं मे रट-रटकर लिख देने के उपरान्त कदाचित ही जीवन में कभी काम आते हों। नृत्य, संगीत, वादन में कोई छात्रा कितनी ही प्रवीण क्यों न हो, विवाह के एक वर्ष बाद उस प्रवीणता को निरर्थक समझकर पूरी तरह भुला दिया जाता है। अन्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषयों के सम्बन्ध में भी यही बात है। मनोविज्ञान में एम. ए. कर लेने वाली लड़की को इतना भी नहीं आता कि देवरानी-जिठानी, सास-बहू तो दूर बच्चों से आए दिन होती रहने वाली खटपट का हल निकाल सकें। लड़कों की स्थिति और भी दयनीय होती है। विषय रुचिकर न होने से वे मन लगाकर पढ़ते तो हैं नहीं। उत्तर लिखते समय सौ तरह की तिकड़म भिड़ाकर पास होने का जादू चमत्कार दिखाने में सारी अक्ल लगा देते हैं और कम चलाऊ नम्बर किसी प्रकार प्राप्त कर लेते हैं।

उन्हें रेल के टिकट में, रिजर्वेशन में उलट-बदल कराने भेजा जाय तो वे न करा सकेंगे। घर की दुकान का, सेल्स टैक्स-इनकम टैक्स का कागज बनाने को कहा जाय तो मुनीम के सामने दाँत निपोरेंगे। कहने को ग्रेजुएट हैं, पी-एच. डी. हैं पर पत्नी की डिलीवरी के समय अस्पताल भर्ती कराने की स्वयं हिम्मत न पड़ेगी। कारण कि जो कुछ सीखा है, हवाई सीखा है। उसका चौथाई भी ऐसा नहीं है, जो अपने या परिवार के किसी काम आ सके। नौकरी न मिले तो उस पढ़ाई के सहारे पेट भरने के लिए दूसरा कोई हल सोच सकें।

ऐसी दशा में हमें यह मानकर चलना होगा कि जीवनोपयोगी ज्ञान के लिए स्कूली पाठ्यक्रम पर निर्भर नहीं रहा जा सकता, इसके लिए उस आधार पर कुछ सोचना पड़ेगा जैसा विदेशों में होता है। वहाँ हर विषय के पार्टटाइम स्कूल निजी आधार पर चलते हैं। जिस-जिस विषय में प्रवीण बनना होता है, वे उस विषय का साहित्य पढ़ते शिक्षण पाते और प्रत्यक्ष अनुभव से लाभान्वित होते हैं। यही है वहाँ के ज्ञानसंवर्द्धन का स्रोत, जिसके आधार पर व्यवहार बुद्धि विकसित करते हैं और जीवन में जिस विषय में आगे बढ़ना चाहते हैं, उसके सम्बन्ध में सुनिश्चित आधार पर प्राप्त कर लेते हैं। छात्राएँ विवाह से पूर्व ही यौन शिक्षा, दाम्पत्य जीवन और शिशु रक्षण की समूची प्रक्रिया आद्योपान्त सहायक स्कूलों में सीख लेती हैं, जबकि यहाँ पर नाल काटने तक के लिए महतरानियों पर निर्भर रहना पड़ता है। उसके बाद बच्चे की देखभाल की बात तो नितान्त अलग है।

स्वास्थ्य, कचहरी, व्यवसाय, रिश्तें, मकान, टूट-फूट, झगड़े, झंझट, दोस्ती, दुश्मनी जैसे दैनिक कामों की जानकारी देने वाला जहाँ कोई नहीं, दाम्पत्य जीवन के लिए विष की बुझी कटारी जैसे कोकशास्त्र जहाँ उपलब्ध है, वहाँ किसी सुशिक्षित से भी अनपढ़ जैसी व्यवहार-कुशलता की आशा नहीं की जा सकती। इस कमी की पूर्ति कौन करे ? अन्यान्य विषयों में प्रवीणता प्राप्त कर सकने वाले अमेरिका जैसे पार्टटाइम विद्यालयों की तो आशा की ही कैसे जाय ? अपने देश में वर्तमान स्थिति को देखते हुए इतना ही हो सकता है कि जहाँ स्कूली छात्रावास हो, वहाँ समीपवर्ती किसी स्थान में व्यावहारिक जीवन के हर पक्ष की शिक्षा देने वाले पुस्तकालय विचारशील लोकसेवियों द्वारा स्थापित किए जायें, क्रम व्यवस्था के अनुरूप पढ़ने देने और वापस लेने का सिलसिला चलाया जाय। साथ ही निर्धारित विषयों के शंका समाधान, प्रश्नोत्तर का भी प्रबन्ध बनता चले। जो जिस विषय के जानकार हों, वे सप्ताह में एक या दो दिन मौखिक शिक्षण भी दिया करें। अनुभव प्राप्त करने का कोई प्रत्यक्ष आधार भी खड़ा हो सकता है, जैसे—ड्रामा, डाइलाग, चित्र-स्लाइड आदि द्वारा विषयों को घटना या दृश्यों के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता हो तो और भी अच्छा रहे।

चूँकि अपने देश में इस विषय में तनिक भी उत्साह नहीं है, जो छात्र-छात्रा, युवक-युवती अभिभावक तथा अन्यान्य व्यावहारिक जीवन की कुशलता-सफलता में रुचि लेते हों, उन्हें ढूँढ़ा एवं तद्विषयक नवस्थापित पुस्तकालय का सदस्य बनाया जाय। सबसे बड़ी बात है महत्त्व समझना और रुचि जगाना। यह कार्य भी ऐसा नहीं है, जो चिन्ह-पूजा या लकीर पीटने से पूरा हो जाय। इसके लिए संस्थापकों में इतनी लगन होनी चाहिए, मानो वे सरकारी स्कूल का पूरक समतुल्य विद्यालय चला रहे हैं। कर्मकाण्ड भर निभा रहे हैं।

व्यावहारिक जीवन से सम्बन्धित कितने विषय हो सकते हैं, इसकी लम्बी सूची विचारशील लोग मिल बैठ कर बना सकते हैं। इसके उपरान्त यह खोजना पड़ेगा कि इन विषयों की प्रामाणिक पुस्तकें किसने लिखीं ? कहाँ छपी है और कहाँ मिलती हैं ? सारी पुस्तकें एक जगह मिलना कठिन है। नाम देखकर नहीं पाठ्य सामग्री पर नजर डालने के उपरान्त ही ऐसा ज्ञान हो सकता है। इसमें भाग-दौड़ करनी पड़े या पोस्टेज देना पड़े तो भी उसे करना चाहिए। झंझट बचाने के लिए किसी विक्रेता को यह काम सौंप दिया जाय तो निश्चय ही कबाड़ा हाथ लगेगा और मूल्य को आधार मानकर कई गुना मूल्य अधिक उस कचरे के लिए देना पड़ेगा।

इस व्यावहारिक जीवन पुस्तकालय योजना को सरकारी शिक्षा की पूरक समानान्तर योजना कहना चाहिए। इसके लिए हर स्थान पर पाँच हजार रुपया बजट मान कर स्थापना की जानी चाहिए। एक पुस्तक की कई-कई प्रतियाँ रखे जाने पर इससे कम में इतना सामान इकट्ठा न हो सकेगा कि एक बार में एक कक्षा के सभी छात्रों को एक विषय की पुस्तकें देकर उन्हें पूछने-पढ़ाने का क्रम चल सके।

विद्यालयों की स्थापना में, उनका सरंजाम जुटाने में सहज ही लाखों की राशि खर्च हो जाती है। इस समानान्तर योजना के लिए पाँच हजार से भी कम क्या काम चलेगा ? वैतनिक अध्यापकों की नियुक्ति और उनकी पूर्ति के लिए छात्रों से फीस लेने का क्रम विदेशों में चलता है। पर अपने यहाँ तो समय दान माँगकर ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अध्यापकों की कृपा के बलबूते आरम्भिक गाड़ी धकेलनी पड़ेगी। यहाँ तक कि नियमित रूप से पढ़ने वाले छात्र-छात्रा भी खुशामद-बरामद करके ही इकट्ठे करने पड़ेंगे।

इन पुस्तकों की सप्लाई करने वाली एक एजेन्सी स्थापित कर ली जाय, तो इससे वस्तुओं के उचित मूल्य पर प्राप्त होते रहने की सुविधा रहेगी। अच्छा तो यह होता कि इस प्रकाशन के लिए दस लाख की पूँजी का कहीं से प्रबन्ध कर लिया जाय, तो पुस्तकें सस्ती भी पड़ेगीं और जो मूलधन लगा है, उसका ब्याज भी निकलता रहेगा। फिर लेखन का कार्य जो लोग करेंगे, उन्हें आजीविका भी प्राप्त होती रहेगी।

व्यावहारिक जीवन में सर्वप्रथम तो वे ही विषय आते हैं, जो रोजमर्रा के जीवन में काम आते हैं। पर मनुष्य जीवन इतना ही सीमित नहीं है। हम जिस समाज में रहते हैं, उसकी भी अनेकानेक गुत्थियाँ ऐसी हैं, जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हमारे ऊपर असर डालती हैं। मान्यताएँ, आस्थाएँ, भावनाएँ, कामनाएँ, आकांक्षाएँ, प्रथाएँ, परम्पराएँ आदि का सम्मिलित स्वरूप दर्शन कहलाता है। दर्शन अन्तरंग को प्रेरित और प्रभावित करता है। गति विधियों का प्रवाह इसके उपरान्त ही बनता है कुछ राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ भी ऐसी हैं, जो अनसुलझी पड़ी रहें, अबकी अपेक्षा अधिक उलझती चली जायें तो ऐसे तूफान खड़े कर सकती हैं, जो चैन से बैठने की इच्छा करने और भलमनसाहत निभाने वालों को भी दिन नहीं काटने देती। इसीलिए जैसे-जैसे छात्रों का, नर-नारियों का बौद्धिक स्तर चौड़ा होता जाय, उस अनुपात से उन्हें वे जानकारियाँ भी देनी चाहिए जो न केवल उन्हें वरन् समूचे समाज को, समूचे संसार को प्रभावित करती हैं। दुनिया अब अधिकाधिक विस्तृत होती जाती है। उसमें हमारी भावी पीढ़ियाँ भी सम्मिलित होती जा रही हैं। उत्तराधिकारियों के लिए दौलत छोड़कर मरने की अपेक्षा यह ज्यादा अच्छा है कि हम उनके लिए सुलझा हुआ मार्ग और सुख-शान्ति से भरा पूरा संसार छोड़कर जायें।

शिक्षा मनुष्य जीवन का प्राण है। मनुष्य का चिन्तन, चरित्र और व्यवहार बहुत कुछ इसी पर निर्भर है। अगले दिनों का भविष्य बना हुआ नहीं है। वह गढ़ा और बनाया जाना है। इसके लिए दौलत, वैभव, साधन नहीं वरन् चेतना को ढालने वाला ज्ञान ही आधारभूत होगा। आज के मनीषियों का कर्त्तव्य है कि वे सबसे प्रथम शिक्षा की दिशा में उन्मुख हो रही नई पीढ़ी को प्रकाश प्रदान करें और साथ ही यह आशा रखें कि उनके द्वारा बिना पढ़ों तक भी वह आलोक पहुँचेगा। सूर्य से प्राणी मात्र को ऊर्जा मिलती है। सामयिक सद्ज्ञान से सभी का भला होगा, यह मंगल कामना हमें रखनी चाहिए।

सद्ज्ञान संवर्द्धन ही स्थाई समाधान

जीवन विज्ञान के क्षेत्र में पढ़े और बिना पढ़े-शहरी और देहाती सभी वर्ग के लोग एक प्रकार के अनाड़ी स्तर के हैं। अपने-अपने व्यवसाय के सम्बन्ध में कोई कितना ही जानकार क्यों न हो, किसी ने धर्म चर्चा कितनी ही कहीं सुनी हो, पर चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में उत्कृष्टता का समावेश करते हुए सर्वतोमुखी प्रगति की दिशा में चल पड़ने के लिए आवश्यक अनुभव की दृष्टि से प्रायः सभी शून्य हैं। जिन्हें इस प्रकार का अनुभव, अभ्यास हो, ऐसे कोई विरले ही होते हैं। उनकी नगण्य संख्या विशाल जनसमुदाय को देखते हुए आटे में नमक के बराबर ही दीख पड़ती है। इसीलिए संजीवनी विद्या के क्षेत्र में हर स्तर के व्यक्ति को नये सिरे से ही प्रवेश करना पड़ेगा, नया ककहरा पढ़ना पड़ेगा, किन्तु इतना निश्चित है कि जो इस कला में प्रवीण बन सकेगा, उसके व्यक्तित्व का असाधारण विकास होगा। हर क्षेत्र की सफलतायें और विभूतियाँ उसके पीछे-पीछे फिरती दिखाई देंगी। यह नकद धर्म है, जिसका समुचित प्रतिफल हाथों-हाथ मिलता है।

इस निमित्त प्रौढ़ पाठशाला स्तर की शिक्षण संस्थायें गाँव-गाँव, मुहल्ले-मुहल्ले स्थापित करने की आवश्यकता से जनसाधारण को, विशेषतया लोकसेवा में रस लेने वालों, उसके लिए सर्वोत्तम पाठ्यक्रम ढूँढ़ने वालों को जताया गया है कि वे अन्य कार्यों को गौण समझें और जीवन शिक्षा को व्यापक बनाने के लिए सर्वतोभावेन प्रयत्न करें। यदि यह सूझ पड़ा और प्रयास चल पड़ा तो समझना चाहिए कि उलझी हुई समस्त समस्याओं का समाधान मिल गया, सर्वतोमुखी प्रगति का द्वार खुल गया।

पाठशाला का एक अतिरिक्त पक्ष भी है। निर्धारित विषय की पुस्तकों के पुस्तकालय का संचालन। सभी पाठशाला की पंक्ति में बैठना स्वीकार नहीं करते। उन्हें इसमें अपनी हेटी लगती है। विशेषतया शिक्षितों में इस प्रकार की अहमन्यता विशेष रूप से उभरी होती है। वे बहुत पढ़े होने का अभिमान करते हैं, पर यह भूल जाते हैं कि संजीवनी विद्या की महत्ता न तो भली प्रकार समझी गई है और न इस कमी की पूर्ति के लिए कोई कहने लायक चेष्टा हुई है। बात इस सीमा तक बढ़ गई है कि जीवन विज्ञान के अनेकानेक पक्षों पर तात्विक प्रकाश डालने वाले साहित्य का अभाव है। पुस्तक विक्रेताओं और प्रकाशकों की कमी नहीं, परन्तु क्रमबद्ध जीवन साहित्य बहुत ढूँढ़ने पर जहाँ-तहाँ छुट-पुट रूप से ही मिलता है। फिर विषय भी रूखा है। जिन्हें जीवन सम्पदा तक का मूल्यांकन कर सकने का अवसर नहीं मिला, वे जीवन विद्या को ही क्यों न महत्व देने और क्यों उस विषय का साहित्य खोजने में रुचि दिखाने लगें ? जब ग्राहक ही न हों, तो प्रकाशक क्यों छापें ? लेखक क्यों लिखे ? विक्रेता क्यों अपनी दुकान घेरें और पूँजी फँसाये ? ऐसी दशा में यह नई कठिनाई उपस्थित होती है कि शिक्षितों को घर बैठे ऐसा साहित्य उपलब्ध कराने की प्रक्रिया कैसे सम्पन्न हो ? जो शिक्षार्थियों की पंक्ति में नहीं बैठना चाहते, उनके लिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यही एक मार्ग शेष रह जाता है कि घर बैठे सुविधा के समय पर जीवन साहित्य का स्वाध्याय करें, पर इसके लिए साहित्य कहाँ से आये ? अरुचि को अभिरुचि में परिवर्तित कैसे किया जाय ?

इस समस्या का समाधान एक ही है कि पाठशालायें स्थापित करने की तरह हर जगह प्रज्ञा पुस्तकालय स्थापित किये और चलाये जायें। शिक्षितों को घर बैठे लाभ देने का यही उपाय है, जो छात्र स्कूल में नहीं जाते, उनके लिए घर पर ट्यूटर लगाया जाता है। यही व्यवस्था उन तथाकथित शिक्षितों के लिए की जानी चाहिए, जिनने उच्च कक्षाएँ तो उत्तीर्ण की हैं, पर जीवन विकास की दिशा में न उनने कुछ सीखा और न किसी ने उन्हें सिखाया है।

कहा जा चुका है कि पाठशालाओं के अतिरिक्त प्रज्ञा पुस्तकालयों की और स्थापना होनी चाहिए और उनके द्वारा शिक्षितों को घर बैठे स्वाध्याय की सुविधा प्राप्त करने की व्यवस्था की जानी चहिए। इस सन्दर्भ में भी एक कठिनाई पुस्तकों के अभाव की पूर्ति करना ही नहीं, वरन् यह भी है कि तद्विषयक अरुचि का निराकरण कैसे किया जाय ? लोग चटपटी-मनोरंजक, कौतूहलवर्धक सामग्री पढ़ने के आदी हैं और खाली समय काटने के लिए, उदासी को विनोद में परिवर्तित करने के लिए पुस्तकों पर हाथ डालते हैं। पत्र-पत्रिकायें खरीदते और पढ़ते हैं। उनकी पठन रुचि इसी सीमा तक पहुँचकर समाप्त हो जाती है।

छोटे बच्चे जब स्कूल जाने में आनाकानी करते हैं, तो उन्हें कई प्रकार के प्रलोभन देते हैं। जेब खर्च देना, स्कूल में मनोरंजन का, खेलकूद का, नास्ते का प्रबन्ध करना ऐसा ही प्रलोभन है, जो अरुचि को उत्साह में बदलता है और बच्चे आनाकानी छोड़कर स्कूल जाने लगते हैं। यही व्यवस्था उन शिक्षित वयस्कों के लिए की जानी चाहिए, जो न तो जीवन साहित्य की उपयोगिता समझते हैं और न उसे पढ़ने के अभ्यस्त हैं। ऐसी दशा में उनकी अरुचि और उपेक्षा सहज समझ में आती है।

यों कठिनाई तो अशिक्षितों को शिक्षित बनाने में सहमत करने के सन्दर्भ में भी हैं, पर शिक्षितों की अहमन्यता को देखते हुए जीवन साहित्य का अवगाहन करने में और भी अधिक कठिनाई है। अशिक्षित सोचते हैं कि हमें क्या किसी की नौकरी करनी है, जो पढ़ें। वे पढ़ने का लाभ नौकरी मिलना भर सोचते हैं, इसलिए बच्चों को, विशेषतया लड़कियों और महिलाओं में पढ़ने का उत्साह नहीं उभरने देते। इसलिए शिक्षा प्रबन्ध कर दिये जाने पर भी इन अशिक्षितों की उपेक्षा को देखते हुए उन्हें घेर-बटोर कर लाना कठिन पड़ता है। जन-जातियों के लिए कितनी ही सरकारी पाठशालायें खुली हैं, पर वे चलती नहीं। खानापूरी होती रहती है। यही बात प्रायः सभी अशिक्षितों पर लागू होती है। उन्हें सहमत करना टेढ़ी खीर है, जो इस प्रयास में सफल हो जाते हैं, वे पिछड़ों को उभारने में सफल भूमिका निभाते हैं। घुमा-फिराकर यही बात शिक्षितों को सत्साहित्य नियमित रूप से गम्भीरतापूर्वक पढ़ने के लिए सहमत करने के सम्बन्ध में भी हैं। वे सहज तैयार नहीं होते। उनके घर बैठे बिना मूल्य देते रहने का क्रम बनाया जाय, तो भी वे अनख-आलस्य दिखाते हैं, बिना पढ़े किसी कोने में रख देते हैं और जब वापस माँगने जाया जाता है, तो बिना पढ़ी स्थिति में ही लौटा देते हैं। इस अरुचि को दूर करना प्रथम कार्य है। इसके बाद ही पाठशाला या पुस्तकालय उस प्रयोजन की पूर्ति कर पाते हैं, जिसके लिए प्रयत्नपूर्वक उनकी स्थापना की गई थी।

इस सम्बन्ध में धर्मशास्त्र वाले चतुर हैं। वे किसी कर्मकाण्ड को कराने से पहले उसका सुविस्तृत माहात्म्य बताते हैं, फलश्रुति सुनाते हैं। जब श्रवणकर्त्ता लाभों के लिए ललचाने लगता है तब क्रिया-कृत्य करने में तत्पर कर सकना सरल हो जाता है। शिक्षा के सम्बन्ध में भी यही बात है। वह चाहे पाठशाला के रूप में दी जाय या स्वाध्याय उपक्रम थोपने का प्रयत्न किया जाय, हर हालत में सर्वप्रथम उसकी सुविस्तृत फलश्रुति समझानी पड़ती है। वंचित रहने की हानियों और अपनाने पर मिल सकने वाले लाभों को तर्क, तथ्य, प्रमाण और उदाहरण आदि के माध्यम से सम्बद्ध व्यक्तियों को इस प्रकार समझाना पड़ता है कि वे ललचाने लगें और अपनाने के लिए उत्सुकता प्रकट करने लगें।

जिसकी महत्ता एवं आवश्यकता समझी जाती है, उसे पूरी कीमत चुकाकर खरीदा जाता है, पर जिस सम्बन्ध में मुफ्त लेना भी भारी पड़ता है, समझा जाता है कि हमारे ऊपर कोई भार लादा जा रहा है। इस उल्टे चिन्तन से खिन्न नहीं होना चाहिए, निराश भी नहीं, वरन् निरन्तर पीछे लगे रहने और कभी न कभी उत्साह जगने की आशा सँजोये रहनी चाहिए। जिन दिनों चाय का निर्माण हुआ ही था, कोई उसे न पहचानता था, न पीता था, पर जब प्रचारकों ने घर-घर जाकर उसे मुफ्त पिलाना और गुण बखानना प्रारम्भ कर दिया, तो लोगों को उसका चस्का लगने लगा और नशेबाजी की तरह वह आदत का अंग बनने लगा। उसी प्रयत्न का फल है कि आज चाय वालों की दुकानें कदम-कदम पर खुली पाई जाती हैं। सभी पर ग्राहकों की भीड़ लगी रहती है। उपेक्षित को अपेक्षित बनाने का यही तरीका है। विज्ञापन के सहारे बीड़ी बेचने वालों, दवा विक्रेताओं की तरह लोकसेवियों को शिक्षा की महिमा समझाने में सारी शक्ति लगानी चाहिए। उस प्रयास को एक प्रचण्ड आन्दोलन की तरह उभारना चाहिए। व्यक्तिगत सम्पर्क में अपनाने का लाभ और उपेक्षा बरतने पर दुष्परिणाम भुगतते रहने की समझ उत्पन्न करनी चाहिए। यह प्रथम चरण पूरा कर लिया तो आगे का प्रगतिक्रम चल पड़ना सुगम हो जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मुफ्त में लाभ देना, एक बढ़िया प्रलोभन, आकर्षण है। नशेबाजी का चस्का किसी को लगाने वाले आरम्भ में यही करते हैं। मुफ्त में उपलब्ध कराते हैं। कई बार स्वाद चख लेने पर आदत पड़ जाती है, फिर उसे पाये बिना बेचैनी रहने लगती है। शिक्षा के सम्बन्ध में यही बात है। स्वाध्याय के रसास्वादन के सन्दर्भ में भी। आरम्भ में इनकी कीमत नहीं माँगनी चाहिए। इधर-उधर से ही संग्रह करके व्यवस्था जुटानी चाहिए। पीछे जब आँख खुलती है, दूरदर्शिता जगती है, तो हर किसी को उचित मूल्य देकर ही खरीदना अच्छा लगता है। यही स्वाभाविक भी है और सज्जनता का तकाजा भी। विदेशों में जो देश प्रगतिशील हैं, उनमें स्कूलों में पढ़ने वाले छोटे छात्रों की तुलना में बड़ी आयु वाले निजी स्कूलों में पढ़कर ज्ञान बढ़ाने वालों की संख्या कई गुनी रहती है। वे उपार्जन में भी लगे रहते हैं और बचे हुए समय में अतिरिक्त शिक्षा प्राप्त करके अपनी योग्यता बढ़ाते हैं। बढ़ी हुई योग्यता के आधार पर प्रगति का लाभ भी मिलता है। अपने देश में भी आगे चलकर यही होगा। जब महत्त्व समझा जाने लगेगा तो लोग दौड़-दौड़कर ऐसे केन्द्रों की तलाश करेंगे, जिनसे सम्पर्क साधकर योग्यता बढ़ाई और अधिकाधिक सम्पन्नता-सफलता पाई जा सकती है। गाड़ी को स्टार्ट करने में ही जोर लगाना पड़ता है। जब चक्का घूमने लगता है, तो सरपट दौड़ने लगने में भी कुछ कमी नहीं रहती।

किन्हीं की सहायता अन्न, वस्त्र, धन, औषधि आदि देकर भी की जा सकती है, पर वह सामयिक एवं अस्थाई है। स्थाई समाधानकारक सहायता सद्ज्ञान के रूप में ही हो सकती है, वही संजीवनी विद्या है। जीवन विज्ञान उसी को कहते हैं। यदि हमें पिछड़ेपन को वस्तुतः भगाना है, तो उसके लिए गरीबी से नहीं पिछड़ेपन को भी मुक्ति दिलाने की आवश्यकता होगी। इसके लिए समूचा देश, समूचा विश्व तरसता है। साक्षरता वह वाहन है और सद्ज्ञान उसका अधिष्ठाता, अधिकारी है। दोनों के समन्वय से ही एक पूरी बात बनती है। निरक्षरों को साक्षर तो बनाया ही जाना चाहिए, पर साथ में यह भी ध्यान रखना चाहिए कि व्यक्तित्व का विकास साक्षरों और निरक्षरों के लिए समान रूप से आवश्यक है। इसलिए प्रमुखता उसी को मिलनी चाहिए। विस्तार उस समग्र शिक्षा का होना चाहिए, जो जीवन के हर पक्ष को समुन्नत एवं सुसंस्कृत बनाती है।

स्वाध्याय मंडल, प्रज्ञा संस्थान और प्रज्ञा केन्द्र

भव्य भवन थोड़े-से या झोंपड़े बहुत-से, इन दोनों में से एक का चयन जनकल्याण की दृष्टि से करना है तो बहुलता वाली बात को प्रधानता देनी पड़ेगी। राम के रीछ-वानर—कृष्ण के ग्वाल-बाल—शिव के भूत-पलीत वाले चयन का उद्देश्य समझने पर तथ्य स्पष्ट होता है कि **बहुजन सुखाय-बहुजन हिताय** की नीति ही वरिष्ठ है। विद्वानों को निष्णात बनाने में भी हर्ज नहीं पर निरक्षरों को साक्षर बनाना ही लोकहित की दृष्टि से प्रमुखता पाने योग्य ठहरता है।

विशालकाय गायत्री शक्तिपीठों और बड़े प्रज्ञा पीठों को अब क्षेत्रीय गतिविधियों का मध्य केन्द्र बनाकर चला जायगा। वे अपने-अपने मंडलों के केन्द्रीय कार्यालय रहेंगे। हर गाँव-मुहल्ले में सृजन और सुधार व्यवस्था के लिए बिना इमारत के स्वाध्याय मंडल—प्रज्ञा संस्थान ही प्रमुख भूमिका सम्पन्न करेंगे। विशालकाय समारोहों की व्यवस्था दूर-दूर से जनसमुदाय एकत्रित करके उत्साह उत्पन्न करने की दृष्टि से आवश्यक है पर जब जन-जन से सम्पर्क साधने और घर-घर का द्वार खट-खटाने की आवश्यकता पड़े, तो निजी परिवार जैसे छोटे विचार ही काम देते हैं। इस प्रयोजन की पूर्ति स्वाध्याय मंडल ही कर सकते हैं।

एक अध्यापक प्रायः तीस छात्रों तक को पढ़ाने में समर्थ हो पाता है। स्वाध्याय मंडली को एक अध्यापक माना गया है और संस्थापक को चार अन्य भागीदारों की सहायता से एक छोटे विचार परिवार का गठन करके युगान्तरीय चेतना से उस समुदाय को अवगत, अनुप्राणित करने के लिए कहा गया है। यही स्वाध्याय मंडलों का संगठन।

प्रज्ञा परिजनों में से जिनमें भी प्रतिभा, कर्मठता, साहसिकता हो उसे इसी स्वाध्याय संगठन में तत्काल नियोजित करना चाहिए। इसमें उनकी एकाकी सृजन शक्ति को प्रकट-प्रखर होने का अवसर मिलेगा। बड़े संगठनों में आये दिन खींचतान और दोषारोपण के झंझट चलते हैं। निजी सम्पर्क और निजी प्रयत्न से एक प्रकार का निजी विचार-परिवार बना लेने में किसी प्रकार के विग्रह की आशंका नहीं है। हर दम्पति अपना नया परिवार बनाता और नया वंश चलाता है। प्रज्ञा परिजनों में से जो भी मानसिक बौनेपन से बढ़कर प्रौढ़ता-परिपक्वता की स्थिति तक पहुँच चुके हैं, उन्हें अपने निजी पुरुषार्थ का विशिष्ट परिचय देना चाहिए। हर पक्षी प्रौढ़ होने पर अपना एक नया घोंसला बनाता है।

स्वाध्याय मंडल के संस्थापन-संचालन की प्रक्रिया बहुत ही सरल है। इस सृजन के लिए जिसकी भी श्रद्धा उमगे, उसे अपने प्रभाव क्षेत्र के और अपने जैसी प्रकृति के चार साथी ढूँढ़ निकालने चाहिए। पाँच की संचालक मंडली गठित करनी चाहिए। इन पांच पाण्डवों में से प्रत्येक को बीस-बीस पैसा नित्य अंशदान और न्यूनतम एक घंटा समयदान करते रहने के लिए सहमत करना चाहिए इतनी भर पूँजी जुटाने पर स्वाध्याय मंडल की निर्धारित गतिविधियाँ निर्बाध रूप से चल पड़ेंगी।

प्रमुख कार्यक्रम प्रज्ञा साहित्य का सम्पर्क क्षेत्र के लोगों को नियमित स्वाध्याय कराना है। संगठन का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नामकरण इसी प्रमुख कार्यक्रम के आधार पर किया गया है। आयुर्वेद में औषधियों के नामकरण उनमें पड़ने वाले द्रव्यों में से जो प्रमुख होता है, उसके आधार पर किया जाता है द्राक्षसव, अमृतारिष्ठ, लवंगादिवटी, सितोपलादि चूर्ण, हींग आदि में अगदि जिस प्रकार प्रमुख द्रव्य की चर्चा है, उसी प्रकार विचार क्रान्ति के लिए स्वाध्याय को सीधा और गहरा प्रभाव छोड़ने वाली प्रक्रिया माना गया है और इन संगठनों को इसी कार्यक्रम को सर्व प्रधान मानने के लिए कहा गया है।

पाँच व्यक्तियों की बीस-बीस पैसे वाली सम्मलित राशि माह में तीस रुपया बनती है। इतने का प्रज्ञा साहित्य युग निर्माण योजना से हर महीने मँगाते रहा जाय। यही है मंडल की स्थाई सम्पदा प्रज्ञा पुस्तकालय के रूप में इसी पैसे से संगठन की प्राणवान पूँजी निरन्तर बढ़ती रहेगी और उससे धीरे-धीरे सहस्त्रों व्यक्ति लाभान्वित हो सकेंगे।

संचालक मंडली के पाँच सदस्यों में से प्रत्येक को अपने परिवार सम्पर्क के पाँच-पाँच ऐसे व्यक्ति ढूँढ़ने चाहिए, जिनकी स्वाध्याय में विचारशीलता में रुचि है अथवा पैदा की जा सके। इस प्रकार पाँच सदस्यों की पाँच-पाँच की मंडली से तीस सदस्य हो जाते हैं। तीस फूलों का यह हार यदि युग देवता के गले में पड़ सके तो अपनी गरिमा और देवता की शोभा बढ़ाने में पूरी तरह सफल हो सकता है। पाँचों संचालक अपनी अपनी क्यारियों को ठीक तरह सँभाले-सँजोये। उन तक नियमित रूप से घर बैठे बिना मूल्य प्रज्ञा साहित्य पहुँचाने और वापस लेने के व्रत-निर्वाह का प्रथम चरण इतने भर से पूरा हो जाता है।

सर्वविदित है कि कार्लमार्क्स के विचारों ने एक शताब्दी के भीतर प्राय: आधी दुनिया को अपने विचारों में समेट लिया। रूसो के प्रतिपादन से प्रजातंत्र की जड़ जमी। ईसाई पादरियों ने विश्व के कोने-कोने में अपने धर्म की विशेषता समझाई ? प्राय: दो-तिहाई मनुष्य जाति को कुछ ही शताब्दियों के अन्दर ईसाई धर्मावलम्बी बना लिया। अमेरिका में से दास प्रथा समाप्त करने का बहुत कुछ श्रेय हैरियट स्टो को जाता है। बुद्ध और गान्धी ने अपने-अपने समय के विचार क्रान्ति प्रतिपादनों को जन-जन को परिचित करा सकने के कारण ही सफल बनाया था। इतिहास साक्षी है कि बन्दूक की तुलना में प्राणवान विचारों की सामर्थ्य कहीं अधिक समर्थ सिद्ध हुई है। जब सभी लोग बिना पढ़े थे, तब नारद की तरह वाणी ही प्रमुख सामर्थ्य थी पर जब से शिक्षा का—प्रेस का—साहित्य का, विस्तार हुआ है तब से वाणी की तुलना में अधिक स्थाई, अधिक गंभीर, अधिक प्रभावी विचार देने में लेखनी की—साहित्य की शक्ति ही विश्व की सबसे बड़ी सामर्थ्य बनकर उभरी है।

अपने समय में विचार क्षेत्र की भ्रान्तियाँ और विकृतियाँ ही लोक-चिन्तन को भ्रष्ट और आचरण प्रचलन को दुष्ट बनाने के लिए प्रमुख रूप से जिम्मेदार हैं। अन्यथा विज्ञान शिक्षा और उद्योग क्षेत्र की वर्तमान प्रगति के रहते मनुष्य हर दृष्टि से सुखी सम्पन्न रह सकता था। आस्था संकट ही अपने समय का सबसे बड़ा विग्रह है, उसी ने व्यक्ति और समाज के सम्मुख अगणित समस्याएँ विपत्तियाँ और विभीषिकायें खड़ी की हैं। समाधान के लिए प्रचलित सुधार इसी से सफल नहीं हो पाते कि भावनाओं मान्यताओं, विचारणाओं, आकांक्षाओं में सुधार परिष्कार का प्रयत्न नहीं हुआ। मात्र अनाचारों के दमन-सुधार की बात सोची जाती रही। सड़ी कीचड़ यथास्थान बनी रहे तो मक्खी-मच्छर पकड़ने, मारने, पीटने से क्या काम बने ? रक्त में विषाक्तता भरी रहे तो फुन्सियों पर मरहम लगाने भर से क्या बात बने ? एक सुधार पूरा होने से पूर्व ही सौ नये बिगड़ उठें तो चिरस्थाई सुधार की संभावना नहीं रहेगी।

अपने समय को समस्त समस्याओं का एक ही हल है विचार क्रान्ति अभियान लोकमानस का परिष्कार। इसके लिए स्वाध्याय और सत्संग की ढाल-तलवार का प्रयोग करना होगा। युगान्तरीय चेतना का प्रतिनिधित्व प्रज्ञा साहित्य करता है। उसे पढ़ने-पढ़ाने की प्रक्रिया यदि द्रुतगामी बनाई जा सके तो अब तक चल रही प्रगति में तूफानी उभार आ सकता है। नगण्य से साधनों पर पिछले दिनों २४ लाख व्यक्तियों का प्राणवान देव परिवार खड़ा किया जा सका है तो कोई कारण नहीं कि उसी कार्य को व्यवस्थित प्रज्ञा-संस्थान सँभाल लें तो देखते-देखते जनजागरण की प्रक्रिया को सैकड़ों गुनी अधिक प्रचंड बनाया जा सकेगा। देखने में यह छोटा-सा उपचार कितना महत्त्वपूर्ण है, उसका संदर्भ घने अन्धकार से निपटने में छोटे-से दीपक की भूमिका से समझा-समझाया जा सकता है।

स्वाध्याय मंडल प्रज्ञा-संस्थानों को भी बड़े प्रज्ञा पीठों के लिए निर्धारित कार्य पद्धति अपनानी होगी। जन जागरण के लिए जनसम्पर्क, जनसम्पर्क से जनसमर्थन और सहयोग मिलने, उस आधार पर युग परिवर्तन का ढाँचा खड़ा होने का सरंजाम जुटाने की बात बार-बार कही जाती रही है। इस प्रयोजन के लिए प्रज्ञा साहित्य का पठन-पाठन और दीवारों पर आदर्श वाक्य-लेखन की प्रक्रिया को स्वाध्याय कहा जा सकता है। प्रज्ञा पीठों की पंच सूत्री योजना में सत्संग को व्यापक बनाने के लिए (१) स्लाइड प्रोजक्टर, (२) टेपरिकार्डर, (३) प्रदर्शनी, (४) जन्म दिवसोत्सवों को प्रमुखता दी गई है। इनके माध्यम से एक व्यक्ति भी सैकड़ों को हर दिन युग चेतना से अवगत-अनुप्राणित करते रहने की प्रक्रिया नियमत रूप से चलाता रह सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वाध्याय क्रम के पैर जमते ही सभी प्रज्ञा संस्थानों को उपरोक्त कार्यपद्धति हाथ में लेनी चाहिए। उसके लिए साधन जुटाने चाहिए। हर प्रज्ञा संस्थान को स्वाध्याय शुभारम्भ करके अग्रिम चरणों में सृजनात्मक और सुधारात्मक कार्यक्रम हाथ में लेने होंगे, इसके लिए दस सूत्री योजना की चर्चा होती रही है, उनमें से चार तो ऐसे हैं, जिन्हें छोटे प्रज्ञा संस्थान भी अपने न्यूनतम ३० सदस्यों की परिधि में कार्यान्वित कर सकते हैं। प्रौढ़ शिक्षा, बाल संस्कारशाला, व्यायामशाला, खेल-कूद, तुलसी आरोपण, हरितमा संवर्धन। शादियों में दहेज और धूम-धाम का विरोध इन चार कार्यक्रमों में जन-जन को भागीदार बनाने का कार्य स्वाध्याय मंडलों को अपने तीस सदस्यों के परिवार से आरम्भ करना चाहिए। इन कार्यक्रमों के सहारे यह छोटे संगठन भी अपनी गौरव-गरिमा का परिचय देंगे। जन-जन का समर्थन-सहयोग प्राप्त करेंगे और बीज से वृक्ष, चिंगारी से दावानल का नया उदाहरण बनेंगे।

स्वाध्याय के दो और सत्संग के चार चरण मिल कर छह बनते हैं। अगले दिनों हर मंडल को पर्व आयोजनों, नवरात्रि सत्रों और वार्षिकोत्सवों की व्यवस्था बनानी होगी। इन सब कार्यों के लिए साधन जुटाने के लिए पैसों की जरूरत पड़ती रहेगी, इसका सरल और स्थाई रूप ज्ञानघट ही हो सकते हैं। प्रज्ञा परिवार की सदस्यता के लिए एक घण्टा समयदान और बीस पैसे अंशदान नित्य-नियमित रूप से करते रहने की शर्त है। ऐसे सच्चे प्रज्ञा परिवार विनिर्मित करने चाहिए, जो बातों के बताशे ही न बनाते रहें वरन् श्रद्धा का प्रमाण परिचय देने वाला भाव भरा अनुदान भी प्रस्तुत करें। बीस पैसे वाले ज्ञानघट पुरुषों के और एक मुट्ठी अनाज वाले धर्म घट महिलाओं के द्वारा चलें, तो प्रज्ञा संस्थानों को अगले दिनों जो कतिपय नये उपकरण खरीदने तथा नये कार्य क्रम चलाने होंगे, उनके लिए समयानुसार पैसा मिलता रहेगा। इस न्यूनतम अनिवार्य अंश दान के अतिरिक्त उदारमना परिजनों से कुछ अधिक खर्च करने की बात भी गले उतारनी चाहिए। ताकि स्वाध्याय मंडल प्रज्ञा संस्थान साहित्य पढ़ाने के प्रथम चरण तक ही न सीमित रहे। वर्णमाला और गिनती-पहाड़ा ही न रटता रहे। अन्ततः इन छोटे संगठनों को विकसित होना है। हर सदस्य को 'एक से पाँच' की विकास विस्तार प्रक्रिया को कार्यान्वित करना है। नवजात शिशु तो खिलौनों से खेलता और गोदी में चढ़ता रहता है पर समय बीतने पर वह किशोर और प्रौढ़ भी तो बनता है। तदनुसार उसकी गतिविधियाँ भी भारी-भरकम बनती चली जाती हैं।

स्वाध्याय मंडल प्रज्ञा संस्थान की समर्थता पाँच साथियों का सहयोग प्राप्त करने और तीस का कार्यक्षेत्र बनाने की विधि-व्यवस्था पर अवलम्बित माना गया है। किसी भी प्रतिभाशाली के लिए इतनी संगठना और योजना चला सकना कठिन नहीं पड़ना चाहिए। इतने पर भी यह हो सकता है कि कोई नितान्त व्यस्त, संकोची, रुग्ण, अविकसित-असमर्थ एवं महिलाओं की तरह प्रतिबंधित होने की स्थिति में संगठन क्रम न चला सके। उन्हें भी मन, मसोसकर बैठने की आवश्यकता नहीं है। उनके लिए एकांकी प्रयत्न से चल सकने वाली 'प्रज्ञा केन्द्र' व्यवस्था का प्रावधान रखा गया है। इसमें संगठित प्रयत्न के बिना भी एकाकी प्रयास से काम चल सकता है। ऐसे लोग बीस पैसे के स्थान पर अपनी तथा कुटुम्बियों की ओर से चालीस पैसा प्रतिदिन की व्यवस्था करें और उतने भर से युगान्तरीय चेतना केन्द्र शांतिकुंज से प्रकाशित होने वाला साहित्य मँगाये और परिवार पड़ौस के बारह व्यक्तियों को उन्हें पढ़ाते सुनाते रहें। इस प्रकार भी प्रज्ञा पीठ-प्रज्ञा संस्थान वाली प्रक्रिया का एकाकी स्तर पर निर्वाह हो जाता है। इस आधार पर घरेलू प्रज्ञा पुस्तकालय बनता और बढ़ता रह सकता है।

स्मरण रहे प्रज्ञा संस्थानों और प्रज्ञा केन्द्र द्वारा पढ़ाने के लिए खरीदा गया साहित्य उन्हीं की पूँजी के रूप में उन्हीं के पास रहता है। कोई चाहे तो लागत से थोड़े कम मूल्य में किसी भी दिन, कहीं भी बेच भी सकता है। अस्तु, यह दान नहीं। सम्पदा संचय है। ऐसी सम्पदा जिसे सोने-चाँदी की तुलना में कहीं अधिक श्रेयस्कर एवं सत्परिणाम उत्पन्न करने वाली कहा जा सकता है। हर विचारशील को अपने निजी परिवार को सुसंस्कारी बनाने के लिए इस संचय को करना ही चाहिए।

प्रज्ञा केन्द्र, प्रज्ञा संस्थान, प्रज्ञा पीठ के गठन का कोई भी स्वरूप क्यों न हो उसे चलाने वाले अनायास ही विचारशीलों के सम्पर्क में आते हैं, उनके साथ घनिष्ठता स्थापित करते, सहानुभूति अर्जित करते और मित्रता करते हैं। यह उपलब्धि आरम्भ में तो कम महत्त्व की दीखती है पर जब आने वाले समय में उन मित्रों के सहयोग से विपत्ति निवारण और प्रगति लाभ के सुयोग बनते हैं, तब प्रतीत होता है कि इस सेवा-साधना में जो श्रम-समय एवं पैसा लगा, वह अनेक गुना होकर वापस लौटने लगा। विचारशीलों की सद्भावना एवं घनिष्ठता उपलब्ध करने वाले प्रकारान्तर से सुखद वर्तमान एवं उज्ज्वल भविष्य का निर्माण करते और अनुदान का प्रतिदान हाथोंहाथ प्राप्त करते हैं।

छोटे स्वाध्याय मंडलों की बड़ी तथा महती भूमिका

भव्य इमारत वाले प्रज्ञा पीठों की ही तरह बिना इमारत वाले स्वाध्याय मंडल, प्रज्ञा संस्थान भी समान भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं। साधना अधिक और संगठन कम होने पर सामान्यतः कार्यक्षेत्र बढ़ जाता है और उपक्रम का अनुपात भी अधिक रहता है। इतने पर भी उद्देश्य और उत्तरदायित्व की दृष्टि से दोनों के मध्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

राई रत्ती का अन्तर नहीं है। कम साधना और संगठन छोटा होने पर सामान्यत: कार्यक्षेत्र भी छोटा रहेगा किन्तु अर्थ, महत्त्व या उत्तरदायित्व कम होता नहीं है।

स्वाध्याय मंडल नये आशा केन्द्रों के रूप में उभरे हैं। जहाँ जीवन है, वहाँ आशा भी बँधेगी। लगता है अगले दिनों यह नवनिर्मित स्वाध्याय मंडल ही युगान्तरीय चेतना के अग्रदूत बनेंगे और लघुकाय दीपकों से गौरवान्वित होने वाली दीपावली को अपने सफल प्रयत्नों से सम्पन्न करेंगे। प्रज्ञा पीठ तो २४०० पर ही रुक गये। पर स्वाध्याय मंडल प्रज्ञा संस्थानों की संख्या २४ हजार तक जा पहुँचने में अब किसी प्रकार का संदेह रह नहीं गया है। दो-तिहाई मंजिल पूरी हो जाने पर एक-तिहाई की पूर्ति पर भी जल्दी विश्वास होता है।

सर्वसुलभ होने से इस स्थापना के व्यापक होने की पूरी गुंजायश है। असंख्य लोगों के थोड़े-थोड़े सहयोग से ही युग परिवर्तन जैसे प्रवाह पनपते और सफल होते हैं। सही आधार बन जाने पर अति कठिन दीखने वाली मंजिलें भी सहज हो जाती हैं। इस प्रकार से इस अभियान को महत्त्वपूर्ण भी कहा जा सकता है। इन संस्थानों का नामकरण उनकी प्रधान प्रक्रिया स्वाध्याय को ध्यान में रखते हुए किया गया है। वस्तुत: वे स्वाध्याय तक सीमित नहीं हैं। आयुर्वेद में द्राक्षासव, अमृतारिष्ट, लवंगादिवटी, सितोपलादि चूर्ण आदि नाम उन औषधियों में पड़ने वाले द्रव्यों की महत्ता का स्मरण दिलाने के लिए दिये गये हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि उनमें मात्र वह एक ही वस्तु है। स्वाध्याय मण्डलों के सम्बन्ध में भी यही बात है। उनके साथ वे सभी कार्यक्रम जुड़े हुए हैं जो बड़े प्रज्ञा पीठों को सौंपे गये हैं। हर किसी को स्मरण रखना चाहिए कि स्वाध्याय मण्डलों के नाम के साथ प्रज्ञा संस्थान भी जोड़ दिया गया है। यह इस बात का चिह्न है कि इन बिना इमारत वाले संस्थानों को ही परिस्थितियों के अनुरूप वे सभी उत्तरदायित्व निभाने होंगे जो न केवल प्रज्ञा पीठों के लिए वरन् वरिष्ठ प्रज्ञा-पुत्रों के लिए आवश्यक ठहराये गये हैं।

वेद सर्वप्रथम ग्रन्थों के रूप में प्रकट हुए। उन्हें ऋषियों द्वारा हृदयंगम किया गया। इसके उपरान्त ही उन्हें पढ़ने-पढ़ाने, सुनने-सुनाने का प्रचारक्रम आगे बढ़ा। युगान्तरीय चेतना का अवतरण भी सर्वप्रथम प्रज्ञा साहित्य के रूप में ही होता है। इसके उपरान्त ही वे प्रज्ञा-पुत्रों को प्रेरणा प्रदान करते हैं। जन-जन को आन्दोलित करने की प्रक्रिया इसके उपरान्त ही चलती है। अस्तु, आवश्यक हो जाता है कि महान परिवर्तन के कृत्य को समझने-समझाने के लिए प्रज्ञा साहित्य के स्वाध्याय को प्रमुखता एवं प्राथमिकता दी जाय। इसके बिना गाड़ी एक कदम बढ़ती ही नहीं।

इस प्रयोजन के लिए अब तक का प्रकाशित साहित्य ही अनुपम है। पर अब इस साल तो सूत्र-संचालक ने हर दिन एक फोल्डर पुस्तिका लिखने के उपरान्त ही पानी पीने का व्रत लिया है। यह प्रस्तुतीकरण और भी अधिक सशक्त प्राणवान एवं सामयिक है। इसे अगले दिनों आन्यान्य भाषाओं में भी प्रकाशित करने की योजना बन रही है। पर प्रकाशन से भी बड़ी बात यह है कि जो उपलब्ध है, उसे जन-जन को पढ़ाया-सुनाया जाय। जो खरीद नहीं सकते या अरुचि के कारण खरीदना नहीं चाहते, उन्हें घर बैठे, नित्य नियमित रूप में, बिना मूल्य पढ़ाने और वापस लेते रहने का उपाय ही कारगर हो सकता है। बिना पढ़ों का उसे सुनते रहने में काम चल सकता है। स्वाध्याय मण्डलों का यही प्रारम्भिक कार्य है। इसके लिए झोला पुस्तकालय, चल पुस्तकालय, ज्ञान रथ चलाये जाने की प्रक्रिया पर अत्यधिक जोर दिया जाने लगा है। इस हलचल के चलने, न चलने, चलाने, न चलाने की प्रज्ञा संस्थानों एवं प्रज्ञा पुत्रों के जीवित-मृतक होने का प्रमाण माना जा रहा है।

माँगे के या किराये के एक छोटे कमरे को भी स्वाध्याय मंडल, प्रज्ञा संस्थान का कार्यालय माना जा सकता है। वह संचालक मण्डल के किसी सदस्य के घर एक अलमारी में भी प्रतिष्ठित रह सकता है। मुख्य बात है, गतिविधियों के संचालन की। निर्धारित गतिविधियों को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। (१) स्वाध्याय, (२) सत्संग, (३) सृजन। लेखन और वाणी के साथ-साथ करने-कराने का उपक्रम जुड़े तभी उनका गहरा और स्थाई प्रभाव पड़ता है। अस्तु, तीनों को अन्न-जल, वायु की तरह आकाश-पाताल और धरातल की तरह, स्थूल-सूक्ष्म और कारण की तरह अविछिन्न एवं पूरक माना गया है। सभी प्रज्ञा संस्थानों को इन्हें अपनाकर अपनी प्राण प्रखरता का परिचय देना चाहिए।

स्वाध्याय प्रक्रिया-झोला पुस्तकालयों ज्ञानरथों के माध्यम से व्यापक बनाई जाती है। अपने पहुँच के विज्ञजनों की सूची बनाकर उन तक प्रज्ञा साहित्य पहुँचाने, वापस लाने की योजना को व्यापक बनाने का प्रयत्न किया जाता है। व्यक्तिगत सम्पर्क, परामर्श, अनुरोध, प्रोत्साहन का खाद-पानी मिलने पर यह स्वाध्याय समयानुसार अपने चमत्कारी परिणाम का प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध करता है।

स्वाध्याय प्रक्रिया का ही एक पक्ष दीवारों पर आदर्श-वाक्य लिखकर उन्हें बोलती हुई बनाया जाना है। रास्ता चलते लोगों की दृष्टि उन पर बार-बार पड़ती है, तो अचेतन ढलने की एक विशिष्ट मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया कार्य करने लगती है। घरों में आदर्श वाक्य लगाने का भी समूचे परिवार पर आगन्तुक, अतिथियों पर असाधारण प्रभाव पड़ता है और उनका सम्मान उन प्रेरणाओं के ढाँचे में अनायास ही ढलने लगता है। प्रज्ञा परिजन दीवारों पर वाक्य लिखने-लिखाने की योजना बनाते हैं। जहाँ भी प्रभाव काम देता है आदर्श वाक्यों के पोस्टर लगवाने के लिए प्रयत्नरत रहते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सत्संग प्रक्रिया में हर किसी के लिए अपनी ओर से अपने विचार व्यक्त करना तो कठिन है। पर स्लाइड प्रोजेक्टर, टेपरिकार्डर आदि उपकरणों का सहारा लेकर किसी भी गली-मुहल्ले के लोगों को एकत्रित किया जा सकता है। प्रकाश चित्रों की व्याख्या करते हुए टेपों में भरे सत्संग एवं प्रवचन सुनाते हुए सहज एवं आकर्षक सत्संग का सुयोग भली प्रकार बिठाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त प्रज्ञा पुराण की कथा को कम समय अथवा अधिक समय तक चलने वाली व्याख्या बनाकर लोक मानस के परिष्कार का क्रम चलता रह सकता है। घरों में प्रज्ञा पुराण की नियमित कथा-कहानियों के माध्यम से परिवार निर्माण का प्रयोजन सहज ही पूरा होता रह सकता है।

सत्संग के अन्तर्गत ही जन्म दिवसोत्सव जैसे आयोजन आते हैं। यह हैं तो व्यक्ति निर्माण की प्रक्रिया पर। उपस्थित लोगों को इस अवसर पर परिवार निर्माण तथा समाज निर्माण के सम्बन्ध में भी बहुत कुछ समझाया जा सकता है। घरों में षोडश संस्कार, मुहल्ले-गाँवों में पर्व त्यौहारों के सामूहिक आयोजन इसी सत्संग प्रयोजन की आवश्यकता पूर्ण करते हैं। आश्विन और चैत्र में नवरात्रियों में तो नौ दिन की सामूहिक साधनायें चलती हैं और साथ में रात्रि का ज्ञान यज्ञ भी जुड़ा रहता है, तो उससे स्थानीय स्तर पर प्रायः वैसा ही उपक्रम बन पड़ता है जैसा कि शान्तिकुंज में चलने वाले कल्प-साधना सत्रों का होता है। वर्ष में दो बार यह आयोजन उत्साह भरे वातावरण में सम्पन्न किये जाते रहें, तो उससे सजीवता सक्रियता-निश्चित रूप से उभरी रहेगी।

स्वाध्याय मंडल, प्रज्ञा संस्थानों के लिए तीसरा कार्यक्रम सृजन वर्ग का है। उसके अन्तर्गत रचनात्मक प्रयासों का समावेश है। स्वाध्याय और सत्संग के साथ-साथ इस तीसरे निर्माण को भी सभी प्रज्ञा परिवार, प्रज्ञा परिजन मिल-जुलकर सम्पन्न करें।

इस संदर्भ में तात्कालिक उत्तरदायित्व प्रज्ञा पुरश्चरण को प्रखर एवं व्यापक बनाने का है। वायुमंडल के संशोधन में तुलसी आरोपण एक कारगर शुभारम्भ है। उससे संव्याप्त प्रदूषणों से बचा एवं बचाया जा सकता है। हरितमा संवर्धन की प्रखरता तो उसके साथ प्रत्यक्ष ही जुड़ी हुई है। वृक्षारोपण, पुष्पोद्यान, घरेलू शाकवाटिका जैसे कितने ही वायुशोधक एवं आरोग्यवर्धक प्रयोगों को इससे बल मिलता है। घर में वनस्पति भगवान के देवालय की भूमिका तुलसी का थावला निभाता है। साथ ही उस माध्यम से समूचे परिवार में सरल पूजाक्रम चल पड़ने से आस्तिकता का वातावरण बनता है। अगरबत्ती, दीपक, अर्घ्यजल, खड़े-खड़े जप, ध्यान, परिक्रमा, नमन, वन्दन जैसे सरल उपचारों से हर घर को देव मंदिर बनने का अवसर मिलने से वहाँ आस्तिकता जड़ जमाये रहेगी और उसके दूरगामी परिणाम होंगे।

वायुमण्डल की विषाक्तता जिस प्रकार शहरों की, वनस्पतियों को, पदार्थों को नुकसान पहुँचाती है, उसी चेतनात्मक अदृश्य वातावरण में भ्रष्टता-दुष्टता का प्रवाह भर जाने से सामान्यजनों के चिन्तन,चरित्र और व्यवहार में निकृष्टताओं का विष घुलता है। फलतः लोकमानस में दुष्प्रवृत्तियाँ बन पड़ने से विग्रह खड़े करने और परिस्थितियों में ऐसी प्रतिकूलता भरती है, जिनसे अगणित समस्यायें, विपत्तियाँ, विभीषिकायें उपजतीं तथा सर्वनाश का संकट खड़ा करती हैं। इसके निराकरण में मात्र भौतिक, साम, दाम, दण्ड, भेद से ही काम नहीं चलता अध्यात्म उपचार भी अपनाने होते हैं। इसके लिए इन दिनों प्रज्ञा पुरश्चरण का धर्मानुष्ठान नियोजित किया गया है। उसे हर दृष्टि से सफल और व्यापक बनाने की जिम्मेदारी भी स्वाध्याय मण्डलों को ही सौंपी गई है।

प्रज्ञा पुरश्चरण का स्वरूप सर्वसुलभ है। प्रातःकाल सूर्योदय के समय जो जहाँ जिस भी स्थिति में हो, काम छोड़कर पाँच मिनट मौन मानसिक गायत्री जप, हाथ जोड़कर करें। आँखें बन्द करके प्रातःकालीन सूर्योदय (सविता) का ध्यान करता रहे। पाँच मिनट करने पर उस उपक्रम का पुण्य अनन्त अन्तरिक्ष में बिखर जाने की भावना करे। प्रज्ञा पुरश्चरण का दैनिक कृत्य इतना ही है।

पुरश्चरण प्रक्रिया में जप या हवन भी करना होता है। महीने में एक दिन सभी भागीदार एकत्रित हों। पन्द्रह मिनट प्रज्ञा यज्ञ, पन्द्रह मिनट संगीत, एक घण्टा प्रवचन का क्रम रखें। इस प्रकार डेढ़ घण्टे में ही यह मासिक प्रज्ञा यज्ञ सम्पन्न हो जाता है। अग्निहोत्र की सरलतम विधि पाँच घृत दीप पाँच-पाँच अगरबत्तियों के पाँच गुच्छक-चौबीस बार सामूहिक गायत्री मन्त्रोच्चार तक संक्षिप्त कर दी गई है। इसे कहीं भी बिना किसी झंझट और व्यय के आसानी के साथ सम्पन्न किया जा सकता है।

स्वाध्याय मंडल अपने प्रभाव क्षेत्र में प्रज्ञा पुरश्चरण के अधिकाधिक भागीदार बनायेंगे और इस बात का लेखा-जोखा रखेंगे कि उनके क्षेत्र में निर्धारित विधि व्यवस्था ठीक-ठीक क्रम से सम्पन्न हो रही है। इसकी सूचना शान्तिकुंज भेजते रहेंगे।

इसके अतिरिक्त शिक्षा और स्वास्थ्य सुधार के लिए सभी प्रज्ञा संस्थानों के स्कूली छात्रों को बिना फीस की ट्यूशन पढ़ाने वाली बाल संस्कार पाठशालायें स्थापित करनी चाहिए। इन छात्रों को खेल-कूद, व्यायाम-आसन, प्राणायाम, ड्रिल, फर्स्ट-एड-परिचर्या आदि के प्रशिक्षण में भी संलग्न रखना चाहिए। छोटे रूप में इतना रचनात्मक कार्य कहीं भी आरम्भ किया जा सकता है। इसके लिए अध्यापन की व्यवस्था शिक्षितों के श्रमदान से हो सकती है। खेलकूद के लिए फुटबाल, वालीबाल स्तर के उपकरणो का प्रबन्ध कर दिया जाय, तो उतने भर से उसमें भाग लेने के लिए छोटे-बड़ों का समुदाय एकत्रित होने लग सकता है। शिक्षा और स्वास्थ्य की सेवा साधना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इन दिनों अपने देश की प्राथमिक आवश्यकता है। बाद में तो उसी शृंखला में सहकारी गृह उद्योगों को तथा श्रमदान के आधार पर बन पड़ने वाले अन्यान्य लोकमंगल प्रयोजनों को भी संचालित किया जा सकता है।

सृजन का एक पक्ष सेवा और सुधार है। सुधार के लिए यों तो अनेकों कुरीतियाँ, मूढ़मान्यताओं, अनाचारों से जूझना, जाँत-पाँत, ऊँच-नीच, पर्दा प्रथा, मृतक भोज, भिक्षा व्यवसाय जैसे अनेक कलंक और अभिशापों से पिण्ड छुड़ाना है। पर तात्कालिक और अत्यधिक कष्ट कारक कुप्रथा दहेज और धूमधाम वाली शादियों के प्रचलन को अविलम्ब रोकना है। खर्चीली शादियाँ हमें दरिद्र और बेईमान बनाती हैं। इस तथ्य को जन-जन के गले उतारा जाय। रोकने के लिए निन्दा एवं भर्त्सना का वातावरण बनाया जाय। न्यूनतम इतना तो होना ही चाहिए कि मंडल के सदस्य अपने बच्चों के विवाह बिना दहेज और धूमधाम से करने का प्रण करें। साथ ही ऐसे किसी भी विवाह में सम्मिलित न हों, जिसमें दहेज तथा धूमधाम की अवांछनीयता अपनाई गई हो। भले ही वे विवाह अपने कुटुम्बियों-सम्बन्धियों के यहाँ ही क्यों न हों।

उपरोक्त सृजन प्रयोजनों को भी स्वाध्याय और सत्संग उपक्रम की तरह सभी प्रज्ञा संस्थानों को कार्यान्वित करना है। इसके लिए पाँच संचालकों की मण्डली पाँच-पाँच तक प्रकाश पहुँचाकर तीस विचारशीलों का परिवार तो गठित करे ही, पर साथ ही यह भी ध्यान रखें कि उसे इतने भर में सीमित नहीं करना है, जिनका अधिक व्यापक बनाया जा सकना सम्भव हो, उसके लिए निरन्तर प्रयत्नरत रहना है।

स्मरण रहे हर प्रज्ञा संस्थान का एक वार्षिकोत्सव प्रज्ञा आयोजन भी समारोहपूर्वक हर साल सम्पन्न करना है। जनजागरण और कार्यकर्ताओं को सक्रिय रखने में इन आयोजनों से असाधारण लाभ मिलता है। इसलिए स्थापना के दिन से वार्षिक प्रज्ञा आयोजन की बात ध्यान में रखकर ही स्वाध्याय मण्डल और अपने बहुमुखी उत्तरदायित्व का परिपालन करते रह सकते हैं।

युग साहित्य का लेखन और प्रसार-प्रकाशन

समय की माँग है कि मध्यकालीन मध्य युग के सामन्तवादी विचारों में आमूलचूल परिवर्तन किया जाय। पुरातन काल में हर किसी की सतयुगी मान्यताएँ थीं, अभिनव प्रज्ञा युग में लोगों का चिन्तन और चरित्र मानवी गरिमा के अनुरूप होगा। मध्यकालीन अन्धकार युग ही ऐसा था, जिसमें मनुष्य ने पशुता और पैशाचिकता अपनाई। देश को लम्बी अवधि तक विदेशी पराधीनता के पाश में बँधना पड़ा। आक्रमणकारियों और लुटेरों का त्रास सहना पड़ा। इसमें सहायक देश का सामन्तवादी वर्ग और चिन्तन की प्रमुख भूमिका रही।

राजनैतिक दृष्टि से स्वतन्त्र होने पर भी अनेकानेक विकृत विचारणाओं और परम्पराओं से हम जकड़े हुए हैं। इन्हें हटाये बिना अपनी महान परम्पराओं के अनुरूप प्रगति न कर सकेंगे। आवश्यकता इस बात की है कि उस कूड़े-करकट को बुहार कर बाहर करें, जो हमें अन्धकार में ही भटकाता रहता है। आगे बढ़ने में हजार बाधाएँ उपस्थित करता है।

क्रियाओं से परिस्थितियाँ बनती हैं और क्रियाओं का सूत्रपात विचारणाओं और मान्यताओं से होता है। अतएव उज्ज्वल भविष्य के निर्माण की प्रक्रिया हमें लोकमानस के परिष्कार और सत्प्रवृत्ति संवर्धन से करनी चाहिए। यही विचार क्रान्ति अभियान का ज्ञान यज्ञ है। इसे हम आज की महती सर्वोपरि आवश्यकता समझें और उसकी पूर्ति के लिए अपनी सामर्थ्य भर प्राण-पण से प्रयत्न करें।

विचार परिवर्तन के दो ही प्रमुख माध्यम हैं, एक लेखनी दूसरा वाणी। इन पंक्तियों में लेखनी की अर्थात साहित्य की चर्चा की जा रही है। साहित्य की शक्ति असाधारण है। अभी-अभी कल-परसों की बात है कार्लमार्क्स की लेखनी ने जो सृजा, उसका प्रभाव इतना अधिक हुआ कि संसार की आधी आबादी कम्युनिस्ट शासन के अन्तर्गत है। जो उससे बाहर है, उनसे आधे उस विचारधारा के समर्थक हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि मानव जाति के तीन-चौथाई सदस्य कम्युनिस्ट विचारधारा के प्रभाव से प्रभावित हैं। यह सब एक आदमी द्वारा किए गये साहित्य प्रभाव का प्रतिफल है। इससे पूर्व राजतंत्र को निरस्त करके प्रजातन्त्र का दर्शन और स्वरूप रूसो ने विनिर्मित किया था। यह इतना प्रेरण प्रभावशाली और आकर्षक था कि संसार भर में उसकी हवा फैली। फलतः किसी न किसी प्रकार का प्रजातंत्र सारी दुनिया में छाया हुआ है। राजतंत्र अब नाम मात्र के लिए रह गया है और वह भी अधिक देर तक टिकने वाला नहीं है। इस महान् परिवर्तन को रूसो की लेखनी का चमत्कार ही कह सकते हैं। लोग भूलें नहीं हैं कि जर्मनी में नाजीवाद फैला था। उसी ने जर्मनी को दो महायुद्धों की शुरूआत करने के लिए तैयार किया। वह देश समूचे विश्व पर आधिपत्य जमाने के लिए आतुर हो उठा था। यह दार्शनिक नीत्से की विचारधारा थी। जिसने अतिमानव सिद्धान्त सृजा और उसने सर्वप्रथम जर्मनी को बाद में इटली, आदि को भी अपने लपेट में ले लिया। भुलाने की बात भी नहीं है कि दास प्रथा मिटाने और संसार भर में उस गर्हित प्रचलन को उठाने के लिए अमेरिका की एक लेखिका स्टो के साहित्य ने जनसाधारण का हृदय मथ डाला और उस महान क्रान्ति के लिए व्यापक वातावरण बनाकर खड़ा कर दिया। ईसाई धर्म में आज संसार की एक तिहाई जनता दीक्षित है। यह क्रिश्चियन मिशन अपने धर्म की जानकारी संसार की ६०० भाषाओं में प्रकाशित करने का प्रतिफल है। यह कार्य कुछ ही शताब्दियों में पूरा हो गया और भी बहुत-से सुधार-परिवर्तन संसार में साहित्य के माध्यम से हुए हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आवश्यकता इस बात की है कि युग परिवर्तन की, विचार क्रान्ति की योजना को व्यापक बनाने के लिए उस विचार प्रक्रिया को जन-जन तक पहुँचाने के लिए तदनुरूप साहित्य का सृजन किया जाय।

अभी भी मूढ़मान्यताएँ, कुरीतियाँ, भ्रान्तियाँ, अवांछनीयताएँ जन समुदाय में इतनी अधिक फैली हुई हैं कि शिक्षा प्रसार और बुद्धिवाद की बढ़ोत्तरी का उपयोगी प्रभाव नहीं पड़ा है। चरित्र और चिन्तन की दिशा ऊँची उठाने के स्थान पर नीचे गिरी है। प्रगति का अर्थ मात्र चमक-दमक और विलास-सुविधा के साधनों की अभिवृद्धि नहीं है, वरन यह है कि मनुष्य आहार-विहार में प्रकृति मर्यादाओं का पालन करें। चिन्तन और आहार मानवीय गरिमा के अनुरूप हो। सादा जीवन-उच्च विचार की रीति-नीति सर्वत्र अपनाई जाय। जोग न्यायोपार्जित कमाई पर सन्तोष करें और उसका खर्च इस प्रकार करें कि औसत नागरिक के अनुरूप बजट बने और जो बचे उसे पिछड़ों को उठाने एवं बढ़ाने में लगाया जाय।

यह सब आज कहाँ हो रहा है ? उलटे मद्य-माँस की बढ़ोत्तरी, अपराधों की वृद्धि होती चली जा रही है। इन सब अवांछनीयताओं से विरत करने वाला प्राणवान साहित्य आज चाहिए। चिन्तन की उत्कृष्टता और चरित्र में आदर्शवादिता का समावेश कर सकने वाली पुस्तकें जन-जन तक पहुँचानी चाहिए। छुआछूत, पर्दा प्रथा, दहेज, भिक्षा-व्यवसाय जैसी कुरीतियों को जड़ से उखाड़ने वाली विचारधारा साहित्य के माध्यम से व्यापक बनानी चाहिए। संक्षेप में अवांछनीयताओं का उन्मूलन और सत्प्रवृत्तियों का संवर्धन करने वाले साहित्य की ऐसी प्रचुरता होनी चाहिए, जो प्रचलित अनौचित्य के हर पक्ष में लोहा ले सके और उनके स्थान पर सत्प्रवृत्तियों की स्थापना कर सकें। इस सन्दर्भ में छोटा श्री गणेश युग निर्माण योजना के माध्यम से आरम्भ हुआ है। उसकी प्रकाश किरणें जहाँ भी पहुँची हैं वहाँ हलचल मचे बिना नहीं रही है। २४ लाख के लगभग युग सृजेता मैदान में इसी प्रकाश के कारण खड़े हुए हैं। स्वल्प साधना होने से छोटी सीमा में ही काम हो सकता है और उसका प्रभाव भी थोड़े लोगों तक ही पहुँच सकता है। इसी कारण प्रज्ञा अभियान की युगान्तरकारी, योजना का सीमित साहित्य जो कर सकता था, उसकी तुलना में हजारों गुना सत्परिणाम उसने प्रस्तुत किया है। आवश्यकता इस प्रक्रिया को बड़े रूप से चलाने और व्यापक बनाने का है। इसके बिना अनेकों सम्प्रदायों, देशों और भाषाओं में विभाजित ५०० करोड़ जनसमुदाय तक युगान्तरीय चेतना को पहुँचाना और प्रगतिशील समाज का अभिनव निर्माण संगठन न हो सकेगा। जन-जन को शालीनता का पक्षधर बनाने के लिए आवश्यक है कि वर्तमान कुप्रचलनों से होने वाली हानियों को गले उतारा जाय और सत्प्रवृत्तियों का व्यवहार उज्ज्वल भविष्य के निर्माण में कितना आवश्यक है ? यह प्रभावशाली ढंग से जनमानस में उतारा जाय। यह कार्य युग साहित्य के सृजन और प्रसार की विशालकाय योजना बने बिना संभव नहीं हो सकता। छोटे प्रयास का कितना शानदार प्रतिफल हुआ है, उसे प्रज्ञा मिशन की गतिविधियाँ देखते हुए समझा जा सकता है और यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यदि उसे बड़े परिमाण में सुनियोजित तैयारी के साथ किया जाय, तो उसका प्रतिफल कितना शानदार होगा। यह प्रयास यदि ठीक प्रकार बन पड़ा तो नवयुग का, सतयुग का सूर्योदय कल्पना मात्र न रहेगा। वह प्रत्यक्ष होकर रहेगा।

योजना यह है कि बड़ी पूँजी से एक बड़ा साहित्य तन्त्र खड़ा किया जाय। उससे आज की वैयक्तिक एवं सामाजिक समस्याओं का स्वरूप, कारण, प्रतिफल एवं समाधान विस्तारपूर्वक समझाया गया हो। इस कार्य को तीन भागों में विभाजित करना हो। लेखन, प्रकाशन, प्रसार इन तीनों की कार्यों के लिए पूँजी की व्यवस्था की जाय। भारत की सरकारी मान्यता प्राप्त भाषाएँ १४ हैं। क्षेत्रीय भाषाएँ इसके अतिरिक्त हैं। इन सभी में हाथ डाला जाय। अब तक मात्र हिन्दी में ही प्रधान रूप से लेखन प्रकाशन हुआ है। इस प्रकार प्रायः आधे भारत तक इस प्रकाश को पहुँचाना सम्भव हो सका है। शेष आधे भारत के लिए उनकी परिचित भाषा में कुछ भी छप नहीं सका है। छपा है, तो वह अत्यन्त स्वल्प संख्या में कुछ भाषाओं में छपा है। यह सभी को अपर्याप्त है। कम से कम अपने देश की सभी भाषाओं में तो यह प्रकाशन प्रयास चलना ही चाहिए। इसके पश्चात संसार की ६०० भाषाओं में से जितनी में यह कार्य संभव हो सके, किया जाय। हर देश, धर्म, सम्प्रदाय, भाषा क्षेत्रों की अपनी-अपनी विशेष समस्यायें हैं, उन पर वहीं के लिए जो आवश्यक हो उसे लिखा और प्रकाशित किया जाय। अभी तो भारत की उलझनों का समाधान करने का काम इतना बड़ा है कि उसे कर गुजरना ही एक दुस्साहस कहा जा सकता है।

लोग विभिन्न प्रकार के उद्योग मिलकर खड़ा करते हैं, उनमें करोड़ों की पूँजी लगी होती है। कुछ कारोबार व्यक्ति विशेष के कुछ दान से चलने वाली संस्थाओं के, कुछ लिमिटेड कम्पनियों के होते हैं। इस प्रकार वे लोग अपने ढंग से पूँजी जुटा लेते हैं और समूचा व्यवस्था तन्त्र खड़ा कर लेते हैं। हमें ईसाई मिशन जैसा, गीता प्रेस गोरखपुर जैसा जनसहयोग से चलने वाला तन्त्र खड़ा करना चाहिए। जिसमें ब्याज और सहयोगियों के लिए मुनाफा न निकालना पड़े। यह भार प्रकाशन पर और लद जाने में वह महँगा पड़ेगा। जबकि आवश्यकता इस बात की है कि इस प्रकार का साहित्य लागत मात्र पर अथवा न्यूनतम मुनाफे पर प्रकाशित किया जाय। उसके विक्रेताओं को कमीशन जितना देना पड़े, उतना ही कागज छपाई को जोड़कर मूल्य रखा जाय। ईसाई मिशन में हर महीने करोड़ों रुपये का साहित्य प्रकाशित होता है। वह कई बार तो लागत से भी कम होता है। गीता प्रेस की छोटी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गीता वस्तुतः लागत से कम मूल्य में बिकती है। उतना सम्भव न हो सके, तो जमा खर्च बराबर करने की बात ही सोची जानी चाहिए। मूल्य बढ़ा देने पर छापने, बेचने वाले का मुनाफा भले ही बढ़े, उसका व्यापक प्रसार न हो सकेगा। जिन विषयों में अभी लोगों की अभिरुचि ही उत्पन्न नहीं हुई है।

जिसकी उपयोगिता ही अनुभव नहीं होती, ऐसी वस्तुओं को गले बाँधने के लिए वैसे ही प्रयास करने पड़ते हैं जैसे अब से ७० वर्ष पूर्व चाय कम्पनियों ने घर-घर प्रचारक भेजे थे। वे एक पैसे में एक कुल्हड़ चाय भी पिलाते थे और एक पैकिट घर बनाने के लिए मुफ्त देते थे। उस प्रचार का ही प्रतिफल है कि चाय विक्रेताओं की दुकान पर लाइन लगी रहती है। हर घर में सर्वप्रथम चाय बनाने की आवश्यकता पड़ती है। ईसाई प्रचारकों का भी ठीक यही तरीका है, वे अपना साहित्य लागत मूल्य पर देते हैं। पढ़ाने भर के लिए मुफ्त में घरों पर पहुँचाते और वापस लाते हैं। यह तरीका युग परिवर्तन साहित्य के लिए उपयोगी हो सकता है। अन्यथा मुनाफे के लिए जिन्होंने पैसा लगाया है, वे उद्देश्य को एक कोने में रखकर जो अधिक से अधिक मुनाफा दे, उसे छापने पर दबाव डालेंगे, फिर मिशन न रहकर उसका विषय बदल जायेगा और बाजारू धन्धे की वस्तुएँ बनने लगेंगी।

देश में कितने ही ट्रस्ट ऐसे हैं जिनमें करोड़ों, अरबों की पूँजी लगी है और प्रायः मन्दिर, धर्मशाला बनाने और सदावर्त बाँटने जैसे हाथों-हाथ ख्याति-कीर्ति देने वाले कार्य करते हैं। ऐसे संस्थान देश में हजारों हैं, उन्हीं की पंक्ति में एक और तन्त्र विचारशील दूरदर्शियों द्वारा खड़ा किया जा सकता है। गीता प्रेस का उदाहरण हम सबके सामने हैं। धर्म के नाम पर यदि वैसा मिल सकता है, तो कोई कारण नहीं कि मनुष्य में देवत्व के उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण में समर्थ विचार प्रक्रिया का महत्त्व समझने वाले कहीं कोई भी न मिले। जिनकी संतानें नहीं हैं अथवा बच्चे कमाते-खाते हैं। वे अपने धन का श्रेष्ठतम सदुपयोग इस प्रकार का तन्त्र खड़ा कर सकने में कर सकते हैं।

यहाँ यह भी स्मरणीय है कि अलग-अलग डेढ़ ईंट की मस्जिद बनाने, डेढ़ चावल की खिचड़ी पकाने की जो यश लालसा खींचतान करती है, उसके रहते काम न बनेगा। ऐसा तन्त्र तो विशालकाय एक ही होना चाहिए और उसमें अनेकों का सहयोग उसी प्रकार एकमत होना चाहिए, जैसे अनेकों नाले मिलकर एक नदी और अनेकों नदियाँ मिलकर एक समुद्र बनता है। क्रिश्चियन मिशन ऐसे ही विचारशील सहयोग के बल पर बना है। यह दुर्भाग्य अपने ही देश का है कि व्यक्तिवादी अलगाव और यश लोभ ने अलग-अलग असंख्यों मंदिर खड़े कर दिये हैं और पीछे उनमें झाड़ू लगाने तक का कोई प्रबन्ध नहीं हो पाता।

युग साहित्य प्रकाशन के लिए शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक संतुलन, उत्कृष्ट चिन्तन, आदर्श चरित्र, समाजोचित प्रथा, प्रचलन, बच्चे, महिला, व्यवसाय, चिकित्सा, नागरिकता, शासन, धर्म, अध्यात्म, सहकार, शिष्टाचार, परिवार, मनोरंजन, समाज जैसे अनेकों विषय ऐसे हैं, जिनमें असाधारण विकृतियाँ भर गई हैं। उन्हें स्वच्छ करने और नये सिरे से नये निराकरण, उपयोगी सुझाव प्रस्तुत करने की आवश्यकता है। प्रतिगामिता के स्थान पर प्रगतिशीलता अपनाई जानी चाहिए और उसी आधार पर अभिनव साहित्य सृजा जाना चाहिए। उसके प्रकाशन का प्रसार विक्रय की सुनियोजित व्यवस्था बननी चाहिए। इसके लिए पूँजी ही नहीं दूरदर्शी संचालक तन्त्र की भी उतनी ही आवश्यकता है।

खरीदना सर्वत्र संभव न हो सकेगा, इसलिए विचार क्रान्ति को ध्यान में रखते हुए ऐसे पुस्तकालयों की भी नितान्त आवश्यकता है, जो घर-घर साहित्य पहुँचाने और वापस लाने का भी उत्तरदायित्व सँभाल सकें। इतना छोटा काम प्रज्ञा परिवार का कोई भी छोटा-बड़ा सदस्य निजी प्रयत्न से अथवा मिल-जुलकर पारस्परिक सहयोग से सहज सम्पन्न कर सकता है।

समय की इस महती आवश्यकता को पूरा करने के लिए करोड़ों की पूँजी और अनुभव व्यवस्था बुद्धि की आवश्यकता है, जो इस तन्त्र को दूरदर्शितापूर्वक सम्पन्न कर सके और लेखन, प्रकाशन, प्रेस एवं प्रसार की सर्वतोमुखी योजना सम्पन्न कर सके, जब तक वह व्यवस्था नहीं बनती, शान्तिकुंज की छोटी बचत पूँजी को इस प्रयोजन के निमित्त लगाया जा रहा है। लेखन कार्य मिशन के सूत्र-संचालकों ने स्वयं सँभाला है। लेखनी आगे सतत् चलती रहेगी। अन्य प्रकाशकों के पास अच्छे साहित्य का अभाव होता है, अपने साथ यह समस्या नहीं है। कठिनाई बस यही है कि मथुरा एवं शान्तिकुंज के विशाल प्रकाशन केन्द्र होते हुए भी जिस मात्रा में एवं जितनी भाषाओं में अनुदित करके साहित्य को छापा जाना है, वह नहीं बन पा रहा है। सूत्र संचालक स्वयं अशान्वित रहे हैं कि ऐसा तन्त्र विकसित होगा एवं युग साहित्य को जन-जन तक पहुँचाने में सफल होगा। प्रज्ञा संस्थानों के निर्माण का संकल्प लिया था। उसे अल्पावधि में पूरा कर दिखाया गया। प्रज्ञा पुराणों का सृजन भी ऐसा ही भागीरथी संकल्प था। अब मिशनरी स्तर पर प्रचार साहित्य एवं विचार क्रान्ति हेतु अनिवार्य साहित्य जब छापना है, तो वह संकल्प भी निश्चित ही पूरा होगा और हो भी रहा है।

सर्वोत्कृष्ट परमार्थ—ज्ञान यज्ञ

भगवान ने गीता में कहा है—

"श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाद् ज्ञान यज्ञः परंतपः।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"हे परंतप ! द्रव्य-यज्ञ से ज्ञान-यज्ञ श्रेष्ठ है क्योंकि जितने भी कर्म हैं, वे सब ज्ञान में ही समाप्त होते हैं। ज्ञानदान सर्वोपरि पुण्य है, शुभ कार्य है।"

अपने उपरोक्त कथन में भगवान ने द्रव्य-यज्ञ और ज्ञान-यज्ञ की तुलना में ज्ञान-यज्ञ को द्रव्य-यज्ञ से श्रेष्ठ बतलाया है। ऐसा क्यों है—इस पर विचार करने से पूर्व यह समझ लेना आवश्यक है कि द्रव्य-यज्ञ और ज्ञान-यज्ञ है क्या ? द्रव्य-यज्ञ का एक अर्थ अथवा आशय सामग्री द्वारा अग्नि में मन्त्रोच्चार के साथ हवन करना है। दूसरा तात्पर्य यह है कि द्रव्य अर्थात भौतिक विभूतियों का धर्मोक्त व्यवहार करना। अपवर्ग चतुष्टय के अर्थ की उपलब्धि और उसका उपभोग। द्रव्य-अर्थ अथवा विभूतियों को इस प्रकार से उपार्जित करना जिससे न तो समाज में किसी को कष्ट हो और न अपने को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष में किसी कलंक, अपवाद, भय अथवा आशंका का भागी बनना पड़े। साथ ही उसका उपभोग एवं उपयोग इस प्रकार करना, जिससे अपना, अपनी आत्मा का और समाज का सच्चा हितसाधन हो—द्रव्य-यज्ञ कहा जा सकता है।

यज्ञ का सूक्ष्म अर्थ पदार्थ एवं क्रिया के यापन की उस विधि की ओर संकेत करता है, जिसके अन्तर्गत परमार्थ का कोई भाव चल रहा हो। जो मनुष्य शुभ उपायों द्वारा द्रव्य उपार्जन करता है, उसके उपार्जन में समाज की आर्थिक उन्नति की भावना रखता है, अपने धनाभाव को दूर करना नैतिक कर्तव्य समझता है, प्राप्त धन में आत्मभाव न रखकर उसको समाज की सम्पत्ति मानता है और उसी भाव से आगे क्रियाशील रहने के लिए अपने पर जरूरत भर खर्च करता है, वह इस ढंग से कि उसका पूरी तरह तन, मन और बुद्धि की शक्ति का विकास करने में उपयोग हो। शेष का उचित भाग समाज के कल्याण के लिए दान द्वारा, सहायता द्वारा अथवा संस्थापना द्वारा खर्च करता है, परमार्थ, परोपकार और पुण्य कार्यों में लगाता है वह निश्चय ही द्रव्य-यज्ञ करता है, जिसका फल किसी प्रकार भी अग्निहोत्र से कम नहीं होता।

जिस प्रकार इस द्रव्य-यज्ञ का कर्मयोग से सम्बन्ध है, उसी प्रकार ज्ञान-यज्ञ का सम्बन्ध ज्ञानयोग से है। द्रव्य की भाँति ही ज्ञान का उपार्जन करना, उसका संचय तथा अभिवर्धन करना, शारीरिक, सांसारिक संकटों के मिटने और आत्मा के बन्धन दूर करने के साथ संसार में विद्या का प्रकाश फैलाने, अविद्या को मिटाने, माया मोह को नष्ट करने में उसका यापन और वितरण करना—ज्ञानयज्ञ ही कहा जाएगा।

विधिभाव से करने और सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण करने पर विदित होगा कि इन दोनों यज्ञों का परम-परिणाम एक ही है तथापि भगवान ने द्रव्य-यज्ञ की अपेक्षा ज्ञानयज्ञ को श्रेष्ठ बतलाया है। वह किन कारणों से ? उनमें से एक कारण तो भगवान ने स्वयं ही प्रकट कर दिया है—वह यह कि जितने भी कर्म हैं, उनकी परिसमाप्ति ज्ञान में ही होती है। निश्चय ही इन कर्मों की परिसमाप्ति का आध्यात्मिक अर्थ तो यही है कि ज्ञान प्राप्त हो जाने पर किये हुये कर्मों के सारे अच्छे-बुरे फल नष्ट हो जाते हैं और पुण्य-पाप दोनों के बन्धनों से छूटकर सर्वथा मुक्त हो जाता है, अपनी मूल परस्थिति को प्राप्त कर लेता है। इसी तात्पर्य को इन शब्दों में भी कहा जा सकता है कि ज्ञानी को कर्मों का बन्धन नहीं लगता वह सर्वथा उससे मुक्त रहता है। ऐसा क्यों होता है ? इसलिए कि ज्ञानी जो कुछ करता है करने योग्य कर्त्तव्यों को परमात्मा के लिए ही, उसकी आज्ञा अनुभव करता हुआ ही करता है। वह जो कुछ करता है उसका फल भी उसी को समर्पित कर देता है। ऐसे त्यागी तथा निर्लिप्त ज्ञानी पुरुष को कर्मों का फल बोध भी किस प्रकार रहता है ?

किन्तु इसके अतिरिक्त—"कर्म की परिसमाप्ति ज्ञान में ही होती है"—का एक भौतिक तथा लाक्षणिक अर्थ भी है। वह यह कि ज्ञान में ही कर्मों की पराकाष्ठा होती है। अर्थात कर्म का सांगोपांग ज्ञान रखने वाला कर्म का पारंगत कुशलता के साथ करता है और उसी के अनुसार उसके पुरस्कार का अधिकारी होता है।

भगवानोवाचित इस कारण के अतिरिक्त ज्ञान-यज्ञ की श्रेष्ठता के अन्य कारण भी हैं। जैसे—द्रव्य-यज्ञ का आयोजन करने में बहुत-से उपादान एवं उपकरणों की आवश्यकता होती है, जबकि ज्ञानयज्ञ के लिए किन्हीं विशेष साधनों की जरूरत नहीं होती है। द्रव्य-यज्ञ का सम्पादन करने के लिए द्रव्य की जरूरत है, पर ज्ञान-यज्ञ में इसकी आवश्यकता नहीं है। ज्ञान-यज्ञ के लिए जिज्ञासा और बुद्धि दो साधनों की जरूरत है वह मनुष्य को निसर्ग रूप से ही मिले रहते हैं। विचार कृषि के लिए स्वाध्याय और स्वाध्याय के लिए पुस्तकों की जो आवश्यकता है, वह किसी भी योग्य पुस्तकालय से पूरी हो सकती है। पुस्तकें माँगकर भी काम चलाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त यह स्वाध्याय सत्संग के माध्यम से भी किया जा सकता है। इसमें तो किसी प्रकार के व्यय की आवश्यकता है ही नहीं ?

बिना धन के द्रव्य-यज्ञ कठिन है। इसलिए उसकी आराधना के लिए आर्थिक पुरुषार्थ करना ही होगा। आज की दुनिया में यदि आर्थिक पुरुषार्थ की प्रकृति सर्वथा पवित्र एवं निष्कलंक बनाये रखना असम्भव नहीं तो कम से कम कठिन तो है ही। किन्तु ज्ञान-यज्ञ की साधना में ऐसी कोई कठिनाई नहीं है। थोड़ा सजग रहकर ज्ञान का उपार्जन पवित्रतापूर्वक किया जा सकता है। अनैतिक एवं अनुचित विचार-संस्कार से थोड़ा सतर्क रहकर विशुद्ध एवं कल्याणकारी ज्ञान का अर्जन किया ही जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

द्रव्ययज्ञ के विस्तार के लिए जो दान अथवा परोपकार का आयोजन चलाना होगा, उसमें प्रदत्त धन के किसी अपात्र के पास पहुँच जाने की आशंका हो सकती है। वह अपात्र उसका दुरुपयोग कर हित में अहित की सम्भावना उपस्थित कर सकता है। किन्तु ज्ञान-यज्ञ में वह आशंका नहीं रहती। उसके लिए पात्र-अपात्र का बन्धन नहीं होता। बल्कि ज्ञान का दान उनके लिए तो और भी उपादेय है, जो पथ भूले हुये हैं और अविद्या के अन्धकार में भटक रहे हैं और यदि सच कहा जाय तो ज्ञानदान के अधिक अधिकारी वही हैं, जिनका मार्ग ठीक नहीं है जिनके संस्कार विकृत हो गये हैं।

द्रव्य क्षरणशील उपादान है। वह आज है तो यह निश्चय नहीं कि कल भी रह सकता है। ऐसी स्थिति में किसी भी द्रव्य-याज्ञिक को किसी समय भी अधनता का सामना करना पड़ सकता है और तब उसके उस कार्यक्रम में व्यवधान पड़ सकता है। किन्तु ज्ञान-यज्ञ में उसकी संभावना नहीं रहती। ज्ञान ही एक ऐसा तत्त्व है, जो क्षरणशील से सर्वथा मुक्त रहता है। ज्ञान बढ़ता है घटता तो कदापि नहीं और नाश तो उसका कभी होता ही नहीं है। द्रव्य-यज्ञ का द्रव्य के साथ जाता ही नहीं, उसका पुण्य ही साथ जाता है। जबकि ज्ञान-पुण्य साथ भी मनुष्य के साथ जाता है। जिससे पुण्य-बल पर या तो परिपाक में वह बन्धन मुक्त हो जाता है। अथवा परिपक्वता के लिए उसे मनुष्य योनि ही प्राप्त होती है, जिसमें होश आते ही पूर्वजन्मीय ज्ञान प्रतिबिम्बित हो उठता है।

द्रव्य-यज्ञ के परमार्थ पथ में किसी की द्रव्य द्वारा एक छोटी सीमा तक ही सहायता सम्भव हो सकती है और वह भी कुछेक पात्रों को ही। किन्तु ज्ञानयज्ञ में एक पुस्तक, एक प्रवचन और एक पर्यटन द्वारा सैकड़ों-हजारों की मुक्ति से लेकर मुक्ति तक सहायता की जा सकती है। द्रव्यदान पाकर कोई बहुत कम समय तक ही अपनी कठिनाई दूर रख सकता है किन्तु जिसको ज्ञानदान कर दिया जाता है, उसके लिए एक तो कठिनाइयाँ महत्वहीन हो जाती हैं, दूसरे वह उस ज्ञान द्वारा हर देशकाल में अनुकूलताएँ अर्जित कर सकता है। जहाँ धन उसे कुछ समय तक ही सहायक तथा लाभकर होगा, वहाँ ज्ञान उसे आजीवन ही नहीं, जीवनोपरांत भी साथ देता रहता है। इन्हीं सब सुविधा व्यवस्था के कारण ही ज्ञानयज्ञ को द्रव्ययज्ञ से श्रेष्ठ बताया और माना गया है।

ज्ञान-यज्ञ का पारलौकिक फल जो होता है, वह तो होता ही है। इस लोक में भी उसका लाभ कम नहीं होता। ज्ञान द्वारा ही तो मनुष्य को आत्मा की अमरता का, परमात्मा की व्यापकता एवं विभुता का, उसके प्रेम, न्याय और अनुकम्पा का और मानव जीवन के महान कर्त्तव्यों का बोध होता है। ज्ञान द्वारा ही कुविचारों और कुकर्मों के प्रति घृणा होती है और परमार्थ पथ पर चलने की प्रेरणा होती है। ज्ञान के आधार पर मनुष्य साधनहीन स्थिति में भी अपनी आत्मिक शांति और मानसिक स्थिरता बनाए रहता है। अभाव, आवश्यकतायें अथवा गहनताएँ अपनी तृप्ति के लिए उसे अनुचित मार्ग पर ढकेल सकने में सफल नहीं हो पातीं। ज्ञानवान मनुष्य अनबूझ अथवा प्रकृतिक प्रेरणा के वश होकर कोई काम नहीं करता। वह जो कुछ करता है, भली-भाँति सोच-विचारकर विवेकपूर्ण ही करता है जिससे वह कर्म के दुष्परिणामों और उनके बन्धनों से बहुतायत में बचा रहता है। ज्ञान आलोक परलोक के विस्तृत पथ पर प्रकाश एवं दिशिदाता ध्रुवतारों की भाँति सदैव साथ बना रहता है जिससे मनुष्य के पथभ्रष्ट होने का भय नहीं रहता और वह सरलतापूर्वक अपने लक्ष्य तक पहुँच जाता है।

ज्ञान ही मनुष्य को अन्य जीवधारियों से भिन्न तथा उत्कृष्ट बना देता है। अन्यथा मनुष्य भी अन्य प्राणियों की भाँति एक साधारण जन्तु ही है। ज्ञान के आधार पर ही वह अपनी मानसिक तथा शारीरिक क्षमताओं एवं योग्यताओं का विकास कर उन्नति करता है और सृष्टि में परमात्मा के बाद अपना विशिष्ट स्थान बनाता है। मानवीय प्रतिभा का विकास ज्ञान द्वारा ही होता है। उसके विवेक में आध्यात्मिक प्रकाश का कारण ज्ञान ही होता है और ज्ञान के आधार पर ही मनुष्य आत्मा-परमात्मा, सत्य-असत्य, प्रकृति और पुरुष को पहचानकर उनसे यथायोग्य सम्बन्ध स्थापित कर पाता है।

ज्ञान की महिमा अपार है। जो ज्ञानार्जन के लिए उत्सुक होता है, उस पर परमात्मा की महती कृपा ही समझनी चाहिये। ज्ञान की जिज्ञासा इस बात की सूचना है कि मनुष्य का भव-बन्धन से त्राण पाने का संयोग आ लगा है। जिन्होंने भी संसार के दुःखों से त्राण पाया है और पारलौकिक संसार में अपना स्थान सुरक्षित किया है उन्होंने एकमात्र सद्ज्ञान का ही अवलम्ब लिया है। संसार के दुःखों से परित्राण पाने के लिये मनुष्य को सदैव ही ज्ञान की आवश्यकता रही है। इसलिए सभी यज्ञों में श्रेष्ठ मनुष्य को ज्ञान-यज्ञ का ही यजन एवं विस्तार करते रहना चाहिए। फिर उसके लिए शिक्षा, स्वाध्याय अथवा सत्संग जिसकी भी आवश्यकता हो, उसे पूरा करने में प्रमाद अथवा आलस्य नहीं करना चाहिये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

युग सृजन के सन्दर्भ में प्रगतिशील लेखन कला

नव-निर्माण के आलोक वितरण में लेखन कला का योगदान

कला-कौशलों में अधिकांश ऐसे हैं, जो आजीविका उपार्जन, सम्मान अर्जित करने में काम आते हैं। कुछ विनोद-मनोरंजन की आवश्यकता पूर्ण करते हैं। कुछ से निजी प्रतिभा को उभारने का प्रयोजन सधता है। आमतौर से कला-कृतियाँ इसी परिधि में परिभ्रमण करती रहती हैं। पर उनमें से कुछ ऐसी हैं, जो उपरोक्त प्रयोजनों की तो न्यूनाधिक मात्रा में पूर्ति करती ही हैं, बड़ी बात यह है कि यदि सदुपयोग बन पड़े तो विश्व मानव की असाधारण सेवा-साधना करने में भी वे उच्चस्तरीय योगदान देती हैं।

इस स्तर की कलाओं में दो मूर्धन्य हैं : (१) भाषण कला, (२) लेखन कला। संगीत को चाहें तो तीसरे नम्बर का कह सकते हैं। अथवा उसे वाणी प्रधान होने के कारण भाषण का ही एक अंश भी कह सकते हैं। अभिनय संगीत का सहोदर है। इस प्रकार वाणी के माध्यम से व्यक्त होने वाली कलाकारिता को भाषण, संगीत और अभिनय का समुच्चय भी कह सकते हैं। वर्गीकरण पृथक-पृथक भी हो सकता है। यहाँ प्रसंग एकीकरण या पृथक्करण का नहीं—यह है कि व्यक्ति की गरिमा बढ़ाने वाली और विश्व मानव की सेवा-साधना में उसके सदुपयोग के महती भूमिका होनी थी, जानकारी सभी को है। सभी उसे स्वीकार भी करते हैं। शिक्षितों की तरह वह अशिक्षितों को भी ज्ञान-गरिमा के आलोक से लाभान्वित करती है।

युगान्तरीय चेतना को अग्रगामी बनाने में मूर्धन्य भूमिका निभाने वाली भाषण कला का व्यापक शिक्षण प्रज्ञा-अभियान के द्वारा अत्यन्त उत्साहपूर्वक सुनियोजित ढंग से किया जा रहा है। प्रज्ञापुराण के कथा-प्रवचनों को इस प्रशिक्षण का सरल किन्तु अति महत्त्वपूर्ण श्री गणेश कहा जा सकता है। स्लाइड प्रोजेक्टरों के चित्रों की व्याख्या करने से ही घटनाक्रम का आधार लेकर बिना लड़खड़ाये देर तक सरस प्रभावी भाषण कर सकना नौ सिखियों के लिए भी सम्भव हो सकता है। इन दिनों युग-सृजन के लिए जिस कला-कौशल की सर्वोपरि आवश्यकता थी, उस सर्व सुलभ, सर्वजनीन प्रक्रिया को आगे रखकर समय के परिवर्तन में योगदान देने वाला एक महत्त्वपूर्ण आधार खड़ा किया गया है। शांतिकुंज में एक महीने के युगशिल्पी सत्रों में सम्मिलित होकर कोई भी प्रतिभावान उस कौशल का सहज अर्जन कर सकता है।

संगीत शिक्षा को भी अब नव-निर्माण के आलोक वितरण प्रक्रिया के अन्तर्गत भाषण कला सिखाने जितना ही महत्त्व दिया जाने लगा है। संगीत की उच्च कक्षाएँ तो समय साध्य हैं और उस स्तर की मौलिक प्रतिभा रखने वालों के लिए ही ग्राह्य हैं। न वह कम समय में आती हैं न उसे हर कोई सीखने में समर्थ हो सकता है, जिसमें उस स्तर की मौलिक विशेषता है तथा जो धैर्यपूर्वक उस साधना में लम्बे समय तक संलग्न रह सकते हैं, उनके लिए उस स्तर का भी विशेष प्रबन्ध है। किन्तु जनमानस को आन्दोलित करने और नव-सृजन में सहयोगी बनने की उमंगें करने के लिए युग संगीत का आश्रय लेना तात्कालिक आवश्यकता जुटाने जैसा आवश्यक समझा गया है। घर-घर अलख जगाने और जन-जन के मन को गुदगुदाने, हुलसित करने के लिए भाषण कला से भी अधिक संगीत को प्रश्रय देना पड़ा है। देहातों में बसी हुई अशिक्षित तीन-चौथाई देश की जनता को युग चेतना से अवगत कराने के लिए और कोई मार्ग इतना सरल एवं प्रभावी है नहीं।

शांतिकुंज में इन दिनों जिस युग संगीत शैली का अभिनव प्रशिक्षण किया जा रहा है, उसमें दो ही वाद्य यंत्रों को मान्यता दी गई है, (१) ढपली, (२) त्रिकोण। त्रिकोण लोहे की छड़ से बना उपकरण है, जो मंजीरे का स्थान और भी अच्छी तरह ग्रहण करता है। ढपली एक हाथ से थामी जाती है और दूसरे से बजाई जाती है। उसमें ढोलक, तबला, मृदंग, पखावज, करताल, घुँघरू, मंजीरा जैसे कितने ही ताल वाद्यों का एक साथ समन्वय है। इतने पर भी अत्यन्त सस्ती, हल्की, छोटी होने के कारण कहीं भी झोले में रखकर ले जा सकने योग्य है। साथ ही देखने में आकर्षक भी है। ढपली और त्रिकोण बजाने और साथ-साथ मिलकर जाने वाली दो व्यक्तियों की एक टोली, परिपूर्ण-संगीत मंडली की भूमिका निभा लेती है। बसों, रेलों, पार्कों में, घाटों, प्लेटफार्मों तथा मन्दिर, कारखानों के फाटकों से सटे छायादार स्थानों पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बैठकर दो युग गायकों की जोड़ी अपना प्रचार कार्य आरम्भ कर सकती है और देखते-देखते सौ दो सौ को युग चेतना से अवगत, सहमत कर सकती है। सभा-सम्मेलनों की खर्चीली और कष्ट साध्य प्रक्रिया कब तक, कहाँ तक वहन की जायेगी ? बादलों की तरह युगशिल्पियों को पिछड़े उपेक्षित अनगढ़ क्षेत्रों में जाने और नव-प्रभात के तकाजे से परिचित करने का व्रत लेना होगा। जन-जन से सम्पर्क साधने और उनके अन्तराल में बिना बुलाए घुस पड़ने में हमें यवन की व्रतशीलता का अनुगमन करना होगा। ऐसे युग संगीत से अभ्यस्त होने के लिए शान्तिकुंज में एक महीने के युगशिल्पी सत्र में सम्मिलित होना पर्याप्त है। उतने में ही उपरोक्त गायन-वादन की स्ट्रीट सिंगर स्तर की सरल पद्धति को अभ्यास में उतार लेना सम्भव हो सकता है।

अभिनय शिक्षा का स्वतंत्र प्रबन्ध तो नहीं बन पड़ा, पर संगीत के साथ—'एक्शन साँग' जैसी प्रक्रिया का समावेश वर्तमान शिक्षण पद्धति में कर दिया गया है। युग गायक न केवल गीत गाते, ढपली, तिकोन बजाते हैं वरन् साथ-साथ भावाभिव्यक्ति भी करते हैं। उन्हें उसके लिए गायक की मस्ती तन्मयता का परिचय देने वाले अंग-संचालन का सामान्य-सा अभ्यास करा दिया जाता है। इतने से भी उस गायन में जान आ जाती है और देखने-सुनने वाले उसकी उमंग तरंगों में बहने लगते हैं।

वह दिन दूर नहीं, जब युग चेतना उभारने में प्रवचन, गायन की तरह ही अभिनय की अपनी स्वतंत्र भूमिका होगी। नाटक-मंडलियाँ प्रशिक्षित की जाने वाली हैं जो—उपेक्षित देहातों के लिए आर्थिक दृष्टि से भी भारी न पड़ें। स्वल्प साधनों से प्रदर्शन की व्यवस्था बन सकें, साथ ही इस ढाँचे का मूलभूत उद्देश्य सर्वतोमुखी विचार क्रान्ति का भी पथ-प्रशस्त हो सके। नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक क्रान्ति की विविधि सुधारात्मक संघर्षात्मक, आवश्यकता को किस प्रकार पूरा किया जाना चाहिए ? इसका प्रभावोत्पादक मार्गदर्शन नाटक मंडलियों द्वारा भली प्रकार सम्पन्न हो सकेगा। इनके लिए छोटे-छोटे गीत-नाटक लिखने, पात्रों को प्रशिक्षित करने, उनके लिए आवश्यक सरंजाम जुटाने की व्यवस्था बन रही है। पिछले दिनों रास, नौटंकी, ख्याल, लावनी, नाच, रंग, भजन मंडली आदि के माध्यम से किसी न किसी रूप में गीत, वाद्य एवं अभिनय को सुयोग्य बनाने का वैयक्तिक प्रयत्न छुट-पुट रूप से चलता रहा है। उनका प्रयोजन लोकरंजन के द्वारा आजीविका उपार्जन भर था। फिर भी वे किसी न किसी रूप में चलती रही हैं और अभी भी सिनेमा जैसे समर्थ साधन को चुनौती देते हुए अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं यदि इस क्षेत्र को उद्देश्यपूर्वक और आधुनिक सूझ-बूझ से संयुक्त करने में इच्छित सफलता मिल गई तो देश के जिस तीन चौथाई क्षेत्र में लोकरंजन, लोक शिक्षण का कोई प्रवेश नहीं है, वहाँ इन सस्ते अभिनय मंडलों से न केवल मुर्दनी हटेगी, वरन् वह मनोभूमि भी बनेगी जिसे आधारशिला के रूप में प्रयुक्त करके नवयुग का भव्य भवन खड़ा किया जाना है।

ऊपर की पंक्तियों में लोकमानस के परिष्कार में महती भूमिका निभाने वाली सरस्वती साधना की वाक् क्षमता के सृजनात्मक उपयोग की चर्चा हुई। किन्तु यह मात्र एक पक्ष है। दूसरा पक्ष लेखनी है। यों इसका प्रभाव सभामंचों में तत्काल उत्तेजना उत्पन्न करने जैसा तो नहीं है पर स्थायित्व की दृष्टि से, दूरगामी परिणाम उत्पन्न करने की दृष्टि से इसकी उपयोगिता-आवश्यकता भी अपने ढंग की अद्भुत है। किसी तथ्य से सम्बन्धित तर्क, प्रमाण, उदाहरण एवं आधारों को गहराई से समझने के उपरान्त ही कोई व्यक्ति उन प्रतिपादनों का स्वरूप-माहात्म्य समझ सकने में समर्थ होता है। चिन्तन में स्थायित्व लाने और उसे प्रौढ़-प्रखर बनाने के लिए स्वाध्याय के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं। वह सत्संग से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। सत्संग निरन्तर एवं नियमित नहीं चल सकता। अभीष्ट जिज्ञासाओं का समाधान करने वाले बहुमुखी ज्ञान विज्ञान के भाण्डागार महामनीषी अब हैं कहाँ ? जो हैं वे इतने व्यस्त हैं कि उनके साथ—मनचाहे समय पर—मनचाही अवधि तक सम्पर्क साधना—सान्निध्य रहना असम्भव है। सत्संग की विडम्बना रचने वाले दिग्भ्रान्त लोगों की औंधी-सीधी प्रतिगामी तोता रटन्त सुनने से बात बनती नहीं वरन् और उल्टी बिगड़ती है। कुसंगों से एक तरह से मनुष्य बिगड़ता है। तथाकथित सत्संगों से दूसरी प्रकार की हानि होती है। अर्थ-विक्षिप्त, निठल्ले, दिग्भ्रान्त स्तर के चित्र-विचित्र वेषधारी लोगों के तथाकथित धार्मिक सत्संगों में सम्मिलित होने वाले अवसरवादी, भाग्यवादी, पलायनवादी, अवास्तविक-कल्पनाओं की रंगीली उड़ानें उड़ने वाले ही बनते हैं और भटकावग्रस्त होकर यथार्थतावादी समझ-बूझ तथा क्रियाशीलता तक से हाथ धो बैठते हैं। इसलिए विचारशील लोग अपने स्त्री बच्चों को कुसंगों की तरह इन नामधारी सत्संगों से भी बचाते हैं। जो ढील छोड़ते हैं, वे घाटे में रहते हैं।

यहाँ यह कहा जा रहा है कि युग मनीषा को उभारने के लिए यथार्थवादी, आदर्शवादी स्वाध्याय की अनिवार्य आवश्यकता है। इस आवश्यकता की पूर्ति सत्साहित्य के अध्ययन, अध्यवसाय के अतिरिक्त और किसी प्रकार होती नहीं। इन दिनों सच्चे सत्संगों की आवश्यकता मात्र स्वाध्याय से ही बन पड़ती है। उसे सुविधाओं के समय, रुचि के अनुसार कितनी ही देर तक कहीं भी किया जा सकता है। दूर जाकर सत्संग सुनने में मार्ग व्यय के अतिरिक्त निर्धारित समय पर अपना काम छोड़कर भी पहुँचना पड़ता है। वह सदा सबके लिए सम्भव नहीं। सही तरीका नियमित स्वाध्याय का ही है। आज की परिस्थितियों में तो उसे युग धर्म का अति महत्त्वपूर्ण अंग समझा जा सकता है। विचार क्रांति में पुरातन मान्यताओं, आदतों के उलटने और नए निर्धारणों को गले उतारने की आवश्यकता पड़ती है। अभ्यस्त ढर्रे से भिन्न प्रकार के प्रतिपादनों की विनिर्मित रुझान सहज

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही स्वीकार नहीं करता। उसमें हजार नुक्ता-चीनी करता है और हजार बहाने बनाकर उसे अपनाने से कतराता है। इस पूर्वाग्रही मन:स्थिति को बदलने के लिए पुराने लोहे को गलाकर नया औजार ढालने जैसी भट्टी तथा घन निहाई चाहिए। यह समर्थ स्वाध्याय के अतिरिक्त और कहीं उपलब्ध हो नहीं सकती।

कार्लमार्क्स का साम्यवाद, रूसो का प्रजातन्त्र, नीत्से का नास्तिकवाद मात्र प्रेरणाप्रद साहित्य के माध्यम से ही विश्वव्यापी बने और असंख्यों को अपना अनुयाई बनाने में सफल हुए। ईसाई धर्म संसार के दो तिहाई लोगों के मस्तिष्कों पर शासन कर रहा है। इस सफलता में वाणी को कम और साहित्य को श्रेय अधिक है। गीता, रामायण ने भारतीय जनता के मन:क्षेत्र को कितने अंशों में प्रभावित किया है, इसका लेखा-जोखा लेने से प्रतीत होता है कि इन दो कृतियों ने लाखों धर्म प्रचारकों से बढ़कर जनमानस पर छाप छोड़ी है। तुलसी की वाणी कम और लेखनी अधिक मुखर हुई है।

लोकमानस की अभ्यस्त मान्यताओं को उलटने के लिए आग्रहों का खोखलापन और युग चेतना का सशक्त पक्ष विज्ञ समुदाय के गले उतारने की आवश्यकता है। यह प्रयोजन युग साहित्य के अतिरिक्त और किसी प्रकार सिद्ध होने वाला नहीं है। समय की पुकार पूरा कर सकने वाले साहित्य का इन दिनों एक प्रकार से सर्वथा अभाव है। यथार्थवादी विचारशीलता के सहारे व्यक्ति और समाज की असंख्यों समस्याओं के सही समाधान प्रस्तुत करने वाली पुस्तकें चिराग लेकर खोजनीं पड़ेंगी। कूड़े-करकट के पहाड़ खड़े हैं। साहित्य का लेखन-प्रकाशन और विक्रय दिनों-दिन बढ़ रहा है। पर उसमें से मानवी समस्याओं का समाधान करने में समर्थ-प्रगति और शक्ति के पथ पर अग्रसर करने में सक्षम कितना है ? यह परखना हो तो निराशा ही हाथ लगेगी। जो है उसमें पतन और विभ्रम की दिशा में धकेलने वाला ही हाथ है। उपयोगी ढूँढ़ना हो तो पहाड़ खोदने पर मुश्किल से ही कोई चुहिया हाथ लगेगी।

जिस प्रकार निरर्थक, पतनोन्मुख और भटकाव वाला परामर्श ही पग-पग पर सुनने को मिलता है, वैसी ही स्थिति साहित्य की है। कोसने से कुछ बनने वाला नहीं है। अभाव की पूर्ति के लिए जिस प्रकार अन्यान्य क्षेत्रों में सृजन के लिए जागृत आत्माओं को संलग्न होना है, उसी प्रकार भ्रान्तियों को निरस्त करने वाले-भविष्य संरचना का प्रकाश देने वाले साहित्य का सृजन भी हमें ही करना है। थोड़ी योग्यता और छोटी सामर्थ्य देखकर असमंजस में पड़ने की आवश्यकता नहीं। समुद्र सुखाने की साध लेकर 'करो या मरो' पर उतारू टिटिहरी का उदाहरण जब तक जीवित है, तब तक किसी को निराश होने की आवश्यकता नहीं। बालों में बालू भरकर हनुमान, अंगद और नल-नील की पंक्ति में जा खड़ी होने वाली गिलहरी की आत्मा का उद्बोधन किसी स्वल्प सामर्थ्य वाले को यह सोचने नहीं दे सकता कि उच्च शिक्षा या साधन-विपुलता के अभाव में हम क्या कुछ कर सकते हैं, यों लेखन से लेकर प्रकाशन-विक्रय की मंजिलें पूरी करने के बाद ही सत्साहित्य को जन-जन के सम्मुख पहुँचने का अवसर मिलेगा। यह एक कठिन काम है कि सद्ज्ञान के प्रति उपेक्षा, अरुचि को किस प्रकार प्रगतिशील पठन-पाठन के लिए सहमत किया जाय ? जिन्हें ज्ञानवर्धक साहित्य पढ़ने की आवश्यकता ही अनुभव नहीं होती। जो यदा-कदा मनोविनोद के लिए ही अपराधों, अनाचारों, यौनाचारों उत्तेजना उत्पन्न करने वाली कथा-कहानियाँ भर पढ़ लेते हैं, उन्हें उच्च विचारों का प्रभाव और परिणाम समझाना है तो कठिन, पर परिस्थितियों की माँग को देखते हुए यह विश्वास भी किया जा सकता है कि समय के दबाव से दूरदर्शी विवेकशीलता अपनाने की आवश्यकता पड़ेगी और गर्त्त में गिराने वाले प्रवाह से विलग होने की सूझ-बूझ जगेगी। जिस दिन भी यह सुधार आवेगा, उस दिन सर्वप्रथम ऐसे साहित्य की खोज होगी, जो उबारने और उछालने से उठाने और बढ़ाने में सहायता कर सकें। ऐसा दिन कब आवेगा ? इसके उत्तर में एक ही शब्द कहा जा सकता है कि उसकी प्रतीक्षा बहुत दिनों नहीं करनी पड़ेगी। कल नहीं तो परसों उस अभाव की पूर्ति की सर्वत्र आकुलता दृष्टिगोचर होगी।

सत्साहित्य के सृजन का प्रथम चरण लेखन है। यह कार्य विशिष्ट रूप से मनीषा का है। प्रकाशन, विक्रय का तन्त्र अर्थ प्रधान है। इसे दूसरी पंक्ति के लोग भी कर सकते हैं। हजारों लाखों धन कुबेरों में से एकाध को भी सुमति मिले, तो इसके लिए धनराशि का प्रबन्ध चुटकी बजाते हो सकता है। पैसा हो तो न प्रकाशन में कठिनाई है, न विक्रय तन्त्र खड़ा करने में। यह कार्य व्यावसायिक सूझ-बूझ के सहारे सहज सम्पन्न हो सकते हैं। बालू से न सही धान के छिलके से तेल निकालने वाली व्यापार बुद्धि युग साहित्य के व्यापक प्रकाशन और स्वतन्त्र विक्रय तन्त्र की अभिनव योजना को कार्यान्वित कर सकती है और वर्तमान बुकसेलरों की विचित्र मनोवृत्ति पर आश्रित न रहकर जन-जन तक युग साहित्य पहुँचाने की प्रक्रिया नये आधार पर बना और चला सकती है। किन्तु युग चिन्तन के हर पक्ष पर प्रचलित विकृत मान्यताओं को समर्थ चुनौती देने वाला लेखन उन लोगों के बस का है नहीं। यह कार्य तो ऋतम्भरा के वरद पुत्रों का, दूरदर्शी महाप्राज्ञों का, युग मनीषियों का है। उनके चिन्तन, मनन का सारतत्त्व ही ऐसा सोमरस विनिर्मित कर सकता है, जिसे पीकर सामान्यों को असामान्य बनाने की मस्ती लहराने लगे।

सोचते रहने से दस कदम आगे बढ़कर निश्चय यह किया गया है कि युग साहित्य का सृजन कार्य बिना एक दिन की देरी लगाये इन्हीं दिनों, इन्हीं परिस्थितियों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में आरम्भ कर दिया जाय। प्रश्न उठता है कि यह कार्य हो कैसे ? करे कौन ? सूत्र-संचालन और व्यवस्थाक्रम का श्री गणेश कैसे हो ? इन प्रश्नों का उत्तर भी बाहर वाले का मुँह ताकने की अपेक्षा अपने घर से—छोटे साधनों और सामान्य व्यक्तियों से ही आरम्भ कर दिया जाय। युग सृजन की बहुमुखी और विशाल योजनाएँ किस प्रकार आरम्भ हों ? साधन कहाँ से जुटें ? सहायता कौन करे ? जैसे प्रश्नों का उत्तर एक ही सूझा है कि प्रज्ञा परिवार के सृजन सैनिक नये सिरे से रीछ-वानरों के ग्वालवालों के इतिहास की पुनरावृत्ति करने के लिए कमर कसें। हुआ यही है, अपने छोटे-से परिवार में संख्या कितनी है, इस गणना की आवश्यकता नहीं। जो है भाव श्रद्धा से भरे-पूरे हैं। जहाँ ऐसी स्थिति होगी, वहाँ साधनों का अभाव बना रहे तो भी वह खटकेगा भर। उसे अवरोध बनने नहीं दिया जायगा। प्रज्ञा अभियान के युग निर्माण के प्रयासों की आश्चर्यजनक सफलताओं के पीछे एक ही खुला रहस्य है कि इस समुदाय के आदर्शवादी उमंगों को वरदान और "जो है उसी के सहारे कुछ कर गुजरने" का साहस किन्हीं दैवी शक्तियों द्वारा अनुकम्पापूर्वक प्रदान किया गया है। इसी एक उपलब्धि के कारण वे आदर्शवादी दुस्साहसों का एक के बाद एक कीर्तिमान स्थापित करते चले जा रहे हैं।

कहा जा चुका है कि वाणी के माध्यम भाषण, सम्भाषण, संगीत और उसके सहचर अभिनय की प्रक्रिया किस प्रकार प्रखर हो रही है? उसके लिए क्या कुछ हो रहा है और किस प्रकार इन प्रयासों को जादू भरी सफलता का श्रेय मिल रहा है ? शांतिकुंज में एक-एक मास के कल्प साधना सत्रों के साथ-साथ वाणी को मुखर करने की प्रशिक्षण प्रक्रिया चल रही है। उससे लाभान्वित हुए व्यक्ति वह पराक्रम प्रस्तुत कर रहे हैं, जो समर्थों के सभा-सम्मेलन, रिकार्ड, रेडियो, महँगे अभिनयों के संयुक्त प्रयासों से भी नहीं बन पड़ रहा है।

ऋषि कल्प श्रद्धा और सेवा-साधना की व्याकुल ललक का संयोग मिलकर ही गंगा-यमुना का मिलन संगम बना है। प्रयासों की परिणति को दैवी, जादुई चमत्कारी कहा जाता है। पर वस्तुत: उनके पीछे उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श कर्तृत्व के दो तारों का मिलन ही विद्युत प्रवाह उत्पन्न करते देखा जा सकता है।

इन प्रयोगों में अब एक नया प्रयोग लेखनी का उपयोग युग-शक्ति के रूप में करने का है। अन्य प्रयोगों की तरह ही इसको भी व्यापक ही बनाया जाना है। जब अपना एक भी काम सीमित नहीं रहा, तो लेखन कला के प्रयोग को ही क्यों सीमित रखा जाएगा? क्यों उसका प्रयोग अन्य व्यवसाय बुद्धि वालों की तरह किया जाएगा।? न वाणी बिकनी चाहिए, न लेखनी। दोनों ही सरस्वती की प्रतीक प्रतिमा हैं। देवता की अनुकम्पा दैवी प्रयोजनों के लिए नियोजित-सीमित रहनी चाहिए।

सर्वविदित है कि पिछले दिनों आर्ष-साहित्य का युग, साहित्य का प्रस्तुतीकरण एक ही व्यक्ति द्वारा होता रहा है। यह अपर्याप्त है। अब जागृत लोकमानस की भूख इतनी अधिक है कि उसके लिए आहार जुटाने का बड़ा सरंजाम करना पड़ेगा। किन्तु यह ध्यान रखा जाएगा कि उसके लिए लेखन साधना में जिन्हें निरत किया जाना है, उन्हें न केवल उस प्रयोजन के लिए आवश्यक कला कौशल की शिक्षा देनी है, वरन् यह भी गले उतारना है कि युग की समस्याएँ क्या हैं ? और उनके समाधानों का स्वरूप एवं स्तर क्या होना चाहिए ? जो कहा या लिखा जाय, वह इतना प्रामाणिक, तर्क एवं तथ्यपूर्ण होना चाहिए कि उसे गले उतारने में संशयग्रस्तों को सन्तुष्ट कर सकना बन पड़े। उथली चीजें, लिखने वाले कलम घिसने के अभ्यस्त मुंशी लोग जहाँ-तहाँ से कतरनें बटोरकर नया जैसा प्रतीत होने वाला लिखने और घमण्ड से इधर-उधर अकड़ते, मटकते हाट-चौराहों पर शेखी बघारते देखे जाते हैं। कोकशास्त्र से लेकर ब्रह्मज्ञान तक उनसे कुछ भी लिखाया जा सकता है। खरीदने वाले को कतरनें बटोरकर उनके हवाले करनी पड़ती हैं। बस, इतने भर से वे पंक्तियों को एक प्रकार से दूसरे प्रकार में बदलकर नया लिख सकते हैं और मौलिक लेखन की डींग हाँक सकते हैं।

इस बिरादरी को बढ़ाने से हो सकता है—छापने वाले को अपनी मर्जी की चीजें आनन-फानन में तैयार करने में सुविधा मिले। पर परिवर्तन की इस पुण्य बेला में जिस स्तर के युग साहित्य की आवश्यकता है उसके लिए गम्भीर चिन्तन-मनन की आवश्यकता है। जो कहा या लिखा जाय, वह सौ टन्च खरा सोना सिद्ध किया जाना है, तो आवश्यक है कि निर्धारित लक्ष्य को प्रामाणित, परिपुष्ट करने वाले तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहरण एवं आधारों का विपुल भण्डार सामने हो। उसके लिए निश्चित सन्दर्भों से सम्बन्धित समर्थ पुस्तकालय होना चाहिए। ज्ञान-विज्ञान की अगणित उपलब्धियाँ बहुमूल्य ग्रन्थों में भरी पड़ी हैं। संसार के महा-मनीषियों ने अपने संचित भाण्डागार को सन्दर्भ ग्रन्थों में सँजोया है और उस थाती को भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित छोड़ दिया है। इस महोदधि में गहरी डुबकी लगाकर वे मणि-मुक्तक ढूँढ़े जा सकते हैं, जिन्हें कुशल कारीगर अपनी प्रतिभा का परिचय देते हुए—उमगती हुई कलाकारिता का समन्वय करते हुए—महामूल्य हीरे के हार की तरह विनिर्मित करते हैं। देव संस्कृति उसी को पहनकर सिंहासनारूढ़ होगी और अपनी विशिष्टता का परिचय देगी।

भारत कभी जगद्गुरू था—चक्रवर्ती शासक और स्वर्ण सम्पदाओं का स्वामी भी। यह गौरव उसने समुचित मूल्य चुकाकर खरीदा था। दैवी अनुग्रह की तरह आकाश से नहीं टपक पड़ा था। देव व्यक्तित्व का अर्थ है—गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता। उसे उपलब्ध करने के लिए उच्चस्तरीय दृष्टिकोण अपनाने की, उसी स्तर की आस्था,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आकांक्षा, भावना, विकसित करने की आवश्यकता है और चरित्र में आदर्शवादिता का जो जितना समन्वय कर सकेगा, वह उसी अनुपात का—उसी स्तर का महामानव गिना जाएगा। भारत कभी ऐसे ही विकसित व्यक्तित्वों का धनी था। अतीत के स्वर्णिम सतयुग का रहस्य एक ही शब्द में केन्द्रीभूत है—उन दिनों देव मानवों का बाहुल्य। व्यक्तित्व को उछालने वाली प्रक्रिया अध्यात्मवादी तत्त्व दर्शन के ऊपर आधारित है। आज उसी का पलायन हुआ है, उसी का दुर्भिक्ष पड़ा है। व्यक्ति घटिया हुआ तो उसकी प्रतिक्रिया समाज में घिनौने प्रचलन चल पड़ने के रूप में सामने आई। व्यक्ति की दुष्टता और समाज की भ्रष्टता ही उन भयावह परिस्थितियों को जन्म देती है, जैसी कि आज सामने हैं। नैतिक भ्रष्टाचार, बौद्धिक भटकाव और सामाजिक विघटन का मिला-जुला स्वरूप ही इन दिनों विभिन्न प्रकार के संकटों, विग्रहों, अपराधों, आतंकों के रूप में सामने आ रहा है। प्रस्तुत समस्याएँ, विपत्तियाँ, विसंगतियाँ और विभीषिकाएँ उसी की देन हैं। उलझनों को सुलझाना हो तो वहीं पहुँचना होगा, जहाँ से यह विग्रह उत्पन्न होते हैं। छेद रोके बिना बाँध से निकलने वाला पानी खेत-खलिहानों को डुबोता ही चला जाएगा।

मनुष्य जो कुछ है, अपने अन्तरंग स्तर का ही प्रतिफल है। श्रेष्ठ व्यक्ति और सभ्य समाज की पुनः प्राण प्रतिष्ठा करने से ही उस विपत्ति से उबरा जा सकता है, जिसमें कि समूची मनुष्य जाति महाविनाश के कत्लेआम के दिन गिन रही है और जब तक वह दिन न आये, तब तक घुटन और सड़न के बीच रहकर साँसें पूरी कर रही है।

भाग्य को कोसते और दैव को दोष देते रहना ही यदि आत्म-प्रवंचना के लिए पर्याप्त माना जाय तो बात दूसरी है, अन्यथा पुनर्जीवन उपलब्धि का एक ही उपाय है कि विकृत प्रवाह से लोकमानस को विरत किया जाय और दूरदर्शी विवेकशीलता अपनाने के लिए प्रोत्साहित, सहमत ही नहीं, बाधित भी किया जाय। इसी प्रयास का नाम 'विचार क्रान्ति' है। प्रज्ञा अभियान इसी लक्ष्य को लेकर चला है। उसके प्रत्यक्ष क्रियाकलाप तो बहुमुखी शतसूत्री योजना के अन्तर्गत आते हैं, पर उस सारे सरंजाम का उद्गम स्रोत एक ही केन्द्र पर केन्द्रित है—लोकमानस का परिष्कार। उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श कर्तृत्व को प्रेरित करने वाले तत्त्व-ज्ञान को जन-जन के मन-मन में प्रतिष्ठित करने से ही इस उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है। आत्मनिर्भर अन्तःपरिष्कार के लिए चिन्तन-मनन का आश्रय लेना पड़ता है। इसके लिए सही दिशा धारा और ज्योति किरण प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम स्वाध्याय, सत्संग की आवश्यकता पड़ती है। अन्यथा अनगढ़ चेतना रुचिकर अनाचार को भी अन्तरात्मा की आवाज कहकर किसी भी कुकृत्य कहकर उतारू हो सकती है। आदिवासियों के श्रद्धा प्रचलन में कितने कुत्सित, कितने अनर्गल तत्त्व घुसे बैठे हैं, इसका पर्यवेक्षण करने पर इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि आस्था को भी विवेक की कसौटी पर कसने के उपरान्त ही हृदयंगम किया जाना चाहिए, अन्यथा स्वेच्छाचारी मान्यताएँ अन्ध-श्रद्धा के रूप में विकसित होंगी और पशु-प्रवृत्तियों के इर्द-गिर्द भ्रमण करने वाले दुराग्रह से जकड़ देंगी। ऐसी अन्ध श्रद्धा से तो नास्तिकता कहीं अच्छी, उसमें तर्क, तथ्य, प्रमाण को मान्यता तो मिलती है।

घूम-फिरकर हमें वहीं आना पड़ता है, जहाँ व्यक्ति के रुझान एवं समाज के प्रवाह आदर्शवादिता के समन्वय की अनिवार्य आवश्यकता समझी जाती और उसकी पूर्ति के लिए तत्काल कदम बढ़ाये जाते हैं। कहना न होगा कि इन दो प्रयोजनों की पूर्ति उत्कृष्टता का पक्षधर समर्थ विचार तंत्र खड़ा करने से ही हो सकती है। इसका व्यावहारिक स्वरूप बनाना हो तो फिर स्वाध्याय और सत्संग की व्यवस्था बनानी होगी। स्वाध्याय के लिए लेखनी और सत्संग के लिए वाणी की शक्ति का उपयोग करना होगा। दोनों को ही प्रखर बनाने की आवश्यकता है। वे अपने-अपने क्षेत्रों में चमत्कारी उपलब्धियाँ प्रस्तुत कर सकें, तो ही यह सम्भव है कि सर्वनाश के पतन प्रवाह में धकेलने वाले दैत्य, दर्शन और पिशाच कृत्य से मानवी सभ्यता को विरत किया जा सके।

युगनिर्माण योजना का छोटा-सा देव परिवार अपने सीमित साधनों से उन सत्परम्पराओं का शुभारम्भ कर रहा है, जो आगे चलकर समर्थों का सहयोग पाकर विकसित होंगी और आलोक से विश्व के हर क्षेत्र में नव-जागरण का उत्साह भरा जा सकेगा। व्यापक समस्याओं के समाधान और सुविस्तृत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जुटाया तो बड़ा सरंजाम ही जाना चाहिए। किन्तु जब सूर्य-चन्द्रमा चमकने से इन्कार करें, तो दिवाली की अँधेरी रात की तमिस्रा न घिरी रहने देने की आकांक्षा से प्रेरित छोटे दीपक भी तो किसी न किसी रूप में अपने पुरुषार्थ का परिचय दे ही सकते हैं और उसका किसी क्षेत्र में कुछ न कुछ परिणाम तो हो ही सकता है। हमें उन छोटों की बड़ी साहसिकता का इन दिनों अनुगमन करना ही चाहिए।

वाणी विद्यालय का प्रयोग शांतिकुंज के युगशिल्पी सत्रों में बहुत समय से चल रहा है। प्रज्ञा-पुराण की कथा शैली और स्लाइड प्रोजेक्टर की चित्र विवेचना के माध्यम से वाणी को मुखर करने में आशातीत और आश्चर्यजनक सफलता मिली। चित्र-प्रदर्शनी का प्रदर्शन-वर्णन किसी को भी संभाषण कला से परिचित अभ्यस्त कर सकता है। उसी वर्ग में लोक संगीत की शृंखला जुड़ गई है। ढपली और तिकोन के वादन और दो गायकों के युगगान मिलकर कहीं भी समा बाँध सकते हैं और घर-घर अलख

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जगाने की पुरातन परम्परा का नया संस्करण प्रस्तुत कर सकते हैं। अभी 'ऐक्शन-साँग' का युग संगीत में सीमित समावेश किया गया है। अगले दिनों अभिनय की एक स्वतंत्र धारा और शिक्षा का विकास करने की तैयारी है। लोकरंजन और लोकमंगल का यह सम्मिश्रण छोटे देहातों में फैले हुए एवं अशिक्षित भारत को युग चेतना से अवगत-सहमत करने एवं समय के साथ चलने के लिए तत्पर कर सकने में समर्थ हो सकेगा।

लेखनी दूसरा पक्ष है। प्रकारान्तर से उसे साहित्य सृजन कह सकते हैं। युग-चेतना की ज्योति जलाने के लिए वर्तमान प्रवाह के प्राय: हर पक्ष का नई कसौटी पर पर्यवेक्षण करना होगा। साथ ही युगधर्म के अनुरूप औचित्य के स्वरूप में नये सिरे से निर्धारण करना होगा। यह युग-मनीषा का महानतम उत्तरदायित्व है, जो उसे इन्हीं दिनों-बिना एक क्षण गँवाये कार्यान्वित करने हेतु कटिबद्ध होना चाहिए। लेखन प्रशिक्षण को अब युगशिल्पी सूत्रों की एक धारा के रूप में मान्यता दी गई है और उसे छोटे किन्तु सुनियोजित ढंग से इन्हीं दिनों कार्यान्वित किया गया है। प्रस्तुत दिशा-निर्देश उस प्रयोग में सम्मिलित होने वालों को एक निश्चित कार्य पद्धति प्रस्तुत करने के उद्देश्य से दिया गया है।

शांतिकुंज में एक-एक महीने के लेखन सत्र चलाये जाते रहे हैं। यों इतने बड़े प्रशिक्षण एवं अभ्यास के लिए वर्षों का समय चाहिए। इसके बिना इतने जटिल विषय में प्रवीणता उपलब्ध हो सकना शक्य नहीं। फिर भी यह देखना होगा कि लम्बी अवधि के लिए वे लोग घर से बाहर जा नहीं सकते, जिन्हें नित्य कुँआ खोदना और नित्य पानी पीना पड़ता है। यही बात वाणी के सम्बन्ध में भी है। भाषण और संगीत अपने आप में परिपूर्ण विषय है। उनमें प्रवीण होने के लिए लम्बे समय की साधना चाहिए। इतना सम्भव न हो तो वह हठवादिता छोड़नी होगी, जिसमें 'सब कुछ या कुछ नहीं' का आग्रह अड़कर खड़ा हो जाता है। मध्यमार्ग यही निकाला गया कि थोड़े समय में सिद्धान्तों की कार्य पद्धति को तथा अभ्यास क्रम को प्रयुक्त करने की विधि व्यवस्था का इतना ज्ञान करा दिया जाय कि उस रास्ते पर चलते हुए घर रहकर भी क्रमिक अभ्यास के सहारे प्रगति पथ पर अग्रसर हो सकना बन पड़े। एक मास के लेखन सत्र का ढाँचा इसी दृष्टि से खड़ा किया गया है। अपेक्षा भी उससे उतनी ही की जानी चाहिए। ''नौ मन तेल होने पर राधा का नाच होने'' की अपेक्षा यही व्यावहारिक है कि 'जितना गुड़ उतना मीठा' की नीति अपनाई जाय।

लेखन सत्रों में प्रवेश पाने के लिए स्नातक स्तर की योग्यता चाहिए। इससे कम स्कूली शिक्षा वाले भी प्रवेश तो पा सकते हैं, पर उनमें साहित्य के प्रति असाधारण रुचि और उस प्रयोजन के लिए आवश्यक गहरी डुबकी लगा सकने की मौलिक क्षमता होनी चाहिए। ऐसे लोग कवीन्द्र-रवीन्द्र की तरह स्कूली शिक्षा के नगण्य होते हुए भी उच्चतम शिखर तक जा पहुँचने में समर्थ हो सकते हैं। शर्त एक ही है कि लगन, सूझ-बूझ और तन्मय तत्परता से भरी-पूरी श्रमशीलता में कमी न पड़े।

लेखन विद्या का प्रारम्भिक मार्गदर्शन

मिट्टी खोदने, बोझा ढोने जैसे मात्र शरीर द्वारा किये जाने वाले परिश्रम की बात दूसरी है पर जिनमें मनोयोग की, काट-छाँट की, पक्ष-विपक्ष पर सोचने की आवश्यकता पड़ती है, उनके लिए तो मस्तिष्क के बुद्धि तत्त्व को विकसित एवं प्रशिक्षित करना पड़ता है। अनगढ़ कल्पना तो बच्चे भी कर लेते हैं। अड़ना और मचलना तो मूढ़मति भी जानते हैं पर उचित-अनुचित में एवं साधनों, परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठाते हुए किसी सुसम्बद्ध निष्कर्ष पर पहुँचना मात्र सूझ-बूझ वाले बुद्धिमानों का ही काम है। इसी बुद्धिमत्ता को उपलब्ध करने के लिए तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहरण, अनुभव, इतिहास, परामर्श, मन्थन आदि अनेक आधारों का अवलम्बन लेना पड़ता है। इन सभी कसौटियों पर खरा उतरने के उपरान्त ही विचारणा को बुद्धिमत्ता का दर्जा मिलता है। वह बौद्धिक साधना की उपलब्धि है। इसीलिए शारीरिक श्रम की तुलना में बौद्धिक पुरुषार्थ को महत्त्व भी अधिक मिलता है और प्रतिफल भी अधिक हाथ लगता है।

बुद्धिमत्ता से कला का दर्जा कहीं ऊँचा है। उसमें लक्ष्य पर एकाग्र-तन्मय ही नहीं होना पड़ता, उसमें साधन सरसता का भी समावेश करना होता है। नृत्य एक कला है। उसमें अमुक स्तर की उमंगों के साथ इतना तन्मय होना पड़ता है कि भावाभिव्यक्ति के अवसर पर सभी गतिशील अवयवों में तदनुरूप थिरकन उभरने लगे। संगीत के सम्बन्ध में भी यही बात है। जीभ और गले से क्रमबद्ध उच्चारण तो तोतारटन्त की तरह भी किये जा सकते हैं। इस ड्यूटी को तो टेपरिकार्डर और ग्रामोफोन भी पूरी करते रहते हैं, यह गायन है। इसे व्यवसायी भाँड़-मंगतुए भी घिसी-पिटी उचक-मचक के साथ निभाते रह सकते हैं। संगीत इससे ऊँची चीज है। उसमें गीत के हर संभाग के साथ गायक को कलाकारिता, संवेदना एवं मस्ती के रूप में स्वर के उतार-चढ़ावों के साथ थिरकना है। चेहरे के सभी चल अवयव इस प्रकार नृत्य करते हैं कि गायक की गीत के साथ तादात्म्यता का रसास्वादन हर दर्शक एवं श्रोता को पल-पल में होता रहे। सामगान, छन्दानुशासन, शब्दब्रह्म, नादब्रह्म, स्वरयोग आदि अनेक नामों से गीत के साथ-साथ उल्लास उमगाने वाले ब्रह्मानन्द की चर्चा की जाती है। कला इसी को कहते हैं। वह गीत, नृत्य, चित्र आदि किसी भी माध्यम से प्रकट हो सकती है और देव सौभाग्य के साथ जुड़े हुए सोमपान से भाव-विभोर वातावरण विनिर्मित कर सकती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऐसा भाव-विभोर वातावरण जिसमें प्रस्तुतकर्त्ता और आस्वादन के लिए उपस्थित दोनों ही समान रूप से किसी रंगीले रसलोक में उड़ानें भरते देखे जा सकते हैं। यदि ऐसा न होता तो मात्र विनोद के लिए कुछ भी कौतुक-कौतूहल करके मन बहला लेते हैं। इन्द्रियों में ही जिह्वा, नेत्र और शिश्न इस प्रयोजन की पूर्ति अभावग्रस्त परिस्थितियों में भी किसी न किसी प्रकार कर लेते हैं।

कला के उच्चस्तरीय सोपान दो हैं, एक—स्वाध्याय अर्थात साहित्य। दूसरा—सत्संग अर्थात श्रेयसिक्त परामर्श। स्वाध्याय सामग्री लेखनी द्वारा, सत्संग अभीसा कथा के द्वारा निःसृत होती है। इसलिए इन दोनों को मूर्तिमान सरस्वती कहा है। इन्हें सिद्ध कर लेने वाले को देव जगत का सिद्ध पुरुष माना गया है और कहा गया है कि उसके एक ओर ऋद्धि दूसरी ओर सिद्धि चँवर डुलाती है। इन अलंकारिक शब्दों का तात्पर्य इतना ही है कि इन आधारों के सहारे सम्पदा और प्रफुल्लता के दोनों ही क्षेत्र हरे-भरे हो सकते हैं। आत्मकल्याण का पक्षीय प्रयोजन ऐसी अच्छी तरह सध सकता है, जिसकी तुलना अन्य किसी आधार के साथ नहीं की जा सकती।

इन पंक्तियों में जागृत लोकमानस की दिशाधारा देने वाले लोक मानस की बौद्धिक भूख बुझाने वाले साहित्य सृजन के लिए, लेखन कला का अभ्यास करने-कराने का प्रसंग है। शांतिकुंज में वाणी मुखर करने की बहुचर्चित सर्वविदित शिक्षण पद्धति के साथ-साथ नये सिरे से नये रूप में, नये आधार पर, लेखन कला का प्रशिक्षण वर्ग आरम्भ करने की व्यवस्था है। उसी संदर्भ में यहाँ बताया जा रहा है। इस दिशा में जिन्हें रुचि हो, जिनमें कुछ सीखने, करने का अभ्यास हो, उन्हें सर्वप्रथम एक बात नोट कर लेनी चाहिए कि वह एक उच्चस्तरीय कला साधना है। इस मार्ग पर कदम बढ़ाने वाले को यह भी समझ रखना चाहिए कि यह एक योगाभ्यास है, जिसमें एकाग्रता, तन्मयता एवं रस विभोरता की मनःस्थिति उत्पन्न करनी पड़ती है। स्वर साधना की तरह लम्बे समय तक नियमित अभ्यास करते रहने की आवश्यकता पड़ती है। प्रसंग मन पर इतना आरूढ़ रहना चाहिए कि चेतन, अचेतन मन का रुझान अनायास ही उस ओर लुढकता चले। साधना में तन्मयता अपने आप में एक सिद्धि है। चंचल मन से दूर तक चल सकना सम्भव नहीं होता। बन्दर कुदकते, मेढक फुदकते और खरगोश दिन भर उछलते देखे जाते हैं। पर दिशाहीन, लक्ष्यरहित इन हलचलों का कोई कहने लायक परिणाम नहीं निकलता। कला के क्षेत्र में ऐसी मनःस्थिति सर्वथा असफल रहती है। साहित्य सृजन के सम्बन्ध में तो यह बात और भी जोर देकर कही जा सकती है। मुन्शी, मुनीमों जैसी कलम घिसाई तो कोई भी कर सकता है। लाखों क्लर्क आये दिन इसी उद्योग के सहारे अपना पेट भरते हैं। यह लिपिक का स्वरूप है। साहित्य सृजन के लिए प्रयुक्त होने वाले लेखन का स्तर ऐसा नहीं हो सकता। इसलिए जिनकी मनःस्थिति बाल सुलभ चंचलता, आतुरता एवं कौतुकी स्तर की हो, उनसे यही कहा जा सकता है कि वे सस्ती वाहवाही तुर्त-फुर्त लूटने लगने के लिए कुछ जादुई स्तर का नुस्खा प्राप्त करने की बात न सोचें। बात वैसी है नहीं। इस स्तर के लोग गम्भीर प्रसंगों में हाथ डालकर लूट-खसोट जैसा सपना सँजोते हैं तो खिलौने झुलाने के स्तर का कुछ क्षणिक विनोद भले ही उपलब्ध कर लें, वैसा कुछ पा नहीं सकेंगे, जैसा कि साधनारत लोग चिरकाल तक तन्मयता, तत्परता नियोजित किये रहने के उपरान्त उपलब्ध करते हैं।

नेतृत्व का पद और सम्मान आमतौर से आदर्श चरित्र, निःस्पृह सेवा और समय की पुकार को समझकर अपने को लक्ष्य के प्रति समर्पित करने वालों को ही मिलना चाहिए। यह चिरस्थायी नेतृत्व का सम्मान पाने वालों द्वारा अनिवार्यतः चुकाया जाने वाला मूल्य है। जिन्होंने उसे इस मूल्य पर खरीदा है, उनके लिए वह युग-युगान्तरों तक चिरस्थायी एवं अभिनन्दनीय, अनुकरणीय बनकर रहा है, पर जो सस्ती वाहवाही लूटने पर विश्वास करते हैं, वे आये दिन कागजी संस्थाएँ बनाते, उनके प्रधान बनते, अखबारों में नाम-फोटो छपाते और दस-पाँच की मित्र-मण्डली एकत्रित करके चित्र-विचित्र प्रस्ताव पास करते, रजिस्टर बनाते, रिपोर्ट छपाते देखे जाते हैं। कागजी संस्थाओं के कागजी नेताओं की इन दिनों भरमार है। किसी दूसरे द्वारा नियोजित सभा-सम्मेलनों में तिकड़म भिड़ाकर, प्रलोभन देकर मंच पर जा विराजना, मालाएँ पहनना, तालियों की गड़गड़ाहट सुनकर सीना फुलाना और माइक के सामने होकर अडंग-बडंग बकवास करने लगना श्रोताओं की दृष्टि में वज्रमूर्ख ठहरने पर भी अपने आपको दूसरा नेहरू अनुभव करना, यह फसली नेताओं का धन्धा है। वे जुगनू की तरह चमकते और क्षण भर बाद न जाने कहाँ चले जाते हैं? सेवा-धर्म अति कठिन है। सृजन में पसीने आते हैं और धैर्य तथा त्याग का परिचय देना पड़ता है। इन झंझटों से बचकर अभीष्ट मनोरथ सिद्ध करने का एक ही तरीका है कि किन्हीं को उचित कारण बताकर भड़का देना—हड़ताल जैसे विग्रह खड़े करना। नेता बनने के यही सरल किन्तु बचकाने हथकंडे जगह-जगह प्रयुक्त होते देखे जा सकते हैं। यही राह जिन्हें अच्छी लगी, उन्हें क्या कहा जाय ? किन्तु यदि किन्हीं को सच्चा नेतृत्व अभीष्ट हो तो उसके लिए अपना व्यक्तित्व, चिन्तन, उद्देश्य निर्धारित करके उस हेतु बहुत कुछ त्याग-बलिदान करने की, कष्ट सहने की तैयारी करनी होती है। असली और नकली नेताओं का भेद करना लोग धीरे-धीरे अधिक अच्छी तरह समझते जाते हैं। लेखन क्षेत्र का बचकानापन भी प्रायः इसी स्तर का है। अखबारों की कतरनें काट-छाँटकर बदले शब्दों में उन्हीं बातों को लिख देने से मात्र भाषा-ज्ञान का कामचलाऊ अभ्यास होना पर्याप्त है। कॉपीराइट कानून से बचने के लिए किसी भी बहुमूल्य कृति का थोड़ा-सा शाब्दिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

हेर-फेर कर देने भर से काम चल जाता है। इतना कौशल मैट्रिक स्तर के बच्चों को भी उनके भाषा अध्यापक एकाध महीने के अभ्यास में सिखा सकते हैं। यदि इसी का नाम लेखन या साहित्य-सृजन है, तो फिर समझना चाहिए कि भारत की तीस प्रतिशत शिक्षित जनता में से प्रायः आधों को लेखक बनने-बनाने में कोई कठिनाई ही नहीं होना चाहिए। सस्ती नेतागीरी के लिए लालायित लोग इस तिकड़म को थोड़े-से प्रयत्न से सीख सकते हैं और देखते-देखते नेतागीरी में बटोरने वाले खर्चीले झंझट से बचकर लेखकों में अग्रणी होने की डींगें हाँक सकते हैं। दरिद्र अखबारों के लिए ऐसी झूठनें भी कहाँ मिलती हैं, वे उन्हीं के सहारे कागज काले करते रह सकते हैं।

ऐसी विडम्बना जिन्हें सहनी हैं वे लेखक, सम्पादक साहित्यकार बनने के सस्ते नुस्खे किसी भी उस्ताद के शागिर्द बनकर कान फुँका सकते हैं और बिना किसी अध्ययन, अध्यवसाय, श्रम, मनोयोग के अपना नाम जहाँ तहाँ छापने, रोशन करने में सफल हो सकते हैं। कुछ कर रहे हैं, कुछ करने जा रहे हैं। यह शुगल अपनी जगह पर चले। उनका भी विविध कौतुक-कौतूहलों में अपना स्थान है, किन्तु इससे वह उद्देश्य पूर्ण नहीं होता, जो युग सृजन के लिए आवश्यक प्रस्तुत प्रवाह से हर क्षेत्र में टकराने में समर्थ हो सकें। सृजन की कष्टसाध्य प्रक्रिया से बच निकलने वाली क्षुद्रता को निरस्त करें और ऐसा विवेक भरा उत्साह उभारें, जिसके आधार पर आदर्शवाद घाटे का सौदा नहीं, हर दृष्टि से लाभदायक प्रतीत होने लगे। युग चेतना को ऐसे ही साहित्य का सम्बल चाहिए। वह आज कहीं है नहीं, है तो इतना विरल, अस्त-व्यस्त एवं नगण्य कि उसकी कतरनें बटोरने भर से वह प्रयोजन सधता नहीं, जो लोकमानस को अवांछनीयता के सर्वनाशी प्रवाह में बहने से रोके और उलटकर उस अवलम्बन को अपनाने के लिए तत्पर करे, जो मानवी सभ्यता को पुनर्जीवित करने के लिए अभीष्ट आवश्यक है। यह सृजन जितना महत्त्वपूर्ण, जितना आवश्यक है, उससे भी अधिक कठिन है। कठिन इसलिए कि इस प्रकार का घोंसला बनाने के लिए क्या पंछी की उस विशिष्टता को अपनाना पड़ेगा, जिसके सहारे कि वह नपे-तुले तिनके दूर-दूर से देखभाल कर लाती है और उन्हें बड़ी सूक्ष्म बुद्धि के सहारे यथास्थान लगाकर सुन्दर-सुदृढ़ नीड़ बनाने में सफल होती है। युग साहित्य इसी प्रकार सजा जायेगा। इसके लिए बया जैसी सूझ-बूझ, लगन और तादात्म्यता चाहिए। न इससे कम में काम चलने वाला है और न इससे अधिक और कुछ करने की आवश्यकता है।

संक्षेप में समझा यह जाना चाहिए कि युग साहित्य के सृजन को लक्ष्य रखकर जिस लेखन प्रशिक्षण का शुभारम्भ किया गया है और जिस निमित्त यह पंक्तियाँ लिखी गई हैं, उसमें प्रवेश पाने वाले, सहयोग देने वाले यह भली प्रकार समझ लें कि यह कला समयसाध्य और मनोयोगपूर्वक अपनाई जाने वाली उच्चस्तरीय कला साधना है। उसके लिए तदनुरूप निष्ठा चाहिए। जिन्हें बहुत उतावली हो, कुछ ही दिनों में इस क्षेत्र में प्रवीण-पारंगत होने और जो भी लिखा जाय तुरन्त छप जाने के लिए आतुर हों, वे निरर्थक कौतूहल न करें तो ही अच्छा है। कार्य का महत्त्व, उसमें प्रयुक्त होने के लिए नितान्त आवश्यक धैर्य, लगन एवं तन्मय पुरुषार्थ की जो मनोभूमि बना सकें, उन्हीं को यह आशा करनी चाहिए कि उनकी कला-साधना वट-वृक्ष की तरह क्रमशः विकसित होती और अपने कलेवर से असंख्यों अनाश्रितों का आच्छादन प्रदान करेगी।

पानी के बबूले की तरह क्षण भर के लिए उछलना, फुदकना और तनिक समय बाद सदा के लिए ठंडे हो जाना, बालबुद्धि को शोभा देता है। कला की योग-साधना के लिए ऐसा बचकानापन काम नहीं देता। जिन्हें कदम उठाना हो, उन्हें अंगद की तरह अपना ऐसा पैर गाड़ना चाहिए जो उठाये न उठे, उखाड़े न उखड़े। एक मास के सत्र में सृजन की दिशाधारा और उसके मूलभूत सिद्धान्तों प्रयोगों का हृदयंगम कराया जाना सम्भव है। आरम्भिक रीति-नीति को इन थोड़े दिनों में समझा-समझाया जा सकता है। पर यदि प्रवीण-पारंगत बनना अभीष्ट हो तो दो ही उपाय हैं कि घर जाकर इस क्रम को नियमित रूप से चलाते रहने का व्रत धारण किया जाय अथवा अधिक समय तक शांतिकुंज में रहकर अभ्यास क्रम को उपयुक्त मार्गदर्शन में परिपक्व बनाया जाय। इस प्रयोजन के लिए साधारणतः एक वर्ष का पूरा समय निकालना और उसे अभीष्ट अभ्यास में पूरी तरह लगाना चाहिए। इससे कम में बात बनेगी नहीं।

स्कूली शिक्षा किसने कहाँ तक प्राप्त की, इसे लेखन कला के विद्यार्थी को तनिक भी ध्यान या महत्त्व नहीं देना चाहिए। स्नातक स्तर से काम चालू करने की बात इसलिए कही गई है कि उस समय तक आयु में परिपक्वता आती है, समझने और गहराई में उतरने का तन्त्र परिपक्व होता है। भाषा सम्बन्धी ज्ञान भी उतनी कक्षाएँ उत्तीर्ण करते-करते इस स्तर तक जा पहुँचता है कि लेखन के लिए जितना न्यूनतम आवश्यक है, उतनी गाड़ी धक सके। शिक्षा में होना यह चाहिए था कि मैट्रिक के उपरान्त जिसे जिस विषय का विशेषज्ञ बनना है, उसे उसी स्तर की विशेष शिक्षा मिलती, पर अपने यहाँ तो ऐसा कोई भेदभाव नहीं। सभी गधे-घोड़ों पर समान बोझ लदता है और कारीगर बनने वालों को भी कभी काम न आने वाला विश्व इतिहास इतना पढ़ना पड़ता है कि अविकसित उदीयमान बालमानस का उस बोझों को ढोते-ढोते कचूमर ही निकल जाय। ऐसी दशा में स्नातक स्तर की परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने पर भी किसी से यह आशा नहीं की जानी चाहिए कि वह लेखन के लिए आवश्यक विशिष्टता अर्जित कर चुका होगा और उस आधार पर उसे साहित्य सृजन जैसी सूझ-बूझ और विशाल अध्ययन पर आश्रित प्रयोग में सफलता मिल सकेगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संगीत अपने आपमें स्वतंत्र विषय है। शिल्प उद्योग, चित्रकला, अभिनय आदि के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। उनमें प्रवेश करने वालों को शिक्षित होना चाहिए, ताकि उन विषयों में प्रवीणता पाने के लिए आवश्यक बारीकियों को पढ़ने, पकड़ने, समझने का आरम्भिक प्रयोजन पूरा हो सके, इतने पर भी कोई यह नहीं कह सकता कि उसने अमुक कक्षा उत्तीर्ण की है। इसलिए वह उपरोक्त कौशलों में भी प्रवीणता का दावा कर सकता है अथवा उन्हें आनन-फानन में सीख भी सकता है। उसे भी आरम्भिक विद्यार्थी की तरह उपरोक्त विषयों का ककहरा याद करना पड़ेगा। जिसकी भाषा मराठी है, उसे तमिल सीखने के लिए बाल कक्षा की पुस्तकें हाथ में लेनी होंगी, ठीक इसी प्रकार स्कूली शिक्षा की दृष्टि से स्नातक होने पर भी इस विषय के विद्यार्थी को यही मानकर चलना होगा कि साहित्य सृजन के क्षेत्र में उसकी संचित शिक्षा से कुछ न कुछ सुविधा तो अवश्य मिलेगी, पर यह सोचना सर्वथा निरर्थक है कि उतना पढ़ लेने के बाद तो अब चुटकी बजाने जितना काम ही शेष है। जिन्हें ऐसा मतिभ्रम या अहंकार घेरने लगे, समझना चाहिए कि उसने विषय की गम्भीरता समझने और उसके लिए धैर्यपूर्वक अनवरत अध्यवसाय करने की आवश्यकता से इन्कार कर दिया। यह भ्रान्त धारणा इस मार्ग के पथिक के मार्ग में ऐसा अवरोध खड़ा करती है, जिससे टकराकर प्रगति की आशा ही छोड़नी पड़े। अस्तु, जिन्हें इस दिशा में सचमुच ही प्रवीणता प्राप्त करनी है, युग साहित्य के सृजन में वास्तविक क्षमता या प्रवीणता अर्जित करनी हो, उन्हें प्रथम दिन ही उस भ्रान्त धारणा को निरस्त कर लेना चाहिए कि वे स्कूली शिक्षा में इतने आगे होने पर उस क्षेत्र में भी वरिष्ठ समझे जाने चाहिए। यह दावा तभी सही हो सकता था, जब उसने स्कूल में मैट्रिक का सामान्य ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त मात्र साहित्य सृजन की शिक्षा ही कालेज में प्राप्त करते रहने की सुविधा प्राप्त की होती। जब वहाँ हर विषय का चुँ-चुँ प्रवेश ही चलता है और जहाँ-तहाँ से स्फुट प्रसंग याद करके किसी तिकड़म में उत्तीर्ण होने लायक अंक बटोरने का कुचक्र ही मस्तिष्क में घूमता है तो यह आशा करना कि उतने भर से कोई साहित्य सृजन की आवश्यक योग्यता वाली मंजिल पार कर चुका होगा, सर्वथा निरर्थक है। यह मतिभ्रम यदि किसी पर उन्माद की तरह चढ़ बैठा होगा, तो समझना चाहिए कि भ्रान्ति और अहमन्यता के दुहरे बोझ से लदा हुआ कोई व्यक्ति लक्ष्य तक पहुँचने में समर्थ हो नहीं सकेगा। कुछ कदम चलने के बाद ही लम्बी-चौड़ी सफलता वाला आतुरता व्यक्त करने लगेगा। स्वाभाविक क्रम के अनुसार वैसा होना तो है नहीं, ऐसी दशा में मात्र निराश हो बैठने का दौर चलेगा या फिर औंधे-टेढ़े ढंग से जादुई साहित्यिक बनने की कोई चोरी-उठाईगीरी जैसी हरकत चल पड़ेगी। जो फूहड़-सा लिख गया है वह छपा नहीं तो फिर समझना चाहिए कि प्रकाशक, सम्पादक की खैर नहीं। उस पर पक्षपात बरतने, परख न कर सकने आदि के लांछनों का अम्बार लगाकर किसी प्रकार मन हल्का करने का प्रयत्न चलेगा, यह सब कुछ अवांछनीय है। साहित्य सृजन की लेखनी साधना एक उच्चस्तरीय कला है। उसके लिए जिस मनीषा की आवश्यकता है, उसे अर्जित करने के उत्सुक हर छात्र का आरम्भिक व चिन्तन यही होना चाहिए कि वह स्कूली शिक्षण से भिन्न प्रकार के किसी अतिरिक्त विषय में प्रवेश कर रहा है। इसके लिए उसकी मनोभूमि विशेषता का, प्रवीणता का दावा करने से नहीं वरन् शुभारम्भ श्री गणेश करने के लिए आवश्यक नम्रता जिज्ञासा से भरी होनी चाहिए।

साहित्य सृजन लेखनी का चमत्कार नहीं है। उसे शब्द गुँथन का कौशल नहीं समझा जाना चाहिए, वरन् यह मानकर चलना चाहिए कि यह विशाल अध्ययन का प्रतिफल है। फल लगता तो टहनी पर ही है पर उसकी पृष्ठभूमि में जड़ों द्वारा भूमि से खींचकर टहनी तक पहुँचाया गया रस ही होता है। साहित्यकार को लिखना कम और पढ़ना अधिक पड़ता है। वस्तुतः अध्ययन, अध्यवसाय ही वह पूँजी है, जिसके बल पर लेखन का व्यवसाय चलता-पनपता है। गम्भीर अध्ययन में रुचि न होने—सुविस्तृत अध्ययन के लिए अवकाश निकालने, तथ्यों की गम्भीरता में गहराई तक उतरने की मौलिक क्षमता हर साहित्य साधक में अनिवार्यतः होनी चाहिए। जो सीधे कलम कागज पर चढ़ दौड़ते हैं, वे वैसे ही हैं जैसे कि चीनी, चिकनाई, मैदा, सूजी आदि कुछ भी जुटाने को आवश्यक न समझकर फटाफट कढ़ाई से कचौड़ी उतारने की बाल-क्रीड़ा करना।

साहित्य सृजन के लिए अध्ययन स्फुट-मनमौजी-अप्रासंगिक नहीं होना चाहिए वरन् पूर्व निर्धारित लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए उसी के इर्द-गिर्द घूमना चाहिए। 'शोध' इसी का नाम है। वैज्ञानिकों को जिस विषय में गहराई तक उतरना होता है, मात्र उसी प्रसंग की परिधि में पुस्तकें तलाशते और उनमें से उतने ही पृष्ठ पढ़ते हैं, जो सीधे उनकी आवश्यकता पूरी करने में सहायक होते हैं। जो ऐसा नहीं करते, बिखराव में भटकते हैं, जो रुचा वही पढ़ने लगते हैं। उनके लिए अभीष्ट सामग्री ढूँढ़ निकालना उपयुक्त तथ्यों का संचय कर सकना कठिन है। यह अर्जुन के मत्स्य वेध का प्रसंग है। द्रौपदी स्वयम्वर में वे सभी प्रतिस्पर्धी असफल रहे जिनका चित्त घूमती मछली के विभिन्न अंग-अवयव को देखने में, इर्द-गिर्द की परिस्थितियों को देखने में बिखरा था। सफल मात्र वह अर्जुन ही हुआ, जिसने लक्ष्य वेध पर तन्मयता केन्द्रीभूत कर रखी थी। यही बात सभी महत्वपूर्ण प्रसंगों पर लागू होती है। विशेषतः साहित्य सृजन के सम्बन्ध में तो यह नितान्त आवश्यक है। मनमौजी लोग एकाग्र तन्मयता की उपेक्षाकर जो मन आया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सो पढ़ते, मन उचटा तो कागज समेटकर जहाँ-तहाँ गप्पबाजी करते, आवारागर्दी में भटकने लगते हैं ऐसे लोगों का मन अपने अधिष्ठाता की कमजोरी ताड़ लेता है और फिर अल्हड़ बछड़े की तरह दस-पाँच कदम हल में चलने के बाद लातें चलाने लगता है। कहा जा चुका है कि साहित्य साधना विशुद्ध योग साधना है। महर्षि पातंजलि ने योग को चित्तवृत्तियों का निरोध कहा है। अक्षरश: वही उक्ति साहित्य साधना पर लागू होती है। तन्मयता अनायास ही नहीं हो जाती। मन को मारकर उसको अभ्यस्त बनाया जाता है। अनगढ़ जानवरों को जिस तरह सरकस का पशु-प्रशिक्षक (रिंग मास्टर) अनेक तरह की कड़वी-मीठी तरकीबें अपनाकर उन्हें अभीष्ट खेल दिखाने योग्य बनाता है, ठीक उसी प्रकार विशेषता प्राप्त करने के इच्छुकों को भी मन के साथ कड़ाई करनी पड़ती है। जो 'मूड' के इन्तजार में बैठने लगे, समझना चाहिए कि उनकी लुटिया डूबी।

विश्वविद्यालयों द्वारा शोधक्षमता को प्रोत्साहित, विकसित करने के लिए अनेक प्रकार के प्रोत्साहन-सहयोग दिये जाते हैं। इस उदारता के पीछे एक ही सत्परिणाम की सम्भावना का आकर्षण रहता है कि कोई व्यक्ति किसी विषय की गहराई में उतरने और उससे सम्बन्धित स्फुट प्रसंगों को एकत्रित करके अपनी एकाग्रनिष्ठा, तन्मयता-तत्परता का परिचय दे। यह क्षमता असाधारण रूप में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वह जिनमें होगी, वे ही किसी गम्भीर विषय में गहराई तक पहुँच सकने और उपयुक्त निष्कर्ष निकाल सकने में समर्थ हो सकेंगे। शिक्षा तन्त्र यह अनुभव करता है कि ऐसे एकनिष्ठ लोगों की संख्या बढ़े और वे जिस विषय को भी हाथ में लें, उसे अपनी इसी सूझ-बूझ के सहारे सफल बनाकर दिखायें। शोध प्रयत्नों का लक्ष्य इस विशेषता को उभारना और उसके सहारे प्रतिभाशील लोगों द्वारा राष्ट्र में विशेषज्ञों की विभूति सम्पदा का अभिवर्धन करना है। समझा जाना चाहिए कि साहित्य सृजन एक छोटे रूप में उसी पी-एच. डी. उपक्रम का छोटा रूप है। उसमें ठीक वैसा ही दृष्टिकोण अपनाना पड़ता है, ठीक वैसी ही मन:स्थिति एवं कार्य पद्धति को साथ लेकर चलना पड़ता है। मनमौजी, चंचल चित्त, अनियमित, अस्थिर व्यक्तियों को नर-वानर कहा जाता है। अकारण इस डाली से उस डाली पर उचकते मचकते फिरने के कारण उन्हें उपहासास्पद माना जाता है। ठोस काम में तो वैसी ही मनोवृत्ति काम देती है, जैसी गाड़ी में जुतने वाले बैल की। वे ही भार को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने में सफल होते हैं। अच्छे घोड़े जब यात्रा आरम्भ करते हैं, तो बिना इधर-उधर मचके-मटके सीधे लक्ष्य तक पहुँचते हैं और मंजिल समाप्त करके रुकते हैं। साहित्य साधना में अभीष्ट सफलता प्राप्त करने के लिए प्राय: ऐसा ही मनोयोग चाहिए।

मन स्वभावत: चंचल है। एकाग्र तन्मयता साधना से उपलब्ध होती है। इससे आगे का एक और कदम है—लक्ष्य में रस आना। यही वह भाव सम्वेदना है, जिसके आधार पर मनोयोग सधता है। बुद्धि को एकाग्र करने के लिए यह आकर्षण एवं अनुबन्ध आवश्यक है। नीरस लगने वाले प्रसंग सामने रहने पर व्यक्ति तनिक-सा काम करने के उपरान्त ऊबने लगता है। काम पर बैठते देर नहीं हुई कि मन उचटने लगता है और ज्यों-त्यों करके थोड़ा समय निर्धारित काम को उथले मन से उलटने-पलटने के उपरान्त उठ खड़े होने-गप्पबाजी, आवारागर्दी के लिए चल पड़ने को मन होता है। दफ्तरों में मेजों पर फाइलों के पहाड़ जमा रहने के पीछे काम की अधिकता नहीं, उस कार्य में रस न आना—मन न लगना प्रधान कारण होता है। इस स्थिति में न पूरा समय उस प्रसंग में लगता है और न पूरे मन से ही कुछ काम होता है। बेगार भुगतने की तरह चलने वाले हाथ अर्ध मृतकों जैसे होते हैं। असमंजस में पड़ा हुआ मन मूढ़मति जैसा स्वरूप बना देता है। कालिदास की कथा प्रसिद्ध है। उपेक्षा रही तो पढ़ने में सफलता मिलती ही नहीं। पत्नी की भर्त्सना से जब मन मुड़ा और रस आया तो विद्वान बनने का देखते-देखते पथ प्रशस्त हो गया। यही बात हर जगह लागू होती है। तेज मस्तिष्क वाले फेल होते और मन्द बुद्धि समझे जाने वाले उच्च श्रेणी में पास होते देखे गये हैं। कछुए खरगोश की दौड़ में कछुए द्वारा बाजी जीतने में इसी तथ्य का रहस्योद्घाटन है। साहित्य सृजन में प्रथम आवश्यकता अध्ययन में रस उत्पन्न करने की है। उमंग उठी तो समझना चाहिए रास्ते चलते भी पढ़ना होता रहेगा अन्यथा सुविधा भरे स्थान और समय में भी जमुहाई, झपकी आती रहेगी और पोथी कहीं कल्पना कहीं वाली विडम्बना चलती रहेगी।

रस उत्पन्न करने का एक ही मार्ग है—लक्ष्य की महिमा, गरिमा और प्रतिक्रिया का अधिकाधिक विवेचन करना, उस दिशा में चलने पर मिलने वाली सुखद सम्भावनाओं का सुनहरा चित्र कल्पनालोक में खड़ा करना। इसके बिना उच्चस्तरीय उद्देश्यों में रस उत्पन्न करने की बात बनती ही नहीं। लोभ, मोह और अहंकार की पूर्ति में, वासना-तृष्णा का जाल-जंजाल बुनने में पशु-प्रवृत्तियाँ अनायास ही खिंचती, ढुलकती रहती हैं। नीचाई की ओर पानी बहता है। पेड़ से टूटकर फल जमीन पर गिरता है। यह गुरुत्वाकर्षण पतनोन्मुख प्रवृत्तियाँ अग्रसर करने में भी काम आता है। चंचलता बालकों में जन्मजात होती है। कठिनाई तब उत्पन्न होती है, जब उत्कृष्टता अपनाने, ऊँचा उठने, उछलने का अवसर आता है। कुँए से पानी खींचने, जमीन से छत पर चढ़ने, भारी वजन को ऊपर पहुँचाने में कितने और कैसे प्रयत्न करने पड़ते हैं, उसे अनुभवी भली-भाँति जानते हैं। यह जानकारी साहित्य सृजन के क्षेत्र में बढ़ने वालों को भी रहनी चाहिए। उनकी चेष्टा इस रूखे लगने वाले प्रसंग की सहज नीरसता को सरसता में बदलने की होनी चाहिए। यह सरल भी है, सम्भव भी और वास्तविक भी। साहित्य सृजन एक उच्चस्तरीय प्रतिभा एवं क्षमता है। उससे अपना स्तर उठाने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और दूसरों का हित साधन करने में असाधारण सहायता मिलती है। फलतः उसकी गौरव-गरिमा अन्य किसी सफलता से कम नहीं है।

मुंशी लोग तो साहित्य सृजन में भी टाँग अड़ाते देखे जाते हैं। पर वस्तुतः जिन्होंने गहन अध्यवसाय से साहित्य साधना की है, उन महामानवों के कर्तृत्व के प्रति यह संसार अनन्त काल तक कृतज्ञ बना रहेगा। व्यास, मनु, चरक से लेकर कार्लमार्क्स, रूसो, मेजिनी, बिस्मार्क, बर्टेण्ड रसेल, टॉलस्टाय, रस्किन, रोम्याँ-रोला, बर्नार्डशॉ आदि की महान सेवा-साधना ने समूची मानव जाति की असाधारण सेवा की है। तुलसीदास, सूरदास, ज्ञानेश्वर, तिलक आदि ने जो बहुमूल्य कृतियाँ प्रस्तुत की हैं, उस पर हजार ताजमहल निछावर किए जा सकते हैं। जिन्होंने शब्दकोश-ज्ञानकोश बनाये, दर्शन को आदर्श के साथ जोड़ा, उनका बौद्धिक अनुदान पर्वत जितना सोना दान करने से बढ़कर है। चेतना को प्रभावित, परिष्कृत एवं प्रगतिशील बनाने वाले तथ्य, तर्क, प्रमाण, उदाहरणों से भरे-पूरे जीवन्त साहित्य की इन दिनों इतनी आवश्यकता है जिसे अन्न-वस्त्र जितना ही महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है। असमंजस एक और है कि इन दिनों इस आवश्यकता की पूर्ति में सर्वत्र सन्नाटा खिंचा हुआ है। लिखने और छपने के क्षेत्र में तो न जाने क्या-क्या हो रहा है पर श्मशान जैसी निस्तब्धता वहाँ संव्याप्त है, जहाँ दिग्भ्रान्त लोकमानस को अचिन्तय चिन्तन से विरत करके मानवी गरिमा के अनुरूप दृष्टिकोण अपनाने के लिए बाधित करने की बात है। यह टूटे मेरुदंड को जोड़ने जैसा प्रसंग है। इसे न करने पर और जो कुछ भी उत्साहवर्धक किया जा रहा है, वह सभी निरर्थक, निष्प्राण बना रहेगा। जबकि इस एक काम को करने पर ही उदगम स्रोत खुल जाने की तरह असंख्यों को जीवन जल देने वाली निर्झरिणी बहने की सुखद सम्भावना प्रत्यक्ष परिलक्षित होती है। इस पुनीत कार्य को प्रातःस्मरणीय महामानवों के द्वारा विश्व को दिये गये अविस्मरणीय अनुदानों से कम नहीं माना जा सकता। महान् धर्मशास्त्रों के सृजेताओं का गुणगान अनन्त काल तक होता रहेगा। बुद्ध धर्म का अस्तित्व जब तक रहेगा, तब तक धम्म पद और जातक कथाओं की गौरव गाथा भी समझी, समझाई जाती रहेगी।

अपने समय की महती आवश्यकताओं में से असाधारण महत्त्व की एक है—युग साहित्य का अभिनव सृजन। उस क्षेत्र में न राजनीति जैसी प्रतिद्वन्द्विता है और न अर्थक्षेत्र जैसी प्रतिस्पर्धा, इसमें वनगमन या तप-तितिक्षा की भी आवश्यकता नहीं है। सहज-सौम्य जीवन जीते हुए उसे भली प्रकार करते रहा जा सकता है। अमेरिका की श्रीमती स्टो ने घर-गृहस्थी के बीच ही अपनी विश्वप्रसिद्ध कृति लिखी थी 'टाम काका की कुटिया' उस एक ही पुस्तक ने अमेरिका में प्रचलित दास प्रथा को समाप्त करके रख दिया। इस प्रयास को किसी महायुद्ध से कम नहीं समझा जा सकता। सेनापतियों, वैज्ञानिकों, उद्योगपतियों, राजनीतिज्ञों की अपनी-अपनी चिरस्मरणीय भूमिकाएँ रही हैं। युग-साहित्य के सृजेताओं को समय की पुकार पूरी करने वाले युगशिल्पियों में गिना जाएगा। उनके कर्तृत्व से विश्व मानव को पतन से उबारने और उत्थान का अवलम्बन उपलब्ध होने का जो दिव्य वरदान मिलेगा, उसे भले ही बाजारू वाहवाही न मिले, मानवी अन्तरात्मा उसे कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करती रहेगी।

इन तथ्यों को यदि निरन्तर स्मरण रखा जा सके, श्रम के प्रतिफल का मूल्यांकन किया जा सके तो प्रतीत होगा कि इस प्रयास में नियोजित श्रम को विनाश को विकास में बदलने वाली प्रक्रिया का एक अति महत्वपूर्ण अंग माना जाएगा। जो इस स्तर का श्रम कर सके, वे जीवन को हर दृष्टि से कृतकृत्य, सफल, सार्थक बनाने वाले बड़भागियों में अपनी गणना कराते हैं। यदि यह विचारधारा स्वर्णिम कल्पना चित्रों के रूप में कोई अपने मनःक्षेत्र में सँजो सके, तो फिर उसे रस आने लगेगा। रस आया कि तन्मयता जुड़ी और तन्मयता तत्परता का समन्वय ही वह सुयोग है, जिसके आधार पर इतिहास के कठिनतम कार्य सम्पन्न होते रहे हैं। असफलताओं के कारणों का पर्यवेक्षण करने पर प्रमुख अवरोध एक ही उभरकर सामने आता है कि कर्त्ताओं की दिलचस्पी अभीष्ट प्रयोजन में उतनी नहीं रही, जितनी कि रहनी चाहिए थी। दिलचस्पी की कमी ही आलस्य, प्रमाद, उपेक्षा, अवसाद, ऊब आदि के साथ समझौता करके परिश्रम से जी चुराती है। मन नहीं लगने देती। फलतः मनुष्य कर्त्तव्य, उत्तरदायित्व की उपेक्षा करते, अस्त-व्यस्तता अपनाते आधे-अधूरे मन से काम करते दीखते हैं। जहाँ यह दुर्गुण रहेगा, वहाँ समय काटते रहने पर भी काम का स्तर एवं परिमाण नगण्य जितना ही उपलब्ध होगा।

साहित्य साधना की मनोभूमि यदि बन सके तो यह कार्य इतना सरस, इतना मधुर, इतना सौम्य है कि उसे अपने आप में परिपूर्ण कह सकते हैं। शान्तिकुंज का एक महीने वाला लेखन प्रशिक्षण तो निश्चित मनोदशा बनाने और कार्य पद्धति का सही स्वरूप समझने जितना ही है। प्रत्यक्ष मार्गदर्शन की हर कला-कौशल में अनिवार्य आवश्यकता पड़ती है। इतनी थोड़ी अवधि में इतना कार्य बन पड़ना ही सम्भव है।

यों शौक-मौज की तरह बचे हुए समय का श्रेष्ठतम सदुपयोग करते रहने की दृष्टि से भी साहित्य सृजन का काम करते रहना, अन्य सभी मनोरंजनों से अधिक उत्साहवर्धक, सन्तोषप्रद और आनन्ददायक है। यदि कोई इस प्रयास को नियमित, अनवरत्य, संकल्पपूर्वक करता रहे तो बूँद-बूँद से भी घड़ा भरेगा। किन्तु यदि किन्हीं को वस्तुतः इस साधना का महत्त्व प्रतीत हो, उसमें मन रमे तो सबसे सरल और सुव्यवस्थित उपाय यह है कि शान्तिकुंज की साहित्य साधना का अंग बनकर रहा जाय। इस परिवार में खप जाने पर ब्राह्मणोचित निर्वाह की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यवस्था भी हो ही जाती है। जिनके बहुत भारी परिवार नहीं, जिन्हें विलासी आदतों और 'बड़ों' जैसी महत्त्वाकांक्षाओं ने आक्रान्त नहीं किया है, वे यदि वैसी क्षमता हो तो युग साहित्य सृजन के एक घटक बनकर काम करने की बात भी सोच सकते हैं।

हर हालत में साहित्य सेवी को अपनी मनःस्थिति तो इन पृष्ठों पर अंकित स्तर की ढालनी ही पड़ेगी, अन्यथा कुछ समय के विनोद-मनोरंजन से आगे बात बढ़ेगी ही नहीं। प्रशिक्षण सामान्य बात है। वह कहीं भी लिया जा सकता है। उपयुक्त वातावरण, सान्निध्य, मार्ग दर्शन, सहयोग और साधनों की व्यवस्था एक स्थान पर मिल जाने से किसी को भी आगे बढ़ने और अपेक्षाकृत समय में अधिक सफलता प्राप्त करने का अवसर मिलता है। पर वह अनिवार्य नहीं। लगन और श्रम का समन्वय जटिल, कठिन और अभावग्रस्त, यहाँ तक प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपना रास्ता बना लेता है। साहित्य साधना के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। मार्ग पर बढ़ सकना मनस्वी व्यक्ति के लिए किसी भी परिस्थिति में सम्भव है।

शोध का प्रयोजन और स्वरूप

शोधकार्य आरम्भ करने से पूर्व इसके भावार्थ को स्पष्ट समझ लेना चाहिए। शोध को 'अनुसंधान, अन्वेषण, गवेषणा, अविज्ञात को ज्ञात करना'—इन शब्दों से भी व्यक्त किया जाता है। जिज्ञासा मानव की सहज प्रवृत्ति है क्यों और कैसे ? यह प्रश्न शिशु अवस्था से ही उसके मस्तिष्क को झकझोरता रहता है। ज्ञान का अगाध भण्डार सृष्टि में भरा पड़ा है। इसके थोड़े से ही हिस्से की जानकारी हो सके, यह प्रयास मनुष्य का रहा है और इस अदम्य जिज्ञासा ने ही विभिन्न आविष्कारों एवं वैज्ञानिकों को जन्म भी दिया है। शोध का अर्थ होता है—इस जिज्ञासा को और भी उत्कट, प्रखर, दिशाबद्ध बनाना तथा जो तथ्य अज्ञात है, जिनकी सम्भावनाएँ छिपी पड़ी हैं, उनका अनुमान लगाकर उन्हें प्रत्यक्ष करने में संलग्न होना।

लेखनी ही वह माध्यम है, जो इस पुनीत कार्य को साकार बना देती है। शोधकार्य को लेखनी जन-जन तक पहुँचाती है और प्रत्यक्ष दिशा देती है। इस कार्य को मात्र पी-एच. डी. की उपाधि प्राप्ति तक न मानकर और भी अधिक श्रेष्ठ, उच्चस्तरीय पुण्य कार्य मानकर तथा माहात्म्य को समझकर ही आगे बढ़ना श्रेयस्कर है।

शोधकार्य वैज्ञानिक और साहित्यिक दोनों ही क्षेत्रों में होता है पर दोनों की पद्धति और स्वरूप में विशेष अन्तर नहीं होता। अन्तर मात्र विषय की आवश्यकताओं और प्रयोग पद्धतियों में होता है। वैज्ञानिक अनुसंधान की भाँति साहित्यिक अनुसंधान में भी नव अर्जित ज्ञान की पूर्व अर्जित ज्ञान के आलोक में व्याख्या-विवेचना की जाती है। सम्बद्ध विषय चाहे जो हों, निष्पक्ष वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग साहित्यिक अनुसंधान में भी करना पड़ता है।

जिस तरह विज्ञान में असम्बद्ध एकाकी घटनाओं का एकपक्षीय तथ्यों का कोई मूल्य नहीं होता, उसी प्रकार अन्य विषयों के अनुसंधान को किसी एक तथ्य अथवा एकांकी प्रतिपादनों के आधार पर प्रामाणिक नहीं बनाया जा सकता। यह अन्तर तथा साम्य समझना अनिवार्य है।

वस्तुतः नवीन सिद्धान्तों का आविष्कार अनुसंधान की आवश्यक शर्त है। मौलिकता उसकी विशेषता है। विज्ञान के क्षेत्र में मौलिक तथ्यों का अन्वेषण महत्त्वपूर्ण माना जाता है, पर साहित्य, मनोविज्ञान, दर्शन के क्षेत्र में मौलिक विचारों की खोज को अधिक महत्त्व दिया जाता है। यह कार्य तथ्यों के अन्वेषण की तुलना में कहीं अधिक दुष्कर और कठिन है। सिद्धान्तों के आविष्कारकर्त्ता तो विरले ही होते हैं, परन्तु जब वे अपने प्रतिपादन तर्कों एवं प्रमाणों के आधार पर प्रस्तुत करते हैं, तो सारा वातावरण बदलकर रख देते हैं। मार्क्स की 'कैपीटल' तथा हैरियर स्टो की 'टाम काका की कुटिया' को युगान्तरकारी विचारों में गिना जाता है। यह भी एक प्रकार का 'अनुसंधान' है। इस शब्द का विस्तार असीम है, परिधि विशाल है।

अँग्रेजी का प्रचलित 'रिसर्च' शब्द हिन्दी में शोध, अनुसंधान, अन्वेषण, खोज आदि अनेक शब्दों के रूप में प्रयुक्त होता है। प्रायः स्थूल दृष्टि से ये सभी शब्द एक-दूसरे के पर्याय माने जाते हैं परन्तु संस्कृत में इनके अर्थों में सूक्ष्म अन्तर किया गया है। सन्धान का अर्थ होता है, किसी दिशा विशेष की ओर बढ़ना। 'अनु' का अर्थ है—पीछे। इस प्रकार अनुसंधान का अर्थ हुआ, किसी लक्ष्य विशेष को सामने रखकर दिशा विशेष की ओर बढ़ना। अन्वेषण का अर्थ है—'खोज' किसी वस्तु, तथ्य अथवा रहस्य की खोजबीन करना। गवेषणा का प्रायः यही अर्थ होता है। शोध शब्द अपना अर्थ स्वयं प्रकट करता है। शोध अर्थात संशोधन, शुद्ध करना, स्वच्छ करना, साफ करना अथवा परिशोधित करना। खोज का अर्थ है—ढूँढना। अविज्ञात तथ्यों अथवा रहस्यों का उद्घाटन करना।

इस तरह संस्कृत शब्दार्थ की दृष्टि से हिन्दी में प्रयुक्त शब्द अनुसंधान कार्य के विभिन्न स्वरूपों को ही व्यक्त करते हैं। गवेषणा अर्थात अन्वेषण शब्द से अनुपलब्ध सामग्री के संकलन का बोध होता है। अनुसंधान-परीक्षा, समीक्षा का भाव स्पष्ट करता है तथा शोध से व्याख्या, विवेचन, निर्णय, निष्कर्ष आदि का लक्ष्य स्पष्ट होता है। अस्तु अँग्रेजी में प्रयुक्त 'रिसर्च' का भाव हिन्दी में प्रयुक्त शब्दों की तुलना में अधिक विस्तृत है। उसके अन्तर्गत अन्वेषण, अनुसंधान, शोध के सभी सोपान आ जाते हैं। सुविधा की दृष्टि से हम इन सभी को शोध व लेखन नाम से सम्बोधित कर सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शोधकार्य चिर पुरातन काल से होता आया है। वह एक ही विषय पर कई-कई बार हुआ है। हर बार शोधकर्त्ता ने पिछले कार्य में कुछ तथ्य जोड़े ज्ञान के भण्डार को और आगे बढ़ाया। विज्ञान हो, चाहे साहित्य-कला, संस्कृति का क्षेत्र प्रत्येक में यही मानकर चला जाता है कि इसमें पूर्णता की चरम स्थिति कभी नहीं आती। हर छोटे से छोटा विषय भी आगे और विस्तार तथा अधिक तथ्य माँगता है। इसलिए यह नहीं मानना चाहिए कि जो कार्य पहले हो चुका, उसे फिर से क्यों ढूँढ़ा जाय ? उस कार्य में उस स्थिति से आगे भी कुछ सम्भावनाएँ हो सकती हैं, जो देश, काल, उपलब्ध साधन, परिस्थितियों के अनुरूप फिर से पता लगाई जा सकती हैं। कोई भी सिद्धान्त शाश्वत नहीं है। किसी तथ्य की सत्यता, अकाट्यता हमेशा के लिए पत्थर की लकीर नहीं बन जाती। विज्ञान में अणु-परमाणु भौतिकी के क्षेत्र में शोध से इस पक्ष को और भी अधिक अच्छी तरह समझा जा सकता है। कभी अणु को पदार्थ की मूलभूत इकाई माना जाता था। डाल्टन ने १९वीं शताब्दी के मध्य में इसका अस्तित्व सिद्ध किया। एवोगेड्रो ने उनकी आणविक संख्या दी। बीसवीं शाताब्दी के प्रारम्भ में लार्ड रदरफोर्ड ने अणु के नाभिक व परिकर की खोज की तथा आवेशों का वर्गीकरण किया। आंइस्टीन व मैक्स प्लैंक ने उस शोध को और आगे बढ़ाया तथा कई विवादास्पद रोचक मोड़ आते-आते आज क्वार्को नियम, कण-प्रतिकणों की दुनिया में भौतिकी पहुँच गई है। दूसरी ओर आधुनिक सिद्धान्तों से भी सूक्ष्मतम विश्लेषण की झाँकी आप्त वचनों में मिलती है। कहने का आशय यह कि विज्ञान ने अपनी प्रगति अनवरत जारी रखी है, व भविष्य में और भी सूक्ष्मतम विश्लेषण होने—पदार्थ के गुह्य रहस्यों को ढूँढ़े जाने की सम्भावना है, भले ही लिखित प्रतिपादन कुछ भी क्यों न हों, शोधकर्त्ता अपने अनुसंधान को पूर्वाग्रहों से न जकड़कर नये आयाम सतत् खोजते हैं। प्रयास वे यह करते हैं कि भूले हुए तथ्य पुनः प्रकाश में लाये जायें एवं पूर्व ज्ञान की शृंखला से उन्हें जोड़ दिया जाय। एक समग्र परिपूर्ण व्याख्या के द्वारा परिकल्पना या हाथ में ली गई समस्या को हल करने की सुव्यवस्थित तटस्थ प्रक्रिया का नाम ही 'शोध' है।

शोध वस्तुतः नये तथ्यों की खोज तो है ही, उनकी तर्कसम्मत व्याख्या भी है। ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं, जिनमें भारतीय आचार्यों ने पूर्ववर्ती ग्रन्थकारों के श्रम को दुहराया तथा उनकी नवीन परिप्रेक्ष्य में नये ढंग से पुनः व्याख्या की। साहित्य, व्याकरण, धर्म, संस्कृति आदि में तो इस प्रकार के संशोधन बार-बार हुए हैं। इसलिए शोध में यह ध्यान हमेशा रखा जाय कि जो भी कुछ कहा जा रहा है, वह पूर्ववर्ती ज्ञान का मात्र दुहराव नहीं उसमें कुछ जोड़ा ही जा रहा है।

अन्वेषण कार्य के विषय में बड़ा स्पष्ट विवेचन आर्ष ग्रन्थों में मिलता है, जो शोध कार्य की गरिमा-महत्ता को और भी अधिक स्पष्ट कर देता है।

उपनिषद के ऋषि कहते हैं—

'हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्य अपिहितं मुखम्'।

अर्थात "ज्ञान अज्ञान के आवरण में छिपा रहता है। उसे अनावरण करने का कार्य तत्त्वदर्शी (अन्वेषक) का है" आप्त वचनों को निष्क्रिय भाव से अन्वेषक कभी नहीं स्वीकारते।

ऋषि का यह उद्घोष सनातन काल से मानवी जिज्ञासा को ज्ञान के नये-नये आयाम खोजने, उनसे लाभान्वित होने तथा विश्व-वसुधा के कल्याण में उन निष्कर्षों को नियोजित करने के लिए प्रेरित करता आया है। लेखन-शोध में उस घोषणा का निर्वाह किया जाता है तथा उतनी ही गरिमा से इसे सम्पादित करने का प्रयास भी किया जाता है। परम्परागत डिग्रीधारी शोधकर्त्ताओं से यह शोध अलग है क्योंकि इसका मूल प्रयोजन ही मानवी चिन्तन को उत्कृष्टतापरक मोड़ देना है। फिर भी कार्यविधि एक होने से विश्वविद्यालय स्तर की शोध को दृष्टिगत रख विवेचन करना अधिक व्यावहारिक है। यहाँ शोध विषय का विस्तार, विकास क्रम एवं व्यावहारिक रूपरेखा को उस परिप्रेक्ष्य में इसी दृष्टि से प्रस्तुत किया जा रहा है, इसे स्पष्ट समझ लेना चाहिए।

मानवी चिन्तन का इतिहास जब हम आर्षकाल से अभी तक खोजते हैं, तो पाते हैं कि भारतवर्ष की अनुसंधान परम्परा की जड़ें अत्यन्त गहरी हैं। वस्तुतः हमारे-वेदों, उपनिषदों का उदात्त चिन्तन उस गहन शोध और सत्यानुभव की परिणति है, जिसके लिए अनेकों ऋषियों ने अपना जीवन खपाया। उसमें सन्निहित दर्शन, व्याकरण, नीति, काव्यशास्त्र, समाजशास्त्र आदि की खण्डन और मंथन प्रणालियाँ, ज्ञान और अनुसंधान की गौरवमयी परम्पराएँ हैं। व्यास, गौतम, कणाद, पाणिनी, वशिष्ठ, भरत, कौटिल्य, नारद, गंडी मम्मट, अभिनव गुप्त, कपिल, पातंजलि आदि के अमूल्य ग्रन्थ और उनमें बिखरी ज्ञानराशि इस बात की परिचायक है कि देश में तत्त्वानुसंधान के प्रति ऋषियों की गहरी अभिरुचि रही है। चिकित्सा जगत में संसार के अमृतोपम उपचार पद्धति आयुर्वेद की देन में चरक, सुश्रुत, वाणभट्ट, धन्वन्तरी को भला कौन भुला सकता है ? संसार ने इनके ग्रन्थों से दिशा ली है। ज्योतिषशास्त्र मर्मज्ञ वाराहमिहिर, आर्यभट्ट की गणित गवेषणाओं, ग्रह, नक्षत्रों की दूरी, गति-परस्पर एक-दूसरे पर पढ़ने वाले प्रभावों से सम्बद्ध निष्कर्षों को पढ़कर आज के मूर्धन्य वैज्ञानिकों को भी दाँतों तले अँगुली दबानी पड़ती है। उन्हें अचम्भा होता है कि बिना किसी आधुनिक वैज्ञानिक यंत्रों के सहारे उन्होंने इतनी सही गणना किस प्रकार की थी? भास्कराचार्य के गणित सूत्रों को समझने और व्याख्या करने में मूर्धन्य गणितशास्त्रियों और खगोलविदों को भी परेशानी होती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऋषियों के आविष्कृत अनेकों सूत्र आज भी विद्यमान हैं, जो अनुसंधान के क्षेत्र में मार्गदर्शन करने में समर्थ हैं। कितने ही अछूते विषय ऐसे हैं, जिनसे मानव जीवन का सीधा सम्बन्ध है। उनमें शोध द्वारा अनेकों प्रकार के उपयोगी निष्कर्ष निकल सकते हैं। उदाहरणार्थ—ज्योतिर्विज्ञान। खगोलशास्त्री वैज्ञानिकों यंत्रों के सहारे अब तक मात्र कुछ ग्रहों अथवा नक्षत्रों की दूरी और गति का अध्ययन कर सके हैं। असंख्यों के विषय में उन्हें कोई जानकारी नहीं है। परस्पर सम्बन्ध होने तथा एक सौर-मण्डल का अभिन्न घटक होने के कारण प्रत्येक ग्रह-नक्षत्रों की गति तथा स्थिति का एक-दूसरे के ऊपर प्रभाव पड़ता है। एक का असन्तुलन समूचे परिकर को झकझोर कर रख देता है। आये दिन भूकम्पों, तूफानों, ज्वालामुखियों के झटके से तबाही आती रहती है। असहाय और असमर्थ की स्थिति में मनुष्य मूकदर्शक बनकर उन्हें देखता रहता है। पूर्वानुमान की सारी वैज्ञानिक तकनीक यथार्थ जानकारी देने में असफल सिद्ध हुई है। ज्योतिर्विज्ञान के महत्त्वपूर्ण सूत्र-संकेत ग्रन्थों में मौजूद हैं। उनसे दिशा लेकर इस शोधकार्य को आगे बढ़ाया जा सकता है। यह सूचना मिल सके कि कब, किस समय और कहाँ भूकम्प आने वाले हैं अथवा ज्वालामुखी फटने वाली है, तो यह पूर्व जानकारी अब तक की समस्त, वैज्ञानिक अनुसंधानों से महत्त्वपूर्ण होगी। साथ ही प्रतिवर्ष उन प्रकृति विपदाओं से जो भयंकर तबाही होती है, उनसे बचाव होगा।

उल्लेखनीय है कि विश्व के सभी मूर्धन्य वैज्ञानिक, खगोलशास्त्री यह मानने लगे हैं कि प्रकृति विपदाओं में अन्तर्ग्रहीय प्रभावों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, जिनके विषय में आज भी वैज्ञानिकों की जानकारी अत्यल्प है। इस कार्य को आगे बढ़ाना भी शोध-अनुसन्धान विज्ञान की परिधि में आता है। वस्तुतः शोध अविज्ञात का अनावरण है। कोई आवश्यक नहीं कि जो मनुष्य को ज्ञात नहीं, वह विद्यमान नहीं। आज यदि १०० वर्ष पूर्व का व्यक्ति फिर इसी संसार में समझने योग्य स्थिति में वापस बुलाया जाय, तो वह हतप्रभ हो उस सदी के वैज्ञानिक विकास को देखता रह जायेगा। उस समय भी वर्तमान की सम्भावनाएँ सूक्ष्म जगत के अन्तराल में थीं। आज आने वाले कल की उज्ज्वल सम्भावनाएँ हमारे लिए यूटोपिया मात्र हैं अथवा उनकी कल्पना भी हमें नहीं। इसे परिकल्पना द्वारा खोज निकालना, उससे कैसे मानव लाभान्वित हो सकता है ? यह निष्कर्ष समाज को देना ही युग मनीषा का यथार्थ में शोधकार्य है।

शोध का लक्ष्य है, प्रकृति के रहस्यों का अनावरण अथवा मानव जीवन से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान। यह समाधान उन रहस्यमय, अविज्ञात या लुप्त सम्बन्धों का कार्य-कारण सम्बन्धी अन्वेषण होता है, जो विभिन्न मूर्त अथवा अमूर्त तत्त्वों के बीच क्रियाशील रहते हैं। इनकी खोज का परिणाम यह होता है कि मनुष्य का ज्ञान उत्तरोत्तर विकसित और संवर्धित होता चला जाता है। शोध मानवी ज्ञान की सीमाओं का विस्तार करती है। आदिम युग में मनुष्य अत्यन्त पिछड़ा हुआ था। पशुओं की भाँति जीवन व्यतीत करता था। क्रमशः शोध सोपानों पर चढ़ते हुए वह आज की सुविकसित अवस्था में पहुँचा है जिज्ञासा मूलक शोध की प्रवृत्ति ने ही ज्ञान-विज्ञान की अनेकानेक उपलब्धियाँ मनुष्य जाति के लिए प्रस्तुत की हैं। आज जिन सुविधाओं-साधनों का मनुष्य उपभोग कर रहा है, वे सब शोध के ही परिणाम हैं। विज्ञान, कला साहित्य, समाजशास्त्र, इतिहास, भूगोल, मनोविज्ञान, दर्शन, कृषि, शिल्प, ज्योतिर्विज्ञान, भू-गर्भशास्त्र, जीव-विज्ञान आदि क्षेत्रों की समस्याओं के जो समाधान प्रस्तुत हुए हैं, वे सब शोध व्यापार की ही तो परिणतियाँ हैं। जब हम विज्ञान एवं दर्शन की अन्य शाखा-प्रशाखाओं पर एक दृष्टि डालते हैं, तो ज्ञान होता है कि क्रमिक रूप से शोध-विद्या के विकास में उन सबकी परिधि भी बढ़ती चली गई। जहाँ मध्यकाल में व्यक्ति की दृष्टि सीमित थी, वहाँ आज के युग के मनीषी के दिमाग का फैलाव असीम है।

जहाँ कसी समय शोधकार्य का सम्बन्ध मात्र भौतिकी जैसे वैज्ञानिक विषयों से माना जाता था, वहाँ अब मनुष्य की बौद्धिक प्रगति के साथ-साथ शोध के विषयों का भी विस्तार हुआ है। समाज विज्ञान, मनोविज्ञान, मानविकी जैसे विषय भी उतने ही महत्त्वपूर्ण माने जा रहे हैं जितने कि विशुद्ध विज्ञान के विषय। मनोविज्ञान के क्षेत्र में होने वाली खोज—मनुष्य के मन की चेतन-अचेतन परतों की व्याख्या-विवेचना, क्रिया प्रणाली का अध्ययन विश्लेषण आदि पक्षों का मनुष्य जीवन से सीधा सम्बन्ध है। मन का नियंत्रण मस्तिष्क और शरीर पर रहता है। मनुष्य का गुण, कर्म, स्वभाव आचरण और व्यवहार मानसिक स्थिति से प्रभावित होता है। मनोविज्ञान के क्षेत्र में होने वाली शोधों से कितनी ही महत्त्वपूर्ण सम्भावनाएँ अब साकार होने लगी हैं।

अब तक मनोविज्ञान में अनुसंधान का विषय मन की संरचना के अध्ययन-विश्लेषण तक परिसीमित रहा है। नारमल अथवा एबनारमल मनःशास्त्र पर ही कुछ प्रकाश पड़ सका है। सुपर चेतन का स्वरूप जिसे भारतीय अध्यात्म ने अन्तःकरण कहा है, अब तक अस्पष्ट है। सुपर साइकालॉजी की एक शाखा मनोविज्ञान के क्षेत्र में विकसित हो सकती है। अब तक जितनी भी खोजें हुई हैं, एबनारमल (विकृत) व्यक्तियों पर हुई हैं। सुपर नारमल अथवा सुपरमैन की मानसिके संरचना का अध्ययन-विश्लेषण किये बिना मनोवैज्ञानिक शोध की प्रक्रिया अपूर्ण ही बनी रहेगी। मनुष्य की असीम सम्भावनाओं पर प्रकाश इसके बिना नहीं पड़ सकता है।

आधुनिक मनोविज्ञान की यह मान्यता है कि मनुष्य अपनी मूल प्रवृतियों का गुलाम है। प्रचलित मान्यता अत्यन्त भ्रामक है। विकास की सम्भावना से इन्कार करने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वाली उपरोक्त मनोवैज्ञानिक मान्यताओं ने मनुष्य जाति का भारी अहित किया है। सुपर चेतन के स्वरूप और स्वार्थ के विषय में जब तक जानकारी नहीं मिलती, तब तक मनुष्य असमर्थ और अपनी पशु-प्रवृत्तियों का सचमुच ही गुलाम बना रहेगा।

यह तो मात्र एक उदाहरण है। ऐसे अनेकों विषय हैं, जिनमें शोध अनुसंधान की विशाल सम्भावनाएँ हैं। वस्तुतः अगले दिनों लेखन होना है तो मात्र उन्हीं विषयों का, जो मानव की समस्याओं को सीधे स्पर्श करते हैं। उसके व्यक्तित्व एवं परिस्थितियों की परिष्कृति में सहायक सिद्ध हों। शोध अगले दिनों होगी तो इन्हीं विषयों पर। यह तो मात्र सामयिक स्थिति बनी है कि जनसाधारण में अनुसंधान शब्द मात्र वैज्ञानिक विषयों के अन्वेषण के लिए प्रयुक्त होने लगा है। अब इसकी प्रक्रिया परम्परागत नहीं रही है। सम्बद्ध तथ्यों की गवेषणा का ही मात्र उसमें समावेश नहीं रहा, वरन् सूक्ष्म चिन्तन, निरीक्षण और विश्लेषण को भी उचित और आवश्यक माना गया है।

साहित्यिक विषयों की सामग्री एकत्रित करना वैज्ञानिक विषयों की तुलना में कहीं अधिक श्रमसाध्य है और उतना ही दुरूह भी। सामूहिक प्रयत्नों द्वारा यह कार्य अधिक सुगमतापूर्वक किया सकता है। यह तभी सम्भव है, जब एक विशेष विचारधारा के विषयों का अनुसंधान एक ही संस्था के मार्गदर्शन में हो। वहाँ सामग्री भी जुटाई जा सकती है और आवश्यक पथ-प्रदर्शन की भी व्यवस्था सम्भव है।

साहित्य सृजन की सामग्री तथा पृष्ठभूमि

साहित्य-सृजन की योग्यता विकसित करने के छह सोपान हैं। (१) अपने लिए सीमित किन्तु उपयुक्त विषय का चुनाव और उसमें अपने चिन्तन तथा प्रयास का केन्द्रीकरण। (२) निर्धारित विषय के प्रामाणिक ग्रन्थों का गम्भीरतापूर्वक अधिकाधिक अध्ययन। (३) जो पढ़ा ढूँढ़ा है उसमें से जितना सारगर्भित हो, उसका सुव्यवस्थित रूप से वर्गीकरण-संकलन (४) संकलन का सही शैली में लेखन, भाषा, लिपि, भाव, व्याकरण, सन्तुलन, शब्दानुशासन आदि के आधार पर संचय का नये ढाँचे में प्रस्तुतीकरण (५) लेख या पुस्तक का पूर्व ढाँचा खड़ा करना और उसके हर पक्ष के लिए आवश्यक सामग्री जुटाना। इसे जुटाने में अध्ययन, परामर्श, मनन एवं सूझबूझ के साथ उपयुक्त निर्धारण (६) संचय को हार की तरह गूँथना, गुलदस्ते की तरह क्रमबद्ध रूप से सँजोना। इन सभी पक्षों पर समुचित ध्यान देने की आवश्यकता है। इनमें से एक भी उपेक्षित रहा, महत्त्वहीन समझा गया तो ऐसा लेखन बन नहीं पड़ेगा, जिसे किसी प्रतिभा का भाव-भरा प्रयास कहकर सराहा जा सके।

उपरोक्त छह सोपानों में प्रथम है—विषय निर्धारण। हर व्यक्ति हर विषय में पारंगत स्तर का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। व्यक्ति और समाज से सम्बन्धित असंख्यों विषय एवं प्रसंग हैं। उनमें से कोई व्यक्ति कुछेक को ही अपने लिए चुन सकता है। पूर्व मनःस्थिति से सम्बन्धित, रुचिकर, सुलभ जो ज्ञान प्रसंग हो, उसे अपने लेखन का विषय मानकर चलना अधिक उपयुक्त है। इस सीमाबन्धन से ही उस सन्दर्भ में गहरी जानकारी प्राप्त कर सकना सम्भव हो सकता है। पी-एच. डी. में कोई छोटा विषय अपनी खोज के लिए नियत करना पड़ता है। फिर उसे वर्गीकृत करके विषयसूची बनानी पड़ती है। तब कहीं कार्यारम्भ होता है। यदि धर्म, समाज, स्वास्थ्य जैसे सुविस्तृत विषय को वे संशोधक हाथ में लें, तो उस व्यापकता के बीच बिखराव की स्थिति ही बनी रहेगी। समूचे समुद्र में कहाँ-कहाँ डुबकी लगाई जाय ? पहले क्षेत्र चुनना पड़ता है, तभी पनडुब्बे मोती समेटकर लाने में सफल होते हैं। कोई विषय निर्धारित नहीं और कुछ भी लिखने लगा जाय, तो सतही जानकारी के आधार पर उथला जितना ही कुछ लिखना बन पड़ेगा। अनके विषयों का न कोई गहरा अध्ययन कर सकता है, न चिन्तन-मनन की बहुत बड़ी सीमा बन सकती है। एक ही व्यक्ति चिकित्सक, स्वर साधक, शिक्षक, अभिनेता, शिल्पी बनने का एक साथ प्रयत्न करेगा, तो उसे किसी में भी प्रवीणता न मिलेगी। लेखन के सम्बन्ध में भी यही बात है। व्यक्ति का निर्माण, परिवार समस्या, बाल निर्माण, स्वास्थ्य, अर्थ सन्तुलन, नारी उत्कर्ष, समाज संरचना, विचारशक्ति का सही उपयोग जैसी आज की प्रमुख समस्याओं में से एक दो को अपना कार्यक्षेत्र चुना जा सकता है। उनमें से प्रत्येक की अगणित शाखा प्रशाखाओं पर दृष्टिपात करके यह सोचा जा सकता है कि निर्धारित विषय के इन विभेदों के सम्बन्ध में अधिकाधिक जानकारी अर्जित कर सकना किस प्रकार सम्भव हो? प्रथम सोपान लक्ष्य निश्चित करने पर ही वह बात बनती है कि अपने ज्ञान का दायरा उस परिधि में किस प्रकार बढ़ाया जाय?

आटा तैयार करने से पूर्व अन्न की व्यवस्था करनी होती है। लेखन कला के क्षेत्र में प्रवेश करने वाले को लेख लिखने नहीं बैठ जाना चाहिए वरन् यह करना चाहिए कि अपने विषय से सम्बन्धित अनेक सन्दर्भ ग्रन्थों को पढ़े और प्रयत्न करे कि उस प्रसंग के उतार-चढ़ावों को—पक्ष विपक्ष को अधिक विस्तारपूर्वक समझने का काम हाथ में लिया जाय। इस कार्य के लिए तदनुरूप ग्रन्थ ही पढ़ने चाहिए, जो अपने विषय के प्रवीण-पारंगत मनीषियों द्वारा लिखे गये हों और उनमें आज की परिस्थितियों का ध्यान रखा गया हो। मन बहलाव, बाल-बोध बहुपठित होने, भावना उभारने की दृष्टि से कथा-पुराणों का भी आधुनिक उपन्यासों की तरह कुछ-कुछ उपयोग तो है, पर उससे अभीष्ट प्रयोजन की पूर्ति में सहायता नहीं मिलती। आधुनिक अर्थ संकट का हल रामायण में खोजना व्यर्थ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। दिन-दिन स्वास्थ्य में बढ़ रही गिरावट का कारण और समाधान ढूँढ़ने के लिए गीता पाठ करने से काम नहीं चलेगा। बाल-विकृतियों के सम्बन्ध में भागवत से सूत्र खोजने में पहाड़ खोदकर चुहिया निकालने जैसे ही कुछ सूत्र संकेत मिलेंगे। शास्त्रों के प्रति सम्मान का भाव रखना एक बात है और आज की परिस्थितियों-कठिनाइयों का व्यावहारिक समाधान उपलब्ध करना दूसरी। इसके लिए वही सन्दर्भ ग्रन्थ ज्ञानवर्धक एवं विचारोत्तेजक हो सकते हैं, जिनमें सामयिक परिस्थितियों को प्रमुखता देते हुए विचार मंथन का प्रयत्न किया गया है। अस्तु, इन्हें अध्ययन के लिए तलाश करना नितान्त आवश्यक है। किसी को इस भ्रम में नहीं रहना चाहिए कि मात्र अपनी सूझ-बूझ के सहारे मौलिक लिख सकता है।

मौलिकता इतनी ही हो सकती है कि अब तक के विचारकों द्वारा अभीष्ट विषय की धारा-उपधाराओं के सम्बन्ध में जो कहा गया है, उसे पत्थर की लकीर न मानकर यह सोचे कि उनमें से कितना कुछ तथ्यपूर्ण है। इन तथ्यों को विचार का विषय बनाकर उन पर अपनी मौलिक दृष्टि डाली जाय और निष्कर्ष निकालने में निष्पक्ष सूझ-बूझ का परिचय दिया जाय। यह निष्पक्षता ही मौलिकता है। अपना चिन्तन, निष्कर्ष, निर्धारण मौलिक हो सकता है। यह सर्वथा स्वतन्त्र हो—यह आवश्यक नहीं। किसी पूर्ववर्ती मनीषी की मान्यताओं के साथ अपनी सहमति पूरी तरह भी हो सकती है और आंशिक भी। इसके अतिरिक्त जिस प्रकार पूर्ववर्ती लोगों ने ढूँढ़-खोज का परिश्रम किया और सन्दर्भ ग्रन्थ रचे, उसी पद्धति को अपनाकर अपना कोई विशिष्ट अभिमत हो तो वह भी प्रकट किया जा सकता है, अन्यथा भूतकालीन उपयुक्त निर्धारणों से जिस पर प्रकाश डालना हो, उसके सम्बन्ध में और भी अधिक मात्रा में तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहारण एकत्रित करके प्रतिपादन को और भी अधिक वजनदार बनाया जा सकता है। मौलिकता की इतनी ही परिभाषा करके हमें काम चलाना चाहिए। सबसे पृथक प्रकार का ही कुछ लिखना है और पाँचवें सवारों में अपना नामांकन अलग से करना है—ऐसी ढीठ अहमन्यता लेकर हममें से किसी को भी नहीं चलना चाहिए।

इस प्राथमिक नीति निर्धारण के उपरान्त जो कार्य प्रत्यक्षत: हाथ में लिया जाना है—वह है अपने चुने विषय के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों को सरसरी निगाह से नहीं, वरन् बारीकी से इस प्रकार पढ़ना, जिससे उसके समूचे कलेवर को आद्योपान्त पढ़ने का तो जाल-जंजाल न बनना पड़े, पर उसके पक्ष-विपक्ष को प्रस्तुत करने वाले तथ्य, तर्क उपलब्ध होते चलें। इसके लिए एक विशेष प्रकार की दृष्टि विकसित करनी पड़ती है। उसे 'विहंगावलोकन' कहते हैं। गिद्ध आकाश में उड़ता है। दृष्टि धरती के सुविस्तृत क्षेत्र पर रखता है। उसमें एक ही वस्तु खोजता है कि उसके लिए उपयुक्त एवं सरलतापूर्वक हाथ लगने वाला आहार कहाँ है? जहाँ वह दीखता है, वहीं दृष्टि जमाता है। इसी के इर्द-गिर्द मँड़राता और अन्तत: जहाँ अभीष्ट वस्तु है वहीं टूट पड़ता है। शोध शैली यही है। यह किसी के लिए भी सम्भव नहीं है कि प्रत्येक विषय पर पाए जाने वाले हजारों ग्रन्थों को अद्योपान्त पढ़े और उसमें से लेखन के लिए जिस सामग्री की तत्काल आवश्यकता है, उसे कम समय में ढूँढ़ निकाले। कम समय में सरसरी दृष्टि डालकर बड़ी पुस्तकों में से अपने काम वाले तथ्य ढूँढ़ निकालने की वेधक दृष्टि को ही विहंगावलोकन कहते हैं। बगुला इसी रीति-नीति को अपनाता है। समूचे तालाब को ध्यान में रखता है, पर पकड़ता उसी मछली को है जो उसकी चोंच में समा सके, पेट में पच सके। जो इन बातों पर खरी नहीं उतरती, वे हजारों मछलियाँ इधर-उधर घूमती रहती हैं। बगुला निस्पृह भाव से उन्हें देखता रहता है। हाथ उन्हीं पर डालता है, जो उसके काम की होती हैं। साहित्य सृजन की दृष्टि से आवश्यक तथ्य संग्रह के लिए इसी दृष्टि से पढ़ना पड़ता है। सामान्य ज्ञान बढ़ाने भर की बात दूसरी है। उसके लिए किन्हीं ग्रन्थों का पाठ-पारायण करते रहा जा सकता है किन्तु जिन्हें अपनी गाड़ी चलानी है, उन्हें तो सुविस्तृत अध्ययन क्षेत्र में से इन्हीं दिनों काम आने वाले संचय को जमा करना है। इसके लिए जासूसी कुत्तों जैसी पैनी घ्राण शक्ति होनी चाहिए। जिसमें नाक से गन्ध तो सब ओर की ली जाय पर बढ़ा उसी दिशा में जाय जिधर से अपराधी गुजरने का प्रमाण मिलता है। संक्षेप में इसी शोध विद्या का नाम विहंगावलोकन है। उसे सीखना, अभ्यास में उतारना, विकसित करना किसी भी तथ्यपूर्ण साहित्य सृजन के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक है।

अभीष्ट ग्रन्थ कहाँ से जुटाये जायें ? यह टेढ़ी खीर है। विदेशी लेखकों की बात दूसरी है। वहाँ एक महत्त्वपूर्ण लेख लिखने के लिए महीनों पढ़ा जाता है। कुछ पुस्तकों को पैसों से भी खरीदा जाता है, कुछ के लिए पुस्तकालयों का आश्रय लिया जाता है। इस प्रकार साहित्य जुटाने एवं अध्ययन करने में लगे खर्च का जो संयुक्त जोड़ होता है, वह लेखक को पारिश्रमिक के रूप में मिल जाता है। वहाँ प्रकाशक इस स्तर के हैं, जो लेखन पर व्यय होने वाली विपुल धनराशि को प्रसन्नतापूर्वक वहन कर सकें। कारण दो हैं—वहाँ शिक्षा और सम्पन्नता की कमी न होने से पुस्तकें बिकती भी खूब हैं और उनकी कीमतें भी भारी रहती हैं। उन देशों में ज्ञानवर्धक सामग्री के लिए अधिक पैसा खर्च करना भी किसी को अखरता नहीं, वरन् उस राशि के लिए नियमित बजट भी रहता है। यही कारण है कि न केवल पाठ्य सामग्री वजनदार होती है वरन् सचित्र-सुसज्जित बनाने में भी कोताही नहीं की जाती।

उन प्रगतिशील देशों की बातें दूसरी हैं। उनकी जितनी न अपने यहाँ शिक्षा है, न सम्पन्नता, न सुरुचि। ऐसी दशा में सत्साहित्य सृजन का लक्ष्य लेकर लेखन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कला का अभ्यास करने वालों को यह देखना होता है कि उन्हें पढ़ने, ढूँढ़ने के लिए अभीष्ट साहित्य कहाँ से उपलब्ध हो ? उसके लिए हैसियत से बाहर का खर्च न करना पड़े। इस सन्दर्भ में दृष्टि साधन-सम्पन्न पुस्तकालयों पर ही आकर रुकती है। महीने भर में हजारों रुपये मूल्य के ग्रन्थ पढ़े तो जा सकते हैं, पर उतनी खरीद सकना कुछ धन-कुबेरों के अतिरिक्त साधारण स्थिति के लोगों के लिए सम्भव नहीं। कोई खरीदने का दुस्साहस करे भी तो उसका बदला लेखक को नहीं मिलने वाला है। प्रकाशक चाहे तो भी स्वल्प विक्रय और नगण्य से मूल्य के रहते लेखकों को उतनी राशि दे नहीं सकते, जिसके द्वारा अभीष्ट साहित्य खरीदते रहने का सिलसिला निरन्तर चलता रहे। जिसे लगातार लिखना है, उसके लिए तो निरन्तर पाठ्य सामग्री चाहिए। एक पुस्तक या एक लेख के बदले थोड़ा-सा पैसा दे भी दिया तो उतने भर से उस कार्य में संलग्न साहित्य-साधक की सुनियोजित अनवरत व्यवस्था कहाँ बनी ?

समाधान समर्थ पुस्तकालयों का आश्रय लेने के अतिरिक्त और कुछ बचता नहीं। कार्लमार्क्स ने १७ वर्षों तक अपने 'कैपीटल' ग्रन्थ को लिखने के लिए अनेक विश्वविद्यालय के पुस्तकालयों की खाक छानी और अधिकांश समय उन्हीं में बैठकर पन्ने उलटते हुए बिताया। युग-साहित्य के सृजेताओं को भी इसी ऋषि प्रणाली का अनुकरण करना होगा। महामनीषी वाचस्पति मिश्र की नवविवाहित पत्नी भामती किसी प्रकार मूँज की रस्सी बटकर अपने पति के लिए कागज, तेल एवं रोटी का प्रबन्ध करती थीं। उसी घटनाक्रम के इर्द-गिर्द युगसाहित्य के सृजेताओं को अपना गतिचक्र विनिर्मित करना होगा।

बचकाने स्तर के पाठकों की मनपसन्द कथा-कहानी वाली पुस्तकों की भरमार जिनमें रहती है, ऐसी लायब्रेरियाँ गली-कूचों में कहीं भी खुलती-बन्द होती रहती हैं। किराये पर या फीस लेकर 'मनपसन्द' पुस्तिकाएँ, पत्रिकाएँ मँगाती-पढ़ाती रहने वाली इन लायब्रेरियों से युगसाहित्य के सृजेताओं को तनिक भी सहायता नहीं मिल सकती। काम की चीजें उनमें होती ही कहाँ हैं, कोई पढ़े ही नहीं तो वे मँगायें ही क्यों ? ऐसी दशा में आश्रय बड़े बरगदों की छाया का लेना होगा, जहाँ पैर पसारने और छाया में सुस्ताने का अवसर मिल सके। यह प्रबन्ध कहाँ, किस प्रकार हो, इसका निर्णय करना वैसे पुस्तकालयों के अस्तित्व और उन तक अपनी पहुँच बिठाने के उपक्रम पर निर्भर है। यह कहाँ, किस प्रकार, कैसे हो सकता है ? इस सम्बन्ध में बिना स्थानीय परिस्थितियों को जाने कुछ कहा नहीं जा सकता।

युगसाहित्य-सृजन का जहाँ तक सम्बन्ध है, उसके लिए ब्रह्मवर्चस् ने उपयुक्त पुस्तकों का संग्रह देश-विदेशों से, ज्ञात-अविज्ञात स्रोतों से करना आरम्भ कर दिया है। शांतिकुंज का अपना शोध-पुस्तकालय जहाँ विज्ञान और अध्यात्म की संगति बिठाने की प्रक्रिया को ध्यान में रखकर उपयोगी साहित्य का संचय कर रहा है, वहाँ उसकी श्रीवृद्धि का दूसरा पक्ष यह भी है कि युग साहित्य सृजन के लिए जिन बहुमूल्य सन्दर्भ ग्रन्थों की आवश्यकता है, उसके लिए जहाँ-तहाँ भटकने की कठिनाई से बचने के लिए किसी प्रकार अपने पुस्तकालय को समृद्ध किया जाय। आवश्यकता की विशालता को देखते हुए तो सफलता को स्वल्प ही कहा जा सकता है किन्तु जहाँ तक युगसाहित्य के लेखन-प्रशिक्षण का सम्बन्ध है, वहाँ तक यह कहा जा सकता है कि अपनी आवश्यकता की सामयिक माँग पूरी करने में अब तक बन पड़ा संग्रह भी असाधारण एवं अद्भुत है। अन्यत्र ऐसी सुविधा कदाचित ही कहीं देखने को मिलेगी। इसलिए न केवल प्रशिक्षण-अध्ययन के लिए वरन् इस सृजन में संलग्न होने वाले प्रज्ञा साधकों के लिए यह आश्रम ऐसा है, जिससे उन्हें उच्चस्तरीय साहित्य अभीष्ट प्रयोजनों के लिए सन्दर्भ उपस्थित कर सकने योग्य स्तर का पर्याप्त मात्रा में मिल सकता है।

अध्ययन, अध्यवसाय के लिए उपयुक्त वातावरण भी चाहिए। दुर्भाव भरे, घिचपिच, कोलाहल युक्त, चित्त बँटाने वाले, विक्षोभों से सराबोर, घुटन और गन्दगी वाले वातावरण में गम्भीर साधनायें सधती ही नहीं। यही कारण है कि अध्यात्म विज्ञान के अनुसन्धानकर्ता अपने साधनात्मक प्रयोग-परीक्षणों के लिए हिमालय की गोद में गंदा तट के शान्तिदायक वातावरण में अपनी कुटी, प्रयोगशालायें बनाते थे। महाभारत रचने के लिए व्यासजी जिस गुफा में पहुँचे, वह बद्रीनाथ से कई मील ऊपर है। योग वशिष्ठ का सृजन हिमालय देव प्रयाग के निकट वशिष्ठ गुफा में हुआ। दिव्य चिन्तन, दिव्य सृजन के लिए दिव्य वातावरण भी चाहिए। मनीषा को उभारने वाली प्रज्ञा वहीं उमगती-बरसती है। काफी-हाउसों के दिन भर चक्कर काटने, पीने पिलाने, क्लबों के मजे लूटने वाले आज के तथा-कथित लेखक नामधारी जिस वातावरण में साँस लेते हैं, उनसे उसी स्तर के उत्पादन की भी आशा की जा सकती है। युग साहित्य के सृजन में जिस स्तर का वातावरण सहायक हो सकता है। उसी को बनाने की चेष्टा शान्तिकुंज के लेखन-प्रशिक्षण का स्थान चयन करते समय की गई है।

शोध अनुसन्धान के हर छात्र के लिए 'गाइड' नियुक्त होते हैं। इसके बिना विद्यार्थी जो पढ़ेगा, जो ढूँढ़ेगा वह क्रमबद्ध, योजनाबद्ध न होकर अस्त-व्यस्त ही रहेगा। विद्यार्थी को इतनी विशाल जानकारी कहाँ होती है कि वह अपने लिए पढ़ने की क्रमबद्ध योजना बना सके और कहाँ क्या मिलेगा ? उसका पूर्ण अनुमान लगा सके। इस कार्य के लिए उस विषय के प्रवीण-पारंगतों का मार्गदर्शन अनिवार्य रूप से आवश्यक होता है। संगीत, अभिनय, शिल्प, शल्यक्रिया आदि में मार्गदर्शन के बिना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वेच्छा प्रयत्नों से कदाचित ही कोई सफल हुआ है। गुरु कहने में हेटी लगती हो तो मार्गदर्शक को 'गाइड' भी कहा जा सकता है। पर उसका संरक्षण होना हर हालत में चाहिए। अन्यथा भटकाव में समय और श्रम का अनावश्यक अपव्यय होता रहेगा। साहित्य सृजन का आरम्भ अध्ययन-संकलन से और अल्प कृति को समग्र सम्पूर्ण करने से होता है। इस लम्बी शृंखला में अनेकों मोड़ विराम हैं, उन सभी पर मार्गदर्शन चाहिए अन्यथा जंक्शनों पर जुड़ी रहने वाली पटरियों में से इंजन किधर चल पड़ेगा और गन्तव्य स्थान की अपेक्षा वहाँ पहुँचने का असमंजस खड़ा होगा, जहाँ से वापस लौटने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं। रेल के इंजन को दिशा देने वाली व्यवस्था की तरह लेखन कला में भी वैसे ही अँगुलि निर्देशक भर की नहीं वरन् हाथ पकड़कर सही दिशा में घसीट ले चलने जैसी आवश्यकता पड़ती है। शांतिकुंज के लेखन विद्यालय में यह सुविधा भी सन्तोषजनक स्तर की उपलब्ध है। अनुभवी और निष्णात ही उपयुक्त मार्गदर्शन कर सकते हैं। यह व्यवस्था जहाँ जुटी, समझना चाहिए कि वहाँ आधी सफलता सुनिश्चित हो गई।

सन्दर्भ ग्रन्थों का विहंगावलोकन करने से पूर्व उसकी विषय सूची पर दृष्टिपात करना चाहिए। उससे पता चल जाता है। कि किन अध्यायों में, किन पृष्ठों पर—क्या पाठ्य सामग्री है। जो अपने काम की न हो, उसे छोड़ देने की बात विषय सूची पर दृष्टिपात करने से बन जाती है और सारी पुस्तक पढ़ने की अपेक्षा काम के अध्याय पढ़ने से भी काम चल जाता है। उपयुक्त अध्यायों का विहंगावलोकन कर लेने से उस भूल का सामना नहीं करना पड़ता, जिससे सारे ग्रन्थ को पढ़ने और काम के स्थल थोड़े-से ही मिलने पर समय की बर्बादी का पश्चाताप करना पड़ता है। इस आधार पर बड़े ग्रन्थों में से अपने काम का सार तत्त्व थोड़े ही समय में हाथ लग जाता है।

पढ़ते समय जो तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहरण अपने काम के उपलब्ध हों। वहाँ छोटी-छोटी चिटें, सन्दर्भ नोट करते हुए रखते चलना चाहिए। निजी पुस्तक हो तो उसके हाँशिये पर भी संकेत लिखें और निकालते समय की सुविधा को ध्यान में रखते हुए पन्नों के कोने मोड़े जा सकते हैं। जो उपयुक्त लगता जाय, उसे साथ के साथ अलग कापी पर नोट करते चला जाय। यह तरीका गतिरोध उत्पन्न करता है और ग्रन्थ पूरा करने में बहुत समय चला जाता है। पढ़ने और संकेत लगाने का काम एक बार में ही कर लेना चाहिए जब उन्हें अलग से नोट करने का कार्य आरम्भ किया जाय, तब इतना और ध्यान रखा जाय कि किसी पुस्तक की भाषा ज्यों की त्यों नकल न की जाय। उसे अपनी भाषा में बदल लिया जाय। ऐसा करने से दो लाभ हैं। प्रथम तो वह कि भाषान्तरण की उपयोगी प्रक्रिया का अभ्यास होता है, दूसरा यह कि यदि कदाचित यह नोट कहीं 'ज्यों का त्यों' प्रयुक्त करना हुआ तो उसे यथावत भी प्रयुक्त किया जा सकता है। कापीराइट का कानूनी प्रतिबन्ध किसी की भाषा का ज्यों का त्यों प्रयोग करने से रोकता है। पैराग्राफ एवं प्रवाह की भी नकल नहीं किया जाना चाहिए, किन्तु वैज्ञानिक आविष्कारों के पंजीकरण को छोड़कर विचारों पर ऐसा प्रतिबन्ध नहीं कि एक के विचारों को दूसरा अपने ढंग से न कह सके। अस्तु, तथ्यों का संकलन करते समय भाषा परिवर्तन की बात विशेष रूप से ध्यान में रखनी चाहिए। अच्छा तो यह है कि जहाँ से जिनके जो विचार संकलित किये गये हैं उनका उल्लेख अपनी लेखन कृति में करते चला जाय। आवश्यक नहीं कि संकलन में अपने मत की ही सामग्री इकट्ठी की जाय, जहाँ प्रति-पक्षी तथ्य हों, उन्हें भी संग्रह करना चाहिए ताकि उनके सम्बन्ध में भी जानकारी पाठकों को दे सकना सम्भव हो सके। यही न्यायोचित है कि पाठकों से कुछ छिपाया न जाय, उन पर कुछ लादा भी न जाय। अपने पक्ष का समर्थन विपक्ष का समाधान करने का हर किसी का हक है, पर एक ही पक्ष की, अपने ही मत की बातें कहते चलना, पक्षपातपूर्ण एवं एकांगी है। इससे पाठक के साथ न्याय नहीं होता। इस दुराव में एक खतरा भी है कि जब कभी प्रतिपक्ष का जोरदार समर्थन सामने आये, तो एकांगी मान्यता के डगमगाने में भी देर न लगेगी। जिन आस्तिकों ने नास्तिक पक्ष को भली प्रकार पढ़ा है और दोनों पक्ष पर समुचित विचार मंथन के उपरान्त किसी निश्चय पर पहुँचने का उपक्रम किया है, उनकी आस्तिकता सुदृढ़ है, सहज ही उखड़ने वाली नहीं है, किन्तु जो एक ही पक्ष को सुनकर पूर्वाग्रह बनाते रहे हैं, वे प्रतिपक्ष के प्रचण्ड तर्कों का सामना करने की स्थिति में पिछली मान्यताओं को भ्रान्त मानकर उन्हें छोड़ने में भी देर नहीं लगाते। हमारे लेखन तथा संकलन में पक्ष-विपक्ष दोनों को समुचित स्थान मिलना चाहिए ताकि पाठक एक न्यायाधीश की तरह किसी उपयुक्त निर्णय पर पहुँच सकें।

क्रमबद्ध अध्ययन में से तथ्यों का सार-संक्षेप एकत्रित कर लेने के उपरान्त अगला कदम यह आता है कि जो ढूँढ़ा गया है, उसमें से उचित का समर्थन और अनुचित का समाधान करने के लिए अनेकानेक प्रमाणों को क्रमबद्ध किया जाय। कहीं कुछ कम पड़ता दीखे तो उसे या तो अन्यत्र से ढूँढ़ा जाय, विज्ञजनों से विचार-विमर्श किया जाय और अपने विवेक में उस संकलित सामग्री का ऐसा ढाँचा खड़ा किया जाय कि प्रतिपादन का तारतम्य प्रवाहपूर्ण बन सके और निश्चित पृष्ठ संख्या के अन्तर्गत अपनी बात लिख सकना सम्भव हो सके। पृष्ठों को कम करना हो तो प्रतिपादन के विस्तार का संक्षिप्तीकरण करना होगा और यदि तथ्य थोड़े हैं और बात अधिक लम्बी करनी है, तो उदाहरण के संस्मरण जोड़े जा सकते हैं। भाव सम्वेदनाओं का पुट लगाकर उसे गुदगुदाने वाला भी बनाया जा सकता है।

जानकारी का आदान-प्रदान करने वाली काम चलाऊ भाषा तो बोल-चाल की तरह सामान्य लिखे-पढ़े भी जानते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं या सीख सकते हैं। दफ्तरों में काम करने वाले मुन्शी भी दिन भर कलम चलाते हैं। मुनीम, पटवारी आदि का तो धन्धा ही यह है। इसे लेखन कला नहीं कह सकते। साहित्य सृजन में काम आने वाली भाषा एवं शैली दोनों ही इससे भिन्न हैं। भाषा का तात्पर्य है, उपयुक्त प्रयोजन के लिए उपयुक्त स्तर के शब्दों का चयन। समृद्ध भाषाओं में एक जैसे भावों की अभिव्यक्ति के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग होता है। सामान्य अर्थों में वे एक जैसे लगते हैं किन्तु उन पर बारीकी से दृष्टि डालने पर पता चलता है कि उनमें भाव सम्वेदनाओं के उतार-चढ़ाव की दृष्टि से भारी भिन्नता है। दुःख, कष्ट, व्यथा, वेदना, पीड़ा, दर्द आदि शब्द प्रायः एक ही प्रकार की स्थिति प्रकट करते हैं, पर उनका प्रयोग उस सन्दर्भ की बारीकियों और परिस्थितियों का पृथक-पृथक बोध कराते हैं। यदि इन भेद, उपभेदों को न समझा जाय तो फिर भाषा लड़खड़ा जायेगी और किसी प्रयोजन के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्द की तलाश न कर सकने, उसके स्थान पर दूसरे शब्द का प्रयोग कर बैठने से स्थिति उपहासास्पद बन जायगी। दुकान में घाटा पड़ने पर जो कष्ट होता है, उसे 'दुःख' कहते हैं और शरीर में पीड़ा होने पर 'दर्द' शब्द का उपयोग होता है। 'व्यथा' मानसिक होती है। 'पीड़ा' किसी ऐसे कष्ट को कहते हैं जो तिलमिला दे। यह बारीकियाँ साहित्य सृजेता को समझनी होती हैं और उनका सही प्रयोग अनायास कर सकने की क्षमता से मस्तिष्क को प्रशिक्षित करना होता है। यह कार्य कोषों को रटने से नहीं, अनुभव से आता है। इसके लिए तथ्य ढूँढ़ने के लिए पुस्तकों का विहंगावलोकन करने की तरह ही भाषा का सूक्ष्म निरीक्षण भी करना पड़ता है। शब्द प्रयोग की यह पद्धति उस विषय के पारंगतों के द्वारा लिखे हुए साहित्य को इस नई दृष्टि को लेकर पढ़ते रहने पर ही सीखी जा सकती है। इसलिए अध्ययन न केवल तथ्य ढूँढ़ने के लिए वरन् भाषा में शब्द प्रयोग का सौष्ठव समझने की दृष्टि से होना चाहिए।

शैली इससे भी ऊँची बात है। उसमें न केवल शब्दों का यथास्थान—यथा मूल्य सँजोने की आवश्यकता पड़ती है अपितु ऐसा प्रवाह भी विनिर्मित करना होता है जिससे पटरी पर गाड़ी फिसलती चली जाय। सड़क में गहरे गड्ढे हों तो गाड़ी दचक्के खाती हुई चलती है। प्रवाह के अभाव में संरचना भी इसी प्रकार लड़खड़ाती है और उससे पाठकों को न केवल प्रवाह आनन्द से वंचित रहना पड़ता है वरन् उस अनगढ़ मन के कारण कुरुचिजन्य अनख भी लगती है।

शैली का तात्पर्य मात्र प्रवाह ही नहीं, भावनाओं की अभिव्यक्ति का इस रूप में प्रकटीकरण भी है कि पाठक का मानस उपयुक्त भाव सम्वेदनाओं में लहराते चले। घटनाक्रम अथवा तथ्य निरूपण ही लेखन का उद्देश्य नहीं है वरन् प्रस्तुतीकरण के साथ भावाभिव्यक्तियों का सम्पुट लगाते चलना भी है। अन्यथा लेखन नीरस हो जाएगा। वह अन्तराल में उमंगें उठाने, थिरकन उत्पन्न करने का कार्य न कर सकेगा। ऐसा लेखन भूगोल, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान जैसे जानकारी देने वाले विषयों के प्रस्तुतीकरण में काम आ सकता है किन्तु जहाँ मान्यताओं, आस्थाओं, भावनाओं, आकांक्षाओं, विचारणाओं, आदतों पर नए सिरे से विचार करने, निष्पक्ष समीक्षा करने, अनौचित्य के दुष्परिणाम समझने, औचित्य अपनाने की महती सम्भावनाओं को स्वीकार करने जैसे जटिल मनोवैज्ञानिक दबाव का सम्बन्ध है, वहाँ भाव भरा प्रतिपादन ही काम दे सकता है। जहाँ लोहा गलाने-ढालने में प्रयुक्त होने वाले उच्चस्तरीय तापमान जुटाने जैसी आवश्यकता है। इसमें मर्मभाषी शैली को अपनाये बिना काम नहीं चलता। उसके बिना उत्तेजना ही नहीं आती, आक्रोश ही नहीं उभरता, पश्चाताप ही नहीं होता, पुनर्विचार की आवश्यकता ही अनुभव नहीं होती, नव निर्धारण कर सकने वाला विवेक ही नहीं जगता। इस साज-सज्जा के अभाव में उत्कृष्टता की ओर उछालने वाली उमंगों को लहराने जैसा कुछ बन ही नहीं पड़ता। इसके अभाव में लेखन निष्प्राण बनकर रह जाता है। उसमें पाठक की जानकारी भर से वृद्धि हो सकती है, पर अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह अपने में परिवर्तन करने की दूसरों पर बदलने वाले प्रभाव को जगाने एवं प्रयुक्त करने की दृष्टि से कोई कारगर कदम उठा सकेगा। यदि यह अभीष्ट हो तो भाषा-सौष्ठव के अतिरिक्त भाव सम्वेदनाओं को उद्धत नहीं सुसन्तुलित, कलात्मक समावेश करना पड़ेगा। सितार, वायलिन, जलतरंग बजाने की तरह इसकी विशेषताओं में भी हल्के-फुल्के, घुले-मिले, कर्णप्रिय, हृदयग्राही भावों का सरल समावेश होना चाहिए। यह शंख, घड़ियाल बजाने नरसिंहा फूँकने जैसे कर्कश उपकरणों के प्रयोग में नहीं पड़ता। लांछनों, भर्त्सनाओं से लदे हुए, कोसने वाले, मार-पीट पर उतारू ढंग से अनुपयुक्त पक्ष को निरस्त कर सकना सम्भव नहीं, इससे उल्टी प्रतिक्रिया होती है। पाठक अनुपयुक्त विषय के विरुद्ध होने की अपेक्षा लेखक के असन्तुलन और घटियापन से ही असहमत देखते हैं। फलतः प्रतिपादन की प्रभाव क्षमता ही समाप्त होकर रह जाती है। शैली का मर्म समझने वाले इन बारीकियों को समझते हैं और प्रतिपक्ष को कोसते कम तथा उस रीति-नीति के कारण होने वाली हानि का, उसके दुष्परिणाम भुगतने वालों का करुण चित्र उत्पन्न करके पाठक की करुणा जगाते और सहानुभूति उभारते हैं। इतने भर से प्रतिपक्ष के प्रति लोकमानस जगाने का उद्देश्य भली प्रकार पूरा हो जाता है। उसमें सामान्य-सा आक्रोश या पुट देने भर से काम चल जाता है।

भाषा और शैली की बारीकियाँ समझने के लिए उस स्तर के ग्रन्थों की बड़ी संख्या में अधिक दिनों तक ध्यानपूर्वक पढ़ते रहने की आवश्यकता तो है ही, इसके साथ ही एक और भी उपयोगी उपाय यह है कि उस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्तर की संरचनाओं की नकल करते रहने का अभ्यास भी प्रशिक्षण का एक महत्त्वपूर्ण अंश माना जाय। ऐसे कितने ही उदाहरण हैं, जिनमें आज के उच्चस्तरीय लेखकों की भाषा शैली का निखार आरम्भिक दिनों में किन्हीं मूर्धन्य साहित्यकारों की पाण्डुलिपियों सुलेख की दृष्टि से दुबारा लिखने के कारण ही निखरा। इस माध्यम से लेखन में काम आने वाला मस्तिष्कीय पक्ष एक उपयुक्त प्रवाह को अपनाने में अनायास ही सफल हो गया। सम्भवतः उतनी सफलता उन्हें मुद्दतों साहित्यिक कक्षाओं में सम्मिलित रहने पर भी हस्तगत न होती। वैसा सुयोग न मिले तो उस स्तर की मुद्रित पाठ्य सामग्री को भी हाथ से लिखने, नकल करते रहने का उपक्रम चलाया जा सकता है। युग-साहित्य के सृजन में अभिरुचि रखने वाले सूत्र-संचालक की शैली को पसन्द करते और प्रभावी मानते हैं, उसे सीखना-अपनाना चाहते हैं। इन्हें अभ्यास के लिए छपे साहित्य में से कुछ मार्मिक पृष्ठ नित्य नकल करने के लिए परामर्श दिया जाता है। इसका परिणाम आश्चर्यजनक होता देखा गया है। जिस भी शैली को अपनाया गया हो उसे न केवल ध्यानपूर्वक पढ़ना ही चाहिए वरन् लिखने का भी थोड़ा-थोड़ा अभ्यास जारी रखना चाहिए।

यह संकलन तक पहुँचने की आधी मंजिल पार करने की चर्चा हुई। इतना कर लेने पर विश्वास किया जा सकता है कि उत्तरार्ध को भी पूरा करना अब कठिन नहीं रह गया है। सामग्री हाथ में हो तो अभीष्ट वस्तु का बना देना उतना कठिन नहीं है। फिर भी उसके लिए विशेष कौशल तो अर्जित करना ही पड़ेगा। लौह खंड किसी के हाथ में थमा दिया जाय और उससे तलवार बना देने के लिए कहा जाय, तो वैसा कर सकना हर किसी का काम नहीं। सोने की डली के बदले नयनाभिराम आभूषण बनते तो हैं, पर उस कार्य को हर कोई नहीं कर सकता। आटा, घी, चीनी सौंप देने भर से अनेक आकार-स्वाद के मिष्ठान बना देने की आशा कुशल हलवाई से ही की जा सकती है, किसी अनाड़ी के हाथ में वह सामग्री सौंप देने पर तो मीठी 'लपसी' ही बन सकती है। कच्ची सामग्री से पक्की बनाना भी अपने ढंग का एक विचित्र कौशल है, उसे उपार्जित करने में कितने अध्यवसाय का प्रयोग करना पड़ता है—यह किसी चित्रकार, मूर्तिकार, संगीतकार के निकट बैठकर देखा जा सकता है। कागज, ब्रुश, रंग की डिब्बी और अँगुलियों के समन्वय भर से चित्र कहाँ बनते हैं ? छैनी, हथौड़ी को लेकर पत्थर की कुटाई आरम्भ कर देने से मूर्ति कैसे बनेगी ? बाजा हाथ में थाम लेने से कोई भी संगीत का समा बाँध दे—ऐसा कहाँ होता है ? सामग्री के बिना वस्तुएँ नहीं बनतीं—यह बात जितनी सच है, उतनी यह भी है कि उस प्रस्तुतीकरण के लिए कलाकारिता उभारने, अर्जित करने का मनोयोगपूर्वक अभ्यास करना पड़ता है। साहित्य सृजन के सम्बन्ध में भी यही बात है। तथ्य, तर्क, प्रमाण, उदाहरण, एकत्रित करने, भाषा शैली का अभ्यास करने के अतिरिक्त उस सूझ-बूझ की भी आवश्यकता पड़ती है, जिसके कारण संकलन मात्र संकलन न रहकर एक हृदयस्पर्शी कलाकृति के रूप में उभरता है। वस्तुतः यह सूझ ही लेखक की मौलिक विशेषता है, जिसे विषय के प्रति तादाकार होने, उसका महत्त्व समझने और विशेषज्ञों से परामर्श, मार्गदर्शन प्राप्त करते रहने से यह आवश्यकता भी समयानुसार पूरी होकर रहती है।

गुलदस्ता मात्र फूल, पत्ती और धागे का समुच्चय ही नहीं है—उसमें बनाने वाले की वह सूझ-बूझ भी सम्मिलित है, जिसके आधार पर कि उस सामग्री को आवश्यक उतार-चढ़ाव का ध्यान रखते हुए यथास्थान रखने में समुचित ध्यान रखा गया है। यदि वैसा न हुआ होता तो यह सामग्री किसी दोने-पत्ते में रखी हुई अपनी प्राकृत अवस्था में उपेक्षित पड़ी होती। इसे किसी वरिष्ठ के कोट में लगने या मेज पर सजने का सुअवसर न मिला होता। घर की शोभा में मात्र हीरा-सोना ही सब कुछ नहीं है, बनाने-गूँथने वाले की कलाकृति के बिना वह चित्ताकर्षक न बना होता। कानून की व्यवस्था वादी-प्रतिवादियों के प्रतिपादन, वकीलों के तर्क-प्रमाण ही मुकदमे में सब कुछ नहीं होते, न्यायाधीश की अपनी विवेचना बुद्धि भी फैसले को सही बनाने में निजी भूमिका निभाती है। साहित्य-सृजन के बारे में भी ऐसा कुछ समझा जाना चाहिए।

आरम्भ, मध्य, उपसंहार के तीनों पक्ष एक गोलाई के अन्तर्गत सुनियोजित ढंग से गुँथे रहने चाहिए। किस प्रसंग को कितना स्थान मिले—उनमें से किसे कितना आगे-पीछे रखा जाय, किस पर कितना कम, किस पर कितना अधिक जोर दिया जाय ? इन सबका सन्तुलन बिठा लेने पर रचना का एक सर्किल बन जाता है। शोभा उसी से निखरती, समग्रता उसी से आती है। विषयों का तर्क, तथ्य, प्रमाण आदि का सन्तुलन न बैठे, कोई बहुत अधिक, कोई बहुत कम रहे तो रचना ऐसी ही बन जायेगी जैसी कि बौने, कुबड़े, अपंग, रुग्ण, काने, कुरूप लोगों की होती है। शृंगार-सज्जा की तरह रचना में तथ्यों को यथाक्रम उपयुक्त मात्रा में रखने का सन्तुलन बिठाना भी एक बड़ा काम है। इसके लिए कृति को आरम्भ करने से पूर्व उसका ढाँचा बनाना होता है। उसी मर्यादा के अन्तर्गत लेखन क्रम में लगाम खींचने, एड़ लगाने की नीति अपनानी पड़ती है। पी-एच. डी. करने वाले सर्वप्रथम 'सिनेप्सिस' तैयार करते और बोर्ड से स्वीकृत कराते हैं। हर छोटी-बड़ी कृति को आरम्भ करने से पूर्व उसका ढाँचा शोध पद्धति के अनुरूप सुनिश्चित कर लेना चाहिए। इसके बिना कुछ अपवादों को छोड़कर कुछ भी लिखने लगने से रचनाओं में अप्रासंगिक, अनावश्यक बातें घुसने और आवश्यक छूटने लगती हैं। फलतः कूँजड़ी अपने बेरों को खट्टे न बताये तो भी वे चखने वालों के लिए अरुचिकर और अग्राह्य ही बने रहते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लेखक का अपना कुछ मौलिक भी होना चाहिए। यह मौलिकता विषय-विवेचना के रूप में ही हो सकती है। पाठक मात्र संकलन पढ़कर ही सन्तुष्ट नहीं होते वरन् उस प्रसंग पर लेखक का निष्कर्ष और मन्तव्य भी जानना चाहते हैं। साथ ही यह भी देखना चाहते हैं कि रचनाकार का प्रस्तुतीकरण अपनी निष्पक्षता का निर्वाह एवं चिन्तन की विशालता, सूक्ष्मदर्शिता, विवेचना एवं परामर्श की उपयुक्तता सिद्ध करने में किस हद तक सफल होता है। विभिन्न सन्दर्भों पर निरन्तर मन्थन स्तर का प्रयास करते रहने से यह मनीषा स्वयं ही उभरती है। साधना से सिद्धि की बात योगाभ्यास की तरह साहित्य साधना पर भी समान रूप से लागू होती है।

लेखन प्रारम्भ करने से पूर्व मनन करने योग्य कुछ महत्त्वपूर्ण सूत्र

लेखन कार्य हेतु जिन गुणों की आवश्यकता होती है, उनका विवेचन भी अनिवार्य है। गोताखोर डुबकी लगाकर जिस प्रकार मोती बीन लाते हैं, उसी प्रकार शोधकर्त्ता मनोयोग से अपने विषयवस्तु पर पैनी दृष्टि डालकर मात्र अपने काम की वस्तु खोज निकालता है। पहला कार्य है तथ्यों का संकलन, एक विशद् साहित्यिक विवेचन द्वारा। गुंथन तथा प्रवाह रूप में लेखबद्ध कर देना इसका उत्तरार्ध है। यदि पनडुब्बे की-सी दृष्टि विकसित हो गई तो विशाल ज्ञान के सागर में से अपना प्रतिपाद्य विषय खोजने में कोई कठिनाई न होगी। कच्ची सामग्री का संकलन सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है। कोई भी लेखक शोधकार्य के इस पूर्वार्ध को पूरा किये बिना आगे नहीं बढ़ सकता।

शोधकर्त्ता को लेखनी उठाने से पूर्व आत्मावलोकन कर अपने अन्दर उन विशेषताओं को खोजना चाहिए, जो उसे शोध का अधिकारी बनाती हैं। जिन गुणों की अपेक्षा उनसे की जाती है उनमें प्रमुख निम्न प्रकार हैं—

(१) उत्कट आकांक्षा—महान लेखक बनने की उत्कट अभिलाषा लेखक की प्रमुख विशेषता होनी चाहिए। वह आकांक्षा नाम और यश की कामना से अभिप्रेरित न हो। वह तो साधना के परिपक्व होने पर अपने आप मिलती है पर साहित्य के आराधक को इनके पीछे कभी नहीं दौड़ना चाहिए। आकांक्षा दृढ़ निश्चय से अभिप्रेरित हो। 'मुझे हर तरह की कठिनाइयों का सामना करते हुए अपने ध्येय की ओर बढ़ना है, ऐसा दृढ़ निश्चय जो कर चुका हो, वह इस दिशा में कदम उठाये। उत्कृष्ट लेखन वस्तुतः योगी मनोभूमि से मुक्त व्यक्तियों का कार्य है। ऐसी मनोभूमि होती नहीं स्वयं बनानी पड़ती है। ध्येय निष्ठ साधक ही सफल रचनाकार बन सकते हैं।

(२) एकाग्रता का अभ्यास—लेखन में साधक को विचारों की एकाग्रता का अभ्यास करना पड़ता है। एक निश्चित विषय के इर्द-गिर्द सोचना और लिखना पड़ता है। यह अभ्यास नियमित होना आवश्यक है। मन की चंचलता एकाग्रता में सर्वाधिक बाधक बनती है। नियमित अभ्यास इस अवरोध को दूर करने का एकमात्र साधन है। व्यायाम की नियमितता के बिना कोई पहलवान नहीं बन सकता। रियाज किये बिना कोई संगीतज्ञ कैसे बन सकता है ? शिल्पकार प्रवीणता एकनिष्ठ अभ्यास द्वारा ही प्राप्त करता है। लेखन-कला के साथ भी यही नियम लागू होता है। न्यूनतम पाँच अथवा दस पन्ने बिना एक दिन भी नागा किये हर साहित्य साधक को लिखने का अभ्यास करना चाहिए।

सम्भव है आरम्भ में सफलता न मिले। विचार विशृंखलित हों, अस्त-व्यस्त अथवा हल्के स्तर के हों पर इससे साधक को कभी निराश नहीं होना चाहिए। संसार में किसी को भी आरम्भ में सफलता कहाँ मिली ? एक निश्चित समय के अभ्यास के उपरान्त ही वे सफल हो सके। अपना नाम छपाने अथवा पैसा कमाने की ललक जिसे आरम्भ में ही सवार हो गई, वह कभी भी महान लेखक नहीं बन सकता। भौतिक लालसाओं की पूर्ति की ओर ही उसका ध्यान केन्द्रित रहता है। फलस्वरूप ऐसे मनोवृत्ति के छात्र अभीष्ट स्तर का अध्यवसाय नहीं कर पाते। परिश्रम एवं अभ्यास के अभाव में लेखन के लिए आवश्यक एकाग्रता का सम्पादन नहीं हो पाता। ऐसे लेखक कोई हल्की-फुल्की चीजें भले ही लिख लें, विचारोत्तेजक रचनाएँ करने में सर्वथा असमर्थ ही रहते हैं।

(३) अध्ययनशीलता—अध्ययन के बिना लेखन कभी सम्भव नहीं है। जिसकी अभिरुचि प्रबल अध्ययन में नहीं है, उसे लेखन में कभी प्रवृत्त नहीं होना चाहिए। किसी विषय की गंभीरता में प्रवेश कर सकना बिना गहन स्वाध्याय के सम्भव नहीं। लेखक की रुचि पढ़ने के प्रति उस व्यसनी की तरह होनी चाहिए, जिसे बिना व्यसन के चैन नहीं पड़ता। प्रतिपाद्य विचारों के समर्थन के लिए अनेकों प्रकार के तर्कों, तथ्यों और प्रमाणों का सहारा लेना पड़ता है। मात्र मौलिक सूझ-बूझ से इन आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकना किसी भी आरम्भिक लेखक के लिए सम्भव नहीं। ऐसे विरले होते हैं, जिनके विचार इतने सशक्त और पैने होते हैं कि उन्हें किसी अन्य प्रकार के समर्थन की जरूरत नहीं पड़ती। यह स्थिति भी विशद् अध्ययन के उपरान्त आती है। आरम्भ में किसी भी लेखक को ऐसी मौलिकता के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए।

इस संदर्भ में एक विचारक का कथन शत-प्रतिशत सही है कि 'जितना लिखा जाय, उसके चार गुना पढ़ा जाय' पढ़ने से विचारों को दिशा मिलती और विषयों से सम्बद्ध उपयोगी तथ्य और प्रमाण मिलते रहते हैं। विचारों को पुष्ट करने प्राणवान बनाने में इन तथ्यों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। हिन्दी रचनाओं में आजकल तथ्यों की कमी देखी जा सकती है। प्रायः अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं में मौलिकता के नाम पर विचारों की पुनरावृत्ति ही होती रहती है। तथ्य, तर्क और प्रमाण के बिना ऐसी रचनाएँ नीरस और उबाउ लगती हैं। विचारों में नवीनता एवं प्रखरता न रहने से वे कोई दिशा नहीं दे पातीं, न ही वह प्रभाव दिखा पातीं, जो एक उत्कृष्ट रचना द्वारा दिखाई पड़ना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह वस्तुत: अध्ययन की उपेक्षा का परिणाम है। मानसिक प्रमाद के कारण अधिकांश लेखक परिश्रम से कतराते रहते हैं। अभीष्ट स्तर का संकलन न होने से वे एक ही विचारधारा को शब्दावली में बदलकर दुहराते रहते हैं। पश्चिमी जगत के लेखकों की इस संदर्भ में प्रशंसा करनी होगी। संकलन करने—तथ्य, तर्क और प्रमाण जुटाने के लिए वे भरपूर मेहनत करते हैं। जितना लिखते हैं उसका कई गुना अधिक पढ़ते हैं। तथ्यों, तर्कों एवं साक्ष्यों की भरमार देखनी हो तो उनके लेखों में देखी जा सकती है। यह अनुकरण हिन्दी भाषी लेखकों को भी करना चाहिए। जो लेखन की दिशा में प्रवृत्त हो रहे हैं, उन्हें स्वाध्याय के प्रति बरती गई उपेक्षा के प्रति सावधान रहना चाहिए।

यह बात भी ध्यान रखने योग्य है कि विचारों का गाम्भीर्य विशद् अध्ययन के उपरान्त ही आता है। विचार भी विचारों को पढ़कर चलते तथा प्रखर बनते हैं। उनमें नवीनता अध्ययन से पैदा होती है। अतएव अध्ययनशीलता लेखन की प्रमुख शर्त है।

एक सूत्र में कहा जाय तो इसे इस प्रकार कहा जा सकता है "लेखन बाद में, पहले अपने विषय का ज्ञान अर्जित करना।" सबसे पहले लिखने की जिनमें सनक सवार होती है, वे कलम घिसना भले सीखलें, विषय में गहरे प्रवेश कर प्रतिपादन करने की विधा में कभी निष्णात नहीं हो पाते। लिखना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं, जितना कि तथ्यों का संकलन। विषय के कई पक्षों—विपक्षों की जानकारी लिए बिना सामग्री संकलन सम्भव नहीं। बिना सामग्री के जो भी लिखेगा, आधा-अधूरा नीरस ही होगा।

(४) जागरूकता—हर नवीन रचना में त्रुटियों एवं भटकाव की गुंजाइश रहती है। त्रुटियाँ अनेकों प्रकार की हो सकती हैं। भाषा सम्बन्धी और वाक्य-विन्यास सम्बन्धी भी। व्याकरण की गल्तियाँ भी देखी जाती हैं। प्रतिपादन में कभी-कभी भटकाव भी हो जाता है। इन सबके प्रति लेखन साधक को पूर्णरूपेण जागरूक रहना चाहिए। हर त्रुटि के सुधार के लिए बिना किसी आग्रह के तैयार रहना चाहिए। इस क्षेत्र के जो विशेषज्ञ हैं, उनसे समय-समय पर अपनी रचनाओं को दिखाते रहने से अपनी भूल मालूम पड़ती है। विषयान्तर हो जाने से भी लेखक अपने लक्ष्य से भटक जाता है। फलस्वरूप रचना में सहज प्रवाह नहीं आ पाता, इस खतरे से बचने का सर्वोत्तम तरीका यह है कि किसी समीक्षक की निकटता न प्राप्त हो तो स्वयं को आलोचक नियुक्त करें, जो लेख लिखे जायें उन्हें कुछ दिनों के लिए अलग अलमारी अथवा फाइल में रख देना चाहिए तथा दो-तीन दिनों बाद पुन: अवलोकन करना चाहिए। ऐसा इसलिए करना उचित है कि तुरन्त के लिखे लेखों में मस्तिष्क एक विशिष्ट ढर्रे में घूमता रहता है। उस चक्र से बाहर चिन्तन नहीं निकलने पाता। फलस्वरूप स्वयं की गल्तियाँ पकड़ में नहीं आतीं। समय बीतते ही चिन्तन का वह ढर्रा टूट जाता है। फलत: बाद में पुनरावलोकन करने पर भूलों-त्रुटियों का ज्ञान होता है जिन्हें सुगमतापूर्वक ठीक किया जा सकता है।

जागरूकता का यह तो निषेधात्मक पक्ष हुआ। विधेयात्मक में लेखक को लेखनी से सम्बद्ध हर विशेषताओं को धारण करने के लिए तत्पर रहना पड़ता है। शैली लेखन कला की प्राण है। वह जितनी अधिक जीवन्त, माधुर्यपूर्ण होगी उतना ही लेख प्रभावोत्पादक होगा इस क्षमता के विकास के लिए लेखक को उन तत्त्वों को धारण करना पड़ता है, जो किसी भी लेखकों को ओजपूर्ण बनाते हैं। शब्दों का उपयुक्त चयन भी इसी के अन्तर्गत आता है। प्रभावोत्पादक शब्दों का चयन तथा वाक्यों में उचित स्थानों पर उनका गुंथन लेखन की एक विशिष्ट कला है, जो हर लेखक की अपनी मौलिक हुआ करती है। इसके विकास के लिए प्रयत्नशील रहना सबका कर्त्तव्य है।

(५) ज्ञान को पचाने की सामर्थ्य का होना—जो भी कार्य हाथ में लिया जाय, उसके सीमाबन्धन को भी जानना चाहिए। असीम विस्तार वाला विषय हाथ में लेकर कोई भी व्यक्ति अपने प्रतिपाद्य शोधकार्य से न्याय नहीं कर सकता। अपनी सामर्थ्य कितनी है ? तथा किस प्रकार 'सिनॉप्सिस' बनाकर आगे बढ़ना है, इसका पूर्वानुमान लगा लेना सफलता का मूल भूत आधार है। यह ठीक उसी प्रकार हुआ, जैसे रोगी की व्याधि एवं शरीर के भार, नाप-तौल आदि के बाद उसकी औषधि का निर्धारण किया जाय। यदि प्रारम्भिक निर्धारण न करके अपनी हवाई उड़ान आरम्भ कर दी तो फिर शोधकार्य कभी पूरा नहीं हो सकता। अपने विषय वस्तु के बारे में लेखक को बड़ा स्पष्ट एवं 'टू दी पॉइण्ट' होना चाहिए। इसी से भटकाव से बचना सम्भव हो पाता है। सफल शोधार्थी व लेखक पहले अपनी सीमा-क्षमता देखते हैं, तदुपरान्त कुछ करने का संकल्प लेते हैं। अधूरे शोधकार्यों की भरमार इस दिशा में एक अच्छा खासा शिक्षण है।

(६) सम्वेदनशीलता—'कल्पना की नींव पर ही लेख का महल तैयार होता है', किसी विद्वान का यह कथन अक्षरश: सत्य है। कविता जैसी रचनाओं में तो एकमात्र कल्पना शक्ति का ही सहारा लेना पड़ता है। भाव-संवेदनाओं का शब्दों के साथ नृत्य कविता की प्रमुख विशेषता होती है। लेखों में भी विचारों के साथ भाव सम्वेदनाओं का गुंथन रचना में प्राण डाल देता है। लेखन में दीर्घकालीन अभ्यास के बाद यह कला विकसित होती है। एक मनीषी का मत सारगर्भित जान पड़ता है कि 'जिसका हृदय अधिक संवेदनशील और विराट है, उसमें उतनी ही सशक्त सृजनामक कल्पनाएँ प्रेरणाएँ उभरा करती हैं। हृदय स्पर्शी मार्मिक संरचनाएँ, भाव सम्पन्न हृदयों से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही अद्भुत होती हैं। ऐसी रचनाओं में रचनाकार के व्यक्तित्व की अमिट छाप प्राय: झलकती है। जो दूसरों की पीड़ा, वेदना को अनुभव करता है, वह अपनी रचनाओं में संवेदनाओं को अधिक कुशलता से उभार सकने में सक्षम हो सकता है। वेदनाविहीन हृदयों में वह संवेदन नहीं उभर सकता जो रचना में प्रकट होकर दूसरों के अन्त:करणों को आन्दोलित-तरंगित कर सके।

शोधकार्य का शुभारम्भ और निर्वाह

शोधकार्य का प्राथमिक चरण जिसे समझ में आ जाय, मानना चाहिए कि उसमें लेखनी को पकड़ने की सामर्थ्य भी विकसित होने की सम्भावनाएँ हैं। शोध-अनुसंधान में विशद् विवेचन करने पर मस्तिष्क के ज्ञानतन्तु जिस प्रकार उत्तेजित होते हैं—सामग्री का संकलन स्मरण शक्ति के रूप में होता चला जाता है, वही आगे अभिव्यक्ति में सहायक होता है। वाणी द्वारा व्यक्त विचार तो अस्थाई हैं लेकिन लेखबद्ध विचार शृंखला में बँधे सुनियोजित होते हैं। वे चिरस्थाई बन जाते हैं। आज जिस ज्ञान भण्डार का विश्वकोषों, सूत्रग्रन्थों, निबन्धों, शोध-प्रबन्धों के रूप में शोध छात्र अध्ययन-अनुशीलन करता है, उस लेखनी का ही चमत्कार है, जो मूक साधना करती है। ज्ञान को पंख लगे हैं, लेखनी के माध्यम से। लेकिन इतना होते हुए भी हर लेखन क्षेत्र में प्रवेश करने वाले को शैली, भाषा निर्माण तथा तथ्यों को लेखबद्ध करने का कार्य उत्तरार्ध के लिए छोड़कर पहले तथ्य संकलन की विधा सीखनी चाहिए। यह लेखन की वर्णमाला का आद्याक्षर है। ज्ञानार्जन का चाव-विषय में विस्तार से प्रवेश करना तथा काम की बात ढूँढ़कर उसे एक स्थान पर रख देना आधा लेखन है। बाद में तो मात्र क्रमबद्ध कर देना शेष रह जाता है। अभ्यास से लेखनी सध जाती है, परिमार्जित होती तथा लेखन कला में छात्र निष्णात होते चले जाते हैं। यहाँ कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य इस सम्बन्ध में प्रस्तुत हैं कि यह कार्य प्रारम्भ कहाँ से हो ? यदि छात्र इन तथ्यों को जानते हों तो भी उन्हें लेखन का एक अनिवार्य अंग मानकर इन्हें आत्मसात करना चाहिए।

सर्वप्रथम अनुसंधान के विषय की संक्षिप्त किन्तु स्पष्ट रूपरेखा बनानी पड़ती है। रूपरेखा में विषय का स्वरूप तथा शोध का लक्ष्य स्पष्ट होना चाहिए। रूपरेखा तैयार होने के बाद ही सामग्री संचय के लिए विभिन्न स्रोतों से सम्पर्क स्थापित करना पड़ता है। संकलन के स्रोत विविध हो सकते हैं तथा प्रकाशित पुस्तकें जो शोध विषय से सम्बन्धितों पत्र-पत्रिकाएँ अप्रकाशित पाण्डुलिपियाँ, सरकारी, गैर सरकारी रिपोर्टें, विशेषज्ञों से प्रत्यक्ष सम्पर्क विभिन्न प्रकार के एनसाइक्लोपीडिया अलब्ध पुस्तकों के निजी संग्रहालय बड़े पुस्तकालयों में उपलब्ध विषय से मिलती-जुलती पूर्व में लिखी गई थीसिसें।

इन सब को कैसे किया जाय, यह जानने से पूर्व हर छात्र को एक मोर्चे पर खड़े सैनिक की तरह संघर्ष हेतु सतत तैयार रहना सीखना चाहिए। कब कौनसी वस्तु काम की है, यह जागरूकता विकसित होने पर आँखों के सामने आई कोई भी शोध सामग्री अछूती नहीं रहेगी। जब भी कोई विषय हाथ में लेते हैं, तो उसे क्रमबद्ध रूप से विभाजित कर सामग्री चयन करने से परिपूर्णता आ जाती है। परम्परागत शोध प्रबन्धों की दृष्टि से नहीं, एक लेखक के लिए भी किसी विषय पर लेखन करने के लिए एक 'सिनॉप्सिस' का होना अनिवार्य है। इससे भटकाव नहीं आता तथा प्रतिपादन का उद्देश्य पूरा होता है। शोध प्रबन्ध लेखन के निम्नलिखित अंग होते हैं—

(१) विषय तथा निर्धारित लक्ष्य की पूर्व कल्पना

(२) सामग्री संकलन

(३) तथ्यों का विश्लेषण, तुलनात्मक विवेचन तथा विषय प्रतिपादन

(४) अंतिम निष्कर्ष।

बिना किसी कल्पना के विषय प्रारम्भ भी नहीं किया जा सकता। भले ही कल्पना धुँधली हो परन्तु एक प्रारम्भिक दृष्टि तो बनाई जा सकती है कि हमें क्या करना या लिखना है? निष्कर्ष की पूर्व कल्पना तो न की जाय परन्तु भूमिका की स्पष्ट रूपरेखा हो। परिकल्पना मौलिक हो, आवश्यक नहीं। पूर्व परीक्षित सिद्धान्त व दूसरों के अनुभव भी नई कल्पना को जन्म देते हैं। यदि किसी विषय पर पहले भी शोधकार्य हो चुका है, तो उस के सिद्धान्त हमारे लिए नई विषय वस्तु बन सकते हैं। एक बार दूसरा स्वरूप सामने होने पर अपनी कल्पना का निर्धारण कठिन नहीं। कोई कार्य पहले भी अनुसंधान की प्रक्रिया से गुजर चुका है, यह कोई अनिवार्य बंधन नहीं बनाता कि उस पर फिर से कार्य न किया जाय। शोध कार्य सतत् होता रह सकता है। हर बार तथ्यों की खोज कौनसे सिरे से करने के स्थान पर इस प्रक्रिया को और आगे बढ़ाया जा सकता है। जो विषय वस्तु पिछले शोधकर्त्ताओं ने नहीं स्पर्श की थी, उसे नये परिप्रेक्ष्य में लाने की कल्पना भी उभरकर आ सकती है।

यह तथ्य हर छात्र के समक्ष स्पष्ट रहे कि अनुसंधान का प्रमुख लक्ष्य है विश्व की अनन्त अविज्ञात ज्ञान-विज्ञान सम्पदा में से एक सुनिश्चित ज्ञान धारा का अवतरण करना, सन्निहित ज्ञान कोश का प्रकाशन एवं रहस्योद्घाटन करना। कई बार इस क्रम में कल्पना का भी सहारा लेना पड़ता है। ऐसी कल्पना में जो तर्क सम्मत हो। यह धारणा भ्रामक है कि अनुसंधानकर्त्ता को अनुमान या कल्पना का सहारा नहीं लेना चाहिए। सच्चाई है कि कल्पना अथवा अनुमान के बिना शोध की दिशा में एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता है। जो अनुसन्धानकर्त्ता कल्पनाशील, चिन्तनशील नहीं होगा, वह कुछ महत्त्वपूर्ण आविष्कार नहीं कर सकता। पर यह बात

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी ध्यान रखने योग्य है कि कल्पना निराधार नहीं होनी चाहिए। साधार कल्पनाओं, अनुमानों के आधार पर ही अनुसंधान कार्य गति पकड़ता है तथा कुछ नवीन खोज उभर आती है।

अँग्रेजी में हाइपोथिसिस शब्द अनुमान के लिए ही प्रयुक्त होता है। 'हाइपो' का अर्थ होता है—कम तथा 'थीसिस' का अर्थ है सिद्धान्त। पूरे शब्द का अर्थ हैं—सिद्धान्त से कुछ कम निश्चित। अर्थात साधार अनुमान में सिद्धान्त बनने की पूरी-पूरी सम्भावना विद्यमान रहती है। हर शोधार्थी को अनुमान का तब तक आश्रय लेना पड़ता है जब तक कि कुछ निष्कर्ष हाथ न लग जायें। कल्पना कभी-कभी असंगत भी होती है। परीक्षण पर गुजारने के बाद उसे छोड़ देना चाहिए अथवा संशोधित, परिवर्तित कर लेना चाहिए। यह सब कुछ प्रारम्भिक 'टास्क' हुआ।

एक बार विषय की रूपरेखा स्पष्ट होते ही सामग्री संकलन का कार्य आरम्भ किया जा सकता है। यह कार्य शोध का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष है। अनुसन्धान की प्रमाणिकता संकलित तथ्यों के आधार पर ही पुष्ट होती है। संकलित सामग्री उस कच्चे माल की तरह होती है, जिससे अनेकों प्रकार की वस्तुएँ बनाई जाती हैं। सामग्री के विश्लेषण, वर्गीकरण, अध्ययन तथा विवेचन द्वारा सिद्धान्त बनाये और निष्कर्ष निकाले जाते हैं। सामग्री संकलन के प्रति शोधार्थी को सबसे अधिक जागरूक रहना चाहिए। शोध विषय से सम्बन्धित यदि वह न हुआ अथवा अनिवार्य कड़ियों को ढूँढने में जान-बूझकर उपेक्षा बरती गई तो दिग्भ्रान्त होने की अधिक सम्भावना है। बिना सामग्री को उपलब्ध किये सिद्धान्तों की पुष्टि सम्भव नहीं है, न ही शोधार्थी सम्बद्ध विषय की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर सकता है। यह बात सुनिश्चित रूप से हृदयंगम कर लेना चाहिए कि किसी भी समाधान अथवा सिद्धान्त का मूल्यांकन जुटाई गई सामग्री के आधार पर ही किया जाता है। शोध विषय के प्रति जुटाई गई समस्या चाहें कितनी ही गम्भीर अथवा महत्त्वपूर्ण क्यों न हों, पर्याप्त सामग्री के अभाव में उसका कोई महत्व नहीं है। उदाहरणार्थ— 'ईश्वर है अथवा नहीं', अनुसन्धान का यह विषय जितना गम्भीर और महत्त्वपूर्ण है उतना ही श्रमसाध्य भी। पक्ष-विपक्ष में अनेकों प्रकार के साक्ष्य, तर्क और प्रमाण देने की आवश्यकता होगी। यदि उसमें उपेक्षा बरती गई तो शोध विषय की गम्भीरता कोई विशेष माने नहीं रखती।

सामग्री संकलन में उन तथ्यों, प्रमाणों, तर्कों की ढूँढ़-खोज करनी पड़ती है, जो अनुसंधान के लिए चुने गये विषय से सम्बद्ध हों। संग्रह के साथ-साथ उपयुक्त सामग्री के चयन की प्रक्रिया भी चलती रहती है। शोधार्थी की दृष्टि उस बगुले की भाँति होनी चाहिए, जिसकी नजर एकमात्र मछली पर केन्द्रित रहती है। उस मधुमक्खी की भाँति होनी चाहिए, जो अपने छत्ते में मिठास भरने के लिए विभिन्न पुष्पों से रस एकत्रित करती रहती है। शोधार्थी की दृष्टि में सदा अपना विषय रहना चाहिए। दर्पण की भाँति उसके दिमाग में यह बात स्पष्ट रहनी चाहिए कि शोध विषय के लिए उसे किस तरह की और कैसी सामग्री चाहिए? कभी-कभी छोटे-छोटे सूत्र भी अत्यन्त उपयोगी साबित होते हैं। प्रमादवश उन सूत्रों की उपेक्षा कभी नहीं करनी चाहिए, शोधार्थी को अपनी दृष्टि सदा खुली रखनी चाहिए। उसे यह भी जानने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए कि सम्बद्ध विषय के नये 'क्लू' (संकेत) कहाँ से उपलब्ध हो सकते हैं?

जहाँ तक सम्भव हो, मौलिक सामग्री का चयन किया जाय। विश्व कोष स्तर के ग्रन्थ तथा विषय विशेषों पर लिखी गई स्वतन्त्र पुस्तकें इसका आधार बनते हैं। पुस्तकालय से पुस्तकों का दोहन—उनका विहंगावलोकन तथा अपने विषय के प्रतिपादनों का चयन भी एक कला है। यह अभ्यास से ही आती है। हर ग्रन्थ को प्रारम्भ से अन्त तक पढ़ने के स्थान पर विषय सूची पर एक दृष्टि डालकर यह जानने का प्रयास करना चाहिए कि यह ग्रन्थ विस्तार से अपने सन्दर्भ में अनुशीलन के योग्य है भी कि नहीं ? विषयसूची के महत्त्वपूर्ण विषयों पर एक दृष्टि डालने से विषय का प्रवाह समझ में आ जाता है। कुछ ग्रन्थ तो क्रमबद्ध 'प्वाइंट' के रूप में लिखे होते हैं। उनमें अधिक कठिनाई नहीं आती। पर जिन पुस्तकों में दूध में समाये घी की भाँति विषय गुँथा होता है, वहाँ बड़ी पैनी दृष्टि से मनोयोगपूर्वक ढूँढ़ना होता है। यहीं पर शोधार्थी की बुद्धि की सही परख होती है। कहाँ रुकना, कहाँ आगे बढ़ जाना—जह स्पष्ट होना चाहिए ताकि अनावश्यक अध्ययन में समय नष्ट न हो। सामग्री के नोट्स लेने का भी अपना एक सुनियोजित क्रम होता है। वर्गीकरण साथ-साथ करते चले जाने से बाद में लेखन में कठिनाई नहीं होती। जो भी नोट्स लिये जायें, उनमें यदि ज्यों का त्यों लिया गया हो तो उद्धरण के साथ लेखक पुस्तक का नाम भी दिया जाय। लेकिन यदि भाषान्तर कर दिया गया हो तो यह भी लिखा जा सकता है—"अमुक का ऐसा मन·····"। जहाँ तक सम्भव हो भावानुवाद ही किया जाय। सारभाग लेते समय भी शब्दों का चयन करने में सावधानी रखी जाय। पर्यायवाची शब्दों की एक सूची बनाकर साथ रखने से भावानुवाद में कठिनाई नहीं होती। दो बार श्रम करना हो तो एक बार 'ज्यों का त्यों' तथा अन्त में लिखते समय अपनी भाषा में लिख सकते हैं। पर साथ-साथ भावानुवाद एवं विषयों-उपविषयों के वर्गीकरण से अभ्यास भी अच्छा हो जाता है, श्रम भी बचता है।

अनुवाद में कुछ विशेष ध्यान रखने योग्य बातें अग्रलिखित हैं—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मोत्कर्ष का आधार—ज्ञान ३.२५

(१) जिस भाषा से और जिसमें अनुवाद का कार्य किया जाना है, उन दोनों ही भाषाओं की छात्र को अच्छी जानकारी हो।

(२) अनुवादक को दोनों ही भाषाओं के विपुल शब्द भण्डार से परिचित होना चाहिए। दोनों ही भाषाओं के मुहावरों, लोकोक्तियाँ, अभिव्यक्तियों का ज्ञान उसे होना चाहिए। यह ज्ञान जितना व्यापक होगा, अनुवाद कार्य उतना ही उत्तम होना।

(३) भाषा के साथ-साथ विषय का भी ज्ञान होना आवश्यक है। अन्यथा अनुवाद में भाषा की प्रमुखता होगी और मूल तथ्य और प्रतिपादन गौण हो जायेंगे।

(४) अनुवाद में मूल भाव नष्ट न होने पाये क्योंकि किसी भी रचना के प्राण उसके भाव हैं, जो शब्दों के साथ-साथ गुँथे होते हैं।

(५) रूपान्तरण में मूल बातें ज्यों की त्यों प्रस्तुत होनी चाहिए।

(६) अनुवाद का भाव और आशय स्पष्ट हो।

(७) जिस भाषा में अनुवाद किया जाना है, उस भाषा की प्रकृति से अनुवादक का परिचित होना आवश्यक है। प्रचलित मुहावरों, क्रिया प्रयोग की जानकारी भी अपेक्षित है।

वस्तुत: किसी एक भाषा के विषय सामग्री सहित दूसरी भाषा में रूपान्तरण को ही अनुवाद कहते हैं। अनुवाद में एक भाषा में व्यक्त विचारों को दूसरे में व्यक्त करना होता है। यह कार्य उतना सुगम नहीं है, जितना जान पड़ता है। कारण यह है कि एक विशिष्ट परिवेश में पनपने तथा विकसित होने से हर भाषा को अपनी अलग शाब्दिक, वाक्यात्मक, रूपात्मक तथा मुहावरे एवं अलंकार विषयक विशेषताएँ होती हैं। यह आवश्यक नहीं कि जिस भाषा में रूपान्तर किया जाना है, उसमें अभिव्यक्ति के लिए उन्हीं विशेषताओं से युक्त सटीक शब्द मिल जायें। दोनों भाषाओं की अभिव्यक्त इकाइयाँ—शब्द, वाक्यांश, मुहावरे, अलंकार लोकोक्तियाँ समान नहीं होतीं। ऐसी स्थिति में अनुवाद करते समय प्राय: समझौते की नीति अपनानी पड़ती है। निकटतम अनुवाद करना पड़ता है। अनुवाद दो तरह से किया जाता है—(१) शब्दानुवाद, (२) भावानुवाद।

(१) शब्दानुवाद—अपने स्वरूप को स्वयं स्पष्ट करता है। मोटे रूप में इस तरह के अनुवाद में मूल के हर शब्द पर अनुवाद करते समय ध्यान देना पड़ता है। विज्ञान, गणित, ज्योतिष-शास्त्र आदि का शब्दानुवाद तो सरल पड़ता है पर भाव-विचार एवं शैली प्रधान रचनाओं का शब्दानुवाद करना अत्यन्त कठिन कार्य है।

(२) भावानुवाद—इसमें मूल के शब्द, वाक्यांश, वाक्य आदि पर ध्यान न देकर उसके अर्थ, भाव एवं विचार पर ध्यान दिया जाता है। अनुवाद की व्यावहारिक कठिनाइयों को देखते हुए भावानुवाद की शैली को उत्तम माना गया है। संक्षिप्तीकरण, जिसका वर्णन आगे है, की दृष्टि से भी यही शैली श्रेष्ठ है। यदि भाव व्यक्त करने की शैली आ जाय, तो काफी कुछ लेखन की शर्तें पूरी हो जाती हैं। छायानुवाद में मात्र विषय की एक झाँकी आती है, पूरा भाव नहीं होता। कहीं-कहीं इसकी भी आवश्यकता पड़ जाती है। यह अनुवाद एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें शब्दानुवाद की तरह मूल के शब्दों का अनुसरण न करके, बिना मूल से जुड़े मात्र विषय की छाया लेकर चलते हैं। ऐसे अनुवादों में प्राय: नाम एवं स्थान को परिस्थितियों के अनुसार बदल लिया जाता है। साहित्य, विचार-विज्ञान, धर्म-संस्कृति, कला आदि के ढेरों विषय ऐसे हैं, जिनमें संक्षेप के स्थान पर विषय के प्रभाव को इतना फैला देते हैं कि पूरे प्रतिपादन में मात्र उसी की झाँकी नजर आती है।

एक शब्द और विवेचन के लिए शेष रह जाता है—व्याख्यानुवाद। इसमें कथन का स्पष्टीकारण करने के लिए सूत्रों को व्याख्या के साथ जोड़-जोड़कर तथा साथ ही उदाहरण, उद्धरण, प्रमाणों के माध्यम से उसे और भी अधिक महत्त्वपूर्ण बना देते हैं। इसे एक प्रकार से भाष्य भी कह सकते हैं। तिलक की गीता रहस्य इसी श्रेणी में आती है। प्रज्ञा-पुराण की शैली भी व्याख्यानुवाद की है।

अनुवाद के लिए किसी भी क्रम को अपनाया जा सकता है पर यह निर्भर करता है—विषयवस्तु पर ही। एक ही लेख अथवा शोध प्रबन्ध में ३-४ प्रकार के अनुवाद प्रयुक्त हो सकते हैं।

किसी अन्य भाषा विशेषकर अँग्रेजी से हिन्दी अनुवाद करते समय एक बात ध्यान रखनी चाहिए कि किसी भी भाषा के साथ उस देश और जाति के संस्कार बँधे रहते हैं। प्राय: उन संस्कारों को अभिव्यक्त करने वाले शब्द उसी भाषा में पाये जाते हैं। उन्हीं भावों के द्योतक शब्दों के मिलने में प्राय: दूसरी भाषाओं में कठिनाई होती है। अनुवाद कार्य में सबसे अधिक परेशानी उन अवसरों पर होती है, जब उसी भाव को व्यक्त करने वाले शब्दों की ढूँढ़-खोज अनुवाद की जाने वाली भाषा में की जाती है। अँग्रेजी से हिन्दी में रूपान्तरण करते समय अनुवादक को प्राय: इस तरह की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है भाषा शब्दकोषों में भी उन भावों से मिलते-जुलते शब्द नहीं मिल पाते। ऐसी स्थिति में अनुवादक को उन भावों से मिलते-जुलते प्रचलित शब्दों से ही काम चलाना पड़ता है। विशेष ध्यान रखने योग्य बात यह है कि मूल प्रतिपादन, तर्क, तथ्य और भाव अनुवाद में स्पष्ट होना चाहिए। अँग्रेजी से हिन्दी में रूपान्तरण करते समय अनेकों तरह के मुहावरों, प्रयोगों का भी सामना करना पड़ता है। उनमें विशेष सूझ-बूझ की आवश्यकता पड़ती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रादेशिक भाषाओं में भी शब्दों का भण्डार भरा पड़ा है। अँग्रेजी से रूपान्तर करते समय यदि हिन्दी में उन्हीं भावों को व्यक्त करने वाले शब्द नहीं मिलते, तो अन्य प्रचलित देश की भाषाओं के सामान्य शब्द भी लिये जा सकते हैं। यहाँ इतनी सावधानी रखनी पड़ती है कि वे शब्द ऐसे हों जो भाषा के स्वरूप और प्रवाह को नष्ट न करने पायें।

अनुवाद प्रक्रिया को समझ लेने के उपरान्त मात्र उपलब्ध सामग्री को सुव्यवस्थित करना शेष रह जाता है। इसके लिए तथ्यों, तर्कों, प्रमाणों एवं निरीक्षणों को विषयानुसार बाँटकर वर्गीकृत कर देना चाहिए। ताकि उन्हें परस्पर गूँथने में कठिनाई न हो। तथ्य प्रामाणिक हों, स्रोत विश्वस्त हों, यह भी अनिवार्य है। इनका परस्पर तुलनात्मक विवेचनकर प्रतिपाद्य विषय को धुरी बनाकर सारा जाल उसके चारों ओर बुनना अवशेष रह जाता है। इसे रिसर्च कार्य में 'डिस्कशन' या विवेचन-प्रबन्ध लेखन भी कहते हैं। यह उतना कठिन कार्य नहीं जितना कि तथ्यों का संकलन है।

शोध विधियाँ—तर्क सम्मत प्रतिपादनों को सशक्त रूप में प्रस्तुत करने के लिए कई प्रकार की विधियाँ प्रचलित हैं। यूरोप में अरस्तू ने निगमन तर्क प्रणाली से तथ्यों के प्रस्तुतीकरण का विधान बनाया। इस विधि में पूर्व मान्यता प्राप्त सिद्धान्त को प्रधान आधार माना जाता है। इस सिद्धान्त को विशिष्ट उदाहरणों का सहारा देकर पुष्टि की जाती व निष्कर्ष निकाला जाता है। बाद में आलोचकों ने इस पद्धति को पूर्वाग्रह से युक्त विश्वास पर आधारित मानकर आगमन प्रणाली का प्रतिपादन किया। इसमें विशेष तथ्यों को पहले प्रस्तुत कर सामान्य की पुष्टि की जाती है। प्रत्यक्ष निरीक्षण पर निर्भर यह पद्धति परिकल्पना को आधार मानती है। बाद के विद्वानों का मत था कि शोध का ध्येय-लक्ष्य निर्धारित करना अनिवार्य है क्योंकि इसके बिना तो हर तथ्य लँगड़ा है—अन्धकार में भटकाव है। आगमन पद्धति का विरोध करते हुए वैज्ञानिक आइन्स्टीन व दार्शनिक बेकन ने किसी वैकल्पिक पद्धति का विवेचन किया। अन्ततः एक समन्वयात्मक स्वरूप उभरकर आया। इस तीसरी विधि में शोध-कार्य हेतु किसी प्राक्कल्पना (हाइपोथीसिस) को मुख्य आधार मानकर आगे बढ़ा जाता है। जैसे-जैसे समर्थन या विरोध में तथ्य एकत्र होते चले जाते हैं, अनुमानित विषयवस्तु या तो सिद्ध कर दी जाती है अथवा असिद्ध। अन्त में शोधकर्त्ता अपने तथ्यों से प्राप्त निष्कर्षों को ही स्वीकार कर अपने मूलभूत विषय में उचित संशोधन कर लेता है। आजकल की वैज्ञानिक शोधों में इसी विधि को प्रयुक्त किया जाता है।

विज्ञान सम्मत शोध प्रणाली—शोध वैज्ञानिक तब कहलाती है, जब वह तर्क, तथ्य, प्रमाणों पर आधारित हो। सामान्य अवलोकन-निरीक्षण तो सभी करते हैं पर जब किसी वस्तु विशेष पर किसी विशिष्ट प्रयोजन से दृष्टि डाली जाती है एवं उसके समर्थन में तर्कों का संग्रह साहित्य के अनुशीलन द्वारा किया जाता है, तो इसे वैज्ञानिक अनुसन्धान कहते हैं। विज्ञान से यहाँ अर्थ पदार्थ विज्ञान की शाखा-प्रशाखाओं से नहीं है। विज्ञान की परिधि में दर्शन, साहित्य तथा पदार्थ विज्ञान—जीवविज्ञान के वे सभी पक्ष आते हैं, जिन्हें तथ्य-प्रमाणों द्वारा सिद्ध करने की सम्भावनाएँ विद्यमान हों। अन्धेरे में ढेला फेंककर कुछ तो भी व्यक्त कर देना, अपनी स्वयं की अनुभूति के आधार पर प्रतिपादन करने का प्रयास वैज्ञानिक पद्धति में नहीं आता। शोध-प्रबन्ध रचना अथवा तथ्यों का प्रतिपादन इसीलिये एक बहुत ही स्पष्ट, सीधी-सादी प्रक्रिया है, जिसमें तर्क के आधार पर हर स्पष्टीकरण की खुली छूट है पर बहकने-भटकने की नहीं। विषय की सीमा रेखाएँ एवं अपना प्रतिपादन उद्देश्य निर्धारित कर आगे बढ़ना शोध प्रक्रिया का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है। इतना किये बिना कलम उठा लेना तथा कहीं से भी विषय को आरम्भ कर बहकते चले जाना मात्र मनोरंजन बनकर रह जाता है।

विज्ञानसम्मत शोध को इस प्रकार तीन खण्डों में बाँटा जा सकता है—

(१) सोद्देश्य, विशिष्ट प्रयोजन से किया गया निरीक्षण-अवलोकन।

(२) तथ्यों का सावधानीपूर्वक क्रमानुसार विभाजन तथा परस्पर गुंथन।

(३) अपनी कल्पना के आधार पर नियमों का, उद्देश्यों का निर्धारण तथा उनकी देश, काल, परिस्थिति के अनुसार विशद व्याख्या।

उपरोक्त सारे विवेचनों में एक बात स्पष्ट होनी चाहिए कि शोधकर्त्ता को सदा निष्पक्ष तथा तटस्थता की नीति अपनानी पड़ती है। पूर्व मान्यताओं एवं पूर्व सम्मतियों से अलग हटकर उसे अपनी राह स्वयं बनानी पड़ती है। अपने पूर्व मत का आग्रह लेकर शोधकार्य के साथ ईमानदारी नहीं बरती जा सकती। पूर्वाग्रहों में जकड़े रहने से किसी प्रामाणिक निष्कर्ष पर पहुँच सकना सम्भव नहीं है। वैज्ञानिक पद्धति यही है कि शोध से प्राप्त सामग्री के आधार पर निष्कर्ष निकाले एवं प्रस्तुत किये जायें।

आविष्कारकों ने संसार में जितने ही आविष्कार किये हैं उनकी नीति उपरोक्त रही है। प्रचलित मान्यताओं को यदि आधार उन्होंने बनाया होता तो संसार को कुछ महत्त्वपूर्ण चीज दे सकने में वे समर्थ नहीं हो पाते। कितनी ही बार नवीन सत्यों के प्रतिष्ठापन के लिए उन्हें समाज से विरोध एवं संघर्ष करना पड़ा है। कुछ सोचने एवं इतना करने के बाद शोध प्रबन्ध का ढाँचा तैयार होता है। हर निष्कर्ष शोधकर्त्ता को समय के अनुसार बदलना होता है तथा उनकी तुलना अन्य मतों, निष्कर्षों से की जाती है। लेखन-प्रक्रिया में यह ध्यान रखना होता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है कि जो विषय प्रारम्भ में स्पर्श किया गया था, उसी की परिधि में सारे प्रतिपादन रहें, उस मूल विषय का निर्वाह पूर्णरूपेण हो।

शोध प्रतिपादन शैली के विभिन्न प्रकार— विषय वस्तु के अनुसार प्रतिपादन की शैली बदलती रहती है। वर्णनात्मक या व्याख्यात्मक शोध में तथ्यों की खोज ही नहीं की जाती, उनकी विस्तृत व्याख्या की जाती है। समाजशास्त्र, जीवनविज्ञान, साहित्य, कला, संस्कृति, अध्यात्म की शोधें वर्णनात्मक शैली पर होती है। यदि समाज सम्बन्धी विषयों में आँकड़ों का संग्रह तथा उनका मूल्यांकन किया जाता है तो इसे 'सर्वे' शोध कहते हैं। सांख्यिकी, अर्थशास्त्र, शिक्षा विज्ञान, भाषा विज्ञान आदि में भी इसी विधि से प्रतिपादन प्रस्तुत किये जाते हैं। सर्वे का अर्थ मात्र आँकड़ों का संकलन नहीं वरन् उनसे कुछ निष्कर्ष निकालना भी है।

शोध प्रतिपादन ही लेखन है पर यह समीक्षा एवं निरीक्षण मिश्रित लेखन है। 'समीक्षा' शोध कार्य का पर्यायवाची नहीं है पर शोध का एक अंग समीक्षा, टिप्पणी, विवेचन भी है। यह समीक्षा तटस्थ-निरपेक्ष भाव से होनी चाहिए। विज्ञान और अध्यात्म सम्बन्धी विषयों का लेखन करते समय यही ध्यान रखना होता है कि समीक्षा आवश्यकता से अधिक न हो जाय। संतुलन प्रारम्भ से ही रखना अनिवार्य है। ऐसा न करने पर विषय में विसंगतियाँ स्थान पर दृष्टिगोचर होंगी तथा मूल विषय को काटने वाले ही तथ्य प्रमुखत: दिखाई देंगे। इस अतिवाद से सभी शोधार्थियों को बचना है।

आँकड़ों, तथ्यों, तर्कों, प्रमाणों का संकलन करने के लिए मूल सामग्री तलाशने की कला भी सभी को आनी चाहिए। आँकड़े किसी भी विषय वस्तु को वजनदार, आकर्षक तथा तर्कसम्मत बनाते हैं। विचारों की गाड़ी को आगे ठेलने के लिए आँकड़ों का सम्पुट कितना सहायक होता है? इसे बजट पूर्व के संसद वक्तव्यों को देखकर अनुमान लगाया जा सकता है। मात्र आँकड़ों के खेल से हर मंत्रालय अपने-अपने विभाग की प्रगति का एक विहंगावलोकन सारे विश्व समाज को कराता है तथा अपने माँगों के समर्थन में सशक्त तर्क प्रस्तुत करता है। यही बात लेखन कला पर भी लागू होती है। किसी भी तथ्य को कोरे सिद्धान्त रूप में कहने के स्थान पर भली-भाँति समझा दिया जाय, इसके लिए पूर्व के वर्तमान तथा भावी सम्भावनाओं को झलक देने वाले आँकड़े ही पर्याप्त होते हैं। यह एक पूर्णत: विज्ञानसम्मत पद्धति है, जिसका समाज निर्माण-राष्ट्र निर्माण-सम्बन्धी शोध-प्रबन्धों में तो विशेष रूप से बहुत ही महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।

जिन्हें मूल सामग्री को किसी भी रूप में, तर्क, तथ्य, प्रमाण, आँकड़ों आदि को तलाशना हो, उन्हें पुस्तकालयों, सन्दर्भ ग्रन्थों, पत्र-पत्रिकाओं से निरन्तर सम्पर्क बनाये रखना अनिवार्य है। स्वयं अपने बलबूते यह 'रिव्यू' का कार्य असम्भव है। पत्र-पात्रिकाओं में से अनेकों पलटने पर एक-दो उद्धरण कहीं अपने काम के होते हैं। उसके लिए व्यक्ति स्वयं खरीदे, पढ़े—यह नितान्त असम्भव अव्यावहारिक है। सामग्री प्राप्ति का मुख्य स्रोत तो पुस्तकालय ही हो सकते हैं। विश्वविद्यालय स्तर की रेफरेन्स लायब्रेरी से सतत सम्पर्क बनाये रखना उनके लिए अनिवार्य है, जो साहित्य साधना करना चाहते हैं। हर लायब्रेरी के 'टेस्ट' अलग-अलग होते हैं। अपने विषय पर कहाँ सन्दर्भ मिल सकते हैं? इसकी जानकारी भी सन्दर्भ पुस्तकालय ही दे देते हैं। आज देश में सभी बड़े शहरों में ऐसे पुस्तकालय हैं, जो डाक से अथवा व्यक्तिगत सम्पर्क से अभीष्ट जानकारी हर शोधार्थी को देते हैं। सन्दर्भ हेतु फोटोस्टेट तथा माइक्रोफिल्म आदि के विकास ने, इन्सडॉक प्रणाली जैसे आविष्कारों ने तो इस क्षेत्र की सम्भावनाएँ, परस्पर सम्पर्क-परामर्श का दायरा अब बहुत बढ़ा दिया है। जिज्ञासा हो, जानने की इच्छा हो तो कोई भी कार्य असम्भव नहीं। लेखनी के छात्रों के लिए जो व्यवस्था ब्रह्मवर्चस् के पुस्तकालय में उपलब्ध होगी, वह शायद किसी पुस्तकालय में देशभर में किसी मनीषी को मिल सके। बन्धन मात्र यही है कि यहाँ अव्यवस्था न फैले, इस कारण हर किसी को प्रवेश की, सन्दर्भ खोजने की छूट नहीं है।

पत्र-पत्रिकाएँ नियमित रूप से पढ़ते रहने अथवा पुस्तकालयों में उनको रिव्यू करते रहने से भी सामयिक जानकारियों से सम्पर्क बना रहता है। इस विषय में तो तनिक-सा भी प्रमाद न बरता जाय। कई तथ्य पुस्तकों में उपलब्ध नहीं होते, मात्र पत्रिकाओं से ही प्राप्त हो सकते हैं। उन्हें पलटते रहने व अपने महत्त्व की बात नजर आते ही उनके संक्षिप्त नोट्स लेते रहने का अभ्यास तो सतत जारी रहना चाहिए।

लेखन कला की शोध प्रक्रिया में कुछ बातें और भी ऐसी हैं, जो सबको जानना अनिवार्य है। विहंगावलोकन करते समय बड़े विस्तार से कभी-कभी सामग्री मिलती है तथा कभी सूत्ररूप में मात्र कुछ वाक्य। ऐसे में तथ्यों का संकलन करते समय ही विस्तार का संक्षिप्तीकरण अथवा तथ्यों का विशदीकरण कर लेना ठीक होता है। इनके विषय में भी जानकारी सभी को होनी चाहिए।

संक्षिप्तीकरण

सार-संक्षेप किसी पूरे लेख, पुस्तक अथवा लेख के किसी खण्ड विशेष का किया जाता है। रचना में लेखक को कल्पना तथा विचारणा की स्वतन्त्रता रहती है पर संक्षिप्तीकरण में ऐसी स्वतन्त्रता नहीं है क्योंकि लेखक को मूल लेख का ही सार-संक्षेप प्रस्तुत करना पड़ता है। सारयुक्त तथ्यों, प्रतिपादनों और तर्कों को ही उसे अपनी शब्दावली में इस ढंग से प्रस्तुत करना पड़ता है कि मूल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लेख की सभी प्रमुख बातें उसके अन्तर्गत आ जायें। शब्दों के चयन, संगठन के लिए उसे पूरी स्वतंत्रता होती है। संक्षेप में शर्तों के साथ वह अपनी बात को कहने के लिए पूरी तरह स्वाधीन है।

संक्षेपिका लेखन में विषय सामग्री को संक्षेप में प्रस्तुत किया जाता है, पर रचना के वे सारे गुण उसमें रहना आवश्यक है, जो क्रमबद्ध रचना में होते हैं, भाषा, व्याकरण आदि दृष्टियों से उसका परिष्कृत होना जरूरी है। शब्द बाहुल्य तथा अनावश्यक तथ्यों का बहिष्कार संक्षिप्तीकरण की प्रमुख विशेषता है। संक्षेपिका को पढ़कर ऐसा अनुभव होना चाहिए कि मूल लेख की सारी बातें पढ़ ली गईं। जिसे बात को सार रूप में समझाना आ गया, समझना चाहिए उसने लेखन का एक महत्त्वपूर्ण सोपान पार कर लिया। मितभाषिता-सम्भाषण कला की तरह ही यह लेखनी हाथ में लेकर बैठे साधक की संयम साधना है कि शैली के लोभ में अथवा समय बचाने की चिन्तन में उसने कहीं जरूरत से ज्यादा तो नहीं सामग्री संकलित कर ली। संक्षिप्तीकरण प्रक्रिया मस्तिष्कीय कोष में अच्छा खासा शब्दों का भण्डार चाहती है ताकि थोड़े में अधिक बात कही जा सके। 'सार-सार को गहि लेने' की कला आ जाना बहुत बड़ी बात है।

विशदीकरण

जो बातें सूत्र रूप में अथवा संक्षेप में कही जाती हैं, उनके भाव क्लिष्ट और भाषा शैली अलंकृत होती है। उन्हें विस्तारपूर्वक समझाने की प्रक्रिया को ही विशदीकरण कहते हैं। सूक्तों अथवा लोकोक्तियों के रूप में जीवन की कितनी ही गम्भीर अनुभूतियाँ और सत्य प्रचलित होते हैं? सामान्य व्यक्ति के लिए वे बोधगम्य नहीं होते। विशदीकरण द्वारा सूत्रबद्ध तथ्यों को सहज बोधगम्य बनाया जाता है। यह संक्षिप्तीकरण की विपरीत प्रक्रिया है। इसके लिए शोधार्थी की मौलिक सूझ-बूझ ही काम आती है। सूत्र को फैला देना एक प्रकार से निबन्ध रचना है। यह कला क्रमिक विकास क्रम में सभी को आ जाती है, मात्र अभ्यास जरूरी है। अनावश्यक विस्तार से बचना व मूल दर्शन को हाथ से न जाने देना, एक मनोयोग से की गयी साधना से ही सम्भव हो पाता है।

संक्षिप्तीकरण तथा विशदीकरण की प्रक्रिया जानने के बाद शोधकार्य का उत्तरार्ध शेष रह जाता है, जिसे प्रबन्ध लेखन, निबन्ध रचना अथवा प्रतिपादन को लेखबद्ध करना कहा जाता है। यदि प्रारम्भिक प्रक्रिया में प्रमाद नहीं बरता गया एवं सामग्री का चयन उपयुक्त, विषयानुकूल है तो फिर लेखन कार्य में कोई विशेष कठिनाई नहीं होनी चाहिए। शोध हेतु एवं लेखन हेतु शोध अलग-अलग खण्ड एक ही प्रक्रिया के हैं। प्रबंन्ध को अंतिम स्वरूप देने के लिए प्रारम्भिक खोज भी शोध के अन्तर्गत आती है—यह खोज इतनी समग्र हो कि अन्तिम स्वरूप देने में मात्र परस्पर गुंथन शेष रह जाय। निबन्ध रचना भी एक कला है, जो एक अभ्यास माँगती है। यदि वह कला किसी को आती है तो भी प्रारम्भिक स्वरूप—वर्गीकृत तथ्यों के अभाव में वह क्रिया रूप में कैसे उतर सकेगी? अतः पूर्व में निर्दिष्ट सिद्धान्तों को दृष्टिगत रख मूल विषय का चयन सतर्कतापूर्वक करके ही निबन्ध-लेखन कार्य को हाथ में लिया जाय।

किसी भी लेख के विषय को अधिक विस्तार से प्रकट करने के पूर्व विषय की ओर आकृष्ट करने के लिए जो भूमिका बनाई जाती है, वह प्रस्तावना के अन्तर्गत आती है। लेख की वह पृष्ठभूमि होती है।

प्रतिपादन आरम्भ करते समय भूमिका, मूल विषय व उपसंहार इन तीन खण्डों में पूरे विषय को बाँटकर यह प्रयास करना चाहिए कि बोधगम्य शैली में प्रारम्भ में ही पाठक को बता दिया जाय कि किस विषय का विवेचन होना है? भूमिका इतनी बड़ी, असम्बद्ध तथा अस्वाभाविक न हो कि पहले से ही एकरसता उत्पन्न हो जाय। साहित्यिक शैली का आकर्षण सभी को अपनी ओर खींचता है। परन्तु यह ध्यान रखना अनिवार्य है कि 'स्वान्तः सुखाय' लेखन के नाम पर शोधार्थी विषय से ही भटक जायें या अनावश्यक भूमिका थोप दें। अपने विषय-वस्तु का समीक्षा रूपी सिंहावलोकन भूमिका का उद्देश्य हो। भूमिका की अनेकों शैलियाँ प्रचलित हैं। आरम्भ किसी घटना से, विचारों से अथवा विषय से सम्बद्ध समस्या के प्रस्तुतीकरण से किया जा सकता है। शैली सीधी-सादी और अलंकृत दोनों ही तरह की हो सकती है। भूमिका किसी भी पाठक को आकृष्ट करने का आरम्भिक दायित्व सँभालती है। अतः लेखक को उसे अधिक से अधिक आकर्षक बनाने का प्रयास करना चाहिए। पर ध्यान रखने योग्य बात यह भी है कि आकर्षक बनाने के साथ-साथ लेख की स्वाभाविकता पर किसी तरह की आँच न ही आनी चाहिए। भूमिका ऐसी हो जो लेख के विषय वस्तु पर प्रकाश डालती हो। प्रस्तावना में वाक्यों का प्रयोग करते समय भाषा की सरलता, प्रवाह शब्दों की क्रमबद्धता पर भी ध्यान रखना चाहिए। छोटी, आकर्षक घटना अथवा आँकड़े प्रधान भूमिका वर्तमान समय में अधिक अच्छी और सार्थक मानी जाती है।

लेख आरम्भ करने के अनेकों तरीके हैं। सम्बद्ध विषय की समस्या रखकर, कोई सामान्य सिद्धान्त बताकर, विषय की परिभाषा देकर, किसी कहानी, घटना अथवा संस्मरण द्वारा, महत्ता बताकर, प्रश्नात्मक आरम्भ द्वारा, किसी लेखक कवि के प्रख्यात वाक्य अथवा कहावत को उद्धृत करके अथवा एकदम विषय में प्रवेश करके लेख का आरम्भ किया जा सकता है। इनमें से किस विषय का आरम्भ किस ढंग से करना चाहिए ? इसका सुनिश्चित नियम नहीं है। यह लेखक की सूझ-बूझ, प्रतिभा के ऊपर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निर्भर करता है कि वह उपरोक्त में से किस ढंग से लेख का आरम्भ करे? पर यह बात अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि आरम्भ प्रभावोत्पादक ढंग से हो।

भूमिका का निर्वाह कर चुकने के उपरान्त—जो भी मूल विषय हो उसे क्रमिक उतार-चढ़ाव के रूप में समझाने का प्रयास किया जाय। शैली सीधी-सादी-सरस हो। कहीं भी अतिभावुक न बनने का प्रयास किया जाय। जो भी कहना है उसके समर्थन में क्रमबद्ध तथ्य-तर्क एक-एक करके रखते चले जायें। वस्तुत: विवेचना निबन्ध का मुख्य विषय है। विषय सम्बन्धी ज्ञातव्य बातों का क्रमबद्ध रूप से वर्णन विवेचना के अन्तर्गत आता है। तर्क, तथ्य और प्रमाण इसी मध्य भाग में प्रस्तुत किये जाते हैं। लेख में पक्ष और विपक्ष दोनों ही तरह के विचार प्रस्तुत करने तथा तुलनात्मक प्रस्तुतीकरण द्वारा सही निष्कर्ष पर पहुँचने से उसकी प्रामाणिकता पुष्ट होती है। एक तरह के विचारों, तर्कों एवं तथ्यों को एक अनुच्छेद अथवा एक क्रम में प्रस्तुत करना चाहिए। दूसरे तरह के अथवा प्रतिपक्षी तर्कों एवं तथ्यों को दूसरे अनुच्छेद में देने से पाठक को लेख को समझने में सुगमता रहती है। विवेचना में व्यक्त की जाने वाली बातों का सम्बन्ध और तारतम्य भूमिका से क्रमबद्ध होना चाहिए।

निष्कर्ष अथवा उपसंहार लेख का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पक्ष है। जिन बातों का वर्णन लेख में विस्तृत रूप से किया गया, उसका सार-संक्षेप देते हुए समापन करने को उपसंहार कहते हैं। लेख विचारों की शृंखला है। ऐसा सम्भव है कि अन्त तक आते-आते पाठक पहले पढ़ी हुई बातों को भूल जाय। अत: कुशल लेखक का यह कर्त्तव्य है कि अन्त में लेख का सारांश प्रस्तुत कर दे। संक्षिप्त उपसंहार ही श्रेष्ठ माना जाता है।

उपसंहार में भूमिका व विषय-वस्तु का निर्वाह अनिवार्य है। उपसंहार वस्तुत: सार भाग है, जो निष्कर्ष पर समाप्त होती है। भूमिका में जो व्याख्या की गई थी—उसी का उत्तरार्ध व्यक्त करते हुए अपने निष्कर्ष को संक्षेप में व्यक्त कर दिया जाय। अनावश्यक रूप से पाठक से अपनी बात मनवाने के बजाय अपने निष्कर्षों को तटस्थ भाव से पाठक के सम्मुख रख देना ही श्रेयस्कर है।

लेख का समापन अनेकों प्रकार से किया जाता है। पूरे निबन्ध का सार देकर, कोई प्रेरणा उभारते हुए, सम्बद्ध विषय के प्रति अपनी सन्मति प्रस्तुत करते हुए, विषय का भविष्य बताकर अथवा किसी सुधार या उक्ति देखकर उपसंहार किया जा सकता है।

निबन्ध लिखते समय निम्न बातें भी ध्यान रखने योग्य हैं—

(१) लेख की भाषा सरल-सुबोध हो।

(२) शैली में प्रवाह और माधुर्य का गुण हो।

(३) भाषा में अप्रचलित अथवा मिलकर शब्दों का प्रयोग न किया जाय।

(४) वाक्य छोटे, सरल हों तथा वे अन्तरण में जंजीर की कड़ियों के समान जुड़े हों।

(५) भाषा में व्याकरण के नियमों की अवहेलना न की जाय।

(६) यथास्थान विराम चिह्नों का प्रयोग हो।

(७) मुहावरों, अलंकारों, लोकोक्तियों का प्रयोग सही स्थान पर किया जाय।

(८) विचारों को स्पष्ट करने के लिए उचित उदाहरण दिये जायें।

सतत् अभ्यास आवश्यक—शरीर को बलिष्ठ बनाने के लिए जिस प्रकार नियमित रूप से व्यायाम का अभ्यास करना पड़ता है, उसी प्रकार लेखनी में प्रवाह लाने के लिए नियमित अभ्यास जरूरी है। आरम्भ में विचार, शृंखलाबद्ध नहीं हो पाते। शब्दों का भण्डार होते हुए, प्रवाह नहीं बन पाता। इस कठिनाई पर विजय अभ्यास द्वारा ही पाई जा सकती है। यह एक ऐसा मानसिक व्यायाम है, जो शैली में प्राण फूँक देता है। भाषा को परिमार्जित करता तथा भावों एवं विचारों को सही ढंग से प्रस्तुत करने के लिए सामर्थ्य उत्पन्न करता है।

लेखन कला के साधक को यह बात हृदयंगम कर लेना चाहिए कि आरम्भ में भाव एवं विचार ठीक प्रकार से किसी के भी व्यक्त न ही हो पाते। भाषा भी शिथिल रहती है। दीर्घकाल तक निरन्तर अभ्यास इन कमियों को दूर करता है। भावों में परिपक्वता-गम्भीरता, विचारों में प्रखरता तथा भाषा में प्रवाह क्रमश: नियमित अभ्यास से उपलब्ध होते हैं।

प्रचलित यह मान्यता शत-प्रतिशत गलत है कि मूड़ बनने अथवा तरंग आने पर ही लेखनी चलती है। जो यह मानते हैं उनकी लेखनी में प्रवाह नहीं आ पाता। यह मनोवृत्ति वस्तुत: मानसिक प्रमाद और अकर्मण्यता का परिचायक है। उनके रहते लेखन में प्रगति नहीं हो पाती। अभ्यास ही एकमात्र औषधि है, जो लेखन की अकर्मण्यता को दूर कर सकती है। यह बात याद रखने योग्य है कि मनोयोग लगता नहीं, लगाना पड़ता है। जो ऐसी एकाग्रता के लिए सतत प्रयत्नशील रहते हैं, उनकी लेखनी में प्रवाह, ओज, माधुर्य और प्रखरता के गुण क्रमश: आने लगते हैं। लेखन प्रतिभा अभ्यास से प्रकट होती है। शोधकार्य के इन प्राथमिक निर्देशों को सभी को भली-भाँति हृदयंगम कर धैर्यपूर्वक इस साधना में स्वयं को खपा देना चाहिए, तभी मनीषा की भूमिका योग्य पात्रता विकसित हो पाती है। कार्य है तो समय साध्य परन्तु है रुचिकर एवं व्यक्तित्व को ऊँचा उठाने वाला।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रोचक-हृदयस्पर्शी शैली, प्रबन्धलेखन का मूल प्राण

प्रबन्धलेखन, निबन्ध अथवा लेखों की परिभाषा की जाय, तो इन्हें सीधी-सादी भाषा में किसी भी विषय पर गद्यात्मक रूप से रोचक एवं सरल शैली में प्रकट की गई क्रमबद्ध विचार शृंखला कहा जा सकता है। निबन्ध का शब्दार्थ होता है—बाँधना। अर्थात निबन्ध वह विद्या है, जिसमें अनेकों प्रकार के विचारों एवं भावों को परस्पर गूँथ दिया जाता है। इस प्रकार मुख्यत: लेखन-प्रक्रिया को दो भागों में बाँटा जा सकता है। विचार सामग्री एवं शैली।

विचार किसी भी लेख के प्राण होते हैं। वे जितने सशक्त होंगे, उतने ही अधिक प्रभावोत्पादक भी होंगे। विचारों के समर्थन हेतु घटनाओं क्रमों, तथ्यों, तर्कों, प्रमाणों का सहारा लिया जाता है। विचारशील वर्ग ऐसी ही प्रामाणिक रचनाओं को पसन्द भी करता है। दूसरी प्रमुख विद्या है—शैली। विषय-वस्तु को हृदयंगम बनाने में युग मनीषा समर्थ हो सके, यह शैली की सरसता, माधुर्य, लोच एवं भाव संवेदनाओं को उछाल देने की उसकी सामर्थ्य पर ही पूर्णत: निर्भर है।

लेख में प्रभावोत्पादक क्षमता उत्पन्न करने में शैली की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। शैली को लेख का शृंगार कहा जा सकता है। सुबोध शैली में सीधे-सादे ढंग विचार व्यक्त करने का भी एक तरीका है पर अलंकृत शैली अधिक प्राणवान होती है। शैली के अभाव में सुशक्त विचारों में भी प्रखरता नहीं आ पाती। अलंकार ध्वनि, वाक्य, सौन्दर्य, मुहावरे, लोकोक्तियाँ शैली के अनिवार्य अंग हैं। ओज और माधुर्य शैली को उत्कृष्ट बनाते हैं। शैली विचार प्रधान होती है और भाव प्रधान भी। मनीषियों का मत है कि भाव प्रधान शैली में प्रभाव डालने की क्षमता अधिक होती है। विचारों के साथ-साथ भाव संवेदनाओं का गुंथन सही ढंग से होने से उनकी सामर्थ्य कई गुनी अधिक बढ़ जाती है। वैचारिक शैली के लेख मस्तिष्क के धरातल को छूकर वापस लौट जाते हैं, जबकि भाव संवदेनाओं से युक्त शैली प्रधान रचनाएँ अन्त:करण के मर्मस्थल को स्पर्श करती हैं तथा अपना स्थाई प्रभाव छोड़ती हैं। वह रचनाकार दूसरों को अपनी रचनाओं द्वारा अधिक प्रभावित करने की सामर्थ्य रखता है, जिसकी लेखनी में माधुर्य या गुण अधिक होता है अथवा जिसे जनमानस की भावनाओं को तरंगित करने, उभारने की कला आती है।

विचार प्रधान तथा कथा प्रधान रचनाओं से अनेकों भाषा के साहित्य भरे पड़े हैं पर उनमें से कुछ ही ऐसे हैं, जो जनमानस के मर्मस्थल को छू सके हैं और उनकी उदात्त भाव संवेदनाओं को उछाल सकने, उभार पाने में समर्थ हो सके हैं। तुलसी, सूर और मीरा की पंक्तियों पर शुष्क से शुष्क हृदय के भाव भी तरंगित होने लगते हैं। संवेदनाएँ नृत्य करने लगती हैं। यह आकर्षण काव्य के साथ गुँथी उस भाव प्रधान शैली का है, जो हर भावुक व्यक्ति को भाव-विभोर करके रख देती है। उपन्यासकार अनेकों हुए हैं, पर जो वेदना-तड़पन, परिस्थितियों आदि की सजीव अभिव्यक्ति है, अन्यत्र दुर्लभ है। प्रकृति-सौन्दर्य की सहज अभिव्यक्ति प्रेमचन्द, टॉलस्टाय, बंकिमचन्द के उपन्यासों में मिलती हैं, कालीदास की रचनाओं में सहज अभिव्यक्ति है। मनुष्य की कोमल भावनाओं की तरंगति करने की अद्भुत सामर्थ्य इनकी रचनाओं में स्पष्ट देखी जा सकती है। यह चमत्कार वस्तुत: शैली का है, जो सामान्य शब्दों के गुंथन को असामान्य प्रभावी बना देती है।

शैली के अन्तर्गत वह सब कुछ आ जाता है, जो किसी भी लेख में कथ्य को पाठक तक पहुँचाने के लिए किया जाता है। दूसरे शब्दों में शैली को अभिव्यक्ति पक्ष अथवा कला पक्ष की संज्ञा दी जा सकती है। कविता की शैली की परख तो मुख्यत: शब्द चयन, शब्द शक्ति अलंकार, नाटक सौन्दर्य, मुहावरों आदि को देखकर की जाती है पर गद्य शैली थोड़ी भिन्न स्तर की होती है। उपरोक्त विशेषताओं के साथ-साथ लेखों में विचारों के संयोजन पर विशेष ध्यान देना पड़ता है। यह कला जिसमें नवीनता लिए हुए जितनी अधिक और सहजता से युक्त होगी, उसकी रचना उतनी ही प्रखर और प्रभावोत्पादक होगी। प्रचलित परम्परागत शैलियों के नाम हैं—समाज शैली, अलंकृत शैली, व्यास शैली, उदात्त शैली, मुहावरेदार शैली, व्यंजक शैली, सरल शैली, सरस-माधुर्य पूर्ण शैली तथा गुंफित शैली इत्यादि।

शैली का सम्बन्ध भावाभिव्यक्ति की विधि या लेखन के विशिष्ट लेखन, विशिष्ट पद रचना से है। अभिव्यक्ति वही सजीव और प्रभावोत्पादक होती है जिसमें विशुद्ध, युगानुकूल प्रसंग और विषयानुसार शब्दों का चयन एवं प्रयोग किया जाता है और सुगठित वाक्य विन्यास पर समुचित ध्यान दिया जाता है। अभिव्यक्ति में व्याकरण के नियमों के पालन से भाषा में लूला-लंगड़ापन नहीं आने पाता। शैली में लेखक की प्रतिभा, मनोवेग, अभ्यास स्पष्ट झलकते हैं।

शैली वही श्रेष्ठ मानी जाती है, जो प्रतिपाद्य विषय के अनुरूप हो और स्पष्ट हो। शैली में विषयानुकूल उत्थान, पतन अपेक्षित हैं। भाषा की साज-सज्जा इतनी भी नहीं होनी चाहिए कि अलंकरणों के आडम्बर से भड़कीली और बोझिल बन जाय।

इसके लिए लेखक की रुचि का परिष्कृत होना अतिआवश्यक है। उसे बोध रहे कि भाषा के अलंकरण का कहाँ औचित्य है, कहाँ नहीं? जैसे वैज्ञानिक शोधों में भाषा अलंकृत किये जाने की आवश्यकता नहीं है। इसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकार गणित, ज्यामिती जैसे विषयों के लिए भड़कीली, जोशीली भाषा प्रयुक्त किया जाना कतई आवश्यक नहीं।

रूपक अलंकारों से भाषा शैली में प्रांजलता आती है। आकर्षक और विशिष्ट लगने लगती है। यह तभी हो पाता है, जब वे सटीक हों। लोकोक्तियों, कहावतों, मुहावरों के लिए सूत्रात्मक शैली उपयुक्त है। इसमें विचारों को छोटी सीमा में सीमाबद्ध किया जाना सम्भव है। लोकोक्ति यदि विस्तार में कही जाती है, तो वह लोकोक्ति नहीं रह जाती है।

रूपकों और समासों के प्रयोग में अधिक सतर्कता बरती जानी चाहिए अन्यथा रचना हास्यास्पद और भौंडी प्रतीत होगी। रूपक ऐसे प्रयुक्त किये जायें, जिनसे भाषा शैली में स्वाभाविकता दृष्टिगोचर हो। मिश्रित शब्दों को पुनः जटिल बनाने का प्रयास न किया जाय अन्यथा शैली की जटिलता से पाठक को ऊब लगने लगेगी। सरल बात को जटिल बनाकर कहने में बुद्धिमत्ता नहीं, वरन् जटिल को सरल बनाने में दूरदर्शिता और पाठक के लिए सुगमता है।

श्रेष्ठ शैली के लिए कोई भी ऐसा शब्द न प्रयुक्त किया जाय—जिसकी उपयुक्तता, सटीकता संदिग्ध हो। विविधता के लिए अतिशय पौराणिक उद्धरण और अनुपयुक्त अलंकार प्रयुक्त न किये जायें। कृति सुन्दर, विशिष्ट, भावों में आरोह-अवरोह (उतार-चढ़ाव) लिये हो। कृति की सर्वांगपूर्णता एवं आकर्षण के लिए, भावों की विविधता तथा आरम्भ, मध्य और अन्त का सामंजस्य अतिआवश्यक है। भाषा के पुरातन शब्दों का समयानुसार पटाक्षेप होता जाता है। उनके चयन में उसी तरह सावधानी बरतनी चाहिए, जैसे खोटे सिक्के के सम्बन्ध में बरती जाती है। नवीन शब्दों का प्रयोग तभी किया जाय, जब वे प्रासांगिक तत्सम, तद्रूप हों और उनमें अभिव्यंजना शक्ति हो। विद्वता प्रदर्शन के लिए अनावश्यक ठूँस-ठूँस से शैली में कूबड़ जैसा उग आता है।

अच्छी शैली के लिए परिशोधित, परिमार्जित भाषा उपयुक्त रहती है। इसके लिए संयोजक शब्दों का उचित प्रयोग, स्पष्ट, व्यापक शब्दावली का प्रयोग लिंग, क्रिया आदि का सामान्य ज्ञान तथा वचन, विशेषण आदि का शुद्ध प्रयोग आवश्यक है।

शब्द समूह की उचित विन्यास व्यवस्था पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है। शब्द व भाषा सम्भवतः वही प्रयुक्त की जाय, जो सामान्य जीवन में व व्यवहार में लाई जाती है। प्रचलित भाषा में वास्तविकता प्रतीत होती है, प्रचलन से बाहर के शब्द क्लिष्टता उत्पन्न करते हैं।

वाक्यांश लम्बे न लिखे जायें। यदि लम्बे हैं तो उपवाक्यों में विभाजित कर देना शैली की उत्कृष्टता की दृष्टि से उत्तम है। उपवाक्य इतने छोटे भी न हों कि अटपटे लगें और पाठक, श्रोता ऊबने लग जाय। अति छोटे वाक्यों में लय के अवरुद्ध होने से पाठक-श्रोता का मन उचटने लगता है। इसके विपरीत अति लम्बे वाक्यों से श्रोता व पाठक पीछा छुड़ाने की सोचने लगते हैं।

वही अच्छी शैली मानी जाती है, जिसमें प्रतिपाद्य विषय की सामग्री पूर्ण एवं समृद्ध हो, जिसमें इतिहास चेतना का समुचित ध्यान रखा गया हो और अप्रचलित घिसे-पिटे शब्दों के स्थान पर नवीन शब्द रचना को उचित स्थान देकर शब्दों की सूक्ष्मता उभारी गई हो। कितनी बार शैली को अधिक रोचक बनाने की दृष्टि से कुछ बातें अनकही छोड़ दी जाती हैं, जिससे पाठकों की कल्पना को उद्दीपन मिलता है। शैलीकार को भावानुकूल, सजीव सशक्त शब्द चयन करना चाहिए, अनुपयुक्त अनावश्यक छोड़ देने चाहिए। इसे सूत्र रूप में समझना हो तो ऐसा कह सकते हैं कि जिन्हें आधुनिक विज्ञान, मनोविज्ञान तथा नागरिकता-समाजशास्त्र के सामान्य नियमों की जानकारी है, उनकी शैली युगानुकूल होती है। जिस लेखन शैली से अन्तरात्मा प्रभावित हो, वस्तुतः वही शैली अच्छी है।

शैली के सम्बन्ध में महावीर प्रसाद द्विवेदी के विचार इस प्रकार हैं 'शैली की भाषा ऐसी होनी चाहिए जिसे सहज में समझा जा सके, जिसके अर्थ घुमावदार और पेचीदा न हों। पढ़ते ही भाव हृदयंगम किये जा सकें और आनन्द आने लगे, ऊब पैदा न हो। विषय की निकटता बनी रहे, विषयानुकूल मुहावरे हों और व्याकरणानुमोदित भाषा हो। शब्द चयन व स्थापन प्रासंगिक व विषयानुकूल हों।'' प्रसिद्ध पाश्चात्य लेखक **पेंटर** के मतानुसार—

''अच्छी शैली में संवेदनशीलता का पुट होता है। शब्दों का समन्वय रहता है। शैलीकार का व्यक्तित्व, जीवन दर्शन तथा योग्यता झलकती है, इसका ध्यान सदैव बना रहना चाहिए। शब्दाडम्बर, और विद्वता के दर्प से सहज अभिव्यक्ति नहीं हो पाती।''

यह तथ्य भी ध्यान रखने योग्य है कि शैली का सीधा सम्बन्ध भाषा से है। भाषा जितनी अधिक सजीव सुबोध और प्राणवान होगी, शैली उतनी ही अधिक समर्थ और प्रभावोत्पादक होगी। भाषा कभी स्थिर नहीं रहती अनेकों शब्द पैदा होते और अनेकों लुप्त हो जाते हैं। इन सूक्ष्म परिवर्तनों के प्रति जो जागरूक होते तथा युगानुरूप भाषा का प्रयोग करते हैं, वे अपनी रचनाओं में अधिक माधुर्य और प्रभाव उत्पन्न करने में सफल होते हैं। अस्तु, शैली के अन्तर्गत भाषा से सम्बन्धित आवश्यक बातों को—नियमों को जानना भी उतना ही जरूरी है जितना कि सुन्दर शैली का अध्ययन और अभ्यास ।

हृदयग्राहिता भाषा की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता है। इसके अभाव में तो केवल शब्द भण्डार इकट्ठा कर देना या शब्द जंजाल खड़ा कर देना ही कहा जाएगा। भाषा की सार्थकता इसी में है कि वह पाठकों के हृदय को स्पर्श कर सके, उसके भीतर उत्साह और उमंगें भर सके।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस गुण को समावेश करने लिएं दो महत्त्वपूर्ण कारक (फैक्टर्स) बताए गये हैं— (१) विषय-वस्तु के अनुसार शब्दों का चयन एवं प्रयोग, (२) भावों की अभिव्यक्ति एवं विषय के प्रतिपादन में सावधानी, सटीकता।

भावों के अनुरूप शब्दों का प्रयोग भाषा का प्राण कहा जाता है। यदि प्रतिपाद्य विषय या भावों के अनुसार शब्दों का प्रयोग न किया गया तो भाषा जलरहित सरिता की भाँति प्रवाहहीन हो जाएगी, उसे 'सुगन्ध एवं पराग विहीन पुष्पों की संज्ञा भले ही मिल जाए। भावानुसार शब्दों का चयन एवं प्रयोग न होना उसी प्रकार की विडम्बना होगी, जैसी कि किसी नव-वधू को श्वेत वस्त्र पहना देना अथवा किसी विधवा को रंग-बिरंगे वस्त्रालंकारों से सजाकर सुशोभित कर देना।

भाषा की हृदयग्राहिता इस बात पर अवलम्बित है कि मधुर कोमल वर्णन में शब्द भी मधुर या कोमल दिए जायें और कठोर वर्णन में कठोर कर्कश शब्द प्रयुक्त किए जायें। साधारण वर्णन करते समय साधारण शब्दों का प्रयोग ठीक रहता है। भावों की मधुरता-कोमलता व्यक्त करने में शब्दों का प्रयोग उस अर्धाली में कितने उत्तम ढंग से हुआ है, जिसमें सीताजी का पुष्पवाटिका में चलने का विवरण है—**'कंकन किंकन नूपुर धुनि-सुनि।'** बिल्कुल ऐसा जान पड़ता है कि शब्दों से ही नूपुरों की ध्वनि निःसृत हो रही हो।

युद्ध भूमि में कठोर वर्णन के समय शब्दों का प्रयोग भी इसी प्रकार का है, जो रावण के समर भूमि में चलने के समय का है—**'धरनि धसइ धर धाव प्रचण्डा।'** शब्दों से ही ऐसा लगता है मानो धरती धँसती और हिलती है।

भावानुसार शब्दों के चयन एवं प्रयोग का ध्यान रखने के कुछ मोटे सिद्धान्त भी हैं, जिनसे पर्याप्त सहयोग मिल सकता है—(१) वर्णमाला के ट वर्ग के अक्षरों की अधिकता वाले शब्द एवं संयुक्त वर्णों के अधिक प्रयोग से शब्दों में कठोरता आ जाती है, जहाँ मधुर-कोमल भावों की अभिव्यक्ति करना अभीष्ट हो, वहाँ ऐसे शब्दों के बाहुल्य से बचना चाहिए। जैसे 'कैकेयी का क्रोध' के स्थान पर 'कैकेयी का कोप' अधिक अच्छा लगता है। क्रोध में कठोरता का भाव है, कोप में कुछ रूठने जैसा भाव परिलक्षित होता है।

(२) वर्गों के प्रथम एवं तृतीय वर्ण साधारण हैं, उनमें न परुषता है और न ही मधुरता। किन्तु इनके साथ यदि 'न,' 'म' या अनुस्वार का सहयोग हो जाय तो सरसता प्रवाहित होने लगती है—जैसे—**'कंगन के नग की परछाहीं', 'कन्त न आये बसन्तहु में सखि'** आदि।

(३) हिन्दी वर्णमाला के क वर्ग, च वर्ग आदि के द्वितीय तथा चतुर्थ वर्णों के उच्चारण में कुछ कर्कशता लगती है। अस्तु इनका प्रयोग कठोर वर्णन में ही उपयुक्त रहता है—**'ठाटहु सकल मदैकी ठाटा।'** पढ़ने से ऐसा मालूम पड़ता है मानो लड़ाई ठानने की बात कही जा रही हो।

(४) वर्गों के पञ्चम् वर्णों में 'न' और 'म' मधुर है। मधुर वर्णन में इनका संयोग भाषा की हृदयग्राहिता को बढ़ा देता है। कोमल एवं मधुर वर्णन में ऐसे ही शब्दों का प्रयोग किया जाना चाहिए, जिनमें इन वर्णों का संयोग एवं बाहुल्य हो।

ऊपर तथ्यों की गहराई में न जाकर थोड़े से संकेत भर किए गये हैं, उनकी विवेचना-व्याख्या-भाषा-विज्ञान एवं व्युत्पत्तिशास्त्र का विषय है। जिन्हें उसको जानने की अभिरुचि हो, वे तत्सम्बन्धी पुस्तकों के अध्ययन से अधिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु स्मरण रखने योग्य तथ्य यह भी है कि अनुप्रासादि अलंकारों का प्रयोग इतना धुँआधार न किया जाय कि भाषा अश्रव्य हो जाय। अलंकार युक्त बनाने के चक्कर में भाषा में अश्रव्यता का दोष नहीं आने देना चाहिए। अलंकारों का प्रयोग भी वहीं तक अच्छा लगता है, जहाँ तक भाषा के प्रवाह में व्यवधान न उत्पन्न होता हो, साथ ही पाठक को अर्थ समझने के लिए माथापच्ची न करनी पड़े, शब्दकोष के पन्ने न उलटने पड़ें। कभी-कभी पाण्डित्य प्रदर्शन के चक्कर में भाषा न केवल दुरूह हो जाती है वरन् ऐसी भी हो जाती है, जो पढ़ने-सुनने में कुछ अटपटी लगे। भाषा की हृद्यता को बनाये रखते हुए अलंकारों की अतिवादिता से सदा बचा जाना चाहिए, पाण्डित्य अथवा विद्वत्ता प्रदर्शित करने की ललक ही हो तो बात दूसरी है, अन्यथा प्रवाह प्राप्त सामान्य शब्दों के सतर्कतापूर्वक प्रयोग से ही भाषा सुबोध, सरस एवं अच्छी बन जाती है। इस प्रकार के शब्द-प्रयोगों की कुशलता समय एवं प्रयत्न-साध्य तो है ही, उसके लिए मनोयोगपूर्वक परिश्रम तो साहित्यकार अथवा शोधकर्त्ता को ही करना होगा।

भाषा में हृदयग्राहिता की विशेषता लाने के लिए भाव-व्यंजना की सटीकता होना अत्यावश्यक है। भावों की अभिव्यक्ति इस ढंग से की जाय कि उसमें बोल-चाल के परिष्कृत शब्द एवं साहित्यिक शब्दों का समन्वित प्रयोग हो ताकि सामान्य व्यक्ति भी उसे हृदयंगम कर सके और विद्वज्जनों को भी यह कहने का अवसर न मिले कि भाषा बड़ी गँवारू है। कहीं-कहीं ग्रामीण मुहावरों का प्रयोग अभिव्यक्ति को अत्यन्त सुबोध एवं हृद्य बना देता है, वहाँ उनके प्रयोग में चूका न जाय किन्तु 'अतिसर्वत्र वर्जयेत्' की उक्ति को सदैव ध्यान रखा जाना चाहिए, एक ही अनुच्छेद में अनेकों मुहावरे नहीं ठूँस देना चाहिए। भाषा का सबसे महत्त्वपूर्ण गुण है, लोकमंगल की भावना। वाणी वही, भाषा वही सुन्दर एवं सार्थक होती है, जिसमें लोक-कल्याण की भावना निहित हो। भाषा में यदि शब्दों का चयन, प्रयोग एवं भावों की अभिव्यंजना सभी ठीक हों किन्तु लोकमंगल की भावना का अभाव हो तो ऐसी निरर्थक अथवा अनर्थक अभिव्यक्तियों को जन साधारण के समक्ष प्रस्तुत न करना ही अच्छा है। काश्मीरी सेब बहुत सुन्दर दिखाई देते हैं, उनका रंग और आकार भी मोहक होता है किन्तु वही सब कुछ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं है, यदि उसके अन्दर का सार स्वादिष्ट एवं पौष्टिक न हो तो बाहरी रूप-रंग आकार किस काम के? भाषा के लोक हितकारी होने में ही उसकी सार्थकता है और साहित्यकार का गौरव भी उसी में है। तुलसी के रामचरितमानस की चौपाइयाँ जन-जन के मन-मन में इसीलिए समा गईं कि उनमें लोकमंगल की भावना निहित है।

अच्छी शैली के लिए क्या गुण अनिवार्य है तथा पाठक के हृदय में प्रवेश कर सके, ऐसी नाचती-थिरकती शैली का निर्माण कैसे किया जाय, यह लिखकर नहीं समझाया जा सकता है। इसके लिए तो लेखक का अध्यवसायी होना अत्यन्त अनिवार्य है। सतत स्वाध्याय से ऐसे लेखों की नकल करके भी कलम को हृदय को छू लेने जैसी भाषा बनाने योग्य बनाया जा सकता है। मूल तथ्य वही है। चुनी हुई पुस्तकों को मात्र मस्तिष्क से नहीं, अंतः से पढ़ना। जो भी लिखा जाय वह साकार तभी हो सकेगा, जब लेखक ने स्वयं अपने जीवन में उस दर्शन को उतारा हो। स्वयं पढ़कर रोमांच आने लगे ऐसी स्पन्दनयुक्त शैली विनिर्मित करना यद्यपि लेखन कला की प्रौढ़ता की स्थिति में ही सम्भव है, पर है यह भी अनिवार्य। मात्र तथ्य ही नहीं, रोचकता को महत्त्व देना शोध-लेखन में उतना ही अनिवार्य है।

भाषा की शुद्धि एवं सुगठन भी एक अनिवार्य पक्ष

प्रबन्ध-लेखन हो अथवा शोध तथ्यों का लेखबद्ध विवेचन, भाषा की शुद्धि को भी उतना ही महत्त्व दिया जाना चाहिए। हम हिन्दी प्रधान राष्ट्र के नागरिक हैं। हममें से कोई भी ऐसा न हो जिसकी भाषा व्याकरण-सुसम्बद्धता-शब्दचयन की दृष्टि से त्रुटिपूर्ण हो। शैली सीधी सादी हो तो काम चल जाता है, पर यदि लिखते समय अशुद्ध लिखा जाय, तो यह लेखक की अपरिपक्वता तथा भाषा ज्ञान की कमी का सूचक है। बोलते समय सामान्य वार्त्ता में कुछ भी कह लिया जाय, कितनी ही शुद्ध संस्कृतनिष्ठ शैली ही क्यों न व्यक्त कर दी जाय, यदि ये छोटी-छोटी त्रुटियाँ लेख में होंगी तो बुरी तरह खटकेंगी। जिस प्रकार अशुद्ध या मलिन दर्पण में प्रतिबिम्ब ठीक से दिखाई नहीं देता, उसी प्रकार भाषा में 'पदों' या शब्दों की अशुद्धियाँ अभिव्यक्ति के स्वरूप को अस्पष्ट या विकृत कर देती हैं। अशुद्ध पदों से सावधान रहते हुए प्रवाह प्रधान शुद्ध शब्दों का प्रयोग भाषा में किया जाना चाहिए। इनका प्रयोग भी ढंग से हो नहीं तो यह मात्र वाग्जाल बनकर रह जायेगा। कहा जाता है कि—

''एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति'' अर्थात—'अच्छी तरह जानकर और ठीक ढंग से प्रयोग किया गया एक शब्द भी स्वर्ग-लोक में (प्रयोक्ता के लिए) कामधेनु के समान है।'

इसलिए भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि भाषा पर पूर्ण अधिकार हो। जब तक भाषा सुन्दर एवं सशक्त न होगी, वह अभीष्ट प्रकार के विचारों को सही ढंग से व्यक्त करने में असफल रहेगी। भाषा के सौन्दर्य के लिए यह तो जरूरी है ही कि लेखक के पास शब्दों का विपुल भण्डार हो। साथ ही उसे शब्दार्थ का सम्यक् ज्ञान भी होना चाहिए। शब्दों का सही अर्थ न जानने से उनके अशुद्ध तथा अप्रासंगिक प्रयोग की सम्भावना रहती है। यों तो व्याकरण का प्रमुख कार्य होता है, भाषा को क्रमबद्ध और व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करना किन्तु प्राणवान और प्रवाहपूर्ण भाषा को व्याकरण के कठोर नियमों में आबद्ध नहीं रखा जा सकता। मात्र व्याकरण के नियमों को हृदयंगम करने से भाषा में शुद्धता और सौन्दर्य का समावेश नहीं किया जा सकता। भाषा को सशक्त, परिमार्जित, प्रवाहपूर्ण और आकर्षक बनाने के लिए आवश्यक है कि प्रत्येक शब्द का मात्र अर्थ ही नहीं, उससे जुड़े भावों को भी समझें तथा उसे कहाँ प्रयोग किया जाना चाहिए, इसका सही निर्णय लें।

विचारों और भावों के प्रकटीकरण के लिए वाक्यों में शब्दों का उपयुक्त और क्रमबद्ध प्रयोग अत्यावश्यक है। अनुरूप और उचित शब्दों का चयन और उनका व्यवस्थित नियोजन, सुन्दर वाक्य रचना के प्रमुख उपकरण हैं। जहाँ इन बातों पर ध्यान नहीं दिया गया, वहाँ वाक्य रचना निश्चित रूप से असंयत और निष्प्रभावी होगी। वाक्य का संगठन इस ढंग से होना चाहिए, जिससे एक तरह भाव परिपूर्ण रूप से अभिव्यक्त हो सके। इस दृष्टि से प्रायः संक्षिप्त वाक्य अधिक प्रभावपूर्ण होते हैं। लम्बे वाक्यों में अशुद्धियों की आशंका अधिक रहती है। संयुक्त तथा मिश्रित वाक्यों में लेखन का प्रवाह नहीं रहता। बहुधा वे विशृंखलित हो जाते हैं। सामान्य व्यवहार में छोटे वाक्य अधिक श्रेष्ठ माने गये हैं।

लेख अथवा निबन्ध को ओजपूर्ण, सरस और प्रभावशाली बनाने के लिए मुहावरों, लोकोक्तियों, अलंकारों तथा कहावतों के प्रयोग की परम्परा है। पर इनका प्रयोग करते समय पूरी सतर्कता रखने की आवश्यकता पड़ती है। उचित स्थानों पर यदि उनका प्रयोग न किया गया तो लेख में अस्वाभाविकता आ जाती है। अतः इस सम्बन्ध में पर्याप्त सावधानी लेखक को रखनी चाहिए।

भाषा के आधार वाक्य, शब्द और वर्ण हैं। इनके अभाव में भाषा का कोई अस्तित्व नहीं है। इस दृष्टि से व्याकरण के तीन विभाग होते हैं—वाक्य, शब्द-विचार और वर्ण-विचार। वाक्य विचार में शब्दों के द्वारा वाक्य निर्माण के नियम, वाक्यों के पारस्परिक सम्बन्ध, विश्लेषण आदि के नियमों का अध्ययन किया जाता है। शब्द

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विचार के अन्तर्गत शब्दों की व्युत्पत्ति, भेद व्यवस्था आदि नियमों को जानना आवश्यक होता है। वर्ण विचार, अक्षरों या वर्णों के उच्चारण, आकार, भेद, संयोग आदि के अध्ययन से सम्बन्धित है।

निर्दोष लेखन के लिए शुद्ध वाक्यों का प्रयोग आवश्यक है। वाक्यों में प्राय: अनेकों प्रकार की अशुद्धियाँ होती हैं। जो विशेष ध्यान देने योग्य हैं :

(१) क्रम-दोष—वाक्य का प्रत्येक शब्द सही क्रम में होना चाहिए। प्राय: कर्त्ता, क्रिया व कर्म उपयुक्त स्थान पर न प्रयोग किये जाने की त्रुटि होती है, जिसके कारण वाक्य अस्वाभाविक लगते हैं तथा भाषा में प्रवाह नहीं रहता।

(२) संज्ञा सम्बन्धी दोष—प्रत्येक शब्द का एक विशिष्ट अर्थ और भाव है। उनका प्रयोग करते समय इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि जहाँ वे प्रयुक्त हो रहे हैं वहाँ वे उपयुक्त हैं अथवा नहीं। यह दोष प्राय: शब्दों का सही अर्थ और आशय स्पष्ट न होने के कारण पैदा होता है। पर्यायवाची शब्दों का सूक्ष्म अर्थभेद न जानना भी ऐसी अशुद्धियों का कारण बनता है। समानार्थी अनेकों शब्द ऐसे हैं, जो एक जैसे प्रतीत होते हैं पर साहित्यिक व्यवहार में उनमें भिन्नता है। अतएव लेखन के लिए पर्याय शब्दों को जानना और उनका सही स्थान पर प्रयोग करने का ज्ञान होना भी जरूरी है।

(३) लिंग, वचन, सर्वनाम, विशेषण सम्बन्धी अशुद्धियाँ—लेखन में इस तरह की अशुद्धियाँ प्राय: होती हैं, जिन्हें ठीक करने के लिए व्याकरण की सामान्य जानकारी का होना आवश्यक है।

(४) क्रिया सम्बन्धी दोष—लिंग-वचन पुरुष का ध्यान न रखने के कारण प्राय: क्रिया के दोष उत्पन्न होते हैं। क्रिया के सामान्य नियम इस प्रकार हैं—

(क) यदि एक वाक्य में एक ही क्रिया के पुल्लिग तथा स्त्री लिंग दोनों ही का समन्वय अपेक्षित हो तो क्रिया में पुल्लिग का प्रयोग बहुवचन में होगा। उदाहरणार्थ—

राम और गीता स्कूल जा रही हैं। (अशुद्ध)

राम और गीता स्कूल जा रहे हैं। (शुद्ध)

(ख) कभी-कभी उत्तम पुरुष के साथ मध्यम तथा अन्य पुरुष का समन्वय एक ही क्रिया में करना पड़ता है, ऐसे वाक्यों में क्रिया उत्तम पुरुष के अनुसार चलती है। जैसे कि—

मैं, तुम और श्याम साथ-साथ मन्दिर जाओगे। (अशुद्ध)

मैं, तुम और श्याम साथ-साथ मन्दिर जायेंगे। (शुद्ध)

(ग) क्रिया विशेषण के प्रयोग का एक निश्चित नियम है। वाक्य रचना में उसका ज्ञान होना जरूरी है। उपवाक्यों जब-तब, जैसा-वैसा, जहाँ-वहाँ, यद्यपि-तथापि, जितना-उतना आदि प्रयोग आगे-पीछे क्रम में आते हैं। लेखन में क्रिया विशेषण के इन युग्मों का प्रयोग साथ-साथ आवश्यक होता है।

(५) कारकीय परसर्गों सम्बन्धी दोष—'को,' 'से,' 'द्वारा', 'में', 'पर,' 'का-की-के,' 'अन्दर', 'बीच में', 'सहित, 'पूर्वक', 'के साथ', 'ने' आदि कारकीय परसर्ग कहे जाते हैं। शुद्ध रचना के लिए इनका उचित स्थान पर प्रयोग आवश्यक है। अन्यथा वाक्य अशुद्ध हो जाते हैं।

(६) वर्तनी सम्बन्धी दोष—अशुद्ध उच्चारण के कारण ही प्राय: वर्तनी (स्पेलिंग) की अशुद्धि होती है। सावधानी एवं सतर्कता का अभाव भी ऐसी अशुद्धियों का कारण होता है।

(७) पुनरावृत्ति दोष—एक ही वाक्य में एक शब्द का एक से अधिक बार प्रयोग अथवा पर्यायवाची शब्द का प्रयोग दोषपूर्ण माना जाता है। रचना स्वाभाविक नहीं लगती है। इससे बचने के लिए शब्दों का विपुल भण्डार होना आवश्यक है।

वाक्य रचना के कुछ सामान्य नियम इस प्रकार हैं—

वाक्य-विन्यास के अन्तर्गत मुख्य रूप से दो विषय आते हैं—

(१) पदक्रम, (२) अन्वय।

पदक्रम में ध्यान रखने योग्य बातें निम्नलिखित हैं—

(१) सर्वप्रथम कर्त्ता और अन्त में क्रिया का प्रयोग किया जाता है।

(२) क्रिया का कर्म क्रिया से पहले आता है।

(३) यदि वाक्य में दो कर्म हों तो मुख्य कर्म बाद में और गौण कर्म पहले आता है।

(४) कर्त्ता, कर्म या क्रिया के विशेषण अपने-अपने विशेष्य से पहले आते हैं।

अन्वय—कहते हैं परस्पर मेल को। इसमें ध्यान रखने वाले नियम निम्न हैं—

(१) कर्त्ता के साथ यदि विभक्ति न हो, तो क्रिया का लिंग, वचन और पुरुष कर्त्ता के अनुसार होगा।

(२) विशेषण विशेष्य के पूर्व प्रयुक्त होता है।

(३) यदि एक वाक्य में एक ही लिंग, वचन और पुरुष के एक से अधिक कर्त्ता 'और' से जुड़े हों, तो क्रिया, कर्त्ता के लिंग और पुरुष में बहुवचन होगी। किन्तु यदि उनके समूह से एकवचन का बोध हो, तो क्रिया भी एकवचन होगी।

(४) यदि वाक्य में भिन्न-भिन्न वचनों और लिंगों के एक से अधिक चिह्नरहित कर्म आयें, तो क्रिया के लिंग और वचन अन्तिम कर्म के अनुसार होंगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(५) यदि कर्त्ता का 'ने' चिह्न और कर्म का 'को' चिह्न प्रकट हो, तो क्रिया सदा एकवचन, पुल्लिग और अन्य पुरुष में होगी।

वाक्य में कर्म, कारण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण आदि सामान्यत: कर्त्ता के बाद प्रयोग किये जाते हैं, पर यदि इनमें से किसी क्रिया, विशेषण आदि पर बल देना हो तो वे अपना स्थान बदल देते हैं। वाक्य के दो भाग होते हैं—(१) उद्देश्य, (२) विधेय। उद्देश्य उसे कहा जाता है, जिसके बारे में कुछ कहा जाता है और जो कुछ कहा जाता है, उसे विधेय कहते हैं। वाक्यों में पहले उद्देश्य और फिर विधेय के प्रयोग की परम्परा है। यथा—श्याम जाता है।

इस वाक्य में 'श्याम' उद्देश्य है तथा 'जाता है' विधेय।

पर यह नियम सामान्य वाक्यों के लिए है। नियम तो वाक्य के स्वरूप तथा शैली के अनुरूप बदलता भी रहता है। भाषा में प्राय: निम्न प्रकार की अशुद्धियाँ भी होती हैं—

(क) मात्रा सम्बन्धी—मात्रा की अशुद्धियाँ उच्चारण की त्रुटियों के कारण उत्पन्न होती हैं।

(ख) वर्ण सम्बन्धी—ऐसी अशुद्धियाँ भी प्राय: उच्चारण की त्रुटि के कारण पैदा होती हैं। यथा—'इच्छा' को इक्षा।

(ग) विदेशी शब्द प्रयोग सम्बन्धी—जब कभी भी हिन्दी में विदेशी भाषाओं के शब्द प्रयुक्त हों, उन्हें हिन्दी ध्वनि तथा व्याकरण के अनुरूप ही रखना चाहिए। उनके वचन, लिंग आदि में हिन्दी व्याकरण का नियम प्रयोग करना चाहिए।

(घ) अनुस्वार और चन्द्र बिन्दु सम्बन्धी— दोनों में भेद न जानने के कारण ऐसी गल्तियाँ होती हैं। जब पूरी अनुनानसिकता होती है, तो अनुस्वार की पूरी बिन्दी लगती है। जब अनुस्वार कम होता है, तो चन्द्र बिन्दु लगता है।

(ङ) हलन्त सम्बन्धी—जिन शब्दों के अन्तिम अक्षर ह्रस्व होते हैं, उनमें हलन्त लगता है यथा—वृहत्, जगत् आदि।

(च) प्रत्यय सम्बन्धी—भाववाचक संज्ञाओं में प्रत्यय लगाना अशुद्ध है। यथा वृहत्—वृहत्ता। उसी प्रकार प्रत्ययों के सम्बन्ध में यह भी ध्यान रखने योग्य है—

जिस शब्द के अन्त में 'य' हो वहाँ य पर 'ई' की मात्रा लगाने के उपरान्त य के स्थान पर ई नहीं आ सकती। यथा:—गया पर ई की मात्रा के प्रयोग के बाद 'गई' लिखना अशुद्ध है। शुद्ध शब्द 'गयी' होगा।

'ए' और 'ये' के प्रयोग में भी प्राय: इसी प्रकार की त्रुटि हो जाया करती हैं। शुद्ध, अशुद्ध की पहचान के लिए शब्द के मूल स्वरूप पर ध्यान देना चाहिए। जैसे— 'लाया' का बहुवचन 'लाये' बनेगा न कि 'लाए'। इसे एक और उदाहरण से समझा जा सकता है।

जब सम्प्रदान कारक में प्रयुक्त किया जाता है, तो 'लिए' यथा—यह कलम सोहन के लिए और क्रिया के बहुवचन के रूप में 'लिया' का 'लिये' ठीक है, जैसे राकेश ने अच्छे कपड़े लिये। परन्तु 'लिए' का प्रयोग दोनों जगह सही है।

यह विषय तो भाषाशास्त्र का है, उसका विस्तृत विवेचन यहाँ अभीष्ट नहीं, फिर भी यहाँ कुछ और व्यावहारिक शब्दों की सूची दी जा रही है, जिनके प्रयोग में प्राय: अशुद्धियाँ हो जाती हैं। हिन्दी भाषा के शब्दों की सही वर्तनी (स्पेलिंग) लिखने में सबसे बड़ी सुगमता यह है कि उच्चारण के अनुसार बोलने के अनुरूप ही लिखने के संकेताक्षर हैं, कहीं एक बिन्दु या मात्रा भी अतिरिक्त या अनावश्यक नहीं है। पहले अशुद्ध शब्द हैं और उसके सामने शुद्ध शब्द हैं—

अशुद्ध शब्द	शुद्ध शब्द
दंत	दन्त
दान्त या दांत	दाँत
हंस मुख	हँस मुख
संदेसा	सँदेसा
छ:	छह
पंप	पम्प
संधि	सन्धि
संध्या	सन्ध्या
गुंफित	गुम्फित
हिंदी	हिन्दी
जायेगा (जायगा)	जाएगा
आयी	आई
गयी	गई
हुये	हुए
गये	गए
लतायें	लताएँ
विद्यायें	विद्याएँ
विधवायें	विधवाएँ
सूचनायें	सूचनाएँ
आज्ञायें	आज्ञाएँ
आयें	आएँ
जायें	जाएँ
सोयें	सोएँ
चाहिये	चाहिए
चाहिएँ	चाहिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मोत्कर्ष का आधार—ज्ञान ३.३६

अशुद्ध शब्द	शुद्ध शब्द
ठेकादारी	ठेकेदारी
डंडावाला	डंडेवाला
आगरा से	आगरे से
बौद्ध-भिक्षुक	बौद्ध-भिक्षु
गठ-बन्धन	गाँठ-बन्धन
डाट-फटकार	डाँट-फटकार
राम को लड़का हुआ	राम के लड़का हुआ
सुमित्रा को लड़की हुई	सुमित्रा के लड़की हुई
राष्ट्रिय	राष्ट्रीय
अन्तर्राष्ट्रिय	अन्तर्राष्ट्रीय (अन्तर-राष्ट्रीय)
	अधिक अच्छा
अत्याधिक	अत्यधिक
भाष्कर	भास्कर
निरोग	नीरोग
वय वृद्ध	वयोवृद्ध
उज्वल	उज्ज्वल
स्वयम्बर	स्वयम्वर
चांद	चाँद
एकलौता	इकलौता
जहां	जहाँ
बांस	बाँस
मुंह	मुँह
इतिहासिक	ऐतिहासिक
अनुयाई	अनुयायी
घनिष्ट	घनिष्ठ
आक्रष्ट	आकृष्ट
कुटुंब	कुटुम्ब

अशुद्ध प्रयोग	सही प्रयोग
आप के आज्ञानुसार	आपकी आज्ञानुसार
अपने इच्छानुसार	अपनी इच्छानुसार
तुम्हारे इच्छानुसार	तुम्हारी इच्छानुसार
मेरी कथनानुसार	मेरे कथनानुसार
तुम्हारी वचनानुसार	तुम्हारे वचनानुसार

इन प्रयोगों के उपरान्त सामान्य चिह्नों के प्रयोग आते हैं, जिनमें बहुधा त्रुटि हो जाती है। लिखते समय लेखक को यह ध्यान में रखना होता है कि यदि इसे ज्यों का त्यों प्रेस में छपने जाना है, तो प्रूफरीडर के लिए उसे कोई भी कार्य अपनी ओर से त्रुटिपूर्ण नहीं छोड़ना है। यदि छोड़ा जाता है तो प्रूफरीडर की छोटी-सी चूक भी लेखक के लिए कलंक का विषय बन जाती है।

विराम चिह्न—वाक्यों और शब्दों का अर्थ, परस्पर सम्बन्ध, पढ़ने-लिखने, समझने की दृष्टि से विराम चिह्नों का प्रयोग बहुत आवश्यक है। इससे पाठक को समझने में सरलता रहती है। किन्तु विराम चिह्नों के उपयुक्त स्थान पर प्रयोग की विधि की जानकारी होना बहुत आवश्यक है अन्यथा अर्थ कुछ का कुछ हो जाने का भी भय है। विराम-चिह्नों का प्रयोग अँग्रेजी भाषा में अधिकतर किया जाता है। हिन्दी भाषा में भी अँग्रेजी भाषा से ही अधिकतर विराम चिह्नों को लिया गया है, अन्यथा सर्वप्रथम हिन्दी भाषा में केवल पूर्ण विराम का प्रयोग किया जाता था जो कि संस्कृत भाषा की देन है।

(१) पूर्ण विराम—वाक्य की पूर्णता प्रकट करने के लिए इनका प्रयोग किया जाता है। जो एक खड़ी लकीर (।) के रूप में प्रयुक्त है जैसे— गायत्रीमन्त्र सर्वोपरि मन्त्र है। यह भारतीय संस्कृति का बीज है।

(२) अल्प विराम—जहाँ एक वाक्य में दो या अधिक समान शब्द भेद प्रयुक्त हों, तब उन उपवाक्यों के परस्पर सम्बन्ध सूत्र में जोड़ देने के लिए अल्प विराम (,) का प्रयोग किया जाता है। जिसे 'कौमा' कहा जाता है। जैसे सुदामा, रामकृष्ण, गाँधी, सूर भिन्न-भिन्न समय में जन्मे थे। रामायण सामाजिक, नैतिक ग्रन्थ है।

(३) अर्ध विराम—अल्प विराम और पूर्ण विराम के बीच की स्थिति में अर्ध विराम (;) प्रयुक्त होता है।

(अ) जहाँ मिश्रित वाक्य, उपवाक्य, संयोजकरहित होते हैं, वहाँ अर्द्ध विराम का प्रयोग किया जाता है। जैसे—परिश्रम और ईमानदारी से कमाया गया धन ही श्रेष्ठ है; यह सभी जानते हैं।

(ब) संयुक्त वाक्यों में संयोजक शब्द न होने पर भी अर्ध विराम का प्रयोग होता है। गजाधर कल मेरठ जाएगा; वहाँ से कपड़ा लाएगा।

(स) कितनी ही बार संयोजक के प्रयुक्त होने पर भी अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने तथा संशय मिटाने के लिए भी अर्द्ध विराम का प्रयोग किया जाता है।

भास्कर और धनंजय को संगीत में रुचि है; किन्तु रामलाल और श्यामवीर को लेखन में।

(द) छोटे-छोटे उपवाक्यों के अन्त में उचित विराम के लिए अर्द्ध विराम का प्रयोग किया जाता है।

जिन्हें श्रम से प्यार है; जिन्हें समय की कीमत मालूम है; जो ईमानदार हैं; ऐसे सेवाभावी ही देश का उत्थान कर सकते हैं।

(४) प्रश्न चिन्ह—प्रश्नवाचक वाक्यों के अन्त में पूर्ण विराम के स्थान पर प्रश्न चिह्न (?) का प्रयोग किया जाता है।

राम कहाँ जा रहा है ? हरीश कब आएगा ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(५) निर्देशक चिह्न—किसी वाक्यांश अथवा पद की ओर ध्यान दिलाने, किसी विशेष अर्थ को सूचित करने के लिए निर्देशक चिह्न प्रयुक्त होता है।

राम—अयोध्या के राजा थे—कौन नहीं जानता ?

(६) विस्मयबोधक चिह्न—हर्ष, शोक, भय, विस्मय आदि भावों के प्रकटीकरण के समय इसका उपयोग किया जाता है।

अरे ! आप यहाँ कैसे आ गये? ओह !

इन बेचारों का अब क्या होगा ? बन्धु !

मुझ से अब नहीं चला जाता !

(७) संयोजक चिह्न—समान पदों को मिलाने के लिए संयोजन चिह्नों का प्रयोग होता है। (-) माता-पिता, भाई-बहिन, गुरु-चेला।

(८) कोष्ठक चिह्न—वाक्यांश अथवा पद के अर्थ बोध के लिए जैसे कोष्ठक-चिह्नों ( ) की आवश्यकता होती है।

''नगर में इन्हीं की तूती बोलती है।'' (धाक जमी होना)

''इन्हें पराजित करना टेढी खीर (कठिन कार्य) है।''

(९) उद्धरण चिह्न—जिस स्थान पर किसी उक्ति का प्रयोग अथवा किसी अंश विशेष पर ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है, वहाँ उद्धरण चिह्न का प्रयोग होता है।

राम ने कहा ''मैं नहीं खाता''

विश्वामित्र ''गायत्री मन्त्र'' में पूर्ण आस्था रखते थे।

(१०) लाघव चिह्न—किसी शब्द का प्रथम अक्षर लिखकर उसके आगे शून्य लगा दिया जाता है और पढ़ते समय उसे पूरा उच्चारण करके बोला जाता है।

जैसे बी० ए० = बैचलर ऑफ आर्टस्

पं० = पंडित, प्रो० = प्रोफेसर, डॉ०—डॉक्टर

चि० = चिरंजीव, महो० = महोदय

(११) विवरण चिह्न—यह विवरण (:) के लिए प्रयुक्त होता है।

(१२) लोप चिह्न—बीच में वाक्य खण्डित होने की दशा में अथवा बीच में उद्धरण छोड़कर लिखने पर (· · · · ·) लोप चिह्न का प्रयोग किया जाता है।

हमें उन्हें बहुत चतुर समझते थे किन्तु वे ..... निकले कि सारा काम चौपट कर दिया।

(१३) त्रुटि चिह्न—लिखते समय किसी शब्द अथवा वाक्यांश के छूट जाने पर (^) इस त्रुटि चिह्न का प्रयोग कर पुनः वह शब्द पंक्ति के ऊपर लिख दिया जाता है जैसे 'राम, श्याम' नीरज ^ तीनों पास हो गये।'

यह बात ध्यान रखना चाहिए कि भाषा-संरचना में अक्षरों के मेल से शब्द बनता है। सार्थक ध्वनियों के समूह को ही अक्षर कहते हैं। जिनसे कोई अर्थ नहीं निकलता ऐसे ध्वनियों के समूह शब्द नहीं कहे जा सकते। प्रत्येक शब्द किसी विशिष्ट विचार अथवा भाव का द्योतक होता है। अनेक शब्दों के मेल से जो वाक्य बनता है वह अपनी बात न होने की क्षमता रखता है। उपयुक्त शब्दों के चयन तथा निश्चित क्रम में गुंथन से ही वाक्य अभीष्ट प्रकार के भाव या विचार व्यक्त करने में सफल होते हैं। अतएव विचार अथवा भावाभिव्यक्ति को स्पष्ट, प्रभावशाली और सार्थक बनाने के लिए शब्दों की शुद्धता तथा वाक्य में उनके प्रयोग के नियमों का ज्ञान होना आवश्यक है। जो शास्त्र इन सारे प्रश्नों की विवेचना करता हो उसे व्याकरण कहते हैं। व्याकरण उन नियमों और सिद्धान्तों का विवेचन करता है, जो भाषा को शुद्ध लिखने और बोलने योग्य बनाते हैं।

वाक्य भाषा की अभिव्यक्ति का साधन है। वह एक शब्द से लेकर कई पृष्ठों तक का हो सकता है, किन्तु वही वाक्य सार्थक और सुन्दर माना जाता है, जिसमें स्पष्टता एवं सरलता के गुण विद्यमान हों। जो विचारों और भावों को अधिक सुगमतापूर्वक व्यक्त करता हो। प्रायः लम्बे वाक्य में भाव क्लिष्ट हो जाते हैं। अतः छोटे वाक्यों का प्रयोग अधिक अच्छा माना जाता है।

अर्थ की दृष्टि से वाक्य के आठ प्रकार माने गये हैं— (१) आज्ञावाचक, (२) प्रश्नवाचक, (३) विधिवाचक, (४) संदेहवाचक, (५) विस्मयवाचक, (६) संकेतवाचक (७) इच्छावाचक, (८) निषेधवाचक।

जिनसे किसी प्रकार की आज्ञा का बोध हो, उन्हें आज्ञावाचक वाक्य कहते हैं।

जो वाक्य प्रश्न पूछे जाने का बोध कराते हैं, उन्हें प्रश्नवाचक वाक्य कहते हैं।

जिनसे किसी बात के होने की जानकारी मिले, उन्हें विधिवाचक वाक्य कहते हैं।

जिनसे किसी बात का संदेह प्रकट हो, उन्हें संदेहवाचक वाक्य कहते हैं।

जो आश्चर्य सुख या दुःख का बोध कराते हैं, वे विस्मयवाचक वाक्य होते हैं।

जिनसे किसी शर्त का बोध हो, वे संकेतवाचक वाक्य कहलाते हैं।

जो किसी प्रकार की इच्छा अथवा कामना को व्यक्त करते हैं, वे इच्छावाचक वाक्य होते हैं।

जिनसे किसी बात के न होने का बोध हो वे निषेधवाचक होते हैं।

यह जानकारी दीखने में सामान्य होते हुए भी जानना अनिवार्य है क्योंकि त्रुटियाँ बड़े-बड़े लेखकों से भी होती हैं। जब दिशा ही देनी है तो कम से कम वह विवेचन त्रुटिरहित तो हो।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भाषा वस्तुतः शब्दों द्वारा ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसकी सहायता से मनुष्य अपने विचार एवं भाव दूसरों पर व्यक्त करता है। भाषा में प्रयोग हुए शब्द विविध भावों, विचारों तथा वस्तुओं के प्रतीक होते हैं। शब्दोच्चार के साथ उन चीजों, भावों, क्रियाओं अथवा प्राणियों का बोध तुरन्त हो जाता है। उदाहरणार्थ कुत्ता, पुस्तक, कागज, सुन्दर, कुरूप आदि शब्द एक निश्चित स्वरूप का बोध कराते हैं। ये शब्द ही विभिन्न वस्तुओं, भावों या क्रियाओं के ध्वनि प्रतीक हैं। भाषा इन्हीं ध्वनि प्रतीकों की सुव्यवस्था है। इस व्यवस्था के कारण ही पाठक कही हुई अथवा व्यक्त की गई बात को ठीक-ठीक समझता है।

शब्द प्रयोग, वाक्य-विन्यास, संरचना का विस्तार तो यहाँ नहीं दिया जा सकता, कुछ सामान्य उदाहरणों से त्रुटि कहाँ व कैसे होती है, यह अवश्य समझाने का प्रयास किया गया है। विस्तार तो प्रत्यक्ष में ही सामने बैठकर बताना उपयुक्त है। जो स्वयं पढ़ना चाहें वे 'अच्छी हिन्दी,' 'हिन्दी शब्दानुशासन,' 'शब्द रचना', 'हिन्दी व्याकरण' सम्बन्धी पुस्तकें देखकर अपनी त्रुटि स्वयं समझकर भाषा ठीक कर सकते हैं।

प्रत्येक शोधार्थी को अपनी शिक्षा, डिग्री का इतिहास भूलकर स्वयं को एक छात्र मानना चाहिए। ऐसी मनःस्थिति बन पड़ने पर ही शोध-लेखन का सही शिक्षण आरम्भ होता है। हिन्दी लेखन भी, सब विधाओं से अलग एक निराली कला है। इसमें निष्णात होना हर छात्र को युग धर्म समझना चाहिए।

लेखन कला का प्रयोजन—हमारे लिखने की क्यों आवश्यकता है ? कोकिल से प्रश्न कीजिये कि वह क्यों कूँकती है ? भँवरे से पूछिये कि वह क्यों गुंजार किया करता है ? मोर से पूछिये वह काले बादलों को देख क्यों नृत्य कर उठता है ? जो इनका उत्तर होगा, उक्त प्रश्न के लिये वही मेरा भी उत्तर है। जो तीव्र अनुभूति से सम्पन्न है, विचारशील और प्रकाशनशील है, संसार में होने वाले कश्मकश, दलितों की आर्त्तनाद, रोते हुओं की पुकार जिसके भावुक हृदय से टकराकर मनोजगत में दुर्दमनीय उत्तेजना उत्पन्न करती है, वह सहृदय भावुक कैसे चुप रह सकता है ? अपनी विवेक शक्ति, विचास्धारा एवं अनुभूति की प्रबलता के अनुसार वह अपने मन्तव्यों के लिये मर मिटने को प्रस्तुत हो जाता है। वह अन्तःप्रेरणा का दमन नहीं कर पाता। बस, साहित्य का सृजन प्रारम्भ हो उठता है।

लेखन के प्रयोजन के विषय में विभिन्न सम्प्रदाय चल पड़े हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार कला जीवन के लिए है, कुछ उसे जीवन की वास्तविकता से मुक्ति का एक उपाय मानते हैं, कुछ नीरस व्यवहार में से छूटकर जीवन के आनन्द में प्रवेश करने के लिए कला की उपयोगिता मानते हैं। कदाचित सर्वोत्तम मत यह है कि सृजन की अदम्यवृत्ति को तृप्त करने के लिए ही कला की सृष्टि होती है। मनुष्य-अभिव्यक्ति के आवेश को रोक नहीं सकता प्रत्युक्त अपने आन्तरिक भावों और विचारों को अपने तक सीमित न रखकर दूसरों पर जाहिर करने को आतुर हो उठता है। इस तरह कला स्वतः ही प्रस्फुटित होती है। इस अभिव्यक्ति से हमारे व्यक्तित्व का विकास होता है और हमें लोकोत्तर आनन्द उपलब्ध होता है। वस्तुतः रसकोविदों ने इस आनन्द को ब्रह्मानन्द का सहोदर माना है।

लेखनी तलवार से अधिक शक्तिशाली है—महापुरुष दो ही तरह अपने विचारों को व्यक्त करते हैं—(१) लेखनी द्वारा (२) वाणी द्वारा। वाणी द्वारा व्यक्त विचार क्षणस्थाई होते हैं। अतः उन्हें चिरस्थाई करने के लिए लेखबद्ध किया जाता है। विचार लेखबद्ध होकर दूर-दूर तक जा सकते हैं और संसार के सोते हुए कानों में पहुँचकर जागरण की प्रेरणा उत्पन्न कर सकते हैं। यदि आपने देश सेवा, समाज सुधार, राष्ट्रीय आन्दोलन का बीड़ा उठाया है, यदि आप भूले हुए मनुष्यों को पुनः उचित राह पर लाना चाहते हैं, निर्धनों, पतितों, समाजच्युत, दुःखियों की सहायता करना चाहते हैं, तो आपको लेखक बनाना चाहिए, लेखनी राजसत्ता को हिला सकती है।

अब सवाल है कि यदि हम कुछ न लिखकर चुप हो जायें तो क्या हानि है ? इस प्रश्न का उत्तर श्री भारतीय जी के शब्दों में हम इस तरह देंगे—"यह सवाल उनके लिए नहीं है, जो किसी बात का अनुभव नहीं करते अथवा किसी के प्रति राग या द्वेष का भाव जिनके मन में नहीं होता, परन्तु जो अनुभूति शक्ति सम्पन्न है, विचारशील है, सोचते, समझते हैं, जिन्हें संसार में न्याय तथा अन्याय, पाप और पुण्य, धर्म-अधर्म, सुखी और दुःखी, पीड़क और पीड़ित, सबल और दुर्बल, शासक और शासित का भेदभाव समझ में आता है, वे यदि अपने विचारों को न प्रकट करें तो फिर क्या करेंगे ? क्या ऐसा व्यक्ति चुप रह सकता है ? विश्वास रखिये, वह चुप नहीं रहेगा। अपनी विवेक शक्ति तथा विचारधारा की प्रबलता के अनुसार ही वह मर मिटने को तैयार हो जायगा परन्तु वह चुप नहीं रह सकता। आत्मा की प्रेरणा के विरुद्ध क्या कोई आचरण करने की क्षमता रख सकता है। यदि अपने विचारों को लोग दबा सकते, तो आज हम किसे कृष्ण, किसे गौतम, किसे बुद्ध, शंकर, दयानन्द, गाँधी कहकर पुकारते ?

लेखन व्यवसाय के रूप में—लेखन एक उत्तम व्यवसाय भी है। लेखकों की आय आश्चर्य में डालने वाली होती है। लन्दन के प्रसिद्ध पत्र (टाइम्स) के सम्पादक की मासिक आय ब्रिटिश साम्राज्य के प्रधान मन्त्री से कम नहीं होती। अँग्रेजी के साधारण पत्रों में मामूली लेखकों को प्रति हजार शब्दों के लिए ४० से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

६० रुपये तक आसानी से पैदा हो जाते हैं। अक्सर तीन पृष्ठ की साधारण रचना का पारिश्रमिक दस गिन्नी होता है। मशहूर लेखकों को हजार से लेकर छह हजार रुपये तक प्रतिकालम मिल जाता है। आपने एच० जी० वेल्स का नाम सुना होगा। आपको हर हजार शब्द पर ५०० रुपये पैदा होते हैं। बर्नार्डशा को शायद सबसे अधिक पैदा हो जाता है। अब तो पारिश्रमिक की दर और भी वृद्धि पर है। पुस्तकों, समाचार-पत्रों, प्रकाशकों की संख्या दिन-प्रतिदिन अभिवृद्धि पर है। अत: दो-ढाई रुपये प्रति शब्द मिलना तो साधारण-सी बात हो गई है। जौनगाल्सवर्दी की एक कहानी अधिक से अधिक पाँच-छह सफे की डेढ हजार रुपये से कम पर नहीं ली जा सकती। कहते हैं कि किपलिंग तो उससे भी छोटी कहानी के लिए पाँच-छह हजार पा लेते थे। नए साहित्यिकों को इससे कुछ कम प्राप्त होता है। पर एक-एक कहानी के लिए एक-एक हजार प्राप्त कर लेना साधारण-सी बात है। बर्नार्डशा की चिट्ठी भी हजार से कम में नहीं बिकती।

अच्छे लेखक फिल्मों में कहानी, कथोपकथन, गीत सिनिरियो लिखने के लिए ले लिए जाते हैं। वहाँ इनका वेतन बहुत अधिक होता है। लेखन एक सुख तथा आराम का पेशा है। वाल्टर स्कौट ने कितना अधिक कमाया था। ब्रिटिश साम्राज्य के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री श्रीयुत लायडजौर्ज ने केवल चार वर्षों में पुस्तकों तथा लेखों से उसकी चौगुनी रकम प्राप्त की थी, जितनी सत्तरह वर्षों के मंत्रित्व से उन्हें प्राप्त नहीं हुई थी। आपको पत्रों, पुस्तकों, लेखों से दैनिक आमदनी प्राय: ५००० रु. होती थी। 'अर्नीज येङ्' के युवक लेखक शिरिफ को केवल कुछ पन्नों के चौदह लाख रुपये प्राप्त हुए थे। कितना गिनाएँ ? यह पेशा और सब पेशों का सिरमौर है। लेखन-कला सर्वोत्कृष्ट है और लेखन व्यवसाय है बड़ा ठोस तथा सुनिश्चित। इस क्षेत्र में जिसके माल की खपत है, वह आजकल शाही जीवन व्यतीत करता है। इस समय इंग्लैण्ड में एक दर्जन ऐसे लेखक मौजूद हैं, जिनकी वार्षिक आय दस हजार पौण्ड (डेढ़ लाख रुपये) है, बीसों ऐसे हैं जिनकी पाँच हजार पौंड है और एक हजार कमाने वाले तो ढेरों हैं।

'कला' कला के लिए—लेखन एक उत्तम मनोरंजन का साधन है। जब आप अन्य कार्यों से ऊब उठें और जी न लगे, तब अपनी लेखनी और क़ागज लेकर बैठिये, कुछ लिखिए— लेख, कहानी, कविता ज्यों-ज्यों लिखेंगे अन्त:करण का भार हल्का होता जायगा और एक प्रकार का अलौकिक सुख उपलब्ध होगा। शोपेनहर कहते हैं कि अपने प्रिय विषय के ऊपर जब एक मनुष्य न लिखले, तब तक उसके लिए लिखने जैसा कोई अन्य उत्तम कार्य नहीं होता। अच्छे-अच्छे लेखकों की कृतियाँ स्वान्त: सुखाय ही लिखी गई हैं। कला-कला के लिए ही विनिर्मित होती है। कलाकार को कला के निर्माण में सुख मिलता है, वस्तुत: वह सत्यं शिवं सुन्दरम् से ओत-प्रोत रचनात्मक कार्य करता है। कला का उपहार 'कला' ही है। श्री रोमांरोलां के विचार इस विषय पर बड़े सुन्दर हैं। आप कहते हैं, "मैं क्यों लिखता हूँ क्योंकि मैं बिना लिखे रह ही नहीं सकता, यदि मैं कागज पर न भी लिखता, तो भी लिखित विषयों को स्पष्ट समझने के लिए मस्तिष्क तथा भावना में लिखता रहता, क्योंकि लिखना मेरे लिए विचार और कार्य करने का सर्वोत्तम ढंग है, क्योंकि लेखन मेरे लिए श्वास-प्रश्वास है, जीवन है।" रचना करना शरीर के काराग्रह से उन्मुक्त होना है, जीवन की आँधी पर चढ़कर आकाश में उड़ना है। मृत्यु के ऊपर विजय प्राप्त करना है। लेखबद्ध किये जाने पर विचार नीहार की भाँति अस्पष्ट एवं धूमिल तो रहते हैं किन्तु लेखन-कला में दीक्षा प्राप्तकर मनुष्य व्यवहार कुशल, प्रतिभावान एवं अध्ययनशील बन जाता है और वह आनन्दमय जीवन व्यतीत कर सकता है। पूर्णत: शिक्षित कहलाने के लिए लेखन-कला का ज्ञान वांछनीय है।

लेखक के गुण—लेखक में किन-किन तत्त्वों का होना आवश्यक है ? सर्वप्रथम तो लेखक के हृदय में ऊँचा लेखक बनने की महत्त्वाकांक्षा चाहिए। 'मुझे सब प्रकार के कष्ट सहन कर चाहे कुछ हो जाय अवश्य लेखक बनना है; ऐसा दृढ़ विश्वास जिसके हृदय में हो, वह लेखक बनने के लिए सब तरह की मुसीबतों का सामना करने को तैयार हो, मार्ग में आने वाली समस्त कठिनाइयों को सहन करता रहे। लेखक बनना काँटों का ताज पहनना है। रुपया पैसे का लालच न करना होगा। सम्भव है कि सबसे पहले आप को कुछ भी न मिला हो। बड़े-बड़े लेखकों को अपनी आरम्भिक कृतियों के लिए बहुत कम मिला है। तुलसी, सूर, मीरा आदि अनेकों महा लेखकों की कृतियाँ स्वान्त: सुखाय ही लिखी गई थीं। उन्हें रुपये पैसे का लोभ न था, दूसरों की आलोचना, टीका टिप्पणी, छिद्रान्वेषण इत्यादि का भी भय न था। जिस तरह जुगनू का कार्य उजाला फैलाना है, या पुष्प का सुगंध वितरण करना है, उसी तरह नि:स्वार्थ भाव से स्वान्तः सुखाय वे लिखते रहे और अंत में महा लेखक बने।

अपना लक्ष्य निर्धारित कीजिये। आप स्वार्थ के लिए लेखनी उठा रहे हैं अथवा परमार्थ के निमित्त। आधुनिक युग में सैकड़ों लेखक बनने वाले व्यक्ति बिना उद्देश्य के चुहलबाजी, अटरम-सटरम जो मन आया लिख-लिखाकर लेखक बनना चाहते है, वस्तुत: उनका परिश्रम देश तथा समाज की दृष्टि से कोई चिरस्थाई प्रभाव उत्पन्न नहीं करता। हर एक युवक का जो इस क्षेत्र में पदार्पण करना चाहता है, यह लक्ष्य है कि वह मध्यस्थ होकर पाठकों की प्रवृत्तियों का सुसंचालन करे, उनकी आन्तरिक महानताओं का विस्तृत विकास करे तथा उनके जीवन को सुसंस्कृत कर उन्हें कलापूर्ण बनावे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तीसरा तत्त्व मौलिकता है। हर एक व्यक्ति का स्वतन्त्र व्यक्तित्व होता है। शैली उस व्यक्तित्व को जाहिर करती है। हमें अपनी मौलिकता से ही सहायता लेनी चाहिए। उसी का विकास करना चाहिए, स्वयं अपने मनोद्देश्यों, दृष्टिकोणों, भावनाओं को ही व्यक्त करना, अपने अन्तःकरण के गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन करना, अपनी आँखों स्वयं देखना, तौलना, पचाना और फिर अपने शब्दों में ही निज भावनाओं को प्रकट करना चाहिए। आपमें इतनी शक्ति होनी चाहिए कि स्वयं निरीक्षण कर सकें, स्वतन्त्र रूप से मनन, चिन्तन तथा प्रकटीकरण कर सकें। दूसरों के कन्धों पर सवार होकर कार्य न चलेगा। प्रत्युत स्वयं अपने पाँवों पर स्वतन्त्र सत्ता निर्धारित करनी होगी। आपका व्यक्तित्व ही सबसे अधिक शक्तिशाली है। आपका हृदय जितना विशाल होगा, उतनी ही सहृदयता होगी, उतने ही भाव सबल, सुन्दर, शिव और सत्य होंगे। लेखक में तीव्र भावुकता चाहिए। वह सबके लिए भावों, सहानुभूति, मनोवेगों से भरा-पूरा रहे। कला का प्राण है—भावना, संवेदन। वेदनाहीन व्यक्ति कैसे लेखक बन सकता है? सौन्दर्य का प्राण संवेदन है, भावना है। यही गुण कला को—सजीव तथा हृदयस्पर्शी बनाता है। एक ओर तीव्र भावुकता हो, दूसरे के भावों का अनुभव करने की शक्ति हो, तो दूसरी ओर उसका प्रत्यक्षीकरण भी सजीव होना चाहिए। शेक्सपीयर की अभिव्यंजना शक्ति को देखिए। उसके नाटकों को पढ़ते समय आत्मविस्मृति कर बैठते हैं और उसके काल्पनिक नायक, नायिकाओं, पात्र से सामंजस्य स्थापित कर लेते हैं। हम उन्हें काल्पनिक जगत में सजीव मूर्तिमान देखने लगते है।

लेखक में कल्पनाशक्ति जितनी पुष्ट होगी, उतना ही उत्तम है। अनुभूति और कल्पना ये दो तत्त्व प्रत्येक बड़े लेखक में अत्यन्त विकसित होते हैं, कविता में सबसे अधिक तत्त्वों की ही प्रधानता रहती है, विवेचनात्मक लेखों में गम्भीर चिन्तन एवं गूढ़ विचारों की। यदि लेखक की विचारधारा सुलझी हुई न हुई तो उसके वर्णन, उसका विवेचन, प्रत्यक्षीकरण, व्यंग, पात्र, निर्जीव, निष्क्रिय तथा धुँधले होंगे। लेखक को कलापूर्ण होना अनिवार्य है। कलाविद की कल्पना का ही उच्चतम शिखर मौलिकता है। कलाकार के जीवन का उद्देश्य सौन्दर्यान्वेषण है। उसे संसार के नीरस से नीरस पदार्थ में सौन्दर्य खोजने की आवश्यकता है। लेखक की महत्ता यही है कि उसमें जो सुन्दर है, शिव है, सत्य है जो उसमें उत्कृष्ट और विराट है, उसे वह देश, समाज तथा विश्व के लिए दे जाय। रविबाबू के गीतों में जो सुकुमार भावनाएँ व्यक्त की गई हैं, हृदय की जो टीस है, जो आदर्श और स्वप्न हैं, वे कवि की सर्वोत्कृष्ट भावनाएँ हैं। वे अपने आदर्शों के प्रति खरे हैं, उनका चित्र, कला की कसौटी पर पूरा उतरता है, वस्तुतः वे पूज्यनीय हैं। यह तत्त्व प्रत्येक लेखक बनने वाले को हृदय-पटल पर अंकित कर लेना चाहिए। आप में जो सबसे उत्तम है, जिससे समाज का कल्याण हो सकता है, वही पाठकों को दीजिए। साहित्य वही है, जो हमारी विवेक शक्ति को जाग्रत कर सदैव उन्हें सन्मार्ग की ओर अग्रसर करें, जनसाधारण की उच्च दैविक मनोवृत्तियों का विकास करे उसे शुद्ध, सात्विकता का अनुभव करा दे। एक उच्च लेखक सदैव हृदय में उदार, रमणीय विचारों तथा भावों का उदय तथा संचार करता है और सत्यम्, शिवम् तथा सुन्दरम् की ओर सदैव उसे संलग्न रखता है। उसकी कृतियाँ मनुष्य को मनुष्यता के स्वर से ऊँचा उठाकर देवत्व की उच्च भूमिका के लिए उत्साहित करती हैं। श्री रामचन्द्रजी को मूर्त रूप में तैयार करने में कवि गुरु तुलसीदास ने अपनी पवित्रतम भावनाएँ, उच्चतम आदर्श और श्रेष्ठतम विचारों का दान दिया है। तुलसी में जो सर्वोत्कृष्ट है वही 'राम' है। आप में जो सर्वोत्कृष्ट है, जो सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् है वही पाठकों को दीजिए।

आप लेखक बनकर प्रसिद्धि प्राप्त कर सकते हैं

संसार में ज्ञान, विज्ञान, कला ही अमर है। इस समाज में से असंख्य व्यक्ति कीट-पतंगों की तरह प्रतिदिन जन्म लेते और मरते हैं। उन्हें कौन याद रखता है ?

विश्व में अनगिनत मनुष्य हैं, उन सब को स्मरण रखना भी सम्भव नहीं। लेखक अपनी पुस्तकों के बल पर अमर होते हैं। दूर-दूर पहुँचते हैं। अपने देश की सीमा को लाँघकर संसार में व्याप्त हो जाते हैं। विश्व में सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं, लेखन ही स्थाई प्रसिद्धि उपाय है।

लेखन से प्रसिद्धि—किसी भी देश का इतिहास देख डालिए। उसमें बड़े राजाओं, सेना-नायकों अथवा राजनीतिज्ञों को सम्भवतः लोग भूल जायें, किन्तु बड़े लेखक सदा-सर्वदा प्रसिद्ध बने रहते हैं। काल के कुटिल प्रवाह का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

लेखक के प्रत्येक विचार और शब्द में रूढ़िवादी वर्ग में परिवर्तन करने और सोये हुए समाज को उठाने की शक्ति है। फ्रांसीसी लेखक रूसो और वाल्टेयर के साहित्य ने क्रान्ति उत्पन्न की थी। महाकवि भूषण ने शौर्य की भावनाएँ भरकर राष्ट्र को उठाया था। तुलसी, सूर, मीरा, नानक, रहीम, 'प्रसाद' ने अपने काव्य से समाज में नई नैतिक चेतना फूँकी थी। वे साहित्यिक विभूतियाँ सदा के लिए अमर हो गये।

लेखन-शक्ति यकायक प्रस्फुटित होती है—यह नहीं कहा जा सकता कि कोई व्यक्ति कल लेखक बन जायगा। जैसे धरती में से यकायक मीठे जल का गुप्त स्रोत फूट निकलता है, वैसे ही प्रत्येक बार यकायक लेखक की छिपी हुई सृजनात्मक शक्ति प्रकट हो जाती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महाकवि वाल्मीकि डाकू से अमर लेखक बने। महाकवि तुलसीदास कामुक प्रवृत्ति के थे। पत्नी से प्रताड़ित होकर प्रतिक्रियास्वरूप लेखक के रूप में विकसित हो गये।

कविवर सूरदास को एक सुन्दरी से तिरस्कार मिला। प्रायश्चित रूप में उन्होंने नेत्र फोड़ डाले और एक महाकवि के रूप में विकसित हुए। राजरानी मीराबाई महलों में रहते-रहते एक दिन उच्चकोटि की कवयित्री बन गईं। उन्हें क्या पता था कि वे एक दिन अमर लेखिका बन जायेंगी। कविवर कबीर एक जुलाहे थे। उन्हें क्या पता था कि वे कभी दार्शनिक कवि बन सकते हैं लेखक बनने के लिए ज्ञान की, न कॉलेज की, उच्च शिक्षा की और न किसी ट्रेनिंग की आवश्यकता है। लेखन शक्ति तो यकायक ज्वालामुखी की तरह फूट निकलती है। सम्भव है, यह आप में भी छिपी हो।

इसी प्रकार के असंख्य उदाहरण मिलते हैं। जर्मनी का एक उदाहरण है—

मुजरिम से लेखक—जर्मनी के जाइगेर का नाम शायद आपने सुना है। १२ वर्ष का कठोर कारावास उसे भुगतना पड़ा था।

उसे कोई मुनासिब रोजगार नहीं मिला था, विवश होकर एक बड़ी बदनाम कम्पनी में मोटर ड्राइवर का काम उसे मिला। बदनाम स्थान पर रहने से अच्छा भी आदमी बदनाम हो जाता है। इस बदनाम कम्पनी में उस पर इल्जाम लगा और उसे पहली बार सजा हुई।

वहाँ से छूटने पर उसे रोजगार मिलना और भी कठिन हो गया। विवश होकर जाइगेर ने एक डाकू दल कायम किया, जिसने दो वर्ष में ५० से अधिक चोरियाँ कीं। वह फिर पकड़ा गया और जेलखाने के सींखचों में डाल दिया। उसमें लेखन शक्ति छिपी थी। जेल में निकम्मा अपराधी लिखने लगा। छिपकर लेखन का अभ्यास करता रहा और अच्छी सुविधा न मिलने से साबुन के कागज पर ही लिखता रहा। उसने गद्य के दो हजार पृष्ठों में अपनी प्रारम्भिक रचनाएँ की थीं। जाइगेर ने जेल के पादरी से एक दिन अपने मन की बात कही, क्योंकि वह अपनी साहित्यिक प्रवृत्ति के लिए प्रसिद्ध था। पादरी ने जाइगेर के लिए लिखने के लिए सरकारी स्वीकृति प्राप्त कर ली। तब तो उसे लिखने की सुविधा मिली तथा १९६१ में जाइगेर ने अपने सहायक को 'दी फोस्ट्रेस' नामक उपन्यास की पाण्डुलिपि सौंप दी। पादरी ने इस उपन्यास की पाण्डुलिपि को पश्चिमी जर्मनी के एक प्रमुख प्रकाशक के पास छपने भेज दिया। इस उपन्यास ने जाइगेर को लेखक बना दिया। सबने उसे एक साहित्यिक कृति के रूप में स्वीकार किया। बाद में उसकी पुस्तकें सर्वाधिक बिकीं।

तनिक सोचकर देखिए कहाँ एक मुजरिम, कहाँ एक लेखक ! और वह भी मामूली लेखक नहीं, एक लोकप्रिय और प्रसिद्ध लेखक !

उसकी कृतियाँ अँग्रेजी, स्वीडिश, डेनिश और अनेक उच्च भाषाओं में निकल चुकी हैं। 'दी फोस्ट्रेस' उपन्यास का फिल्म तैयार हो रहा है।

लेखन-कला ईश्वर की दी हुई एक शक्ति है, जो आप में निश्चयपूर्वक छिपी हुई है। एक बार की बात है—

लेखक ही नहीं, सफल लेखक—एक प्रोफेसर अपने एक शिष्य की लिखी हुई एक कापी पढ़ रहे थे। उन्हें लगा कि विद्यार्थी में लेखन की क्षमता है। उन्होंने विद्यार्थी को बुलाया और उससे कहा—

"देखो, सिंक्लेयर लुई, तुम यदि चाहो, तो लेखक बन सकते हो ?"

"क्या मैं लेखक बन सकता हूँ ?" विद्यार्थी ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ, हाँ, अवश्य। तुम लेखक ही नहीं, एक सफल लेखक बन सकते हो। तुम में लेखन शक्ति छिपी हुई है।"

विद्यार्थी आश्चर्य में डूबा हुआ था। उसकी आन्तरिक इच्छा थी कि लेखक के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त करे, पर कोई उसे थपकी देकर आगे बढ़ाने वाला न था। पहली बार उसे प्रोत्साहन मिल रहा था।

फिर तो सिंक्लेयर लुई को लेखन की धुन लग गई। वह बड़े ध्यान से बड़े लेखकों के विचार, भाषा और शैली पर ध्यान देने लगे।

एक दिन क्लास में यह चर्चा छिड़ गई कि पढ़ने के उपरान्त कौन क्या बनेगा ?

लुई ने अपने प्रोफेसर से दृढ़तापूर्वक कहा—"पढ़ाई के बाद मैं तो लेखक बनूँगा।"

प्रोफेसर ने उसकी इच्छाशक्ति को फिर झकझोरा। कहाँ तक दृढ़ता है इस विद्यार्थी में ? यह बात निश्चय करने के लिए उन्होंने कहा—

"ठीक है तुम लेखक बनो, पर यह समझ लो कि तुम्हें हमेशा तंगी में रहना पड़ेगा। जिन्दगी भर की गरीबी क्या तुम्हें लेखन की खातिर मंजूर है ?"

तमककर लुई ने उत्तर दिया, "मुझे लेखक के रूप में प्रसिद्धि चाहिए, चाहे वह भूखे रहकर ही मिले। मैं एक टाइम भोजन खाकर जिन्दा रह सकता हूँ, किन्तु लेखक अवश्य बनूँगा। कोई मुझे मेरे निश्चय से नहीं हटा सकता।

वह परीक्षा में खरा उतरा था। प्रसन्न होकर उसके अध्यापक ने आशीर्वाद दिया, "सिंक्लेयर लुई तुम लेखक ही नहीं, एक अमर लेखक बनोगे। जिस व्यक्ति में इतना दृढ़ निश्चय और अपने लक्ष्य के लिए कष्ट-सहिष्णुता है, वह अवश्य ही लेखक बनेगा।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और सचमुच ही सिंक्लेयर एक सशक्त लेखक बना आप भी लेखक बन सकते हैं। जरा, कोशिश करके देखिए।

कालीदास अपनी पत्नी के द्वारा बुरी तरह तिरस्कृत हुए थे, पर इस मानसिक झटके ने उनकी गुप्त प्रतिभा की धारा को यकायक खोल दिया। वे सांसारिकता से हटकर काव्य के रूप में विकसित हो गये।

उन्हें क्या पता था कि साहित्य का इतना अनन्त भण्डार उनके मस्तिष्क में छिपा हुआ है ?

गड़रिये से प्रसिद्ध लेखक—यह चरागाह पर भेड़ें कौन चरा रहा है ?

"यह हमेशा बीमार रहने वाला 'ओ' हेनरी है; डाक्टरों को भय है कि कहीं इसे तपेदिक न हो जाय। इसलिए उसे शहर से हटाकर टेक्सान नामक स्थान पर भेज दिया गया है। यहाँ यह चरागाहों पर भेड़ें चराता और उसी से अपनी जीविका उपार्जन करता है ?"

'ओ' हेनरी वहीं भेड़ें चराता रहा। धीरे-धीरे उसकी दिलचस्पी लेखन की ओर बढ़ी। वह अपने मामूली ज्ञान से ही धीरे-धीरे लिखने लगा। पहले उसका लेखन बड़ा अधकचरा था लेकिन वह निरन्तर लिखता रहा। अपने कार्य में पूर्ण मनोयोगपूर्वक लगातार लगा रहा। 'ओ' हेनरी के स्वास्थ्य में कुछ सुधार हो गया। भाग्य से उसे बैंक में खजान्ची की जगह भी मिल गई लेकिन वह स्वभाव से बड़ा नर्म था। गाँव वाले बहुधा उस बैंक में आया करते थे और क्लर्कों को व्यस्त देखकर उल्टी-सीधी रसीदें देकर रुपये ले जाते थे। बैंक में जब हिसाब की जाँच हुई तो रुपये कम पड़े। सजा के रूप में उसे जेल जाना पड़ा। यह कारावास उसके लेखक बनने में वरदान हो गया। विवश होकर यहाँ उसे जमकर लिखने का अवसर मिला। उसने अनेक प्रसिद्ध कहानियाँ इसी कारावास में लिखी थीं।

सोचकर देखिए, कैसे इस गड़रिये में महान लेखन शक्ति छिपी हुई थी। सच मानिये आप में भी यह शक्ति छिपी हुई है। आप निश्चय ही एक लेखक बन सकते हैं। केवल मजबूत इरादे की आवश्यकता है। यह मजबूत इरादा क्या है?

यह वह दृढ़ संकल्प है, जो निराशाओं और असफलताओं के बावजूद कभी पस्त हिम्मत नहीं होता। तिरस्कार और उपेक्षा से नहीं डरता। जिस लेखक में यह अडिग संकल्प है, वह अपनी रचना को एक बार नहीं, बार-बार सुन्दरता से लिखता है, खूब निखारता है और उपेक्षा के आगे नहीं झुकता है।

इस अग्नि परीक्षा में उत्तीर्ण हों—यह उपेक्षा और तिरस्कार उसके लिए अग्नि परीक्षा है। उसका सख्त इम्तहान है। यदि वह अपनी साधना में दृढ़तापूर्वक डटा रहा तथा निरन्तर अच्छा लिखने की कोशिश करता रहा, तो एक दिन सफल लेखक बनकर रहेगा। दृढ़ संकल्प ही लेखक के जीवन में साहस, धैर्य और विघ्न-बाधाओं को परास्त करने की शक्ति देता है।

उदाहरण के लिए अँग्रेजी के सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ० जानसन को ही ले लीजिए। उनका प्रारम्भिक जीवन बड़ी उग्र आर्थिक कठिनाइयों में होकर गुजरा था। वे साहित्यकारों के सिरमौर होकर भी लन्दन की सबसे अस्वस्थ गली में, छोटे से मकान में मैले-कुचैले ढंग से रहते थे। कितने ही दिन उन्हें भूखे रहकर गुजारने पड़े थे। कण्ठमाला के रोग ने उन्हें बुरी तरह कुरूप बना दिया था। लोग उनकी कुरूपता के कारण उन्हें 'कैलीवान' (जंगली जानवर) कहकर चिड़ाया करते थे। वह अपनी आदतों में भी सनकी थे। जब वे बातचीत करते थे, तो उनका चेहरा बुरी तरह विकृत हो जाता था। इन तमाम विकृतियों के बावजूद भी डॉ० जानसन ने अपनी साहित्य साधना न छोड़ी। वे गरीबी में भी अपनी प्रसिद्ध 'डिक्सनरी' लिखते रहे। अपने अथक परिश्रम से उन्होंने अंग्रेजी का सबसे पहला शब्दकोष तैयार किया था। गरीबी, निराशा, उपेक्षा, तिरस्कार, कुरूपता इत्यादि किसी की भी परवाह न कर निरन्तर आगे बढ़े और आलोचना साहित्य में अद्वितीय स्थान प्राप्त किया। वे गिरे नहीं, चलते ही रहे। अन्त में अमर लेखक बने।

आप अवश्य लेखक बन सकते हैं, यदि आप में लेखक बनने की तीव्र इच्छा और दृढ़ संकल्प है।

लेखक के गुण

किन गुणों से एक शिक्षित व्यक्ति लेखक बनता है ?

शिक्षा और स्कूली योग्यता की अपेक्षा कुछ ऐसे अमूल्य जन्मगत तत्त्व हैं, जिनके फलस्वरूप आदमी लेखक बनता है।

सृजन की प्रतिभा—सर्वप्रथम तो लेखक में सृजनात्मक प्रतिभा होनी चाहिए। बहुत-से मनुष्य जन्म से ही सृजनात्मक शक्ति लेकर जन्म लेते हैं। उनमें स्कूल की शिक्षा की कोई बड़ी विशेषता नहीं होती, न कोई विशेष ट्रेनिंग ही होती है, पर वह बिना कहे, बिना आत्म प्रकटीकरण रह नहीं पाते। सृजन उनकी विवशता है।

कोकिल से पूछिये कि वह मस्त होकर क्यों मधुरता से कूकती है? भँवरे से पूछिये कि वह क्यों फूल-फूल पर गुंजार करता है? मोर से पूछिये वह हरियाली और काले बादलों को देखकर क्यों भव्य नृत्य कर उठता है? गायक से पूछिये कि वह क्यों गाता है, चित्रकार क्यों तूलिका चलाये बिना नहीं रह पाता, शिल्पकार को पत्थर गढ़ने में क्या आनन्द आता है ? ये सब कलाकार हैं और इनकी तीव्र अनुभूति इन्हें आत्माभिव्यंजना के लिए विवश कर देती है। उन्हें ऐसा करने में एक आन्तरिक तृप्ति का अनुभव होता है, उनकी आत्मा शांति लाभ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करती है, उनका मस्तिष्क एक शीतलता का अनुभव करता है। वे अपनी बात कहे बिना नहीं रह पाते। अन्दर से कोई शक्ति उन्हें आत्माभिव्यंजना के लिए विवश कर देती है। यही लेखक की सृजनात्मक प्रतिभा है, जिससे वह नई कृतियों को जन्म देता है।

जिस व्यक्ति में यह सृजनात्मक प्रतिभा मौजूद है, वह थोड़े-से साधनों से ही नई कृतियों का निर्माण करने लगता है। एक-एक विषय पर खूब सोचता है, स्वयं अपने अनुभवों को अभिव्यक्त करता है, दूसरों की अनुभूतियों से लाभ उठाता तथा उन्हें अपनी कृतियों के प्रयोग में लाता है।

सृजन के क्षणों में लेखक एक बेचैनी-सी अनुभव करता है। उसमें एक कसक, एक पीड़ा, एक गुप्त वेदना-सी रहती है, शब्दों के माध्यम से वह निकलने को बेचैन रहती है। वह जब तक कुछ लिख नहीं लेता तब तक उसे चैन नहीं मिलता। एक कविता, एकांकी, कहानी अथवा लेख लिख लेने के बाद ही लेखक को चैन मिलता है।

सृजन का नवनिर्माण की शक्ति से ही मूर्तिकार नई-नई भव्य मूर्तियों को जन्म देता है। संगीतज्ञ नई रागनियों में मन के भाव अभिव्यक्त करता है, चित्रकार रंगों के माध्यम से अपनी छिपी हुई भावनाओं को प्रकट करता है।

सृजन या शक्ति जन्मजात है, देर-सबेर प्रकट होती है। कभी किसी मानसिक आघात के कारण यह यकायक प्रस्फुटित होती है। बहुत-से कवियों के काव्य जीवन का प्रारम्भ मानसिक आघातों के द्वारा हुआ, अनेक उपन्यासकार जिन्दगी के कड़ुवे-मीठे अनुभव इकट्ठे करते चलते हैं, फिर वे यकायक किसी कृति के माध्यम से सशक्त रूप में प्रकट हो जाते हैं।

तीव्र सम्वेदना—लेखक का दूसरा गुण सम्वेदना है। वह दूसरों की अपेक्षा अधिक तीव्रता से महसूस या अनुभव करता है। एक ही घटना का एक व्यक्ति के ऊपर कम, तो दूसरे के ऊपर अधिक प्रभाव होता है। अधिक सम्वेदना वाला व्यक्ति लेखक या कवि बन सकता है। उसके पास जीवन के अनगिनत अनुभव होने चाहिए। सम्वेदना इन अनुभवों को व्यक्त करने के लिए बेचैन कर देती है। एक उदाहरण लीजिए—

जमी हुई पीड़ा ने लेखक बनाया—श्री नानकसिंह पंजाबी के प्रसिद्ध लेखक हैं। उन्होंने अपनी आन्तरिक स्थिति का चित्रण इन शब्दों में किया है और बतलाया है कि तीव्र सम्वेदना ने कैसे उन्हें एक सफल लेखक बना दिया?

"होश सँभालने के वक्त से लेकर जवान होने तक मेरे सामने से कितनी ही बड़ी-बड़ी घटनायें गुजर गईं। कितनी ही बार मैंने हिन्दू-मुसलमानों में फसाद होते देखे, जलियाँवाला बाग का हत्याकाण्ड देखा, अकाली आन्दोलन के समय गुरुद्वारा ननकाना साहब में महन्तों द्वारा चार सौ के लगभग अकालियों को जिन्दा जलाये जाना देखा, सिक्खों और हिन्दुओं में जूतियों को चलते देखा और सब के अन्त में सबसे बढ़कर सन् १९४७ के रक्तपात और अग्निकाण्ड देखे, जिनसे बरबस लगता था कि मनुष्य अब मनुष्य तो नहीं रह गया है।

जैसे-जैसे यह सब मैं देखता गया, वैसे-वैसे ही मेरे भीतर एक बोझ, एक दर्द-सा जुड़ता और जमता गया। अपना सारा अस्तित्व ही मुझे तब पथराता हुआ-सा जान पड़ने लगा, जो किसी करवट मुझे चैन न लेने देता था। अचानक इस दर्द और पराई पीड़ा से उद्धार पाने का एक उपाय मुझे सूझ पाया कि लिखूँ। फिर तो मैंने लिखा। वह यही सब जमा हुआ दर्द है, जिसे लोगों ने उपन्यास का नाम दे ही दिया है।"

यह है मन में जमी पीड़ा के लिए अभिव्यक्ति की आतुरता। यही सृजन की आत्मा है और लेखक की विवशता।

लेखक में अन्दर ही अन्दर इतनी पीड़ा, हाहाकार, वेदना और तीव्र अनुभूतियाँ एकत्रित हो जाती हैं कि वह उन्हें कहे बिना नहीं रह पाता। सृजन में ही उसे चैन मिलता है।

ज्ञानवर्धन और निरन्तर अध्ययन—तीसरा तत्त्व पर्याप्त अध्ययन है। लेखक के पास दूसरों की अपेक्षा बहुत अधिक ज्ञान होना चाहिए। सामान्य योग्यता, मामूली ज्ञानवाला व्यक्ति कभी भी अच्छा लेखक नहीं बन सकता। अध्ययन द्वारा वह दूसरों के ज्ञान से लाभ उठाता है। जिस क्षेत्र में उसे आगे बढ़ने की इच्छा होती है, उस क्षेत्र में सब प्रकाशित साहित्य से उसे अपने विषय का ज्ञान एकत्रित करना चाहिए। उस विषय का समग्र साहित्य सम्भव हो तो उसके पास हो। उस विषय की पुस्तकें पढ़कर वह उपयोगी और नवीन स्थूलों को चिह्नित करे और अपनी नोट बुक में संचित रखे, समय पर उस ज्ञान से लाभ उठावे। उसके विषय की जितनी पुस्तकें प्रकाशित होती रहें, उन्हें पढ़ते रहना और विषय का ज्ञान बढ़ाते रहना चाहिए। अध्ययन योग्यता बढ़ाने का निश्चित उपाय है। इसमें कभी भी शैथिल्य नहीं करना चाहिए। कभी-कभी लेखकों को अपनी योग्यता का अहंकार हो जाता है और वे अपने अध्ययन से क्रम को छोड़ देते हैं। ऐसे आलस्य से वे पिछड़ जाते हैं और उनकी रचना में कोई नवीनता, गहनता या मौलिकता नहीं रह जाती। अतः ज्ञान का अहंकार त्याज्य है।

विस्तृत और व्यापक अनुभव—चौथा तत्व अनुभव है। संसार में चौकन्ने होकर चलने से मनुष्य का सांसारिक और सामाजिक अनुभव बढ़ता है। स्वयं अपने अथवा दूसरों के अनुभवों से लाभ उठाना चाहिए। नए लेखकों का ज्ञान सीमित, अध्ययन बहुत कम और अनुभव शून्य होता है। इसलिए वे नई बात नहीं कह पाते। उनकी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनुभूतियों में कोई नवीनता और मार्मिकता नहीं आती। अनुभव के अभाव में वे अनेक गलतियाँ कर बैठते हैं। अधिक घूम फिरकर, शहरों में यात्रा करने, लोगों से मिलने-जुलने और बातचीत करने से, निरन्तर अखबार पढ़ने से, सिनेमा के फिल्म देखने से, किसी विद्वान की शिष्यता से नए लेखक का अनुभव बढ़ता रहता है। उसे अपनी कमजोरियों का पता चलेगा और नई दिशाओं में ज्ञान प्राप्ति का अवसर मिलेगा। शिष्यत्व की प्राचीन परम्परा आज भी उपयोगी है। पुराना अनुभवी लेखक अनेक दिशाओं में उसे आगे बढ़ावेगा। उसे यह स्पष्ट करेगा कि किस विषय पर, कैसे तथा क्या लिखना चाहिए? वह उसकी लिखी हुई कृतियों में शुद्धिकरण तथा मार्ग-निर्देश करेगा, भाषा शुद्ध करेगा और इस प्रकार आगे बढ़ाने में पथ प्रदर्शक का कार्य करेगा।

मौलिक रूप से तत्त्वों को चित्रित करने की शक्ति—पाँचवाँ तत्त्व मौलिकता है। हर व्यक्ति का एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व होता है और उसकी शैली, शब्द-चयन तथा मुहावरे इत्यादि उस व्यक्तित्व को प्रकट करते हैं। हमें स्वयं अपने व्यक्तित्व की मौलिकता बढ़ानी चाहिए, अभिव्यक्ति का अपना पृथक ही रूप निखारना चाहिए। आपको दूसरे लेखकों को खूब पढ़ना चाहिए, उनकी विशेषताओं को ध्यान से देखना चाहिए, फिर अपनी इच्छानुसार उनमें से ग्रहण या अनुकरण करना चाहिए।

एक उदाहरण लीजिए—श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने स्वयं अपनी मौलिकता का विकास कैसे किया था, उन पर किन-किन लेखकों का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा था, यह प्रभाव उन्हीं के शब्दों में सुनिये—

"अपने स्केच और संस्मरणों की कलम को माँजने के लिए मैंने बहुत परिश्रम किया। पहले तो मैंने यह अध्ययन किया कि किस बड़े लेखक में क्या विशेषता है ? फिर यह कि मैं उन विशेषताओं का कौन-सा अंश ले सकता हूँ? मुझ पर चार लेखकों का प्रभाव पड़ा। सबसे अधिक पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी का और उसके बाद पं० श्रीराम शर्मा, श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति और श्रीरामनाथ 'सुमन'। श्री चतुर्वेदी जी का आरम्भ मुझे गजब का लगा। शर्माजी की प्रवाह शक्ति और चित्रण, सुमन जी के विश्लेषण, कौशल और इन्द्र. जी की शृंखला के सामने मेरा सिर झुक गया। इस अध्ययन की छाया में मैंने कोई १०० तरह के स्कैच और संस्मरण लिखे होंगे। लिखे, काटे, फिर लिखे और फाड़े। एक लेख को अधिक से अधिक चौदह बार तक मैंने हट-हटकर लिखा, यह मुझे याद है।

इस तरह मैं अच्छे स्कैच और संस्मरण लिखने लगा और लेखन में कमाल पैदा करने का एक नया सूत्र मैंने रचा—

अपनी कमियों पर हमेशा आँख गड़ाये रहो और दूसरे की उन विशेषताओं को अपनी कमियों के स्थान में प्रयत्न करके इस तरह लो कि वे भद्दे पैबन्द होकर नहीं, दूध में चीनी बनकर तुम में समा जावें।"

दूसरों की विशेषताओं को ग्रहण करने की शक्ति—इस अनुभव को गाँठ-बाँध लीजिए। अपनी कमियों और दूसरे की विशेषताओं पर सीधी नजर लगाये रहिये। खुद ध्यान से अपनी मौलिकता विकसित कीजिए। याद रखिये किसी के अनुकरण मात्र से काम नहीं चलेगा। आप में अपनी निजी मौलिकता और स्वयं अपनी विशेषताएँ अन्तर्निहित हैं। आप अपनी दिशा में कमाल कर सकते हैं। उस विशेषता को खोजिये और निरन्तर अभ्यास द्वारा विकसित कीजिए। अन्य महत्त्वपूर्ण लेखकों की रचनाएँ पढ़िये और यह मालूम कीजिए कि वे अपनी बात को किस शैली में, किन शब्दों में तथा किस दाँवपेंच से अपनी बात कहते हैं? एक बार जो लिखा है, वही सर्वोत्कृष्ट रूप नहीं है। उसमें बार-बार संशोधन, परिवर्तन और परिमार्जन कीजिए। अपने लेखन में सुन्दर भावपूर्ण अर्थ गौरवपूर्ण शब्दों का प्रयोग कीजिए। शैली और शब्द चयन निरन्तर अभ्यास से निखरता है। किन शब्दों का क्या अर्थ है ? कौन, कहाँ उचित फिट होता है? व्याकरण की दृष्टि से कौन उपयुक्त है? ये सभी प्रश्न आपकी मौलिकता को विकसित करते हैं और अभिव्यक्ति में परिपक्वता उत्पन्न करते हैं। आप यथासम्भव अपने मन के उद्देश्यों, दृष्टिकोणों और अनुभवों को प्रकट करें, अपने अन्तःकरण के गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन करें और स्वयं अपने नेत्रों से संसार को देखें।

भावुकता और रसज्ञता—आप में पर्याप्त भावुकता और रसज्ञता होनी चाहिए। भावुकता से तात्पर्य यह है कि आप में सबके लिए, यहाँ तक कि कीट, पतंग, वृक्ष और पुष्प तक के लिए संवेदना मौजूद हो। आप सबके लिए सहानुभूतिपूर्वक सोचें। सबके लिए आपका हृदय मनोवेगों और संवेदना से परिपूर्ण हो।

लेखन कला का प्राण है—भावनाएँ और कलाकार की संवेदनाएँ ! वेदनाहीन व्यक्ति कैसे लेखक, कवि उपन्यासकार या नाटककार बन सकता है ?

सौन्दर्य कला में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है, पर संवेदना के बिना सौन्दर्य भी नहीं निखरता है। जिसके प्रति हमारे हृदय में आत्मीयता की भावनाएँ हैं, वही हमें भव्य और आकर्षक प्रतीत होता है।

आत्मभाव का विस्तार—आप में आत्मभाव का पर्याप्त विस्तार रहना चाहिए। यह विशाल आत्म-भाव कला को सजीव और हृदयस्पर्शी बनाता है। लेखक में एक ओर तीव्र भावुकता हो अर्थात दूसरों के सब भावों को अपने हृदय में अनुभव करने की क्षमता हो तो दूसरी ओर उस अनुभूति को कलात्मक रूप से अभिव्यक्त करने की शक्ति हो।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अभिव्यक्ति की सजीवता—जो जितने कलात्मक ढंग से पूरे सौन्दर्य से अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है तथा मर्मस्पर्शी शब्दों का प्रयोग करता है, वह उतना ही सफल लेखक है। कवि बनना सबसे कठिन है, क्योंकि कवि को कम से कम शब्दों में अधिकतम अनुभूतियाँ प्रस्तुत करनी पड़ती हैं, पुष्प की पंखुड़ियों की तरह सुन्दर से सुन्दर भाव स्पष्ट करने वाले शब्दों को सजाना पड़ता है। उदाहरण के लिए, शेक्सपीयर के नाटकों की अभिव्यक्ति को देखिए, एक-एक शब्द मोती की तरह जड़ा हुआ है। पढ़ते ही भावुक पाठक उसमें अपने को विस्मृत कर बैठता है। इसी प्रकार महाकवि तुलसी, भक्त-प्रवर सूर, कवयित्री मीराबाई, गुरुनानक और दार्शनिक कबीर के प्रत्येक शब्द-शब्द का कलात्मक महत्त्व है, वह बड़े तोल कर सतर्कता से जड़ा गया है, आज इन बड़े लेखकों को जन्मे और जिये, न जाने कितने वर्ष हो गये फिर भी उनके शब्द आज भी सजीव हैं, महक रहे हैं, हमारे हृदय और प्राण को सरसब्ज करने में पूर्ण समर्थ हैं। यही सजीवता आप भी अपने में उत्पन्न कीजिए।

कल्पना शक्ति का उर्वरापन—लेखक और विशेषत: उपन्यासकार में कल्पना पर्याप्त मात्रा में विकसित सुचारु रूप से होनी चाहिए। वह अपने विगत अनुभवों के बल पर नई-नई बातों को कल्पना से सोच सके, नए जगत का निर्माण कर सके। उसकी कल्पना तभी सही होगी, जब वह उसके व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर खड़ी होगी। कल्पना का उतना ही प्रयोग हो, जितना खप जाय। प्राय: नये लेखक कल्पना के प्रयोग में उपहासास्पद गलतियाँ कर बैठते हैं, जिनसे सावधान रहना चाहिए। इसका एक उदाहरण हमें श्री किशोर साहू ने निम्न शब्दों में प्रस्तुत किया है—

"नए लेखकों की रचनाएँ यथार्थ से, सत्य से बिल्कुल ही हटकर, केवल कल्पना के वशीभूत होकर गढ़ी हुई अधिकांश झूठी कृतियाँ ही होती हैं। बहुत-से साहित्यकार, जिनमें कई तो नामी बताये जाते हैं, अध-पढ़े-लिखे हैं। हिन्दी के एक साहित्यकार की एक रचना मुझे याद आ रही है। उन्होंने अपने उपन्यास के नायक को बम्बई के ताजमहल होटल में ले जाकर, उसके हाथों में काँटा-छुरी पकड़वाकर उसे लंच खिलवाया है, उस होटल का सारा वातावरण भद्दा और झूठा चित्रित किया है। उसमें नायक के दाहिने हाथ में काँटा और बायें में छुरी पकड़वाई है। टेबिल पर पाश्चात्य ढंग से खाते समय छुरी दाहिने हाथ में होनी चाहिए और काँटा बायें से ही पर उस उपन्यासकार को क्या पता ? उसे ताजमहल होटल का या टेबिल पर खाने का अनुभव ही नहीं है। इसी प्रकार हिन्दी के प्रतिष्ठा प्राप्त एक कहानीकार की 'शिकार' शीर्षक कहानी याद आती है, जिसमें वह शिकार जैसे विषय से सर्वथा अनभिज्ञ है। एक चीते से मनुष्यवत हरकत कराते हैं और एक युवती से, जिसने जीवन में कभी बन्दूक न चलाई थी, चीते को रिवाल्वर द्वारा खत्म कराते हैं। उस चीते के प्राण राइफल की गोली से नहीं, पिस्तौल की गोली से निकल जाते हैं। वैचित्र्य की पराकाष्ठा है, पर यथार्थता की गर्दन मरोड़ दी गई है।" तनिक सोचिए, ऐसी गलती क्यों हुई ?

एक ओर लेखन की तथ्य विषयक अज्ञानता है दूसरे कल्पना का गलत प्रयोग है। झूठी कल्पना, व्यर्थ का व्योमविहार, अनाप-शनाप लिखते रहने से प्राय: इस प्रकार की गलतियाँ हो जाया करती हैं। लेखक कल्पना के प्रयोग में भी सतर्क रहें। आप ऐसी बात कहें, जो दूसरा मान जाय।

शिवत्व का ध्यान रखें—लेखक जब साहित्य रचता है, तो उसें समाज के हित की दृष्टि से लिखे, उसकी रचनाओं से समाज में जाग्रति उन्नति और लाभ हो। पिछड़े हुए व्यक्ति आगे बढ़ें और कुछ नवीन जीवन तथ्य सीखें। उसकी महत्ता यही है कि उससे जीवन में जो सुन्दर है, जो शिव है, जो सत्य है, अर्थात् उसमें जो उत्कृष्ट और विराट है, उसे वह अपने देश, अपने समाज तथा विश्व को प्रेरणा और उन्नति के लिए दे जाय।

कबीन्द्र रबीन्द्र के गीतों में समाज के उत्थान तथा नैतिक जागरण के लिए जो भव्य भावनाएँ व्यक्त की गई हैं, हृदय की जो टीस है, जो आदर्श और स्वरूप है, वे कार्य के शिवत्व को प्रकट करती हैं। महाकवि तुलसी, सूर, मीरा, कबीर, नानक आदि भक्त कवियों ने अपनी कला को प्रयोग समाज के नैतिक जागरण के हेतु किया था। कला की कसौटी पर वे आज भी खरे हैं। भक्ति-भाव के कारण पूजनीय हैं। समाज के नैतिक उत्थान के भव्य आदर्श को अपने सामने प्रत्येक लेखक को रखना चाहिए।

आप में जो शिवत्व है, उसको समाज के लाभ के लिए देने का ध्यान रखें। आपका साहित्य वह होना चाहिए, जिससे समाज का नैतिक उत्थान हो। श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के शब्दों में, "हमारा काम यह नहीं है कि इस विशाल देश में बसे चन्द दिमागी ऐय्याशों का फालतू समय चैन से काटने के लिए मनोरंजक साहित्य (जैसे हल्के स्तर की कहानियाँ, जासूसी उपन्यास, कामोत्तेजक पुस्तकें, अश्लील रचनाएँ का मयखाना हर समय खुला रखें। हमारा काम तो यह है कि इस विशाल देश के कोने-कोने में फैले जनसाधारण के मन में विशृंखलित वर्तमान के प्रति विद्रोह और भव्य भविष्यत के निर्माण की भूख जगाएँ।"

यह आदर्श आप अपना सकते हैं। आपमें जो सब से उपयोगी है, उसे नए समाज के हित के लिए दे जाइये।

अभ्यास निरन्तर लेखन—किसी विद्वान ने सत्य ही कहा है कि मनुष्य में प्रतिभा का भाग तो केवल २५

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रतिशत होता है, जबकि अभ्यास का भाग ७५ प्रतिशत होता है। वास्तव में अभ्यास करने और निरन्तर नियमित रूप से लेखन से ही लिखना आता है और परिपक्वता प्राप्त होती है।

आपको यदि ऐसा लगता है कि आप में आत्माभिव्यक्ति की अदम्य इच्छा है, तो दो-चार लेख मात्र लिखने से काम नहीं चलेगा, नियमित रूप से समय पर प्रतिदिन कुछ न कुछ लिखते रहना चाहिए। अभ्यास से लेखन-कला निखरती और विकसित होती है।

प्रारम्भिक रचनाएँ अपरिपक्व होती हैं, उनमें बचपन झलकता है। विचारों में कमी और अनुभव की न्यूनता दिखाई देती है, अभिव्यक्ति में कलात्मकता नहीं होती। इसलिए पहले पर्याप्त और नियमित अभ्यास द्वारा अपनी लेखन शक्ति को निखारना चाहिए। पहली बार विचार अपने सर्वोत्कृष्ट रूप में उपस्थित नहीं होते, शब्दों में कुछ हल्के या अधिक भारी रह जाते हैं। इसलिए नियमित अभ्यास करते रहना चाहिए। लेखन का अभ्यास हमारी भाषा को परिमार्जित करता है। पहले गूढ़ता, अगम्यता अथवा अस्पष्टता होती है, जो अभ्यास से धीरे-धीरे दूर हो जाती है।

प्राय: नया लेखक पाठकों पर अपनी विद्वता की शान गाँठने के लिए कठिन शब्दों का प्रयोग करता है, जिससे पाठक को अर्थ समझने में बड़ी कठिनाई होती है। या तो ऐसी रचनाओं को पाठक पढ़ता ही नहीं अथवा दो-चार पंक्तियाँ पढ़कर छोड़ देता है। अभ्यास से उसे यह ज्ञात होता है कि क्लिष्ट शब्दों और दुरूह शब्दों की रचना, लम्बे-लम्बे वाक्यों या पैराग्राफ लिखना एक मूर्खता है, आप पाठक पर शान जमाने के लिए नहीं लिखते हैं, प्रत्युत उसे कुछ सिखाने के लिए लिखते हैं।

कठिन और बनावटी शैली में लिखने की मूर्खता— पं० बनारसीदास चतुर्वेदी हिन्दी के सम्पादन क्षेत्र में अपना ऐतिहासिक महत्त्व रखते हैं। नवीन लेखकों के लिए उन्होंने अपने अनुभवों के निचोड़ प्रस्तुत किए हैं। अपने प्रारम्भिक लेखक के जीवन में उन्हें कठिन और कृत्रिम भाषा दुरूह शैली में लिखने की धुन थी। बाद में उन्हें यह मूर्खता जँची और उन्होंने अपने अनुभव इन शब्दों में नए लेखकों के पथ-प्रदर्शन के लिए लिखे थे—

"कोई चौंतीस वर्ष पहले की बात है। सेमुएल स्माइल्स की पुस्तक 'सेल्फ हेल्प' के आधार पर मैंने 'आत्मावलम्बन' नामक एक लेख लिखकर काशी से निकलने वाले 'नवजीवन' पत्र को छापने भेज दिया। अब जब कभी मैं उस लेख को पढ़ता हूँ, तो अपनी मूर्खता पर हँसी आती है। उस लेख में शब्दाडम्बर की भरमार थी। संस्कृत हम नाममात्र की भी नहीं जानते थे, पर संस्कृत के श्लोक को उद्धृत करने का मोह हमें प्रारम्भ से ही रहा है। अपने प्रथम लेख में हमने श्लोक उद्धृत किया था। संस्कृत के अनेक कठोर शब्दों का प्रयोग उक्त लेख में किया गया था। एक वाक्य सुन लीजिए—

"तात्पर्य यह है कि यदि हम परतन्त्रता की वैतरणी नदी पार कर स्वतन्त्रता रूपी स्वर्ग लाभ किया चाहते हैं, तो हमें आत्मावलम्बन रूपी गाय की पूँछ पकड़ना चाहिए।"

हमारे सहायक सम्पादक बन्धुवर यशपाल जी इस गाय की पूँछ का मौके-बेमौके जिक्र करके हमारा खूब मजाक उड़ाया करते थे और उस पूँछ की वजह से हमें बार-बार लज्जित होना पड़ा था। नतीजा यह हुआ कि उस लेख को हमने अलमारी में छिपाकर रख दिया और किसी को नहीं पढ़ने देते। लेख के अन्तिम अंश में उपमाओं का बवण्डर था। उसे देखकर आज भी हमें लज्जा आती है। अब जब कभी हम किसी नवीन लेखक की रचना में इसी प्रकार की आडम्बरयुक्त शैली देखते हैं, तो हमें अपनी 'गाय की पूँछ' की याद आ जाती है। उस लेख को छपने से हमें अत्यन्त हर्ष हुआ था। अपने प्रथम लेख का प्रकाशन जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना है। सन् १९१९ में 'लीडर' में हमें अपना प्रथम अंग्रेजी लेख देखकर उतना ही हर्ष हुआ था। रेल की एक भयंकर दुर्घटना हमारे नगर फिरोजाबाद के निकट ही हो गई थी। उन अभागे व्यक्तियों की कोई सेवा-सुश्रूषा हम से नहीं बन पड़ी थी और उनके लिए शायद हम उतने चिन्तित भी नहीं थे, जितने अपने लेख को प्रकाशित देखने के लिए। इस दम्भ की भी कुछ सीमा थी। अब भी हम अपनी मूर्खता पर हँसते हैं।

पथ-प्रदर्शक जरूर रखिए—हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि लेख लिखना (सेल्फ ऐक्सप्रेशन) आत्मप्रकटीकरण का एक तरीका है और खसरे या चेचक की बीमारी की तरह 'लिखास' की बीमारी भी अधिकांश विद्यार्थियों को लग जाती है। सौभाग्यशाली वे हैं, जिन्हें कोई पथ-प्रदर्शक मिल जायें। अन्ट-सन्ट लिखने में और अपना मार्ग स्वयं बनाने में अपने समय का अपव्यय होता ही है, पाठकों का भी बहुत वक्त बरबाद होता है।

अब तो हमारा दृढ़ विश्वास हो गया है कि लेखों को बिना योग्यतर व्यक्तियों को दिखलाये अथवा बिना संशोधन कराये पत्रों को छपने भेजना भयंकर सामाजिक अपराध है। इसके लिए पत्रकारी पीनल कोड में कम से कम ५-७ महीने सपरिश्रम कारावास का दण्ड तो मिलना ही चाहिए।

सुप्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान डॉक्टर भगवानदास ने लेखन शैली पर बहुत जोर दिया है। "आप कुछ भी लिखें, सीधी-सादी जबान और संक्षेप से लिखें।"

शैली सरस, बोधगम्य रहे—इन शब्दों में गहरा अनुभव बोल रहा है। एक-एक शब्द नए लेखकों के लिए लाभदायक है। आप अपनी लेखन शैली तथा शब्द चयन को सरल, सरस और स्वाभाविक रखें। व्यर्थ के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कठिन संस्कृतनिष्ठ शब्दों की ठूँस-ठाँस न करें। विचारों को काव्यमय भाषा में अभिव्यक्त करने का ध्यान रखें और सजीव भाषा का प्रयोग करें। पाठक शैली की कृत्रिमता को समझता है और उसे बनावटी बात में कोई आनन्द नहीं आता। आपकी भाषा में पर्याप्त प्रवाह होना चाहिए। पहले भाषा ऊबड़-खाबड़ रहती है, पर अभ्यास करते-करते स्वाभाविक शब्दों का प्रयोग आने लगता है। कहीं-कहीं शब्द उर्दू या अँग्रेजी के भी लाना चाहिए जिससे जिंदादिली प्रकट हो। मुहावरे और साधारण अलंकार भी रहें, जिससे पढ़ने में आनन्द भी आये पर सहज बोधगम्यता शैली का प्रधान गुण होना चाहिए।

महात्मा गाँधीजी को सहज बोधगम्य सरल शैली पसन्द थी और उन्होंने अपना साहित्य इसी सरल शैली में लिखा है। उन्होंने रस्किन की शैली की प्रशंसा करते हुए ये शब्द लिखे हैं—

"रस्किन की भाषा ऐसी है, जिसे जनता सुगमता से समझ सकती है···ऐसा समय आगे चलकर आवेगा कि जब भाषा का प्रेम व्यापक हो जायगा और उन दिनों चुटीली और प्रभावशाली भाषा लिखने के इच्छुक फकीरी लादने को तैयार नजर आवेंगे। जिस प्रकार रस्किन ने अपनी सुमधुर अँग्रेजी में उन भावों को व्यक्त किया है, उसी तरह कोई लेखक हिन्दी में भी सरल, सरस और सहज, बोधगम्य शैली में लिखने को तैयार हो जायेगा।"

इस प्रकार की प्रभावशाली शैली में विचार प्रचुरता से होने चाहिए। अनुभूतियों का वृहत् भण्डार भरा रहे। आपकी शैली पर आपके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप रहे। इसलिए नवीन लेखकों को दूसरे बड़े लेखकों के अनुकरण के चक्र में न पड़कर स्वतन्त्र निजी शैली का विकास करना चाहिए। यदि हम सम्वेदनशील हैं, यदि हमारे पास मौलिक विचार हैं, यदि हममें पर्याप्त कलात्मकता है, तो हमारी निजी शैली अवश्य विकसित हो जायेगी। यदि शैली में आकर्षण है, तो आपकी धाक जमकर रहेगी।

दूसरों से सीखने की भावना—लेखन कार्य निरन्तर साधना और उन्नति के लिए खुला रहता है। इसमें पुराने अनुभवी लेखकों, बुजुर्गों और गुरुजनों की प्रेरणा की अतीव आवश्यकता रहती है। सदा ही नये लेखक को पुराने लेखकों से नई-नई बातें सीखने की जरूरत बनी रहती है। वे बहुत-से नए गुर और उपयोगी रहस्य बतलाते रहते हैं, सहानुभूतिपूर्वक पथ-प्रदर्शन करते हैं। अनेक प्रकार से सहायता करते हैं। गुरु बनाने की पद्धति पुराने युग में प्रचलित थी। साहित्य जगत में अपना स्थान बनाने के इच्छुकों को भी किसी पुराने अनुभवी लेखक को गुरु रूप में ग्रहण करना चाहिए।

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने स्वयं अपने अनुभवों से यह निश्चय व्यक्त किया था कि गुरु की बड़ी उपयोगिता है। वे लिखते हैं—

अगर कोई नवीन लेखक मुझसे लेखक जीवन की सफलता का मन्त्र पूछते हैं, तो मैं उन्हें गीता के चतुर्थ अध्याय का चौंतीसवाँ श्लोक बता देता हूँ—

"तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।"

विनम्रता, बार-बार प्रश्न करना और सेवा यही उपाय हैं, जिससे हम गुरुजनों का आशीष पा सकते हैं। हमारी सफलता के लिए इस आशीर्वाद की अनिवार्य आवश्यकता है। आज जब मैं अपने लेखक जीवन का लेखा-जोखा लेता हूँ, तो पता लगता है कि मैं बीसियों व्यक्तियों का ऋणी हूँ और उन व्यक्तियों में महात्मा गाँधी, कवीन्द्र श्री रबीन्द्रनाथ ठाकुर, दीनबन्धु ऐण्ड्रुज और श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय, स्वर्गीय पं० रामेश्वर भट्ट इत्यादि प्रमुख हैं।"

आप भी किसी योग्य अनुभवी लेखक को अपने गुरु के रूप में ग्रहण कीजिए। उनके अनुभवों से आपके लेखन के क्षेत्र में लेखों को ठीक करने की दिशा में बड़ी सहायता और पथ-प्रदर्शन मिलेगा।

हम किसलिए लिखें—हमारा जन्म किस उद्देश्य से हुआ है ? जीवन में हमें खान-पान, मैथुन और केवल निजी स्वार्थ आदि पशु-प्रवृत्तियों तक ही सीमित रहना है, या उस संकुचित क्षेत्र से निकलकर कुछ ऊँचा भी उठना है ? मानव जन्म किस प्रकार धन्य होता है ? इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए हमें यह स्पष्ट जान लेना चाहिए कि पशुत्व और मनुष्यत्व अथवा नीच कोटि तथा उच्च कोटि के जीव में क्या भेद है मनुष्य पशु की अपेक्षा किन दृष्टियों में समुन्नत है ?

पशु का जीवन निम्न कोटि का होता है। उसमें कोई उच्च आदर्श नहीं है। उसकी समग्र क्रियाएँ केवल वासना और शरीर की तृप्ति मात्र के लिए होती हैं। क्षुधा-निवारण, भोग तथा आराम, खाना-पीना और मैथुन में ही उसका जीवन समाप्त हो जाता है। जिन मनुष्यों का जीवन केवल इन तीन कार्यों में ही लगा हुआ है तथा जिन्होंने कोई मानवोचित उच्च आदर्श अपने समक्ष नहीं रखा है, वे सुरदुर्लभ मानव-शरीर पाकर भी पशु का जीवन ही व्यतीत कर रहे हैं।

पशु कौन है ? मनुष्य किन दिशाओं में उससे ऊँचा है, यह चाणक्य नीति में स्पष्ट किया गया है देखिए—

आहार निद्रा भय मैथुनानि।
समानि चैतानि नृणां पशूनाम्
ज्ञानं नराणामधिको विशेषो
ज्ञानेन हीनाः पशुभिःसमानाः।

अर्थात्—"स्मरण रखिए, आहार, निद्रा, भय और मैथुन ये सामान्य निम्न क्रियाएँ मनुष्यों और पशुओं में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक ही सदृश हैं। मनुष्यों में अधिकता और विशेषता यही है कि उनमें धर्म (अर्थात अपने उच्च उद्देश्य) का ज्ञान है, किन्तु धर्मज्ञान से शून्य मनुष्य पशुओं के ही तुल्य है।''

पिछड़े हुओं को आगे बढ़ाइये—मनुष्य के अतिरिक्त अन्य प्राणियों में बुद्धि, विवेक और धर्मज्ञान नहीं होता। वे कोई भी उच्च स्थाई कार्य नहीं कर सकते। मनुष्य ही देवता, पितर, पशु, पक्षी, वृक्ष, मनुष्यों इत्यादि सब स्थावर और जंगम प्राणियों की सेवा कर सकता है। धर्म का आधार सेवा है। मानव तथा अन्य जीवों की सेवा से हमारी आत्मा, प्रसन्न और तृप्त होती है, अन्त:करण सुख का अनुभव करता है। सेवा का रूप और परिधि व्यापक है। हमारे समाज में, ग्रामों तथा पिछड़े हुए प्रदेशों में हमारे अनेक बन्धु-बांधव, पड़ौसी, निर्धन लोग शिक्षा, ज्ञान-विज्ञान, विचार और बौद्धिक विकास की दृष्टि से अविकसित छूट गये हैं। इन पिछड़े हुए भाई बहनों को आगे बढ़ाना, उनके बौद्धिक तथा नैतिक विकास में सक्रिय सहयोग देना, पशुवत दुष्प्रवृत्तियों को दबाकर मानवोचित सद्वृत्तियों को विकसित करने में सहायक होना मनुष्य-समाज की सबसे बड़ी सेवा है। निष्काम भाव से सम्पूर्ण प्राणिमात्र को विकसित होने में सहायता करना धर्म है। मनुष्य का प्रथम पुरुषार्थ यही है कि उसने अपने पीछे आने वाले व्यक्तियों में से कितनों की सेवा-सहायता की है ? कितनों को जीवन-पथ में आगे बढ़ाया है ? कितनों को कर्तव्य-बोध सिखाया है ? सेवा भावना के अनुपात से ही मनुष्य का बड़प्पन नापना उचित है। भक्त तुलसीदास, भक्त सूरदास, मीराबाई, कबीर, रहीम, नानक, जैसे गण्यमान्य लेखकों का उद्देश्य जनता-जनार्दन की सेवा करना था। ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान गौतम ने जो उपदेश अपने भिक्षुकों को दिया था, वही शब्द हम नए लेखकों की सेवा में प्रस्तुत करना चाहेंगे—

''चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजन-हिताय बहुजन-सुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं।''

अर्थात—''हे भिक्षुओ, अधिक से अधिक मनुष्यों के लाभ के लिए, अधिक से अधिक आदमियों से सुख के लिए, लोक पर दया करने के लिए, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिए, मनुष्य मात्र के कल्याण (उन्नति, विकास, सद्बुद्धि सदाचरण) के लिए विचरण करो।''

बहुजन हिताय बहुजन सुखाय लिखिये—दूसरे शब्दों में साधारण जनता अर्थात अधिक से अधिक लोगों के हित के लिए, सन्मति विकसित करने के लिए और उनके जीवन को सही दिशाओं में विकसित करने के लिए लिखो। जनता के सुख तथा लोक-कल्याण को ही अपना लक्ष्य बनाकर हमारे साहित्य की रचना होनी चाहिए।

हमारे समाज में बहुसंख्यक मध्यवर्ग के व्यक्ति क्लर्क, मजदूर, कृषक, दुकानदार स्त्री-पुरुष हैं, जिन्हें जीवन में कुछ भी आनन्द नहीं आ रहा है। जो जिन्दगी की शतशत समस्याओं में कुटे-पिसे हैं। जो अन्धकार में मार्ग टटोल रहे हैं पर सही मार्ग नहीं पा रहे हैं। उनका अक्षर-ज्ञान अधिक नहीं है। वे साधारण भाषा समझते हैं। हमारा कर्त्तव्य है कि उनके जीवन की समस्याओं को सुलझायें और आगे बढ़ने में सहायता करें। लेखक स्वयं उनके दैनिक, पारिवारिक और सामाजिक जीवन की कठिनाइयों और समस्याओं का अध्ययन करें और उनके निदान प्रस्तुत करें। उन्हें सफल जीवन व्यतीत करने के रहस्य समझायें, उन्नति के पथ पर आगे बढ़ायें, हर प्रकार से नए विचार देकर सहायता करें। यह सबसे बड़ी समाज सेवा हो सकती है।

साहित्य सेवा से समाज की सबसे बड़ी सेवा हो सकती है—वयोवृद्ध साहित्यकार पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने लेखकों को सलाह देते हुए उचित ही लिखा है—

''हमारा देश इस समय बड़े संकट से गुजर रहा है। प्राचीन युग बीत गया है और नवीन युग का अभी पूर्ण रूप से प्रादुर्भाव नहीं हो पाया है। उषाकाल के पहले जैसा अन्धकार रहता है, बस वैसी ही स्थिति हमारे देश की है।

ऐसी परिस्थिति मे हम सबका, खासतौर पर लेखकों और कवियों का, जो प्रत्यक्ष रूप से जनसाधारण के शिक्षक, रहनुमा और ज्ञानदाता हैं—कर्त्तव्य है कि जगकर और डटकर खड़े हो जायें और यह निश्चय कर लें कि हमें किस मार्ग पर जाना है?''

वास्तव में साहित्य-सृजन समाज की सेवा का सबसे अच्छा और स्थाई साधन है। उपदेशक का कार्य थोड़ी देर के लिए होता है। जब तक श्रोता उसका भाषण सुनते हैं, उससे मन्त्र-मुग्ध हो जाते हैं लेकिन बाद में उसे विस्मृत कर बैठते हैं। सिद्धहस्त लेखक जो लिख जाते हैं वह सर्वदेशीय और सर्वकालिक होता है। युग-युग तक वह प्रेरणा और सद्बुद्धि देता है। भक्त कवियों की उपदेश वाणियाँ आज तक जनसाधारण को सन्मार्ग पर लगा रही हैं। गुरुनानक, रहीम, कबीर, तुलसी, सूर, मीरा ने जनता के पाखंड को दूर किया, पाप और अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाई और नैतिक जाग्रति उत्पन्न की थी। उन्होंने जो मानसिक भोजन दिया था, उससे आज भी लाभ उठा रहे हैं। ये लेखक साधारण घरों से लेकर अमीर-उमरावों के गगनचुम्बी महलों तक अपना दिव्य संदेश लेकर पहुँचे हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में तो इनकी सर्वाधिक पहुँच रही है। वे जनता के प्रभावशाली शिक्षक हैं। इन भक्त कवियों और प्राचीन लेखकों ने कभी प्रसिद्धि या अर्थ उपार्जन के उद्देश्य से साहित्य रचना नहीं की थी। उन्हें यशोलालसा नहीं थी और न वे आत्मविज्ञापन ही पसन्द करते थे। अखबारों में अपने चित्र छपवाने का शौक नहीं था। उन्हें कोई डिग्री नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चाहिए थी। भक्त कवियों और लेखकों के समान ही अन्य सैकड़ों आधुनिक लेखक हिन्दी में हो गये हैं, जिन्होंने विशुद्ध समाज-सेवा की दृष्टि से साहित्य-सृजन किया था। इसके उद्देश्य के कारण ही वे इतने वर्षों तक प्रसिद्ध हैं। कविता आज भी उन्हें भूल नहीं पाती है।

आखिर हम किसे आदर्श मानें ?—समाज सेवा तथा उत्थान को ही अपने लेखन का उद्देश्य बनाने वाले लेखकों के आदर्श आज भी मिलते हैं। इन श्रमजीवी लेखकों का उदाहरण हम पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के शब्दों में इस प्रकार दे सकते हैं—

"आदर्श ? आदर्श इस युग के लिए हमारे साहित्य में एक ही थे—अर्थात गणेशशंकर विद्यार्थी। उनका जीवन-चरित्र पढ़िये। आपको आदर्श मिल जायगा।"

और आदर्श आप चाहते हैं तो उस इकहत्तर वर्षीय युवक का आदर्श आपके सामने है, जो शहरों और अमीरों की तड़क-भड़क से दूर दौलतपुर ग्राम में दिन रात परिश्रम करके अपने जीवन को सार्थक बना रहा था। वह थे आचार्य महावीर प्रसाद जी द्विवेदी। जब द्विवेदी जी से पूछा गया कि देवपुरस्कार किस प्रकार की पुस्तकों पर दिया जाय, तो उन्होंने कहा था—

"ग्राम्य जीवन के लाभ और उनमें आये हुए वर्तमान दोष और उनके दूरीकरण के उपाय पर लिखी गई पुस्तक के लिए एक हजार रुपये दिये जायें और एक हजार किसी ग्रामीण के जीवन चरित्र पर, जिसने अपने चरित्र बल, अध्यवसाय और परीक्षण से अपने को उच्च बनाया हो।

यदि हमारे लेखक द्विवेदी जी को ७१ वर्ष की आयु में एक दिन भी अपने ग्राम में श्रम करते देखते, तो उन्हें वह शिक्षा मिल सकती थी, जो अनेक वर्षों तक यूनिवर्सिटियों और पत्रकारों के कॉलेजों में पढ़ने पर भी नहीं मिलेगी। पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी की साहित्य सेवा का आदर्श हम अपने सामने रख सकते हैं।"

केला जी का उदाहरण—श्रद्धेय भगवानदास केला की साहित्य-साधना तथा लेखक जीवन समाज सेवा का एक अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत करता है। उन्होंने निर्णय किया था कि मैं समस्त जीवन में साहित्य सेवा द्वारा भारत-माता की अर्चना करूँगा। केला जी के समस्त जीवन भर यही मातृ-सेवा की उदात्त भावना विद्यमान रही। उनकी चलाई हुई भारतीय ग्रन्थमाला के अन्तर्गत अनेक उत्तम पुस्तकें प्रकाशित हुईं, जिनसे एक नए विषय पर प्रचुर प्रकाश पड़ा और हिन्दी की श्री वृद्धि हुई, जो कार्य बड़ी संस्था न कर सकती थी, जिसके लिए बड़े-बड़े साधनों की जरूरत होती, वह स्वल्प साधनों के त्याग और साधना का जीवन व्यतीत करते हुए केला जी ने किया उनका साहित्यिक कार्य ३५ वर्षों तक चलता रहा था। केला जी ने कोई छुट्टियाँ नहीं मनाईं और न कभी उससे मिलने वाले रुपये का हिसाब लगाया।

श्री प्रेमचन्द्र हिन्दी उपन्यास जगत में सबसे अधिक प्रसिद्ध हुए हैं। लोग समझते होंगे कि उन्होंने अपने सहित्य से न जाने कितना धन कमाया होगा और न जाने कैसा आलीशान जीवन व्यतीत किया होगा पर वास्तव में जीवन भर उत्कृष्टतम साहित्य रचकर भी वे सेवा, त्याग और तपस्या की जिन्दगी व्यतीत करते रहे। अपनी साहित्य सेवा के आदर्शों को स्पष्ट करते हुए उन्होंने एक पत्र में पंक्तियाँ लिखी थीं, जो लेखक के जीवन का आदर्श प्रस्तुत करती हैं—

"मेरी आकांक्षाएँ कुछ नहीं। इस समय तो सबसे बड़ी आकांक्षा यही है कि हम स्वराज्य में विजयी हों। धन या यश की लालसा मुझे कभी नहीं रही, खाने भर को मिल जाता है। मोटर और बंगले की मुझे इच्छा नहीं है। हाँ यह जरूर चाहता हूँ कि दो-चार उच्चकोटि की पुस्तकें लिखूँ, पर उनका उद्देश्य भी स्वराज्य विजय ही है—मैं शान्ति से बैठना नहीं चाहता। साहित्य और स्वदेश के लिए कुछ न कुछ करते रहना चाहता हूँ। हाँ रोटी दाल और तोला भर घी और मामूली कपड़े नसीब होते रहें।"

"जो व्यक्ति धन-सम्पदा में पूर्णत: विभोर और मगन हो उसके महान पुरुष होने की मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। जैसे ही मैं किसी आदमी को धनी पाता हूँ, वैसे ही मुझ पर उसकी कला और बुद्धिमत्ता की बातों का प्रभाव काफूर हो जाता है। मुझे जान पड़ता है कि इस व्यक्ति ने मौजूदा सामाजिक व्यवस्था को—उस सामाजिक व्यवस्था को, जो अमीरों द्वारा गरीबों के दोहन पर अवलम्बित है, स्वीकार कर लिया है। इस प्रकार किसी बड़े आदमी का नाम, जो लक्ष्मी का कृपा-पात्र भी हो, मुझे आकर्षित नहीं करता। मुझे प्रसन्नता है कि स्वभाव और भाग्य ने मेरी मदद की है और मेरा भाग्य दरिद्रों के साथ सम्बद्ध है। इससे मुझे आध्यात्मिक सान्त्वना मिलती है।"

संसार ने जिन लेखकों का स्थाई सम्मान किया है और जिनकी कृतियाँ सदैव प्रेरणा और प्रकाश प्रदान करती रही हैं, उनमें सदाचार और समाज का मुख्य तत्व रहा है। उनका साहित्य समाज के हित की दृष्टि से उपयोगी और प्रेरक रहा है। उन्होंने जनता को नैतिक मार्ग पर चलाया है तथा वह तथ्य प्रस्तुत किए हैं, जिनसे समाज और देश का वास्तविक कल्याण हो सके।

एक विचारक के शब्दों में "लेखकों का कर्त्तव्य यह है कि मध्यस्थ होकर पाठकों की प्रवृत्तियों का अन्वेषण करें और उन्हें ऐसी परिस्थितियों के बीच रखें, जिनसे उनकी आन्तरिक शक्तियों का स्वयमेव विस्तृत विकास हो। संसार भर में आज जो संकट, जो विकट समस्या उपस्थित है, इसका यथार्थ समाधान किसी को नहीं मिल रहा है।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसी से आज जड़वादी पाश्चात्य जगत से उसी के अपने स्वर में यह घोषित हो रहा है, "अब तो तभी शान्ति हो सकती है, जब कोई महान आध्यात्मिक क्रान्ति हो। यह ध्यान देने योग्य है।"

लेखक को कलापूर्ण होना चाहिए। कलाविद की कल्पना का शिखर है मौलिकता। मौलिकता ही कला की चूड़ामणि है। वह कला हमें कदापि आकृष्ट नहीं कर सकती, जिसके समान हमने पहले कुछ देख लिया है। ललित कला का दूसरा प्रधान गुण उसकी सजीवता है।

कला में सजीवता न हुई, तो कुछ न हुआ। यदि उसके पात्र निर्जीव, निष्क्रिय और धुँधले हैं, तो वह कला दोषपूर्ण कही जायेगी। जीवन स्फुरण ही कला में प्राण भरती है। सच्ची कला कलाकार के गतिशील व्यक्तित्व से ओत-प्रोत होती है।

लेखक के चरित्र का उसके साहित्य पर प्रभाव पड़ता है—लेखक का प्रत्येक शब्द प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उसके चरित्र और उद्देश्यों को प्रकट करता है। जो जैसा होगा, वैसा ही प्रकट करेगा, वही कहेगा, उधर ही चलेगा। उसका सदाचार और सच्चरित्र ही उसके साहित्य को श्रेष्ठता प्रदान करेगा।

लेखक के सद्विचार ही उसके साहित्य को ऊँचाई पर ले जायेंगे। वह जितना अधिक उज्ज्वल चरित्र होगा, सुसंस्कृत और दृढ़व्रती होगा उतना ही अधिक देशोद्धार कर सकेगा। पहले लेखक स्वयं अपना निर्माण करे। उज्ज्वल चरित्र का उदाहरण प्रस्तुत करे, फिर जनता के लिए उन्हीं व्यावहारिक आदर्शों के स्पष्टीकरण के निमित्त लिखे।

अपना लक्ष्य स्पष्ट रखिये—वयोवृद्ध लेखक पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने लेखकों को सावधान करते हुए उचित ही लिखा है—

"दुर्भाग्यवश हम नए लेखकों में अधिकांश ऐसे हैं, जिनके जीवन तथा लेखन का कोई विशेष लक्ष्य नहीं है और जो अपनी नौका को उल्टी-सीधी, चाहे जिस दिशा में खेते रहते हैं।"

नतीजा यह होता है कि कहीं नहीं पहुँच पाते कितने ही लेखक ऐसे हैं, जिन्होंने लिखा तो बहुत है पर वह असम्बद्ध है और उसका संग्रह नहीं किया जा सकता।

कुछ ऐसे भी हैं, जिन्होंने केवल जीविका-निर्वाह के लिए जल्दी में बीसियों पुस्तकें लिख डाली हैं। मजबूर होकर उन्हें ऐसा करना पड़ा है, उनके ग्रन्थों में से किसी के भी अधिक जीवित रहने की आशा नही है। परिश्रम का लेना ही पर्याप्त नहीं, उसके पीछे कोई उचित आयोजना होनी चाहिए—कोई स्कीम, जिसके अनुसार निरन्तर कार्य किया जा सके।"

आप आरम्भ से ही लेखन में अपना लक्ष्य स्पष्ट रखें।

ज्ञान प्रदान भी एक पुण्य है—संसार में भूमि, धन, भोजन, गाय, आश्रय तथा इसी प्रकार की अन्य वस्तुओं का दान देना पुण्य माना गया है, किन्तु ये सब पदार्थ भौतिक हैं। ये मनुष्य की क्षणिक भौतिक आवश्यकताओं मात्र की पूर्ति करते हैं। दो-चार दस दिन के लिए मनुष्य को कुछ सहायता अवश्य मिल जाती है पर स्थाई लाभ नहीं होता।

ज्ञान-दान सब से बड़ा पुण्य है। किसी के विवेक को जाग्रत करने से उसमें स्वयं अपना अच्छा-बुरा समझने और सद्बुद्धि को विकसित करने की शुभ प्रेरणा उत्पन्न होती है। वह स्वयं अपनी सहायता करना सीखता है। इस स्वावलम्बन से उसे तथा उसके अनुकरण पर आस-पास वाले सब को ही लाभ होता है।

ज्ञान-दान एक स्थाई दान है। जिस व्यक्ति के मन में एक बार कोई शुभ धारणा या पवित्र विचार जमा दिया जाता है, वह उसी से नियमित और निरन्तर लाभ उठाता चलता है। सुमति ही सबसे बड़ा धन है। जिसके पास सुमति है, वह स्वयं दिन दूना रात चौगुना आगे बढ़ेगा तथा स्वयं अपनी सर्वतोमुखी उन्नति की योजनाएँ बनाकर उन पर आरूढ़ होगा।

आप अपने साहित्य द्वारा जन-जागरण का पुण्य कार्य करें। लोगों की मूढ़ता और मन्दमति को दूर करें, उनकी दुष्ट, पाशविक वासनाओं का दमन करें और पवित्र दैवी प्रवृत्तियों को जाग्रत करें। अब हमारा देश स्वतन्त्र हो चुका है। उसे ऐसे प्रेरक और प्राणदायक सत्साहित्य की आवश्यकता है, जो राष्ट्रीय चरित्र को ऊँचा उठाये, जातीय उत्थान में सहायक हो। हमारी भाषा और साहित्य रचना की उपयोगिता इसी बात में है कि वह समाज को कितना ऊँचा उठाती है?

आज के युग में लेखकों का दायित्व—वर्तमान हिन्दी साहित्य को समाज के लिए अधिकाधिक उपयोगी बनाने की आवश्यकता है। गन्दे और अश्लील साहित्य की बिक्री धड़ल्ले से हो रही है। चुपचाप वह ऊँचे मूल्य पर बेचा जाता है। सरकार चाहती है कि ऐसा कुरुचि-पूर्ण साहित्य रोका जाय। सरकारी कानून से दिमागी ऐय्याशी नहीं रुकेगी, चुपचाप ऐसा साहित्य जनता को निकम्मा और सदा कामुक बनाता रहेगा और हमारा राष्ट्रीय चरित्र गिर जायगा। वर्तमान युग में लेखकों और साहित्य सेवियों का पुनीत कर्त्तव्य है कि सात्विक और धार्मिक साहित्य को अधिकाधिक मनोरंजक बनायें। आपकी लेखन कला द्वारा देश, जाति और समाज का उत्थान हो। नैतिक बल बढ़े ।

पं० जवाहरलाल नेहरू ने लेखकों और पत्रकारों के कर्त्तव्य को स्पष्ट करते हुए सत्य ही लिखा है—

"स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के युग में अपने पाठकों के मन पर पूर्ण प्रभाव डालकर विचार एवं दृष्टिकोण का निर्माण करने में समाचार-पत्रों को महत्त्वपूर्ण कार्य करना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। यदि उन्होंने गैर जिम्मेदारी से कार्य किया, तो वे अपनी मातृभूमि के गौरव को ही धक्का पहुँचायेंगे।

भारत एक महान देश है। उसने जो महत्ता प्राप्त की है, वह हमारे कारण नहीं वरन् उसके अतीत गौरव, उच्च नैतिक सभ्यता एवं राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के प्रयासों से ही उसे यह पद मिला है। जो लेखक और पत्रकार जनता के दैनिक शिक्षण के महान उत्तरदायित्व का ध्यान न रखेंगे, वे देश को अत्यधिक हानि पहुँचायेंगे और अपनी अदूरदर्शिता का परिचय देंगे।''

एक पत्रकार के कर्त्तव्य—श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' हिन्दी के पुराने सिद्धहस्त लेखक, चिन्तक और पत्रकार हैं। 'नया जीवन' नामक मासिक और 'विकास' साप्ताहिक पत्र के सम्पादक हैं। जब श्री अखिलेश ने उनसे पूछा कि पत्रकारिता का उद्देश्य क्या है ? तो उन्होंने इन शब्दों में अपने उद्देश्य बताए थे—

''मेरे लिए तो पत्रकारिता का अर्थ सदा यही रहा है कि जनता की दबी पीड़ा और मूक आकांक्षा को वाणी दी जाय—उस वाणी को बल से भरपूर किया जाय और बुराइयों के झाड़-झंखाड़ में दबी दबाई अच्छाई को उभारा जाय।

पिता की पोषक प्रेरणा, अध्यापक की रसभरी रचना-बुद्धि, शासक की दण्ड क्षमता और साथ ही विद्रोह की बर्दाश्त जिसमें नहीं है, वह क्या पत्रकार होगा। मानवता के जीवन-उपवन का माली होने के लिए तो जीवन की तापसी साधना अनिवार्य ही है।

हमारा काम यह नहीं है कि इस विशाल देश में बसे चन्द दिमागी ऐय्याशों का फालतू समय चैन से काटने के लिए मनोरंजक साहित्य नाम का मयखाना हर समय खुला रखें।

हमारा काम यह है कि इस विशाल देश के कोने-कोने में फैले जनसाधारण के मन में विशृंखलित वर्तमान के प्रति विद्रोह और भव्य भविष्यत् के निर्माण की भूख जगाएँ।''

उपर्युक्त तथ्य नए लेखकों के लिए मार्गदर्शक हैं। संसार में अनेक सत्कर्म हैं, लेकिन अच्छे विचार देना, ज्ञानदान देना, सुप्त समाज को जाग्रत करना और उन्नतिशील बनाना—सबसे बड़ा सत्कर्म है। अच्छे विचार और योजनाओं के अभाव में असंख्य लोग निकम्मा जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उन्हें ऊँचा उठाना लेखक का पावन कर्त्तव्य है। आदर्श पत्रकारिता का उद्देश्य जन-जागरण और जनहित ही है।

'प्रभाकर' जी ने आगे भी कहा है ''जो अबोध हैं, सुषुप्त हैं, उन्हें जगाना ही मुख्य है। सोते-सोते जो कमजोर हो गये हैं या अपाहिज हैं, उनकी सेवा आवश्यक है, पर जागरण और सेवा दोनों का मार्गदर्शक है जनहित।

हम अबोध जन को क्यों जगाएँ ? क्या विनाश के गड्ढे की ओर दौड़ने के लिए, जैसे शेर हाँका लगाकर बन्दूक के मुँह की ओर ढकेला जाता है ?

मैंने इन ३४ वर्षों में निरन्तर जागरण का शंख बजाया है और सेवा का मरहम लगाया है, या यों कहूँ कि सेवा की है, बीमार के दृष्टिकोण से ही पथ्य एवं दवा दी है अपने विवेक के अनुसार। इसके लिए मुझे कई बार बीमारों ने गालियाँ दी हैं।

''पर मैं तो उन पत्रकारों का वंशधर हूँ, जिन्होंने गोलियों के सामने अपने सीने खोल दिये। उनके स्मरण ने मुझे जस बल दिया और मैंने उन गालियों को प्रमाण पत्र माना।''

यही आदर्श हमें पालन करना चाहिए। हमारा कार्य जनता को जागृत करना और सही दृष्टिकोण देना है। लोग उसे नापसन्द करेंगे, पर अन्त में सत्य और न्याय ही विजयी होंगे।

समाज का सुधार-गरीबी दूर करने का उद्देश्य—अप्टन सिंकलेयर अमेरिका के लोकप्रिय लेखक के सम्बन्ध में हरीश रायजादा ने एक लेख लिखा है, जो नए लेखकों के लिए प्रेरक है। उस लेख से कुछ जानकारी यहाँ प्रस्तुत की जा रही है—

अप्टन सिंकलेयर ने ४८ पुस्तकें और ५०० से अधिक पेम्फलेट लिखे। उसकी पुस्तकों की २० लाख से भी अधिक प्रतियाँ जर्मनी में, तीस लाख से अधिक रूस में बिकीं। क्रान्तिकारी पुस्तकों ने रूसी क्रान्ति में विशेष सहायता पहुँचाई। इस महान लेखक को पूँजी की नगरी अमेरिका में भी वर्षों तक भूखे रहना पड़ा था। निर्धन होने के कारण वे लोग गन्दे और छोटे मकानों में रहते थे। उन्हें आये दिन एक सड़क से दूसरी सड़क पर मकान की तलाश करनी पड़ती थी, क्योंकि वे महीनों तक पिछले मकान का किराया देने में असमर्थ रहते थे।

दस वर्ष की आयु तक सिंकलेयर को स्कूल जाने का अवसर नहीं मिल सका था, क्योंकि उसके पास फीस देने के लिए रुपये ही न थे। उसने पढ़ना-लिखना घर पर ही सीखा और जब उसे स्कूल जाने का अवसर मिला, तो वह उपन्यास लेखकों की महत्त्वपूर्ण पुस्तकों को पढ़ चुका था। डिकेन्स और थैकरे की तो सभी पुस्तकें पढ़ डाली थीं, उसने सस्ते उपन्यास, व्यंग्य तथा हास्य-लेख बेचकर पैसा कमाना आरम्भ किया। वह प्रत्येक रात्रि को आठ हजार शब्दों की कहानी लिखता और साथ ही ८ घण्टे तक अपना शिक्षा कार्य भी पूरा करता था। पर वह धन का भूखा नहीं था। वह समाज का सुधार करना चाहता था। गरीबी नष्ट करना चाहता था। इसलिए उसने निर्धन व्यक्तियों के जीवन सम्बन्धी उपन्यास लिखने आरम्भ किये। अन्त में उसने सस्ता साहित्य-सृजन न करने का निश्चय कर लिया था।''

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लेखन सीखने की विभिन्न सामग्री

लेखन की नोट-बुक—लेखक के पास कई प्रकार की नोट-बुकें, डायरी तथा फाइलें होनी चाहिए। इनमें लेखन के लिए उपयोगी तत्त्वों का संग्रह करते रहना चाहिए।

एक नोट-बुक शैली सम्बन्धी होनी चाहिए, इसमें शैली विकसित करने की उपयोगी सामग्री का संकलन रहना चाहिए, जैसे—आपकी एक नोट-बुक शब्द चयन का कार्य कर सकती है। इसमें विभिन्न विषयक उत्तमोत्तम शब्दों का चयन रह सकता है। लेखक को अपने विभिन्न विचार अभिव्यक्त करने के हेतु असंख्य प्रकार के हल्के भारी शब्दों का संग्रह रखना पड़ता है, मुहावरे, अलंकार तथा जो अपूर्ण स्थलों के नमूने रखने पड़ते हैं। अन्य प्रसिद्ध लेखकों की शैलियों के उदाहरण तैयार रहते हैं। इन सबकी उसे पग-पग पर सहायता लेनी होती है। लेखन कार्य के लिए लम्बी साधना, अभ्यास और चौकन्नापन रखना पड़ता है। हम जिस ओर बढ़ना चाहते हैं, उस ओर चलने के लिए जो उपयोगी सामग्री होती है, उसका विपुल भंडार बढ़ाते रहना पड़ता है। आपके लेखन कक्ष में इस आवश्यक सामान का होना अति आवश्यक है।

शब्द चयन की नोट-बुक में कैसे लिखें ?—आपकी पहली नोट-बुक शब्दों का वर्गीकृत शब्द भंडार रहेगा। एक ही भाव, विषय अथवा वर्ग का स्पष्टीकरण करने वाले शब्द आपको चाहिए। फिर इनमें थोड़ी-थोड़ी क्या विभिन्नता है? किस शब्द में क्या सौन्दर्य है? कैसा रंग और सुगन्ध है, क्या अन्तर है, इससे पाठक पर क्या प्रभाव पड़ेगा, उसकी कैसी ध्वनि है आदि अनेक बातों की जानकारी रहनी अनिवार्य है। आप विचारों के खाते डाल लीजिए और उसी प्रकार के शब्दों को एकत्रित करते चलिये।

ऐसे शब्दकोष भी मिलते हैं, जिसमें पर्यायवाची शब्दों का भंडार एक ही स्थान में मिल जाता है। आप एक ऐसा कोष अवश्य खरीद लें। कवियों के लिए तो यह अतीव आवश्यक है कि वह ऐसा कोष पास रखें। जब कभी किसी एक विषय के शब्दों की आवश्यकता हो तो तुरन्त इससे सहायता ली जा सकती है।

एक और बात करें। प्रत्येक शब्द का प्रयोग भी बड़ा महत्त्व रखता है। गलत प्रयोग से अर्थ का अनर्थ हो जाता है। जहाँ कोई शब्द अपने पूरे सौन्दर्य और अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, आप उस समूचे वाक्य को ही नोट कर रखिये। सम्भव हो तो इसे यादकर डालिये। फिर अपने लेखन में ऐसा ही वाक्य बनाइये। दो-चार बार उस शब्द का प्रयोग करने से वह आपका अपना ही बन जायेगा।

उदाहरण के लिए अपनी नोट-बुक में शब्द इस प्रकार दर्ज रहें। यह शब्दों का अध्ययन है—

उद्वेलित उद्वेग—चित्त की आकुलता, घबराहट, मनुष्य के मनोवेगों की तीव्रता, चित्तवृत्ति की क्षिप्रता, जोश। उद्विग्न-उद्वेगयुक्त, आकुल, व्याकुल, घबराया हुआ, व्यग्र।

प्रयोग—दिन पर दिन ज्यों-ज्यों पूर्ण यौवन इस बालिका की देह के कोने-कोने में भरकर उद्वेलित होने लगा, त्यों-त्यों उसका धर्म-कर्म भी मानों उन सबका अतिक्रम करके बढ़ने लगा।

इस प्रकार बहुत-से शब्द तथा उनके प्रयोग एकत्रित करते चलिये। इसके लिए सहायक रूप में इंडियन प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित 'हिन्दी शब्द सागर' एक उपयोगी कोष रहेगा। उसी में शब्दों के अर्थ देखकर भली-भाँति नोट कर लीजिए। प्रयोग वाले सुन्दर-सुन्दर वाक्य यदि आपको स्मरण रहें, तो उत्तम है अन्यथा आपको शब्दों को ढूँढ़ने में इस डायरी में देखना पड़ेगा।

शब्दों का वर्गीकरण—दूसरी डायरी वर्गीकरण की होनी चाहिए। इसमें आप एक ही प्रकार की ध्वनि, अर्थ या रूप के शब्दों का चुनाव करते रहें। जैसे बनिये बही में खाते डाल लेते हैं, उसी भाँति हर एक अर्थ के शब्दों के लिए एक-एक खाता डाल लीजिए। जब भी उसी प्रकार का कोई शब्द आये, तो उसमें नोट कर लीजिए।

उदाहरणार्थ—एक पृष्ठ पर आपने लिखा 'वेदना'। अब आप इस पृष्ठ पर वेदनासूचक शब्द दर्ज करते जाइये।

जैसे—वेदना, व्यथा, कसक, जलन, रुदन, हाहाकार, क्रान्ति, क्रन्दन, उत्पीड़न, कल्पना तूफान, अन्तररोहन, रंकता, आकुलता, पीर, पीड़ा, दारुण दुःख, आन्तरिक क्लेश, हूक, अन्तर-विद्रोह, अंधकार, विद्रोह, हृदयद्रावक निराशा, अश्रुओं से क्रीड़ा, दुस्सह हाहाकार, दुर्दयनीय विषाद, मौनरोदन, शून्यता, फफक-फफक कर रोना, दुर्वह संघान, अन्त ज्वाला।

इस प्रकार के अनेक शब्द और भावों का वर्गीकृत अध्ययन हो सकता है। आप जैसा वर्णन करने चलें, उसी प्रकार के शब्द समूह निकाल लीजिए और अपने वर्णन में प्रयुक्त कीजिए। पात्रों के जैसे मनोभाव हों, उसी के अनुरूप एक स्थान पर आपको समस्त संचित सामग्री उपलब्ध हो जायेगी।

शब्दों का बड़ा भारी महत्त्व है। शब्दों के उपयुक्त और सही प्रयोग से ही आप उत्तम ग्रन्थकार बनते हैं। जिस प्रकार चित्रकार भिन्न-भिन्न रंगों से अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है, उसी प्रकार लेखक शब्दों के उचित प्रयोग से अच्छा स्थायी प्रभाव डालता है।

उत्तम स्थलों और ओजपूर्ण प्रसंगों की नोट बुक—तीसरी डायरी बड़े लेखकों के उद्धरणों, प्रभावशाली प्रयोगों और ओजपूर्ण स्थलों के संकलनों की रखिये। ओजपूर्ण प्रसंग लेखन शैली के अलंकार हैं। दूसरों के प्रयोग देखकर ही उनसे अभ्यास करना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महान लेखकों की रचनाओं में जो भी स्थल, उत्तम प्रयोग, या वाक्य प्रभावशाली प्रतीत हों, उन्हें अपनी डायरी में बिना आलस्य के लिख लिया कीजिए। इनमें यह देखिए कि वे अपने विषय का प्रारम्भ किस प्रभावशाली ढंग से शुरू करते हैं। इन आरम्भों को अलग से एक स्थान पर नोट करते चलिए। इसी प्रकार अन्त किस नए और आकर्षक रूप में किया जाता है, इसे भी ध्यानपूर्वक देखिए।

कहीं-कहीं कोई पैराग्राफ बड़ा कलात्मक और विचारपूर्वक लिखा जाता है। आप नमूने के तौर पर इन पैराग्राफों को भी एकत्रित कीजिए।

सिद्धहस्त लेखक की त्वराबुद्धि, परिपक्व ज्ञान, तीखे नेत्र ही नहीं, अंग-प्रत्यंग भी ऐसे सीख-पढ़ जाते हैं कि समाचार-पत्र, पुस्तक, कविता, निबन्ध पढ़ते-पढ़ते जहाँ अपने मतलब की कोई नवीन उपयोगी लेख में आने वाली उक्ति आई, वह तुरन्त उसे नोट कर लेता है। मधुमक्खी की तरह स्थान-स्थान से अपने काम की बातों को एकत्रित करने की प्रतिभा उसे विकसित करनी चाहिए।

हम अपनी डायरी के कुछ भाग नमूने के तौर पर यहाँ उद्धृत करते हैं—

"जहाँ देखिये जैसे रस टपक पड़ता हो—मानों स्वयं सरस्वती देवी हंस छोड़कर इस महाकवि की जिह्वा पर नृत्य करती है—किन्तु खेद, अपने आश्रयदाताओं के ताल के अनुसार उनकी कव्यकला नर्तकी की भाँति नाचने लगी।"

"भजन सुनकर किसी ने मिठाई का टुकड़ा दिया, किसी ने पूड़ी, किसी ने पैसा, फिर भी लोग बिखरकर अपने अपने कार्यों डूब गये। हरि कहते-कहते पुनः आँसुओं में क्रीड़ा करने लगा—हृदय को पानी-पानी कर देने वाले भावों की हूक अश्रुधारा में बह रही थी।"

"अ-र-ब !

रेगिस्तान, वियावान, पेड़ का नाम, न पत्ती का निशान, जलती धूप बलती बालू, समूम के वंडर, मृगतृष्णा का समुन्दर, प्यासा इन्सान, झुलसा हैवान, बिलबिलाते ऊँट, भटकते बद्दू।

अरब का नाम लीजिए और आपके दिमाग में ये सारी बातें खुद वह खुद दौड़ जायेंगी—मुसलमानों का पाक मुल्क, इस्लाम हजरा का ए-पैदाइश, अरबी सभ्यता का उद्गम स्रोत और मोमिन को हाजी बना देने वाला मुकाम।"

इसी प्रकार आप अपने प्रिय विषय के सम्बन्ध में प्रभावशाली उदाहरण एकत्रित करते चलिये। स्वयं भी इन शैलियों में कुछ लिख देखिए। लेख में परिवर्तन करने के लिए कहीं कथा, तो कहीं बातचीत की शैली का प्रयोग कीजिए। सब प्रकार के बहुत-से नमूने आपकी इस डायरी में संग्रहीत रहने चाहिए।

आपका अनुभव जैसे-जैसे बढ़ता जाएगा, वैसे-वैसे इन्द्रियाँ भी अपने योग्य सामग्री इकट्ठी करने में दक्ष होती जायेंगी। अभ्यास, अनुभूति तथा आवश्यकता के अनुसार आपकी अन्तर्दृष्टि इस दिशा में शिक्षित होती जायेगी। अच्छे लेखकों की रचनाओं को पढ़ते रहने की आदत डालिये और उनके सुन्दर, उत्कृष्ट कलात्मक, और प्रभावशाली प्रसंगों को बार-बार स्टडी कीजिए। देखिए वे किस प्रकार के शब्दों का, उदाहरणों, सूक्तियों अथवा बातचीत का प्रयोग करते हैं। इन्हीं का स्वयं भी अनुकरण कीजिए।

प्रेस कटिंग की फाइल—प्रतिदिन, सप्ताह और मास में पत्र-पत्रिकाओं में उपयोगी सामग्री प्रकाशित होती रहती है। आपके प्रिय विषय पर भी समय-समय पर लेख प्रकाशित होते हैं। इनकी सामग्री आपके आगे के लेखन कार्य में बड़ी सहायक सिद्ध हो सकती है।

नए लेखकों को समाचार पत्र बड़े ध्यानपूर्वक तथा नियमित रूप से पढ़ने चाहिए। आवश्यक, नए और उपयोगी समाचारों या न्यूज की कटिंग कर लेनी चाहिए। ये काटे हुए टुकड़े आपको नए लेखों की उपयोगी सामग्री प्रदान कर सकते हैं।

विषय के अनुसार वर्गीकरण कर आप इन कटिंगों को एक-एक फाइल में अलग-अलग सजाते चलिए। एक-एक विषय की पृथक फाइल बनाइये। चाहें तो पृथक-पृथक लिफाफों में भी ये विषयवार लेख इकट्ठे किये जा सकते हैं।

मासिक पत्रों में भी जो लेख सामग्री की उपयोगिता की दृष्टि से काम के लगें, उन्हें भी फाड़कर अपनी फाइलों में एकत्रित कीजिए। यदि आप कोई दूसरी भाषा जानते हैं, तो उसके भी लेख विषय के कारण इसी फाइल में सुरक्षित रह सकते हैं। अपने पुराने मासिक पत्रों और साप्ताहिकों का भी संग्रह रद्दी में मत बेचिये। ये भविष्य में आपके बड़े काम की सिद्ध हो सकती हैं।

पुस्तकों की आलोचनाओं की सहायता से आपको नवीन उपयोगी पुस्तकों का ज्ञान प्राप्त हो सकेगा।

आपका अध्ययन कक्ष—नवीन लेखकों को अध्ययन और स्वाध्याय की आदत बढ़ानी चाहिए। आप जिस विषय पर पुस्तक या लेख लिख रहे हैं, इस विषय की उत्तमोत्तम प्रामाणिक और नवीनतम पुस्तकों को पढ़ने की आदत डालिये।

पुस्तक विक्रेताओं के यहाँ दुकानों पर जाया कीजिए और नई-नई पुस्तकों को देखिए। उन्हें खरीदिये तथा उपयोगी तथ्यों के नोट्स लीजिए। जितना अधिक ज्ञान होगा, आपकी रचना उतनी ही प्रामाणिक मानी जायेगी। नए ज्ञान को मन में धारणा करने से ही लेखक अमर होता है। कुछ नई चीज पाने के लिए ही तो लोग आपकी पुस्तक पढ़ते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बड़ी पुस्तकों या अच्छे लेखों का सारांश मालूम करने की आदत डालिये। जो काम की बात आये, उसके नीचे आप पेंसिल से निशान कर लें इस प्रकार प्रत्येक पैराग्राफ में से काम के तथ्य एकत्रित करने की आदत डालें। समाचार-पत्रों तथा साप्ताहिक पत्रों के सम्पादकीय बड़े सारगर्भित होते हैं। वे कुशल जानकार व्यक्तियों द्वारा विशेष अध्ययन के उपरान्त लिखे जाते हैं। आप किसी अच्छे साप्ताहिक ('हिन्दुस्तान' अथवा 'धर्मयुग') की सम्पादकीय टिप्पणियों में सामयिक महत्त्व के अनेक विषय तथा उनकी संक्षिप्त रूपरेखाएँ पा जायेंगे। इनको विकसित करके लेखों में परिवर्तन किया जा सकता है।

अध्ययन का व्यापक अर्थ लीजिए। आप गाँव, तथा देशों में खूब भ्रमण करें। लोगों के रहन-सहन के तरीके, भाषाएँ, रिवाज, पहनावे, त्यौहार इत्यादि का अध्ययन अपने सूक्ष्म दर्शन से करें।

अध्ययन का तात्पर्य अपनी अधिक से अधिक जानकारी बढ़ाना है। आपका जितना अनुभव, जानकारी, ज्ञान और जान-पहचान बढ़ेगी, उतने ही आपके लेख उपयोगी और सारगर्भित बनेंगे।

रचनाओं की सामग्रियाँ एकत्रित हैं ?

लेखों, कहानियाँ, संरक्षण; लघु निबन्धों तथा अन्य रचनाओं को एकत्रित करना आपकी भौतिक सूझ-बूझ प्रतिभा, निरीक्षण की गहराई, बारीकी से बातचीत और जागरूकता पर निर्भर है।

नई बात को सोचने और उसे समाज में प्रस्तुत करने की आदत विकसित कीजिए। आप यदि चौकन्ने हैं और नई बात को खोजने निकले हैं, तो वह आपको अवश्य मिलेगी।

नई सामग्री प्रत्येक स्थान से एकत्रित हो सकती है, किन्तु शर्त यह है कि लेखक में उसको पकड़ने की शक्ति हो। यह परख हो कि अमुक चीज नवीन है और दूसरे वहाँ तक अभी नहीं पहुँचे हैं। किस बात में दूसरों को दिलचस्पी हो सकती है? कौन-सी बात नई एवं कौतूहलवर्द्धक है?

नई दृष्टि विकसित करने का गुण अनुभव से बढ़ता है। चारों ओर सावधानी से चलिए। लोगों से उनके व्यक्तिगत संस्मरण सुनिये। समाचार-पत्र और साप्ताहिक-पत्र प्रतिदिन पढ़िये। जो विषय जिन दिनों चल रहे हों, उन्हीं पर लिखिए।

लिखना प्रारम्भ करने के लिए स्वास्थ्य एक अच्छा सरल और उपयोगी विषय है। मौसम के अनुसार रहन-सहन, स्वास्थ्य-रक्षा, रोग, फल-तरकारियों आदि पर लिखिए।

अपनी यात्राओं के वर्णन लिखिए। देखी हुई दिलचस्प घटनाएँ, विचित्र पुरुष, या कौतूहलवर्द्धक संस्मरण लिखिए। पाठक साधारण नित्यप्रति घटने वाली घटनाएँ तो स्वयं ही जानते हैं। वे आपके लेख से कुछ नवीनता, कुछ ज्ञानवर्द्धक, कुछ मनोरंजन और कुछ रहस्य-रोमांच चाहते हैं।

दुनिया नवीनता के पीछे पागल है। पुरानी घिसी-पिटी बातों से उसका मन भर गया है। सामान्य बातों में उसे कोई दिलचस्पी नहीं है। उन्हें नई चीज दीजिए। यदि पुरानी हो, तो नये साँचे में ढली हुई चीज हो और वह इस आकर्षक शैली में दी जाय कि बिल्कुल नई नवेली और आकर्षक प्रतीत हो। उनमें कुछ न कुछ आकर्षण या कोई शैलीगत अथवा विषयगत चमत्कार प्रतीत हो। नवीनता, चमत्कार, मनोरंजन, दिलचस्प बातें आपको अपनी नोट-बुक में दर्ज करते रहना चाहिए। इन्हीं केन्द्र बिन्दुओं के इर्द-गिर्द लेख, कहानियाँ तैयार होती चलेंगी।

नवीनता, चमत्कार और आकर्षणों को लेकर नई सामग्री संचय करने निकलें, तो उस विषय पर बहुत-सा मैटर आपके स्वयं के अनुभवों से प्राप्त हो जाएगा। प्रत्येक लेखक के जीवन में ऐसी घटनाएँ घटती रहती हैं, जो अपनी प्रभावशीलता और मौलिकता के कारण हृदय-पटल पर अमिट छाप छोड़ जाती हैं। प्राय: सत्य कल्पना से अधिक मनोरंजन होता है।

प्राय: इस प्रकार के अनुभव लेख के लिए आत्मा बन जाते हैं। बहुत-सी सामग्री आप, आपके मित्रों, सम्बन्धियों के पास व्यक्तिगत अनुभवों, अध्ययन, संसार की घटनाओं और अखबारों के आधार पर संग्रहीत होती रही है।

अधिक गम्भीर लेखों की सामग्री के लिए स्वयं ही अपनी मौलिक प्रतिभा, नई सूझ-बूझ और अध्ययन या पुरानी पुस्तकों से प्राप्त कीजिए।

गीतों पर रोचक लेख तैयार हो सकते हैं। स्त्रियों के रोगों, स्वास्थ्य, अनुभव, नैतिक जीवन, दैनिक जीवन में क्या-क्या करें, उन्नति कैसे करें, इत्यादि विषयों पर लिखें।

चुटकुले, उपदेश, सन्त वाणी, कविता की कड़ी, मित्रों की चुहल, आलोचना, कहावत, मजाकिया आदमी का मजाक, दिलचस्प मामले, प्रतिदिन की घटनाएँ, भूत-प्रेत की कल्पनाएँ, जनसाधारण की मूर्खताएँ, अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता, सामयिक प्रसंग, रेल में धाँधली, पार्टी के मनोरंजन आदि आपको नई रचनाओं के लिये सामग्री दे सकते हैं।

आपके लेख वापस क्यों लौट आते हैं ?—आपकी रचनाएँ सम्पादक वापस कर देते हैं अथवा रद्दी की टोकरियों में क्यों फेंक देते हैं ?

अनेक लेखक इसी बात से परेशान हैं कि उनकी रचनाओं पर सम्पादक लोग कोई ध्यान नहीं देते। यह एक स्थिति है, जिसमें होकर हर नए लेखक को आगे बढ़ना पड़ता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नवीन तथा पुराने प्राय: सभी लेखकों की रचनायें अस्वीकृत होती रही हैं। सम्पादक के दृष्टिकोण सदा ही भिन्न-भिन्न रहते हैं। एक रचना सम्भव है एक सम्पादक को न जँचे, किन्तु दूसरा उसी को सहर्ष प्रकाशित कर दे। इसलिए अपनी रचना की एक प्रतिलिपि सदा अपने पास रखनी चाहिए। एक पत्र के बाद दूसरे में भेजते रहना चाहिए। प्रत्येक पत्र की अपनी नीति होती है। उसके पूर्व अंक देखकर उसके दृष्टिकोण को समझने का प्रयत्न करना चाहिए।

आपकी रचना के लौटने का कारण विचारों की अपरिपक्वता हो सकती है। अनुभव, ज्ञान, अभ्यास की कमी या शैली का बचकानापन, पुराने ढर्रे पर लिखी होने के कारण रचना लौटकर आ सकती है। संक्षेप में आपके लेखों की अस्वीकृति के निम्न कारण हो सकते हैं—

विषय का पुरानापन—सम्भव है आपके लेख का विषय ही पुराना, घिसा-पिटा और सामान्य हो और उसमें जनसाधारण के लिए कोई नवीनता ही न हो। यदि विषय के चुनाव में गलती हो गई है, तो अच्छे से अच्छे लेखक का लेख अस्वीकृत हो सकता है।

अपने विषय की नवीनता के विषय में बड़े सतर्क रहें। यह ऐसा हो कि प्रत्येक पाठक के नेत्र उसमें अनायास ही अटक जायें, वह पत्रिका का पन्ना आपका लेख पढ़े बिना न उलट सके। जितना आकर्षक लेख होगा, उतना ही उसके प्रकाशन की अधिक सम्भावना रहेगी।

शीर्षक में आकर्षण की कमी—सम्भव है आपने जो नाम अपने लेख को दिया है, वह लुभावना और आकर्षक न हो! कम से कम ऐसा शीर्षक छाँटिये जो कौतूहलवर्द्धक और चमत्कारपूर्ण हो। देखिये, कुछ आकर्षक शीर्षक इस प्रकार हो सकते हैं—

१. स्त्रियों की सबसे दुश्मन स्त्रियाँ ही हैं।

२. तुम मरकर जीना चाहते हो, या जीकर मरना ?

३. जीवन की मोमबत्ती को दोनों ओर से मत फूँकिये।

४. तंग जूते संसार में एक बहुत बड़ा प्रसाद हैं।

५. बुरे पति अच्छे होते हैं।

६. झाड़ू लगाने की कला।

पिष्ट पेषण न करें—कितनी ही बार लेखक उन्हीं पुराने विषयों को ले बैठते हैं और उसी पुरानी ढीली-ढाली उपदेश प्रधान शैली में पांडित्य प्रदर्शन करने लगते हैं। साम्यवाद, प्रजातन्त्र के लाभ, समाज सुधार, स्त्री शिक्षा की आवश्यकता, स्वास्थ्य रक्षा इत्यादि ऐसे पिष्ट-पेषित विषय हैं, जिन पर बहुत-सा लिखा जा चुका है, प्रेम कहानियाँ ढेरों निकल चुकी हैं। पुराने विषयों को लेकर सैकड़ों कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। पाठक पुरानेपन से चिढ़ते हैं। उन्हें तो नए-नए आश्चर्यजनक विषय चाहिए।

भाषा का शैथिल्य—अनेक बार भाषा, शैली, शब्द चयन, मुहावरों का गलत प्रयोग, क्रम बिगड़ जाना, अंग्रेजी के शब्दों की ठूँस-ठाँस, व्यर्थ के विलष्ट शब्दों का जाल, तोड़-मरोड़ के कारण लेख प्राय: अस्वीकृत हो जाते हैं। नये लेखकों को भाषा में परिपक्वता लाने का प्रयत्न करना चाहिए।

लेखन कला की आत्मा सही विचार की प्रभावशाली अभिव्यक्ति है, शब्द और भाषा शरीर है। लेख में ऊलजलूल शब्दों को ठूँसना, कठिन संस्कृत के शब्दों का प्रयोग और शब्दों के प्रति अज्ञानता या गलत प्रयोग लेख की अस्वीकृति के कारण हो सकते हैं।

विचारों की निर्बलता—आपके विचार यदि गलत क्रम से अभिव्यक्त किए गये हैं या निर्जीव हैं, उनमें नवीनता नहीं है या चुराये हुए हैं, तो वे आकर्षक न होंगे। विचारपूर्वक अपने विषय पर खूब सोचिये, विचारिये, अध्ययन और मनन कीजिए तब उठाइये। आपके लेखन और शैली में आपका व्यक्तित्व झलकना चाहिए। अपने ढंग और अपनी मौलिक शैली में ही लिखिये।

अनेक बार मौलिकता के अभाव में लेख लौट आते हैं। जिस विषय पर स्वयं अपने ढंग से नहीं लिखा गया है, वह आकर्षक नहीं होता। मौलिकता लेख की जान है। मौलिक लेखक स्वयं अपनी टाँगों पर खड़ा होता है, दूसरों का सहारा नहीं झाँकता। यों तो यह मौलिकता ईश्वरीय देन है, किन्तु स्वयं अपनी दृष्टि और अपने ढंग से अभिव्यक्त करने से इस मौलिकता का विकास होता है। भ्रमण एवं पर्यटन से मौलिकता विकसित की जा सकती है। अपनी अलग ही आकर्षक शैली बनाइये।

पत्र का स्टैण्डर्ड देखिये—नवीन लेखक एक बड़ी गलती यह करते हैं कि अपने बचकाना और अपरिपक्व लेख आरम्भ से ही बड़े-बड़े पत्रों में छपे देखना चाहते हैं।

जब आप अनुभवी प्रतिष्ठित लेखक बन जायेंगे, तो बड़े से बड़ा पत्र आपकी रचनाएँ प्रकाशित करेगा, किन्तु आरम्भ में तो छोटे-छोटे पत्रों में ही रचनाएँ भेजनी चाहिए।

अभ्यास, अनुभव, ज्ञान तथा परिपक्वतायें आदि बहुमूल्य तत्त्व आपको क्रमश: प्रतिदिन लिखते रहने से प्राप्त होते हैं। इनमें अभ्यास सबसे बड़ा तत्त्व है।

अभ्यास के लिए मामूली द्वितीय श्रेणी के पत्रों में ही रचनाएँ छपने दीजिए। प्रत्येक छपी हुई रचना आपको प्रोत्साहन प्रदान करती हैं। जैसे-जैसे रचनाएँ छपती हैं, वैसे-वैसे आपके नाम का सर्वत्र विज्ञापन होता है। इसे देखकर अन्य पत्र भी आपके लेख छापना पसन्द करेंगे। अपना उत्साह निरन्तर बढ़ाते चलिए। लिखते-लिखते, छपते-छपते आप माने हुए लेखकों के गुट में सम्मिलित हो जायेंगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लेख का पत्र की नीति के अनुकूल न होना—अपने पत्र की रीति-नीति और पौलिसी के अनुकूल ही रचनाएँ तथा पत्रों के विषय पृथक होते हैं। कोई धार्मिक, नैतिक, राजनैतिक लेख छापता है, तो कोई सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और पारिवारिक लेख कितना भी सुन्दर क्यों न हो, पत्र की नीति के विपरीत न होने के कारण अस्वीकृत हो जायेगा।

प्राय: ऐसा होता है कि लेखक सामाजिक पत्र में राजनैतिक लेख भेज देते हैं। धार्मिक पत्र में सामाजिक लेख छपने चला जाता है। जो पत्र कहानी नहीं छापता, उसे कहानी भेज दी जाती है। ये सब गलतियाँ हैं।

पत्र की नीति के अनुकूल ही रहिये। उसके पुराने अंक देखकर सम्पादक के मस्तिष्क का अनुमान लगाइये। अपनी रचना के अनुकूल ही पत्र ढूँढ़िये।

पाण्डुलिपि का भद्दापन—रचनाओं को गन्दी रीति से लिखा हुआ होना, काट फाँस, यथेष्ट हाशिया न छोड़ना, दूर-दूर अथवा गहरी स्याही से न लिखना, अक्षरों का सुवाच्य न होना, विराम चिह्नों का अभाव, उनका कम्पोजीटरों द्वारा पढ़ा न जा सकना, आवश्यक परिवर्तन के लिए पंक्तियों के मध्य में स्थान न छोड़ना, लेख को बैरंग भेजना भी अनेक बार अस्वीकृति के कारण बन जाते हैं। आपका कागज मोटा, सफेद, अच्छी चमकीली काली स्याही में लिखा हुआ होना चाहिए। शब्दों को दूर-दूर लिखिये।

कभी-कभी एक पत्र एक विषय पर लेख छाप चुकता है और पुन: उसी विषय पर लेख नहीं छापना चाहता। आप यह देखलें कि पिछले दो-चार अंकों में कहीं उसी विषय पर किन्हीं महाशय का लेख तो नहीं छप चुका है।

कई बार लेख डाकखाने की गड़बड़ी से बीच में ही खो जाते हैं। आप अपने लेख रजिस्ट्री से भेजा करें, तो खोने का भय नहीं रहता।

कई बार सम्पादकों के पास इतने पत्र आ जाते हैं कि उसे आपका लेख पढ़ने का अवकाश हीं नहीं मिलता। कुछ दिन ठहरकर उन्हें स्मरण कराना चाहिए।

अपना प्रारम्भिक लेख यों भेजिए—जैसे नये दुकानदार को अपने ग्राहक को जमाने के लिए प्रारम्भ में बहुत अच्छा माल देना पड़ता है, उसी प्रकार लेखन के बाजार में अपनी साख जमाने के लिए आप अपने प्रारम्भिक लेखों के विषय, उनका प्रतिपादन और पाण्डुलिपि का सुवाच्य या टाइप होने के सम्बन्ध में बड़े सतर्क रहिये।

जिस पत्र में रचना छपानी है— उसकी रीति-नीति और उद्देश्यों का अध्ययन कीजिए। यह पत्र सम्पादक किस प्रकार के लेख छापना पसन्द करता है ? कौन-सा विषय इसी सिलसिले में और हो सकता है ? इस विषय के किस पक्ष पर और लेख छप जाने की सम्भावना है ? इस पत्र के पाठकों की कैसी रुचि हो सकती है ? क्या वे मेरे विषय में दिलचस्पी लेंगे ? जनता में किस प्रकार के लेखों की माँग है ? इन सब प्रश्नों पर अच्छी तरह विचार कर लें, तब लेख भेजें।

अपना प्रथम लेख खूब विचारपूर्ण और सुन्दर बनाइये। एक बार लिखकर उसे दो-चार दिन के लिए फाइल में लगाकर छोड़ दीजिए। चार दिन पश्चात उसे पुन: निकालकर परिवर्तित, परिवर्द्धित और परिष्कृत बनाइये।

इस बार आप उसी लेख को बड़े तीखे नेत्रों से, एक कटु आलोचनात्मक दृष्टि से देखिए। गलतियाँ निकालिये, पुराने शब्दों के स्थान पर नए शब्दों को जोड़िये, अधिकाधिक सुन्दर बनाइये।

इस बार देखिए कि वह लेख पढ़ने में कैसा लगता है ? उसमें प्रवाह है या नहीं ? कुछ चमत्कार दीखता है या नहीं ? पाठक पर उसका कैसा प्रभाव पड़ता है ? इत्यादि।

चतुर एवं होशियार लेखक, पत्रकार, कवि, कहानीकार तथा उपन्यास लेखक पुन:-पुन: अपनी कृतियों को पढ़कर आवश्यक परिवर्तन-संशोधन इत्यादि करते हैं। वे पहले लिखे हुए को काटने, दुबारा लिखने, जोड़ने, सारा लेख दुबारा लिखने में तनिक भी आलस्य नहीं करते। उनकी आँख, कान, बुद्धि सब इस प्रकार सीख पढ़ जाते हैं कि कर्ण कटु शब्द या अनावश्यक हिस्सों को डॉक्टर की छुरी की तरह एकदम काट डालते हैं।

सी. वेन्सन तो अपने लेखों को कई बार पुन:-पुन: लिखा करते थे। यही हाल बेकन था, जिन्होंने गठी हुई शैली का प्रयोग किया और एक भी शब्द व्यर्थ का नहीं लिखा था।

प्रवीण लेखक लेखनी चलाने में बड़े चौकन्ने तथा निर्दयी होते हैं। प्रारम्भिक अंश तो हर एक लेखक कई बार लिखता है। नये लेखक आलस्यवश अपने लिखे को काटते डरते हैं, किन्तु जो जितना अधिक भाषा के सुबोधपन, सरलता, प्रवाह की रक्षा करेगा, उसकी कृतियाँ उतनी ही आकर्षक होंगी।

इस परिवर्तन, संशोधन और परिवर्द्धन से परिपक्वता आती जाती है और लेखन शक्ति परिपुष्ट हो जाती है। नवीन लेख को कई बार लेख को सँवारना और सुन्दर बनाना चाहिए।

स्वच्छ, सुवाच्य और सुन्दर अक्षरों में लिखकर, पन्ने के दोनों ओर सम्पादक को सुधारने के लिए पर्याप्त हाशिया छोड़कर एक ही ओर लिखिये। आपकी प्रेस पाण्डुलिपि में यथासम्भव एक भी काँट-फाँस न हो। रचना को रजिस्ट्री से ही भेजिए। यदि आपने उस पत्र की रीति-नीति के अनुकूल अपनी उत्कृष्ट रचना भेजी है, उस पर पूरा-पूरा श्रम किया है तथा उस विषय का लेख सम्पादक के पास पहुँचा है, तो अवश्य आपका लेख प्रकाशित होगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लेखन कार्य इस प्रकार आरम्भ किया जाय

आत्मविश्वास पूर्वक लेखन प्रारम्भ कीजिए—तैरना सीखने के लिए आपको जल में कूदकर हाथ-पाँव मारने होंगे, तब धीरे-धीरे अभ्यास से तैरना आयेगा। दो चार बार आँख, नाक में पानी भरेगा, मुसीबत मालूम होगी, फिर तैरने में इनकी आदत-सी पड़ती जायगी। इसी प्रकार लिखना सीखने के लिए सर्वोत्तम उपाय यही है कि हम अपने अनुभवों को अपनी भाषा में प्रकट करें। लिखना शुरू करें। कुछ न कुछ प्रतिदिन नियमित रूप से जरूर लिखें। प्रतिदिन प्रतिष्ठित लेखकों की पुस्तकें पढ़ना, शब्द-सौष्ठव, वाक्य-विन्यास, वर्णन, अलंकारों के विविध प्रयोग, उनके शब्द, अर्थ तथा मनोभावों की अभिव्यक्ति का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करना चाहिए। फिर स्वयं अपना लेखन कार्य करना चाहिए।

आपके जो अनुभव मनोरंजक, उपयोगी या उपदेशप्रद हों, उन्हें आप लेखाबद्ध करें। प्रतिदिन सायंकाल अपनी डायरी लिखा करें। कोई यात्रा वर्णन लिखें, पैदल सफर किया हो तो उसके अनुभव लिखें।

किसी अनुवाद से प्रारम्भ करें—पं० बनारसीदास चतुर्वेदी की सलाह है—"नवीन लेखकों से मेरा आग्रह है कि वे अनुवाद से प्रारम्भ करें।"

स्टीफन ज्विग ने अपने आत्मचरित में लिखा है, "यदि कोई नवयुवक लेखक अपने लक्ष्य के विषय में अनिश्चित हों तो उसे मैं एक ही परामर्श दूँगा। वह यह कि वह किसी महान लेखक की छोटी-मोटी पुस्तक का अनुवाद किया करे या उसके आधार पर कोई ग्रन्थ लिख दें। नवीन लेखक जो भी सेवा आत्मत्याग की भावना से करेगा, उसमें उसे अपनी नई कृति की अपेक्षा सफलता मिलने की विशेष सम्भावना रहेगी, क्योंकि भक्तिपूर्वक किया हुआ कोई भी कार्य कदाचित निष्फल नहीं जाता। यह अनुवाद उर्दू, अँग्रेजी, बँगला, गुजराती, मराठी, पंजाबी इत्यादि किसी भी प्रान्तीय भाषा से किया जा सकता है।

लेखक अपनी रुचि के अनुवाद के लिए कोई भी प्रिय पुस्तक चुन सकता है। उसे आधार मानकर अपनी भाषा में लिख सकता है। ऐसा करने से उसे विचारों की कमी प्रतीत नहीं होगी।

अनुवाद करना अपेक्षाकृत सरल है। कोई अच्छा कोष सहायता के लिए रख लेना चाहिए, जिसमें कठिन शब्दों का अर्थ मिल सके। अनुवाद शब्दिक न होकर भावात्मक हो अर्थात उस पुस्तक के विचार आप स्वयं अपनी भाषा शैली में अभिव्यक्त करने का प्रयत्न करें। प्रतिदिन ४-६ पृष्ठों का अनुवाद करते रहें।

दूसरे के लेखों को अपने शब्दों में लिखकर प्रारम्भिक अभ्यास करें—पहले पहल अभ्यास करने और लेखन की आदत डालने के लिए एक और भी तरीका अपनाया जा सकता है। लेख में एक क्रम, विचारों को एकत्रित करना तथा अपने दृष्टिकोण से अभिव्यक्त करना होता है। आप किसी लेख को अच्छी तरह पढ़िये और उसके विचारों का विश्लेषण कीजिए। फिर अपने ढंग से अपनी शैली में इस पूर्ण लेख को लिख डालिये। अब इसे मूल लेख से मिलाइये और अपने लेख में क्या विशेषताएँ हैं ? यह देखिये। यदि नहीं हैं तो अपने व्यक्तित्व की छाप उस पर डालिये। अपने शब्द चयन, भाषा-सौष्ठव, वाक्य-विन्यास, जीवन के अनुभव, घटनाएँ, तथा मनोभावों को यत्र-तत्र उसमें जोड़िये। उसमें अपनी मौलिकता प्रकट कीजिए। सबसे अधिक सजीवता उत्पन्न करने का अभ्यास है। दूसरे लेख में आपको जहाँ कमी दीखती है, उसे आप अपने ढंग से दूर कीजिए और अपनी सजीवता उत्पन्न कीजिए।

पुरानी कहानियों को बदल-बदलकर कभी एकाकी नाटकों के रूप में अथवा नाटकीय शैली में लिखिये। नए ढंग से उसी तथ्य को प्रकट कीजिए। किस विद्या या साहित्य के माध्यम से (निबन्ध, कहानी, नाटक, एकाकी रेखाचित्र, संस्मरण) अपने विचार पूरे सौन्दर्य से स्पष्ट हो सकते हैं, यह मालूम करके देखिए।

कुछ दिन ठंडा कीजिए—आपने जो लिखा है, उसे कुछ दिन रखकर छोड़ दीजिए। तब तक उसी विषय पर आपके मन में अनेक नये विचार, घटनाएँ अथवा स्मृतियाँ आ जायेंगी। आपकी ज्ञान-वृद्धि हो जायेगी अब आप इस लेख को निकालकर फिर पढ़िये और निष्पक्ष रूप से संशोधन कीजिए। अच्छी चीजें जोड़िये और कमजोर जँचें, उनको काट डालिये। कभी-कभी लेख में जान डालने के लिए कल्पना से नई घटनाएँ जोड़नी होती हैं, नए उदाहरण गढ़ने पड़ते हैं, चुहल और विनोद की भी जरूरत होती है। विषय को देखते हुए ऐसे स्थलों पर इन तत्त्वों का समावेश कीजिए। यह सब होने पर एक बार अपने बने हुए लेख को पढ़िये। यदि न जँचे तो फिर नए सिरे से लिखिये। इस सम्बन्ध में श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' का सूत्र याद रखिये। वे लिखते हैं—

"मैंने १०० तरह के स्कैच और संस्मरण लिखे होंगे। लिखे, काटे फिर लिखे और फाड़े। एक लेख को अधिक से अधिक १४ बार तक मैंने हट-हटकर लिखा था, यह मुझे याद है।"

दुबारा लिखने में आप कदापि आलस्य न करें। बहुत-से अभ्यास और निरन्तर लिखने के अभ्यास के बाद ही वह कला निखार पर आती है।

आपके स्वतन्त्र मौलिक लेख—वर्ष दो वर्ष इसी प्रकार नए-नए विषयों पर लिखते-लिखते लेखन की आदत पड़ जायेगी और उसमें कोई अटपटापन प्रतीत न होगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शब्द-भाव और विचार स्वयं मन में से उठकर आयेंगे और आप धीरे-धीरे अपनी बातें कागज पर उतारने योग्य हो जायेंगे।

यह बात कामचलाऊ लेखन के सम्बन्ध में है। इस स्थिति को लेखन कार्य का प्रारम्भ ही मानना चाहिए। जब आप कलम पकड़ने की स्थिति में आ जायें, लिखने में आलस्य दूर हो जाय और भाषा पर भी कुछ अधिकार होने लगे, तो पुरानी पुस्तकों का अध्ययन कीजिए। एक विषय पर कई लेखकों के विचारों को पढ़िये और उन्हें अपनी नोट-बुक में नोट कीजिए। जब यह सामग्री प्रचुर मात्रा में संचित हो जाय, तो उसे मौलिक रूप में सजाइये अर्थात अपने व्यक्तित्व का सहज स्पर्श देते हुए मौलिक रूप में प्रस्तुत कीजिए।

आपको अनेक स्थानों से सामग्री का संचय करना होगा। यह इस बात पर निर्भर है कि आप कितना अधिक पढ़ते हैं अथवा कितने विभिन्न सूत्रों से अपने विषय की सामग्री टटोलकर ला सकते हैं। इसके लिए अपनी एक निजी छोटी-सी लाइब्रेरी बनाइये। उपयोगी और ठोस लिखी हुई पुस्तकों को खरीदिये और उनका गहराई से अध्ययन कीजिए। इसी प्रकार रद्दी की दुकानों पर अथवा अखबार और मासिक पत्रिकाएँ बेचने वालों के यहाँ रद्दी के भाव पुरानी पत्रिकाएँ मिल जायेंगी। आप इन्हें खरीद लीजिए और इनमें प्रकाशित पुरानी सामग्री से लाभ उठाइये।

किसी विषय के विशेषज्ञ बनें—किसी नये लेखक ने एक सम्पादक से पूछा, "सफल पत्रकार बनने के लिए सर्वोत्तम साधन क्या है ?"

उन्होंने उत्तर दिया, "किसी विषय का विशेषज्ञ बन जाना।"

यह अनुभव अपने में उपयोगिता लिए है। तनिक इसे खोल कर देखिए क्या मतलब है विशेषज्ञ बनने का ?

विशेषज्ञ वह है जो एक विषय पर दूसरों की अपेक्षा बहुत अधिक जानता है, जिसको अपने विषय की सूक्ष्म जानकारी होती है या जिसने अपने विषय पर अधिक से अधिक पढ़ा-समझा और सोचा होता है। वह दिन-रात अपने विषय की जानकारी बढ़ाता चलता है। खास तौर पर उस विषय का विस्तृत अध्ययन करता है।

आपको जब विशेषज्ञ बनने की सलाह दी जाती है, तो कहा जाता है कि अपने चुने हुए एक विषय पर अध्ययन, मनन और चिन्तन द्वारा अधिकतम जानकारी बढ़ाइये।

जब पाठक यह जान जायेंगे कि अमुक विषय में आपकी सबसे अधिक जानकारी है, आप सबसे ज्यादा जानते हैं, तो वे स्वयं आपसे नई जानकारी प्राप्त करना चाहेंगे। आपके पथप्रदर्शन के इच्छुक रहेंगे। अपूर्ण और अधकचरे ज्ञान वाले लेखकों को कोई नहीं पूछता। लोग आपसे कुछ विशेष दिशा में आपका पथप्रदर्शन चाहते हैं। आप अपना ज्ञान बढ़ावें और यह ज्ञान उन्हें प्रदान करें।

किस विषय के विशेषज्ञ बनें, यह निर्णय स्वयं आपको करना है। जो आपको सबसे प्रिय और उपयोगी विषय लगे अथवा जो अभी तक उपेक्षित-सा पड़ा हुआ हो, उसे आप चुनें और उसके योग्य सामग्री एकत्रित करते रहें। जब अध्ययन और अनुभव पक जाय, तब लेख कार्य शुरू करें। यह रचना अमर हो सकती है। यहाँ आप वह चीज दे रहे हैं, जिसे बहुत कम पाठक जानते हैं। नई चीज के लिए सभी की दिलचस्पी होती है। इस नवीनता की वजह से आपकी रचनाएँ सभी पत्र छापना चाहेंगे।

याद रखिए, साधारण विषयों पर लिखने वाले तो बहुत-से होते हैं, किन्तु विशिष्ट विषयों पर लिखना हर किसी के लिए सम्भव नहीं है।

चूँकि आपके पास अपने विषय की अछूती, नई और अनुपलब्ध सामग्री संचित है, जनता उसे सीखने के लिए आतुर हो उठेगी। नई चीज खोजिए। नए ढंग से अपनी अभिव्यक्ति कीजिए। नए रूपों का आविष्कार कीजिए। यही आपकी खासियत है। कविता में कही गई बातें, सबके पास लगभग एक-सी ही होती हैं, बस उनकी अभिव्यक्ति में अन्तर है। यह उस विशिष्टता का ही फर्क है।

पत्र-पत्रिकाएँ विशेष प्रकार के विषयों पर लेख छापती हैं। प्रत्येक के विषय निर्धारित हैं। आप जिस विषय के विशेषज्ञ हैं, उसके अनुकूल ही छपाने के लिए पत्रिका का भी चुनाव करें।

हर विषय पर लिखने के लिए अभी असंख्य विषय छूटे पड़े हैं। उन्हें किसी ने पकड़ा नहीं है, समझा नहीं है। आप बारीकी से इन उपेक्षित विषयों को खोज निकालिये और घटनायें एकत्रित कर उन पर लिखिए। दो चार तद्विषयक घटनाएँ या पात्रों का जीवन चित्रित कर लेख को शुरू करें। उसे अधिक से अधिक दिलचस्प बनाएँ। कहीं कहानी, कहीं कथोपकथन, तो कहीं विश्लेषण प्रस्तुत करें। उपदेश को अन्त तक छिपाये रहें, क्योंकि आज के युग में स्पष्ट उपदेश कोई भी पाठक पसंद नहीं करता। उसे घटनाओं या समाचारों के साथ मिश्रित करके आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करें। आपका प्रारम्भ जितना दिलचस्प होगा, आपका लेखन भी उतना ही सफल कहा जायेगा।

नए विचारों तथा सामग्री का संग्रह

आपको नई सामग्री चाहिए—संसार में कोई भी लेखक सर्वज्ञ नहीं होता। उसे अपना ज्ञान बढ़ाना पड़ता है। दूसरे शब्दों में, वह जिस प्रकार से जीवन की अभिव्यक्ति अपने साहित्य में करना चाहता है, उसका विशेष अध्ययन करना होता है। वह अपने व्यक्तिगत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निरीक्षण द्वारा तत्सम्बन्धी जानकारी बढ़ाता है, उस विषय की प्रकाशित पुस्तकें पढ़ता है। वह विषय को जानने वाले व्यक्तियों से परिचय बढ़ाता और बातचीत तथा विचार-विमर्श द्वारा अधिकाधिक विचारों तथा सामग्री का संग्रह करता है। किसी भी विषय पर लेखनी उठाने से पूर्व उसे अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है।

साहित्य क्षेत्र में पदार्पण करने वाले अनेक युवक तथा युवतियों को निराशा इसलिए उठानी पड़ती है कि उनका ज्ञान और सामग्री कम होती है। वे अपने विषय के सम्बन्ध में कोई भी नई बात, नया दृष्टिकोण या नवीन तथ्य नहीं दे पाते। फलतः उनकी रचनाएँ नहीं छपतीं, न उनकी प्रतिभा ही पनपती है।

नया लेखक विविध प्रकार के जीवन का विस्तृत और व्यापक अध्ययन करे, केवल कल्पना से काम न ले। कल्पना का भी जीवन के निकट अध्ययन से निकट सम्बन्ध होना चाहिए। जिस लेखक को वास्तविक अनुभव होता है, वही यथार्थ कल्पना भी कर सकता है।

सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण किया करें—यदि आप चाहते हैं कि संसार को कुछ नया और उपयोगी तथ्य दें, सद्ज्ञान का विकास करें और समाज सेवा में आदर्श प्रस्तुत करें तो अपने इर्द-गिर्द के जीवन का सूक्ष्म अध्ययन प्रारम्भ करें। इसका एकमात्र उपाय यह है कि आप संसार के क्रियाकलाप, दैनिक, सामाजिक और पारिवारिक जीवन का सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण किया करें। लोगों से प्रेमपूर्वक मिलें, उनका विश्वास प्राप्त करें फिर उनके जीवन के अनुभव सुनें और उनसे लाभ उठायें।

प्रत्येक व्यक्ति एक बन्द पुस्तक के समान है। उसमें सैकड़ों नये-नये, विविध प्रकार के कड़ुवे-मीठे-खट्टे अनुभव भरे पड़े हैं। उसने जिन्दगी को जिया है, विषम परिस्थितियों का सामना किया है और जटिलताएँ पार की हैं। उसकी अपनी निजी समस्याएँ रही हैं, जिन्हें उसने अपने खास तरीके से हल किया है। आप उससे ये अनुभव करें। उनसे तत्सम्बन्धी प्रश्न पूछें और इस प्रकार एक नई दिशा की ओर अपने ज्ञान की अभिवृद्धि करें। अनुभवों को एकत्रित करने से आपको एक नये प्रकार की जिन्दगी के एक नये क्षेत्र की जानकारी प्राप्त होगी। आप अधिक से अधिक लोगों से मिलें, मित्रता करें, उनकी समस्यायें सुनें और उन्हें हल करने के तरीके बताएँ। आपको जीवन से स्पन्दित सच्चे जीवन में से गुजरना चाहिए। मानव जीवन तथा समाज का निकटतम अध्ययन चाहिए। इस प्रकार के संचित ज्ञान से आपकी जीवन विषयक जानकारी तीव्रता से बढ़ती जाएगी।

जब आप किसी मेले, उत्सव, यात्रा अथवा समारोह में सम्मिलित होते जायें, तो सूक्ष्म दृष्टि से लोगों के रंग रूप, अवयव, पोशाक, आदतों, सूरत-शक्ल, चलने-बैठने, बातचीत करने के तरीकों को देखें। गहराई से उसमें उतरने का प्रयत्न करें। निरीक्षण की सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों को अपनी नोट-बुक में अंकित करते चलें। ये विविध प्रकार के व्यक्ति आपकी कहानियों, उपन्यासों अथवा नाटकों के पात्रों के रूप में अवतरित हो सकते हैं।

खेद का विषय है कि आधुनिक युग में लेखकों की निरीक्षण शक्ति का ह्रास हुआ जा रहा है। युवक लेखक अपने अधकचरे और कच्चे ज्ञान और अल्प अनुभव के बल पर लिखना प्रारम्भ कर देते हैं और उपहास का पात्र बनते हैं।

श्री चन्द्र प्रकाश इस विषय में शिकायत करते हुए सच ही लिखते हैं कि "आज का मनुष्य अपने जीवन के अतिरिक्त कुछ नहीं जानता। उसको आदिमपुरा के लोगों के समान आत्मरक्षा और भोजन की समस्या के लिए निरीक्षण की आवश्यकता का सामना नहीं करना पड़ता है। अब तो बटन दबाना ही पर्याप्त है। हम इतने पराधीन हो गये हैं, विज्ञान की कलों पर इतने आश्रित हो गये हैं कि स्वयं कुछ देखना भी नहीं चाहते। परन्तु आपको आश्चर्य होगा कि एक बार निरीक्षण का अभ्यास प्रारम्भ कर देने पर उसमें कितना रस मिलता है।

उदाहरणार्थ—एक कहानी लिखने में आपको निरीक्षणों में की अतीव आवश्यकता है। उसमें विभिन्न प्रकार के लोगों के निरीक्षण प्रधान चरित्र, उसकी विशेषता, वार्तालाप का ढंग, मस्तिष्क की प्रवृत्ति सबका निरीक्षण है अन्यथा कहानी में सजीवता और यथार्थता न होगी। नवोदित कलाकार बहुधा नायिका की आँखें, उसके केश, मुँह, हाथ, पैर तथा वस्त्रों के वर्णन कर देने से ही अपना कर्त्तव्य पूर्ण समझ लेते हैं।

परन्तु नहीं, यह सब तो ऊपरी और बाह्य निरीक्षण मात्र ही हुआ। समझदार पाठक इससे कदापि प्रभावित नहीं होगा। वह पात्र के अनुभव, उसके मन में होने वाले कशमकश, विचार संघर्ष, आन्तरिक जीवन में दिलचस्पी रखता है। वह उसके मस्तिष्क और आत्मा को जानना चाहता है। उसे पात्र की प्रवृत्तियों और आदतों में रुचि होती है।

मान लीजिए आप किसी ऐसी कन्या को चित्रित करना चाहते हैं, जो उत्कृष्ट प्रेम के कारण बड़े से बड़ा बलिदान करने को प्रस्तुत है। वह प्रेम के कारण अपने लखपति पिता का वैभव, विलास त्यागकर प्रेमी के साथ झोंपड़े में रहने को विवश हो जाती है। अब आपके लिए यह होगा कि आप उसके बाह्य रंग-रूप या रहन-सहन मात्र तक ही सीमित न रहें, प्रत्युत उसके मन में उत्पन्न होने वाले गुप्त अन्तर-संघर्ष को भी स्पष्ट करें। क्रमिक विकास द्वारा उसके आन्तरिक जीवन में आने वाले बलिदान को स्पष्ट करें। आप वे परिस्थितियाँ चित्रित करें, जिनके वशीभूत होकर उसे वह बलिदान करना पड़ा। साथ ही लखपतियों और झोंपड़ियों में निवास करने वाले व्यक्तियों के जीवन का भी पर्याप्त ज्ञान रहे। दोनों प्रकार के जीवनों का निकट अनुभव, निरीक्षण, ज्ञान और सच्ची यथार्थ जानकारी होनी चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपनी अन्तर्दृष्टि विकसित कीजिए—हमारे इर्द-गिर्द समाज में जब हम एकत्रित होते हैं, तो भिन्न-भिन्न विषयों पर बात-चीत चलती है। व्यक्तियों, संस्थानों और नीतियों की अच्छी-बुरी आलोचना होती है। विविध अवसरों पर ऐसी आलोचनाओं में प्राय: नये दृष्टिकोण और मौलिक विचारधारा उपलब्ध हो जाती है। सिद्धहस्त लेखक बनने के लिए आप सार्वजनिक अवसरों, मीटिंगों और उत्सवों में सम्मिलित हों और अपनी सब इन्द्रियों से लोगों का निरीक्षण करें। अपनी इन्द्रियों को ऐसा लिखा-पढ़ाकर सतर्क कर लें कि वे काम की मार्मिक बात को पकड़ लें।

सिद्धहस्त लेखक ऐसी जगह घूमते फिरते रहते हैं, जब दूसरे बातचीत करते हैं, तो ध्यानपूर्वक उनकी बातों को सुनते और डायरी में अंकित करते जाते हैं। यही बढ़कर किसी लेख या कहानी का विषय बन जाती है। जिस विषय पर लेखनी चलायें, उस पर आपके पास प्रचुर सामग्री एकत्रित होनी चाहिए। इस सामग्री का संग्रह आप स्थान-स्थान और व्यक्ति-व्यक्ति से पूछ और सुन कर उसी प्रकार करें, जैसे मधुमक्खी विविध पुष्पों से मधु एकत्रित करती है।

साधारण व्यक्ति और लेखक के निरीक्षण में अन्तर होता है। साधारण व्यक्ति ऊपरी दृष्टि से देख क्षणभर के लिए विचार या दृश्य का आनन्द भर ले लेता है, सिद्धहस्त लेखक उसकी मार्मिकता को नोट करता है और उस अनुभव से लाभ उठाता है।

श्री प्रेमनारायण अग्रवाल लेखक की तीखी संवेदनशील इन्द्रियाँ (सैनसेस) के विषय में उचित ही लिखते हैं। देखिए—

"प्रत्येक रचना के पीछे कोई इतिहास छिपा रहता है। आप उससे पूछ सकते हैं कि अमुक रचना करने का विचार उसके मस्तिष्क में कब, कहाँ और कैसे आया ? यह उस रचना का इतिहास है, जो स्वयं लेखक ही जानता है। यह जानना भी उतना ही ज्ञानवर्द्धक एवं मनोरंजक है, जितना उस रचना का पढ़ना और उसका मैटर।

रचनाओं का अनुभव जिस प्रकार बढ़ता जाता है, उसकी अनुभूति (और सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति) भी वैसी ही बढ़ती जाती है। जिस लेखक की निरीक्षण शक्ति जितनी अधिक गहरी होती है, वह उतना ही अच्छा रचनाकार होता जाता है।

बहुत-से प्रवीण लेखकों की अनुभूतियाँ इतनी अधिक होती हैं कि उनके लेखन कार्य से आगे बढ़ती जाती हैं। उसके पास इतना मैटर एकत्रित होता जाता है कि वह उसे प्रस्तुत कर नहीं पाता। इंग्लैण्ड का एक सुप्रसिद्ध पत्रकार श्री हेनन स्वेफर ने, जो वहाँ 'पीपुल' और 'वीकली डिस्पैच' का सम्पादक रह चुका था एक बार कहा था—

"लन्दन में इतने पत्र नहीं हैं जो मेरे आधे विचारों को भी छाप सकें, जो कि मेरे पास आते हैं।"

ऐसा प्रतीत होता है कि यह सज्जन लिखने वाले भी गजब के थे। कितने ही लेखकों के विषय में कहावतें प्रचलित हैं कि वे एक साथ कई क्लर्कों को अपने लेख बोलकर रोज लिखाया करते थे।

इन प्रवीण लेखकों के विपरीत हमारे नये लेखकों का एक विशाल समुदाय है, जो सामग्री की कमी के कारण बेकार बैठा रहता है। उपर्युक्त बातें तो अनुभव और अभ्यास के साथ धीरे-धीरे आवेंगी। इसके लिए सतत और प्रतिदिन प्रयत्न करने की आवश्यकता है। सामग्री प्रत्येक स्थान से प्राप्त हो सकती है। पहले उसके लिए चौकन्ना बना रहना चाहिए। प्रयत्न करना चाहिए कि आपकी यह अनुभूति उत्तरोत्तर बढ़े।

नये लेखकों को भी ऐसे अनेक अवसर मिलते हैं, किन्तु कम। उनको बड़ी सावधानी से चारों ओर देखते हुए चलना चाहिए। अपनी दृष्टि को सूक्ष्म और तीखा बनाना चाहिए। बहुत-सा मैटर हमें मित्रों से बातचीत करने में, मार्ग चलते हुए मोटर, रेल, ताँगा, इक्का इधर-उधर की बातचीत के सम्बन्ध में बखूबी मिल सकता है।"

उपर्युक्त सलाह बड़े तथ्य की है। सूक्ष्म निरीक्षण और तीखी पकड़, नये-नये विचारों को एकत्रित रखना और उनका उचित अवसर पर प्रयोग करना, सावधानी से चौकन्ना बनकर चलना, फिरना, जीना और दूसरों के अनुभवों से लाभ उठाना, खुद अपने अनुभवों का इस्तेमाल करना—ये सब आदतें नये लेखकों को विकसित करनी चाहिए।

पुस्तकों और समाचार-पत्रों से नई सामग्री—हर नए लेखक को नियमित अध्ययन का क्रम बनाना चाहिए। प्रतिमास एक से एक सुन्दर नई पुस्तकें बाजार में आती हैं। इन्हें आप खरीदिये और ध्यानपूर्वक पढ़िये। यदि नहीं खरीद सकते, तो पुस्तकालयों से उधार माँगकर पढ़िये।

पढ़ते समय उनके विचार और शैली दोनों पक्षों में कुछ नई बात सीखने की जिज्ञासा बनाये रखिये। बहुत-से लेखक थोड़ा-सा लिखकर ही अपने आपको सर्वज्ञ मानने लगते हैं और नई पुस्तकें नहीं पढ़ते। यह मनोवृत्ति उन्नति में घातक है।

पत्र सम्पादन करने की कला

पत्र सम्पादन बड़ा उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य है। यह एक व्यवसाय है। जब आप इसके सब अंगों को पूर्णरूप से सीख लें, तब ही यह जिम्मेदारी अपने ऊपर लें। एक बार साप्ताहिक, मासिक या दैनिक करने के बाद आप आसानी से उसे बन्द न कर पायेंगे।

पत्रकारिता के पाँच अंग हैं। (१) लेखन, (२) समाचार संग्रह, (३) सम्पादन, (४) रिपोर्टिंग और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(५) प्रूफरीडिंग। आपको कम्पोजिंग का भी पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए। कम्पोजिंग के छोटे-बड़े शीर्षकों, छोटे-बड़े टाइप को सजाने की क्षमता होनी चाहिए। जिन समाचारों को आप विशेष महत्त्व देना चाहते हैं, उन्हें बड़े टाइप में लिखिये, महत्त्व के अनुसार कम अधिक करते चलिये।

लेखन के अन्तर्गत आपको सम्पादकीय लिखना, सामयिक विषयों का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर देश की सब समस्याओं पर छोटी-बड़ी टिप्पणियाँ लिखना सीखना चाहिए। प्रत्येक विषय पर अपना ज्ञान बढ़ाइये। जो जिन विषयों के विशेषज्ञ हैं, उनसे सहायता लीजिए। सम्पादक को निष्पक्ष, स्वस्थ मस्तिष्क वाला, गम्भीर और अध्ययन प्रिय होना चाहिए। उसे यह शक्ति विकसित करनी चाहिए कि किस दिन, किस विषय, समस्या अथवा घटना पर लेख लिखा जाय। सामान्य जनता को स्वस्थ राजनैतिक चिन्तन प्रदान करना, उत्तेजना से बचाना और नवचेतना उद्‌बुद्ध करना आपका कर्त्तव्य है।

समाचार संग्रह पत्र का शरीर और प्राण है। अधिक से अधिक समाचार इकट्ठे कीजिए और अपने पत्र में छापिये। पत्र के कार्यालय में बहुत तरह के समाचार आते रहते हैं। आपको इन सबका सार निकालना है। उतना ही महत्त्व देना है जितना उचित है। आपके पत्र में अनेक प्रकार के समाचार आयेंगे। आपकी योग्यता इस बात में है कि प्रत्येक को उसकी उपयोगिता की दृष्टि से ही महत्त्व प्रदान करें। चयन करना और फिर अपनी ही दृष्टि से लिखना आपकी प्रतिभा पर निर्भर है।

रिपोर्टिंग से अभिप्राय यह है कि आप किस खूबी से पत्र के लिए समाचार लिख भेजते हैं। धातुओं का अवलोकन, विभिन्न तत्वों का अध्ययन और उसे नये तुले शब्दों में अभिव्यक्त करने में आपकी कला है।

प्रूफरीडिंग से तात्पर्य सही कम्पोजिंग कराने में सहायता देना है। बेचारे कम्पोजीटर साधारण पढ़े-लिखे हैं। आपकी पाण्डुलिपि गन्दी हुई होती है, तो अनेक शब्दों के हिज्जे उन्हें पढ़ने में नहीं आते और वे मनमाने ढंग से उन्हें कम्पोज कर देते हैं। आपकी योग्यता उस नाते में है कि आप उनके कम्पोजिंग को शुद्ध कर दें। प्रत्येक गलती की दुरुस्ती के लिए कुछ विशेष चिह्न होते हैं यह कम्पोजीटरों की अपनी ही भाषा है। आप इस भाषा को समझें और अपने पत्र में छापे की कोई गलती न रहने दें।

आपके पत्र का एक विशेष उद्देश्य, एक खास नीति, एक निजी दृष्टि होनी चाहिए। यह मौलिकता उसकी प्रत्येक पंक्ति और लेख में स्पष्ट होती रहनी चाहिए।

आपके सम्पादकीय में कार्य करने वाले प्रत्येक सदस्य में सहयोग, सहानुभूति और सहृदयता होनी चाहिए। सम्पादक को सदा यह ध्यान रखना चाहिए कि इसमें कमी न आये।

आपका पत्र पाठकों के जीवन को सही तरीके से जीने की प्रेरणा दे। उसमें उन्नति करने की भावना वर्तमान रहे।

बड़े लेखकों के इन अनुभवों से लाभ उठाइये— यहाँ हम कुछ महान लेखकों के अनुभव दे रहे हैं, जिनसे उनके लेखन के उद्देश्य तथा सफलताओं के रहस्यों पर प्रकाश पड़ता है। नये लेखक बन्धु इन स्वानुभूत अनुभवों से बहुत लाभ उठा सकते हैं। इन्हें देखिए और जीवन में उतारिये। ये मार्गदर्शक और प्रेरक हैं, लेखन कला में सब प्रकार सहायक हैं।

मैंने रुपये के लालच से साहित्य सेवा नहीं की है—सुप्रसिद्ध पं० महावीर प्रसाद जी द्विवेदी हिन्दी गद्य और खड़ी बोली को प्रतिष्ठित करने में सबसे अधिक पूज्य हैं। उनका आदर्श इन शब्दों में स्वयं उन्होंने प्रकट किया है—

उस समय तक मैंने जो कुछ लिखा था, टकों की (अर्थात आर्थिक लाभ) प्राप्ति तो कुछ हुई ही न थी। मेरे तत्कालीन मित्रों और सलाहकारों ने कहा—

"अजी, कोई ऐसी पुस्तक लिखो, जिससे टके सीधे हों।"

रुपये का लोभ चाहे जो कराये। बहुत परिश्रम करके दो सौ पृष्ठों की एक पुस्तक लिख डाली। उसका नाम रखा—'तरुणोपदेश'।

मित्रों ने देखा, तो कहा, "अच्छी तो है, पर इसमें सरसता नहीं। पुस्तक ऐसी होनी चाहिए जिसका नाम ही सुनकर और विज्ञापन मात्र ही पढ़कर खरीददार पाठक उस पर टूट पड़ें। 'कामकला' लिखो, 'कन्दर्प-दर्पण' लिखो……।"

मैं सोच विचार में पड़ गया। किस पर लिखूँ ? पैसे कमाने के लिए किस विषय को पकड़ें ? अन्त में जीत मेरे मित्रों की ही रही।

कवि तो मैं था ही। मैंने चार-चार चरण वाले लम्बे-लम्बे छन्दों में एक पद्यात्मक पुस्तक लिख डाली—ऐसी पुस्तक जिसके प्रत्येक पद्य से रस की नदी नहीं बरसती, तो नाला जरूर बह रहा था—

नाम भी मैंने ऐसा चुना, उस समय तक उस रस के अधिष्ठाता तक को न सूझा था। उसका नाम था—'सोहागरात'।

मित्रों ने उस पुस्तक को बहुत सरस पाया। मैंने भी अपना परिश्रम सफल समझा। अब लगा मैं हवाई किले बनाने।

"पुस्तक प्रकाशित होने पर मैं उसे युक्तिपूर्वक बेचूँगा। खूब बिक्री होगी, पूरी एडीशन हाथोंहाथ बिक जाएगी। मेरे घर रुपयों की वृद्धि होने लगेगी।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परन्तु मेरे हवाई किले एक पंल में ही ढह गये। आप जानते हैं कैसे नहीं, तो सुनिये।

मेरी पत्नी कुछ पढ़ी-लिखी थी। उससे छिपाकर ये दो पुस्तकें मैंने लिखी थीं। दुर्घटना कुछ ऐसी हुई कि उसने ये पुस्तकें देख लीं। देखा ही नहीं, उलट-पलट कर पढ़ा भी।

फिर क्या था। उसने मुझ पर वचन विन्यास रूपी इतने कड़े शब्द कहे कि मैं तिलमिला उठा। उसने उन पुस्तकों की कापियों को आजन्म कारावास या कालेपानी की सजा दे दी। वे उसकी संदूक में बन्द हो गईं, उसके मरने पर ही उनका छुटकारा उस काल कोठरी से हुआ।

छूटने पर मैंने उन्हें एकान्तवास की आज्ञा दे दी, क्योंकि सती की आज्ञा उल्लंघन करने की शक्ति मुझ में नहीं थी। इस तरह मेरी पत्नी ने पंक-पयोधि में डूबने से बचा लिया।

प्रतिभा शिक्षण और उचित वातावरण भी माँगती है—श्री राजेन्द्र यादव प्रतिष्ठित कहानीकार हैं। सफल लेखक बनने के लिए किन तत्त्वों की आवश्यकता है, इसका उत्तर आप इन शब्दों में देते हैं—

"प्रतिभा दैवी वरदान है"—इस सूक्ति ने जितना प्रतिभाशालियों का नुकसान किया है, दूसरे ने नहीं। हर व्यक्ति जिसमें थोड़ी बहुत प्रतिभा होती है, समझता है कि अब उसे किसी बात की आवश्यकता नहीं है। न दूसरे प्रतिभाशालियों की चीजें पढ़ने की, न अपनी प्रतिभा के उचित संवर्द्धन की। वह समझता है कि उसके लिए तो यही काफी है कि उसमें प्रतिभा है। असल में प्रतिभा शिक्षण और उचित वातावरण माँगती है।

यह सत्य है कि गोर्की के विश्वविद्यालय उसके जीवन का संघर्ष क्षेत्र रहे, लेकिन अपने इस विश्वविद्यालय से प्राप्त कच्चे माल के समुचित उपयोग के लिए उसने दूसरे प्रतिभाशालियों को खूब पढ़ा था।

पढ़ने-लिखने और शिक्षण से लेखक की अपनी मौलिकता का हनन, होता है, यह वाक्य केवल उन लोगों के लिए ही है, जो लेखन और कला को समग्रत: गंभीरता से नहीं लेते।

हर कला के अपने कुछ दायित्व और अपनी कुछ माँगे हैं। बिना उन्हें पूरा किये और सीखे बड़े से बड़ा प्रतिभाशाली भी गलत राहों में भटकता है।

लेखक के लिए सबसे अधिक आवश्यक जीवन और जगत का अपना निरीक्षण और उस सबका सही उपयोग कर सकने वाला स्वस्थ दृष्टिकोण है, क्योंकि बिना एक दृष्टिकोण के आप जीवन की वास्तविक शक्ति की कला में अभिव्यक्ति देकर उसके साथ न्याय नहीं कर सकते। शिल्प और शैली के कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जिनका सही और ईमानदारी से उत्तर दिये बिना कला के क्षेत्र में आना, उसके साथ अत्याचार करना है। लिखने के नाम पर जो लिखते हैं, वह किसी दूसरे के लिए होती है—अपने पाठक के लिए। अब वह पाठक अपने व्यक्तिगत पत्र का एक पाठक हो या किसी पत्रिका का विशाल पाठक समूह।

लिखने से पहले याद रखिए कि जो चीज हम लिख रहे हैं, उसके पाठक कौन लोग होंगे ? किस वर्ग के पाठक उसको पढ़ना और आनन्द लेना पसंद करेंगे।

इन पाठकों की संख्या अधिक से अधिक हो, हमारा लक्ष्य और प्रयत्न यही होना चाहिए।

जो सिर्फ अपनी बात कहता है, बहुत जल्दी उसकी बातें खत्म हो जाती हैं और उसके पास कुछ नया कहने को नहीं रहता। दूसरे सिर्फ अपनी ही बातें कहने वाले को लोग कम पसन्द करते हैं और शीघ्र ही समाज में ऐसे आदमियों का नाम 'बोर' रख दिया जाता है।

हमें हमेशा मीटिंग में बैठे मनुष्य की तरह दूसरे की रुचियों के विषय में सचेत हो जाना चाहिए। अधिक से अधिक मिलन सार आदमी लोकप्रिय हो जाता है और अपने में ही डूबा हुआ मनुष्य समाज के अलग पड़ जाता है। अधिक मिलनसार आदमी मिलनसार व्यक्ति की तरह है।

अधिक से अधिक व्यक्तियों को हम अपनी बात सुनायें, सच्चे मित्र की तरह उनकी मुसीबतों और समस्याओं को अधिक से अधिक वास्तविक रूप में जानकर, सहानुभूतिपूर्वक उन्हें समझकर उनका अनुभव करें, पाठकों को करायें और उनका निदान सोचें।

कभी-कभी भावुकता, कल्पनाशीलता, चुहल और विनोद की भी जरूरत होती है। स्वस्थ मनोविनोद या अच्छा मन बहलाव हमेशा आदमी को अधिक शक्ति और ताजगी देता है।

आशा है नए लेखक बन्धु इन अनुभवों से लाभ उठायेंगे।

मेरा सृजन ही मेरा जीवन है—श्री अमृतराय प्रेमचन्द्र जी के पुत्र हैं। उन्होंने प्रेमचन्द जी का मुसीबतों में भी साहित्य निर्माण विषय पर एक लेख लिखा है। प्रेमचन्द जी के सामने रुपया, पद, शान-शौकत आदि अनेकों प्रलोभन आये। मामूली लेखक होता, तो वह सब कुछ त्यागकर अपना साहित्य सृजन भूल जाता, पर प्रेमचन्द्र का लेखक सर्वोपरि रहा, गरीबी और संघर्षों में कभी नहीं दबा। वे निरन्तर मुसीबतों में भी लिखते रहे और समाज को समुन्नत करते रहे। अमृतराय के शब्द हम सबके लिए प्रेरक हैं—

'प्रेमचन्द्र को अपने गाँव में बैठकर नमक रोटी खाना कबूल था मगर शान और शौकत के झूठे दिखावे की उस भूल-भुलैया में खो जाना कबूल नहीं था, भले ही वहाँ रोज पुलाव ही क्यों न मिले और यह क्यों ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वह इसलिए कि उस नमक-रोटी के साथ सृजन का काम चल सकता है, क्योंकि वहाँ मन को शान्ति है। इस पुलाव के साथ नहीं चल सकता, क्योंकि यहाँ मन को शान्ति नहीं है। इस पुलाव को पचाए रखने के लिए बीस झमेले करने पड़ते हैं और धीरे-धीरे यह नौबत आ जाती है कि वह आदमी उस पुलाव को नहीं खाता, बल्कि वह पुलाव उस आदमी को खा जाता है।

और यही जगह है, जहाँ पर लेखक को खुद अपने आप सोचना पड़ता है कि वह अपने सृजन को कितना महत्व देता है? यह दृढ़ मन से, शान्ति चित्त से एक निश्चय करने की जगह होती है। अगर आपके मन की आवाज साफ-साफ कहती है कि मेरा सृजन, साहित्य, पुस्तकें, निर्माण कार्य ही मेरा जीवन है और वही सबसे ऊपर रहेगा, तो जो भी हो, वही सबसे ऊपर रहेगा, तो हर हालत में आपका मन उसका उपाय ढूँढ़ लेगा।

मन की शक्ति का अभी तक किसी ने पार नहीं पाया है लेकिन अगर किसी कारण से आपका मन पैसे, पद, प्रतिष्ठा, यश, प्रभुत्व की ओर ज्यादा भागता है और आपका लेखन आपका साहित्य-सृजन हो, उस सबके लिए, केवल एक सीढ़ी है, तो स्पष्ट ही स्वयं आपकी दृष्टि में आपका लेखन गौण हो जाता है—और वहीं, उसी स्थल पर लेखन की मृत्यु का बीजारोपण हो जाता है। यहीं पर हम परिस्थितियों की विडम्बना का रोना रोने लगते हैं पर सारा दोष परिस्थितियों का नहीं है।

कभी भी किसी युग में किसी लेखक या कलाकार को मनचाही परिस्थितियाँ नहीं मिलतीं। परिस्थितियों से संघर्ष करने से ही व्यक्तित्व का कमल खिलता है और यही बात लेखक के लिए भी सही है। सृजन में संघर्ष निहित है। संघर्ष गरीबी से, परेशानियों से जैसा कि प्रेमचन्द्र ने किया। रबीन्द्रनाथ ने सम्पन्नता की अफीम से संघर्ष किया, राजसत्ता और आतंक से किया है मगर उनका लेखक नहीं मरा। प्रेमचन्द्र की किताबें जब्त हुईं, जलाई गईं, उनके लिखने पर बंदिशें लगाई गईं मगर तब भी वे लिखते रहे।''

श्री अमृतराय का निष्कर्ष है कि आप मार्ग में आने वाली मुसीबतों से कदापि न डरें। रुपये, पद, सम्मान, विलास इत्यादि के प्रलोभन के सामने न झुकें। राजनीति में न फँसे। अपने साहित्य सृजन को ही सर्वोपरि-सबसे प्रथम, मूल कार्य रखें। चाहे कैसी भी विषम स्थितियाँ क्यों न आयें, साहित्य निर्माण को ही महत्त्व दें। आपका सर्जक रूप ही समाज में वन्दनीय होगा। शरीर तो नश्वर है, हाड़-माँस का लोथड़ा है। केवल स्थायी और उत्तम साहित्य ही आपको अमर कर सकता है। सृजन ही आपका जीवन है।

महान लेखक परिस्थितियों की परवाह नहीं करते

बहुत-से लेखक शिकायत किया करते हैं कि हमें लिखने के लिए उत्तम कमरा, आरामदायक फर्नीचर, शराब, प्राकृतिक दृश्य, किसी प्रेमिका की प्रेरणा अथवा अमुक-अमुक सुख-सुविधाएँ चाहिए।

वे भाँति-भाँति की वस्तुएँ गिनाते हैं। तरह-तरह की माँगें प्रस्तुत करते हैं। यह समझते हैं कि हमारी असफलता का कारण अच्छी परिस्थितियों का न होना रहा है।

पर वस्तुत: बात ऐसी नहीं है। लेखन की तो एक उद्दाम प्रवृत्ति है। यह दाबे नहीं दबती। जब लेखक लिखने की सृजनात्मक मानसिक प्रवृत्ति में होता है, तब उसे न बढ़िया कमरा, आलीशान बिल्डिगें या उत्तम फर्नीचर चाहिए न गद्दे-तकिये। उसमें तो बस लिखने की सच्चे इच्छा होनी उपेक्षित है।

क्या जेल भी लिखने का स्थान हो सकता है ? जेल देखी है आपने ? शायद नहीं।

कठोर भूमि, कान्स्टेबिलों की कर्कश आवाजें, बदबू, न लिखने के लिए बढ़िया कागज, फाउन्टेनपैन, न फूल न खुशबू, कोई भी सुविधा नहीं ! कोई प्रेरणा नहीं।

फिर भी जेल में स्थाई महत्त्व की रचनाएँ लिखी गई हैं। राजनीति के कुचक्र में लोग ऐसी-ऐसी गलतियाँ कर बैठते हैं कि जेल की हवा खानी पड़ती है। बड़े लेखकों को राजनीति में सक्रिय भाग लेने के कारण जेल में अपने कठोर दिन काटने पड़ते हैं। लेखनी ही वहाँ उनकी मुख्य सहायिका और साथिनी रही है। उसके द्वारा उन्होंने अपनी स्मृतियाँ और जीवन के अनुभव लिपिबद्ध किए हैं। शायद तथ्य यह है कि जब व्यक्ति चारों ओर से एक स्थान पर बन्द हो जाता है और उसे व्यर्थ इधर-उधर घूमने और समय नष्ट करने का मौका नहीं मिलता, तब वह जमकर लिखना प्रारम्भ करता है।

उदाहरण के लिए लोकमान्य तिलक को ले लीजिए। व्यस्त राजनैतिक जीवन में उन्हें ग्रन्थ रचना के लिए अवकाश न मिला। जब वे कारावास में गये, तो उन्हें पर्याप्त अवकाश मिला और उन्होंने प्रसिद्ध अँग्रेजी ग्रन्थ 'गीता रहस्य' तथा 'दी आर्कटिक होम ऑफ दी वेदाज' लिखे। यह अति गम्भीर रचनाएँ हैं, जिनमें दर्शन का निचोड़ ही भरा हुआ है। न जाने कब से ये ग्रन्थ उनके मन में निकलने के लिए जोर मारते रहे, पर लिखे तब ही गये, जब जेल का विवश अवकाश प्राप्त हुआ और व्यर्थ के कामों से छुट्टी मिली।

महात्मा गाँधी के अनुभव सुनिये—''सन् १९०७ से मेरा बहुतेरा समय जेल की चहार दीवारी के अन्दर ही बीता है, परन्तु मुझे इस बात का दु:ख नहीं है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्योंकि कारावास में मुझे अन्य परिस्थितियों की अपेक्षा विचार करने तथा लिखने के लिए अच्छा अवसर प्राप्त होता है।''

महाराष्ट्र के अहमदनगर में नेहरू जी को तीन वर्ष जेल में रहना पड़ा था। इसके अतिरिक्त अँग्रेजों की नीति का विरोध करने के सिलसिले में वे नौ बार जेल गये थे और अनेक वर्षों तक जेलों के सींखचों में दिन काटने पड़े थे। नेहरू जैसे महान व्यक्ति को जेलों में सड़ना पड़े, यह वास्तव में घोर क्रूरता और अत्याचार था।

लेकिन उससे एक लाभ भी हुआ। वह क्या था ? कल्पना कीजिए कि यदि नेहरू जी केवल सक्रिय राजनीति में ही कार्य करते रहते और कुछ भी न लिखते, तो क्या होता ?

उनकी आत्मा तथा विचार शक्ति में कभी विषाद उत्पन्न नहीं हुआ, यंत्रणाओं के बावजूद उनका मानसिक संन्तुलन कभी ढीला नहीं हुआ। लेखनशक्ति में कोई व्यवधान नहीं आया और कोई होता तो अपना सारा समय रो-धोकर या कलप कर व्यर्थ समय नष्ट कर देता। किन्तु नेहरू जी ने उस जेल के समय का सदुपयोग किया। उनकी मोटी-मोटी पुस्तकें प्राय: जेलों के कठोर-कुत्सित ढके-दबे वातावरण में ही निर्मित हुई थीं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि लेखन में जन्मजात और अभ्यास द्वारा विकसित स्फूर्ति, विचारपूर्वक, अद्वितीय विद्वता और साहित्य-सृजन की प्रतिभा होती है। वह व्यर्थ के धन्धों में फँसकर इस प्रतिभा का सदुपयोग नहीं करता टालता जाता है। जब सब ओर से बन्द हो जाता है, तब वह ज्ञान के भण्डार को मन से निकालता है। नेहरू जी ने अपने सब प्रसिद्ध ग्रन्थ, जिनसे उन्हें अपनी प्रधानमंत्री के वेतन की अपेक्षा कहीं अधिक आय हुई है, जैसे—(१) मेरी कहानी, (२) विश्व इतिहास की झलक (३) डिस्कवरी ऑफ इण्डिया पुस्तकें जेल में ही लिखी गई थीं।

मौलाना अब्दुलकलाम आजाद ने अपनी जीवनी, श्री पट्टाभि सीतारमैया के वृहत् ग्रन्थ 'काँग्रेस का इतिहास,' श्री आसफअली और श्री विपिनचन्द्र पाल जैसी मान्य साहित्यिक विभूतियों ने अपने ग्रन्थ कारावास में ही पूर्ण किए थे। महापण्डित राहुल सांकृत्यायान ने 'दर्शन दिग्दर्शन' जैसी एक हजार पृष्ठों की पुस्तक जेल में लिखी थी।

बहुत-से पाश्चात्य लेखकों ने भी जेल की कोठरी में अपने ग्रन्थ लिखे थे। उदाहरण के लिए हम हिटलर को ले सकते हैं। हिटलर जब सन् १९२० में कारावास में बन्द था, उसने अपना जगत प्रसिद्ध ग्रन्थ 'मेरा संग्राम' लिखा था, जिसकी असंख्य प्रतियाँ बिकी हैं।

इसी प्रकार और भी उदाहरण उपलब्ध हैं, जैसे—ले हंट ने अपनी पुस्तक 'स्टोरी आफ रीमीनी' तथा सर वाल्टर स्काट ने 'हिस्ट्री ऑफ दी वर्ल्ड' और 'डिस्कार्ड ऑफ' वार नामक ग्रन्थ जेल में ही लिखे थे। जेम्स प्रथम ने अठारह वर्षों का कारावास भोगा था। इसी बीच में उन्होंने अपना 'किग्स क्वीर' नामक काव्य रचा था। इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि लेखकों को परिस्थितियों का दास नहीं रहना चाहिए। अपने अन्दर की सृजनात्मक प्रतिभा को अभ्यास द्वारा प्रकट करना चाहिए। जहाँ भी विचार आयें, उन्हें आकर्षक शैली में लिपिबद्ध करने का अभ्यास करना चाहिए। मूल तत्त्व सृजनात्मक शक्ति का निरन्तर अभ्यास और विकास है। जो विचार आयें, उन्हें आप सादगी और मौलिकता से अभिव्यक्त करना प्रारम्भ करें। विचारों की अभिव्यक्ति पर अधिक ध्यान रखें। भाषा ऐसी हो जो तत्काल पाठकों पर प्रभाव डाले। जब आप स्वयं अनुभूतियाँ लिपिबद्ध करेंगे तो उसमें मौलिकता भी आ जाएगी। मौलिकता के साथ नवीनता लाने का भी सदा ध्यान रखें।

क्या लेखन के लिए एकान्त की आवश्यकता है?—यह एक व्यक्तिगत प्रश्न है। कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं, जिनके मस्तिष्क में सदा नए-नए विचारों का तीव्र प्रवाह कागज पर निकलने की प्रतीक्षा किया करते हैं। वे कोलाहल या शोर की परवाह न कर अपना लेखन कार्य करते रहते हैं।

कुछ व्यक्ति तनिक-सा भी शोरगुल या व्यवधान पसन्द नहीं करते हैं। उन्हें चारों ओर पूर्ण शान्ति और एकान्त का वातावरण चाहिए। वे कहते हैं कि विचारों का प्रवाह एकान्त में अधिक आता है।

इस वर्ग में भी अनेक लेखक हैं। श्री सुमित्रानन्दन पंत, वर्ड्सवर्थ की भाँति सृष्टि सौन्दर्य के प्रेमी हैं, वे प्रकृति के वातावरण को विशेष पसन्द करते हैं और उसी में अच्छा लिख पाते हैं। वन या सरिता का सुरम्य वातावरण ही उन्हें मार्मिक साहित्य सृजन की ओर उत्प्रेरित करता है। कविवर माखनलाल चतुर्वेदी भी एकान्त में ही लिख पाते हैं।

अँग्रेजी के कवि टेनीसन से जब पूछा गया कि कैसे वातावरण में साहित्य-सृजन कर सकते हैं ? उन्होंने कहा था— ''मैं उच्चे कोटि की रचनाओं का निर्माण एकान्त में ही कर सका हूँ, इसी प्रकार अँग्रेजी के विख्यात उपन्यासकार चार्ल्स डिकेन्स का अनुभव है कि श्रेष्ठ गम्भीर रचनाओं के हेतु एकान्त में ही चित्त एकाग्र होता है। इस नियम के पालन करते हुए एडमस्मिथ ने अपना उत्तम ग्रन्थ 'वेल्थ ऑफ नेशन्स' एकान्त में ही लिखा था।

इमर्सन का अनुभव प्रेरक और उद्बोधक है। वे प्रकृति के बड़े प्रेमी थे। वे लिखते हैं कि ''जिस प्रकार एक लड़का तितली के पीछे भागता है, उसी प्रकार विचारों के शिकार के लिए मुझे वन प्रदेश जैसा एकान्त चाहिए।''

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपनी-अपनी आदत के अनुसार नियमित लेखन की आदत डालनी चाहिए। आदत पड़ जाने पर समय, स्थान तथा परिस्थिति किसी का भी बन्धन नहीं रहता। वे खुद कलम से निकली चली आती हैं बिना प्रयत्न, प्रवाहपूर्ण गति से, निर्बाध। यह अनुभव है उर्दू के प्रसिद्ध कहानीकार श्री सआदत हसन मंटी का। उन्हीं के शब्दों में उनकी लिखने की आदत का रहस्य सुनिये—

''मेरी तीन बच्चियाँ शोर मचा रही होती हैं। मैं उनसे बातें भी करता हूँ, उनकी कुछ लड़ाइयों का फैसला भी करता हूँ। कोई मिलने वाला आ जाए, उसकी खातिरदारी भी करता हूँ, मगर साथ ही साथ लिखे भी जाता हूँ।''

''मैं कहानियाँ अथवा रचनाएँ इसलिए लिखता हूँ कि मुझे लिखने की शराब की भाँति लत पड़ गई है। मैं न लिखूँ, तो मुझे ऐसा अनुभव होता है कि मैंने कपड़े नहीं पहने या मैंने स्नान नहीं किया था। मैं कहानियाँ नहीं लिखता, वरन् वास्तविकता यह है कि कहानी मुझे लिखती है।''

आदत पड़ जाने पर लेखक के दिमाग से कुछ न कुछ निकलता ही है। उसका मस्तिष्क सोचता है और हाथ निकालता जाता है। लिखने में आलस्य नहीं आता। प्राय: आलस्य के कारण बहुत-सी रचनाएँ हमारे दिमाग में घुटकर मर जाती हैं।

निरन्तर संशोधन की आदत डालिये—कोई भी लेख, पुस्तक, कविता, गद्यकाव्य इत्यादि प्रथम बार ही अपने सर्वोत्कृष्ट कलात्मक रूप में प्रस्फुटित नहीं होता, कुशल लेखक को उसके बार-बार नए-नए परिवर्तन परिवर्द्धन और संशोधन करने पड़ते हैं, नए विचार जोड़ने पड़ते हैं। सब कुछ एक प्रकार से पच्चीकारी का कलात्मक कार्य है। जैसे सुनार या शिल्पी तनिक-तनिक-सा परिवर्तन कर अन्त में सजीव प्रतिमा का निर्माण करते हैं, उसी प्रकार उन्नति के इच्छुक लेखक को सदा अपनी रचना को सजाने-सँवारने में आलस्य नहीं करना चाहिए। हर बार रचना निखरती है। शब्द चयन में परिवर्तन करना पड़ता है, हल्के शब्द की जगह भारी और भारी के स्थान पर हल्के शब्दों की रद्दोबदल चलती रहती है। कविता में तो यह सर्वाधिक आवश्यक है।

उदाहरण के लिए आप रबीन्द्रनाथ ठाकुर को ही ले लीजिए। उनकी कविताएँ, कहानियाँ और नाटक हमें स्पर्श करते हैं। क्या वे एक बार में ही अपने इस मनोहर रूप में आ गये थे ?

स्वर्गीय बाबू रमानन्द चट्टोपाध्याय ने लिखा था कि ''जब हमें शान्तिनिकेतन में रहने का अवसर मिलता था, हम देखते थे कि गुरुदेव हम से देर में सोते थे और जब प्रात:काल उठते थे, उनके कमरे में लैम्प जलता हुआ देखते थे। शान्तिनिकेतन में यह सभी जानते थे कि गुरुदेव दोपहरी के वक्त भी विश्राम नहीं करते थे। एक बार गुरुदेव को सर जगदीशचन्द्र बोस के साथ रहने का अवसर मिला था। दोपहरी को जितनी देर तक वे महान वैज्ञानिक सोते थे, उतनी देर में गुरुदेव कोई कहानी लिख डालते थे, गुरुदेव अपनी रचनाओं में इतना अधिक संशोधन करते थे कि वह किसी भी सुयोग्य क्लर्क द्वारा आठ घण्टे प्रतिदिन के परिश्रम से भी न हो पाता।''

आप भी अपनी रचनाओं में सदा उचित संशोधन का ध्यान रखें, दुबारा-तिबारा लिखने का आलस्य न करें। चाहें तो संशोधन किसी अन्य पुराने अनुभवी लेखक द्वारा भी कराया जा सकता है।

जल्दी में लिखी गई पुस्तक में त्रुटियों का रह जाना स्वाभाविक है। याद रखिए आपकी पुस्तक या रचना को छापने में अनेक व्यक्तियों को कठोर श्रम करना पड़ता है, टाइप के एक-एक अक्षर का लगाना और इस प्रकार आँखों पर बेहद जोर डालना पड़ता है। फिर क्यों आप एक बार ही पूर्ण संशोधन नहीं कर लेते ? संशोधन, परिवर्तन और परिवर्द्धन में प्रमाद करने वाले लेखक जहाँ के तहाँ पड़े रहते हैं। वे खूब अध्ययन करते हैं, तब लेखनी उठाते हैं। हमें भी बहुत अध्ययन करके पूर्ण परिष्कृत रचना छपवानी चाहिए। एक-एक शब्द का चयन भाव व्यंजक और विषय को पूर्णत: स्पष्ट करने वाला होना चाहिए। रचना को श्रेष्ठतम बनाने के लिए शब्दों को सजाइये, वाक्यों को छोटा-बड़ा कीजिए और पैराग्राफ सुविधानुसार छोटे रखिये।

एक रचना में कितना समय लगे ?—यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि एक उत्तम रचना में कितना समय लगाना चाहिए ? कुछ ऐसे लेखक हैं, जो कुछ मास में ही उत्तम रचना पूर्ण कर लेते हैं। साहित्य अनवरत गति से उनकी लेखनी से प्रवाहित होता है। वे जो लिखते हैं, साहित्य बनता जाता है। इसके विपरीत अनेक ऐसे लेखक भी हैं, जो बहुत समय लेते हैं। रचना में बार-बार संशोधन और परिवर्तन करते हैं। तब जाकर उनका मन संतुष्ट होता है। उन्हें परिश्रम में आनन्द आता है, सफल लेखकों को स्थायी रचनाएँ लिखने के लिए घोर परिश्रम करना पड़ता है।

इस दिशा में सबसे उल्लेखनीय उदाहरण जर्मन महाकवि नेटे का है। वे साठ वर्षों तक अपने काव्य-ग्रन्थ 'फाउस्ट' में संशोधन, परिवर्तन और परिवर्द्धन करते रहे थे।

इसी प्रकार गिब्बन नामक अँग्रेज लेखक ने 'रोम का ह्रास और अध:पतन' नामक पुस्तक के लिखने में बीस व्यस्त वर्ष लगा दिये थे। तब ही उसे प्रकाशित किया था, जब वह पूर्ण परिष्कृत हो गई थी।

एडमस्मिथ नामक लेखक ने दस वर्षों के परिश्रम से अपनी पुस्तक 'राष्ट्रों की सम्पत्ति' लिखी थी।

उपर्युक्त लेखकों से हमें निरन्तर संशोधन की आदत सीखनी चाहिए। नये लेखक तनिक-सा लिखकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

छपाने की बड़ी जल्दी करते हैं। रचना में पूरी तरह श्रम नहीं करना चाहते। अत: पूरी तरह निखार नहीं आता। कोई भी श्रेष्ठ रचना पहली बार में अपने सर्वोत्कृष्ट रूप में आती है।

यह आलस्य लेखक के लिए खतरनाक है—डॉ० ब्रजमोहन गुप्त वैज्ञानिक कहानीकार हैं। उन्होंने अपनी एक कमजोरी इन शब्दों में अभिव्यक्त की है। आप उससे बचें—

"मेरी एक बड़ी कमजोरी यह रही कि मैं अपनी कहानियों की स्वच्छ प्रतिलिपि कभी भी स्वयं नहीं कर पाया। कहानी लिखने में जितना समय लगता है, स्वच्छ प्रतिलिपि करने में उससे तीन-चार गुना समय लगता है। सृजन का सुख भी उस परिश्रम में नहीं था। इसलिए मैं कभी भी अपने आलसी मन को उस परिश्रम के लिए तैयार नहीं कर पाया। अर्द्धचेतन मन में यह भाव भी रहता था कि जितना समय उस कहानी की प्रतिलिपि करने में लगेगा, उतने समय में तो दो-तीन नई कहानियाँ लिखी जा सकती हैं। देहरादून में तो मैंने एक निर्धन विद्यार्थी को पारिश्रमिक देकर अखबारों में भेजने के लिए कहानियों की स्वच्छ प्रतियाँ कराने का प्रबन्ध कर रखा था, परन्तु प्रयाग में ऐसा कोई प्रबन्ध नहीं था, इसलिए तीन चार महीने तक वह कहानियाँ यों ही पड़ी रहीं।"

एक दिन वह मैंने अपने मित्र को सुनाई। उन्होंने कहा, "कहानी तो बहुत अच्छी है। किसी पत्र में क्यों नहीं भेजी ?"

"स्वच्छ प्रतिलिपि कराने के सम्बन्ध में मैंने अपनी आलस्यजनित असमर्थता की बात उन्हें बताई। अत्यन्त अनुग्रहपूर्वक उन्होंने उसकी प्रतिलिपि कर दी और उन्हीं की राय से वह 'विशाल भारत' में छपने भेज दी गई।"

सम्भव है आप में भी यह आलस्य हो। एक ही रचना को २-३ बार लिखनी चाहिए। काट-छाँटकर उसमें अधिक से अधिक परिवर्तन करने चाहिए, सुन्दर शब्दों के प्रयोग से उसे निखारना चाहिए। फिर उसे सुवाच्य अक्षरों में लिखकर प्रेस कापी तैयार करनी चाहिए। प्रेस कापी करने में कभी आलस्य न करें, अन्यथा आपकी बहुमूल्य रचना प्रकाशन से वंचित रह सकती है। सम्भव हो तो उसे टाइप करालें। बड़े पत्र टाइपशुदा रचना पसन्द करते हैं और अच्छी मजदूरी देते हैं।

जीवन विद्यालय की डिग्रियाँ प्राप्त करें—श्री किशोरसाहू ने अपनी कहानियों की पुस्तक 'नागिनें और बुलबुलें' की भूमिका में नए लेखकों की भूमिका में नए लेखकों को अपने अनुभव की कुछ उपयोगी बातें इन शब्दों में लिखी हैं—

"मेरे पास कई लेखक आये। उनकी रचनाओं में एक बात अक्सर देखी है। उनकी रचनाएँ सत्य से बिल्कुल ही हटकर केवल कल्पना के वशीभूत होकर गढ़ी हुई अधिकांश झूठी कृतियाँ ही थीं।

इनमें बहुत-से साहित्यकार अध-पढ़े लिखे लेखक हैं। कॉलेज तक जो व्यक्ति न पहुँचा हो, उसे प्राय: खाना, पहनना, बोलना और व्यवहार भी बराबर नहीं आता और उसका परिचय, उसका अनुभव सुशिक्षित और सभ्य समाज के एवं विशेष अंग से बहुधा वंचित ही रह जाता है—जीवन विद्यालय की डिग्रियाँ भी इनके पास नहीं हैं। दुनिया के बड़े लेखक डिग्रीयाफ्ता नहीं हैं, पर वह समाज के हर पहलू से, हर अंग से, मानव हृदय की हर भावना से भलीभाँति परिचित हैं। वे बड़े अनुभवी हैं, जीवन के विद्यालय से विद्या और अनुभव ग्रहण करके उत्तीर्ण हुए हैं। तभी मसान कृतियाँ देने में सफल हो सके। तभी तो सत्य की कसौटी पर परखने से उनकी कहानियाँ सच्चे और विशुद्ध सोने की तरह चमकती हैं, तभी तो उनकी रचनाओं में अंकित विलक्षण पात्र और घटनाएँ देखकर पाठक उस यथार्थ में खो जाता है और उसका सम्वेदनासहित भरपूर मनोरंजन होता है।

यही मेरी शिकायत है विश्वविद्यालय की डिग्रियाँ अनिवार्य नहीं, पर जीवन-विद्यालय की डिग्रियाँ (अनुभव) तो हों, उसके पास। तभी कुशल लेखक गाल्सवर्दी ने कहीं कहा है कि अट्ठाईस वर्ष की आयु तक लेखक होने का महत्त्वाकांक्षी कुछ भी लिखने का प्रयत्न न करें, केवल जीवन के हाट से गुजरता हुआ अनुभव उपार्जन करें।

जो साहित्यकार जीवन की हाट से न गुजरेगा और अपने घर के छपरे में बैठा-बैठा केवल कल्पना (जो प्राय: गलत होती है) के आधार पर पन्ने घसीटता जायगा, उसकी कृतियाँ उसके अनुभवहीन और संकुचित मस्तिष्क की उपज नितान्त भद्दी और गलत होंगी।"

मानव जीवन और समाज के सच्चे अनुभव, अधिक से अधिक टाइप की जिन्दगी का प्रत्यक्ष ज्ञान, सांसारिक तथ्यों, व्यक्तियों के चरित्रों, क्लबों, होटलों, पान की दुकानों, स्कूलों-कालेजों, टी-स्टाल, रिफ्रेशमेण्ट रूम, बड़े और छोटे शहरों, ग्रामों, तीर्थ-स्थानों में विचरने वाले असंख्य प्रकार के नर-नारियों के चरित्रों का ज्ञान कुशल लेखक के लिए अनिवार्य हैं। आप जब साहित्य-सृजन करेंगे, तो जीवन का ही प्रत्यक्ष विवेचन-विश्लेषण करेंगे, पात्रों का निर्माण करेंगे, उनके घर-परिवार, निवास, वातावरण, बातचीत के तरीके, उचित भाषा, मुहावरे, पोशाक इत्यादि का वर्णन करेंगे। इसलिए जीवन का विस्तृत अध्ययन आपके लिए अनिवार्य हैं। लोगों को तीखी दृष्टि से देखिए, प्रतिदिन समाचार पत्र पढ़िये, अधिक से अधिक व्यक्तियों से बातचीत कीजिए। इस प्रकार अपने जीवन सम्बन्धी अनुभवों पर ही अपने साहित्य की रचना कीजिए।

गहरे उतरे बिना रहस्यों से परिचित होना सम्भव नहीं—श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ४६ वर्षों से 'वैदिक धर्म' तथा अन्य कई पत्रों का सफल सम्पादन कर रहे हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लेखक जीवन में वे सबसे बड़े साधक हैं। उनके 'नैया-जीवन' में प्रकाशित ये संस्करण नये लेखकों के लिए मार्गदर्शक हैं। उन्होंने वैदिक साहित्य सेवा को ही अपना जीवन अर्पित कर दिया है। उन्हीं के शब्दों में उनके संस्मरण सुनिये—

"मैं वैदिक धर्म की ओर क्यों आकर्षित हुआ ? अपना चित्रकला का धन्धा ही नहीं, राजनैतिक जीवन भी छोड़कर मैं क्यों एकान्त निष्ठा से इस कार्य में लग गया ?"

अपने जीवन में वैदिक धर्म के अभाव की कई प्रत्यक्ष घटनाएँ मैंने देखीं। सन् १९०६ में मैंने 'वैदिक राष्ट्रगीत' नामक पुस्तक अथर्ववेद के बारहवें काण्ड के प्रथम सूक्त पर लिखी। उसमें इन मंत्रों का अर्थ और स्पष्टीकरण ही था। इसकी दो हजार प्रतियाँ बम्बई में छापी गईं। उसमें से दो ढाई सौ का बंडल ही मेरे पास तक पहुँचा था कि ब्रिटिश सरकार ने उसको जब्त कर लिया। इसका अनुवाद भी इलाहाबाद में छपा था। उसकी भी तीन चार हजार प्रतियाँ जब्त कर ली गईं। वेद की एक छोटी-सी पुस्तक से सरकार को इतना भय क्यों हुआ? इस घटना से इतना तो स्पष्ट हो गया कि वैदिक-धर्म यदि जनता में जाग्रत हो, तो ब्रिटिश सरकार के लिए भारत में रहना असम्भव हो जायेगा। मैंने वेद की गहराइयों में उतरने का निश्चय कर लिया। मुझे लगा कि गहरे उतरे बिना उसके क्या किसी के भी रहस्यों से परिचित होना सम्भव नहीं है। गहरे ज्ञान भण्डार की ओर मेरी रुचि बढ़ी।"

उपर्युक्त अनुभव हमें बताता है कि हम जो विषय अपने लेखन के लिए चुनें, सदा गम्भीर अध्ययन द्वारा उसकी गहराइयों में उतरें। ऊपरी सतह मात्र पर ही न टिके रहें। प्रत्येक विषय की मामूली जानकारी तो प्राय: सभी व्यक्तियों को होती है। लोग आपका लेख या पुस्तक नई जानकारी, नये-नये गुप्त रहस्यों, अजीबो-गरीब अनुभवों को जानने के लिए पढ़ते हैं। यदि उनमें मामूली-सी जानकारी या सतह का ही ज्ञान रहेगा, तो उसे कौन पढ़ेगा, कौन उस पुस्तक को खरीदेगा ? इसलिए सावधानी से अपना क्षेत्र चुनिये और गहराइयों में उतरिये। अपने पाठक को पूर्ण रूपेण तृप्त करने का आदर्श बनाइये अर्थात अपने विषय का उत्तम से उत्तम ज्ञान दीजिए।

लेखन का कार्य एक गहरी साधना है। उसमें गम्भीर अध्ययन का बड़ा महत्त्व है।

वह साहित्य तैयार करो, जो पाठक को नई दृष्टि दे, जीने की प्रेरणा दे

श्री गोविन्दसिंह की शिकायत है कि प्राय: हम ऐसा निर्जीव और शुद्ध साहित्य तैयार करते हैं, जिसे पाठक अच्छी तरह नहीं समझता, न उससे प्रेरणा ही पाता है। उन उपन्यासकारों की रचनाएँ हाथों-हाथ बिक जाती हैं, जिनके लिखने की शैली आकर्षक है, जो पाठक को खींचती हैं या उपयोगी होती हैं। वे हमारा कसूर बताते हुए लिखते हैं कि हम पाठक को ठगना चाहते हैं, रद्दी चीजें देते हैं। उनके नीचे लिखे शब्द सचमुच बहुमूल्य हैं—

"चार पैसे की हाँडी आप बाजार जाकर ठोक-पीट बजाकर लेते हैं कि फूटी या चटकी तो नहीं है। दूसरे के पैसे का भी यही महत्त्व है।"

पाठक देखता है, सोचता है कि उसके मूल्य के बदले उसको क्या मिलेगा ? वह महज मनोरंजन नहीं चाहता। केवल रोमान्स नहीं चाहता। वह खूब पकड़ से लिखी गई सामग्री चाहता है, जो उसको नई दृष्टि दे, जीने की प्रेरणा दे, उसके दु:ख को सहलाये, परेशानियों को राहत दें।

पाठकों के लिए भी आज कला मनोरंजन या स्वान्त: सुखाय जैसी चीज नहीं रह गई। वह भी अब कला में जीवन खोजता है, ऐसा जीवन जो उसका अपना है। वह इतनी चीजों की तो आशा करता ही है—

(१) अच्छी हिन्दी का ज्ञान, (२) कुछ न कुछ सूक्तियाँ, जिन्हें वह अपने जीवन के प्रयोग में ला सके, आपसी बातचीत में भी कह सके, (३) किसी नई बात का ज्ञान।

श्री गोविन्दसिंह की दृष्टि में अपने वर्ग के पाठक महिला, युवक, प्रौढ़ और वृद्ध की दिलचस्पी और रुचि का, आवश्यकताओं और उपयोगिता का ध्यान रखकर प्रेरक, उन्नतिशील साहित्य तैयार करना चाहिए। उनके जीवन की समस्याओं को हल करना चाहिए।

आप जो लिखते हैं वह एक सामाजिक दस्तावेज है—विद्वद्वर्य श्री शिवदानसिंह चौहान ने 'ज्ञानोदय' के एक लेख में नये लेखकों के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव इन शब्दों में दिये हैं—

"व्यक्ति को जो मन में आये, उसे लिखने की स्वतन्त्रता देने का समर्थन करके भी मैं इससे आँखें कैसे छिपा सकता हूँ कि आप जो लिखते हैं, वह व्यक्तिगत अभिव्यक्ति के साथ एक सामाजिक दस्तावेज भी है, जिसे आज का पाठक ही नहीं बल्कि भावी पीढ़ियों के पाठक भी, आपको व्यक्तिगत अभिव्यक्ति के अतिरिक्त एक सामाजिक दस्तावेज के रूप में ग्रहण करेंगे, क्योंकि उसमें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीवन और जगत के सम्बन्ध में आपके विचार व्यक्त हुए हैं। मानव सम्बन्धों और मानव मूल्यों की अभिव्यक्ति हुई है। यह देखिए कि आपने इन अभिव्यक्तियों द्वारा मनुष्य के विश्वबोध और उसकी भावचेतना को उदात्त और मानवीय बनाया है या संकीर्ण और कुंठित किया है।

इसलिए आपकी साहित्यिक कृति रोचक हो, अपने पाठक को बहा ले जाय, लेकिन इससे ही वह अच्छी नहीं बन जाती।

साहित्य के इतिहास में स्थाई महत्त्व पाने की शक्ति भी उसमें होनी चाहिए, तभी उसे श्रेष्ठ कृति कहा जा सकता है।

किसी रचना में यह शक्ति तभी आती है, जब लेखक किसी महत्त्वपूर्ण विचार-वस्तु या अनुभव को कलात्मक ढंग से प्रेरित करने में सफल हो जाता है।

ऐसी कृति मनुष्य के विश्वबोध और उसकी भाव-अभिवृद्धि करने में समर्थ होती है अर्थात साहित्य की धारा में इसका विशिष्ट योगदान होता है और उसमें अपने युग की सबसे अधिक जागरूक प्रवृत्तियों, केन्द्रीय समस्याओं और सर्वोच्च मानव-मूल्यों की चेतना-विकासी अभिव्यक्ति मिलती है।

"एक स्वतन्त्र राष्ट्र के जिम्मेदार लेखक के नाते हमारा कर्त्तव्य है कि मूल्यों के विघटन के इस संक्रान्ति-युग में हम साहित्य में भी मनुष्य को सर्वोच्च जीवन मूल्यों को कलात्मक अभिव्यक्ति देने के लिए सचेत संघर्ष करें।"

उपर्युक्त सलाह बड़ी बहुमूल्य है। आप जो कुछ लिखते हैं, उसके प्रत्येक शब्द का समाज पर प्रभाव पड़ता है। लेखक समाज का शिक्षक है, नेता है, नए विचार देने वाला अग्रदूत है। ठीक मार्ग पर ले चलने वाला साथी है, पथप्रदर्शक है। उसकी पशुवृत्तियों का परिष्कार करने वाला उदात्त मानव है। एक अच्छी रचना सम्पूर्ण समाज को ऊँचा उठाने वाला साधन है। संसार में सत्य, प्रेम, न्याय, कर्त्तव्यपालन, उच्च आदर्शों को जीवित रखने वाला आकाशदीप है।

उपेक्षाओं और तिरस्कारों से मत डरो—लेखक के जीवन में अनेक मुसीबतें हैं। वह चाहता है कि समाज उसे अपनी सेवा के बदले में प्यार और सत्कार दे लेकिन ऐसा सौभाग्य बहुत कम लेखकों को प्राप्त होता है। अनेकों को मरने के बाद मान्यता प्राप्त होती है। कुछ जीवन भर लिखते-लिखते मर जाते हैं, पर उन्हें लोग दो कौड़ी के बदले नहीं पूछता, उम्र भर उपेक्षा और तिरस्कार मिलता रहता है। किसी लेखक की यह सबसे दर्दनाक दास्तान है, वह अपनी जिन्दगी भर कलम घिसत-घिसते मर जाता है पर उसे कोई पुरस्कार अथवा साहित्यिक सम्मान प्राप्त नहीं होता।

लीजिए, सुनिये कुछ कटु और दर्द भरे अनुभव, ये हैं हिन्दी में अनेकों सफल उपयोगी पुस्तकों के लेखक श्री रामनाथ जी 'सुमन' की अनुभवपूर्ण लेखनी से—

"खुदकी कहूँ, तो न जाने कितने फाके इस कलम के पीछे हुए हैं। कभी दो मुट्ठी चने खाकर रह गया हूँ ! कभी उबले चावल में नमक मिलाकर खा लिया है, पर लिखने का नशा नहीं छूटा। मुझे अपने स्व० गुरुदेव लाला भगवानदीन जी की याद है, जब वे 'लक्ष्मी' का अवैतनिक सम्पादन करते थे और बदले में उन्हें केवल पाँच प्रतियाँ मिलती थीं। 'प्रसाद' जी को यह बनियाँ क्या लिखेगा ? जैसे कटु वचन सुनने पड़े थे। उनके लिए यह भी कहा गया था, 'उसे कलम की जगह तराजू पकड़नी चाहिए।" प्रेमचन्द्र जी के साथ कभी-कभी यह हुआ कि पुस्तक की प्रतियाँ प्रेस से आ गई हैं, पर मित्रों के पास भेजने के लिए पोस्टेज के पैसे नहीं हैं। शैक्सपीयर मारा-मारा फिरता रहा और बहुत थोड़ी रकम में उसे अपने नाटक दे देने पड़े। आइन्सटीइन, जो संसार के वैज्ञानिकों का शिरोमणि बन गया, वर्षों अपने ही आदिमियों द्वारा उपेक्षित होता रहा। इस उपेक्षा के बीच वायलिन ही उसका सहारा था। एलेनपो नामक अमेरिकी साहित्यकारों एवं कवियों में विख्यात है। उसने साहित्य को अमर रचनाएँ दी हैं, पर इन रचनाओं के बदले उसे पेट भर भोजन कभी न मिला। उसकी प्यारी पत्नी और सुख-दु:ख की साथिन बर्जीविया क्लेम सदा गरीबी के दु:ख भोगती रही। पो ने अपनी अत्यन्त प्रसिद्ध बल्कि अमर रचना 'रेवेन' की पूर्ति में दस साल व्यय किये, किन्तु वह केवल दो पौण्ड में बिक सकी। इससे भी आश्चर्य की बात यह है कि इसी रचना की मूल पाण्डुलिपि, बाद में हजारों पौंड में बेची गई। अमृतसिन क्लेयर की रचनाएँ लाखों की संख्या में बिकती रहीं हैं पर उसे वर्षों तक पेट भर खाना नसीब नहीं हुआ। विश्व विख्यात मोजार्ट तो अपने कमरे को गरम करने के लिए लकड़ी भी नहीं खरीद पाता था। भूख और ठण्ड से ठिठुरकर वह क्षय का शिकार हो गया और अमर संगीत की सृष्टि करने वाला मोजार्ट केवल ३५ वर्ष की अवस्था में दुनिया से चल बसा। प्रो० हेनरी, जिसकी कहानियों का लाखों पाठक अभिनन्दन करते हैं, युगों तक विपदाओं से जूझता रहा। मार्कोनी को रेडियो के आविष्कार पर गोली मारने की चेष्टा की गई। प्राय: प्रतिभा काँटों के बीच पलती है।"

ये उदाहरण भी देख लीजिए। साहित्य सेवा समाज को उठाने और जगाने का साधन है। यह समाज तरह-तरह के जीवों—हिंस्र पशुओं, घातक सिंहों से भरा हुआ है। कहीं आपको सावधानी से बचना होगा, कहीं उपेक्षाओं और तिरस्कारों की परवाह किए बिना आगे बढ़ना होगा, कहीं उपहास का पात्र बनना होगा। इतने पर भी, उपहास, उपेक्षा, तिरस्कार से गुजरकर भी यह लक्ष्य नहीं छोड़ना होगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नये लेखकों की पाठशाला

कड़ुवे अनुभव मीठे फल—कई वर्ष पूर्व की बात है। श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने मेरी कुछ रचनाएँ पसन्द कीं और एक ऊँचे प्रकाशक से मेरा एक निबन्ध संग्रह प्रकाशित कराने की व्यवस्था की। मेरा मन अधिक लिखने के गर्व में चूर था। बस, मैंने अपने छपे हुए लेखों की कटिंग की एक बड़ी-सी फाइल 'प्रभाकर' जी के पास भेज दी। मैं ४०-५० छोटी पुस्तकें लिख चुका था। ये भिन्न-भिन्न विषयों पर भिन्न-भिन्न शैलियों में थीं। सोचता था 'प्रभाकर' जी मेरी साहित्य-सेवा की दाद देंगे, शायद मेरी पुस्तकों पर कुछ पंक्तियाँ भी लिखेंगे।

एक सप्ताह बीता, मैं प्रतीक्षा करता रहा। फिर याद दिलाई। इस बार एक करारा पत्र आया, जिसे पढ़कर मैं जलभुन गया। कई बार उस पत्र को पढ़ा, बार-बार पढ़ा। यहाँ तक कि उसकी पंक्तियाँ याद हो गईं। फिर क्रोध में आकर उसे फाड़ डाला। उस पत्र का आशय कुछ इस प्रकार था—

"आप अधिक लिखते हैं। हर विषय और हर पत्रिका में कुछ न कुछ लिखते रहने से आप अपनी उच्च प्रतिभा का दुरुपयोग मात्र कर रहे हैं। शक्तियों का ऐसा अपव्यय आपको शोभा नहीं देता। मैंने आपको लिखा था कि आप अपनी सब पुरानी रचनाओं को माँजिये, अनावश्यक बातों और कमजोर स्थलों को काट डालिये, अपनी पूरी-पूरी पुस्तकों को संक्षिप्त लेखों का रूप देकर शैली को मजबूत बनाइये और अपने में डूबकर यह सब कीजिये, पर आपने पुराने लेखों और बचकाना किताबों का पुलन्दा ही मुझे भेज दिया। भला, यह कूड़ा-करकट मुझे क्यों भेजा ? जो व्यक्ति बढ़िया से बढ़िया मिष्ठान और पौष्टिक मिठाइयाँ दे सकता है, वह यह सस्ती चाट-पकोड़ी क्यों बेच रहा है ? जो हाथी पर चढ़कर निकल सकता है, वह क्यों भैंसे पर चढ़ा फिरता है ? जो इन्जीनियर बन सकता है, वह मजदूरी क्यों कर रहा है ?.....।"

मेरी समस्त साहित्य-साधना को 'कूड़ा करकट' कह दिया गया था। मैं मन ही मन कुढ़ता रहा। बहुत दिनों तक मन की व्यथा सताती रही, लेकिन धीरे-धीरे पत्र की बातें मन में गहरी उतरती गईं। तब सोचा—सचमुच यों सब विषयों पर अध्ययन करने और लिखते रहने से कुछ न होगा। कोई नया विषय, उपेक्षित या अधूरा विषय ढूँढ़ना चाहिए। साहित्य में सभी विषयों पर कुछ न कुछ लिखा जा रहा था, पर एकांकी नाटकों पर कोई चर्चा न थी। बस, मैंने एकांकी नाटक का अध्ययन अपना विषय चुना और उस विषय पर छह वर्ष खूब पढ़ा, उसी पर अपनी समग्र शक्तियाँ और परिश्रम केन्द्रित किए और अपने आप में डूबकर एक नई पुस्तक लिखी—'हिन्दी एकांकी उद्भव और विकास।' इस पुस्तक पर मुझे डॉक्टरेट मिली। यू० पी० सरकार की हिन्दी समिति तथा राजस्थान साहित्य-अकादमी से पुरस्कार, यूनीवर्सिटी ग्राण्ट कमीशन, दिल्ली तथा राजस्थान विश्वविद्यालयों से प्रशंसा और आर्थिक सहायताएँ भी मिलीं। यह सब देखकर मेरे मन में उल्लास हुआ और फिर यकायक बिजली की तरह 'प्रभाकर' जी का वही पुराना कड़ुआ पत्र याद आ गया। उसकी एक-एक बात स्मृति पटल पर पुनः-पुनः हरी होने लगी। मन में आया कि मनुष्य भी कैसा मूर्ख होता है ? जो अपनी भलाई को नहीं समझता और अपनी बात को भी कड़ुवी बात मानता है। स्वयं मैं कितनी बड़ी गलती कर बैठा था !

यह सोचते-सोचते मुझे अनायास अँग्रेजी के एक प्रसिद्ध लेखक का एक पुराना लेख याद आ गया, जिसका शीर्षक था—'मनुष्य और उसकी गलतियाँ।'

वे लिखते हैं कि जीवन में हम प्रायः सात गलतियाँ करते रहते हैं और उन्हीं के कारण उन्नति नहीं कर पाते। वे गलतियाँ निम्न प्रकार हैं—

१. हम यह समझ बैठते हैं कि दूसरों को दबा कर या उनका विरोध कर हम अपनी उन्नति कर सकते हैं जबकि सबके रास्ते अलग-अलग हैं और कोई किसी के मार्ग में अड़चन उत्पन्न नहीं करता।

२. हम उन बातों के लिए व्यर्थ चिन्ता करते हैं, जिन्हें बदलना या देना हमारे लिए किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है।

३. हम मन में यह समझ बैठते हैं कि चूँकि हम अमुक बड़ा कार्य नहीं कर पाए तो दूसरे भी उस बड़े कार्य को न कर पायेंगे।

४. हम प्रायः छोटी-छोटी बातों या मामूली सफलताओं को ही बड़ी सफलताएँ मान बैठते हैं और बच्चों की तरह उन्हीं में लिपटे रहते हैं, जबकि यदि हम साधना और अभ्यास करें, तो बड़ी-बड़ी सफलताएँ प्राप्त करने की क्षमता हममें मौजूद रहती है।

५. हम नए साहित्य और सम्पर्क से अपने मन को निरन्तर सुसंस्कृत और विकसित न बनाने की बुरी आदत का शिकार हो जाते हैं। यह बड़ी भारी गलती है क्योंकि मन का संस्कार जीवन के अन्त तक चलना चाहिए। सचाई तो यह है कि बुढ़ापे में मन को सुसंस्कारी और निश्चित बनाने की सर्वाधिक आवश्यकता है।

६. हम भूल जाते हैं कि दूसरों को अपने ढंग से सोचने या रहने के लिए बाध्य करना अपने आपको दुःखी बनाने का एक शर्तिया उपाय है। सब व्यक्तियों के सोचने और कार्य करने की आदतें पृथक्-पृथक् हैं।

७. हम रुपया बचाने की आदत नही डालते। खुश रहने के लिए जीविका में से कुछ बचत करने का ध्यान रखना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपर्युक्त गलतियों में से नम्बर ४ की गलती की सत्यता स्वयं मुझ पर प्रकट हुई। हमारे न जाने कितने भाई-बहनें हैं, जो जीवन के किसी न किसी क्षेत्र में बड़ी सफलताएँ प्राप्त कर सकने की क्षमता रखते हैं, पर व्यर्थ छोटी-छोटी बातों में समय नष्ट करते रहते हैं।

वास्तव में अथर्ववेद की इस उक्ति में बड़ा तथ्य है—**''आप्नुहि श्रेयांसम्''** —(अथर्व २-११-४) जो तुम से बढ़े हुए हैं, उन तक पहुँचने की कोशिश करो। मेरा अनुभव, विद्वान् लेखक का चिन्तन और वेद की यह सूक्ति नए लेखकों-साधकों के लिए अमृत फल हैं, इसे-उन्हें भेंट करता हूँ।

विभिन्न विधाओं का लेखन-कार्य

निबन्ध लेखन कला—निबन्ध से हमारा तात्पर्य उस लेख से नहीं, जो विद्यार्थी गण कक्षा में अध्यापक के आदेशानुसार लिखते हैं। यह हिन्दी के निबन्ध को अँग्रेजी के (ऐसे) जैसा मानते हैं। लेखक जीवन के सुख-दुःख, ह्रास-विलास, पीड़ा या वेदना-अनेक छोटी-बड़ी घटनाओं की जो अनुभूति धारण कर पाता है, अपने निबन्धों में वह उनका सरल, सरस और सरसरे ढंग से रोचक वर्णन उपस्थित करता है। निबंधकार का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है, उस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं, वह तितली की भाँति उन्मुक्त है। जहाँ उसे सौन्दर्य दीखे, वहीं ठहरकर अपनी हृदय वीणा झंकृत कर सकता है। अनुभूति की चोट से मर्माहत हो, कल्पना की कूची हाथ में लेकर वह अपने अन्तस्थल को किसी भी तरह व्यक्त कर सकता है। महाराज कुमार रघुवीरशरणसिंह जी का 'ताज' निबन्ध, वियोगी हरि का 'प्रेम-योग' का अन्तःस्थल 'श्मशान' वृद्ध इत्यादि हिन्दी के प्रसिद्ध निबन्ध अपने विषय की अभिव्यंजना की परिधि में सुविस्तृत है। किसी में कवित्व है, तो किसी में सजीवता और चुलबुलाहट। हर एक निबन्ध मौलिकता, सुन्दरता, सरसता से भरा है। हर एक लेखक का व्यक्तित्व जैसे शब्दों के पीछे से झाँक रहा हो।

आपका निबन्ध हार्दिक मनोभावों, अनुभूतियों तथा सरसता से ओतप्रोत हो, उसे पढ़ें तो वह कहानी सा रोचक और नाटक-सा स्पष्ट चित्र अंकित करने वाला हो, उसमें सुन्दर चित्रण हो, कल्पनात्मक मनोरंजन एवं कलापूर्ण अभिव्यंजक हो। जिस विषय को लिया जाय, उसकी तह तक पहुँचने का लोभ न कर, बाह्य उपकरणों की चर्चा सरल-सरस और सरसरी नजर से चलती रहे किन्तु यह हो प्रभावोत्पादक। वर्णन इसी तरह किया जाय जिस तरह प्रतिपाद्य विषय लेखक के व्यक्तित्व पर प्रभाव डालता हो, लेखक अपनी स्वानुभूति पर ही लेखन का अधिकारी है। ये निबन्ध बिल्कुल निजी होने चाहिए। निबन्ध की प्रभावोत्पादकता प्रतिपाद्य विषय में नहीं प्रत्युत उसका वास्तविक सम्पर्क तो लेखक के व्यक्तित्व से है। श्री हरिशंकर शर्मा को लीजिए—आपकी वाणी से निकले हुए ९० प्रतिशत निबन्धों में एक अजीब चुलबुलाहट रहेगी। निबन्ध की मनोहरता, सफलता, सरसता उस मस्तिष्क पर अवलम्बित रहेगी, जिसका व्यक्तित्व उस निबन्ध से जाहिर हुआ है।

उपन्यास लेखन कला—जितने भी बन सकें अपनी भाषा या किसी दूसरी भाषा, विशेषकर अँग्रेजी, बँगला या मराठी के उपन्यास पढ़िये। उनके प्लाट एक डायरी में दर्ज करते जाइये। इसी तरह पात्रों की भी एक सुविस्तृत डायरी बनाइये, जिसमें उनकी विशेषताओं, आदतों, स्वभाव, मनोभाव, आकृतियों का पूरा-पूरा वर्णन हो। इसी तरह जगत में अन्य जिन अद्भुत आदमियों के सम्पर्क में आये उनके व्यक्तित्व, अनुभूति तथा कार्यकलापों का वर्णन एक डायरी में एकत्रित करने चाहिए। अपने पात्रों को काल्पनिक जगत में जीते जागते, काम करते, सुख दुःख, प्रेम-घृणा, क्रोध, भय का अनुभव करते हुए देखिए। अपनी कल्पनाशक्ति जितनी तीव्र होगी, अन्य जितने चित्र सोच सकेंगे और उन दृश्यों में अपने पात्रों को फिर बिठला सकेंगे, प्रसंगानुसार भावारोपण कर सकेंगे, उन्हें जितना जीता-जागता कर जीवन-युद्ध में क्रियाशील बना सकेंगे। उतने ही कुशल उपन्यासकार बन सकेंगे।

उपन्यास जीवन का सुविस्तृत चित्र होता है, वह समस्त समाज, सभी वर्गों के आदमियों, रीतियों जीवन के कठोर सत्यों, भौतिक परिस्थितियों, परिवर्तनों, दृष्टिकोणों, पक्ष-विपक्ष का रेखाचित्र है। उपन्यास समाज का प्राणस्वरूप कला जीवन का चित्रण है। कला युग तथा समाज के ऊपर अद्भुत सृष्टि है, जिसका मूल्य अमिट है। अतः सबसे पहले आप समाज के मर्मस्थलों का सूक्ष्म निरीक्षण कीजिए, उसके अन्तरंग को देखिए, गहनतम गुत्थियों, नई-नई शाखाओं, धाराओं को परखिए और फिर इस जीवन को अपने उपन्यासों में उड़ेलिए। जो कलाकार समाज की बेड़ियाँ देख-समझ रहे हैं, वे आज भी प्रगतिशील उपन्यास की रचना कर सकते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी में विदेशी उपन्यासकारों का ऐसा नियम था कि पेंसिल तथा नोट-बुक लेकर घर से बाहर निकल पड़ते थे और अपने काम की बातें आँख से देख कर नोट कर लेते थे। यही कारण है कि उनके उपन्यास, उनके समाज के प्रतिबन्ध है और संघर्ष-विस्मरण के प्रयास। उपन्यास में आप समाज की वेदना, उत्पीड़न, आशा, उल्लास, गति को मुखरित कीजिए।

कहानी लेखन-कला—कहानी जीवन की एक झाँकी है, समूचा चित्र नहीं। कहानीकार उसी झाँकी मात्र से अपने गहनतम भावों को अभिव्यंजित कर देता है। अपने कथानकों के लिए आप अधिक से अधिक समाचार-पत्रों को पढ़िए, दिलचस्प मामलों, आकर्षक घटनाओं, मित्रों की बात-चीत में, रास्ता चलते हुए मोटर, रेल, ताँगा-इक्के में, इधर-उधर की बात-चीत के सिलसिले में हर एक स्थान पर प्लाटों के लिए सामग्री जुटाने के लिए। अपने स्वयं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के जीवन में आपको अनेक मजेदार घटनाएँ मिल जायेंगी। जहाँ आपको जरा भी चमत्कार नजर आये, ज्ञानवर्द्धक या मनोरंजक बात तो तुरन्त नोट कर लीजिए। इन छोटे-छोटे रहस्यों के बल पर कल्पना का रंग चढ़ाकर आप अनेक आकर्षक कहानियाँ लिख सकते हैं।

कहानी का सम्बन्ध जीवन से अटूट है। अत: लोगों के मामलों, घटनाओं, सम्बन्धों के निरीक्षण में आपको बहुत चौकन्ना बनना चाहिए। हजार दो हजार कहानियाँ पढ़िए और देखिए कि उनमें से हर एक में कोई न कोई गूढ़ रहस्य, कोई आकर्षक बात, कोई चुहल, दिलचस्प मामला, वाद-विवाद, नई सूझ, कल्पना की उड़ान छुपी है। आप भी चौकन्ने रहकर चलते हुए तथा दिन पर दिन घटने वाली आकर्षक घटनाओं के चतुर्दिक कहानी लिख सकते हैं। आपका अध्ययन, अनुभूति तथा समस्यायें सम्पर्क में आने वाले आदमी, मित्र, पत्नी बालक, रेल-यात्रा, समाज तथा गति, जीवन की वास्तविकता, कटुता, कठिनाइयाँ, टक्कर, रेल, स्टेशनों ग्राम्यजनों का वातावरण इत्यादि मिल-जुलकर जीवन का एक सुन्दर चित्र बना सकते हैं। जीवन के कुछ मूल्यवान क्षण लेकर ही आधुनिक कलाकार उन पर तीव्रतम प्रकाश डालता है और एक जीवन-चित्र की सृष्टि करता है।

आपके जीवन का सन्देश, बल एवं शक्ति, आपके हृदय में जो अग्नि जलती है, आपकी क्रान्ति भावना, अन्तर्ज्वाला, अन्त:स्थल के बनते-बिगड़ते चित्र यदि पकड़कर कहानी के पिंजड़े में बन्द कर लिए जायें तो अत्यन्त रोचक हो सकते हैं। आप यथाशक्ति अपने कथोपकथन को स्वाभाविक, पटभूमि को सुन्दर बनाइये। भाषा में काव्य और लालित्य रहे तथा आन्तरिक अनुभूतियों का अभिव्यंजन।

नाटक लिखने की कला—नाटक में स्पष्ट रूप से मनोभावों का प्रदर्शन ही मुख्य वस्तु है। शब्दों, कथोपकथन तथा अंग-संचालन द्वारा पात्रों को भिन्न-भिन्न कार्यकलाप जाहिर करने होते हैं। सुख-दु:ख, क्रोध-भय, प्रेम-घृणा सब कुछ कथोपकथन द्वारा अभिव्यंजित होते हैं। अत: आप कथानक लेकर लोगों का वार्तालाप लिखना सीखिए। कथानकों के साथ आपको छोटे-छोटे कथन को भी मुख्य कथानक में जोड़ना पड़ता है। आपको अपनी कहानी को छोटे दायरे में पात्रों द्वारा दिखा देना है अत: कथानक के क्रमिक विकास पर अधिक सतर्क रहिए। पात्र जो बात कहें, उनसे क्रमश: उनका चरित्र भी प्रकट होता चले। व्यर्थ की बातों का समावेश न हो।

आजकल स्टेज डायरेक्शन में लेखक आधा चरित्र स्पष्ट कर देते हैं। अत: स्टेज डायरेक्शन ध्यान से लिखिए। जैसी आपने कल्पना की है, पोशाक, वातावरण, वाणी चेहरे की मुद्रा, भय, ग्लानि या जो भाव स्पष्ट करना चाहते हैं उसे स्पष्ट रूप से अंकित कीजिए।

आपके पात्र जीते-जागते, अपना-अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखने वाले, उनका वार्तालाप उन्हीं के पद, योग्यता, स्वभाव इत्यादि के अनुकूल ही हो, कृत्रिमता न आने पावे। नाटक के नाम से जो रचनाएँ रंगमंच पर खेली जाती हैं, वे साहित्यिक नहीं होतीं। हिन्दी की साहित्यिक जनता दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है और सफल साहित्यिक नाटकों का अभिनय देखने को उत्सुक है, अत: रंगमंच की आवश्यकताओं को ध्यान रखते हुए ही अपने नाटक लिखिये। नये आदर्श हमारे सामने हैं अत: अपने नाटकों को क्रमश: जीवन में निकाल लाइये।

एकांकी लिखने की कला—एकांकी नाटक में आपकी पटभूमि और भी संकुचित होती है। एकांकी नाटक का बड़े नाटकों से वही सम्बन्ध है, जो कहानी का उपन्यास से। जैसे उपन्यास सम्पूर्ण जीवन का चित्र है और कहानी एक झाँकी, उसी प्रकार यदि बड़े नाटकों में पूर्ण जीवन के किसी विशेष अंश की झलक रहती है, चरित्र का कोई पहलू, कोई घटना संकेत, दूसरे के जीवन की जटिलता, चरित्र की किसी विशेष घटना का कोई नर्तन रहता है। एकांकी लिखने वाला दर्शकों का अधिक समय नहीं लेना चाहता प्रत्युत, अल्पकाल में ही जीवन की विषम समस्याओं का कुछ अनुमान करा देता है।

एकांकी के लिए आप कुछ भी चुन सकते हैं—कोई समाज की गुत्थी, मधुर स्वप्न, मन्दिर विलास, आशा, अभिलाषा, जीवन के प्रति नया दृष्टिकोण। आपका ध्येय तो हृदय में चुभने वाला, अन्तस्थल से टकराने वाली लहर की भाँति थोड़ी देर में मनुष्य के हृदय की एक झाँकी दिखा देना है। पुराने युग के प्रतिबन्ध आप पर नहीं हैं। अमुक प्रकार का पात्र, अमुक प्रकार की नायिका हो—ऐसा कोई नियंत्रण आप पर नहीं है। आपको तो सीधे हृदय पर चोट करनी है।

पात्र यथाशक्ति कम ही रखिए। अधिक पात्रों में आन्तरिक संघर्ष, कश्मकश, हृदय की चीत्कार के चित्रण का कम अवसर रहता है। आपकी सफलता तो संवाद-पौढ़ता में है। कम शब्दों में जितना अधिक सम्भव हो व्यक्त कर दीजिए। व्यर्थ बकवास के लिए न तो आपके पास स्थान है और न दर्शकों के पास समय। कथोपकथन यथाशक्ति बिल्कुल सीधा, स्वाभाविक और उद्देश्य को प्रकट करने वाला हो। प्रत्येक सम्वाद क्रमश: मूल लक्ष्य की ओर अग्रसर हो। वे एकांकी अधिक सफल होते हैं, जिनमें केवल एक दृश्य हो, सीन बदलना कष्टसाध्य है। भाषा चलती हुई हो किन्तु भावों की अनुगत।

अपना आशय प्रकट करने के हेतु स्पष्ट स्टेज डायरेक्शन दीजिए, आपके शब्द चित्र की रेखाएँ गहरी हों, धुँधली नहीं। आपके हृदय की अन्तर्ध्वनि भी सुन पड़े, और अन्तिम छाप भी हृदय-पट पर अंकित हो जाय। यदि आप में स्वयं शक्ति है, प्रेरणा है, रस-अनुभूति है, तो आपके एकांकियों में पर्याप्त बल होगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीवन चरित्र रचना—किसी महान् व्यक्ति के जीवन चरित्र को लिखते समय आप यह न भूल जाइये कि आप किसी देवता का जीवन चरित्र नहीं लिख रहे हैं, वरन हाड़-चाम के व्यक्ति में उत्तरदायित्व पालन के साथ-साथ कमजोरियाँ भी होती हैं। कुछ लेखकगण भावुकता के वशीभूत होकर नायक को अतिमानव बना डालते हैं। आपको यह न विस्मृत करना चाहिए कि उन्हें भी साधारण पुरुषों की भाँति जीवन-संग्राम में जूझना पड़ा था, आशा-निराशा, सुख-दुःख, हास्य-रुदन, क्षोभ, शोक एवं ग्लानि के मध्य होकर निकलना पड़ा था और इतने पर भी वे अपने कार्यक्षेत्र में सारी इच्छाओं एवं प्रतिकूलताओं का अतिक्रमण करके सफलता अर्जन में समर्थ हुए थे। जीवन चरित्र नायक के व्यक्तित्व को स्पष्टतः दिखाइये, तत्कालीन सामाजिक अवस्था का भी थोड़ा परिचय दीजिए, निष्पक्ष रूप से नायक की विभूतियों, गुणों, प्रतिभा, कार्यों के साथ-साथ दोषों, त्रुटियों एवं अपूर्णताओं से युक्त गुण-दोष-मय व्यक्तित्व को प्रकाश में लाइये किन्तु कमजोरियों का अनावश्यक रूप से प्रकाश में लाना सराहनीय नहीं। प्रत्येक व्यक्ति जो आपके लिखे जीवन चरित्र को पढ़ेगा, अपने साथ आपके पात्र के लिए श्रद्धा सहानुभूति रखता है। इस श्रद्धा का उत्तरोत्तर विकास करना आपका उद्देश्य होना चाहिए।

डॉ० जानसन का मत है कि प्रत्येक जीवन चरित्र का मूल तथ्य है, उसकी विश्वस्तता। यदि चित्र वास्तविक नहीं तो वह पूरा और खरा जीवन चरित्र ही नहीं कहा जा सकता। सिडनीली ने उद्देश्य बताते हुए कहा है एक ओर सत्य तथा दूसरी ओर व्यक्तित्व इन दोनों का प्रकाश जीवन चरित्र में होना चाहिए। लिटन स्ट्रैची की राय है कि चरित लेखक का पहला कर्त्तव्य है, स्वल्पभाषी बनना। जो कुछ साधारण और अनावश्यक है, उसे काट-छाँट, जो विशिष्ट है उसे ही जाहिर करना। अपने स्वाधीन मत की रक्षा करना। किसी की अनावश्यक स्तुति या बढ़ाई करना चरित्रकार का कर्तव्य नहीं, चरित नायक के सम्बन्ध के विवरणों की निरपेक्ष भाव से जाहिर करना और उन्हें समझाने की चेष्टा करना उसका प्रधान लक्ष्य है। एक सफल चरित्रकार अपने चरित्र के स्थान पर आक्रमण करेगा और गोपनीय स्थानों पर समुचित उजाला डालेगा।

कवि बनने के साधन—आचार्य मम्मट ने तीन साधनों का निर्देश किया है—(१) शक्ति (२) निपुणता और (३) अभ्यास। शक्ति से तात्पर्य स्वाभाविक ईश्वरदत्त प्रतिभा ताकत होती है किन्तु पढ़-लिखकर कोशिश द्वारा भी काव्य सृजन सम्भव है। जिनमें यह जन्मजात गुण नहीं, वे भी शास्त्रीय तथा लौकिक विविध ज्ञान-विज्ञान केवल से अपनी ताकत को चमका सकते हैं। काव्य के मुख्य तत्त्व दो हैं—गहन अनुभूति एवं कल्पना। कवि के लिए सामान्यतः सभी शास्त्र तथा लोक व्यवहार का ज्ञान आवश्यक है, परन्तु साहित्य शास्त्र तथा सम्पर्क बहुत आवश्यक है।

इच्छुक को पहले छोटे-बड़े कवियों की भाँति-भाँति की कविताएँ कण्ठस्थ करनी चाहिए। उन्हें उचित ढंग से गाने, पाठ करने का अभ्यास करना चाहिए और अच्छे गुरु की छत्र-छाया का आश्रय लेना चाहिए। अन्य कवियों के उद्गारों की शैली पर जब आप अपनी कविताएँ बनायेंगे तो सहृदय गुरु ही आपको गलतियाँ समझायेगा। आपके पास जितना विस्तृत शब्द भंडार होगा, उतनी ही प्रभावोत्पादक आपकी कविता रहेगी।

अनेक विद्यार्थियों में कवित्व शक्ति विद्यमान रहती है किन्तु वे बाह्य साधनों का उचित उपयोग न करने के कारण उनकी स्वाभाविक प्रतिभा का विकास नहीं हो पाता। जिस व्यक्ति में कवित्व शक्ति के कुछ ही अंकुर हैं उसे साहित्यशास्त्र का अध्ययन करना चाहिए। विविध कलाओं का अनुभव तथा शास्त्रों और काव्यों का परिशीलन भी आवश्यक है। पं० किशोरीदास बाजपेयी के अनुसार कवि बनने के इच्छुक को चाहिए कि वह कवित्व शक्ति को विकसित करने के लिए खूब देश भ्रमण करें, सब स्थानों के रीति-रिवाजों को देखे, वन, पर्वत, नदी, नाले, कुँए, तड़ाग आदि प्रकृति के सहचरों का निरीक्षण करें, अधिक से अधिक भाषाओं तथा शास्त्रों को जाने, सत्काव्यों के अध्ययन में तत्पर रहें।

गद्य काव्य लेखन—सहृदय मानव के विलोडित भावों की अभिव्यक्ति ही काव्य है, चाहे वह गद्य में हो अथवा पद्य में। जब भाव ऊँचे उठते हैं, उनमें भावनाओं तथा तीव्र अनुभूति का संस्पर्श होता है, तो वह अनायास ही काव्यमय हो जाते हैं। कभी-कभी तो गद्य लिखने वाला भावुक कलाकार यह भी नहीं जान पाता कि वह भी काव्य की ही सृष्टि करता है, उसे यह ज्ञान नहीं रहता कि उसकी भाषा काव्य से भीगी है। गद्यकाव्य अन्तर्ध्वनि, तथा अनुभूति का संगीतमय योग है।

गद्य काव्य लिखने के इच्छुक को जितना हो सकें प्रसिद्ध लेखकों के गद्यकाव्यों का सूक्ष्म अध्ययन करना चाहिए। उनकी अनेक पंक्तियों की छानबीन करके यह देखना चाहिए कि मिठास या चमत्कार क्यों कर उत्पन्न किया गया है। कलाकार के किस प्रकार हृदय के तारों को झंकृत किया गया है, सौन्दर्य क्यों कर प्रस्फुटित किया गया इत्यादि। नए लेखक को हिन्दी में प्रकाशित कुछ उर्दू की शायरी भी कंठस्थ कर, उन्हीं अनुभूतियों को अपने गद्य गीतों में उड़ेलने का प्रयत्न करना चाहिए। गद्य-काव्य इतना ही कठिन कार्य है जितना काव्य-सृजन, अतएव अनुकरण-अभ्यास, दूसरों के गीतों का गहन अध्ययन, अवलोकन, पठन-पाठन ही हमारी काव्य प्रतिभा को, आन्तरिक सौन्दर्य के स्रोत को स्फुरित कर सकता है।

जब हम आलोचना लिखने बैठें—श्री गुलाबराय ने आलोचक बनने के लिए कुछ तत्त्वों का उल्लेख इस प्रकार किया है—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(१) आप देखिए कि पुस्तक में किस विषय की प्रधानता है वर्णन की, विचारों की, या भावों की ? भावों की यह प्राधान्य उसके विषय के अनुकूल है या नहीं ? जैसे यात्रा की पुस्तक में वर्णन का आधिक्य अच्छा है, दर्शनशास्त्र के ग्रन्थ में विचार का प्राधान्य उत्तम है, कविता में भावों का प्राधान्य वांछनीय है। विज्ञान की पुस्तक में भावों का प्राधान्य उतना आवश्यक नहीं समझा जाता।

(२) वर्णन के सम्बन्ध में आपको यह जानना चाहिए कि काल्पनिक चित्र किस प्रकार के हैं ? अर्थात देखने के हैं, सुनने के हैं या स्पर्श के हैं क्या यह वर्णित चित्र स्पष्ट और सच्चे हैं ? क्या ये अनुभव के प्रतिफल हैं अथवा कल्पना के हैं? यदि नवीन हैं तो सम्भव हैं या असम्भव ? क्या इन चित्रों के लिए लेखक ने पहले से पाठकों को तैयार कर लिया था ? अर्थात कोई ऐसी बात तो नहीं है, जिसके सुनने के लिए हम तैयार न हों। क्या इनमें रोचकता है ? क्या कुछ हास्य की मात्रा है ? यदि है, तो हास्य अच्छा है या बुरा ? क्या चित्रों में पारस्परिक सामंजस्य है ? क्या उनमें कोई कम है और वह समझ में आ सकती या नहीं ?

(३) विचार के सम्बन्ध में हमें यह जानना चाहिए कि वे प्राचीन हैं अथवा नवीन ? यदि नवीन हैं, तो उनकी नवीनता किस बात में श्लाघनीय है ? लेखक का प्रधान मत क्या है ? सब विचार उसमें साम्य रखते हैं या नहीं ? लेखक अपने मूल विचारों को व्यक्त करने में कहाँ तक समर्थ हुआ है ?

(४) भाव के सम्बन्ध में यह जानना चाहिए कि भाव स्वाभाविक है अथवा बनावटी-रसाभास या भावाभास तो नहीं ? प्रधान भाव क्या है और प्रत्येक भाव एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं या नहीं हैं ?

(५) भाषा और शैली के विषय में यह बातें जाननी चाहिए—क्या लेखक ने प्रचलित भाषा का व्यवहार किया है, व्यक्तित्व की छाप लगाई है, व्याकरण, अलंकारों, पिंगल के नियमों का पालन किया है या नहीं ? भावों और विचारों के उतार-चढ़ाव का क्रम, लय, गति व छन्द बिखरे तो नहीं हैं।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भाषण और संभाषण की दिव्य क्षमता

व्यक्तित्व सम्पन्न वक्ता का प्रभावी प्रवचन

युग सन्धि के प्रभात पर्व में विचार क्रान्ति की लाल मशाल ऊषाकाल की लालिमा लेकर प्रकटी है। इस अवसर पर जनजागरण के आलोक वितरण की प्रमुखता रहेगी। लोकमानस के परिष्कार का लक्ष्य लेकर बहुमुखीं रचनात्मक प्रवृत्तियाँ अग्रगामी बनेंगी। उनका मूलभूत आधार होगा, दूरदर्शी विवेकशीलता का अवलम्बन। मूढ़मान्यताओं, कुरीतियों और अवांछनीयताओं का उन्मूलन आवश्यक है। साथ ही सत्प्रवृत्ति संवर्धन के लिए भी नये सिरे से प्राणवान प्रयासों को गतिशील होना है। यही है युग अवतरण की वह दुहरी प्रक्रिया, जिसमें भगवान के अधर्म उन्मूलन और धर्म संस्थापन के आश्वासन को चरितार्थ होने का अवसर मिलेगा। परिवर्तन का ठीक यही समय है। इस अवसर पर हर विचारशील के अन्तराल में अनौचित्य को निरस्त करने और औचित्य को अपनाने की प्रेरणा उभरेगी। यही है युगान्तरीय चेतना का वह स्वरूप, जिसे 'विचार क्रान्ति' या 'प्रज्ञा अभियान' के नाम से समझा-समझाया जाता रहा है।

शिक्षितों को पठन लाभ मिल सके, यह प्रयत्न भी प्रज्ञा अभियान के अन्तर्गत चलेगा ही, चल भी रहा है किन्तु युगान्तरीय चेतना को व्यापक बनाने के लिए वाणी की शक्ति का उपयोग किये बिना काम चलने वाला है ही नहीं। जन सम्पर्क में वार्तालाप ही आधार है। इसके लिए संभाषण की प्रवीणता आवश्यक है। अभिव्यक्तियों का आदान-प्रदान इसी माध्यम से संभव है। चिट्ठी-पत्री तो मात्र संकेत ही कर सकती हैं। विस्तृत विचार-विनिमय का वार्तालाप ही एकमात्र अवलम्बन है। इस आवश्यकता की पूर्ति और किसी उपाय से सम्भव नहीं।

जन समुदाय के सम्मुख विचारों का प्रकटीकरण भाषण कहलाता है। सीमित लोगों के साथ वार्तालाप को संभाषण कहते हैं। यह परिस्थिति भेद में अपनाई जाने वाली दो शैलियाँ भर हैं। दोनों में ही विचारों का आदान-प्रदान होता है। जीभ बोलती है, कान सुनते हैं। ईश्वर ने जन्मजात रूप से यही माध्यम विचारों के आदान-प्रदान के लिए बनाये हैं। लेखनी तो मनुष्य का अपना आविष्कार है। मस्तिष्क पर सीधा असर वाणी का ही होता है क्योंकि उसके साथ वक्ता की प्राण शक्ति भी संबद्ध होती है। जबकि लेखनी से लिखे गये पत्रों को यथावत पढ़ लेने पर भी उसके कल्पना चित्र वैसे नहीं बनते, जैसा कि लिखने वाला चाहता था। वाणी के साथ वक्ता की मुखाकृति के अनेक अवयव भावों को स्पष्ट करते हैं। आँख, दाँत, होंठ, कपोल, भवें सभी बोलते हैं और वाणी जो प्रकट करना चाहती है, उसे ये अवयव मिल-जुलकर प्रकट कर देते हैं। वाणी की अपूर्णता भाव मुद्रा से पूर्ण हो जाती है। अतएव उसकी शक्ति लेखनी की तुलना में कहीं अधिक मानी गई है।

जनमानस को प्रशिक्षित, उत्तेजित, परिवर्तित, परिष्कृत करने में वाणी से बढ़कर और किसी का योगदान नहीं। विचारों का परिवहन वही करती है। प्रज्ञायुग अवतरण में वाणी की भागीरथी भूमिका होगी, यह कहने में तनिक भी अत्युक्ति नहीं। यों सामान्य लोक व्यवहार में भी पुरुषार्थ की भाँति ही वाणी का सफल, प्रवीण चमत्कार उत्पन्न करते देखा गया है। कई बार तो पराक्रम से भी अधिक सुसंस्कृत-सुनियोजित वार्ता को पाया गया है। पराक्रम वस्तुओं की उलट-पलट करता है और घटनाएँ विनिर्मित करता है। किन्तु मनुष्य के भाव संस्थान में हलचलें उत्पन्न करना, दिशा देना और कुछ से कुछ बना देना वाणी के लिए ही सम्भव है। संसार के इतिहास में भारी उथल-पुथलें जिन कारणों से सम्पन्न हुईं, उनमें वाणी की शक्ति और प्रतिक्रिया को मूर्धन्य कहा जा सकता है।

सामान्य जीवन में सफल और असफल रहने वाले व्यक्ति का अन्तर तलाश करने पर उनकी योग्यता, श्रमशीलता, सूझबूझ, शालीनता का स्तर भिन्न रहने की तरह ही एक बड़ा कारण यह भी होता है कि विचार व्यक्त न कर पाने वाले व्यक्ति संकोच, असमंजस में उलझे रहते हैं। जो कहना है वह कह नहीं पाते फलतः उससे अपनी स्थिति प्रकट न कर पाने से वह सहयोग उपलब्ध नहीं कर पाते जो करना चाहिए था। इसके विपरीत वाचाल और मुखरित लोग कई बार तो बात को इतनी रसीली, नसीली, भड़कीली बनाकर कहते हैं कि सामने वाले को उस शिकंजे में जकड़ते देर नहीं लगती, जिसमें कि वह सामान्यतयः फँस नहीं पाता। ठग, चापलूस, खुशामदखोर अपनी वाक्-चातुरी के सहारे ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वारे-न्यारे करते रहते हैं। जबकि मितभाषी, संकोची, आत्मीयजनों के बीच भी सद्भावना प्रकट करने में असफल रहते हैं। भ्रान्तियाँ पनपने का अवसर देते हैं और आशंका-अवहेलना के कुचक्र में फँस जाते हैं। सफल लोगों में से अधिकांश को वाक्पटु देखा जाता है।

यहाँ चर्चा युग सन्धि की ऐतिहासिक बेला के प्रमुख कार्य 'लोकमानस के परिष्कार' की हो रही है। अवांछनीयताओं के प्रचलन को उलटने का नाम ही विचार क्रान्ति है। सत्प्रवृत्तियों के बीजारोपण और अभिवर्धन को ही प्रज्ञा अभियान कहा गया है। यह एक ही प्रयोजन के दो परस्पर पूरक पहलू हैं। उन्हें गतिशील बनाने के लिए जिस ऊर्जा की आवश्यकता है, वह उत्पन्न तो प्राणवान व्यक्तियों से ही होगी पर उसे हस्तांतरित करने में मुख्य भूमिका वाणी की ही होगी। जिन साधनों से अपने समय का 'धर्म-चक्र प्रवर्त्तन' होना है, उसमें वाणी की शक्ति की प्रमुखता रहेगी। जनसमूह के सामने युगान्तरीय चेतना प्रकट करने और व्यक्तिगत परामर्श से दिशा परिवर्तन का दबाव डालने में वाणी का उपयोग किये बिना काम चलेगा ही नहीं। परिष्कृत वाणी का इन दिनों-युग-शक्ति के रूप में प्रयुक्त किया जाना है। इसलिए उसे प्रखर बनाने की आवश्यकता से इन्कार नहीं किया जा सकता है।

नवसृजन के मोर्चे पर जूझने वाले युग शिल्पियों को अपना यह शस्त्र पैना रखना चाहिए और उसके कारगर प्रयोग का अभ्यास मनोयोगपूर्वक करना चाहिए। यह विचार संघर्ष का युग है। इन दिनों दैत्य और देव की लड़ाई जिस धर्म क्षेत्र-कुरुक्षेत्र में लड़ी जा रही है, उसे विचारभूमि ही कह सकते हैं। इसी अखाड़े में सत्, असत् का मल्लयुद्ध होना है। उसमें विजयी बनने के लिए जहाँ तथ्यों का तूणीर भरा रहना चाहिए, वहाँ अभिव्यक्ति को मुखर कर सकने में समर्थ गाण्डीव की प्रत्यंचा भी कसी रहनी चाहिए। हमें विचारशील, प्रज्ञावान भी होना चाहिए। साथ ही यह नहीं भूलना चाहिए कि इसे सही स्थान पर सही चोट पहुँचाने में समर्थ वाणी में प्रखरता रहनी चाहिए। सामयिक उत्तरदायित्वों के परिवहन में प्रभावशाली वाक् शक्ति का अर्जन प्रत्येक युग शिल्पी के लिए इन दिनों अनिवार्य रूप से आवश्यक है।

इतना समझ लेने के उपरान्त इस संदर्भ में इतना और जानना चाहिए कि वाचालता और वाक् सरस्वती दो भिन्न वस्तुयें हैं। वाचालता एक कला है और अन्य कुशलताओं की तरह थोड़े से अभ्यास से सीखी-सिखाई जा सकती है। साइकिल चलाना अजनबी के लिए आश्चर्यजनक है। एक इन्च मोटे अस्थिर पहिये इतना बजन लेकर बिना डगमगाये किस प्रकार तेजी से दौड़ते हैं, उसे देखकर कोई अनजान चकित हुये बिना नहीं रहेगा। किन्तु अभ्यस्तों को विदित रहता है कि वह कितना सरल है। ठीक इसी प्रकार जीभ को चलाना भी सरल है। इसे सीखने में साइकिल चलाना सीखने से भी कम श्रम लगता है। संकोच के जाल से छूटते वह मछली की तरह तैरती और मेढ़कों की तरह फुदकती और चिड़ियों की तरह चहकती देखी जा सकती है। बकवादी लोगों के मुँह पर लगाम लगाना कठिन पड़ता है, वे अकारण कुछ न कुछ बक-झक करते ही रहते हैं। कई बार तो उनसे पीछा छुड़ाना कठिन हो जाता है। सुनने वाला ऊबने लगता है पर कहने वाला थकता ही नहीं। इसमें न किसी योजना की आवश्यकता है, न निर्धारण की, न अवसर की, न कारण की। वह चली तो फिर बरसाती नदी की तरह बेतहाशा दौड़ती ही चली जाती है। यहाँ न तो ऐसी वाचालता की प्रशंसा की जा रही है, न उसे कला ठहराया जा रहा है, न उसके प्रशिक्षण अभ्यास पर जोर दिया जा रहा है। ऐसी उच्छृंखलता की तो भर्त्सना ही की जानी चाहिए, जो वक्ता की शक्ति का अपव्यय करती है और श्रोता का समय एवं दिमाग खराब करके रख देती है।

युग अवतरण की बेला में उस वाक् शक्ति का युग-शक्ति के रूप में प्रयोग होना है, जो हिमालय जैसे व्यक्तित्व के मुख गोमुख द्वारा भगवती भागीरथी की तरह प्रकट होती है और सम्पर्क क्षेत्रों को पवित्रता एवं प्रखरता से भरती चली जाती है। ऐसी वाणी मात्र चमड़े की जीभ हिलने भर से प्रादुर्भूत नहीं होती, वरन् उसका मूल उद्गम किसी गहन अन्तराल से निस्सृत होता है। गंगा प्रकट तो गोमुख गंगोत्री से होती है। पर उसका मूल स्रोत उस कैलाश-मानसरोवर में है, जिसे सुमेरु या शिव निवास कहते हैं। शंकर की जटाओं से भागीरथी निस्सृत होती है, उसका तात्पर्य गरिमामयी वाणी के संदर्भ में मनुष्य के अन्तःकरण को कहा जा सकता है, जिसे व्यवहार की भाषा में व्यक्तित्व का मर्म संस्थान कहते हैं। इस क्षेत्र का जैसा स्तर होगा, वाणी का प्रभाव भी तदनुकूल ही दृष्टिगोचर होगा। भले ही वह शब्द गुंथन की दृष्टि से उतनी परिष्कृत न हो।

इस संदर्भ में कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य वाणी विज्ञान में रुचि रखने वाले प्रत्येक विज्ञजन को जानने चाहिए।

वाणी के चार स्तर हैं—(१) वैखरी (२) मध्यमा (३) परा (४) पश्यन्ति। वैखरी जिह्वा से निकलती है और आमतौर से जानकारी देने के काम आती है। अध्यापक इसी के द्वारा छात्रों को विभिन्न विषय पढ़ाते हैं। दिनभर हाट-बाजारों में इसी का प्रयोग होता है। गप्पबाजी, चुहलबाजी से लेकर तरह-तरह के भले-बुरे प्रसंगों में सकारण-अकारण इसी का प्रयोग होता रहता है। यह जीभ से निकलती है और मन को हल्का करने अथवा स्वार्थों का तालमेल बिठाने में काम आती है।

दूसरी मध्यमा वाणी है, जो चेहरे के प्रमुख अवयवों से फूटती है। आँखें, भौंहें, नथुने, कपोल, होंठ, गर्दन की हलचलों से भावनाओं का प्रकटीकरण होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वाणी के साथ इनकी भी गतिविधियाँ जुड़ती हैं और जो कहा जा रहा है, उसमें वक्ता का अन्तराल किस सीमा तक किस स्तर पर सम्बद्ध है, इसका परिचय देती है। हो सकता है शब्द कुछ कह रहे हों और अन्तर में उसकी भिन्न प्रकार की स्थिति हो, यह मध्यमा से जाना जा सकता है। इसे एक प्रकार से अन्तराल का दर्पण कह सकते हैं। यह बिना शब्दोच्चारण के भी हाव-भावों द्वारा व्यक्तित्व का स्तर एवं मनःस्थिति का प्रकटीकरण करती रहती है। यदि प्रकृति किसी स्वभाव विशेष में परिपक्व हो गई है, तो चेहरा उसी ढाँचे में ढल जाता है और देखते ही पता चल जाता है कि व्यक्ति का स्वभाव एवं स्तर क्या होना चाहिए। अनुभवी लोग आकृति देखकर मनुष्य में बहुत कुछ पढ़ लेते हैं और फिर तदनुरूप ही उसके साथ तालमेल बिठाते हैं। तीर्थ पुरोहित, शौकीनी का सामान बेचने वाले सैल्समैन इस सम्बन्ध में निपुण होते हैं। वे काम के और बेकार के ग्राहक को शक्ल देखते ही पहचान लेते हैं और तदनुरूप ही उनसे व्यवहार करते हैं।

तीसरी परावाणी वह है, जो विचारधारा से सम्बन्धित है। जिन विचारों का जीवन पर प्रभाव होता है, जो विश्वास स्तर तक पहुँच चुके होते हैं, जिनके प्रति रुझान और पक्षपात होता है, वे स्वभाव के अंग बन जाते हैं और कार्यरूप में परिणित होते रहते हैं। परावाणी मस्तिष्कीय विचार कम्पनों के रूप में होती है। यह कम्पन विद्युत प्रवाह की तरह आकाश में भी भ्रमण करने के लिए निकल पड़ते हैं और सबसे प्रथम सम्पर्क क्षेत्र को प्रभावित करते हैं। इसे मस्तिष्क बोलते और मस्तिष्क ही सुनते हैं।

चौथी पश्यन्ती वाणी आत्मा से निकलती है और दूसरी आत्मा के साथ टकराती है। बल के अनुरूप हारती या जीतती है। यह मनुष्य के अन्तःक्षेत्र में अवस्थित श्रद्धा, आस्था, आकांक्षा से सम्बन्धित है और समूचे व्यक्तित्व को अपने परिवार में लपेटे रहती है, इसमें प्राण भरा रहता है। समीपवर्ती लोगों को अपने अनुरूप बनाने का आग्रह करती है। यह दुर्बल होने पर निष्फल भी रह सकती है पर यदि समर्थ हुई तो दबंगों को भी अपने चंगुल में जकड़ लेती है। ऋषि आश्रमों में जाकर सिंह भी अहिंसक हो जाते थे और गाय के साथ एक घाट पर पानी पीते थे। यह पश्यन्ती वाणी का चमत्कार है। कुसंग और सत्संग से पड़ने वाले प्रभाव को इसी क्षेत्र की परिणति कहना चाहिए।

वक्ताओं में से जिन्हें जानकारी भर देनी है, उनके लिए स्कूली ढंग से अपने मन्तव्य को उपस्थित लोगों पर वाणी के माध्यम से प्रकट कर देना पर्याप्त है। इसके लिए वाचालता में कलात्मक पुट रहे तो उसकी सरसता बढ़ेगी। लोग पसन्द करेंगे और सहमत न होते हुए भी प्रशंसा तो करेंगे ही। इतने मात्र से लोकमानस का परिष्कार नहीं हो सकता। सुधारक को बिगड़े हुए से अच्छा होना चाहिए। शिक्षा, चिकित्सा, कला-कौशल आदि में ऐसा ही होता है। वरिष्ठ सिखाते और कनिष्ठ सीखते हैं। युग-सृजन की समूची प्रक्रिया दृष्टिकोण एवं व्यवहार को सुधारने की है। अस्तु, शिक्षक का व्यक्तित्व इन दोनों ही क्षेत्रों में उनसे अधिक ऊँचा होना चाहिए, जिनसे सुधारने, बदलने एवं सहमत होने की आशा-अपेक्षा की गई है। अस्तु, आवश्यक है कि भावनात्मक परिष्कार की शिक्षा देने वाला पुरोहित श्रवणकर्ता यजमानों की तुलना में वरिष्ठ हो। तभी उसकी मध्यमा, परा और पश्यन्ती वाणियाँ मुखर होंगी और उनके दबाव से दृष्टिकोण एवं व्यवहार में आदर्शवादी परिवर्तन सम्भव हो सकेगा।

प्रवचन के समय वक्ता को ऊँचे मंच पर बिठाया जाता है। वह समान ऊँचाई पर श्रवणकर्ताओं की पंक्ति में बैठे तो उसकी वाणी, भावभंगिमा ठीक प्रकार दृष्टिगोचर न होंगी और चेहरा देखने की इच्छा पूरी न होने पर दर्शक निराश ही रहेंगे। व्यास पीठ का धर्म मंच श्रद्धा-सम्मान भरा पद एवं स्तर है। उस पर जो बैठें वे कथनोपकथन में ही प्रवीण नहीं होने चाहिए, वरन् जनसमुदाय की तुलना में इनकी श्रद्धा, प्रज्ञा, निष्ठा कहीं अधिक ऊँची होनी चाहिए। उनके गुण, कर्म, स्वभाव में सज्जनोचित शालीनता की कहीं अधिक मात्रा समन्वित रहनी चाहिए। हर क्षेत्र में वरिष्ठों की कुछ पहचाने हैं। अध्यात्म क्षेत्र में विद्वानों, सम्पन्नों, कलाकारों का नहीं, चिन्तन और चरित्र की दृष्टि से कहीं अधिक ऊँचे आगे होना चाहिए। जो इस दृष्टि से जितने अधिक मूर्धन्य होंगे, उनका प्रामाणिक परिष्कृत व्यक्तित्व अपनी सुसंस्कारिता की छाप उसी अनुपात से श्रवणकर्ताओं पर छोड़ेगा। मन में कुछ वचन में कुछ न हो। कथनी आदर्शवादी और करनी प्रतिगामी हो तो उस विडम्बना से कौतुहल भर बनेगा। सुधार परिवर्तन कर सकने वाला प्रभाव उभरेगा ही नहीं। ऐसी दशा में प्रवचन कला-कौशल मात्र बनकर रह जायेंगे।

मनोरंजन की बात दूसरी है और जनता को प्रभावित, परिवर्तन कर सकने की क्षमता दूसरी। अपनी आवश्यकता लोगों की भीड़ जमा करके प्रदर्शन या ठाट-बाट खड़ा करने की नहीं है। उसमें जन-जन को 'हम बदलेंगे-युग बदलेगा' के उद्घोष को जीवनचर्या में उतार सकने वाले वक्ता ही अपनी कथनी और करनी की एकात्मता के सहारे इतने समर्थ हो सकेंगे कि श्रवणकर्ताओं को युग प्रतिपादनों को अपनाने के लिए चुनौती मिलने पर ध्रुव निश्चय के धनी-एवं व्रतशीलता के निर्वाह में संकल्पवान साहसी सिद्ध हो सकें। धर्म प्रवचनों के लिए बनाई गई वेदी को विशुद्ध रूप से व्यासपीठ माना जाना चाहिए और वहाँ बैठने वाले को न केवल भाषण कुशल होना चाहिए वरन् गुण-कर्म-स्वभाव की दृष्टि से भी सामान्य लोगों की तुलना में कहीं अधिक समुन्नत, सुसंस्कृत होना चाहिए। जो इस दिशा में गतिशील रहेंगे, उनकी मध्यमा, परा और पश्यन्ती वाणी भी प्रखर होगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो उसे सुनेंगे प्रभावित होकर रहेंगे। इस प्रभाव की परिणति आदर्शवादी गतिविधियाँ अपनाने में दृष्टिगोचर होगी। यही उद्देश्य प्रज्ञा आयोजनों, विचार गोष्ठियों और विचार-विनिमय के निमित्त आयोजनकर्त्ताओं का होता है। धर्म क्षेत्र के प्रवक्ताओं को अपना व्यक्तित्व आदर्शवादी ढाँचे में ढालने के उपरान्त ही अपनी प्रचार क्षमता को प्रभावी सिद्ध होने की आशा करनी चाहिए।

काया की सशक्त प्रयोगशाला और शब्द शक्ति की ऊर्जा

मानवी काया का स्थूल रूप उतना ही है, जो खाने पीने, सोने के काम आता है, जो रोने-हँसने और मरने-जीने के गतिचक्र में बँधा हुआ अपना समय व्यतीत करता है। मस्तिष्क का मन और बुद्धि भाग इस गाड़ी को धकेलता रहता है। कल-पुर्जे अन्न-जल का ईंधन पाकर गतिशील बने और निर्वाह विनोद के साधन जुटाने में लगे रहते हैं। इससे आगे की गहराई वहाँ से प्रारम्भ होती है, जहाँ 'चित्त' (अचेतन मन) और अहंकार अन्तःकरण (सुपर चेतन) का क्षेत्र आरम्भ होता है। यह मनःक्षेत्र की बात हुई। काय क्षेत्र में षट्चक्र, ग्रन्थित्रय, नाड़ीत्रय, चतुर्विंशत उपत्यिकाएँ, पंचकोश, कुण्डलिनी, सहस्रार के रहस्यमय शक्ति भण्डारों की साज-सज्जा है।

यह समूचा क्षेत्र सामान्यतः निष्क्रिय पड़ा रहता है। न मनःक्षेत्र की अचेतन, सुपर चेतन क्षमताएँ काम आती हैं और न षट्चक्र, पंचकोश आदि से कोई वास्ता पड़ता है। अप्रकट अस्तित्व को ही रहस्य कहते हैं। इसलिए मनःक्षेत्र और कार्यक्षेत्र की इन सर्वसाधारण की पहुँच से बाहर की अविज्ञात विशिष्टताओं को भी रहस्यलोक-दिव्य लोक कहा जाता है। इसे ही प्राचीनकाल में शोध प्रयत्नों के लिए प्रयुक्त किया जाता था। खर्चीले, कष्टसाध्य और आये दिन ईंधन मरम्मत माँगने वाले वैज्ञानिक यंत्रों का निर्माण करने की अपेक्षा यह अच्छा समझा गया कि ईश्वर प्रदत्त सर्वांगपूर्ण काया में ही जब प्रकृतिलोक ही नहीं ब्रह्मलोक को भी खोजने-खींचने, घसीटने की क्षमताएँ विद्यमान हैं, तो बाहर क्यों भटका जाय ? कस्तूरी हिरन की तरह क्यों उपहासास्पद बना जाय।

ऋषियों का समग्र प्रयास एक ही रहा है, कि काय-कलेवर को एक सर्वांगपूर्ण, समग्र, सुन्दर, सहज उपलब्ध प्रयोगशाला माना जाय। साथ ही उसी क्षेत्र में सन्निहित स्रष्टा के उत्तराधिकार में उपलब्ध अनन्त ऋद्धि-सिद्धियों को बीज रूप में ही पड़े न रहने देखकर उन्हें उगाने और विशाल वृक्ष में परिणत करने का प्रयास किया जाय। इस प्रयास को योग एवं तप की संज्ञा दी गई है। उसमें किसी अन्यत्र रहने वाले देवी-देवता की मनुहार नहीं है। वरन् आत्मदेव के अंग-उपांगों का ही न्यास उपचार करने का विधान है। वृक्ष की खुराक आसमान से नहीं, जड़ों से मिलती है। मानवी सत्ता का चरम विकास उसके अन्तःक्षेत्र को उभारने से ही सम्भव होता है। आकाश के देवताओं को किसी का मनुहार सुनने और निहाल करने के लिए उपहार का टोकरा लिए-लिए फिरने की फुरसत कहाँ है।

पेट भरने के लिए अपना ही मुँह चलाना पड़ता है। पढ़ने के लिए अपनी ही बुद्धि लड़ानी पड़ती है। दूसरे के मुँह से किसने पेट भरा है, दूसरों की बुद्धि का सहारा लेकर कौन विद्वान बना है। आत्मिक प्रगति की आकांक्षा भी अपने ही साधनात्मक पुरुषार्थ से पूरी होती है। उसमें बेचारे देवताओं का अनुग्रह ही एक सीमा तक पात्रता के अनुरूप हो सकता है। बात पात्रता पर आई तो उसे भी पुरुषार्थ ही कहा जायगा। आत्मक्षेत्र के गहन मन्थन को ही साधना, उपासना आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है।

प्राचीनकाल में अनेकों दिव्य अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग होता था। तंत्र शास्त्र में प्रायः इसी प्रकार के उपचारों की भरमार है। उसी क्षेत्र में ऐसी उपलब्धियों की भरमार थी, जो क्षमताओं, सुविधाओं और सफलताओं के भण्डार सामने ला खड़ी करती थी। इस प्रकार के उपायों को योग-तप कहा जाता था। उनके द्वारा भौतिक क्षेत्र में ऋद्धि-सिद्धियों को हस्तगत किया जाता था। साथ ही अन्तःक्षेत्र को आनन्द-उल्लास से भरे रहने वाले स्वर्ग मोक्ष का लाभ मिलता था। यह समूचा उपार्जन अन्तःक्षेत्र का है। विशाल ब्रह्माण्ड में जो कुछ है, वह अपने कायपिण्ड में बीज रूप में विद्यमान है। उसमें से जो उपयोगी हो उसे उभारने का पुरुषार्थ करना ही आत्मसाधना का उद्देश्य रहा है। जहाँ तथ्यों का ध्यान रखते हुए—विधा को निष्ठापूर्वक अपनाते हुए प्रयास चले हैं वहाँ अभीष्ट सफलता भी मिली है। ऋषि युग का इतिहास इसका साक्षी है।

कायिक और मानसिक क्षेत्र की संरचना एक सर्वांगपूर्ण यन्त्र-उपकरणों से भरी-पूरी प्रयोगशाला के समान है। उसे अभीष्ट उत्पादन में समर्थ फैक्ट्री भी कहा जा सकता है। इस तथ्य से अवगत होने के उपरान्त दूसरा प्रश्न उत्पन्न होता है कि इस कारखाने को चलाने के लिए ऊर्जा कहाँ से मिले ? ईंधन कहाँ से जुटे ? बिजली, भाप, ताप आदि का कोई स्रोत, साधन तो होना ही चाहिए, अन्यथा बहुमूल्य मशीनें भी तनिक-सी हलचल नहीं कर सकतीं। उपकरणों को ऊर्जा ही तो चलाते हैं। इस ऊर्जा के लिए भी कहीं बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है। वह भी प्रचुर परिमाण में उसी समर्थ स्रष्टा ने हस्तान्तरित कर दी है, जबकि इतना बहुमूल्य शरीर क्षेत्र रूपी बहुमूल्य अनुदान मनुष्य को बनाया गया।

यह ऊर्जा-ईंधन क्या है ? इसका संक्षिप्त किन्तु समग्र उत्तर है—'शब्द शक्ति'। काया से जो शब्द निकलते हैं, सामान्यतया वे विचारों के आदान-प्रदान में काम आते हैं। यही उसका मोटा कामचलाऊ उपयोग है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इससे ऊँचे स्तर की शब्द शक्ति वह है, जो जीभ से नहीं मुखाकृति, मस्तिष्क एवं अन्तःकरण से निकलती है। इन्हें मध्यमा, परा और पश्यन्ति कहते हैं। इनके सम्बन्ध में पिछले पृष्ठों पर तनिकसा प्रकाश डाला गया है। वार्तालाप परामर्श में प्रयुक्त तो वैखरी वाणी ही होती है पर उसकी नगण्य-सी क्षमता में समर्थता, प्रखरता तब उत्पन्न होती है, जब मध्यमा, परा, पश्यन्ती का भी उच्चारण के साथ ही समन्वय-समावेश होता रहे। भाषण और संभाषण की सफलता का उल्लेख करते हुए पिछले पृष्ठों पर यही बताया गया है कि व्यक्ति और समाज में उच्चस्तरीय परिवर्तन लाने के लिए शब्द शक्ति के उपयोग की अनिवार्य आवश्यकता पड़ेगी। पर उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वाचालता भर से काम न चलेगा। उसके लिए परिष्कृत वाणी चाहिए। उसके लिए समूचे व्यक्तित्व के हर पक्ष को उत्कृष्टता से अनुप्राणित किया जाना चाहिए। यदि वक्तृता का आनन्द लेना हो, उसे चमत्कारी सफलता प्रस्तुत करने में समर्थ देखना हो तो फिर जिह्वा तक सीमित न रहकर अन्य तीन रहस्यमयी वाणियों को मुखर करने के लिए साधनात्मक अभ्यास की आवश्यकता समझनी चाहिए। वाणी की कला भी अपने स्थान पर उपयोगी है, पर उतने भर से लोकमानस की दिशाधारा निकृष्टता से उलटकर उत्कृष्टता की ओर मोड़नी हो तो उसके लिए उच्चस्तरीय शब्द शक्ति चाहिए और उसके लिए भाषण कला सीखने तक सीमित न रहकर यह भी अनुभव करना चाहिए कि मात्र कण्ठ ही न बोले। वक्ता का समूचा व्यक्तित्व ही प्रवचन मंच पर मुखर हो उठे। सुनने वालों के कर्ण छिद्रों में रस टपका देने का काम तो विदूषक, गायक, नर्तक भी कर लेते हैं। पर उतने भर से असंख्यों के जीवनक्रम उलट जाने की आशा कहाँ बँधती है। वक्ता की वाणी ऐसी होनी चाहिए जैसी नारद की थी। बुद्ध और गाँधी भी उसी श्रेणी में आते हैं। गुरु गोविन्द सिंह, समर्थ रामदास, विवेकानन्द, दयानन्द आदि भी ऐसी ही वाणी बोलते थे, जो सुनने वालों को मथ डालती थी। उन्हें गेंद की तरह कहीं से कहीं उछाल देती थी।

शब्द शक्ति के बारे में अधिक गम्भीरता के साथ सोचना चाहिए। उस प्रतिपादन पर ध्यान देना चाहिए, जिसमें 'शब्द और नाद ब्रह्म' की महिमा शास्त्रकारों ने अनंत रूपों में और गम्भीरता के साथ प्रस्तुत की है। शब्द ब्रह्म अर्थात गद्य उच्चारण, नाद ब्रह्म अर्थात ताल स्वर पर आश्रित गीत वाद्य, इसके सूक्ष्म उपचार भी हैं। मंत्र विज्ञान को इसी क्षेत्र की महान उपलब्धि कहा जा सकता है। मंत्र में शब्द गुन्थन की विशेषता भी एक तथ्य है पर उससे भी कहीं अधिक विशिष्टता मांत्रिक की निजी जीवनचर्या के साथ जुड़ी रहती है। मंत्र शक्ति में वाणी का उच्चारण विधान ही पर्याप्त नहीं माना जाता। इसकी प्राण-प्रतिष्ठा उस साधना द्वारा होती है, जिसमें मंत्र को सिद्ध करने के लिए भाव भरे पुरश्चरण किए जाते हैं। इस प्रक्रिया का तात्विक स्वरूप इतना ही है कि मांत्रिक को, साधक को अपनी जीवनचर्या में उत्कृष्टता का सघन समावेश करना चाहिए। उसे ऋषिकल्प होना चाहिए। यहाँ दशरथ की पुत्र प्राप्ति अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए किए गए पुत्रेष्टि यज्ञ का स्मरण करना चाहिए, जिसमें वशिष्ठ ने राज्य धान्य खाने के कारण मंत्रशक्ति उत्पन्न करने में अपनी असमर्थता व्यक्त की थी। वाणी की प्रखरता वाले शृंगी ऋषि उस कार्य के लिए बुलाये गये थे, तब प्रयोजन पूर्ण हुआ था। मंत्र का रहस्य, साधक की जीवन-साधना के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है।

सामान्य लोग जीभ चलाते और बकवास करते रहते हैं। वरिष्ठ व्यक्ति सारगर्भित, आदर्शों का पक्षधर, जीवन में प्रयुक्त-अनुभूत, श्रद्धा-विश्वास से भरा-पूरा शब्दोच्चार करते हैं। वस्तुतः यह मंत्र प्रयोग ही होता है। मंत्र विचार को ही कहते हैं। तपःपूत उच्चारण को मंत्र कहा जाता है। यह जप अनुष्ठान में, शाप-वरदान में भी काम आते हैं पर सामान्यतया उन्हें भाषण के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। मंत्र प्रवचन ही उस आवश्यकता को पूर्ण करेंगे, जिसकी युग सन्धि की वेला में जनमानस को उलटने के लिए आवश्यक माना और आमन्त्रित किया गया है।

शब्द शक्ति का यह सामयिक उपयोग हुआ, मूल प्रसंग इससे आगे का है। नवयुग के लिए नये सिरे से, नये निर्माण और नये निर्धारणों की आवश्यकता पड़ेगी। इसके लिए शक्ति की आवश्यकता पड़ेगी और साधनों की भी। यह सब उच्चस्तरीय होना चाहिए। परिवर्तन भावना क्षेत्र का होना है। लोकमान्यताओं में घुसी हुई अवांछनीयता को उलटकर उस क्षेत्र में औचित्य की नये सिरे से प्राण-प्रतिष्ठा होनी है, ऐसी दशा में उसके उपयुक्त साधन-सामग्री ही खोजनी होगी। वह भी ऐसी जिसके लिए जहाँ-तहाँ हाथ पसारते न फिरना पड़े। हमें अपना ही काय-कलेवर एक सर्वांगपूर्ण प्रयोगशाला की तरह प्रयुक्त करने के लिए परिष्कृत स्तर का बनाना पड़ेगा। परिष्कृत अर्थात पवित्र, प्रखर। उसके लिए संयम साधना और परमार्थ परायणता के दोनों ही प्रयोग साथ-साथ चलने चाहिए। इस अवलम्ब के बिना आत्मसत्ता इस योग्य नहीं बनती कि वह उच्चस्तरीय शक्तियों का अवतरण एवं अवधारण सहन कर सके।

जीवन साधना से अपनी काया एक उच्चस्तरीय उपकरणों से भरी प्रयोगशाला का काम देने लगती है। ऊर्जा की आवश्यकता शब्द शक्ति होगी। उच्चारण को मंत्र स्तर तक पहुँचना पड़ेगा। परिष्कृत जीवन अर्थात गाण्डीव। मंत्र अर्थात शब्दवेधी बाण। हमें अर्जुन की तरह इन सभी उपकरणों के प्रयोग का अभ्यास करने और प्रवीण होने के लिए कटिबद्ध, अग्रसर होना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वक्तृता का प्रस्तुत प्रशिक्षण दो प्रयोजनों से है। एक तो सामाजिक विचार क्रान्ति की आवश्यकता पूरी करने के लिए प्राणवान वक्ता चाहिए, जो अपनी प्रखरता से सम्पर्क समुदाय को भावतरंगित करने एवं युग प्रवाह में धकेलने में सफल हो सके। साथ ही इस अभ्यास का अगला प्रयोग उस शब्द शक्ति को उभारने के रूप में होगा, जिससे जाग्रत आत्माओं को अपनी काया का उपयोग समर्थ प्रयोगशाला के रूप में करने का अवसर मिल सके। प्रयोगशाला हममें से हर किसी को स्रष्टा की अनुकम्पा से अनायास ही उपलब्ध है।

वाणी की शक्ति एवं प्रखरता

समर्थ गुरु रामदास का यह कथन सत्य है कि संसार भर में हमारे मित्र मौजूद हैं किन्तु उन्हें प्राप्त करने की कुंजी जिह्वा के 'कपाट' में बन्द है।

मनुष्य की शिक्षा, सभ्यता, संस्कृति, बुद्धिमत्ता, चतुरता, विचारशीलता एवं दूरदर्शिता उसकी वाणी के माध्यम से ही दूसरों पर प्रकट होती रहती है। समाज में प्रतिष्ठा और प्रामाणिकता प्राप्त करने के लिए वाणी का परिष्कृत होना आवश्यक है। निन्दा करते रहने या कठिनाइयों के विरुद्ध खेद व्यक्त करने से कुछ काम न बनेगा। हमें रचनात्मक उपाय खोजने-पूछने और पड़ेंगे, जो प्रधानतया सहयोग पर ही निर्भर हों। सहयोग उसी को मिलता है, जो मुँह खोलकर अपनी पात्रता सिद्ध कर सकता है।

बाइबिल में लिखा है—"जरा परखो तो कि न्याययुक्त शब्दों में कितनी शक्ति भरी पड़ी है।"

एमर्सन कहते थे—"भाषण एक ऐसी शक्ति है, जिसका प्रयोग अवांछनीयता से बिरत करने और श्रेष्ठता की ओर बढ़ने का प्रोत्साहन देने के लिए किया जाना चाहिये।"

प्लेटो ने लिखा है—"मानवी मस्तिष्कों पर शासन कर सकने की क्षमता भाषण शक्ति में सन्निहित है।"

किपलिंग की उक्ति है—"शब्द मानव समाज द्वारा प्रयोग में लाया जाने वाला सर्वोत्तम रसायन है।"

विचारों की शक्ति संसार में सर्वोपरि शक्ति है। उसी के सहारे नर पशु से भी गई-बीती स्थिति में पड़ा हुआ व्यक्ति प्रगति की दिशा में अग्रसर होता है और विविध प्रकार की उपलब्धियों का अधिकारी बनता है। महामानवों की गरिमा—भौतिक क्षेत्र में बिखरा हुआ समृद्धि ज्ञान और विज्ञान द्वारा उत्पन्न सुख-साधन, प्रगति के अनेकानेक सोपान, शान्ति और सुव्यवस्था के आचार-विचार रूप वृक्ष पर लगे हुए फल हैं। मानवी प्रगति का मूलभूत आधार भी उसे कह सकते हैं। तत्वदर्शी विचारों की गरिमा का विवेचन करते हुए आश्चर्यचकित रह जाते हैं कि अदृश्य शक्ति के इस ऊबड़-खाबड़ संसार को किस प्रकार सुन्दर गुलदस्ते की तरह सुसज्जित कर दिया है।

एना हैप्सटन ने लिखा है—"ईश्वर की इस दुनिया में तारागण, चन्द्रमा, बादल, पर्वत, पुष्प और चित्र-विचित्र प्राणियों का सौन्दर्य पग-पग पर बिखरा पड़ा है। पर शब्दों के समान और कोई सुन्दर वस्तु इस लोक में है नहीं।"

ई० डब्ल्यू० विल्कोक्स कहते हैं—"मेरी धारणा है कि विचार अशरीरी नहीं—शरीरधारी हैं। उनमें बल भी है और पंख भी। वे संसार भर में भलाई और बुराई को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ढोते देखे जा सकते हैं।"

पोप विक्टार कहा करते थे—"काम इतने शक्तिशाली नहीं होते, जितने विचार। किसी युग की सबसे बड़ी उपलब्धि का इतिहास उस समय में फैले हुए विचारों के आधार पर ही लिखा जाना चाहिए।"

अलबर्ट स्वाइट्नर ने विचार-शक्ति को युद्ध से भी अधिक फलप्रद और शक्तिशाली सिद्ध करते हुए कहा है—"आज परिष्कृत विचारों का नितान्त अभाव दीखता है। हमने ऐसे प्रश्नों पर युद्ध लड़ डाले, जिनका हल युक्तिवाद के सहारे वार्तालाप से निकाला जा सकता था। विचारों की दृष्टि से जो नहीं जीत सका, वह जीत जाने पर भी पराजित ही रहेगा।"

मनीषियों को अपनी ज्ञान-साधना अपने तक ही सीमित नहीं रखनी चाहिये, वरन् उसका लाभ दूसरों तक पहुँचाना चाहिये। उसी में उनके स्वाध्याय एवं मनन-चिन्तन की सार्थकता है। समाज के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन तत्वदर्शी लोग इसी प्रकार कर सकते हैं कि जनमानस का स्तर निरन्तर ऊँचा उठाने का प्रयत्न करते रहें, उसे नीचा न गिरने दें, साधु और ब्राह्मण, मनीषी और तत्त्वज्ञानी सदा से लोकउद्बोधन में निरत रहकर जनता-जनार्दन का पालन करते रहे हैं। ऐसी ही उनके लिए शास्त्र की आज्ञा भी है।

तीक्ष्णीयांसः परशोरग्नेस्तीक्ष्णतरा उत।

इन्द्रस्य वज्रात् तीक्ष्णीयांसो योधामस्मि पुरोहितः॥

—अथर्व ३/१९/४

पुरोहित ऐसे प्रवचन करें, जिससे लोग क्रियाशील, तेजस्वी, विवेकवान और उपकारी बनें। वे अधोगामी न होने पावें।

शचीभिर्नः शचीवसू दिवानक्तं दशस्यतम्।

मा वां रातिरुपदसत्कदा चनास्मद्रातिः कदाचन॥

—ऋग्वेद १/१३९/५

"अध्यापक तथा उपदेशक उत्तम धर्मनीति और सदाचार की लोगों को शिक्षा दिया करें ताकि किसी की उदारता नष्ट न हो।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इतिहास साक्षी है कि वक्तृत्व शक्ति के सहारे कितने ही मनस्वी लोगों ने जनसाधारण में हलचलें उत्पन्न कीं और उनके माध्यम से क्रान्तिकारी परिणाम प्रस्तुत हुए। बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य, विवेकानन्द, दयानन्द, गुरु रामदास, गुरु गोविन्दसिंह, विनोवा आदि आचार्यों द्वारा धर्मक्षेत्र में और गाँधी, नेहरू, पटेल, लाजपतराय, मालवीय, तिलक, सुभाष आदि नेताओं ने राजनीति के क्षेत्र में हलचलें उत्पन्न कीं और उनकी प्रतिक्रिया कैसे सुखद परिवर्तन सामने लाई, यह किसी से छिपा नहीं है। संसार के हर कोने में ऐसे लोग हुए हैं जिन्होंने अपने क्षेत्रों की सामयिक समस्याओं का हल बनाने के लिये भाषण शक्ति द्वारा जन प्रवाह को अपने साथ-साथ बहाने में आश्चर्यजनक सफलता पाई। ऐसे लोगों में डिमास्थनीज, ट्यूलियस, सिसरो, नैपोलियन, मार्टिन लूथर, लिंकन, वाशिंगटन, लेनिन, स्टालिन, हिटलर, मुसोलिनी, चर्चिल आदि के नाम गिनाये जा सकते हैं।

कई बार कुशल वक्ताओं द्वारा उत्पन्न की गई प्रभावोत्पादकता देखते ही बनती है। सुनने वालों का दिल उछलने लगता है। वे रोमांचित होते, जोश में आते दीखते हैं। भुजायें फड़कने लगती हैं और आँखों में उनकी भाव-विभोरता का आवेश झाँकता है। सुनने वालों को हँसाना, रुलाना, उछालना, फड़काना, गरम या ठण्डा करना कुशल वक्तृता की अपनी विशेषता होती है। जिसे यह रहस्य विदित होता है और उसका अभ्यास, अनुभव है, उसे जनता के मन-मस्तिष्कों पर शासन करते देखा जा सकता है। परिमार्जित वक्ता में एक प्रकार की विद्युत धारा सनसनाती हुई रहती है। उच्चारण की गति, शब्दों का गठन, भावों का समन्वय, घटनाक्रम का प्रस्तुतीकरण, तर्क और प्रमाणों का तारतम्य, भावनाओं का समावेश रहने से वक्ता का प्रतिपादन इतना हृदयस्पर्शी हो जाता है कि सुनने वालों को अपनी मनःस्थिति को उसी की अनुगामिनी बनाने के लिए विवश होना पड़ता है।

नैपोलियन की वाणी में जादू था, वह जिससे बात करता उसी को अपना बना लेता था। उसके निर्देशों को टालने की कभी किसी की हिम्मत नहीं हुई। वह जब बोलता तो साथियों में जोश भर देता था और वे मन्त्र-मुग्ध की तरह आदेशों का पालन करने के लिए प्राणपण से जुट जाते थे। हिटलर जब बोलता था तो जर्मन नागरिकों के खून को खौला देता था। लेनिन ने दबी-पिसी रूसी जनता को इतना उत्तेजित कर दिया कि उसने शक्तिशाली शासकों से टक्कर ली और उनका तख्ता पलट दिया। सुभाषचन्द्र बोस ने प्रवासी भारतीयों को लेकर आजाद हिन्द फौज ही खड़ी कर दी। मार्टिन लूथर ने पोपशाही पोंगा-पन्थी की गहरी जड़ों को खोखला करके रख दिया और योरोप भर में धार्मिक क्रान्ति का नया स्वरूप खड़ा कर दिया। गान्धी ने भारतीय जनता को स्वतन्त्रता संग्राम में मोर्चे पर खड़ा कर देने में जो सफलता पाई, उसमें उनकी वक्तृत्व शक्ति का अद्भुत योगदान था।

अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन का व्यक्तित्व आकर्षक न था। वे दुबले, लम्बे और कुरूप थे। घरबार की दृष्टि से भी वे निर्धनों में ही गिने जाते थे। पर उनकी भाषण प्रतिभा अनौखी थी। प्रधानतया इसी गुण के कारण इतने लोकप्रिय हो सके और उस देश के राष्ट्रपति चुने जा सके। जब तक उनके पास भाषण की पर्याप्त सामग्री एकत्रित न हो जाती, तब तक वे कभी बोलना स्वीकार न करते।

भगवान बुद्ध ने दुष्प्रवृत्तियों की बाढ़ को रोकने के लिए पैनी वाक्शक्ति का उपयोग किया। उनके प्रवचन बड़े मर्मस्पर्शी होते थे। यही कारण था कि उनके जीवन काल में ही लाखों व्यक्ति भिक्षु और भिक्षुणी बनकर, धर्म चक्र प्रवर्तन में अपनी समस्त सामर्थ्य झोंककर धर्म प्रचारक बन गये।

भारत के स्वतन्त्रता संग्राम को जन्म देने, आगे बढ़ाने और सफल बनाने में जिन नेताओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाही, वे सभी कुशल वक्ता थे। दादाभाई नौरोजी, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, रानाडे, गोखले, लोकमान्य तिलक, विपिन चन्द्रपाल, चितरंजन दास, महात्मा गाँधी, पं. मोतीलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस, लाजपतराय, महामना मालवीय, राजगोपालाचार्य, जवाहरलाल नेहरू आदि के भाषण भारतीय जनता में प्राण फूँकते थे। उनकी भाषा बड़ी ओजस्वी और मर्मस्पर्शी होती थी। वक्तृत्व कला की दृष्टि से उनके भाषण बड़े प्रभावशाली, प्रवाहपूर्ण और प्रथम श्रेणी के माने जाते थे। उन लोगों की सफलता के कारण तलाश करने पर कुछ तथ्य स्पष्ट रूप से सामने आते हैं। पहला यह कि उनके सामने जो लक्ष्य था, उसमें अनीति का विरोध करने के लिए प्राण होम देने के लिए आतुर साहस—सर्वतोभावेन मातृभूमि के लिए आत्मसमर्पण—लक्ष्य की ओर द्रुतगति से बढ़ चलने की तड़पन—स्वार्थसिद्धि से कोसों दूर त्याग-बलिदान की प्रचण्ड निष्ठा—जैसे भावनात्मक कारण मुख्य थे।

जिनके पीछे पानी का दबाव अधिक होता है वे नदियाँ एवं झरने बड़ी तेजी से बहते हैं, उनकी लहरें, हिलोरें तथा ध्वनियाँ बड़ी मनोहारिणी होती हैं। जिनके पीछे दबाव न हो, उनका पानी बहता तो है पर उनमें मन्दगति की निर्जीवता ही दिखाई देती है। यही बात भाषणों के सम्बन्ध में है। वक्ता की भावनाएँ जितनी प्रचण्ड होंगी, प्रतिपाद्य विषय में उसकी निष्ठा, लगन, तत्परता, तन्मयता, आकुलता का जितना गहरा पुट होगा, उतना ही तेजी वाणी में भरा होगा। सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में स्वामी विवेकानन्द, रामतीर्थ, रामदास, गुरुगोविन्दसिंह, दयानन्द, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, राममोहन राय आदि के भाषण बड़े प्रभावशाली रहे हैं। सूर, तुलसी, कबीर, दादू, रैदास, चैतन्य आदि के भजन सुन कर लोग भाव-विभोर हो उठते थे। उसमें उनका कंठ-स्वर अथवा कविता का शब्द-गठन उतना उच्चस्तरीय नहीं था

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जितना कि उनका तादात्म्य व्यक्तित्व। ऐसे लोगों की वाणी कदाचित लड़खड़ाती भी हो और शब्दों का चयन उतना अच्छा न बन पड़े, तो भी लोग उस कमी पर ध्यान नहीं देते। गाँधीजी के भाषण, भाषण कला की दृष्टि से उतने अच्छे नहीं होते थे, फिर भी उनका व्यक्तित्व वाणी के साथ घुला होने के कारण उन्हें लोग न केवल श्रद्धापूर्वक सुनते थे वरन् बहुत अधिक प्रेरणा भी ग्रहण करते थे।

वक्ता, लेखक, कवि, गायक, अभिनेता आदि कलाकार माने जाते हैं। उनकी अभिव्यक्तियाँ बहुत कुछ इस बात पर निर्भर रहती हैं कि उन्हें स्वयं कैसी अनुभूतियाँ होती हैं। यदि उनका निज का अन्तःकरण नीरस और शुष्क हो—व्यवसाय बुद्धि से बेगार भुगतने के लिए वह सब कुछ कर रहे हों तो उनका भाषण, लेखन, कविता गायन, अभिनय आदि स्पष्टतः नीरस दिखाई पड़ेंगे, भले ही उन पर मुलम्मा कैसा ही क्यों न चढ़ाया गया हो। विद्वान सदा से यही कहते रहे हैं कि जब भीतर से भावनाएँ फूटी पड़ रही हों, तभी उनके प्रकटीकरण का साहस करना चाहिए। संसार के महामानव ओजस्वी वक्ता भी रहे हैं, इसे दो तरह कहा जा सकता है। वाक्शक्ति के कारण वे ऊँचे स्तर तक पहुँच सके अथवा उनका भावना प्रवाह ऊँचा होने के कारण वाणी में ओजस्विता उत्पन्न हुई। कहा किसी भी तरह जाय वस्तुतः दोनों परस्पर अविच्छिन्न और अन्योन्याश्रित हैं। दोनों तथ्य पूर्णतया परस्पर घनिष्ठतापूर्वक मिले हुए हैं।

वाणी की ओजस्विता और भावनाओं की प्रखरता दोनों को एक ही सिक्के के दो पहलू कहना चाहिए। सही तरीका यह है कि जिसके भीतर ज्ञान और भाव का निर्झर फूटता हो, उसे अपनी अभिव्यक्ति करनी चाहिए। दूसरा तरीका आरम्भिक अभ्यास की दृष्टि से यह भी हो सकता है कि जब बोलना हो, तब प्रतिपाद्य विषय में अपनी सघन श्रद्धा और तत्परता उत्पन्न करने का प्रयास करना चाहिए। स्वाभाविक न होने पर उसे लोग नाटकीय भी बताते हैं और उस आधार पर भी वाणी में प्रभाव उत्पन्न करते हैं। सोचने की बात है कि जब कृत्रिमता के बल पर लोग अपना काम चला लेते हैं और बहुत हद तक अभीष्ट सफलता प्राप्त कर लेते हैं, तो वास्तविक होने पर कितना अधिक और अस्थाई प्रभाव उत्पन्न किया जा सकेगा। अभ्यास, अनुभव, इच्छा एवं सतर्कता से कोई भी कला सीखी जा सकती है। धैर्यपूर्वक देर तक प्रयत्न करने और हर बार पिछली भूल का परिष्कार करते हुए नये सुधारों का समन्वय करने से प्रत्येक कलाकार प्रगति करता है। वक्तृत्व कला भी यही सब चाहती है। यह भी उन्हीं शाश्वत तथ्यों के आधार पर निखरती है, जिनके सहारे अन्य कलाकार उच्चस्तरीय सफलता तक पहुँचते रहे हैं।

वाणी में सामर्थ्य का उद्भव

प्रभावोत्पादक वाणी के दो आधार हैं—एक शक्ति, दूसरी कला। शक्ति वह है जो वक्ता की आस्था, निष्ठा, क्रिया एवं तन्मयता से उत्पन्न होती है। जीभ से मात्र ध्वनि ही नहीं निकलती, वरन् उसके साथ वह सब भी घुला होता है, जो उसके दृष्टिकोण और व्यक्तित्व का अंग है। लहसुन खाने या शराब पीने के उपरान्त ठीक वैसी ही गन्ध मुँह से निकलती है, मसूड़ों की सड़न अथवा अपच होने पर उसकी दुर्गन्ध मुख से आती है। ठीक उसी प्रकार अन्तःकरण में यदि दुर्भावना भरी होगी, तो, शब्दों में उसकी झलक न मिलने पर भी सूक्ष्म संवेदनाएँ ऐसी जुड़ी होंगी जो सुनने वालों के मन में अवज्ञा के भाव उत्पन्न करेंगी। शब्दों की दृष्टि से सहमत होते हुए भी उसे कोई हृदयगंम न करेगा।

वाणी की सामर्थ्य व्यक्ति के चरित्र से पूर्णतया सम्बन्धित है। शब्दों को छलपूर्वक बोला जा सकता है पर चरित्र को नहीं छिपाया जा सकता। उसे छिपाना बुद्धि बल के लिए भी सम्भव नहीं। शब्द छल किया जा सकता है—जो अपने को स्वीकार नहीं, उसके लिए दूसरों को उपदेश दिया जा सकता है। चोर भी व्यास पीठ पर बैठकर ईमानदारी का उपदेश दे सकता है। शब्द-प्रवाह को विस्तृत करने में कोई कठिनाई नहीं। जीभ से कुछ भी कहा जा सकता है। तर्कों के आधार पर लोगों को सहमत भी किया जा सकता है। पर उन्हें प्रभावित करके अभीष्ट मार्ग पर चलाना उसी के लिए सम्भव होगा, जो वाणी के साथ अपनी गहन आस्था और समान क्रियाशीलता को भी जोड़े हुए हैं।

वक्ता वाणी से प्रवचन करते हैं। उनके शब्दों में जितने तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहरण होते हैं; उस अनुपात से सामान्य लोग पसन्द भी करते हैं और बौद्धिक दृष्टि से सहमत भी होते हैं। किन्तु इससे उन्हें उस स्तर तक प्रभावित नहीं किया जा सकता, जिससे वे प्रतिपादन को हृदय से स्वीकार कर लें और निर्दिष्ट मार्ग पर चलने तक को तैयार हो जायें। वाणी का कला-प्रवाह कानों को प्यारा लगता है और मस्तिष्क को प्रभावित करता है, पर इससे आगे उसकी पहुँच नहीं। अन्तःकरण को छूने की सामर्थ्य उसी वाणी में होती है, जिसकी चरित्र-निष्ठा ने उसे समुचित रूप से शक्तिशाली बना दिया है।

वाणी की कला सीखी जा सकती है। अभ्यास से उसे विकसित किया जा सकता है। प्रयत्न और प्रशिक्षण से वक्तृत्व कला में कोई भी प्रवीण हो सकता है। अनेक क्षेत्रों में कलावन्त मौजूद हैं, उनने प्रयत्नपूर्वक अभ्यास किया है और प्रवीणता प्राप्त की है। शब्दोच्चार के क्षेत्र में भी ऐसी ही सफलता पाई जा सकती है। मनोयोग पूर्वक श्रम करने से अविकसित या अल्प-विकसित भी क्रमशः अग्रगामी होते गये हैं और अन्ततः अभीष्ट प्रयोजन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में पारंगत बने हैं। प्रत्येक शिल्प के शिक्षण की पुस्तकें और पाठशालाएँ मौजूद हैं। भाषण-कला में सफलता प्राप्त करने के लिए भी ऐसे साधन मौजूद हैं। इस पुस्तक का लेखन भी उस क्षेत्र की कलाकारिता सिखाने के लिए ही हुआ है।

शब्द-कला में सफल बनने के थोड़े से तथ्य ये हैं—निर्भीकता, झिझक और संकोच का परित्याग, अध्ययन, व्यक्तित्व का परिचय, प्रदर्शन, प्रतिपादन का ढाँचा तैयार करना, पूर्वाभ्यास को महत्त्व देना, उपस्थित समुदाय के स्तर को समझकर बोलना, वाणी को असंस्कृत न होने देना, सभा के शिष्टाचारों का पालन, तथ्य, तर्क, प्रमाण, उदाहरणों का समुचित समावेश, आकर्षक प्रसंगों का समावेश, भावस्पर्शी संवेदनाएँ जोड़ते चलना। इन्हीं मोटी बातों को इस अध्याय में बताया गया है। इन्हीं बातों की चर्चा घुमा-फिराकर अन्य लेखक तथा अध्यापक करते हैं। 'लैक्चर' भी अब एक पेशा हो गया है। अध्यापकों को रोटी इसी आधार पर मिलती है। वकीलों की गुजर भी इसी के सहारे होती है। दलाल, नेता, अभिनेता भी जीभ की कमाई खाते हैं। ऐसे ही और भी अनेक व्यवसाय हैं। ठगों का धन्धा भी पूरी तरह वाक्चातुरी पर निर्भर है। यह कोई बहुत कठिन काम नहीं है। सरकस वाले शेर, हाथी, गैंडा, रीछ, बन्दरों को सधा-सिखा लेते हैं, फिर कोई कारण नहीं कि जीभ को उच्चारण प्रवीणता के लिए सिखाया, सधाया न जा सके।

जिसके मुँह में जीभ है, जो अपने घर में, दफ्तर में, दोस्तों से, दुकान-बाजार में बातचीत कर सकता है, उसके बारे में यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि धैर्य और साहसपूर्वक कुछ समय प्रत्यन और अभ्यास करते रहने पर वह जरूर वक्ता बन सकता है। गूँगे, बहरे, पागल या मुख-कण्ठ के रोगी असफल रहेंगे। ऐसे लोग भी असफल रहेंगे जो हिम्मत हार चुके अथवा अत्यधिक उतावले हैं। जिनका उत्साह पानी के बबूले की तरह उड़ता है और कुछ ही क्षण में समाप्त हो जाता है, ऐसे लोग कल्पनाएँ-जल्पनाएँ तो बहुत करते हैं, पर सफल किसी क्षेत्र में नहीं होते। उन्हीं के बारे में यह कहा जा सकता है कि वे वक्तृत्व कला में भी असफल रहेंगे। वस्तुतः इस दिशा में असफलता का एक ही प्रधान कारण है—हड़बड़ी, भीरुता, आत्महीनता, अस्तव्यस्तता जैसी दुर्बलताओं से ग्रसित मनःस्थिति। इसे बदला जा सकता है। बदलाव रोज ही करना पड़ता है। क्रोध, आवेश, शोक, निराशा, आशंका आदि की अवांछनीय मनोदशाएँ अक्सर आ दबोचती हैं और हैरान कर देती हैं। मनुष्य अपने आप ही इन अवांछनीयताओं की हानि समझकर उनसे लड़ता है और हटाकर स्वाभाविक सन्तुलन प्राप्त कर लेता है। भाषण में असफलता प्रस्तुत करने वाली हड़बड़ी को भी जीता जा सकता है, इनमें कोई विशेष कठिनाई नहीं है। आत्मसुधार के लिए प्रयत्नशील व्यक्ति इस कठिनाई पर आसानी से विजय प्राप्त कर सकते हैं। आरम्भ में जिन कार्यों के बारे में कुछ भी जानकारी नहीं थी, उन्हें लोग प्रयत्नपूर्वक सीख लेते हैं और फिर उनमें निष्णात हो जाते हैं। भाषण जिन्होंने पहले कभी नहीं दिया है, उनके लिए वह नई बात, अत्यन्त दुष्कर प्रतीत हो सकती है। पर अभ्यास करने पर पता चलता है कि वस्तुतः इसमें इतनी कठिनाई थी नहीं, जितनी कि आरम्भ में प्रतीत होती थी।

लेखन-कला की अपेक्षा भाषण-कला न बहुत सरल है और न कठिन। उसे सरल भी कह सकते हैं और कठिन भी। सरल उनके लिए है, जो धैर्य और विश्वास के साथ उसके लिए गम्भीर प्रयत्न करने को तत्पर रहते हैं। कठिन उनके लिए, जो हथेली पर सरसों जमाना चाहते हैं और प्रयास को सफलता के लिए अनवरत तत्परता का जो मूल्य चुकाना पड़ता है, उसे चुकाने के लिए तैयार नहीं होते। जादुई सफलता पाने के लिए लालायित बाल बुद्धि पग-पग पर उपहासास्पद बनती है। फिर भाषण-कला में भी उसे निराशा ही हाथ लगेगी। इन अर्ध विक्षिप्तों को छोड़कर शेष प्रत्येक उस आदमी के बारे में जो गूँगा-बहरा नहीं है, यह कहा जा सकता है कि वह देर-सबेर कुशल वक्ता अवश्य बन जायगा। वक्तृत्व-कला उसे जरूर आ जायगी।

अधिक कठिनाई वाणी में समर्थता प्राप्त करने की है। उसके लिए कला-कुशलता के नियमों का जानना एवं अभ्यास करना पर्याप्त नहीं। उसके लिए अपने समग्र व्यक्तित्व का परिमार्जन, परिशोधन करना पड़ता है। गुण, कर्म, स्वभाव को चिन्तन एवं कर्तृत्व को परिष्कृत बनाना पड़ता है। जो कहना चाहते हैं—जो करना चाहते हैं उसे पहले अपने अभ्यास में लाना होगा। जब अपने विचारों से हम अपने को ही प्रभावित न कर सके और उस राह पर चलने का दबाव न डाल सके, तो फिर यह कैसे आशा की जाय कि जिन पर हमारा स्वल्प अधिकार है, वे कहना मानेंगे और उस राह पर चलेंगे जिस पर चलने के लिए उन्हें निर्देश दिया जा रहा है।

अपनी वस्तुस्थिति एक सीमा तक ही छिपाकर रखी जा सकती है। व्यक्तित्व में इतने अधिक छिद्र होते हैं कि उनमें होकर वस्तुस्थिति की झाँकी-गन्ध दूसरों तक पहुँच ही जाती है। उस पर देर तक पर्दा नहीं डाला जा सकता। जिन वस्तुओं को छिपाया जा सकता है, वे दूसरी हैं। उनमें व्यक्तित्व की गणना नहीं होती। हम जहाँ भी जायेंगे, वहीं हमारा व्यक्तित्व वस्तुस्थिति का अनचाहे ही प्रदर्शन, प्रकटीकरण करता रहेगा। उसे आवरणों में ढकने के सारे प्रयास निष्फल होते हैं। जो जैसा है वह लोगों की आँखों में आकर ही रहेगा। कृत्रिम निन्दा या स्तुति से भले को बुरा और बुरे को भला बताने के लिए कितने ही आडम्बर क्यों न रचे जायें, वे देर तक काम न दे सकेंगे। यथार्थता हजार पर्दे फाड़कर बाहर आ जाती है। पारे को खाकर पचाया नहीं जा सकता। वह शरीर से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

फूटकर बाहर निकलता ही है। ठीक इसी प्रकार चरित्र की अवांछनीयताएँ कल नहीं तो परसों प्रकट होकर ही रहती हैं और उसकी दुर्गन्ध हवा में सहज ही उड़ती चली जाती है।

वाणी में सामर्थ्य चरित्र से उत्पन्न होती है। चिन्तन और क्रिया का समन्वय ही चरित्र है। पूरब की सोचने वाले और पश्चिम को चलने वाले उपहासास्पद होते हैं। मंजिल तक वे पहुँचते हैं, जिनके विचार और कार्यों की दिशा एक है। भले ही नहीं बुरे भी इस आधार पर सफल होते हैं। एक वेश्या अपने प्रभाव से सैकड़ों को दुराचारी बना देती है—एक शराबी अपने कई पक्के साथी बना लेते हैं। चोर, जुआरी, व्यसनी अपना सम्प्रदाय—परिवार बढ़ाते ही रहते हैं। इसका कारण यह है कि उनके विचार और कार्य एक हैं। जैसा सोचते हैं—वैसा करते भी हैं। जहाँ भी विचार और कर्म का समन्वय होगा, वहाँ व्यक्तित्व बनेगा और वहीं प्रभावोत्पादक शक्ति बढ़ेगी। भले लोगों के सम्बन्ध में भी यही सिद्धान्त लागू होता है। यदि सद्भावनाएँ और सत्प्रवृत्तियाँ किसी व्यक्ति में विद्यमान होंगी तो कोई कारण नहीं कि वह दूसरों को उसी दिशा में आकर्षित न कर सके।

वाणी प्रकटीकरण का एक औजार मात्र है। वह शब्द बोल सकता है। सामर्थ्य उस माँस-पिण्ड में नहीं। वह तो समूचे व्यक्तित्व में सन्निहित रहती है और आवाज के साथ प्रकट भर होती है। यदि अपने प्रवचन को—प्रतिपादन को दूसरे से क्रियान्वित कराना हो तो उसके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि वचन और कर्म में तादात्म्य स्थापित किया जाय। जैसा कहें वैसा करें भी।

शिल्प, साहित्य, व्यवसाय, कृषि, व्यायाम आदि की शिक्षा देने के लिए भी उस विषय की प्रवीणता पहले स्वयं प्राप्त करनी पड़ती है, तभी वे दूसरों को सिखाये जा सकते हैं। अनुभवहीन व्यक्ति पुस्तक पढ़कर इंजीनियर आदि का प्रशिक्षण करने लगे तो उसकी बात अटपटा जायेंगी। छात्रों को कुछ सिखा सकने की बात तो बनेगी ही नहीं, उलटे अपने अनाड़ीपन के कारण तिरस्कार का पात्र बनना पड़ेगा। जहाँ तक जानकारियों का सम्बन्ध है, एक मस्तिष्क से दूसरे तक पहुँचाई जा सकती हैं पर विचार परिवर्तन में विशेषतया आदर्शवादी प्रतिपादनों में तो यह नितान्त आवश्यक हो जाता है कि वक्ता अपनी वाणी के साथ-साथ चरित्र द्वारा भी प्रवचन कर सके।

प्राचीनकाल में हर कोई प्रवचन करने का साहस नहीं करता था, विशेषतया नैतिक एवं आदर्शवादी प्रेरणाओं के सम्बन्ध में तो इसका पूरा ध्यान रखा जाता था। गणित, भूगोल, इतिहास आदि मात्र जानकारी देने वाले विषयों पर जानकार लोग आवश्यक बातें बता सकते हैं, इसमें चरित्र की नहीं ज्ञान की आवश्यकता मात्र पर्याप्त मानी जाती है। पर जहाँ तक दूसरों के विचार और विश्वास बदलने का सम्बन्ध है—दिशा परिवर्तन के लिए कहना है, तो प्रथम यह सिद्ध करना होगा जो कहा जा रहा है उसे वक्ता ने उचित, आवश्यक, व्यावहारिक एवं उपयोगी माना है कि नहीं ? इस कसौटी पर परखे बिना कोई कदाचित् ही अपने अभ्यस्त ढर्रे को बदलकर नई राह पर चल सके। आदर्शवाद के सम्बन्ध में तो यह बात नितान्त आवश्यक है कि वक्ता उसका प्रयोग पहले अपने ऊपर करके यह सिद्ध करता हो कि उसने निर्दिष्ट विषय को अपने ऊपर प्रयोग करने के बाद ही दूसरों से अनुरोध करने का साहस किया है। जब स्कूली अध्यापक की नियुक्ति इस आधार पर होती है कि वे अभीष्ट शिक्षा दे सकने योग्य परीक्षा उत्तीर्ण कर चुके हैं या नहीं—तो कोई कारण नहीं कि धार्मिक, नैतिक एवं सामाजिक विषयों की शिक्षा देने वालों से उसी प्रकार की आशा न की जाय।

इन दिनों वाणी की कला तो बढ़ रही है पर उसकी सामर्थ्य घट रही है, यह बड़े दुःख का विषय है। दीपक जब स्वयं बुझा हुआ है तो दूसरे को कैसे जलावेगा ?दूसरों को प्रकाश कैसे देगा ? जिन्हें भाषण देना है—मार्गदर्शक एवं लोकनायक बनना है, उनके लिए यह आवश्यक है कि प्रतिपाद्य विषय में स्वयं निष्णात बनें। वचन और कर्म में ऐसा समन्वय करें, जिससे वाणी में प्रभावोत्पादक सामर्थ्य उत्पन्न हो और उससे बक-झक की विडम्बना रचे जाने के स्थान पर कुछ ठोस काम बन सकना सम्भव हो सके।

प्राचीनकाल के वक्ताओं की प्रभाव शक्ति उनकी चरित्रनिष्ठा पर ही अवलम्बित थी। भगवान बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य, गुरुगोविन्दसिंह, समर्थ गुरु रामदास, विवेकानन्द, दयानन्द, गाँधी आदि महामानवों की वाणी ने असंख्य मनुष्यों का कायाकल्प किया और उन्हें गिरे हुए अथवा सामान्य स्तर से ऊँचा उठाकर कष्टसाध्य आदर्शवादी रीति-नीति अपनाने को तत्पर किया। इसमें उनकी शब्द-कला का नहीं चरित्रनिष्ठा की सामर्थ्य काम कर रही थी।

नारदजी के कहने से वाल्मीकि, ध्रुव, प्रहलाद आदि अनेकों ने अपने जीवन बदल डाले। वही शब्द दूसरे कहते तो कुछ प्रभाव न पड़ता। ऋषियों के मुख से धर्म प्रवचन सुनने को उनके स्थानों पर तीर्थ यात्रा करते हुए लोग पहुँचते थे। यों उनकी वाणी पुस्तक में भी पढ़ी जा सकती थी। राजा हरिश्चन्द्र का नाटक देखकर बालक गाँधी प्रभावित हुआ और उसी राह पर चलकर महात्मा गाँधी बना। ऐसे न जाने कितने गाँधी राजा हरिश्चन्द्र ने अपने बाद भी बनाते रहने का क्रम जारी रखा है। ऐसे महामानवों की शिक्षा उनके न रहने पर भी आकाश में गूँजती और जन मानस को प्रभावित करती रहती है।

ईश्वर उपासना में स्तोत्र, पाठ, मन्त्र-जप आदि इसलिए निष्फल होते हैं कि उच्चारण करने वालों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिह्वा जली हुई होती है, उससे वह ध्वनि नहीं निकलती जो ईश्वर के कानों तक पहुँच सके। प्राचीन काल में जो मन्त्र बड़े शक्तिशाली थे, वे अब निष्फल सिद्ध होते हैं। कारण यह है कि सफल मन्त्रोच्चारण कर सकने में समर्थ वाणी ही समाप्त हो गई। जिह्वा का दुरुपयोग होने पर वह जल जाती है। वाणी मृतक हो जाती है, यदि उसे अवांछनीय रीति से प्रयुक्त किया जाता रहा है। असत्य बोलने, छल करने, मर्मभेदी कटु वचन बोलने, अभक्ष्य एवं अनीति उपार्जित खाने, अनीति का समर्थन करने, गिराने वाले परामर्श देने से जिह्वा जल जाती है और वाणी मर जाती है। उसके द्वारा किये गये मन्त्रोच्चारण, पाठ आदि निरर्थक होते हैं। ठीक इसी प्रकार मार्गदर्शन करने की क्षमता भी ऐसे लोगों में नहीं रह जाती। वाक्चातुरी से सुनने वालों को चमत्कृत तो किया जा सकता है, पर उसका कोई स्थायी प्रभाव नहीं पड़ता। विदूषकों एवं अभिनेताओं जैसा वाणी-विलास अमुक स्तर का मनोरंजन मात्र बनकर रह जाता है।

वक्ता वस्तुतः विचारों का सृजेता और प्रस्तोता है, साथ ही भव्य कल्पनाओं का अवतरण एवं चित्रण कर सकने वाला स्वप्नदर्शी कवि और चित्रकार भी। विचारों का मूल्य इतना अधिक है कि उसकी तुलना संसार की अन्य किसी सम्पत्ति से नहीं की जा सकती। सम्पत्ति बढ़ने से मात्र भौतिक सुविधाएँ ही बढ़ सकती हैं, पर यदि विचारों की पूँजी न हो तो उसका भी सदुपयोग नहीं हो सकता। दुरुपयोग की गई सम्पदा विपत्ति का कारण बनती है, यह सर्वविदित है।

विचारशील होना और सद्विचारों को अधिकाधिक लोगों तक फैलाना, संसार का सबसे बड़ा पुण्य-कार्य है। इसी प्रयास में निरत रहने वाले साधु और ब्राह्मण को देवतुल्य पूजा जाता रहा है। हमें विचारों का महत्त्व समझना चाहिये। अपनी विचार सम्पदा बढ़ानी चाहिये और प्रयत्न करना चाहिये कि उस मधु-संचय का लाभ अनेकों को मिलता रहे। वाणी उसी की धन्य बनती है, जो सद्विचार विस्तार के लिए प्रवाहित होती है।

शेक्सपियर ने लिखा है—"शब्द आसमान में उड़ जाते हैं, पर विचार धरती पर चिरकाल तक ठहरे रहते हैं। विचारों में सामर्थ्य भावों से आती है। जो भावयुक्त, विचारयुक्त बोल सकता है, उसी का शब्दोच्चारण सार्थक है।"

नैपोलियन कहता था—"संसार विचारों से ही शासित होता चला आया है और उस पर सदा विचारशील ही छाये रहेंगे।"

वाणी एक ऐसा दर्पण है, जो मनुष्य के विचारों का ही नहीं व्यक्तित्व का भी प्रकटीकरण करता है। विचारों को प्रकट करते समय ध्यान रखने योग्य है कि उनमें सज्जनोचित शिष्टता की कमी न पड़ने पाये।

सोफिया क्लीज ने लिखा है—"वाणी आत्मा का दर्पण है। व्यक्ति का व्यक्तित्व उसकी जिह्वा द्वारा ही प्रकट होता है।"

कन्फ्युशियस का कथन है—"जब बोलने की जरूरत हो तो चुप न बैठो और बिना जरूरत के बकझक मत करो। शब्दों को नाप-तौल कर बोलो। जिससे तुम्हारी सज्जनता टपके।"

बेन डाइक की उक्ति है—"अलादीन के खजाने से भी बढ़कर इस धरती पर असंख्य खजाने तिजोरियों में बन्द हैं, पर उनकी चाबी परिष्कृत शब्दोच्चारण में ही छिपी रखी है।"

वक्ता मात्र प्रस्तुत समस्याओं का विवेचन, वर्गीकरण ही नहीं करता वरन् कल्पना भी देता है कि लोगों को क्या करना चाहिए और किस मार्ग पर चलते हुए कहाँ पहुँचना चाहिए? यह कल्पनाचित्र जितने स्पष्ट और जितने परिष्कृत होते हैं, उसी अनुपात से जनता का हित साधन होता है और कल्पनाशील व्यक्ति श्रेयाधिकारी बनता है। वक्ता को शब्दोच्चारण का कलाकार होकर ही नहीं रह जाना चाहिये, उसे विचारशील भी होना चाहिये साथ ही उसकी पैनी कल्पना-शक्ति इतनी परिष्कृत होनी चाहिए कि भविष्य की सम्भावनाओं के चित्र जनमानस पर उतार सके। अवांछनीयताओं की विभीषिका और सही गतिविधियाँ अपनाकर उज्ज्वल भविष्य की सम्भावना का यदि सजीव चित्रण सम्भव हो सके, तो यह कल्पना शक्ति वक्तृता के साथ घुलकर 'सोने में सुगन्ध' का काम करेगी।

आइन्स्टीन कहते थे—"कल्पना ज्ञान से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है।" पियर्स ने विद्वानों से भी अधिक गरिमा कल्पनाशीलों की बताई है। वे कहते हैं "संसार के समस्त वैज्ञानिक आविष्कारों का श्रेय उनके शोधकर्ताओं की संयत कल्पना-शक्ति को ही दिया जायगा। प्रयोगशालाएँ तो परीक्षा-साधन हैं, वस्तुतः सृजन और अवतरण तो कल्पना की तीक्ष्णता ही करती है।" जूवर्ट कल्पना को आत्मा का दिव्यचक्षु कहा करते थे। स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है—"पवित्र कल्पना उतनी ही पवित्र है, जितने पवित्र कर्म।"

वक्ता को उच्च-कल्पनाओं में ही डूबा रहना चाहिये। इसी आधार पर वह भविष्य की सुन्दर सम्भावनाओं का सही चित्र जन-मानस पर उतारकर प्रगति की दिशा में बह चलने की प्रेरणा कर सकेगा।

बुद्धिमान वक्ता उपस्थित जनसमुदाय का बुद्धिबल विकसित करने में सहायता करते हैं। व्यायामशाला के उस्ताद अपने शिष्य-शागिर्दों के स्वास्थ्य संवर्धन से लेकर कुश्ती पछाड़ने तक के कितने ही दाँव-पेच सिखाते हैं। वक्ता भी जनमानस को प्रशिक्षित करता है कि लोगों को किस तरह सोचना चाहिये और किस रीति से, क्या करते हुए, किस स्तर की सफलता प्राप्त करनी चाहिये? चिकित्सा, शिल्पकला, साहित्य आदि के क्षेत्र में अध्यापक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लोग अपने शिष्यों को अधिक जानकार और अधिक अनुभवी बनाने में संलग्न रहते हैं। वक्ता का कार्य भी लगभग उसी प्रकार का है। वह विचार-क्षेत्र में नेतृत्व करता है और जनसाधारण की चिन्तन शक्ति को—बुद्धिमत्ता को प्रस्तुत प्रयोजन के संदर्भ में आगे बढ़ाता है। यह एक बड़ा काम और बड़ा उत्तरदायित्व है।

लोकनायकों जैसा, महामनीषियों जैसा प्रभाव वाणी में उत्पन्न करना हो तो जीवन-साधना में प्रवृत्त होकर शक्ति उपार्जित करनी चाहिए। उच्चस्तरीय विचारणाओं को ही मस्तिष्क में स्थान देना चाहिए। निकृष्ट कोटि के विचार जब भी मन में प्रवेश करें, उन्हें तत्काल खदेड़कर बाहर करने और उनके स्थान पर आदर्शवादी मान्यताओं को स्थापित करने का प्रयास निरन्तर करते रहना चाहिए। धीरे-धीरे कुविचारों की जड़ कटती जायेंगी और उस स्थान पर सद्विचार प्रतिष्ठापित होते जायेंगे। यही बात क्रियाकलाप के सम्बन्ध में है। प्रातः उठने से लेकर रात्रि को सोते समय तक की दिनचर्या हर दिन बनानी चाहिए। उससे आलस्य-प्रमाद के लिए, अवांछनीय कार्यों के लिए कहीं गुंजायश नहीं रहने देनी चाहिए। समय और श्रम का उपयोग इस प्रकार होना चाहिए कि उसमें वैयक्तिक, पारिवारिक और सामाजिक कर्त्तव्यों का पालन ही आदि से अन्त तक भरा हो। किसी दुष्कर्म की कहीं गुंजायश न रहे। उसी निर्धारित दिनचर्या के अनुरूप सारे दिन काम होते रहें, इस पर कड़ाई बरतनी चाहिए। गलती करने के लिए जब कदम बढ़ें तो उन्हें तत्काल रोका जाय। भूल बन ही पड़े तो उसके लिए प्रायश्चित किया जाय, अपने को दण्ड दिया जाय और आगे वैसा न होने देने के लिए अधिक सतर्क रहा जाय। विचारों में उत्कृष्टता और कार्यों में आदर्शवादिता की मात्रा दिन पर दिन बढ़ाते चला जाय, कुविचारों और कुसंस्कारों से जूझते रहा जाय। तो निश्चित रूप से वह जीवन साधना व्यक्तित्व का परिष्कार करती चलेगी, जिससे वाणी से ही नहीं बिना बोले भी सम्बद्ध व्यक्तियों को सन्मार्ग की दिशा में प्रेरित किया जा सकेगा।

शास्त्रकारों ने वक्ता को बहुत सम्मान दिया है, क्योंकि वह मात्र चरित्रनिष्ठ ही नहीं होता, अपनी विभूतियों से दूसरों को भी लाभान्वित करता है। कर्मयुक्त वाणी का उपयोग करके वह अपने को भी धन्य बनाता है और दूसरों को भी प्रकाश देता है। ऐसे तेजस्वी वक्ता कम ही होते हैं, पर जो होते हैं, वे स्वयं गौरवशाली बनते हैं और अपने सम्पर्क क्षेत्र को गौरवान्वित करते हैं—

वक्ता दशसहस्रेषु। —व्यास

"दस हजार पीछे कोई वक्ता होता है।"

"वक्तुर्गुण गौरवाद् वचनगौरवम्।"

"वक्ता के गुण-गौरव से ही उसके वचनों का गौरव होता है।"

याडृगेवदृशे तडृगुच्यते सं

छायया दधिरे सिश्र यात्स्वा।

महीमस्मभ्यमुरुषामुरुव्रयो

बृहत्सुवीरमनपच्युत सहः।

—ऋग्वेद ५/४४/६

"जैसा आत्मा में हो वही मन में हो—जो मन में हो, वही वाणी द्वारा व्यक्त करे। स्वयं आचरण में लाये धर्मतत्त्व का उपदेश करे, जिससे सब लोगों में विद्याबल और धन का संचय हो—ऐसे सदुपदेश करने वाले वक्ताओं की संसार में कमी न पड़े।"

यद्यपि रुचिरं पुष्पं वर्णवंतं गन्धकम्।

एवं सुभसित वाचा सफला होति सुकुब्बतो।।

"सुन्दर होते हुए भी पुष्प की सराहना तभी है, जब वह वर्णयुक्त और गन्धयुक्त भी हो। इसी प्रकार उपदेश उसका ही सफल होता है, जो कथन के अनुसार कार्य भी करता है।

एल. रोशोकि का कथन है—"वक्तृता शब्दोच्चारण तक सीमित नहीं है। उसके साथ अन्तःकरण की आस्था और व्यक्तित्व की प्रतिच्छाया भी जुड़ी रहती है। प्रभाव, आस्था और प्रतिच्छाया का पड़ता है, शब्दों का नहीं।"

वाणी को परिष्कृत करने के लिए उसमें मिठास उत्पन्न करना आवश्यक है। यह मिठास अन्तःकरण की उत्कृष्टता से ही उत्पन्न होती है। चापलूसों और ठगों जैसी मधुरता भी कला के रूप में विकसित की जा सकती है। स्वार्थी लोग दूसरों को मूर्ख बनाकर अपना उल्लू सीधा करने के लिए उस चतुरता को भली प्रकार सीख लेते हैं और भोले लोगों को सद्भावना के भुलावे में डालकर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। चतुरता का यह छद्म प्रयोग अवसर का लाभ उठाने तक ही फलित होता है। वस्तुस्थिति प्रकट होते ही लोग सतर्क हो जाते हैं और मित्रता की आड़ में शत्रुता बरतने वालों से सर्प, बिच्छू की तरह बचने लगते हैं। वाणी की स्थिर मधुरता, मनुष्य की उदार आत्मीयता, स्नेहसिक्त सज्जनता और सेवा-सहायता के लिए तत्पर सद्भावना पर अवलम्बित है।

वाणी को शक्ति देने और कला को सुविकसित करने के लिए सबसे प्रथम और सबसे कारगर रीति यह है कि अपने व्यक्तित्व को, चरित्र एवं चिन्तन को उत्कृष्ट स्तर का बनाया जाय। शब्द प्रवाह में कला का, विद्या का समावेश करने के लिए अध्ययन एवं अभ्यास की आवश्यकता है। पर इतने भर से उसमें प्रभावोत्पादक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शक्ति का उद्भव न हो सकेगा। यह प्रयोजन तो उज्ज्वल चरित्र और प्रखर दृष्टिकोण अपनाने—उसे अपने व्यावहारिक जीवन में उतारने से ही पूरा हो सकता है। हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि भाषण के साथ जुड़ा हुआ वक्ता का व्यक्तित्व ही सुनने वालों को प्रभावित करता है। उसे तेजस्वी बनाने की आत्मसाधना में भी संलग्न रहना चाहिए।

वाणी के आधार पर आत्माभिव्यक्ति

ध्वंस के लिए अनेक अस्त्र-शस्त्रों का आविष्कार हुआ है, पर सृजन-संवर्धन की क्षमता की अमृत वर्षा मात्र वाणी से ही हो सकती है। यों दुरुपयोग से तो अमृत भी विष हो सकता है और वचन भी पतन का, विग्रह-विद्रोह का निमित्त कारण बन सकता है। महाभारत की जड़ में कटु भाषण की ही प्रधान भूमिका थी।

घरों में मचे रहने वाले कलह-विग्रह में वाणी के साथ जुड़ी हुई अनगढ़ता ही प्रधान कारण रही होती है। बिलगाव से लेकर विद्रोह तक के अनेक प्रसंगों के पीछे वस्तुतः कोई बड़े कारण नहीं रहे होते, वाणी के उलट-फेर ही वे ज़ाल-जंजाल बुनते रहते हैं—जिनके फेर में पड़कर कितने ही भटकते, टकराते और बेमौत मरते हैं। असंस्कृत वाणी ने संसार का जितना अहित किया है, उतना और किसी कारण से कदाचित ही कभी बन पड़ा हो।

यह भी विचारणीय है कि जिसके विकृत होने पर अनर्थ हो सकते हैं, उसके सुसंस्कृत होने पर न जाने कितनी सिद्धियाँ-विभूतियाँ हस्तगत हो सकती हैं पर लोगों को क्या कहा जाये, जो अपनी जीभ के वरदान न तो खुली आँखों से देख पाते हैं और न उसकी शक्ति-सामर्थ्य का अनुमान लगा सकने में समर्थ हो पाते हैं। प्रसुप्त स्तर की असाधारण, अलौकिक, अतीन्द्रिय स्थिति का रहस्य भले ही उतनी सरलता से विदित न हो सके, पर जिह्वा के प्रत्यक्ष चमत्कार तो हाथोंहाथ—समझे जा सकते हैं। नकद धर्म की तरह उसका परिपूर्ण लाभ प्रत्यक्ष ही उपलब्ध किया जा सकता है। वाणी सरस्वती है, गंगा जैसी पावन और शीतल जलधारा बहाने वाली भी, देवता उसी के अग्रभाग में विराजते हैं। ऋद्धियाँ और सिद्धियाँ कंठ में विराजती हैं, नाद-ब्रह्म के रूप में संगीत बनकर वाणी ही निनादित होती है। रसास्वादन के अन्यान्य केन्द्र भी हो सकते हैं, पर वाणी द्वारा की गई अमृत वर्षा से अधिक मन्त्र-मुग्ध कर देने वाली सरसता इस विश्व-ब्रह्माण्ड में अन्यत्र कहीं भी तो नहीं। वह बच्चे की तोतली वाणी से लेकर ब्रह्मवक्ताओं के कायाकल्प करने वाले अनुदानों तक में अपने-अपने ढंग की अमृत वर्षा करती हुई देखी जा सकती है। शाप और वरदान उसी के चमत्कार हैं।

अपने समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है 'जनमानस का परिष्कार'। इसी क्षेत्र में विकृतियों का घटाटोप घुस पड़ने के कारण अनेकानेक दुष्प्रवृत्तियों का उभार-तूफान विश्वव्यापी बना है। भ्रष्ट चिन्तन से जन्मे हैं—दुष्ट-दुष्कृत्य। चिन्तन-चरित्र और व्यवहार में निकृष्टता का हलाहल घुल जाने से ही उनका स्वरूप और परिणाम उलट जाता है। इस अथाह संकट का पूर्वाभास किसी भी वाणी से निकलने वाले असंयत शब्दों को सुनकर सहज ही लगाया जा सकता है। इसके विपरीत सभ्य, सुसंस्कृत और समुन्नत स्तर के लोगों की पहचान प्रधानतया उनकी वाणी से ही होती है। उसका उच्चारण बोलने वाले को स्वयं शीतल करता है और सुनने वालों को शान्ति प्रदान करता है।

यह सर्वविदित है कि चिन्तन की भ्रान्ति से ही चरित्र गड़बड़ाता है और व्यवहार में अनीति-असभ्यता का गहरा पुट लग जाता है। इसी क्रिया की प्रतिक्रिया तदनुरूप भयावह परिस्थितियाँ बनकर सामने आती हैं। वृक्ष किसी भी आकार-प्रकार का क्यों न हो, उसका विस्तार और स्थायित्व जड़ों के ऊपर ही रहता है। जीवन की जड़ें मनःक्षेत्र में हैं, चिन्तन सही रहने पर ही सब कुछ ठीक रहता है, वह गड़बड़ा जाने पर दसों दिशाओं में भयंकरता ही उमड़ती-घुमड़ती दीखती है। काला चश्मा पहन लेने पर हर वस्तु काली ही प्रतीत होती है, समाधान एक ही है कि आँखों पर चढ़ा वह चश्मा उतार दिया जाय।

लोकमानस का परिष्कार ही एकमात्र वह उपचार है, जिससे समस्त समस्याओं का समाधान सही और स्थायी रूप से किया जा सकना सम्भव है। इसके लिए लेखनी और वाणी रूपी अस्त्र-शस्त्र ही काम में लाने होंगे। युग साहित्य का सृजन, दिव्यदर्शी, युग मनीषियों के लिए ही संभव है, उसका प्रकाशन समर्थ तन्त्र कर सकता है, पर उसके प्रसार-विस्तार के लिए हर हालत में वाणी का प्रयोग करना पड़ेगा अन्यथा लिखी-छपी पुस्तकें कितनी ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हों, वे सभी कोठों में बन्द रहकर दीमकों के पेट में जाती रहेंगी। अजनबी-अनभ्यस्त साहित्य को गले उतारने के लिए भावनाशीलों का अनुरोध, परामर्श एवं आग्रह ही कारगर हो सकता है। साहित्य की प्रेरणाओं को कुशल प्रचारक ही लोकप्रिय बनाते हैं, लेखनी कितनी ही सशक्त क्यों न हो, पर उसका प्रभाव-आलोक जनमानस तक पहुँचाने के लिए परिचर्या का आश्रय लिए बिना काम चलता नहीं है। स्वाध्याय एकाकी होता है, पर सत्संग में जीवन्त प्रेरणा का समावेश रहने से उसकी क्षमता अनेक गुनी बढ़ जाती है। स्वाध्याय की समर्थता और समग्रता सत्संग के समावेश से ही बन पड़ती है। कथाग्रन्थ मुद्रित हैं, पर उन्हें जनमानसों में उतारने के लिए तो प्रवचनों का उपक्रम जोड़कर रखना ही होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नवसृजन के लिए वाणी को प्रमुखता इसलिए भी देनी पड़ेगी कि अपने देश में ६६ प्रतिशत-अनपढ़ हैं। जो पढ़े हैं, उनमें से भी बड़ी संख्या अनगढ़ों की है। इन पर सुधार-चेतना का रंग चढ़ाने के लिए प्रज्ञावानों की वाणी ही सही निशाने पर चोट लगा सकने में समर्थ हो सकती है। व्यक्ति और समाज को यदि पतन से निकलकर उत्थान के मंच पर बिठाना हो तो इसके लिए उस वाणी का सहारा चाहिए ही, जो वक्ता के परिष्कृत चिन्तन और चरित्र के साथ घुलकर शब्दवेधी वाण की भूमिका निभाती है।

मुखर होने में सबसे बड़ी रुकावट संकोचशीलता डालती है। आत्महीनता की ग्रन्थि से जकड़े हुए मनोबल की कमी अनुभव करने वाले लोग कभी अज्ञान भय से भयभीत होकर यह सोच बैठते हैं कि बोलने से न जाने दूसरों पर क्या प्रतिक्रिया होगी ? उल्टी हुई तो, कथन अटपटा रहा तो, कथन सटीक न हुआ तो, कथन को महत्त्वहीन माना और उपहास उड़ाया गया तो आदि-आदि कितनी ही आशंकायें-कुशंकायें मन में उठती रहती हैं। वह मानसिक असमंजस ही जीभ पर भारी पत्थर जैसा चढ़ बैठता है और समय पर कुछ कहते-सुनते नहीं बनता। जिससे कुछ कहा जाना है, वह परीक्षा लेने वालों की तरह बहुत बड़े लोग प्रतीत होते हैं। कहते हैं कि हाथी की आँखें छोटी होने के कारण उसे मनुष्य अपने से बड़ा दीखता है और भयभीत होकर उसके वशवर्ती हो जाता है। आत्महीनता यही करती है, दूसरों को अपने से अत्यधिक बड़ा-उत्कृष्ट मानने से, डर के मारे बोलती बन्द हो जाती है। ऐसा भी हो सकता है कि एकान्तप्रिय, एकाकी प्रवृत्ति होने के कारण असामाजिक स्तर के मनुष्य अपनी निज की कमजोरी के कारण ही विचार-विनिमय के लिए कुछ कह सकने की हिम्मत न कर पाते हों ? कारण कुछ भी क्यों न हो, पर यह बात बुरी है कि झिझक, संकोच या किसी भी कारण कोई हर हालत में अपना मुँह ही बन्द किये रहे, कर्त्तव्य और अधिकारों के सम्बन्ध में कुछ भी खुलासा न कर सके।

सुसंस्कारिता का परिचय वाणी देती है। मुँह से शब्दों के निकलते ही यह पता चल जाता है कि शिक्षा, सभ्यता, कौशल, स्तर आदि, आदि की दृष्टि से कौन कितने पानी में है। चापलूस, ठग, प्रपंची, लच्छेदार बातों का जाल-जंजाल बुनकर उसमें भोले-भाले लोगों को फँसा भी लेते हैं, पर उनका वह छद्म देर तक टिकता नहीं। व्यक्तित्व का स्तर विदित होते ही कलई खुल जाती है, चाटुकारों की वाणी में अटपटापन रहता है, वे हाथोंहाथ अपना छद्म स्वयं ही उभारते रहते हैं।

मधुर भाषण अमृत है और कटु भाषण विष। इस संदर्भ में कोयल और कौए का उदाहरण दिया जाता रहता है। सुसंस्कृत वाणी को वशीकरण मन्त्र बताया गया है, उसके प्रतिफल दूसरों को तो भली-बुरी उत्तेजना देते ही हैं, साथ ही उसकी प्रतिक्रिया अपने लिए भी उसी स्तर के भले-बुरे परिणाम उत्पन्न करती है।

वाणी को मधुर बनाने की कला दरबारी लोग सीखे हुए रहते हैं। चारण आदि इसी कला के द्वारा कमाई खाते हैं। दलाल, एजेण्ट, सेल्समैन आदि मोटा वेतन इसी कौशल के आधार पर हस्तगत करते रहते हैं, पर इस आधार पर छल न किया जाय। अन्तराल कुछ और कथन कुछ रहने के कारण छद्म की गंध थोड़े से विचारशील को भी मिल जाती है। कुछ लोगों को कुछ समय के लिए ही मूर्ख बनाया जा सकता है, सबको सदा-सर्वदा के लिए नहीं, यह एक अकाट्य सत्य है।

वाणी को प्रभावशाली बनाने के लिए इसके साथ तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहरण जुड़े रहने चाहिये। किसी व्यक्ति विशेष का कथन पूर्णतया सत्य माना जाय, यह आवश्यक नहीं। समय ने तर्क और तथ्य को ही मान्यता दी है, अब शास्त्रकारों और आप्तवचनों का सन्दर्भ देकर भी विचारशीलों को उसे मानने के लिए बाधित नहीं किया जा सकता है। किसी जमाने में **'बाबा वाक्यम् प्रमाणम्'** और पूर्वजों की परम्परा ही पत्थर की लकीर मानी जाती रही होगी, पर अब वैसा कुछ भी नहीं है। अदालत में तर्कों और तथ्यों के आधार पर ही फैसले होते हैं, यहाँ तक कि दूसरों के प्रस्तुतीकरणों के सम्बन्ध में हर श्रवणकर्ता की स्थिति लगभग न्यायाधीशों जैसी बनी है। उन्हें अपना अभिमत व्यक्त करने भर से न तो सन्तुष्ट किया जा सकता है और न वैसा ही मानने लगने के लिए सहमत किया जा सकता है। इसलिए किसी को सामान्य ज्ञान देने से लेकर प्रभावित-सहमत करने तक के लिए अपने पास तर्क, तथ्य, प्रमाण और उदाहरणों का अच्छा-खासा जखीरा होना चाहिए। इस एकत्रीकरण में लम्बे समय का स्वाध्याय, सतर्कता और चिन्तन-मनन उपेक्षित होता है। वकील अदालत में खड़े होने से पहले सबूतों की पूरी फाइल बना लेते हैं। प्रोफेसर क्लास में पढ़ाने जाने के पूर्व अपने विषय की तैयारी घर से ही करके ले जाते हैं। इसी प्रकार लोगों को प्रभावित एवं सहमत करने के लिए तदनुरूप पूरी तैयारी करके ही मुँह खोलना चाहिये।

मधुर वाणी में सन्निहित ऋद्धि-सिद्धि

निजी व्यवहार-व्यवसाय में वार्तालाप का कौशल चाहिये, उसमें शिष्टता का समुचित समावेश रहना चाहिए। आवेशग्रस्त मनःस्थिति और कटुभाषण के प्रयोग से पहली ही दृष्टि में मनुष्य असभ्य सिद्ध हो जाता है और उसके प्रति अनायास ही अश्रद्धा के, उपेक्षा-तिरस्कार के भाव उत्पन्न हो जाते हैं। यह पहली छाप प्रसंग के साथ अन्त तक जुड़ी रहती है और सहमति हो सकने की अपेक्षा दूरी को ही बढ़ाती है। ऐसे वार्तालाप का अन्त निराशा भरी खेदजनक स्थिति में ही होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऐसे व्यक्तियों की सफलता की सम्भावना जहाँ भी बनती है, वहीं कर्कशता दस कदम आगे बढ़कर चुगली करने जा पहुँचती है। बनता काम बिगाड़कर ही दम लेती है, इसलिए विचारशील अभिभावक बच्चों को अन्य शिष्टाचार सिखाने के साथ-साथ वाणी में शालीनता सँजोये रखने की शिक्षा देते हैं। सभ्यता का श्रीगणेश यहीं से होता है। बड़े होने पर मित्र-मित्रों के बीच, छात्रों-अध्यापकों के बीच, पति-पत्नी के बीच इसी स्तर की टोक-टाक चलती रहती है कि कहीं कोई असभ्य उच्चारण की आदत तो नहीं सीख रहा है ? कारण कुछ भी क्यों न हो, हर विचारशील को अपनी वाणी पर फूहड़पन तो किसी भी स्थिति में नहीं चढ़ने देना चाहिए। कर्कशों को मानवी गरिमा से अनभिज्ञ-अनभ्यस्त माना जाता है। तुनक मिजाजी, बात-बात पर मुँह लटका लेना, रूठ-मटककर मुँह फेर लेना भी ऐसा ही कुसंस्कारी स्वभाव है, जो दूसरों पर तो बुरी छाप छोड़ता ही है, साथ ही अपनी गरिमा को भी भारी आघात लगाता चलाता है। ऐसे लोग सदा घाटे में ही रहते हैं और साथियों के साथ गहरा तालमेल न बिठा सकने के कारण पग-पग पर असफल होते रहते हैं। निराश और खीझ ही उनके लगती है, जिन्हें हँसते-हँसाते, मुस्कराते रहने की आदत है, जो मन को हल्का-फुल्का रखते हैं, प्रसन्न-मुख रहते और मुधर वाणी से बोलते हैं, उनके लिए मित्रों, सहायकों, प्रशंसकों की कोई कमी नहीं रहती।

निजी व्यवहार-व्यवसाय से एक कदम आगे बढ़कर सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवेश करने, जन सम्पर्क साधने और सत्प्रवृत्ति संवर्धन का वातावरण बनाने का उत्तरदायित्व आता है। भावनाशील और विचारशील लोग इसे सँभालते हैं। वे स्वार्थ तक ही सीमित नहीं रहते, वरन् परमार्थ को भी अपने क्रियाकलापों में सम्मिलित करते हैं। उदारचेता, आत्महीनता को व्यापक बनाते हैं और **'आत्मवत् सर्वभूतेषु'** की मान्यता परिपक्व करते हैं। उन्हें **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** की अनुभूति होती है और उस नीति को पूरी तरह हृदयंगम करते हैं, जिसमें कहा गया है कि 'दूसरों के साथ वही व्यवहार करना चाहिए, जो हम अन्यान्यों से अपने लिए चाहते हैं।' धर्मधारणा का वास्तविक स्वरूप उदार सेवा-साधना ही है।

पीछे कहा जा चुका है कि भ्रष्ट चिन्तन से उपजे दुष्कृत्यों ने ही मनुष्यता को त्रस्त कर रखा है। इस संकट से उबरने के लिए 'जनमानस का परिष्कार' सर्वोपरि सेवा-साधना है। इसलिए जो सृजन साधक, नव सृजन की दिशा में एक कदम उठाने के लिए भी सहमत हो सकें, उन्हें अभीष्ट प्रयोजन की पूर्ति के लिए अपनी वाणी को मुखर करना चाहिए। गूँगी गुड़िया न रहकर दहाड़ती हुई सिंहनी के रूप में वाणी को विकसित रखना चाहिए। वही अमृत भरा पयपान कराने वाली कामधेनु भी तो है।

इस संदर्भ में सर्वप्रथम और सर्वसुलभ उपाय यह हो सकता है कि सामान्य वार्तालाप में आदर्शवादिता का पुट लगाते हुए प्रसंगों को उस दिशा में मोड़ा घुमाया जाय, जिससे शालीनता का निर्वाह बन पड़े। अनीति अपनाये हुए बैठी मन:स्थिति को यदि ऊँच-नीच समझाई जा सके, आगा-पीछा दिखाया जा सके, प्रतिक्रिया से अवगत कराने का आग्रह रखा जाय, तो आरम्भिक असहमति के बावजूद उसे अपने निर्णय पर पुनर्विचार करने का अवसर मिलेगा। कितने लोग इस प्रकार सुधरे भी हैं। अशोक, अम्बपाली, अंगुलिमाल, बिल्वमंगल आदि के ऐसे असंख्य उदाहरण इतिहास के पृष्ठों पर ज्वाजल्यमान हैं, जिनमें पिछली गतिविधियों को बदलकर आदर्शों की दिशा में कदम उठाने की सम्भावना के प्रमाण मिलते हैं।

हर किसी को अनेकों के साथ किसी न किसी कार्यवश मिलना-जुलना रहता है, साथ ही प्रसंगवश वार्तालाप भी चलता है। इस प्रयोग में जाँच-पड़ताल यह करते रहना चाहिए कि अपनी वाणी में शालीनता का समुचित संपुट रह रहा है या नहीं ? अपना अहंकार और दूसरे का अपमान, मिलकर ही अशिष्टता का निर्माण करते हैं। प्राय: अहंकारी ही कटुवचन बोलते हैं। मन में वे इस आधार पर बड़प्पन चरितार्थ हुआ भले ही अनुभव करते हों पर वस्तुत: इससे घटिया औकात ही उजागर होती है। अनगढ़, असंस्कृत, अहंकारी लोगों की एक ही पहचान है कि वे इस मुद्रा में, इस शक्ल में अपनी बात कहते हैं, जिससे प्रतीत होता है कि कोई उजड्ड बोल रहा है। जिन्हें अपनी नम्रता का बोध है, जो दूसरों को सम्मान देना जानते हैं, वस्तुत: उन्हीं का बोलना सार्थक है। उन्हीं के वचन अपने को शीतल और दूसरों को आश्वस्त करते हैं।

विनयशीलता कमजोरी की निशानी नहीं है। उसके साथ शालीनता की परम्परा भी जुड़ी होती है। वृक्ष जब फलों से लदते हैं, तो उनकी डालियाँ झुक जाती हैं। अरंड का पेड़ अकड़ा-तना रहता है, क्योंकि उसे अपनी ऊँचाई भर का ज्ञान होता है, यह भूल जाता है कि उसकी डाली से न किसी का पेट भरता है और न उसके नीचे कोई विश्राम कर पाता है। नदियाँ जमीन से गहरी होती हैं, इसलिए उनमें इर्द-गिर्द के अनेकों प्रवाह मिलते चले जाते हैं। जो जितना उथला होगा, वह उतना ही उफन कर चलेगा। गहरी नदियाँ ही दूर-दूर तक का पानी अपनी ओर खींचती और उदरस्थ करती रहती हैं। सज्जनोचित मधुर वाणी में ऐसा ही चुम्बकत्व है, जो अपरिचितों को ही नहीं, विरोधियों को भी अपना बना लेती है। इसके विपरीत कटुभाषी अकारण अपरिचितों से भी बैर मोल लेता रहता है। उनके मित्रों की संख्या निरन्तर घटती और शत्रुओं की बढ़ती जाती है। वे इसका दोष यों दूसरों पर ही थोपते हैं पर यथार्थता यह नहीं है। भौंरे मकरन्द पान करते हैं। मधुमक्खियाँ शहद बटोरती हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तितलियाँ आजीवन कला और सौन्दर्य के साथ विचरण करती हैं, जबकि उसी बाग में गुबरीला कीड़ा मात्र सड़े गोबर को खोजता तथा मिलने पर उसी की दुर्गन्ध में रमता है और उसी स्तर का बनता जाता है। हाट में हर प्रकार की वस्तुयें बिकती हैं पर ग्राहक अपनी मर्जी का ही माल खरीदता है। संसार के बाजार में बुरा भी मौजूद है और भला भी, पर दुर्बुद्धि को तो मात्र कुरूपता ही दीखती है और वह उसी को कोसते हुए अपनी निकृष्टता उजागर करती रहती है। इस सन्दर्भ में कौन किस मन:स्थिति में है, इसका परिचय करना हो तो उसकी वाणी कुछ देर ध्यानपूर्वक सुननी चाहिए। उससे सहज जाना जा सकता है कि किसी उजड्ड से पाला पड़ा या सज्जन के साथ ?

अन्य गुण चाहे हो या न हो, पर इस कौशल को सीखा ही जाना चाहिए कि मधुर व्यवहार से हर किसी के मन में अपने लिये जगह किस प्रकार बनाई जाय ? सद्भाव का इत्र छिड़ककर किस प्रकार सम्बद्ध वातावरण को सुगन्ध से महकाया जाय ? मधुर वाणी इन सत्प्रयोजनों को सहज ही पूरा करती रहती है।

स्मरण रखा जाना चाहिए कि अपना शील-सौजन्य, विनय के रूप में ही प्रकट होता है। दूसरों को सम्मान देना, उनके सद्गुणों की प्रशंसा करना, ऐसा सौजन्य विकसित करता है, जिसके आधार पर पराए अपने बनते और सही सुझावों को सरलतापूर्वक अंगीकार करते हैं। गुत्थियाँ प्राय: इसी आधार पर सुलझती हैं क्योंकि मतभेद से लेकर मनोमालिन्य और विग्रहों तक के बीच में आमतौर से गलतफहमी ही काम करती पाई जाती है। यदि विपक्षी ठण्डे मन से, अपने को दूसरे की स्थिति में रखकर यथार्थता समझ सके और गलतफहमी को छाँटकर अलग कर सके, तो प्रतीत होगा कि तिल का ताड़ और राई का पहाड़ बनकर खड़ा हो गया है। सद्भाव के वातावरण में यथार्थता समझने और जो भूल हुई है उसके लिए खेद करने तथा चूक को सुधार लेने भर के आश्वासन से, चौड़ी खाइयाँ भी सरलतापूर्वक पट जाती हैं। बुद्धिमानों के प्रयास इसी दिशा में चलते और बढ़ते रहते हैं, जबकि अतिवादी, आवेशग्रस्त सदा कहीं न कहीं से विग्रह न्योत बुलाते हैं और उसी से उलझते रहकर समय, शक्ति और साधनों का अपव्यय करते रहते हैं।

वाणी मात्र अपने मुँह में लगे चमड़े की हलचल भर नहीं है। उसके पीछे मनुष्य का समूचा व्यक्तित्व और दृष्टिकोण जुड़ा होता है। इसलिए वह किसी का समग्र प्रतिनिधित्व करती मानी जाती है। सज्जन ही सदाशयतापूर्ण मधुर वाणी बोल सकते हैं। जिनके गुण, कर्म, स्वभाव में निकृष्टता का गहरा पुट लगा हुआ है, वे बोलने या लिखने में मात्र दोषारोपण ही नियोजित किए रहते हैं। मधुर वचन बोलने की चमत्कारी सिद्धि प्राप्त करने के लिए मनुष्य को अपने समूचे व्यक्तित्व को परिष्कृत करना चाहिए। गुण-कर्म-स्वभाव में शालीनता का गहरा पुट लगाना चाहिए। दूरदर्शिता, समझदारी और सद्भावना को इस सीमा तक अपनाना चाहिए कि वह मधुर वचनों के रूप में गंगा की शीतल धारा बनकर प्रवाहित होती रहे।

मधुर वाणी ऋद्धि-सिद्धियों की भाण्डागार है। जिसने इस साधना में सफलता प्राप्त कर ली, वह अपने अभ्युदय का दूसरों के विकास-कल्याण का सरंजाम जुटाने में पूरी तरह सफल होकर रहता है। जब वार्तालाप करने का अवसर मिले तब भावभरी आत्मीयता के साथ ही बोलना चाहिए और विचार-विनिमय के सिलसिले में ऐसे परामर्श ही देने चाहिए कि चिन्तन की दिशाधारा आदर्शवादिता के साथ जुड़ सके।

सफल और सशक्त संभाषण

विशिष्टता प्रदर्शन के लिए लोग कई प्रकार के साधन-सरंजाम जुटाते हैं। वे खर्चीले भी होते हैं और सावधानी संग्रहीत रखे जाने पर ही साथ देते हैं। वस्त्र-आभूषण, सज्जा-सजावट, शरीर-सौष्ठव को बढ़ा-चढ़ाकर दिखाने के लिए सँजोये जाते हैं। मकान, फर्नीचर, वाहन, सेवक आदि का ठाठ-बाट भी प्राय: इसी प्रयोजन के लिए खड़ा किया जाता है। वास्तविक आवश्यकतायें तो इतनी कम हैं कि उनमें से अधिकांश को सहज श्रम से ही जुटाया जा सकता है।

सिद्धियों की साधना के लिए अनेक व्रत, संयम, योग, तप करने होते हैं। जिह्वा को परिष्कृत-परिमार्जित करना भी एक सरल किन्तु अतीव फलप्रद तपश्चर्या है। इससे वाक्शक्ति की देवी सरस्वती सिद्ध होती है, शाप-वरदान देने की क्षमता प्रदान करती है, साथ ही अपने निज गौरव को भी हजार गुना बढ़ा देती है। मंत्र शक्ति के संदर्भ अनेकानेक चमत्कारी वर्णन कहे सुने जाते हैं। यदि वे सच हैं, तो उन्हें वाणी की ग्रहण शक्ति का प्रकटीकरण मात्र समझना चाहिए।

वाणी को सशक्त एवं प्रामाणिक बनाने के लिए आहार की सात्विकता आवश्यक है। ईमानदारी की कमाई का संस्कारित आहार लेना चाहिए। मद्य-माँस आदि अभक्ष्य और चटोरेपन की आदत से जीभ को बचाना चाहिए। स्वादिष्ट व्यंजनों की ललक छोड़कर उसे मर्यादित, सीमित आहार पर ही सन्तुष्ट होना चाहिए।

अपने उच्चारण पूर्व कथन को पानी की तरह छान लेना चाहिए कि उसमें कहीं कुछ कूड़ा-कचरा तो नहीं मिला है। फूहड़ लोग आत्मप्रशंसा में ही अधिक समय लगाते हैं। बकवासियों के पास ऐसा कुछ होता नहीं, जिसके आधार पर अपना या दूसरों का भला कर सकने वाले वचन, कई कसौटियों पर कसने के बाद ही बोलें। अपना और दूसरों का समय खराब करने वाले बकवाद में जिह्वा की इतनी शक्ति नष्ट हो जाती है कि उसमें दूसरों को प्रभावित कर सकने वाली क्षमता प्राय: चुक ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाती है। इन्हीं कारणों को ध्यान में रखते हुए तप-साधना में मौन को विशेष महत्त्व दिया गया है। यह ऐसा ही अभ्यास है, जैसे कि उच्छृंखल घोड़े को पहले खूँटे से बाँध कर रखा जाता है, ताकि बाद में उसे ठीक चाल चल सकने के लिए प्रशिक्षित किया जा सके।

वार्तालाप एक साझे का सौदा है। उसमें वक्ता अपनी अन्धी दौड़ नहीं लगा सकता, सुनने वालों की अभिरुचि, इच्छा, मनःस्थिति, परिस्थिति आदि को भी ध्यान में रखना होता है। सामने वाला ऊबने लगे, उपेक्षा दिखाने और कतराने लगे तो बोलते रहना भारभूत हो जाता है। इसलिए अभीष्ट प्रयोजन के लिए बोलना तो चाहिए पर साथ ही सुनने वालों की मनःस्थिति और परिस्थिति का तालमेल बिठाते हुए इस प्रकार रहना चाहिए कि सुनने वालों की रुचि एवं उत्कृष्टता भी बनी रहे। इसके लिये यह ध्यान रखना होता है कि दूसरों की चिन्ता, आवश्यकता, उत्सुकता किस दिशा में बह रही है, उसी के साथ तालमेल बिठाते हुए बात आरम्भ करनी चाहिये। बाद में उसे आवश्यक मोड़ देते हुए पूरी चर्चा को उस स्थान तक पहुँचाना चाहिए, जिससे कि विचार-विनिमय के मूल उद्देश्य की पूर्ति हो सके।

हर मनुष्य को अपनी प्रशंसा सर्वाधिक प्रिय रहती है। इसके लिये औसत मनुष्य को आकुल-व्याकुल पाया जाता है। हर किसी में किसी न किसी प्रकार की अच्छाई भी होती है। यदि उसी अंश का वार्तालाप के प्रथम चरण में उल्लेख कर दिया जाय, तो समझा जाना चाहिये कि 'प्रशंसक मित्र होते हैं' की मान्यता के अनुरूप, श्रोता का स्नेह वक्ता के साथ जुड़ने लगा। कटुभाषी, आलोचक, निन्दक अनायास ही शत्रु मान लिये जाते हैं, भले ही उनका वास्तविक उद्देश्य वैसा न हो। भले ही वे सुधार की दृष्टि से कुछ अच्छा ही कहना चाहते हों, पर प्रसंग निन्दा के साथ जुड़ गया, इसके लिये आरम्भ ही गलत हुआ समझा जाना चाहिये और अनुमान लगाना चाहिए कि विरोध-मतभेद और असहमति का मेल-मिलाप अन्त तक चलता ही रहेगा। वैसी स्थिति में वार्तालाप के मूल उद्देश्य तक पहुँच सकना सम्भव न हो सकेगा।

तूफानी गति से बोलने की अपेक्षा उच्चारण की गति ऐसी होनी चाहिए, जो सुनने वाले को समझने का अवसर भी दे और उस पर सोचने, विचारने और हृदयंगम करने के लिये भी जितना अवकाश मिलना चाहिये, उतना मिलता रहे। अच्छा यह हो कि व्यक्तिगत वार्तालाप में सामने वाले को अधिक कहने का अवसर दिया जाय, ताकि वह अपने मन को खोलकर, हल्का होने का अवसर प्राप्त कर सके। सामान्य व्यक्ति प्रश्न पूछने पर ही अपने मन की गाँठें खोलने लगता है। 'रिजर्व नेचर' के अहंकारी या घाघ प्रकृति के व्यक्ति बहुत कम खुलते हैं। सामान्यतया लोग किसी हितैषी के सामने मन खोलने के लिए ही आतुर रहते हैं। अपनी बात कह लेने पर मनुष्य हल्का हो जाता है। इसके बाद ही उसकी स्थिति ऐसी बनती है कि दूसरे का परामर्श प्राप्त करने और उसे गले उतारने का मन बना सके। दोनों पक्ष अपनी-अपनी बात कहने के लिए उतावले हों तो निरर्थक विवाद उठ खड़ा होता है। एक ही पटरी पर दो गाड़ियाँ आमने-सामने से आने पर टक्कर होना स्वाभाविक है। इस स्थिति से बचना और बचाना ही श्रेयस्कर है।

वार्ता का उद्देश्य किसी को जलील करना नहीं, वरन् उसकी प्रस्तुत विचारधारा में यथासम्भव परिवर्तन करना ही होना चाहिए। इस कार्य के लिए आवश्यक धैर्य की आवश्यकता है, आवश्यक नहीं कि अपना कथन एक बार में ही किसी के गले उतारा जा सके। उसे कई भेंट-वार्ताओं में भी बताया जा सकता है। एक बार में जितनी सहमति प्राप्त हो सकी, उसके आगे का प्रयास अगली बार किया जाना चाहिए। उस बीच परामर्श पर विचार करने का अवसर मिल जाता है। विशेषतया मतभेदों के रहते तो ऐसी ही रीति-नीति अपनाई जानी चाहिए। उस अपवाद की बात अलग है, जिसमें मात्र एक बार ही थोड़े समय की भेंट का अवसर हो। तब शिष्टाचार निर्वाह के अतिरिक्त अपनी आत्मीयता, सद्भावना का इजहार करते हुए जो कहना हो, उसे इस ढंग से कहना चाहिए कि कुछ जबरन थोपा नहीं जा रहा है, वरन् अनुरोध इस स्तर पर किया जा रहा है, जिसमें मात्र हित-अनहित समझाया जा सके। दोनों मार्गों का स्वरूप और अन्तर समझ लेना चाहिये। लोग अधिकांश में तात्कालिक घटना को ही सब कुछ मान लेते हैं। वे ऐसे कदम उठाने की बात सोचते हैं, जिससे मन की भड़ास निकलती हो, प्रतिशोध लेकर, नीचा दिखाकर छाती ठण्डी की जाती हो। इस आवेश में यह प्रायः भुला ही दिया जाता है कि आक्रोश को चरितार्थ करने पर, अगले ही दिनों किन मुसीबतों का सामना करना पड़ सकता है। दूरवर्ती परिणामों का यदि अनुमान लगाया जा सके तो वे दुष्कृत्य प्रायः बन ही न पड़ें, जो आवेशों और पूर्वाग्रहों के कारण जड़ जमा लेते हैं और कुछ भी कर गुजरने के लिए उकसाते हैं।

यदि अपने विद्वेषी, विरोधी न होने का परिचय वक्ता दे सके, भविष्य की शुभ संभावना का विनिर्मित होना ही अपनी वार्ता का एकमात्र उद्देश्य हो तो समझना चाहिए कि वार्तालाप का पूर्वार्द्ध सफलतापूर्वक सम्पन्न हो गया। जो उत्तरार्द्ध शेष रह गया है, वह भी समझदारी के वातावरण में सहज ही निपट जायगा। अविवेक के कारण सही भाव व्यक्त न हो पाने से मात्र अनर्थ ही होता है। इसमें किसी को भी अपनी हार-जीत का प्रश्न नहीं उठाना चाहिए, अन्यथा चोट लगने पर अहंकार मरणासन्न हुए साँप की तरह तिल-मिलाकर फिर उठकर खड़ा हो सकता है और मरते-मरते मार सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हम सब मनुष्यों के विशाल समुदाय के बीच रहते हैं। सभी हमारी प्रवृत्ति, हमारे विचारों के ही नहीं हो सकते। जो हम चाहें वह सब लोग मानें, हमारे आज्ञानुवर्ती होकर रहें, ऐसी कल्पना करना व्यर्थ है। लोगों का अपना स्वभाव और चिन्तन है। उसमें जहाँ जिस प्रकार का उपयोगी बदलाव लाना सम्भव हो, उसके लिये प्रयत्न करना चाहिए। परस्पर तालमेल मिलाकर काम चलाने के अतिरिक्त और कोई मार्ग शान्ति से रहने देने का रह ही नहीं जाता।

विग्रह के असंख्य कारण हैं, मान्यताओं में असाधारण अन्तर पाया जाता है। समुदाय और संस्कृतियों को लेकर आरम्भ से ही मतभेद बढ़ते रहे हैं, इनमें किन का कथन कहाँ तक सही है—इसका निर्णय कौन करे ? तर्क एक सीमा तक ही काम देते हैं, फिर विवाद में किसी को हराकर भी यह आशा नहीं की जा सकती कि वह अपने विचार, रीति-नीति बदलेगा। ऐसी दशा में शास्त्रार्थों की उपयोगिता मात्र प्रचार-प्रयोगों तक ही सीमित रह जाती है, बात तो सद्भावना भरे वातावरण से ही बनती है। इसी ने युद्ध और महायुद्धों तक को शांति-संधि और समापन के रूप में बदला है। इसलिए द्वेष से सद्भावना को अधिक बलिष्ठ और कारगर माना गया है। कटुता भरे विवाद में नीचा दिखाने भर का भाव होता है, उस उपचार में शत्रुता छलकती दीखती है, उसके अहसास मात्र से आग भड़कती है और रेत का बवण्डर बन जाता है। गलतफहमियाँ ही तिल का ताड़, राई का पर्वत और झाड़ी का भूत बनाकर खड़ा करती हैं।

शीतलतायुक्त वार्तालाप किसी की हाँ में हाँ मिला देना भर नहीं है और न झंझट से डरकर औचित्य को छिपा देने की ही आवश्यकता है। हर मनुष्य में इतना साहस होना ही चाहिए कि अपनी बात निर्भीकतापूर्वक किन्तु मधुरता और आत्मीयता भरे शब्दों में बिना लाग-लपेट के कही जा सके। इस सन्दर्भ में अपनी मान्यता को प्रकट करने भर का भाव रहना चाहिए, ऐसा दबाव डालने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए कि वैसा करने के लिए बाधित ही होना पड़े, अन्यथा मित्रता टूट जायेगी। पूरी तरह मतभेद समाप्त होने की बात पर अड़े रहने पर तो संसार का एक व्यक्ति भी अपने अनुकूल दिखाई नहीं पड़ेगा। अपना शरीर और मन तक मान्य सिद्धान्तों की अवहेलना करता रहता है।

वार्तालाप जीभ का उच्चारण नहीं है, उसके पीछे मनुष्य का निजी दृष्टिकोण, व्यक्तित्व, चरित्र, चिन्तन, स्वभाव, अभ्यास, अनुभव आदि बहुत कुछ जुड़ा होता है। आवश्यक नहीं कि यह सारा परिकर सही एवं समुचित स्तर का हो। हो सकता है कि मान्यता परिकर में न्यूनाधिक मात्रा में भ्रम अथवा अनौचित्य भी जुड़ा हो? ऐसी दशा में इन सबका प्रतिनिधित्व करने वाली वाणी भी लचीली, मधुर, प्रभावी एवं सशक्त न बन सकेगी। इस कमी को पूरा करने के लिए हमें न केवल वाक्चातुरी सीखनी चाहिए, न केवल शिष्टाचार-निर्वाह में प्रवीण होना चाहिए वरन् यह भी करना चाहिए कि अपना समग्र व्यक्तित्व सज्जनोचित ढाँचे में ढाला हुआ हो। इमारतें बनाने, कारखाने खड़े करने, खंदक पाटकर ऊँचे चढ़ने जैसे कठिन कामों जैसा ही बड़ा काम है—'अपने को मानवी गरिमा के अनुरूप शालीनता के ढंग में ढाल लेना, चिन्तन-चरित्र और व्यवहार में सज्जनता का गहरा पुट लगा लेना।' यही वह साधना है, जिसके आधार पर बड़प्पन से लेकर श्रेय-गौरव उपलब्ध कराने वाली चमत्कारी स्तर की दीखने वाली सिद्धियाँ उपलब्ध होती हैं। वाक्सिद्धि, वाणी को अमृतमयी प्राण-प्रतिभा से भरी हुई बना लेना भी इसी जीवन में साधना की एक प्रत्यक्ष फलश्रुति है।

समग्र वाक्सिद्धि का प्रभाव दूसरों पर उचित मार्गदर्शन के लिए निश्चित रूप से पड़ता है। उसके सूक्ष्म उपयोग से अदृश्य वातावरण को भी सन्तुलित करने की सम्भावना बनती है। प्रत्यक्ष रूप से लोकमानस का परिष्कार भी अधिक सरलतापूर्वक बन पड़ता है। सशक्त धनुष-बाण के सहारे सुदृढ़ बाहुबल सरलतापूर्वक लक्ष्य वेध कर लेता है, उतना सब न बन पड़े तो भी भाषा के सामान्य शिष्टाचार का पालन तो किया ही जाना चाहिए। हमारा संभाषण सन्तुलित, सद्भावनापूर्ण और ऐसा होना चाहिए, जिसकी सज्जनों में आशा की जाती है।

भाषण की सामर्थ्य और विकास के तत्त्व

अपना उद्देश्य या मनोभाव दूसरों को प्रदर्शित करना हो तो उसके लिए भाषण की अनिवार्य आवश्यकता रहती है। वार्तालाप भी भाषण के ही अन्तर्गत आता है।

वार्तालाप भी एक माध्यम है, जिसके द्वारा दूसरों की मनोभूमि का निरीक्षण भी होता रहता है, अपने कहे हुए का प्रभाव भी होता रहता है, अपने कहे हुए का प्रभाव भी जाना जा सकता है। प्रसिद्ध सन्त सुकरात की यही शैली थी। वे प्रवचन करते हुये प्रश्न भी करते थे और अपने कथन की शैली को इस तरह मोड़ते जाते थे कि वह व्यक्ति जिससे बातचीत की जा रही है, उसे जहाँ पहुँचाना चाहते थे उधर अग्रसर होता रहे। इस ढंग से सीमित व्यक्तियों को अधिक समय में कुछ लाभ दिया जा सकता है पर उसमें व्यापक प्रभाव या स्थायित्व नहीं होता।

भाषण भाव, इच्छा या उद्देश्य को प्रकाशित करने का सबसे महत्त्वपूर्ण साधन है। आदिकाल से भाषण-कला का प्रवाह चलता आ रहा है। इन दिनों तो उसका महत्त्व और भी अधिक बढ़ गया है। प्राचीनकाल में धार्मिक नेता तथा समाज सुधारक लोगों की नैतिक मर्यादाओं को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उद्दीप्त रखने के लिये सार्वजनिक भाषणों का आयोजन किया करते थे। इनमें परिव्राजक, साधु-सन्तों के विचारों का लाभ अधिक से अधिक लोगों को कम समय में सुविधापूर्वक मिल जाता था और इस तरह सामाजिक जीवन में धर्म, अध्यात्म और नैतिक तत्त्वों का संचार बना रहता था। समय परिवर्तन के साथ-साथ भाषणों के विषय भी बदलते गये और प्रभाव भी। भाषण कला के विकास की दृष्टि से बीसवीं शताब्दी का विशिष्ट स्थान है। इस कला के द्वारा अनेक जनक्रान्तियों का सूत्रपात हुआ। विचारवान व्यक्तियों ने वक्तृता शक्ति के माध्यम से धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक जगत में जो हलचल उत्पन्न की है, उसका प्रभाव व्यापक है। महात्मा बुद्ध, कुमारिल भट्ट, महावीर, जगद्गुरु शंकराचार्य, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि दयानन्द आदि धर्माचार्यों ने अपने विचार और सिद्धान्त भाषण के द्वारा ही जनसाधारण तक पहुँचाये। इस तरह प्रस्फुटित विचार आज करोड़ों व्यक्तियों के मस्तिष्क में समाये हुये हैं।

राजनैतिक क्षेत्र में डिमास्थनीज, टूलियस सिसरो, महात्मा गाँधी, सुभाषचन्द्र बोस, जवाहरलाल नेहरू, क्रामवेल मार्टिन लूथर, वाशिंगटन, लेनिन, मुसोलिनी, स्टालिन, हिटलर, चर्चिल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इस युग में भाषण शासन तन्त्र का एक महत्त्वपूर्ण आधार बन गया है। राजनैतिक मार्गदर्शक में अन्य गुण चाहे न्यूनाधिक हों पर उसमें भाषणपटुता विशेष रूप से होनी चाहिये। जो इस कला में जितना ही अधिक प्रवीण होता है, उसको उतना ही अधिक गौरव प्रदान किया जाता है।

वाणी की शक्ति और सदुपयोग—वाणी ऐसी शक्ति है, जिसके प्रयोग की कला यदि मनुष्य जान जाय तो अपना जीवन सफल बना सकता है। किसी दुकानदार के पास जाकर आप वाणी का रहस्य पूछें तो आपको वह बतायेगा कि व्यावसायिक लाभ के लिये वह कितनी महत्त्वपूर्ण वस्तु है। ग्राहक को अपना आदमी बनाने के लिये वाणी की नम्रता ही उनका विशेष अस्त्र होती है। बड़ी आत्मीयता के साथ पूछेंगे मानो आप उनके कोई बहुत परिचितों में से हैं। ऐसी बात करेंगे जिससे आप उनकी नेकी और ईमानदारी पर विश्वास कर सकें। उद्देश्य कुछ भी हो पर व्यावसायिक लाभ के लिये मधुर वाणी का प्रयोग किये जाने की कला प्रत्येक दुकानदार समझता है।

इतिहास प्रसिद्ध घटना है कि द्रौपदी के शब्दों की चोट ही थी, जो प्रलयंकारी महाभारत का कारण बनी। 'अन्धों के अन्धे ही होते हैं' इन दस-ग्यारह अक्षरों की प्रतिक्रिया एक दुर्दान्त युद्ध के रूप में प्रकट हुई। वाणी के सदुपयोग से जहाँ अनेकों लाभ हैं, वहाँ इस शक्ति का दुरुपयोग परिस्थिति और वातावरण को बदलकर छोड़ता है। सामाजिक जीवन में तो उसका और भी महत्त्व है। अच्छा और मीठा बोलने वाले स्नेह और सम्मान पाते हैं। बोलने में स्पष्ट, चतुर और सावधान व्यक्ति नेता बन जाते हैं। घबराकर बोलने वाला कायर और बुजदिल कहलाता है। तीखा, कर्कश और कठोर बोलने वाला व्यक्ति पारिवारिक तथा सामाजिक सम्मान खो बैठता है और निरादर पाता है।

भाषण वास्तव में वार्तालाप का ही विकसित रूप है। बातचीत में अपनी बात औरों पर आरोपित करते हैं और उसकी प्रतिक्रिया भी जानते चलते हैं पर भाषण में अपनी कहते हैं पर इस अपेक्षा से कि वह केवल अपनी सलाह, सुझाव या मार्गदर्शन मात्र, श्रोताओं पर एक निश्चित प्रभाव की आशा तो की जा सकती है पर प्रत्युत्तर की नहीं, पर एक बात निर्विवाद है कि उसमें भी आपकी वाणी ही प्रयुक्त होती है। उसके द्वारा लोगों को प्रभावित करने की कला में जितना ही कुशल होंगे, उतना ही अपनी बात को सार्वजनिक जनता में आरोपित कर देने की आप आशा रख सकते हैं।

मन्त्र की शक्ति विश्वविख्यात है। उसकी शक्ति से बड़े-बड़े चमत्कारपूर्ण कार्य किये जाने का विशद् वर्णन शास्त्रों में मिलता है। इन मन्त्रों का यदि विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाय तो उनके मूल में शब्दों की ही प्रतिक्रिया दिखाई देती है। मन्त्र में शब्दों का अवगुंठन इस ढंग से किया जाता है कि उनके उच्चारण से प्रकृति के सूक्ष्म अन्तराल में एक विशेष प्रकार की सनसनी पैदा होती है। इसे नियमित करके बड़े-बड़े काम साधे जा सकते हैं। शब्द को ब्रह्म की संज्ञा दी गई है। इस शब्द ब्रह्म का सार्वजनिक प्रयोग ही भाषण है।

विचार और अभिलाषायें वाणी के द्वारा ही व्यक्त होती हैं। इस अभिव्यक्ति में जो जितना चतुर होगा, वह उतना ही अधिक लोगों का विश्वास और सहयोग प्राप्त कर सकता है। बड़े-बड़े नेता यथार्थ में अपने श्रोता को कोई स्थूल लाभ नहीं देते। उन्हें व्यक्तिगत रूप से न तो संदेश ही देते हैं और न ही सम्मान, तो भी वह उनसे कई बार इतने बड़े कार्य कराने में सफल हो जाते हैं, जिसे देखकर अन्त में आश्चर्य-सा होता है। इस प्रकार के व्यक्तियों में विचार व्यक्त करने की क्षमता ही क्रियाशील जान पड़ती है। उसी बात को एक साधारण व्यक्ति कहे तो उसे लोग महत्त्व न देंगे पर कोई कुशल वक्ता कहे तो उसें अधिक महत्त्व देंगे। कारण एक ही है कि कहने का ढंग और उसके पीछे वक्ता की भाव-प्रेरणा विशेष महत्त्व रखती है। उसी के प्रवाह में श्रोता बह जाता है और वह अपने मार्गदर्शक के इशारे पर व्यक्तिगत लाभ से परे की बात तक करने को तैयार हो जाता है।

एक सफल वक्ता बनने के लिये आवश्यक है कि शब्द शक्ति का ज्ञान, उसके उतार-चढ़ाव पर सार्वजनिक प्रतिक्रिया की जानकारी। किस तरह की शब्दावली किस समय और किस वर्ग के लोगों को उत्तेजित या रोमांचित कर सकती है। वक्ता को इस विषय का पूर्व ज्ञान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आवश्यक है। अनेक सभाओं में या जिन व्यक्तियों में नेताओं के गुण हैं, उनके व्याख्यान सुनकर या बातचीत के द्वारा उस सूक्ष्म प्रभावशालिनी शक्ति को पकड़ने का अभ्यास किया जा सकता है।

भाषण की आवश्यकता—राष्ट्र के आध्यात्मिक पुनर्जागरण के लिये भी अच्छे वक्ताओं का होना नितान्त आवश्यक है। राजनैतिक भाषणों की अभिवृद्धि के कारण राजनीति संसार के अधिकांश व्यक्तियों का जीवन अंग बन गई, तो धार्मिक वक्तृता का भी प्रभाव वैसा ही पड़ना चाहिये। धार्मिक मूल्यों की अभिवृद्धि के लिये भी यह आवश्यक है कि इस वर्ग में से प्रभावशील वक्ता निकलें और वे लोगों के धार्मिक मार्गदर्शन की बागडोर अपने हाथ में सँभालें। इस युग के विनाशकारी, भौतिकवादी प्रभाव की रोकथाम करने के लिये तथा आध्यात्मिक तथा नैतिक प्रशिक्षण व्यवस्था के लिये कुशल वक्ताओं के बाहुल्य की आवश्यकता होगी। निःसंदेह धार्मिक भाषणों की शृंखला चल पड़ने से जनजीवन में नैतिक उद्देश्यों की प्रतिस्पर्द्धा बढ़ेगी ही।

अपने विचारों का प्रतिबिम्ब औरों पर डालकर उन्हें किसी विशेष दिशा की ओर ले जाने के लिये यह बहुत आवश्यक है कि सार्वजनिक भाषण देने की क्षमता प्राप्त की जाय। भाषण एक प्रकार की कला है, जिसका कोई भी व्यक्ति विकास कर सकता है और प्रवीणता प्राप्त कर सकता है। भाषणों के द्वारा वह स्थिति प्राप्त की जा सकती है, जिससे बड़े से बड़े जनसमूह को किसी भी प्रचण्ड नैतिक आन्दोलन की पूर्ति के लिये मोड़ दिया जा सकता है किन्तु यह स्थिति एकाएक नहीं आ जाती। इसके लिये उन तत्त्वों के गहन अध्ययन की बहुत जरूरत है, जिनसे ऐसी सामर्थ्य उत्पन्न की जा सके। फिर उन सिद्धान्तों का व्यावहारिकता में समावेश भी होना चाहिये। अच्छे वक्ताओं के वक्तव्य देखकर मालूम पड़ता है कि वे किस प्रकार निःसंकोच होकर अत्यन्त प्रवीणता से अपने विचार प्रकट करते हैं। कैसे निडर और साहस के साथ धड़ल्ले से बोलते चले जाते हैं। अच्छा वक्ता जब बोलता है तो लोगों के दिल उछलने लगते हैं, जोश आता है, रोमांच होता है, बाँहें फड़कने लगती हैं। यह श्रेष्ठता उन्हें विद्वता के कारण नहीं मिल जाती वरन् वक्तृत्व में एक प्रकार का विद्युत प्रवाह उत्पन्न करने से मिलती है। बोलचाल की गति, शब्दों का संगठन, भावनाओं को सरल भाषा में व्यक्त करने की क्षमता आदि का विकास होता है, तो भाषण-पटुता भी अधिक प्रभावोत्पादक होने लगती है। कुछ सूत्र हैं जिनका प्रयोग भाषण की प्रभावशालिनी शक्ति का अभिवर्धन करता है, भाषण में रस और लोगों से कुछ करा देने की क्षमता उत्पन्न करता है।

अच्छे वक्ता अपने समय के मार्गदर्शक माने जाते हैं। अच्छा भाषण मनुष्य और समाज के जीवन को उलट कर रख देता है। हिटलर की भाषण शक्ति से जर्मनी जनता का खून खौल उठता था। सुभाषचन्द्र की वाक् शक्ति के चमत्कार स्वरूप आजाद हिन्द फौज खड़ी हो गई थी। ऋषि दयानन्द की वाणी में वह ओज भरा था, जिसका प्रस्फुटन होने से घोर नास्तिकों की नसों में भी धार्मिक जीवन बहने लगता था। चाहे क्रान्ति राजनैतिक हुई हो या सामाजिक, धार्मिक रही हो या नैतिक उनका मूल आधार भाषण रहा है। जन-जीवन में प्राण फूँक देने की विलक्षण शक्ति भाषण में सन्निहित है। महात्मा गाँधी ने भारतवर्ष को राजनैतिक मुक्ति दिलाई, इस आन्दोलन में भाषण का स्थान महत्त्वपूर्ण रहा। विश्व के अनेक युग परिवर्तनों में इस शक्ति का स्थान अद्वितीय रहा है।

बड़े समुदाय तक अपने विचार पहुँचाकर जब उन्हें प्रभावित करने की बात पर ध्यान जाता है, तो उसके लिए भाषण ही एकमात्र अस्त्र दिखाई देता है। पर इसके लिये निर्जीव व्याख्यान का कुछ महत्त्व नहीं। हर प्रवचन एक अनौखी स्फूर्ति लिये हुए होना चाहिये, तभी श्रोताओं को आकर्षित किया जा सकता है। यह प्रयोजन लचर भाषण से सिद्ध नहीं होता, इसके लिये ओजस्विता होनी चाहिये।

भाषण कला का आरम्भ और अभ्यास

आरम्भ में भाषण की सफलता न मिले, तो निराश होने की आवश्यकता नहीं। कुछ समय प्रयत्नपूर्वक अभ्यास जारी रखने से वह कठिनाई दूर हो जाती है। सभी जानते हैं कि महात्मा गाँधी के प्रवचन सुनने के लिए हर जगह उत्साह के साथ भारी जनसमुदाय एकत्रित होता था। उनके भाषण जनता में नवजीवन उत्पन्न करते थे। उनके आह्वान से अगणित व्यक्ति सत्याग्रही बने और भारी कष्ट सहने को तत्पर हुए फलतः भारत को स्वतन्त्रता मिल गई। उनके भाषणों को सर्वत्र अति महत्त्व दिया जाता था किन्तु आरम्भ में ऐसी स्थिति नहीं थी। गाँधीजी जब दक्षिण अफ्रीका में वकालत शुरू कर रहे थे तो प्रथम मुकदमे में अदालत के समक्ष जाने पर वे घबरा गये और बोलती बन्द हो गई। प्रयत्न करने पर भी वे कुछ बोल न सके, इस पर क्रुद्ध होकर जज ने उन्हें इजलास से बाहर निकलवा दिया। मुवक्किल भी बहुत क्रुद्ध हुआ, अपमान किया और अपने दिये हुए फीस के रुपये तत्काल वापस ले लिए। उस समय कोई यह अनुमान नहीं कर सकता था कि भविष्य में वे ही गाँधी जी अपनी वाणी में जादू जैसा असर पैदा कर सकेंगे और इतने बड़े देश की जनता को अपने इशारों पर नचा सकेंगे। आरम्भ की असफलता देखकर किसी को हिम्मत हारने की जरूरत नहीं है। भाषण एक कला मात्र है। जो आदमी अपने घर-परिवार में या दोस्तों के साथ बात-चीत कर सकता है, जिसकी जिह्वा में कोई दोष नहीं है, उसके लिए थोड़े समय अभ्यास करते रहने पर यह कला निश्चित रूप में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आ सकती है। किसी को भी ऐसा सोचने की आवश्यकता नहीं कि हम भाषण कर सकने की दृष्टि में अयोग्य हैं, हमें भविष्य में भी इसमें सफलता न मिलेगी।

अमेरिका के सुप्रसिद्ध वक्ता और लेखक सन्त इमर्सन, आरम्भिक दिनों में जब भाषण करने खड़े होते थे तो वे बुरी तरह सकपका जाते। उनके वाक्य अधूरे रह जाते और एक प्रसंग पूरा होने से पहले ही दूसरी बात शुरू कर देते थे। इस असफलता के कारण उन्हें कई बार उपहासास्पद बनना पड़ा पर इससे उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। दूने मनोबल से अभ्यास जारी रखा और अन्तत: विश्व में मूर्धन्य वक्ताओं में से एक बन गये।

अमेरिका के एक और मनीषी डेल कारनेगी केवल स्वयं कुशल वक्ता ही नहीं हैं वरन् वे भाषण कला सिखाने का विद्यालय भी चलाते हैं। संभाषण कला पर इनने बहुत कुछ लिखा भी है। वे आरम्भ से ही ऐसे कुशल न थे। प्रवीणता इन्हें बहुत समय उपरान्त प्राप्त हुई। जब वे नौसिखिया थे, तब उन्हें कई बार अपनी असफलता पर बड़ी निराशा हुई थी और बड़ी कठिनाई से ही अपने साहस की रक्षा कर सके थे।

ईसा से ३८४ वर्ष पर्व यूनान के एथेन्स नगर में जन्मे विद्वान डिमास्थनीज अपने समय के अति प्रभावशाली वक्ता थे। यह कुशलता प्राप्त करने के लिए उन्हें घोर प्रयत्न करना पड़ा। उनकी वाणी में दोष था, हकलाकर बोलते थे। शब्दोच्चारण सही न हो पाने के कारण साधारणतया यही समझा जाता था कि उनकी भाषण कर सकने सम्बन्धी महत्त्वाकांक्षा पूरी न हो सकेगी। पर उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। एकान्त कमरे में, सुनसान जंगलों में जाकर उनने अभ्यास जारी रखा और समयानुसार अभीष्ट सफलता प्राप्त कर ली।

संसार में कितने ही ऐसे वक्ता हुए हैं, जिनने अपने आरम्भिक भाषणों में निराशाजनक असफलता पाई। अनुमान था कि वे अच्छे वक्ता न हो सकेंगे। पर जब वे अदम्य साहस के बल पर अपनी अक्षमता को निरस्त करने में लगे ही रहे, तो अपने उद्देश्य में असाधारण रूप से सफल होकर लोगों को चमत्कृत कर सके।

संसद सदस्य जानब्राइट ६० वर्ष की आयु में उच्चकोटि का वक्ता था। उसने अपनी आत्मकथा में लिखा है—"आरम्भिक दिनों में बोलते समय उसके पैर और हाथ बेतरह काँपते थे, दिल धड़कता था और मुँह सूखता था। घबराहट के मारे पसीना छूटता था। लगता था भाषण देना मौत से लड़ने की तरह कठिन है। पर मैंने अपनी कमजोरियों से जूझने का निश्चय किया और इस प्रयास में बिना थके वर्षों तक लगा रहा। अन्तत: कमजोरियाँ हारीं और साहस जीत गया। आज मुझे अच्छे वक्ता के रूप में पहचाना जाता है।

डिसरेली को यहूदी होने के कारण बोलने से रोका और टोका जाता था। उसे वैसे ही प्रथम बार बोलने में बहुत झिझक लग रही थी, इस पर भी यह रोक-टोक हिम्मत तोड़ने के लिए काफी थी। इस दुहरी कठिनाई से जूझने के लिए उसने सारा साहस समेटा और होठ चबाते हुए दाँत किट-किटाकर गर्जना की—"आपको मेरा भाषण सुनना ही होगा क्योंकि उसमें सुनने और समझने लायक बहुत कुछ है।" श्रोता शान्त हो गये और फिर वह पूरी हिम्मत के साथ अपनी बात कहता ही चला गया।

लायड जार्ज अपने प्रथम भाषण की चर्चा करते हुए बताया करते थे कि उस प्रथम प्रयास में उनकी जीभ तालू से चिपक गई थी, मुँह सूख गया था और कुछ शब्द भी सही उच्चारण के साथ नहीं बोले जा सके थे।

भाषण सम्बन्धी असफलताओं का सबसे बड़ा कारण वक्ता की आत्महीनता है। वह उपस्थिति लोगों को बहुत बड़ा मान लेता है और उनकी तुलना में अपने को तुच्छ अनुभव करता है। भीड़ को देखकर डर जाने में घबराहट पैदा होती है, सन्तुलन बिगड़ जाता है, गला सूख जाता है और जीभ रुक जाती है। यह घबराहट अपनी ही मानसिक दुर्बलता की निशानी है। सुनने वाले परीक्षा लेने नहीं आते। घर में जिस प्रकार सभी आपस में बातचीत करते सुनते हैं, वैसे ही एक बड़े परिवार के रूप में गोष्ठी या सभा जुड़ती है। यदि अपने पास कुछ कहने योग्य है, तो निर्भयतापूर्वक संकोचरहित होकर कहना चाहिए। चोर को डरने का कारण है पर अपने अच्छे विचारों के प्रकट करने में कोई ऐसा कारण नहीं, जिसकी वजह से डरने की आवश्यकता पड़े। उपस्थित लोगों में यदि कुछ विद्वान, प्रभावशाली एवं बड़े आदमी हैं तो भी वे सहानुभूतिपूर्वक सुनने ही बैठे हैं—लड़ने के लिए नहीं, ऐसी दशा में उनसे भी क्यों डरा जाय ?

अपने को अयोग्य, अभ्यस्त, नौसिखिया मान लेने और वक्तृता के उपहासास्पद बन जाने के अपडर से ही वह स्थिति पैदा हो जाती है, जिसे मानसिक असंतुलन कह सकते हैं। इसी हड़बड़ी में भाषण लड़खड़ा जाते हैं। यदि अभीष्ट मनोबल सम्पादन कर लिया जाय और उपस्थिति जनसमुदाय को विपत्ति न मानकर घर-परिवार के लोगों के स्तर का मान लिया जाय तो आत्मविश्वास उत्पन्न होगा और उस संतुलित मन:स्थिति में भाषण प्रवाह ठीक प्रकार चल पड़ेगा।

विद्वान इमर्सन ने लिखा है—"श्रोता समुदाय और कुछ नहीं एक प्रकार का वाद्य यन्त्र है। वक्ता को यह अनुभव करना चाहिए कि वह उस बाजे को बजाने के लिए खड़ा हुआ है।"

वक्ता का अति महत्त्वपूर्ण गुण है—उसकी निर्भीकता, नि:संकोचता। डरता वह है जो कायर होता है—उन अनेक दोष-दुर्गुणों में, पाप-अपराधों में, अभाव-अभिशापों में एक कायरता भी है। डरपोक आदमी पग-पग पर मरता रहता है, जबकि स्वाभाविक मौत जिन्दगी भर में एक बार ही आती है। भयभीत मनुष्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कायरता के वशीभूत होकर न सोचने योग्य सोचता और न करने योग्य करता है। उसका सहारा लेने की किसी को इच्छा नहीं होती है। उस पर कोई कदाचित ही कुछ बड़े प्रयोजन पूरे कर सकने का विश्वास करता है। डरपोक आदमी गया-गुजरा और दया का पात्र समझ जाता है। वक्तृता में लड़खड़ाना प्रधानतया भीरुता एवं कायरता के कारण ही होता है अन्यथा बात-चीत तो यार-दोस्तों से भी करनी पड़ती है, घर-बाजार में भी तो बातें की ही जाती हैं। जब वहाँ जीभ को शब्द उच्चारण करने में कोई कष्ट नहीं होता तो भाषण के समय ही अवरोध क्यों हो, वक्तृता के अवसर पर लड़खड़ाने में प्राय: वक्ता की डरपोक प्रकृति ही प्रधान बाधा सिद्ध होती है।

निर्भीकता और नि:संकोच दोनों में अन्तर तो बहुत है फिर भी उन्हें सहेली-सहचरी कहा जा सकता है। संकोच करने, झिझकने में आत्महीनता ही एक कारण नहीं होती, उसमें छिपाव या दुराव का भाव भी छिपा रहता है। दुराव छल की दृष्टि से भी होता है और परायेपन के कारण भी। पराये लोगों से तरह-तरह की आशंकाएँ होती हैं, वे क्रुद्ध हो सकते हैं—बुरा मान सकते हैं—उपहास कर सकते हैं—जैसी आशंकाएँ मन में रहती हैं, इसलिए कहने वाले को अपने मन की बात मन में ही छिपाये रहना ठीक लगता है। छोटे और बड़े होने के कारण भी यह अन्तर देखा जाता है। नौकर और मालिक में प्राय: खुलकर बात नहीं होती। नौकर का मन मालिक के बड़प्पन के भार से दबा-डरा रहता है। मालिक अपने नौकर को आश्रित, तुच्छ, हेय मानता है और उससे बराबरी के दर्जे पर लाकर मन की बातें करना अनुचित प्रतीत होता है। उसमें उसे अपनी 'हेठी' लगती है। ऐसे ही अवरोध नौकर मालिक को जी खोलकर बातें नहीं करने देते और अति समीप रहते हुए भी बहुत दूर-नदी के एक तट से दूसरे तट की तरह कभी न मिलने वाले फासले पर रहते हैं। संकोचशीलता में आदमी की अपनी चारित्रिक या योग्यता सम्बन्धी कमी की झिझक भी एक कारण होती है। ऐसे-ऐसे अनेकों कारण संकोचशीलता के होते हैं। वे कुछ भी क्यों न हों—इतना निष्कर्ष तो निकाला ही जा सकता है कि शिष्टाचार के लिए आवश्यक विनयशीलता के अतिरिक्त संकोचशीलता हर दृष्टि से अवांछनीय है। वह संकोची को दब्बू, झेंपू, पिछड़ा, असंस्कृत, असामाजिक, साहसहीन जैसी क्षुद्रताओं से ग्रसित सिद्ध करती है।

भीरुता और संकोचशीलता में ग्रसित व्यक्तित्व अविकसित माना जाता है। साथ ही उस पर अयोग्यता के अतिरिक्त ओछेपन का भी लांछन आता है। ऐसा व्यक्ति न विश्वस्त ठहरता है और न प्रामाणिक फिर उसके लँगड़े-लूले, अन्धे-अधूरे, लड़खड़ाते-हड़बड़ाते भाषण को सुनना कौन पसन्द करेगा ? कौन उससे कितना प्रभावित होगा ? इन्हीं लक्षणों के संदर्भ में वक्ता के लिए यह आवश्यक माना गया है कि निर्भीक और नि:संकोच होने की उसकी मूल प्रकृति होनी चाहिए। सफल वक्ता बनने के लिए इन दोनों सद्गुणों को अपने में विकसित करना नितान्त आवश्यक है।

डरा हुआ व्यक्ति यदि भाषण देने खड़ा भी हो जाय, तो उसके मुख से विसंगति बात निकलेगी—कुछ का कुछ कहेगा—एक बात पूरी होने से पहले उसे छोड़कर दूसरी कहने लगेगा। प्रसंग का प्रवाह जारी रखना भूलकर अप्रासंगिक बातें कहने लगेगा। सुनने वाले जब उन अटपटी बातों का उपहास करने की मुद्रा में होंगे, तो बोलने वाले का रहा-सहा साहस भी टूट जायगा। जितना समय उसे बोलना था—जो कुछ कहना था, उसे पूरा किये बिना ही वह चुप हो जायगा। यह वक्ता की वैसी ही पराजय है जैसा कि लड़ाई के मैदान में हारे हुए सैनिक के उतरे हुए चेहरे पर दिखाई देती है। इस प्रकार उपहासभाजन होते हुए कितने ही पराजय अनुभव करने वाले वक्ता हिम्मत हार जाते हैं और भविष्य में मंच पर खड़े होकर बोलने का साहस ही नहीं कर पाते।

इतिहास प्रसिद्ध वक्ताओं में से एक मार्टिन लूथर ने लिखा है—''भाषण में सफलता मुझे तब मिली, जब मैं मंच पर यह सोचकर खड़ा होने लगा कि उपस्थित जन समुदाय मिट्टी के बने निर्जीव खिलौनों का ढेर मात्र है।''

नौसिखियों के लिए तो यह नितान्त आवश्यक है। उन्हें अभ्यास न होने के कारण मंच पर बैठना, प्रवचन करने, के लिए खड़ा होना, जनता की हजारों आँखें अपने ऊपर गड़ने से सकपका जाना स्वाभाविक है। इस उलझनभरी मन:स्थिति में प्रतिपादित विषय का जो क्रम एवं तारतम्य सोचा गया था, वह सभी गड़बड़ा जाता है और यह सूझ नहीं पड़ता कि क्या कहें, क्या न कहें, गाड़ी जरा-जरा चलकर अड़ जाती है। एक-दो बार रुकावट पड़ते ही आत्मविश्वास चला जाता है, लगता है हमारी योग्यता बोल सकने की नहीं है। अपने से यह नहीं बन पड़ेगा। आत्महीनता और निराशा की सम्मिलित मन:स्थिति एक बार लेट-पसर जाय तो फिर उसे उठाना कठिन होता है। कितने ही प्रतिभाशाली व्यक्ति इसी आरम्भिक असफलता के कारण हिम्मत छोड़ बैठे और कुशल वक्ता बनकर जो कार्य कर सकते थे, वे उससे वंचित रह गये। भाषण में मिली असफलता एक और छाप छोड़ती है कि अपना व्यक्तित्व त्रुटिपूर्ण है। अयोग्यता की बात सोचते-सोचते वस्तुत: अपना स्तर अयोग्य जैसा ही बन जाता है। जो कमी अपने में नहीं थी, वह भी इस भ्रमग्रस्त मन:स्थिति में 'मनसा भूत' बनकर पीठ पर लद जाती है। प्रवचन के आरम्भिक प्रयास में मिली असफलता कई बार तो अन्य प्रकार की असफलताओं को भी अपनी शृंखला में बाँधकर सामने ले आती है।

भाषण कला के आरम्भिक अभ्यास में अपनी स्थिति एक विद्यार्थी की मानकर चलना चाहिए और इस प्रकार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सोचना चाहिए कि हर काम के आरम्भ में त्रुटियाँ रहती हैं—उनकी मात्रा योग्यता वृद्धि के साथ घटती जाती है और अनवरत प्रयत्न जारी रखने पर समयानुसार प्रवीणता प्राप्त हो जाती है। यही बात भाषण कला के अभ्यास पर लागू होती है। आरम्भ के दिन ही कोई कुशल वक्ता नहीं बन सकता। हर किसी को इसके लिए प्रयत्नपूर्वक-मनोयोग के साथ अभ्यास करना पड़ता है। पूर्ण पारंगतता के लिए धीरज और हिम्मत के साथ प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

अच्छे स्कूलों में छात्रों को दूसरों के सामने अपने विचार व्यक्त करने का अभ्यास आरम्भ से ही कराया जाता है, ताकि बड़े होने पर वे बिना झिझक के भाषण कर सकने में समर्थ हो सकें। कविता पाठ, गीत-गायन, सामूहिक प्रार्थना, अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता, वाद-विवाद प्रतियोगिता, सांस्कृतिक कार्यक्रम, एकांकी-नाटक आदि के अवसर जिन विद्यालयों में रहते हैं, उनके छात्र भाषण सम्बन्धी अभ्यास आरम्भ से ही करते हैं और आगे चलकर बिना झिझक बोल सकने में प्रवीण हो जाते हैं। निर्भीकतापूर्वक विचार व्यक्त कर सकना मनुष्य का आवश्यक गुण है। इसे विकसित करने के लिए छोटी आयु से ही अवसर मिलता रहे, तो फिर बड़े होने पर उसके लिए विशेष प्रयत्न एवं अभ्यास की आवश्यकता नहीं पड़ती। वह एक सहज स्वाभाविक गुण बन जाता है।

आरम्भिक अभ्यास एकान्त में—एकाकी प्रयोग के रूप में किया जाना चाहिये। इसके लिए अपना निजी कमरा सबसे उपयुक्त स्थान है। उसमें जो सामान हो उसे श्रोताओं की तरह सामने बिछा लेना चाहिए और यह अनुभव करना चाहिए कि यह एक जनसमुदाय बैठा हुआ है। इनके सामने प्रवचन निर्भीकतापूर्वक आरम्भ करने में कोई कठिनाई नहीं होती। जब दुकान पर ग्राहक न हों तब दुकानदार अपनी बिखरी हुई विक्रय वस्तुओं को ही श्रोता मानकर अभ्यास आरम्भ कर सकता है। स्त्रियाँ अपने चौके-चूल्हे के सामान को, बर्तनों को श्रोता मानकर जब भी अवकाश हो वक्तृता आरम्भ कर सकती हैं और एकाकीपन का समुचित लाभ इस कला का विकास करने के रूप में उठा सकती हैं।

वक्ता बनने का अभ्यास करने में बड़ा दर्पण बहुत सहायक होता है। उसके सामने बैठकर अपना चेहरा देखते हुए व्याख्यान देने से यह पता चलता है कि वक्तृता में चेहरे के हावभाव कैसे रहते हैं। बोलते समय दूसरों को हम कैसे लगते होंगे। आत्मसमीक्षा से भावभंगिमा की—अंग-संचालन की त्रुटियाँ दूर हो सकती हैं। अपने भाषण की सफलता देखकर आत्मविश्वास बढ़ता है। दूसरों के सामने बोलने में जो संकोच होता था, वह शीशे को सम्मुख रखकर अपने ही सामने बोलने में नहीं होता। स्वच्छ जल वाले तालाब भी दर्पण का काम दे जाते हैं। संकोचशीलता को मिटाने के लिए आरम्भिक दिनों में टहलने जाते समय किसी मैदान, पार्क या जंगल में बैठ कर एकान्त प्रवचनों का सिलसिला बनाया जा सकता है। इस प्रकार आत्मविश्वास बढ़ाते हुए प्रगति पर आगे बढ़ा जा सकता है।

अपने विश्वस्त मित्रों को सामने बिठाकर अपनी भाषण शैली के दोष बताने में सहायता ली जा सकती है। नये लोग तो वैसा कर नहीं पाते पर मित्र, स्वजनों में यदि परख सकने, सुझाव देने की क्षमता हो तो वे अच्छे समीक्षक और मार्गदर्शक हो सकते हैं, उनकी सहायता लेने में लाभ ही है।

अपने से कम योग्यता वालों के सम्मुख भाषण करना और उन्हें प्रभावित करना अधिक सरल रहता है। आवश्यक नहीं कि अधिक विद्वानों या तथाकथित बड़े आदमियों के बीच में ही बोला जाय। अच्छा यह है कि अपने ज्ञान और स्तर से जिनकी स्थिति कम है, उनको अपना प्रचार क्षेत्र बनाया जाय। दसवें दर्जे का विद्यार्थी आठवें दर्जे वाले को अच्छी तरह पढ़ा सकता है और उसकी दृष्टि में सम्मान भी पा सकता है। पर बी. ए. के छात्रों को पढ़ाने में उसे सफलता न मिलेगी। ऐसी दशा में तथाकथित बड़े लोगों की अपेक्षा यदि अपने समय और ज्ञान लाभ उनमें वितरित किया जाय, जो 'छोटे' समझे जाते हैं, तो यह प्रयास अधिक सफल बनकर रहेगा। यों सत्परामर्श देने के लिए छोटे-बड़े का भे-भाव करने की भी आवश्यकता नहीं है। बच्चे भी बड़ों को अनौचित्य छोड़ने के लिए साहसपूर्वक कह सकते हैं।

आरम्भ में भाषण का अभ्यास कम समय का कार्यक्रम बनाकर चलाना चाहिए। यह समय दस या पन्द्रह मिनट का पर्याप्त है। घर में एकान्त कमरा मिल सके तो ठीक, अन्यथा खेत, मैदान, पार्क, नदी तट आदि की खुली जगह भी उपयुक्त है। जनशून्य खेत, मैदानों में जाकर पेड़, पौधे, पत्थर, पक्षी, मच्छर, चींटी, दीमक, पुस्तकें, बर्तन, कपड़े आदि को संबोधन करते हुए ही बोल सकते हैं। जो निर्जीव या सजीव वस्तुएँ सामने हैं, उन्हीं को उपस्थित जनता मानकर भाषण आरम्भ किया जा सकता है, ऐसा करने से सामने बैठे मनुष्यों को देखकर घबड़ाने की कठिनाई न रहेगी। दूर क्षेत्र में फैले हुए पेड़-पौधे या घर में रखी हुई पुस्तकें आदि को सजीव मनुष्य—जनता मान लेने से आधी समस्या हल हो जाती है। भीड़ मौजूद भी है और नहीं भी है। भीड़ है तो इसलिए कि संख्या की दृष्टि से पदार्थ मौजूद हैं और न ही इस दृष्टि से कि उनमें उपहास करने या अयोग्य ठहराने की क्षमता नहीं है।

अभ्यास थोड़े समय का इसलिए रखना उचित है कि उतने समय में निर्धारित विषय के अनेक विचारों में से कुछ तो मस्तिष्क में उठ ही आवेंगे और उन्हें संक्षेप में कहते हुए भी दस-पन्द्रह मिनट कह सकने लायक सामग्री तो मिल ही जायेगी, जिससे भाषण बिना लड़खड़ाये पूरा हो सकेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धीमे स्वर से नहीं खुले, स्पष्ट और ऊँची आवाज में बोलना चाहिए। ऊँची आवाज में रुकने, लड़खड़ाने, हकलाने की कम गुंजायश रहती है। अक्सर जल्दी बोले गये शब्दों में उलझने की आशंका ज्यादा रहती है। उलझे हुए शब्द भाषा की दृष्टि से अधूरे और ध्वनि की दृष्टि से अस्पष्ट होते हैं। उनका अभिप्राय ठीक तरह समझ में न आने से जनता को उपहास करने का अधिक अवसर रहता है। इसलिए आरम्भिक वक्ता को न तो धीरे बोलना चाहिए और नहीं तीव्र गति से। मस्तिष्क को सोचने, विचार-क्रम व्यवस्थित करने में जितना समय लगता है, उतना ही अवकाश यदि जीभ को उच्चारण के लिए मिल जाय तो लड़खड़ाने की कठिनाई न पड़ेगी। जब एक बार ठीक चल पड़ा तो फिर वक्ता को आत्मविश्वास हो जाता है कि वह ठीक तरह बोल सकने में सक्षम है। जहाँ यह आत्मविश्वास उत्पन्न हुआ, समझना चाहिए कि समस्या का अधिकांश समाधान हो गया। भाषण की असफलता का कारण वाणी का दोष, योग्यता की कमी, विचारों की न्यूनता आदि नहीं होते। वस्तुतः वह मनोवैज्ञानिक समस्या है, जिसका समाधान ढूँढ़ने के लिए मनोवैज्ञानिक स्तर के प्रयास ही सफल होते हैं।

भाषण में जो कहना है, उसे एक कागज पर क्रमबद्ध रूप से नोट कर लेना चाहिए। स्मरण शक्ति के आधार पर आरम्भिक भाषण ठीक तरह दे सकना कठिन है। इसके लिए तैयारी आवश्यक है। सामान्य बात-चीत में जो लोग क्रमबद्ध रूप से ठीक प्रकार बात-चीत कर लेते हैं, वे भी भाषण के समय घबराहट में उन बातों को भूल जाते हैं। मस्तिष्क इस चक्कर में पड़ जाता है कि क्या कहें ? कौन-सी बात पहले और कौन-सी पीछे कहने की है ? यह उलझन वाणी की रुकावट या उलझन के रूप में सामने आती है। इस अड़चन से बचने का सीधा उपाय यही है कि भाषण को क्रमबद्ध रूप से साफ कागज पर बड़े अक्षरों में नोट किया जाय। आवश्यक नहीं कि पूरी इबारत लिखी जाय। अपने समझने लायक संक्षेप में—संकेत रूप से भी उन्हें लिखा जा सकता है। आवश्यकता अपने आप को स्मरण दिलाने भर की है। वह प्रयोजन जितने अक्षरों से पूरा होता हो, उतने ही नोट करके काम चलाया जा सकता है।

बच्चे को कहानियाँ सुनाने से वक्तृत्व कला का अभ्यास करना बहुत ही सरल है। पुस्तकों में से कुछ उपयोगी कहानियाँ चुनली जायें और फिर उन्हें बच्चों के सामने. रोचक एवं शिक्षाप्रद तत्त्व मिलाकर ऐसे ढंग से कहा जाय कि वे संक्षिप्त स्वर से कुछ बड़ी हो जायें। उनमें घटनाक्रम के अधिक विस्तृत बनाने में कल्पना का अधिक सहारा लिया जाय। कहानी जिन परिस्थितियों में होकर गुजरी,,उसके दृश्य, घटनाक्रम, सम्भावनाएँ, आशंकाएँ, संवाद आदि को गढ़ा जा सकता है और उसे भावनात्मक उतार-चढ़ावों के साथ कहा जा सकता है। यह एक छोटे उपन्यास के सृजन का अभ्यास भी कहा जा सकता है और वर्णनात्मक व्याख्यान का सम्मिश्रण भी। बच्चों के द्वारा अयोग्य ठहराये जाने या उपहासास्पद घोषित किये जाने की आशंका नहीं होती। ऐसी दशा में भाषण का ढर्रा अच्छी तरह चल सकता है।

देखा गया है कि कथावाचक लोग घण्टों पुराण गाथा बिना थके पढ़ते रहते हैं। इसका कारण यह है कि घटनाओं का सहारा लेकर वर्णनात्मक शैली से देर तक कुछ भी कहा जा सकता है। दबाव विचारात्मक, भावात्मक और समीक्षात्मक प्रवचनों को प्रस्तुत करते हुए पड़ता है। वाणी में प्रवाह निखरा न हो, मस्तिष्क की भीड़ से घबराने की फिक्र छूटी न हो—विचार प्रवाह और वाणी की गति का तालमेल सन्तुलित न हो—तो भाषण लड़खड़ायेगा और वक्ता असमंजस में पड़ जायेगा। इसी परिस्थिति में विचार समीक्षा का कठिन उत्तरदायित्व सिर पर आ पड़े तो उस भार को वहन करने में कठिनाई उत्पन्न होगी। इसलिए उचित यही है कि नौसिखिये वक्ता अपने छोटे प्रवचन में कुछ कथाएँ, दृष्टान्त, संस्मरण, घटनाक्रम जोड़कर रखें। विचारक्रम और वर्णन अधिक हो तो मस्तिष्क पर दबाव कम पड़ेगा और वाणी निर्धारित आधार के सहारे सीधी सड़क पर लुढ़कती चली जायगी। वक्तृता कठिन न जँचेगी। बच्चों से आरम्भ किया अभ्यास बड़ों तक आगे बढ़ाया जा सकता है। रामायण कथा आदि कहने लगने में लोगों की धार्मिक रुचि को भी सन्तोष होता है, पुण्य-लाभ की बात भी सोची जा सकती है। भाषण के अभ्यास का लाभ तो प्रत्यक्ष है ही।

छोटे प्रवचन-थोड़े समय के व्याख्यान से लाभ यह है कि वह ठीक बन जाता है, तो अपना आत्मविश्वास बढ़ता है। साइकिल चलाने में आरम्भ के दिनों हाथ और पैर लड़खड़ाते हैं और गिरने के अवसर आते हैं। पर ऐसी कठिनाई डरने-झिझकने वालों को ही अधिक आती है। जो निर्भय होकर सन्तुलित मस्तिष्क रखकर सीखते हैं, उनके लिए यह बहुत ही मामूली और बहुत ही सरल अभ्यास है, उन्हें एक बार भी नहीं गिरना पड़ता है और एक-दो दिन में ही सवारी करने लगते हैं। इस सफलता में मानसिक सन्तुलन का ही योगदान अधिक रहता है। अन्य कोई बुद्धिमत्ता, क्रिया-कुशलता आदि ऐसी बात नहीं होती, जिसे सौभाग्य, रहस्य या अद्भुत कहा जा सके। भाषण के सम्बन्ध में भी ठीक यही बात कही जा सकती है। उसमें जो कुछ सीखना, साधना है वह एक शब्द में मानसिक सन्तुलन ही कहा जा सकता है। वक्तृता की सफलता में जितनी देर लगती है—कठिनाई प्रतीत होती है, उसे मस्तिष्कीय अव्यवस्था के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता। अभ्यासी को इसी कठिनाई पर विजय प्राप्त करने के लिए अपने आप से, असन्तुलन से लड़ना चाहिए।

घर में मित्रों से जिस प्रकार वार्तालाप किया जाता है, वैसी निःसंकोच मनःस्थिति में यदि उपस्थिति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जन-समुदाय के सम्मुख अपनी बात रखने का साहस जुटा लिया जाय, तो समझना चाहिए कि अवरोध समाप्त हो गया और प्रवेश द्वार खुल गया। अब उस पर कला का आवरण चढ़ना शेष है। इसके लिए अध्ययनशील बनने की—तथ्य, तर्क, प्रमाण, उदाहरण एकत्रित करने की आवश्यकता पड़ती है। त्रुटियों को ढूँढ़ना, उनको दूर करना, विशेषताओं को उपलब्ध करना और उन्हें अभ्यास-उपयोग में लाना प्रत्येक कलाकार की सदा बनी रहने वाली आवश्यकता है। वे इसी रीति-नीति को अपना कर अपने शिल्प में प्रगति करते हैं—प्रवीण बनते हैं। वक्तृत्व कला अन्य सभी कलाओं से अधिक प्रभावपूर्ण एवं सत्परिणाम प्रस्तुत करने वाली है। इसलिए उसे निखारने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना पड़ता है। जो वक्ता अपनी थोड़ी सी कुशलता पर सन्तुष्ट होकर बैठ जाय—अधिक परिष्कृत स्थिति प्राप्त करने का प्रयत्न छोड़ बैठे, समझना चाहिए कि उसके उज्ज्वल भविष्य की सम्भावनाएँ समाप्त हो गईं। जहाँ वह इस समय है उससे आगे नहीं बढ़ेगा, पीछे ही हटेगा। मस्तिष्क का विस्मरण क्रम तो अनायास ही चलता रहता है। स्मरण के लिए और निखार के लिए नये आधार ढूँढ़ने पड़ते हैं। यदि उस ओर उपेक्षा बरती गई तो यथास्थिति भी नहीं रहेगी—अवनति की ओर ही लौटना पड़ेगा। धैर्यपूर्वक, दृढ़ निश्चय के साथ अभ्यास करना और क्रमिक प्रगति से निराश न होकर पूर्ण विश्वास के साथ लम्बे समय तक प्रयत्न करने की बातें सोचकर उसमें लगे रहना, किसी भी व्यक्ति को देर-सबेर कुशल वक्ता बना देगा।

प्रवीणता की स्थिति तक पहुँचने के लिए सदा-सर्वदा अनवरत अभ्यास की आवश्यकता पड़ती है। उपयुक्त सफलता प्राप्त करने के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ती है। हथेली पर सरसों जमाने की उतावली कभी फलित नहीं होती। इस हाथ प्रयत्न उस हाथ सफलता चाहने वाले लोगों का उत्साह पानी के बबूले की तरह उठता और नष्ट होता देखा जाता है। किसान को फसल काटने के लिए लगातार छह महीने मेहनत और प्रतीक्षा करनी पड़ती है। विद्यार्थी स्कूल में प्रवेश पाने के दूसरे दिन ही स्नातक कहाँ बन जाता है ? इसके लिए उसे १२ वर्ष के एक युग तक साधना करनी पड़ती है। डॉक्टर, इन्जीनियर, प्रोफेसर, कलाकार आदि किसी से भी पूछकर देखा जा सकता है कि उन्हें प्रयास आरम्भ करने के दिन ही पूर्णता प्राप्त हो गई या उन्हें बिना उत्साह घटाये दीर्घकालीन साधना करनी पड़ी ? वे लोग बतायेंगे कि कितनी असफलताओं का मुँह देखते हुए, कितना परिश्रम करते हुए, कितने दिन पश्चात् सफलता की स्थिति तक पहुँचने का अवसर मिला। भाषण कला भी एक उच्च कोटि का कौशल है। उसकी सफलता सहज नहीं—श्रम साध्य है। उतावले लोग जिस काम में भी हाथ डालते हैं उसमें आतुर, आरम्भ और आतुर, अन्त का ढेर लगाते चलते हैं। उनके जीवन में असफलताओं का इतिहास जुड़ा होता है। यदि प्रवचन के लिए वे उत्सुकता प्रकट करें तो आतुरता उस क्षेत्र में भी उन्हें असफल ही रखेगी। लम्बी मंजिलें एक-एक कदम चलते हुए-एक के बाद एक मील पार करते हुए ही पूरी होती हैं। भाषण कला में दक्षता प्राप्त करने का लक्ष्य भी इसी क्रम से पूरा करना पड़ता है। बहुत दिन तक-बिना हिम्मत हारे, हर दिन त्रुटियों को देखते-समझते और सुधार करने की नीति अपनाये बिना इस क्षेत्र में भी किसी को अनायास सफलता की आशा नहीं करनी चाहिये।

वक्ता को अध्ययनशील होना चाहिए

भाषण वस्तुतः एक शोध-प्रबन्ध है। उसकी पूर्व तैयारी की जानी चाहिए और आदि से अन्त तक का विषय निर्वाह का ढाँचा बहुत ही दूरदर्शिता से बनाया जाना चाहिए। जिन लोगों ने पी-एच. डी. के लिए थीसिस तैयार किये हों, उनसे पूछना चाहिए कि वे भूमिका, प्रतिपादन, तथ्य, प्रमाण, तर्क, समीक्षा से लेकर उपसंहार तक का निर्वाह करने के लिए किस प्रकार आरम्भिक ढाँचा खड़ा करते हैं, सामग्री जुटाते हैं, रफ काफी बनाते हैं और फिर कैसे उसे 'फेयर' करके निबन्ध को जाँचने वालों के सामने प्रस्तुत करते हैं। भाषण की तैयारी इससे कम नहीं होनी चाहिए। उसमें इतनी सारगर्भित सामग्री रहनी चाहिए कि सुनने वाले को अपने समय की सार्थकता अनुभव हो सके।

निबन्ध रचना में उसका क्रम निर्धारित करना पड़ता है। प्रथम चरण में भूमिका होती है—प्रतिपाद्य विषय की उपयोगिता, महत्ता बताई जाती है, ताकि पढ़ने वाले को वह प्रयत्न आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण प्रतीत हो। इसके बाद पक्ष समर्थन में जितने अधिक तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हों, उन्हें क्रमबद्ध रूप में रखना पड़ता है। प्रस्तुत विषय के प्रतिपक्ष अथवा समानान्तर रूप में जो बातें कही जाती रही हैं, उनका समाधान बताना पड़ता है और प्रतिपक्षियों की तुलना में अपनी बात को अधिक खोजपूर्ण, तर्कसंगत, प्रामाणिक एवं सामाजिक सिद्ध करना पड़ता है। निबन्ध के अन्तिम भाग में उपसंहार के साथ निष्कर्ष बताना पड़ता है। पाठक पर यह छाप छोड़नी पड़ती है कि लेखक ने पाठक को अधिक मात्रा में अधिक उपयोगी जानकारी देने का प्रयत्न किया और उसे अपेक्षाकृत अधिक सही परिणाम पर पहुँचने में सहायता दी है। शोध प्रबन्धों का आरम्भिक ढाँचा इसी आधार पर कई खण्डों में विभाजित करके खड़ा करना पड़ता है और उनमें से प्रत्येक के लिए ऐसी सामग्री जुटानी पड़ती है, जिसे श्रमसाध्य एवं सूझ-बूझ युक्त कहा जा सके। परीक्षक उस प्रयत्न को इस दृष्टि से परखते हैं कि लेखक ने कितनी गहराई में उतरने और कितने तथ्य संकलित करने में कितना, किस स्तर का परिश्रम किया है। इसी कसौटी पर निबन्ध परखे जाते हैं और जो खरे उतरते हैं, उन्हें विश्वविद्यालय द्वारा 'डॉक्टरेट' की उपाधि से अलंकृत किया जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सारगर्भित वक्तृता के लिए समय से पूर्व इसी स्तर की तैयारी करनी पड़ती है। जनता को परीक्षक मानकर चलना चाहिए और उसके सामने अपना गम्भीर अध्ययन, पैना मनोयोग, तथ्य खोजने पर किया गया श्रम—क्रमबद्ध रूप में प्रतिपादन, भाषा-शैली का प्रवाह आदि को ऐसा बनाकर उपस्थित करना चाहिए, जिनमें अनुत्तीर्ण न ठहराया जा सके।

वक्ता को अध्ययनशील होना चाहिए। अपने विषय में उसका जितना अधिक अध्ययन होगा, उतनी गहराई और प्रामाणिकता बढ़ती चली जायगी। सभी मनुष्यों को विस्मृति का रोग थोड़ी बहुत मात्रा में पाया ही जाता है, एक बार जो पढ़ा था वह सदा याद नहीं रहता। ज्ञान अनन्त है। छोटे विषय को लेकर चला जाय तो भी उसका विस्तार इतना अधिक होता है कि नई-नई जानकारियाँ मिलती ही चली जायेंगी। जिसके पास पूँजी है, वही दूसरों को कुछ दे सकेगा। ग्राहक ऐसे बजाज के पास जाते हैं, जिनके पास कई डिजायन के, कई कीमत के कपड़े देखने और चुनने को मिल सकें। वक्ता से भी श्रोता सर्वविदित मोटी बातों की अपेक्षा कुछ और गहरी नई बातें जानने की अपेक्षा करते हैं। ऐसी सामग्री केवल अध्ययनशील लोग ही जुटा सकते हैं।

सीखने की जिज्ञासा से प्रेरित होकर मनुष्य ज्ञान स्रोतों की तलाश करता है। इस मार्ग पर चलने वालों को खाली हाथ नहीं रहना पड़ता। वे कुछ न कुछ निरन्तर प्राप्त हुए अपनी ज्ञान-सम्पदा बढ़ाते रहते हैं। "बूँद-बूँद से घड़ा भरता है"—"कन-कन जोड़ने से मन जुड़ता है"—इन उक्तियों में यही संकेत है कि खोजने और पाने के प्रयत्नों में लगा हुआ व्यक्ति धीरे-धीरे अपने विषय में समृद्ध, सुसम्पन्न बनता जाता है। जन्म से ही कोई विद्वान नहीं होता। सतत प्रयत्न से ही—मधुमक्खियों की तरह ही ज्ञान की पूँजी बढ़ाई जाती है। वक्ता का गौरव उसकी ज्ञान-सम्पदा में है। अल्पज्ञ व्यक्ति गिनी-चुनी बातों को रटे-रटाये शब्दों में दुहराता रह सकता है। हर स्थिति के हर व्यक्ति के लिए जिन अलग-अलग सन्दर्भों के सहारे अपनी बात कहनी चाहिए, उसका भण्डार तो उन्हीं के पास मिलेगा, जिन्होंने अध्ययन, मनन-चिन्तन से अपने विचार-भण्डार को समृद्ध बनाया है। अध्ययनशील ही विद्वान बनते हैं और जो विद्यावान हैं, वे ही सुनने वालों पर अपनी छाप छोड़ते हैं। विचारशीलों का सदा यही मत रहा है और उनने गम्भीर अध्ययन में रुचि लेने के लिए हर प्रगतिशील को परामर्श दिया है।

टॉल्सटाय कहते थे—"बुद्धिमान अपने अनुभवों की अपेक्षा अन्य बुद्धिमानों के अनुभवों से अधिक सीखता है। विचारशीलों के अनुभव हमारा मार्गदर्शन करने को आसानी से उपलब्ध हो सकते हैं।"

जोसेफ एडीसन ने लिखा है—"मस्तिष्कीय विकास के लिए अध्ययन की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी शरीर को व्यायाम की।"

सिसरो का कथन है—"प्रकृतिगत अनुभव संग्रह करने की अपेक्षा अध्ययन के द्वारा अधिक व्यक्ति महान बने हैं।"

मोन्टेस्क्यू की उक्ति है—"पढ़ने से सस्ता और कोई मनोरंजन नहीं और न उसके बराबर कोई प्रसन्नता उतनी स्थाई है।

बर्नार्डशा ने अध्ययन की अरुचि और उथलेपन पर दुःख व्यक्त करते हुए कहा था—"आज पढ़ने के शौकीन तो बहुत हैं पर यह नहीं जानते कि क्या-क्यों और कैसे पढ़ना चाहिए?"

हर वक्ता का अपना एक लक्ष्य और विषय होना चाहिए। यह विशेषज्ञों, निष्णातों और पारंगतों का जमाना है। लोग किसी भी क्षेत्र में मूर्धन्य की, 'एबन' की तलाश में रहते हैं। अल्पज्ञों की कहीं पूछ नहीं। क्या डॉक्टर, क्या वकील, क्या इन्जीनियर सभी क्षेत्रों में विशेषज्ञ ढूँढ़े जाते हैं ताकि भले ही खर्च थोड़ा अधिक पड़ जाय पर काम अच्छी तरह, सुयोग्य हाथों से पूरा हो सके। यही बात वक्ता के सम्बन्ध में भी है। कोई व्यक्ति अनेक विषयों में पारंगत नहीं हो सकता। विशेषज्ञता एकाध विषय में ही प्राप्त की जा सकती है। इसलिए हर विषय में टाँग अड़ाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। हर स्तर के भाषण प्रवीण स्तर पर दे सकना कठिन है। अपनी रुचि का विषय चुनना चाहिए। उसी विषय पर अधिकाधिक अध्ययन, चिन्तन, मनन और तद्विषयक विद्वानों से विचार-विमर्श करना चाहिए। इस तरह अपनी ज्ञान परिधि बढ़ती जाती है और उसी अनुपात से भाषणों का स्तर वजनदार होता चला जाता है।

कोई इमारत, पुल आदि बनाने से पूर्व इंजीनियर लोग उस पूरी योजना के नक्शे बनाते हैं। लोहा, सीमेन्ट ईंट, पत्थर, लकड़ी आदि कितनी, कहाँ लगेगी? उसके लगाने में राज, मजूर, मेठ, ओवरसीयर आदि को कितनी संख्या में कब लगाना पड़ेगा, सामान ढोने के लिए ढुलाई की सुविधाएँ किस क्रम से, कितनी जुटानी पड़ेगी—इन सारी बातों की पहले ही भले प्रकार कल्पना कर ली जाती है। लागात और समय का अनुमान लगा लिया जाता है। इसके बाद आवश्यक साधन जुटाये जाते हैं और फिर उस इमारत का बनना आरम्भ होता है। अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति वे इसी प्रकार कर पाते हैं। किसान को फसल कमाने में बीज, खाद, पानी, जुताई, निराई, रखवाली आदि की पूरी योजना बनानी पड़ती है। इन्जीनियर की तरह सुशिक्षित न होने के कारण वह नक्शे और बजट कागज पर तो नहीं लिख पाता पर मस्तिष्क में सारी कल्पना पूरी कर लेता है। ठीक इसी प्रकार भाषण की रूपरेखा तैयार करने में कुशल वक्ता को तैयारी करनी पड़ती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिम्मेदारी अनुभव करने वाले वक्ता का स्तर बिल्कुल इन्जीनियर, किसान, विवाह आयोजन करने वाले लोगों जैसा है। हर नये काम के लिए नई योजना और नई व्यवस्था सोचनी और बनानी पड़ती है। हर भाषण नया होता है क्योंकि जनसमुदाय हर जगह एक ही नहीं होता। उसके स्तर बदलते हैं तदनुकूल वक्ता को निर्धारित विषय की शैली में परिवर्तन करना पड़ता है। श्रोताओं की स्थिति को न समझते हुए—समयानुसार बदलती रहने वाली परिस्थितियों और घटनाओं का उल्लेख करते हुए नवीनतायुक्त बोलना पड़ता है। यदि वह कुछ रटे-रटाये शब्द और तथ्य याद कर ले और उन्हीं को हर जगह एक ही तरह दुहराता रहे तो उसे तोतारटन्त भर कहा जायगा। व्युत्पन्नमति वक्ता सदा लकीर नहीं पीटते, उनकी मौलिक प्रतिभा समय, प्रवाह और जनसमुदाय का तालमेल बिठाते हुए पुराने-तथ्यों को भी नया बना देती है। वासी और ताजी रोटी के स्वाद और गुण में क्या अन्तर होता है, इसे हर खाने वाला जानता है। सुगृहणी अपनी रसोई में नित-नवीनता लाने के लिए ताजगी का आनन्द खाने वालों को देने के लिए कुछ न कुछ सोचती और करती रहती है। इसी में उसकी प्रशंसा है। एक ही दाल और एक ही तरह की रोटी महीनों-वर्षों चलती रहे—एक दिन बनाकर दस दिन का झंझट छुड़ालें, तो उस बेगार भुगतने में बनाने का नित नया झंझट भले ही न उठाना पड़े पर भोजन का सारा आनन्द ही चला जायगा। परिवर्तन प्रिय मनुष्य का स्वभाव सहज ही कुछ न कुछ नवीनता चाहता है। जहाँ कुशलता है वहाँ वैसा बन पड़ना भी कुछ कठिन नहीं है।

सभा मंच पर जाने से पूर्व मनोयोग के साथ वक्ता को अपना भाषण तैयार करना चाहिए। उनमें नवीनतम घटनाक्रमों और तथ्यों का समावेश होना चाहिए। घिसी-पिटी अनेक बार कही-दुहराई गई बातें चाहे कितनी ही सही क्यों न हों, सदा उन्हें ही ग्रामोफोन के रिकार्ड की तरह दुहराते रहना सुनने वालों को अरुचिकर हो जाता है। पिसे को पीसते रहना, कहे को कहते रहना कुशल वक्ता का चिह्न नहीं है। कई व्यक्ति कुछ भाषण रट लेते हैं और उन्हीं बातों को उलट-पुलट कर कहते रहते हैं। मानो इसके अतिरिक्त और कोई तथ्य रहे ही नहीं—मानो इसी तोतारटन्त के सिवाय और किसी ढंग से उन बातों का समर्थन हो ही नहीं सकता। अधिकतर वक्ता तोतारटन्त रटते रहते हैं। इससे सहज ही यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वक्ता में चिन्तन-मनन एवं अध्ययन का अभाव है, उसे और कुछ ढूँढ़ने-जानने की आवश्यकता अनुभव नहीं होती। उसने अपने सीमित ज्ञान को ही परिपूर्ण मान लिया है और उससे आगे की जानकारी प्राप्त करने में उसकी रुचि नहीं रही। यह बुरी बात है। इससे वक्ताओं का गौरव बढ़ता नहीं घटता ही है।

वक्ता का प्रतिपाद्य विषय भले ही एक सीमित क्षेत्र का हो पर तथ्य और प्रमाण तो उतने दायरे में भी अगणित मिल सकते हैं। उसी विषय पर हर दिन नये तथ्य प्रस्तुत करते हुए प्रवचन की शृंखला चिरकाल तक चलाई जा सकती है और सुनने वालों को अपने अगाध ज्ञान से चमत्कृत किया जा सकता है। पर यह सम्भव तभी है जब अध्ययन में अपनी गहरी रुचि हो और नये तथ्य, नये आधार, नये तर्क, नये प्रमाण, नये उदाहरण ढूँढ़ निकालने के लिए गहरी जिज्ञासा उठती रहे। संसार में ज्ञान का अगाध समुद्र भरा पड़ा है। किसी छोटे से विषय पर भी इतनी अधिक सामग्री मिल सकती है कि उसे ढूँढ़ते रहने में एक पूरा जीवन भी कम प्रतीत हो। ऐसी दशा में यह सोचना उचित नहीं कि जो हमने जाना है, उससे अधिक और कुछ नहीं है। जो हम कहते-बोलते रहे हैं वही पर्याप्त है।

मनुष्य का स्वभाव नवीनता प्रिय है। फिल्म कोई कितनी ही आकर्षक क्यों न हो—गाना कोई कितना ही मधुर क्यों न हो। उसे देखने-सुनने में जो आकर्षण आरम्भ में रहता है, वह पीछे नहीं रहता। क्रमशः वह घटता जाता है और स्थिति यहाँ तक पहुँच जाती है कि उसे देखने-सुनने में तनिक भी उत्साह नहीं रहता। नवीनता के लिए भोजन-वस्त्रों में परिवर्तन करने की आवश्यकता अनुभव की जाती रहती है। गंगा भले ही एक दिशा में बढ़े पर उसमें लहरें, भँवर, उछाल उत्पन्न होते रहते हैं तभी उसका सुन्दर दृश्य देखते रहने को मन करता है। समुद्र की ज्वार भाटे ही शोभा बढ़ाते हैं। वक्ता को भिन्न-भिन्न स्थानों पर प्रथम बार ही एक बात कह सकने में औचित्य हो सकता है। यदि सुन चुके लोगों को पुनः वही बात उसी ढंग से सुनाई जायेगी, तो निश्चय ही अरुचि उत्पन्न होगी। भले ही वह उपयुक्त और आवश्यक क्यों न हो। यदि लगातार उसी विषय को सिखाया सुनाया जाना अभीष्ट हो तो भी उसके प्रतिपादन में नये तथ्यों और नये उदाहरणों का समावेश किया जाना चाहिए। पर वह सम्भव भी हो सकता है जब वक्ता अध्ययनशील हो, उसमें खोज करने की आकांक्षा हो। पूछते और पढ़ते-सुनते रहने से ज्ञान वृद्धि होती है। अच्छे वक्ता अहंकारी नहीं होते वरन् वे सदा जिज्ञासु और विद्यार्थी बने रहकर अपनी ज्ञान-सम्पदा बढ़ाते रहते हैं। मधुमक्खियाँ मधुसंचय का अपना कार्य निरन्तर जारी रखकर अपने छत्ते में हर किसी को ललचाने लायक शहद जमाकर पाती हैं। अच्छे वक्ता अपना स्तर ऊँचा रखना चाहते हैं, इसलिए वे अपने पास अधिकाधिक तथ्य जमा करने का प्रयास सदैव जारी रखते हैं।

हर वक्तृता से पूर्व उसकी योजना बनानी चाहिए। यदि अभ्यस्त तथ्य है, तो परिस्थिति और उपस्थिति में जो हेर-फेर हुए हों उनका समावेश करते हुए—भाषण में नवीनता लानी चाहिए। उसके क्रम में हेर-फेर करना चाहिए अन्यथा नई जनता को आभास भले ही न हो, साथी तो यह अनुमान लगा ही लेंगे कि वक्ता में मौलिक प्रतिभा का अभाव है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आरम्भ, मध्य और अन्त किस प्रकार हो—तथ्यों को किस क्रम से उपस्थित किया जाय—किस तर्क का कहाँ समावेश किया जाय—उदाहरणों, घटनाओं, संस्मरणों का समावेश किस प्रसंग में, किन शब्दों में किया जाय—प्रतिपक्षी मान्यताओं और तर्कों का निराकरण किन तर्कों और प्रमाणों के साथ किया जाय—अन्त में उपसंहार का स्वरूप क्या हो ? आदि बातें पैनी कल्पना के आधार पर कई बार उलट-पुलट करके देखने, सोचने से अच्छी चीज बनकर सामने आ जाती हैं। आवश्यक नहीं कि एक ही बार—कुछ ही देर में प्रथम कल्पना को ही पर्याप्त मानकर, काम को जल्दी-पल्दी निपटा दिया जाय। कई-कई विकल्पों के साथ, कई तरह से भाषण की रूपरेखा बनानी चाहिए और फिर उसमें से काँट-छाँटकर, जोड़-गाँठकर, संशोधित-परिमार्जित योजना पास करनी चाहिए।

सम्भव है इसमें एकाध घण्टा या ज्यादा समय लग जाय। सोचने-ढूँढ़ने या पूछने में देर लगे और मस्तिष्क को गहराई में उतरना पड़े किन्तु यह अनिवार्य रूप से आवश्यक है। इस समय को बचाने की बात सोचना—अपने भाषण और गौरव को गिराने की तैयारी करना है। यह आलस्य या अभिमान हर वक्ता को बहुत महँगा पड़ता है। "हमें सब ज्ञात है—समय पर हर बात हमें याद आ जाती है" ऐसा अहंकार तो बहुत लोग करते हैं, पर वस्तुतः ऐसी असाधारण व्युत्पन्नमति किसी-किसी की ही होती है। यदि होती भी है तो इसका कारण चिरकालीन वह अभ्यास रहा होता है, जो उन्होंने आरम्भ के दिनों में योजनाबद्ध बोलने की तैयारी के रूप में किया था। इस प्रकार का परिश्रम मस्तिष्क के भोथरेपन पर शान चढ़ाने और उसकी धार तेज करने में सहायक होता है। उस्तरा तभी तेज रहता है जब बार-बार उसकी धार बनाई जाती रहे। एक बार धार चढ़ाकर जो महीने के लिए निश्चिन्त हो जाना चाहता है, वह नाई अपने ग्राहकों का कोपभाजन बनेगा। घिसी-पिटी बातें दुहराने वाले वक्ता न केवल अपनी प्रभावोत्पादक क्षमता को खो बैठते हैं वरन् मानसिक आलस्य को प्रश्रय देते रहने के कारण कुशाग्र बुद्धि की विशेषता से भी वंचित होते चले जाते हैं। यह गिरावट वक्ता की अपने कार्य एवं उत्तरदायित्व के प्रति उपेक्षा बरतने जैसी है, जिसके कारण उसे बहुत घाटे में रहना पड़ता है। वह जो कर सकता था—बन सकता था—उसमें बहुत कम सफलता ही पल्ले पड़ती है।

अध्ययनशील व्यक्ति लेखन शैलियों को समझते, शब्द विन्यास के गठनक्रम पर ध्यान देते हैं, उन्हें वैसा बहुत कुछ हाथ लगता रहता है, जिसके सहारे वे अपनी वक्तृता को विद्वता की छाप छोड़ने वाली बना सकें। यह तो शैली, शब्द विन्यास को सही करने की बात हुई। अपने वक्तृता के विषयों पर जानकारियाँ देने वाले तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहरण प्रस्तुत करने वाले साहित्य का

संग्रह करना चाहिए और उसे कई शोध दृष्टियों से पढ़ना चाहिए, उन्हें नोट करना चाहिए। स्मृति पटल पर अच्छी तरह उन बातों को जमाने के लिए बार-बार दुहराना चाहिए। उपेक्षा या मनोरंजन की हल्की दृष्टि रखकर जो कुछ पढ़ा जायगा, वह साथ का साथ ही विस्मृत होता चलेगा। भले ही थोड़ा पर अधिक गहरा अध्ययनक्रम ही वक्ता की बहुमूल्य सम्पदा सिद्ध होता है।

शब्दों का सुगठन और लालित्य उसी के प्रवचन में रह सकता है, जिसने बहुतों का लिखा हुआ बहुत पढ़ा है। मस्तिष्क विशाल शब्दकोष हो—किन शब्दों का किस प्रकार गुंथन करने से किन अभिव्यक्तियों को, किस प्रकार, किस हद तक प्रकट किया जा सकता है, यह कला-कुशलता विशाल और सूक्ष्म दृष्टि रखकर किये गये अध्ययन से ही उपलब्ध हो सकती है। अशिक्षित या अल्पशिक्षित इस विशेषता से सम्पन्न नहीं हो सकते। लेखन शैलियाँ भी एक प्रकार से भाषण शैलियाँ ही हैं। अन्तर इतना ही है कि भाषण में मुँह से बोलकर और लेखन में कल्पना का सहारा लेकर अपने विचार दूसरों के सम्मुख प्रस्तुत किए जाते हैं। लेखक को भी अपने ढंग का एक वक्ता ही माना जायगा। लेखन शैली और भाषण शैली का मूल स्वरूप एक है। प्रत्यक्ष में ही इसके दो भिन्न स्वरूप दिखाई पड़ते हैं।

वक्ता को ऐसी नोटबुक सदा साथ रखनी चाहिए, जिसमें कभी-कहीं से अपने विषय से सम्बद्ध उपयोगी बात सुनने, पढ़ने को मिले तो उसे नोट किया जा सके। ऐसे प्रसंग अक्सर सामने आते रहते हैं, जो बड़े मार्मिक होते हैं। सुनते-पढ़ते समय बड़े पसन्द आये थे पर पीछे वे विस्मृत हो गये। उपलब्ध ज्ञान-सम्पदा का सदा संचय किया जाता रहे, इसके लिए वह नोटबुक बड़े काम की होती है, जिसमें उपयोगी तथ्य अंकित किये जाते रहें। उन्हें पढ़ते, दुहराते रहकर अपनी स्मृति सजीव रखी जा सकती है। महादेव भाई, महात्मा गाँधी आदि की डायरियाँ प्रकाशित हुई हैं, उनमें बहुत सी काम की बातें हैं। वक्ता के लिए तो यह और भी आवश्यक है कि अपने कथन को अधिक मार्मिक बनाने के लिये उपयोगी तर्क, तथ्य, संस्मरण, प्रसंग, संदर्भ आदि जहाँ भी मिलें वहाँ से नोट करता रहे।

अपने प्रतिपादित विषय के विपक्ष में जो कहा जाता रहा है, उसकी जानकारी भी होनी चाहिए और उसके खण्डन के लिए तथ्यपूर्ण तर्क एकत्रित करते रहने चाहिए। जहाँ अपने पक्ष के समर्थन में कहा जाय, वहाँ प्रतिपक्ष की मान्यताओं का निराकरण करने की बात को भी ध्यान में रखा जाय, अन्यथा बात आधी-अधूरी रह जायगी। मण्डन और खण्डन का तारतम्य जहाँ उपयुक्त होता है, वहाँ नमक और शक्कर के स्वादों की रसोई की तरह वक्तृता भी खिल पड़ती है। मात्र खण्डन या मात्र मण्डन एकांगी, नीरस एवं अरुचिकर प्रतीत होते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिस विषय पर अध्ययन कम है, उस पर थोड़ी-सी घिसी-पिटी बातें ही कहीं जा सकती हैं। कई दिन तक लगातार बोलना अल्प अध्ययन वाले लोगों के लिए सम्भव नहीं होता। अलग स्थान पर अलग लोगों के बीच में एक बात को दुहराने से भी काम चल जाता है, पर यदि लगातार एक ही स्थान पर—एक ही लोगों के बीच बोलना पड़े तो अल्पज्ञ वक्ता की पोल खुल जाती है और वह बहाना बनाकर खिसकने लगता है। एक ही विषय के अनेक पक्ष होते हैं। प्रत्येक पक्ष पर कई दृष्टिकोणों से प्रकाश डाला जा सकता है। इस प्रकार एक छोटे विषय के भी अनेकों विभाग हो सकते हैं। यदि वक्ता का अध्ययन विशाल है, तो वह अपने मूल विषय से बिना उखड़े, बिना इधर-उधर ताक-झाँक किये उसी संदर्भ में बहुत समय तक बोलता रह सकता है। यदि एक दिन ही बोलना हो तो भी अनेक संदर्भों का समन्वय करते हुए कही गई बात बहुत ही आकर्षक और प्रभावोत्पादक बन जाती है। भाषण वाणी की वाचालता का, शब्दोच्चार का नाम ही नहीं है, उसमें विशेषज्ञ स्तर की जानकारियों का समावेश भी होना चाहिए। इसी से वक्ता की ज्ञानगरिमा और चिन्तन की गहराई का पता चलता है।

जो बोलना है, उसमें क्रमबद्धता रहनी चाहिये। आरम्भ में क्या, इसके बाद क्या-यह पूरा ढाँचा शुरू में ही बना लिया जाना चाहिए। अन्यथा स्मरणशक्ति की गड़बड़ी से अन्त में कही जाने वाली बातें आरम्भ में और आरम्भ की अन्त में कह दी जायेंगी। असम्बद्धता का यह व्यतिक्रम अटपटा और उपहासास्पद लगेगा। कितनी ही बातें समय पर याद नहीं उठेंगी और पीछे पश्चाताप होगा कि कितनी महत्त्व की बातें कहने से छूट गईं। ऐसे असमंजस में उन्हीं को पड़ना पड़ता है, जो बिना तैयारी के बोलने को खड़े हो जाते हैं। यदि आरम्भ में ही क्रम निर्धारित कर लिया गया होता तो आसानी से प्रवाह बहता चला जाता और संतुलन की समस्वरता हाथ से निकल जाने का पश्चाताप न करना पड़ता।

सफल वकील वे माने जाते हैं, जो अदालत में जाने से पूर्व अपने विषय का पूरा अध्ययन करके और प्रस्तुत किये जाने योग्य तथ्यों को तैयार करके साथ ले जाते हैं। इसके लिए उन्हें कानून की कितनी ही पुस्तकें पलटनी पड़ती हैं, व्याख्याएँ ढूँढनी पड़ती हैं, हाईकोर्टों के फैसलों की नजीरें इकट्ठी करनी पड़ती हैं। वादी और प्रतिवादी के कथनों को—पुलिस की रिपोर्टों को, गवाहों द्वारा कही गई बातों को इस बारीकी से समझना पड़ता है कि अपने पक्ष समर्थन के लिए काफी सामग्री मिल जाय। इस श्रम, प्रयास एवं मनोयोग ही मुकद्दमा जीतने का कारण बनता है। उसी से वकील की ख्याति और आमदनी बढ़ती है। जो वकील इस परिश्रम और मनोयोग की उपेक्षा करेगा, उसकी वकालत ठप्प होती, आमदनी घटती और इज्जत गिरती चली जायगी।

कुशल प्रोफेसर दूसरे दिन अपना क्लास पढ़ाने के लिए एक दिन पहले तैयारी करते हैं। जो पढ़ाया जाना है, उसके लिए आवश्यक तथ्य ढूँढ़ते और नोट करते हैं। यह सामग्री जितनी अधिक और जितनी उच्चकोटि की होती है, उसी अनुपात से पढ़ने वाले छात्र प्रभावित होते हैं। प्रोफेसर की इज्जत करते हैं और अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होते हैं, यदि तथ्यपूर्ण सामग्री ढूँढ़ने और नोट करने में उपेक्षा की गई और ऐसे ही आधी-अधूरी स्मृति के आधार पर कुछ भी पढ़ाते चलने की सस्ती रीति अपना ली गई, तो फिर उस हरामखोरी को हर एक छात्र ताड़ लेगा। वह सामने कुछ कहे न कहे पर मन में यही सोचता रहेगा कि पढ़ाने के नाम पर लकीर पीटी जा रही है और हमारा समय नष्ट किया जा रहा है।

सुविकसित देशों में प्रायः ४५ मिनट का पूर्ण भाषण माना जाता है। कुशल वक्ता इतने ही समय में इतने तथ्य प्रस्तुत करते हैं, जिससे सुनने वालों को उतना समय खर्च करना सार्थक प्रतीत हो। अपने देश में तो 'ठलुआ' लोग बहुत हैं। कुछ लोग समय काटने एवं कौतूहलवश ही सभा-सम्मेलनों में जा पहुँचते हैं और ऐसे ही ज्यों-त्यों करके सुनते रहते हैं। पर प्रगतिशील देशों में ऐसा नहीं होता। वहाँ हर व्यक्ति व्यस्त है, हर किसी को अपना समय बहुमूल्य प्रतीत होता है। भाषण सुनने को भी लोग कुछ पाने की दृष्टि से ही जाते हैं। वहाँ खुले मैदान में नहीं इसी प्रयोजन के लिए बने हॉलों में प्रवचन की व्यवस्था होती है। उनका किराया देना पड़ता है, फिर वक्ता के अपने समय का, आने-जाने के खर्च का भी प्रश्न है। इस सबकी पूर्ति सुनने वालों को टिकिट खरीद कर करनी पड़ती है। जिस प्रकार अपने यहाँ सिनेमा देखने टिकिट खरीद कर ही जाया जाता है, वहाँ इसी प्रकार प्रवचन व्यवस्था के साथ भी टिकिट का क्रम जुड़ा रहता है। जिसने टिकिट खरीदा है—समय खर्च किया है, उसे उस लागत की तुलना में कुछ अधिक मूल्य की उपलब्धि अपेक्षित होनी ही चाहिए। अस्तु, वहाँ वक्ताओं को पूरी तैयारी करके तथ्यपूर्ण बातें ही कहने जाना पड़ता है और ४५ मिनट की अवधि में इतनी खुराक देनी पड़ती है, जिसे श्रोताओं को संतोष देने वाली कहा जा सके। उसमें तथ्यों की भरमार होती है, जिन्हें जुटाने के लिए वक्ता उतना ही श्रम करते हैं जितना कि उच्च कक्षाओं की परीक्षा देते समय छात्रों को तैयारी करके जाना पड़ता है।

अपने देश में अभी वैसी आवश्यकता नहीं समझी जाती और ऐसे ही अल्पशिक्षित-अनपढ़ लोग कुछ भी बकवास करने सभामंचों पर जा बैठते हैं और सुनने वालों का बहुमूल्य समय नष्ट करते हैं। इससे भाषणों की उपयोगिता पर सन्देह उत्पन्न होता है और लोग उनमें जाना निरर्थक मानने लगते हैं। यह जनता के साथ प्रत्यक्ष अत्याचार है। अपने अहंकार की तृप्ति के लिए दूसरों के समय को बर्बाद करना निश्चित रूप से एक अपराध ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

माना जायगा। भले ही अविकसित लोग वैसा अभी अनुभव न करते हों, पर जब विचारशीलता जागेगी तो उथले वक्ताओं को अपराधियों की श्रेणी में ही रखा जाने लगेगा।

किस सभा में पाँच हजार व्यक्ति उपस्थित हैं। उसमें एक अनपढ़ वक्ता ने एक घण्टा बेतुका भाषण दिया। इसका अर्थ हुआ ५००० लोगों के एक घण्टे की बर्बादी। एक काम का दिन अब आठ घण्टे का नहीं सात घण्टे का गिना जाता है। ५००० को ७ से विभाजित करने से ७१५ दिन हुए। विचारशील लोगों का एक दिन औसतन १५ रुपये का भी गिना जाय तो ७१५ X १५ = १०७२५ अर्थात् लगभग ११ हजार रुपया नष्ट हुआ। वह बकवादी इतना धन अपहरण करने या बरबाद करा देने का अपराधी गिना जा सकता है। फिर कुरुचिपूर्ण, निराशाजनक वातावरण पैदा करके भविष्य में लोगों में उपेक्षा का भाव उत्पन्न कर देना और भी सार्वजनिक हानि है। अस्तु, वक्ता को अपने प्रयास की गम्भीरता और प्रतिक्रिया को समझना चाहिए और व्यास पीठ पर—सभामंच पर बैठने से पूर्व अपने, व्यास स्थिति के अनुरूप ज्ञान एवं कौशल को समुन्नत करना चाहिए।

वक्ता को यह उत्तरदायित्व अनुभव करना चाहिए कि दूसरों का बहुमूल्य समय खर्च कराने के बदले अपना श्रम, समय, मनोयोग भी उपयुक्त मात्रा में दिया जाना चाहिए। पूर्व तैयारी में अध्ययन, चिन्तन आदि में जो श्रम किया जाय, उसे नितान्त आवश्यक ही अनुभव करना चाहिए। दावत का निमन्त्रण देकर जिन लोगों को बुलाया गया, उन्हें ऐसे ही धूल-मिट्टी की बनी मिठाई खिला कर वापस नहीं भेज देना चाहिए। यदि दावत की घोषणा की गई है तो उपयुक्त भोजन का प्रबन्ध करना भी कर्त्तव्य है। वक्ता का उत्तरदायित्व वस्तुतः ऐसा ही है।

नीतिकार का वचन है—"ज्ञानार्जन में तीन आदतें शत्रु के समान हैं—अभ्यास न करना, विद्वान बनने के लिए उतावली बरतना और अहंताग्रस्त होकर अधिक जानने की जिज्ञासा खो बैठना।"

अपने जाने-बूझे विषय को भी पहले की अपेक्षा अधिक परिष्कृत ढंग से बोलने के लिए उसमें नये तथ्य मिलाने और पुरानों को अधिक आकर्षक बनाने में हर बार चेष्टा करनी चाहिए। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के अध्यापक ई. विल्सन एक बार अपना पाठ्य विषय घर पर से तैयार करके न ला सके तो उन्होंने छात्रों के सम्मुख अपनी असमर्थता के लिए दुःख प्रकट करते हुए उस दिन का पाठ पढ़ाया ही नहीं। यद्यपि वे चाहते तो एक दिन का पाठ सामान्य ज्ञान के आधार पर ऐसे ही खींच सकते थे। पर भाषण के साथ जुड़ी हुई अपनी गरिमा का जो मूल्य समझते हैं, वे घिसा-पिटा भोजन, वासी कढ़ी के समान निरर्थक मानते हैं। हर बार नवीनता की नीति ही उन्हें गौरवास्पद लगती है।

सर विश्वेश्वरैया का एक संस्मरण बड़ा प्रेरक है। वे एक बार किसी देहाती क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण सर्वे कार्य के लिए गये। उनकी ख्याति सुनकर वहाँ के प्राथमिक विद्यालय के अध्यापक यह अनुरोध करने पहुँचे कि वे छात्रों के सामने कुछ भाषण कर दें। व्यस्तता की बात समझाते हुए उन्होंने मना भी किया किन्तु अध्यापक लोग विनयपूर्वक आग्रह ही करते रहे। अन्ततः अनुरोध को स्वीकार करके वे कुछ मिनट भाषण के लिए तैयार हो गये। स्थानीय स्कूल में उनका पन्द्रह मिनट भाषण हुआ। छात्रों तथा उपस्थित ग्रामीणों ने इस अनुग्रह के लिए कृतज्ञता एवं प्रसन्नता व्यक्त की।

इस घटना के कुछ ही दिन बाद सर विश्वेश्वरैया का एक पत्र उसी स्कूल के प्रधानाध्यापक के नाम पहुँचा जिसमें लिखा था कि "अमुक तारीख को पुनः छात्रों के सम्मुख उतने ही समय भाषण करने आ रहे हैं। व्यवस्था करने की कृपा करें।"

अध्यापकों को हर्षमिश्रित आश्चर्य हुआ कि इतने बड़े आदमी किसलिए भाषण करने आ रहे हैं। जो हो तैयारी की गई और नियत समय पर वे आ पहुँचे। भाषण उन्होंने पढ़कर सुनाया। जब वे चलने लगे तो अध्यापकों ने इस बार इस प्रकार आने का कारण पूछा-उत्तर में उन्होंने बताया कि "पिछला भाषण बिना तैयारी का था। बिना तैयारी वक्तृता असम्बद्ध होती है। उसमें अनेक त्रुटियाँ रहती हैं। पिछली बार मैंने जल्दबाजी में जो सूझ पड़ा सो कह दिया। पीछे सोचता रहा कि उसमें काफी त्रुटियाँ थीं। त्रुटिपूर्ण कोई भी कार्य करना कर्त्ता की अप्रतिष्ठा है। मैंने सोचा उस भूल का परिमार्जन करूँगा ताकि वैसे आलस्य की आदत न पड़ जाय। यहाँ से जाने के बाद मैंने स्कूली छात्रों का विषय पढ़ा, उसमें से उपयुक्त बातें खोजीं तथा नोट तैयार किये। उन्हें ही सुनाकर पिछली भूल का परिमार्जन करने मुझे दुबारा यहाँ आना पड़ा।"

वस्तुतः यही दृष्टिकोण प्रत्येक उत्तरदायित्व अनुभव करने वाले वक्ता का होना चाहिए। पूर्ण तैयारी किये बिना नहीं बोलना चाहिए। नौटंकी के पात्र अभिनेता अपने आज के अभिनय का पूर्व 'रिहर्सल' उस दिन तक करते रहते हैं, तभी उनका कार्य ठीक तरह निभ पाता है। यदि वे उपेक्षा करें तो वे भूल जायेंगे और उसमें त्रुटियाँ रहने लगेंगी। सभा मंच को भी नाट्य-मंच मानकर चलना चाहिए और उसकी भी पूर्व तैयारी करने में उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

भाषण में जो कहना है, उसके तथ्य क्रमबद्ध रूप में कागज पर नोट कर लेने चाहिए। उस कागज के सहारे स्मरणशक्ति ठीक काम करती है और जो कहना है, वह ठीक तरह कह सकना सम्भव हो जाता है। कई लोग कागज के सहारे अपनी बात कहने में हेठी समझते हैं, पर वस्तुतः ऐसी बात नहीं है। अति महत्त्वपूर्ण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्मेलनों में मूधन्य एवं विशेषज्ञ व्यक्ति अपना भाषण पढ़कर ही सुनाते हैं। स्नातकों को उपाधिपत्र देने के लिए आयोजित दीक्षान्त समारोहों को गणमान्य व्यक्ति ही सम्पन्न करते हैं। उनके प्रवचन प्राय: छपे या लिखे हुए ही होते हैं। राष्ट्रपति और राजनेता अपने प्रामाणिक भाषण पढ़कर ही सुनाते हैं। कालेजों के प्रोफेसर हर दिन घर से अपने पढ़ाने का विषय तैयार करके लाते हैं और नोट्स सामने रखकर उसे क्रमबद्ध रूप से छात्रों को पढ़ाते हैं। इसमें हेठी की कोई बात नहीं। स्मरणशक्ति किसी की भी इतनी नहीं होती कि तैयार किया हुआ प्रवचन याद बना रहे। तैयारी को विस्मृति से बचाने के लिये नोट्स तैयार करने और प्रवचन के समय उसे सामने रख लेने की बात हर दृष्टि से उपयोगी है। यदि फिर भी कुछ झिझक लगे तो वे संक्षेप, संकेत रूप में लिखे नोट्स किसी अखबार—मासिक पत्रिका आदि के ऊपर लगाकर सामने रखे जा सकते हैं। उन पर तिरछी नजर डालकर विषयक्रम को व्यवस्थित रखा जा सकता है।

नोट्स लिखे कागज का सहारा लेना नौसिखिये वक्ताओं के लिए तो नितान्त आवश्यक है। उनके लिए भी उनकी उपयोगिता है, जो अपने हर भाषण में कुछ विशेषता एवं नवीनता लाने के इच्छुक हैं। जिन्हें अपना ज्ञान बढ़ाने और जनता को नई जानकारियाँ, अभिव्यक्तियाँ देने में अपना गौरव होता है, वे सदा पढ़ते और सोचते रहते हैं। जो उपयुक्त लगता है, उसे नोट करते हैं। स्मरणशक्ति इतनी प्रखर कदाचित ही किसी की होती है जो पढ़ी, सोची बातों को सभामंच पर यथाक्रम यथा प्रवाह कहते चला जाय। साधारणतया यह कार्य नोट्स, पर्चा सामने रखकर ही सम्पन्न करना पड़ता है। इस प्रक्रिया को अपनाने में अपनी हेठी नहीं, विशेषता अनुभव की जानी चाहिए।

सरल भाषण की कसौटी

भाषण कला वस्तुत: संभाषण कौशल का ही विकसित रूप है। संभाषण में थोड़े लोग विचार-विनिमय करते हैं। अपनी कहते—दूसरे की सुनते हैं। उसमें शंका-सन्देहों का निराकरण करने और प्रश्नोत्तर का क्रम चलता है। प्रतिक्रिया का पता चलता है, पर यह थोड़े लोगों के ही बीच की चीज है। यदि अधिक लोगों से एक ही समय में एक आदमी को अपनी बात कहनी है तो फिर भाषण की ही शैली अपनानी पड़ेगी। इसमें लाभ यह है कि एक व्यक्ति अनेक लोगों के सामने अपने विचार थोड़े ही समय में एक साथ रख सकता है। हानि यह है कि सुनने वालों पर क्या प्रतिक्रिया हुई, उसने उसे किस रूप में समझा, अपनाया इसका कुछ पता नहीं चल सकता। यों लोगों के एक साथ हँसने—ताली बजाने जैसी प्रतिक्रियाओं को सुनने वालों की प्रसन्नता समझी जा सकती है, ध्वनि से, न सुनने, हिलने, चलने, परस्पर बातें करने लगने जैसे लक्षणों से उपेक्षा और विरोधी नारेबाजी से अप्रसन्नता का कुछ ही लोगों के मन की आधी-अधूरी सांकेतिक प्रतिक्रिया जानी जा सकती है। अधिकांश उपस्थित लोग चुपचाप बैठे रहते हैं, उनके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। वक्ता का श्रम सार्थक हुआ कि नहीं—उसके उद्देश्य की पूर्ति किस मात्रा में हुई—उपस्थित लोगों से क्या आशा की जाय, यह जानना तो संभाषण में ही सम्भव है—भाषण में नहीं। इतना होते हुए भी उसकी महत्ता कम नहीं हो सकती। अधिक लोगों को कम समय में विचार देने के लिए जनसमूह के सम्मुख भाषण देने के अतिरिक्त और कोई सरल उपाय नहीं है।

अपने भाव, इच्छा एवं उद्देश्य से दूसरों को परिचित, प्रभावित करने का सबसे सरल साधन भाषण है। वार्तालाप द्वारा विचार-विनिमय करके परस्पर बहुत कुछ बौद्धिक आदान-प्रदान हो सकता है। एक की जानकारी से दूसरा परिचित हो सकता है। इस प्रकार चिन्तन को नये तथ्य, नये तर्क, नये आधार प्राप्त करने का अवसर मिलता है। इससे भ्रांतियों को दूर करने और वस्तुस्थिति को अधिक अच्छी तरह समझ सकने का अवसर मिलता है।

'नालन्दा शब्द सागर' कोश में वक्तृत्व कला का अन्तर बताते हुए लिखा गया है—"भाषण देने की योग्यता या शक्ति को वक्तृत्व कहते हैं। यदि वह व्यवस्थित और आकर्षक हो, तो वह वक्तृत्व कला कहलाती है। कलात्मक रीति से वक्तृत्व की योग्यता शक्ति व्यवस्था को प्रकट करती है। जिसमें आकर्षण टपकता हो वही वक्ता का प्राण है। निर्जीव वार्ता में प्राण फूँक देना ही कला है। जिसमें भावनात्मक हलचल उत्पन्न होती हो, उभार और उफान आते हों, दिशा मिलती हो और प्रेरणा प्राप्त होती हो वही कलात्मकता है। कलाओं में वक्तृता अग्रणी है। कलाकारों में कुशल वक्ता को मूर्धन्य कलाकार ही कहा जा सकता है।"

जब भी भाषण करना हो तब सभा-पण्डाल में उपस्थित लोगों के स्तर की कल्पना करनी चाहिये और रुचिकर एवं सरल ढंग से क्या कहना, किस प्रकार कहना उपयुक्त होगा, उसका अनुमान लगाना चाहिये। इस परिकल्पना में संयोजनकर्त्ताओं और ऐसे लोगों से जानकारी प्राप्त की जा सकती है, जिनका उस आयोजन में हाथ हो। संभावना की जो अधिक सही कल्पना करा सके, ऐसे लोगों से सम्पर्क हो सकना कुछ कठिन नहीं है। फिर अपनी सूझ-बूझ भी तो काम करती है। उपस्थित जनता के संभावित स्तर के साथ तालमेल बिठाते हुए तथ्यपूर्ण भाषण करने के लिए मनोयोग एवं अध्ययन के साथ तैयारी की जाय, तो ऐसे आधार मिल सकते हैं, जिनसे वक्ता का गौरव बढ़े और सुनने वालों को अपने समय का समुचित प्रतिफल मिल जाय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चों की, वयस्कों की, वृद्धों की, महिलाओं की मन:स्थित भिन्न प्रकार की होती है। उनके समझाते और स्तर का ध्यान रखते हुए प्रवचन का आधार निर्धारित करना चाहिये। बच्चों में जो कहना हो कथा, कहानियों, घटनाओं, चित्रों, उपकरणों के माध्यम से ठीक पड़ेगा। दार्शनिकता तथा तथ्यपूर्ण प्रस्तुतीकरण वे अपने अल्प विकसित मस्तिष्क द्वारा समझ ही नहीं सकेंगे। बच्चों को समझाना तभी सम्भव हो सकता है, जब अपने को उसी स्तर का अनुभव करते हुए, उसी स्थित में समझी जा सकने योग्य शैली अपनायें। युवकों की भावनाएँ भड़काई जा सकती हैं। प्रौढ़ों को तर्क और तथ्य के सहारे किसी बात को समझाया जा सकता है। बूढ़े परम्परावादी हो जाते हैं अत: क्या होता चला आया है? ऐसा इतिहास सुनाकर उन्हें सहमत कर देना अपेक्षाकृत सरल है। अविकसित महिलाओं के विचार घर-परिवार के क्षेत्र तक सीमाबद्ध रहते हैं। उनका, उनके बच्चों तथा उनके पति और परिवार का हित साधन जिस-जिस प्रकार हो सकता है, उसी सीमा के अन्तर्गत जो कुछ कहा जायगा, उन्हें अच्छा लगेगा, उनका मन प्राय: मर्माहत रहता है, अत: सहानुभूति, करुणा उत्पन्न करने वाली घटनाएँ ही उन्हें अधिक प्रभावित करती हैं।

किसी कॉलेज में प्रवचन करना हो तो उपस्थित छात्रों एवं अध्यापकों के अध्ययन-विषय के साथ संगति मिलाते हुए अपनी जो बात कही जायगी, उसे अधिक रुचिपूर्वक सुना जायगा। मेडीकल कॉलेज के छात्रों के सम्मुख यदि शरीर शास्त्र के संदर्भ में उसी क्षेत्र के उदाहरणों को काम में लाते हुए, अपनी बात कह सकना किसी अध्ययनशील वक्ता के लिए सम्भव हो सके तो वह अधिक गहरी छाप छोड़ेगा। यही बात अन्य वर्गों पर लागू होती है। व्यवसायी, शिल्पी, कृषक, श्रमिक, बुद्धिजीवी आदि वर्गों का जहाँ बाहुल्य हो वहाँ उसी स्तर के संदर्भ देते हुए विषय का प्रतिपादन कर सकना वक्ता की विशिष्ट प्रतिभा और विस्तृत ज्ञान का प्रमाण माना जायगा और उसका अधिक प्रभाव पड़ेगा। यों ऐसा कर सकना हर किसी के लिए सरल नहीं है—तो भी यदि भाषण कर्त्ता को अपनी छाप छोड़नी हो तो अध्ययनशील एवं विचारक बनना चाहिए। जिस स्तर के लोगों से उसका वास्ता पड़ता है, उनकी मनोभूमि का अनुमान लगाते हुए विषय प्रतिपादन का ढाँचा खड़ा करना चाहिए। चाहे जिस स्तर के लोगों में—चाहे जो बात, चाहे जिस ढंग से कहने लगना यह सिद्ध करता है कि वक्ता को बौद्धिक आलस्य ने घेर रखा है, वह अपनी अभ्यस्त बात, अभ्यस्त ढंग से कहकर संरलतापूर्वक बेगार भुगता रहा है। एक ही बात अनेकों ढंगों से कही जा सकती है। उसमें संदर्भ, तथ्य, तर्क, प्रमाण, उदाहरण अलग-अलग प्रयुक्त हो सकते हैं। पर वैसा कर वही सकता है, जिसने इस दृष्टिकोण से अध्ययन और चिन्तन किया हो एवं भाषण की तैयारी में पर्याप्त समय एवं मनोयोग लगाया हो।

प्रबुद्ध व्यक्तियों के लिए तर्क और तथ्य प्रस्तुत करते चलना ही ठीक है, पर जनसाधारण के मन में कोई बात उतारने के लिए ऐतिहासिक एवं सामयिक घटनाओं का—कथा-दृष्टान्तों का—संस्मरण-उदाहरणों का समावेश करते चलना अच्छा प्रभावोत्पादक सिद्ध होता है। बौद्धिक प्रतिपादनों को समझने और हृदयंगम करने के लिए श्रोताओं का मस्तिष्क प्रबुद्ध स्तर का होना चाहिए। सामान्य लोग केवल मोटी बातों को ही समझ पाते हैं। बारीकियों को पकड़ सकना उनकी स्थिति से बाहर की बात होती है। ऐसी दशा में प्रतिपादन को रोचक, आकर्षक बनाने के लिए उसके साथ घटनाओं का जोड़ना आवश्यक हो जाता है। यों उन कथाओं-संस्मरणों के कहने में बहुत सा समय चला जाता है पर उस मार्ग को छोड़ कर जनसामान्य को समझाने और तथ्य को गले उतारने का और कोई उपाय है नहीं।

भाषण में ऐसी शब्द रचना का प्रयोग होना चाहिए, जो उपस्थित लोगों के लिए सरल-सुबोध पड़ती हो। कठिन शब्दों का प्रयोग लोग अपने ऊँचे साहित्यिक ज्ञान के कारण—ऊँचे स्तर का वार्तालाप करने या वैसा ही लेखन करने के कारण—करने लग जाते हैं और फिर उन्हीं का सिलसिला भाषण में भी चल पड़ता है। इससे वक्ता के साहित्य ज्ञान की छाप तो पड़ती है पर उनका प्रभाव कम पड़ता है क्योंकि जो सहज-स्वाभाविक नहीं है वह नीचे उतरने में अड़चन उत्पन्न करता है। सुनने वालों का मस्तिष्क जितनी देर में कठिन शब्दों के अर्थों का आभास पाने की चेष्टा करता है, उतनी देर में प्रवाह और आगे बढ़ जाता है। यदि शब्द सरल रहे होते तो उनका अर्थबोध एक झंझट के रूप में सामने न आता और जो बात कही गई है, वह सहज ही गले उतरती चली जाती, मस्तिष्क शब्द-जंजाल की उलझनों में न पड़कर प्रयोजन को सीधे ही हृदयगंम करने लगता। अस्तु विद्वता की छाप छोड़ने के झंझट में न पड़कर शब्द रचना को सरल बनाना चाहिए। बोल-चाल की भाषा का प्रयोग करना चाहिए। जो सहज-स्वाभाविक है, उसी में प्रवाह भी बनता है। प्रवाह का अपना लालित्य है। विचारधारा स्निग्धतापूर्वक बिना रुके, बिना उलझे—अपनी सहज गति से प्रवाहित हो रही हो तो वह भी सुनने वालों को कम आकर्षक नहीं लगती। कहने और सुनने वाले के बीच तादात्म्य मिलाने में यह प्रवाह बहुत ही सहायक होता है।

सुनने वालों के भाषा ज्ञान का अनुमान लगाने की तरह ही उनकी पूर्व मान्यताओं, रुचिकर विषयों एवं चिन्तन के अभ्यस्त स्तरों की भी कुशल वक्ता जानकारी प्राप्त करते हैं और उनके साथ संगति मिलाते हुए अपनी बात का तारतम्य उसके साथ जोड़ते हैं।

जैसे किसी क्षेत्र में धार्मिक चर्चाएँ अधिक होती रही हैं—सुनने वाले रामायण आदि की कथाओं से अधिक परिचित रहे हैं, उनका ज्ञान उसी क्षेत्र में कुछ बढ़ा हुआ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है, तो वक्ता के लिए उचित है कि उन्हीं कथानकों के साथ अपने प्रतिपादन का सिलसिला मिलाते हुए बात को आगे बढ़ाये। सुनने वालों का पूर्व ज्ञान यदि किसी नई दिशा के साथ जुड़ जाय, तो उन्हें प्रतिपादन सहज, स्वाभाविक, प्रामाणिक और हृदयग्राही लगेगा। उसे अधिक अच्छी तरह समझना और अपनाना उनके लिए सरल पड़ेगा। यदि इस प्रकार के लोगों के बीच वही बात राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक पृष्ठभूमि पर कही जायगी, तो सम्भवतः श्रोता उसे कठिनाई से ही समझने तथा अपनाने में समर्थ होंगे।

वह जमाना अब बहुत पीछे छूट गया, जब प्रवचन का साहस केवल आप्त पुरुष ही करते थे—उनका कथन आर्ष वचन माना जाता था। व्यास पीठ पर बैठा हुआ व्यक्ति ऋषि तत्त्व का प्रतिनिधि माना जाता था और उसकी वाणी को शास्त्र प्रमाण समझा जाता था। उन दिनों धर्मोपदेशक वक्ता नहीं निर्देशक होते थे। उनके सुलझे हुए विचार और आदर्श चरित्र सहज श्रद्धा का संचार करते थे। तर्क और विवेक को उन दिनों इतना महत्त्व नहीं मिलता था। श्रद्धा सब कुछ थी। उन दिनों निर्देश की भाषा बोली जाती थी और उपस्थित लोगों को ऐसा करने, ऐसा न करने का आदेश दिया जाता था, जिसे जनता उचित भी समझती थी।

अब स्थिति बदल गई। व्यक्ति के स्थान पर तर्क और तथ्यों को प्रामाणिक ठहरा दिया गया है। व्यक्ति चाहे कितना ही बड़ा विद्वान या धर्मात्मा क्यों न हो, उसके विचार भ्रान्त और अनुपयुक्त हो सकते हैं। मनुष्य त्रुटिपूर्ण और अपूर्ण है। सत्य के अधिकाधिक समीप पहुँचने के लिए अभी हर किसी को प्रयत्न करना चाहिए और यह नहीं मान लेना चाहिए कि हम जैसा सोचते-मानते या कहते हैं, वही अन्तिम है। इसके अतिरिक्त बातें गलत हैं। अब अपने मत को ही सत्य ठहराने वाले और उसी को मानने का आग्रह करने वाले धृष्ट माने जाते हैं और समझा जाता है कि यह दूसरे के विवेक का अपमान हो रहा है। हर व्यक्ति को स्वतन्त्र चिन्तन का और विवेक के सहारे निष्कर्ष पर पहुँचने का अधिकार है। ऐसी दशा में लोक-विवेक को ही अन्तिम निर्णय करने देना चाहिए और फैसले का भार उसी पर छोड़ना चाहिए।

फैसला न्यायाधीश को करना है। वकील अपनी दलीलें देकर न्यायाधीश को उचित निर्णय तक पहुँचने में सहायता भर दे सकता है। कानून ने वकील की मर्यादा इतनी ही सीमित रखी है। इससे आगे बढ़कर यदि वह अदालत को निर्देश देने लगे और ऐसी भाषा कहने लगे जिसका अर्थ अमुक फैसला करने का आग्रह करना या दबाव डालना होता हो तो उसकी यह चेष्टा 'अदालत का अपमान' करने की अपराध संहिता में आ जायगी और वकील दण्डनीय होगा। सभा मंच पर बैठकर कोई वक्ता यदि अपने को न्यायाधीश मान बैठता है और जनता को ऐसा करने ऐसा न करने का निर्देश देता है, तो वह अपनी स्थिति से बाहर निकल जाता है और शिष्टता की मर्यादा का अतिक्रमण करता है। इस युग में वक्ता की स्थिति परामर्शदाता की रह गई है। अब उसके हाथ से निर्णायक के अधिकार वापस ले लिये गये हैं।

अपने तर्कों को इस कुशलता के साथ रखा जाना चाहिए, जिससे सुनने वालों का सहज विवेक वक्ता के पक्ष में ढुलने लगे। अधिक से अधिक न्याय और औचित्य का ध्यान रखकर जनश्रुतियों और अनुपयुक्त प्रचलनों से ऊँचे उठकर, नये सिरे से निष्कर्ष पर पहुँचने की अपील जनता से की जा सकती है और उसकी स्वतन्त्र चेतना को विवेकानुयायी होने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। बस वक्ता का कार्य समाप्त हो गया।

भाषणों को वर्गीकरण की दृष्टि से चार भागों में विभक्त किया जा सकता है—(१) वर्णन प्रधान, (२) विचार प्रधान, (३) समीक्षा प्रधान, (४) भावना प्रधान। यों हर भाषण में इन चारों तथ्यों का न्यूनाधिक समावेश होता है, पर जिसकी प्रधानता रहे, उसे उसी वर्ग में गिनना उचित होगा।

वर्णन प्रधान भाषणों में घटनाओं की चर्चा अधिक मात्रा में विस्तारपूर्वक होती है। उनके आधार पर निष्कर्ष प्रस्तुत किये जाते हैं। इसमें कथानक, दृष्टान्त, संस्मरण, प्रसंग इस प्रकार फिट किये जाते हैं कि सुनने वालों को अपनी बात से सहमत किया जा सके। ऐसे भाषण सरल होते हैं, उसके लिए वक्ता को बहुत अधिक मानसिक श्रम नहीं करना पड़ता। वे रोचक भी होते हैं। बाल-वृद्ध, शिक्षित-अशिक्षित उन्हें भावपूर्वक सुनते हैं। मनोरंजन और उत्सुकता बनी रहने से वे किसी को भाररूप प्रतीत नहीं होते। पर उससे ज्ञान-संवर्धन कम ही होता है। जिन्हें विवेचना में गहराई तक उतरने में रुचि नहीं होती, उनके लिए इस प्रकार की हल्की-फुल्की वक्तृताएँ सरल पड़ती हैं। वे देर तक चलती रहने पर भी वक्ता या श्रोता को थकाती नहीं।

विचार प्रधान भाषणों को छोटे शोध निबन्ध कह सकते हैं। उनमें प्रतिपादित पक्ष के समर्थन में और विपरीत पक्ष के खण्डन में तर्क, तथ्य, प्रमाण, आँकड़े और उदाहरणों का जितना अधिक समावेश होगा, उतने ही वे प्रभावोत्पादक होंगे। यह एक कुशाग्र बुद्धि, अध्ययनशील एवं परिश्रमी वकील द्वारा की गई तैयारी की तरह है। यूनीवर्सिटी से 'डॉक्टरेट' प्राप्त करने वाले छात्र जिस प्रकार अपने निबन्ध से सम्बद्ध सामग्री जुटाने में कुछ कमी नहीं रखते, उसी प्रकार प्रधान भाषणों में सुनने वालों को प्रभावित करने के लिए इतनी अधिक सामग्री जमा करनी पड़ती है कि एक बार तो उससे सहमत होने के अतिरिक्त और कोई चारा ही न रह जाय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समीक्षा-प्रधान भाषण वे हैं, जिसमें किसी दूरस्थ व्यक्ति द्वारा घटनाक्रम के उतार-चढ़ावों की, परिस्थितियों के परिवर्तन की, व्यक्तियों की त्रुटियों और तत्परताओं की चर्चा करते हुए वस्तुस्थिति प्रस्तुत की जाती है। सुनने वाले को पक्ष-विपक्ष की परिस्थितियों से परिचित कराया जाता है और उसे प्रतिपाद्य विषय के सम्बन्ध में आदि से अन्त तक के हेर-फेरों की जानकारी कराई जाती है। यह इतिहासकारों जैसा दृष्टिकोण है—न्यायाधीशों के फैसले भी इसी आधार पर लिखे गये होते हैं। वकील एक ही पक्ष की बातें करते हैं, पर जूरी वैसा नहीं करते हैं। वे दोनों पक्षों द्वारा प्रस्तुत किये गये घटनाचक्र पर विचार करते हैं। किसने कितनी भूल की और उस भूल से दोषी कौन कितना ठहरा, उसी अनुपात से वे दण्ड देने या छोड़ने की सलाह न्यायाधीश को देते हैं। सभी समीक्षात्मक भाषण जूरी के स्तर पर खड़े होकर देने पड़ते हैं और उनमें जनता को न्यायाधीश मानकर उसे किस निर्णय पर पहुँचना चाहिये, इसकी पृष्ठभूमि बनाई जाती है। ऐसे भाषण में वक्ता अपने को निष्पक्ष सिद्ध करता और गुण-दोष की विवेचना करते हुए किसी निर्णय पर पहुँचने की अपनी स्थिति प्रकट करता है, भले ही उसका झुकाव किसी पक्ष विशेष की ओर भीतर ही भीतर क्यों न रहा हो। ऐसे भाषण अपेक्षाकृत कठिन पड़ते हैं। उनका निर्वाह अधिक सूक्ष्मदर्शी होकर सकते हैं।

भावना प्रधान भाषणों में संवेदना को—भावुकता को—आदर्शवादिता को उभारा जाता है। उनमें कवित्व की भूमिका होती है। श्रद्धा, भक्ति, प्रेम, करुणा, संयम, उदारता आदि के पक्ष में तर्क उतने नहीं होते जितनी कि भावनाएँ। आस्तिकता, आध्यात्मिकता एवं धार्मिकता जैसे भावप्रधान विषयों में श्रद्धा एवं भावुक संवेदनाओं का ही बाहुल्य रहता है। तर्क और प्रमाणों के आधार पर भी इन्हें कहा तो जा सकता है, पर भावुकता का पुट चढ़ाये बिना वे बातें आधी-अधूरी, नीरस रहती हैं और तर्क भी अकाट्य नहीं होते। इसलिए कोमल संवेदनाओं को उभार कर ही जनसमुदाय को अपने प्रवाह में बहकाया जा सकता है। कालिदास रचित 'मेघदूत' (संस्कृत काव्य) में भावुक कल्पनाओं की ही भरमार है। छायावादी एवं भावप्रधान कविताओं में यह रस ही प्रधान होता है।

क्रौंच पक्षी का तीर से घायल होना, उसके साथी का विलाप करना—उस क्रन्दन से वाल्मीकि का हृदय पसीजना, उससे करुणा की धार बहना और उस प्रवाह में आदि कवि का कवित्व फूट पड़ना, घटनाक्रम की दृष्टि से सामान्य बात है। पर यदि इतने से प्रसंग में सन्निहित भाव-उभार को प्रस्तुत किया जा सके, तो वह किसी संवेदनशील चित्रकार द्वारा प्रस्तुत किये करुणार्द और रुला देने वाले चित्र से कम मार्मिक नहीं। ऐसी चर्चाएँ करके कुशल वक्ता श्रोताओं को हँसाते, रुलाते और विभिन्न स्तर की अनुभूतियाँ कराते हुए उन्हें अपने साथ बिना पंखों के उड़ा ले जाते हैं और वहाँ ले जाकर खड़ा कर देते हैं, जहाँ पहुँच सकना सामान्य तर्क बुद्धि का काम न था।

यह बुद्धि का नहीं हृदय का खेल है। अभिनय की तरह कुछ अभ्यास कर लिया हो, रट लिया हो तो बात अलग, अन्यथा ऐसे भाषण दे सकना संवेदनशील कवि मानस का ही काम है। भावचित्रों को उभारना और उनमें नयनाभिराम रंग भरना निस्संदेह तार्किक, दार्शनिक से भी अधिक गहरी अन्तःचेतना का काम है। जिनमें ऐसी प्रतिभा होती है, वे जनता की शिथिलता को उत्साह में, उपेक्षा को आक्रोश में, पूर्वाग्रह को नवीनता में, अश्रद्धा को श्रद्धा में और श्रद्धा को अश्रद्धा में बदल देने में सहज ही सफल हो जाते हैं। संसार में उग्र आन्दोलनों का अपना अलग ही इतिहास है। वे जनता को आवेशग्रस्त करके ही सफल बनाये गये हैं। कई बार आवेशों को शान्त करना भी जादू की छड़ी घुमाना जैसा होता है। असहमत जनता का इसी आधार पर सहमत कर सकना संभव होता है। पाकिस्तान की माँग काँग्रेस द्वारा स्वीकृत करा लेने में राजगोपालाचार्य के भाषण ने ऐसी ही जादू की छड़ी घुमाई थी। सरदार भगतसिंह को फाँसी न लगाने का आग्रह देश के समस्त नेताओं ने एक स्वर से किया था। ब्रिटिश सरकार ने उसे न माना। इस उत्तेजना से अँग्रेजों के प्रति भारतीय जनता में अत्यधिक आवेश था और उनके स्वराज्य सम्बन्धी प्रस्ताव को पूर्णतया ठुकरा देने के पक्ष में लोग थे। तो भी गाँधी ने काँग्रेस से वह सहमति का प्रस्ताव पास करा लिया। यह जनमत को उलट देने की अद्भुत सफलता थी। ऐसे अवसरों पर तर्क कम और भावनाओं का उभार मुख्य होता है। भावनाओं के साथ खेलना भाव शक्ति सम्पन्न वक्ता का ही काम है। वह जनमानस पर छा जाने और लोकप्रवाह को अपने साथ बहा ले जाने में अधिक सफल होता है।

उपरोक्त चारों स्तर एक के बाद एक अपेक्षाकृत अधिक कठिन हैं। वर्णनात्मक शैली सबसे सरल है। इसके बाद विचार प्रभावों का वजन है। यों अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए दोनों ही अपनी प्रखरता और जन स्तर को देखते हुए प्रभावोत्पादक होते हैं। समीक्षा के लिए दार्शनिक एवं विवेचनात्मक-विश्लेषणात्मक प्रतिभा चाहिए और सुनने वालों का स्तर न्यायाधीश स्तर पर निष्कर्ष निकाल सकने जैसा होना चाहिए। भावनात्मक भाषणों का निर्वाह जितना स्वाभाविक होगा, उतना ही मार्मिक बनेगा। नाटकीय और असंबद्ध भाव चित्रण बहुत भोंडा हो जाता है। उसके लिए कवि और कलाकार की प्रतिभा चाहिए। पिछले तीन अभ्यास के आधार पर बन पड़ते हैं, श्रम और मनोयोग से वैसे भाषण तैयार किये जा सकते हैं। पर भावुकता का कोई नियम या स्कूल नहीं। उस सम्बन्ध में इतना ही हो सकता है कि भाव प्रधान गद्य-पद्य पढ़े जायें, चित्र देखे जायँ और उस प्रकार के अवसरों पर उपस्थिति होकर कोमल संवेदनाओं को उभारा जाय। इससे थोड़ी मदद तो मिल सकती है। भावाभिव्यक्ति कर सकने वाले शब्दों का चयन हो सकता है। पर विभिन्न घटनाओं या विषयों के साथ किस स्तर की अभिनव संवेदना जोड़

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दी जाय, यह मौलिक प्रतिभा का ही काम है। जिनमें वह तत्त्व हो वे उसे विकसित करने और खरीदने का प्रयत्न जारी रख सकते हैं और कलात्मक प्रवचनों में अभ्यस्त हो सकते हैं।

शरीर का सुडौल गठन, ऊँचा और तीखा कण्ठ-स्वर शब्दों का गठन, तथ्यों और भावों का समावेश, वक्ता की भावतन्मयता आदि विशेषताओं के कारण भाषण प्रभावशाली बनते हैं। इनमें से कुछ बातें ईश्वर प्रदत्त हैं और कुछ प्रयास और अभ्यासजन्य। शरीर का गठन ईश्वर प्रदत्त है, पर उसे शालीनता प्रकट करने की स्थिति में रखना अपने हाथ की बात है। कण्ठ-स्वर की ध्वनि ईश्वर प्रदत्त है, पर उसमें शब्दों का—भावों का और प्रवाह-क्रम का समावेश करना प्रयत्नसाध्य है। उथले और अन्यमनस्क मन से बोलने पर भाषण स्वभावतः घटिया रहेगा। पर जब उसे पूरी तैयारी, अध्ययन और विधि-व्यवस्था के साथ प्रस्तुत किया जायगा और तन्मयतापूर्वक बोला जायगा, तो उसे सहज ही बढ़िया और प्रभावशाली होने का श्रेय मिल जायगा।

भाषण की प्रशंसा इस बात में है कि वह आवश्यकतानुसार सभी प्रकार की संतुलित चर्चाएँ बिना लड़खड़ाए कर सकने में सक्षम हो। आक्रमण, संरक्षण, वर्णनात्मक, भावोद्दीपक, प्रेरक, उत्साहवर्धक, गले उतर सकने वाले तथ्यों से युक्त हो। उसमें कई रसों का समावेश होना चाहिये। असभ्य, असत्य, विवेकहीन, अण्ट सण्ट बोलना वक्तृत्व कला का अपमान है। भाषण अर्थपूर्ण, दिशासूचक, सारगर्भित, साध्य-साधक, सविनय होना चाहिए। उसमें जनमानस में प्रवेश कर सकने की क्षमता रहनी चाहिए। हमें यह पूरी तरह समझ लेना चाहिए कि वक्तृत्व-शक्ति कोई ईश्वरीय देन नहीं है। वह पूर्णतया प्रयत्नसाध्य है, अध्यवसाय और अभ्यास के आधार पर उसे हर कोई उच्चस्तर तक विकसित कर सकता है।

भाषण और भावाभिव्यक्ति का समन्वय

दूसरों को किसी विचारधारा से प्रभावित करना उसी के लिए सम्भव है, जो स्वयं उससे पूरी तरह प्रभावित हो। जिन भले या बुरे व्यक्तियों के अनेकों अनुयाई बन जाते हैं, उनमें से अधिकांश वे होते हैं, जो स्वयं उस विचारों तथा कार्यों में पूरी तरह तन्मय हों। अभीष्ट विचारधारा में तन्मय होने से ही उस प्रकार की क्षमताएँ विकसित होती हैं, उस प्रकार के काम बन पड़ते हैं। कामों में आने वाले अवरोधों से निपटने के उपाय सूझते हैं। तदनुसार उसे सफलता भी मिलती है। तन्मय व्यक्ति ही वस्तुतः प्रभावशाली होता है। आधे-अधूरेपन से सोचने, करने वाला अन्यमनस्क व्यक्ति कुछ कहने लायक सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। यह सारे तथ्य भले ही लोगों ने पढ़े-सुने न हों, पर अन्तःचेतना हर किसी की पूरी तरह अनुभव करती है और उसी का अनुसरण करने की लोगों में इच्छा उत्पन्न होती है, जो तन्मयता की स्थिति प्राप्त करके अपनी आस्थाओं के प्रति गम्भीर होने का प्रमाण प्रस्तुत कर रहा हो। क्या कुमार्गगामी और क्या सन्मार्गगामी दोनों ही प्रकार के लोग प्रभावशाली पाये जाते हैं। वे अनेकों को प्रभावित करते और उन्हें अपना साथी-सहयोगी, अनुगामी बनाते देख गये हैं। इस सफलता के पीछे उनके व्यक्तित्व की वही विशेषता छिपी रहती है, जो विचार और कार्यों को जोड़ती और प्रतिभा बनकर सामने आती है। यह तन्मयता ही का चमत्कार है।

वक्ता को अपने प्रतिपादन में तन्मय होना चाहिए। स्कूली पाठ पढ़ाने की बात दूसरी है। यदि लोगों के मन-मस्तिष्क को मोड़ना है और किसी दिशा विशेष में प्रेरित करना है, तब तो नितान्त आवश्यक है कि मार्गदर्शन करने वाला, नेतृत्व की भूमिका निबाहने वाला वक्ता यह सिद्ध करे कि वह निर्दिष्ट दिशा में चलने के लिए तत्पर है या नहीं ? इसे सिद्ध करने का वास्तविक और प्रामाणिक मार्ग तो यह है कि वक्ता का पिछला एवं अब का क्रियाकलाप उसी प्रकार का रहा हो। सफल मार्गदर्शक वही हुए हैं, जिनकी कथनी और करनी एक रही है। प्रामाणिकता ही सबसे अधिक प्रभावोत्पादक होती है और वह विचार तथा कार्यों का समन्वय करने वाली तन्मयता से ही उत्पन्न होती है। वक्ता का—मार्गदर्शक का स्तर ऐसा ही होना चाहिए।

उपस्थिति जनता को यह जानने की सहज उत्सुकता रहती है कि वक्ता की तन्मयताजन्य प्रामाणिकता कितनी है। उपस्थित जनता में अधिकांश लोग वक्ता के व्यक्तित्व और कर्तृत्व के बारे में से अधिक नहीं जानते। इस अनजानेपन के कारण उनका सुनना एक कौतूहलमात्र हो जाता है। स्कूली अध्यापकों द्वारा छात्रों को दी गई जानकारी पाने जैसा लाभ तो उन्हें मिल जाता है, पर मस्तिष्क और हृदय की गहराई में प्रवेश कर सकने जितनी क्षमता उस वक्तृत्व में नहीं रहती, उसकी कथन शैली कितनी ही आकर्षक क्यों न हो।

इस कठिनाई का एक हल यह है कि भाषण आरम्भ होने से पहले मंच पर उपस्थित सभा-संचालक वक्ता के अब तक के जीवनक्रम पर थोड़ा बहुत प्रकाश डाल कर जनता पर यह छाप डालते हैं कि वक्ता बकवादी नहीं वरन् प्रतिपादित किये जाने वाले विषय के प्रति स्वयं बहुत आस्थावान रहा है। इस परिचय से सुनने वालों में उस स्तर की श्रद्धा उत्पन्न होती है, जिसके आधार पर वे भाषण को ध्यानपूर्वक सुनें और उससे प्रभाव ग्रहण करें।

कठिनाई का दूसरा हल वक्ता को अपनी तन्मयता प्रदर्शित करने के लिए भाषण के साथ-साथ भाव-विभोरता की स्थिति प्रस्तुत करना भी है। यह सहज-स्वाभाविक हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तब तो कहना ही क्या—पर यदि वैसी बात नहीं है तो भी यह आवश्यक है कि इस प्रकार का अभिनय किया जाय और अंग-संचालन के सहारे प्रकट होने वाले भाव-विभोरता को कुशलतापूर्वक व्यक्त किया जाय।

कई बार यह प्रदर्शन कुछ अकुशल लोगों द्वारा ठीक तरह नहीं बन पड़ता और उसमें भौंड़ापन आ जाता है, तो लोग उस नकलीपन को ताड़ जाते हैं। ऐसी दशा में उल्टी प्रतिक्रिया होती है और वक्ता को उपहासास्पद बनना पड़ता है। उसे ढोंगी समझा जाने लगता है। ऐसे ही अवसरों का स्मरण करके लोग 'नेता' को 'अभिनेता' की संज्ञा देने लगते हैं और कहते हैं कि नेता उन्नति करते-करते 'अभि' की उपाधि और अर्जित कर लेते हैं और पूरे 'अभिनेता' बन जाते हैं। अभिनेता अर्थात नट, बहुरूपिया—वस्तुस्थिति से भिन्न प्रकार का प्रदर्शन करने में कुशल अभ्यस्त। इस फूहड़ स्थिति तक पहुँचे बिना वक्ता को पहले से ही यह प्रवीणता प्राप्त करनी चाहिए कि भाषण के समय उसका समग्र व्यक्तित्व भाव-विभोर न सही कम-से-कम तन्मय एवं तरंगित दिखाई पड़ता रहे।

अंग-संचालन और मुद्राओं का प्रदर्शन इस प्रयोजन की पूर्ति करता है। भावों का प्रकटीकरण करने में हमारा चेहरा सबसे अधिक भूमिका निवाहता है। आँखों से, होठों से, भवों से, गालों की माँसपेशियों से, माथे पर पड़ने वाली सलवटों से, गरदन के हिलाने से, कन्धों की हरकत से यह जाना जा सकता है कि कहने वाला व्यक्ति किस भाव-प्रवाह में बहता चला जा रहा है। स्पष्ट है कि जीवन्त विचार शरीर को हरकत में ले आते हैं उससे अनायास ही अपने ढंग की हरकतें होने लगती हैं। क्रोध के आवेश में आये हुए, शोक में भरे हुए, निराशा से खिन्न, हिम्मत हारे हुए, उदास, असह्य क्षति के कारण दुःखित, कातर, असहाय, भयभीत, आतुर आदि विपन्न मनःस्थितियों में निमग्न व्यक्तियों को कुछ कहना नहीं पड़ता, उनके मन में किस स्तर की संवेदनाएँ उठ रही हैं। इसका अधिकांश आभास दूसरों को अनायास ही लग जाता है। कारण तो पूछने-बताने से प्रकट होता है पर मनःस्थिति का, दिशा का बहुत कुछ प्रकटीकरण मुख-मुद्रा देखकर ही हो जाता है। लाभ प्राप्त, सफलता से प्रसन्न, आशान्वित, सुखद कल्याण में निमग्न, आश्वस्त, आशान्वित, संतुष्ट, सम्पन्न, गौरवान्वित मनःस्थित छिपाये नहीं छिपती। कुरूप या रुग्ण व्यक्ति भी यदि इस तरह की मनःस्थिति में हो तो भी उसके चेहरे पर उस तरह की उल्लसित मुद्राएँ नाचती दिखाई देंगी।

वक्ता अपने प्रतिपादित विषय में तन्मय है या नहीं, इसका सहज प्रकटीकरण उसकी मुद्राओं से होने लगता है। आँखें, होंठ, गाल, भवों, मस्तक की त्वचा, गर्दन आदि का संचालन किस भावाभिव्यक्ति से किस प्रकार होता है, इसकी कोई पुस्तक नहीं छपी है और न किसी प्रशिक्षण में वैसा सिखाया जाता है। फिल्मों, नाटकों के अभिनेता और शिक्षकों से वैसा कुछ सीखते तो हैं, पर वह सब उथले दर्जे का होता है। चटकीले रंग के कपड़े बच्चों को शोभा देते हैं। बड़ों के कपड़े रंगे भी हों तो उनका रंग हल्का होना चाहिये। वक्ता को भावाभिव्यक्ति सीखने के लिए अभिनेताओं को मिलने वाला शिक्षण भी कुछ अधिक सहायक नहीं हो सकता। इसलिए इस दिशा में अपनी सहज बुद्धि से काम लेना पड़ता है। फिर हर आकृति और प्रकृति के—मनःस्थिति और परिस्थिति के व्यक्ति को भिन्न-भिन्न प्रकार से अपनी अभिव्यक्ति प्रकट करनी पड़ती है। जिस प्रकार हर मनुष्य की आकृति, आवाज आदि में भिन्नता होती है, उसी प्रकार उसकी भावाभिव्यक्ति मुद्राएँ भी भिन्न प्रकार की होती हैं, सब लोग एक ही ढंग से हँसें या रोयें, क्रोध या प्रसन्नता व्यक्त करें यह नहीं हो सकता है। इसलिए प्रयत्न करने पर भी ऐसा कोई शास्त्र नहीं बन सकता। इस संदर्भ में फोटो छापकर शायद हल्की-सी जानकारी दी जा सके, पर आज तो वैसा भी कुछ उपलब्ध नहीं है। अस्तु, हर वक्ता को शीशे के सहारे भिन्न-भिन्न मुद्राओं के अनुसार चेहरे पर उतार-चढ़ाव लाने—उनके कई प्रकार के प्रयोग करने का अभ्यास स्वयं ही एकान्त कमरे में बहुत दिनों तक करते रहना चाहिए। यदि कोई अत्यन्त विश्वास और भावपारखी मित्र या स्वजन हो तो उसे भी इस प्रदर्शन में उपयुक्त सम्मति देते रहने के लिए साथ लिया जा सकता है, अन्यथा यह कार्य स्वयं ही करना चाहिए। प्रदर्शक और समीक्षक की—अध्यापक और सलाहकार की सारी भूमिका स्वयं ही निवाही जा सके तो उस समय में उपयुक्त मुद्राएँ प्रदर्शित कर सकने में सफलता मिल सकती है।

चेहरे के बाद भाव प्रकटीकरण में हाथों, कन्धों से लेकर कुहनियाँ, कलाइयाँ और अँगुलियाँ उस कार्य में बहुत सहायक होती हैं। निर्देश में अँगुली का इशारा करके वैसा करने के लिए इशारा किया जाता है। समझाने की मुद्रा अध्यापकों द्वारा छात्रों के समझाने में हस्त संचालन को देखकर जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इन्कारी में हाथ खोलकर उसे इस प्रकार हिलाना पड़ता है मानो अस्वीकृति प्रकट की जा रही हो। मुट्ठी बाँधना दृढ़ निश्चय का चिह्न है। भुजदण्डों का स्पर्श लड़ पड़ने की भावाभिव्यक्ति है। इसी प्रकार अन्यान्य भावों को भी कन्धों से लेकर अँगुलियों तक तोड़-मरोड़ों से—उठाने, गिराने, हिलाने से प्रकट किया जाता है। इसके लिए इस कला के निष्णात नेताओं, अभिनेताओं की मुद्राएँ देखकर बहुत कुछ सीखा जा सकता है और नकलची बन्दर की तरह तो नहीं पर अपने ढंग से उसे अपने लिए उपयुक्त रीति से फिट करने का उपक्रम बनाया जा सकता है।

नृत्य में भावाभिव्यक्ति अंग-संचालन द्वारा ही प्रकट की जाती है। पैरों की थिरकन-कटि प्रदेश, वक्ष, गरदन, आँखें, होठ, हाथ, कलाइयाँ, अँगुलियाँ, अंगों के मोड़-तोड़ जैसे क्रियाकलाप मिलकर नृत्य प्रक्रिया सम्पन्न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करते हैं। गायक के साथ अथवा बिना गायक के और मात्र थोड़े से वाद्य यन्त्रों के सहारे नृत्य सम्पन्न होता है। यह अंग-संचालन ही नर्तक की अपनी कुशलता है। उसकी कला का स्तर इसी आधार पर प्रकट होता है। उसे सराहना अभिव्यक्ति को अंग-संचालन के साथ ठीक तरह समन्वित कर सकने की सफलता के कारण ही मिलती है।

यहाँ यह नहीं कहा जा रहा है कि वक्ता को नर्तक की तरह मंच पर जाना चाहिए और वैसी ही उछल-कूद मचानी चाहिए। ऐसा करना तो परले सिरे की मूर्खता का प्रदर्शन होगा। इन पंक्तियों में सिर्फ इतना कहा जा रहा है कि अभिनय कला के सहारे भावाभिव्यक्ति के तथ्यों को सूक्ष्म दृष्टि से देखा-समझा जाना चाहिए और फिर अपने स्तर, व्यक्तित्व, प्रतिपादन, वातावरण, श्रोताओं का रुझान आदि को देखते हुए अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से, सहज चेतना से यह निश्चित करना चाहिए कि कहाँ, कब, किस प्रकार, कितना अंग-संचालन जनमानस को प्रभावित करने के लिए उपयुक्त हो सकता है। इसमें सहज संतुलन बना लेना ही यहाँ बुद्धिमानी एवं सूक्ष्म दृष्टि का चिह्न माना जायेगा।

मुद्राओं के अतिरिक्त वाणी में रस और अलंकारों का समन्वय करते हुए उसे प्रभावोत्पादक बनाया जाता है। समान्य खाद्य पदार्थों को षट्रस व्यंजनों में बदलने को पाक-विद्या कहते हैं। नमक, शक्कर, खटाई, मिर्च, हींग, जीरा, घी आदि के सहारे स्वाद बदले जाते हैं और खाने वालों को मजा इसी रस-सज्जा के आधार पर आता है। कुशल रसोइया जानते हैं कि किस प्रकृति के लोगों को किस प्रकार के व्यंजन बनाकर प्रसन्न किया जा सकता है। दावतों में कई स्वादों के, कई आकृतियों के खाद्य पदार्थ होने से ही सराहा जाता है। तस्वीर बनाने वाले चित्रकार कई रंगों के कई समिश्रण बनाकर आकृतियों को नयनाभिराम बनाते और आकर्षण उत्पन्न करते हैं। यह रंगों का उतार-चढ़ाव ही चित्र में अंकित आकृतियों द्वारा भावाभिव्यक्ति करता है और उसी कसौटी पर चित्रकार—चित्रकार की कला का मूल्यांकन किया जाता है। ठीक यही क्रम वाणी के उतार-चढ़ाव द्वारा भाषण में भावाभिव्यक्ति का प्रकटीकरण करता है। दुःखद दुर्घटना का—आततायी द्वारा किये गये उत्पीड़न का—शत्रु से भिड़ जाने का—उपलब्धियों पर संतोष व्यक्त करने का—सहयोग, अनुदान का—क्षमा और करुणा का, अवांछनीयता के प्रति रोष प्रकट करने का—व्यंग्य-विनोद का सही प्रकटीकरण वाणी के उतार-चढ़ावों के बिना हो ही नहीं सकता। वाद्य-यन्त्रों में स्वर सप्तक बने होते हैं। बजाते समय उनके उतार-चढ़ाव का—कम-व्यतिक्रम का, आरोह-अवरोह का ध्यान रखते हुए ही स्वर लहरी निनादित होती है। वादकों की कलाकारिता इसी कुशलता पर निर्भर है कि वे यन्त्र में बने हुए सप्तकों को किस उतार-चढ़ाव के साथ—किस क्रम विन्यास के साथ बजा सकने में सफल हो सके। सुनने वालों को आनन्द इसी आधार पर आता है और वादक की कुशलता इसी कौशल के कारण मिलती है। अमुक वक्ता की वाणी से अमृत झरता है—अमुक के भाषणों में जादू है—अमुक की वक्तृता मन्त्र-मुग्ध कर देती है, जैसी अभिमत बहुत करके इसी आधार पर सुने जाते हैं कि वह अपने कथन प्रवाह में स्वरों का संतुलित उतार-चढ़ाव प्रस्तुत करके किस प्रकार श्रोताओं के मन को सरसता की अनुभूति करा सका। यह सोचना उचित नहीं कि लोगों का स्तर उथला होता है इसलिए वे केवल हँसी-मजाक, निन्दा-स्तुति, क्रोध-प्रतिशोध, छल-रहस्य, पाप-अपराध जैसे ओछे विषयों में ही रस लेते हैं और उत्कृष्ट विचार-धारा की उपेक्षा करते हैं, उसमें रस नहीं लेते। वस्तुतः ऐसी बात है नहीं। आदर्शों की दिशा में दिये गये उद्बोधन यदि कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किये जा सकें, तो कोई कारण नहीं कि उनका भाव-प्रवाह हृदयस्पर्शी, आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक न हो।

''न तप्त लोहो लोहेन संधीयते''

''बिना गरम किये लोहा लोहे से नहीं जुड़ता।''

भावनाओं की गर्मी पैदा करके मूर्छित लोकमानस को तपाया जाना चाहिए, ताकि उसे आदर्शों के साथ जोड़ा जा सकना सम्भव हो।

सुन्दर और सुडौल होने पर भी अन्यमनस्क मन से हाथ-पैर नचाने वाला नर्तक दर्शकों के मन में गुदगुदी पैदा न कर सकेगा, मधुर स्वर होने पर भी गायक यदि लकड़ी की प्रतिमा की तरह जड़ बना बैठा रहे और ग्रामोफोन के रिकार्ड की तरह समाधिस्थ स्थिति में गाता चला जाय, तो सुनने वालों में से किसी को संतोष न होगा। नर्तक को भावविभोर मनःस्थिति में नृत्य करना चाहिए और जिस गीत पर नृत्य हो रहा है, उसके प्रत्येक चरण के साथ बदलते हुए भावों को प्रकट करने वाली मुख-मुद्रा बनाये रहनी चाहिए। अंगों का संचालन तो उस सूक्ष्म भावानुभूति को अधिक स्थूल रूप में प्रकटीकरण के रूप में प्रस्तुत करने के लिए किये जाते हैं। चेहरे से, आँखों से भिन्न भाव टपक रहा हो और अंग शास्त्रीय नियम के अनुसार हिल-डुल रहे हों, तो नृत्य एक प्रकार से निष्प्राण ही हो जायगा। आनन्द तो भाव और क्रिया दोनों के समन्वय से उत्पन्न होता है।

प्रभावोत्पादक गायन के बारे में भी यही बात है। गायक को अपने गीत में भावविभोर होना चाहिए। जिस स्थान पर जो संवेदनाएँ हैं, उनसे गायक पूरी तरह प्रभावित हो रहा है, उस प्रवाह में बह रहा है, इसे देखकर ही सुनने वाले की आत्मा उल्लसित होती है। स्वर का, गीत का, वाद्य का अपना-अपना स्थान है। गायन की आधी सफलता इन तीनों के मिलाने से बनती है और आधी सफलता इस बात पर निर्भर रहती है कि गायक अपने गीत में किस कदर भाव-विभोर हो रहा था

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और उसकी वाणी, मुखाकृति, भाव-भंगिमा, मुद्रा-विकास से संवेदनाओं का उभार कितनी मात्रा में प्रकट हो रहा था। यह तन्मयता नृत्य एवं गायन की ही नहीं भाषण की भी प्राण है। जो जड़वत् भाव शून्य मुद्रा में बैठा कहता चला जाता है, वह और कुछ भले ही हो, भाव प्रवाह को सरस निर्झरिणी बहाने वाला और उपस्थित लोगों के अन्तःकरण को छूने वाला कलाकार तो निश्चित रूप से नहीं ही है।

वाणी के साथ भावाभिव्यक्तियों का समावेश—संगीत कला, पाक विद्या, चित्रकारिता आदि जैसी एक विशिष्ट कलाकारिता है। यह सहज भी है और कठिन भी। सहज इसलिए कि यदि मनुष्य वस्तुतः वैसी ही मनःस्थिति में हो तो अनायास ही स्वर में वे उतार-चढ़ाव आते रहेंगे, जो श्रोताओं की अन्तःचेतना में उसी प्रकार की हलचलें उत्पन्न कर सकें। कुशल वक्ता अपनी नाव में बिठाकर उपस्थित जनता को अपनी प्रवाह दिशा में ले जाता है। उसकी अनुभूति में एकता-समस्वरता स्थापित हो जाती है और सुनने वाले वही सोचने को विवश हो जाते हैं, जैसा कि भाषणकर्ता सोचता है। यह सफलता विषय की गरिमा की ही नहीं, वक्ता की भावाभिव्यक्ति और कलाकारिता की भी है। वह मुखाकृति अंग-संचालन मुद्राभिनय के आधार पर अपने भाषण को प्राणवान बनाता है। यह सब वे जंजीरें हैं, जिनमें कसी हुई सुनने वालों की विचार शक्ति और भावस्थिति खिंचती चली जाती है। कुशल वक्ता अपने श्रोताओं को वहाँ तक पहुँचा देता है, जहाँ तक पहुँचाने का उसका मनोरथ था। अपने जमाने को बदल देने में, परिस्थितियों को उलट देने में अप्रत्याशित सफलताएँ लोकनायकों ने अपनी वक्तृत्व शक्ति के आधार पर पाई हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने उन विशेषताओं को प्राप्त किया था, जिनकी चर्चा उपयुक्त पंक्तियों में की गई है।

शब्दों में अपनी शक्ति है, पर उनका गठनक्रम सुव्यवस्थित, प्रवाहपूर्ण और लालित्ययुक्त होना चाहिए। औंधे-सीधे, उपयुक्त शब्दों को जोड़-गाँठकर, आधी-अधूरी अभिव्यक्ति ही प्रकट की जा सकती है। कई बार इस प्रकार के कथन उल्टी उलझन उत्पन्न कर देते हैं और सुनने वालों को उलझन में डाल देते हैं। वे वक्ता का सही प्रयोजन समझने तक में गड़बड़ा जाते हैं। ऐसी स्थिति उत्पन्न न होने पाये, इसके लिए शब्दों पर अधिकार होना चाहिए। विषय के अनुरूप उनका गठन और प्रवाह रहना चाहिए। पुस्तक लेखन में जिस प्रकार अमुक लेखकों की शैली बहुत हृदयग्राही होती है और उनकी लिखी वस्तुओं को पढ़ने के लिए लोग लालायित रहते हैं, ठीक उसी प्रकार की स्थिति वक्ताओं की होती है। लेखकों की तरह वे भी अपने शब्द विन्यास में विशाल अध्ययन—प्रवाहक्रम की छाप छोड़ते हैं। यह सब विस्तृत अध्ययन, सूक्ष्म दृष्टि, पैनी पकड़ और उपयुक्त अभ्यास का प्रतिफल है। वक्तृता एक पूरी योग साधना है, उसे प्रखर बनाने के लिए उपरोक्त साधन जुटाने ही पड़ते हैं, कठिन लगे तो उनसे बच निकलने और सहज कुशलता प्राप्त कर लेने का कोई उपाय नहीं है। यह सब अनिवार्य एवं आवश्यक माना जाना चाहिए और कोई अन्य सफल कलाकारों की तरह वक्तृत्व कला में निष्णात होने के लिए भी अत्यन्त तत्परतापूर्वक एकाकी अभ्यास की अनवरत साधना करनी चाहिए। अपने कौशल को अधिकाधिक निखारने के लिए निरन्तर प्रयत्न करना चाहिए।

यह सब सीखने और अभ्यास में उतारने की आवश्यकता इसलिए पड़ती है कि वस्तुतः वक्ता का व्यक्तित्व उस उच्च स्थिति का होता नहीं है कि यह सब कुछ सहज स्वाभाविक रूप से अनायास ही होता रहे। जिसका प्रियजन मर गया है, उसे रोने की कला सिखाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। विछोहजन्य कष्ट की अनुभूति उसी आँखों से आँसू बहाने और चेहरे पर विषाद की भरी-पूरी अभिव्यक्ति प्रस्तुत कर रही होगी। जिसे कोई आशातीत सफलता मिली है, उसे प्रसन्नता व्यक्त करने की मुद्राएँ सिखाना निरर्थक है। वह सब तो वह सहज प्रकट कर रहा होगा। रोना और हँसना तो तब सीखना-सिखाना पड़ेगा जब वस्तुतः वैसा प्रसंग न होने पर भी दूसरों के सामने उस तरह का भाव प्रकट करना पड़े। महामानवों की भावाभिव्यक्तियाँ बालकों जैसी अकृत्रिम—सहज-स्वाभाविक होती हैं। उन्हें इस संदर्भ में कुछ सीखना-सिखाना नहीं पड़ता। जो भीतर है वही बाहर निकलता चला आता है। असली ज्वालामुखी सहज ही आग और धुँआ उगलते रहते हैं। फिल्म खींचने के लिए नकली ज्वालामुखी बनाना हो तो ही यह सतर्कता बरतनी पड़ती है कि कृत्रिम को अकृत्रिम दिखाने में जिस चतुरता की आवश्यकता है, उसमें चूक न होने पावे।

जो हो भावाभिव्यक्तियों का प्रकटीकरण प्रत्येक दशा में आवश्यक है। वस्तुस्थिति सहज हो या कृत्रिम, सुनने वालों को प्रभावित करने के लिए यह जानकारियाँ प्रत्येक वक्ता को रखनी ही चाहिए। हीरा असली हो या नकली उसके पहल बनाना, घिसना और कोण बनाना तो दोनों ही स्थितियों में आवश्यक है। असली सोना-चाँदी होने पर भी उसके आभूषण बनाने में लगभग वही सब करना पड़ता है, जो नकली धातु के जेवर बनाने में। तीव्र बुद्धि और मन्द बुद्धि दोनों को ही शिक्षित बनने के लिए पाठ्य पुस्तकें तो वही पढ़नी पड़ती हैं। अन्तर इतना ही कि स्वस्थ शरीर पर कैसे भी कपड़े फबते हैं और उनका सहज सौन्दर्य स्वयमेव निखरता रहता है। दुर्बल व्यक्ति को सुन्दर बनाने के लिए कुछ अधिक परिश्रम करना पड़ता है। इतने पर भी नंगे फिरने से तो न स्वस्थ व्यक्ति का काम चलता है न अस्वस्थ का। सुयोग्य, कर्मनिष्ठ व्यक्ति भी यदि भाषण कला के नियमों और रहस्यों से अपरिचित, अनभ्यस्त होंगे तो उन्हें अभीष्ट प्रभावोत्पादन में सफलता न मिलेगी। इसके विपरीत इस कौशल में निपुण व्यक्ति कम से कम तत्काल तो बहुत कुछ प्रयोजन सिद्ध कर ही लेंगे।

यहाँ यह कहा जा रहा है कि वक्ता को अपने प्रतिपाद्य विषय में वस्तुतः प्रामाणिक होना चाहिए। उससे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसकी अभिव्यक्तियाँ सहज, स्वाभाविक होंगी और थोड़ी-सी सी खराद कर देने पर वे असली हीरे की तरह जगमगाने लगेंगी। इस दिशा में जितनी कमी होगी, उतनी ही कृत्रिमता, सर्तकता, चिरकालीन अभ्यास की आवश्यकता पड़ेगी। वक्तृत्व कला की सफलता में भावाभिव्यक्तियों की उपयोगिता का ध्यान रखना और अभ्यास करना तो हर हालत में आवश्यक ही माना जायगा।

सभामंच पर जाने से पूर्व इन बातों का ध्यान रखें

आयोजन में उपस्थित लोग केवल श्रोता ही नहीं होते, साथ-साथ ही वे 'दर्शक' भी होते हैं। अक्सर सभा मंच के समीप खिसक कर आ बैठने की चेष्टा लोग करते रहते हैं। लाउडस्पीकर की सहायता से बात दूर बैठकर भी सुन ली जाती है, पर ठीक तरह से देख सकना निकट से ही बन पड़ता है। इसी उत्सुकता की तृप्ति के लिए लोग निकट से वक्ता को देखने के भी इच्छुक रहते हैं। इसे देखने की आकांक्षा के पीछे व्यक्तित्व की परख करने की इच्छा काम करती है। आँखों से देखकर किसी के व्यक्तित्व की एक सीमा तक झाँकी ही प्राप्त की ही जा सकती है।

आकृति की बनावट तो जैसी कुछ भगवान ने बनाई है वैसी ही रहती है। पर आदमी का स्तर बहुत हद तक उसकी भावभंगिमा देखने, हँसने, बात करने, बैठते समय अपनाये गये ढंग से भी व्यक्तित्व के बारे में बहुत कुछ जानकारी प्राप्त हो सकती है। कपड़े कैसे किस ढंग से पहने हैं और अंगों की हरकतें क्या हो रही हैं? यह देखकर लोग बहुत कुछ अनुमान लगा लेते हैं और उसमें बहुत कुछ सही भी होता है।

किसी का ज्ञानवान, बुद्धिमान, धनवान, सत्तावान, गुणवान होना एक बात है और प्रतिभावान, व्यक्तित्ववान होना दूसरी। केवल ज्ञानवान होना ही पर्याप्त नहीं, वक्ता को व्यक्तित्ववान भी होना चाहिए। यह बहुत कुछ मनुष्य की सावधानी-असावधानी से सम्बन्धित है। जिनके स्वाभाव में असावधानी, उपेक्षा, आलस्य और अव्यवस्था होगी, उसके व्यक्तित्व का मूल्य सहज ही बहुत कुछ घट जायगा। इन त्रुटियों का होना भी शिष्टता, चरित्र सम्बन्धी त्रुटि मानी जायगी। चोर-उचक्के ही चरित्रहीन नहीं माने जाते। गंदे, फूहड़, अस्त-व्यस्त, असावधान और आलसी लोग भी किसी कदर चरित्र दोषी ही गिने जाते हैं। सभ्यता और शिष्टता की परिधि में सतर्कता का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है।

मैले-कुचैले, कटे-फटे-बेढंगे, बेतरतीव खुले बटन, कपड़े अपने धारण करने वाले की चुगली करते हैं और परोक्ष रूप में दर्शकों को बताते हैं कि जिन्होंने हमें धारण कर रखा है, वह अस्त-व्यस्त और आलसी प्रकृति का है। उसी ने हमारी ऐसी दुर्गति कर रखी है। सतर्क निर्धन होने पर भी थोड़ा-सा श्रम करके अपने वस्त्रों को स्वच्छ व्यवस्थित कर सकता है। पर जिसे इन बातों का ध्यान ही नहीं वह या तो स्थितप्रज्ञ परमहंस होना चाहिये या फिर फूहड़, असामाजिक। बेढंगी और कुरुचिपूर्ण पोशाक दर्शकों के मन पर बुरा प्रभाव छोड़ती है। वक्ता, नेता या मार्गदर्शक कहा जाता है। ऐसे व्यक्ति से ज्ञानी ही नहीं व्यवस्था और बुद्धि सम्पन्न होने की भी आशा की जाती है। उसमें त्रुटि होने से निराशा होती है।

आँखों में कीचड़ या काजल-सुरमा, नाक के छेद से बाहर झाँकते हुए बड़े-बड़े बाल, बात करते समय दाँत और होठों पर चिपकते हुए थूक के तार, बढ़ी हुई हजामत जैसे चिह्न देखकर सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस व्यक्ति का अपने महत्त्वपूर्ण अंगों की स्वच्छता तक का ध्यान नहीं तो यह और किस काम में व्यवस्थित होगा।

कुछ ऐसे दार्शनिक, कवि, कलाकार हुए हैं जो अपने तरीके से बाल रखाते थे। यह उनकी स्वाभाविक रुचि रही होगी या कलाकारिता। उसी की हूबहू नकल करके-वैसी ही बाल रखाकर कई व्यक्ति स्वयं को उन्हीं की प्रतिमूर्ति सिद्ध करना चाहते हैं। सिनेमा एक्टर जैसा वेष बनाते हैं, सिनेमाबाज भी उसकी नकल उतारने लगते हैं। बीटल और हिप्पियों की विचित्र दार्शनिकता उनके बिखरे और बेतुके बालों के साथ जुड़ गई है। नकली हिप्पी, नकली मजनू की एक्टिंग करने वाले दो कदम और आगे बढ़ जाते हैं। वे भी आँखों को ढकने वाले बाल बखेरे फिरते हैं। अमुक कवि या कलाकार की नकल कई छिछोरे व्यक्ति उनके बालों के आधार पर बनाते देखे गये हैं। स्तर के वक्ता अपने को ऐसा अवधूत बनाकर नहीं चलते। छिछोरापन और बड़प्पन के बीच जो अन्तर होना चाहिए, उन्हें उसकी जानकारी रहती है, तदनुसार वे सतर्कता भी बरतते हैं।

दाँतों से नाखून काटना, बार-बार सिर, पेट, गरदन आदि खुजलाना, जाँघों पर तबला बजाने की तरह थपकी लगाना, कंधे उचकाना, आँखें मिचकाना, मूछें मरोड़ना, नाक या कान में अँगुली डालना, बात-बात में दाँत निकालना, पास बैठे व्यक्ति से बातें करने में उसकी बाहें पकड़ना, झकझोरना, पास रखी चीजों को इधर-उधर करते रहना जैसी हरकतें कई आदमियों की आदतों में सम्मिलित हो जाती हैं। पीछे उन्हें यहाँ तक पता नहीं रहता कि इन बेतुकी आदतों का देखने वालों पर कैसा बुरा प्रभाव पड़ता है और वे उसके व्यक्तित्व को घटिया मान बैठते हैं। ऐसी मान्यता बहुत हद तक सही भी होती है, क्योंकि बेतुकापन एक ऐसी बीमारी है, जो केवल अंगों तक—कपड़ों तक, हरकतों तक सीमित नहीं रहती वरन् मनुष्य को व्यवस्था बुद्धि, चरित्रनिष्ठा, व्यवहार कुशलता, चिन्तन पद्धति एवं प्रामाणिकता तक को प्रभावित करती है। प्रायः इस तरह के व्यक्ति असफल एवं गैर जिम्मेदार देखे जाते हैं। ऐसी हरकतें यदि कोई वक्ता बैठा-बैठा स्टेज पर कर रहा हो तो सुनने के साथ देखने के भी इच्छुक उसके व्यक्तित्व का घटियापन भाँप जायेंगे और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसका भाषण सुनने के पूर्व ही आधी श्रद्धा खो देंगे। आधा मूल्य तो इस प्रकार के बेतुकेपन द्वारा ही नष्ट कर दिया जाता है।

अपने ज्ञान की ही नहीं व्यक्तित्व की छाप भी वक्ता को उपस्थित समुदाय पर छोड़नी चाहिये। अस्तु, उसे अपने शरीर एवं बालों की स्वच्छता, सुव्यवस्था का पहले से ही ध्यान रखना चाहिए। मंच पर जितने समय बैठना है, कम से कम उतने समय तक तो बेतुकी हरकतें नहीं ही करनी चाहिए। अनावश्यक परस्पर वार्तालाप करना, पुस्तक पढ़ने बैठ जाना, इधर-उधर आँखें नचाना-मुँह फाड़कर जँभाई लेना, अँगड़ाई लेना, इशारेबाजी करना मंच-शिष्टाचार के विपरीत है।

शरीर की बनावट या मुखाकृति तो नहीं बदली जा सकती पर उसे थोड़ी सतर्कता बरतने पर प्रभावोत्पादक अवश्य बनाया जा सकता है। वक्ता की बात सुनने ही लोग नहीं आते वरन् उसका व्यक्तित्व भी देखते हैं। यों किसी की प्रतिभा, वरिष्ठता का मूल्यांकन तो उसके गुण, कर्म, स्वभाव का, अब तक के चरित्र एवं कर्तृत्व का परिचय-विश्लेषण करके ही किया जा सकता है, पर उसकी छोटी झलक-झाँकी करा सकने में उसे देखना भी सहायक होता है। यही कारण है कि लोग वक्ता को देखने के लिए मंच के नजदीक बैठना पसन्द करते हैं। पूरा भाषण न भी सुने सकें तो कम से कम 'दर्शन' करके ही कुछ सन्तोष कर लेते हैं। वक्ता जब मंच पर बैठता है और अपनी बात कहना आरम्भ करता है तो सहज ही सभी दर्शकों की आँखें उस पर जा टिकती हैं। कान सुनते हैं और आँखें देखती हैं। इस देखने के साथ-साथ दर्शकों की आँखें वक्ता के व्यक्तित्व में से कोई चीज ढूँढ़ना-खोजना चाहती हैं और उस आधार पर यह जानने का प्रयत्न करती हैं कि आखिर वह है क्या ?

वक्ता को अजनबी की तरह—बोलने की मशीन की तरह मंच पर बिठा देना और उसे अपना प्रवचन शुरू करने का इशारा कर देना अनुपयुक्त है। उसका परिचय दिया जाना चाहिए। वह भी ऐसा जिससे सुनने वालों पर उनके व्यक्तित्व की छाप पड़ती हो और प्रतिपादित विषय पर उसकी विचारणा एवं निष्ठा का उत्साहवर्धक परिचय मिलता हो। उसमें उपस्थित लोगों की उत्सुकता बढ़ जाती है। केवल प्रवचन से ही नहीं प्रवचनकर्त्ता के व्यक्तित्व से भी लोग प्रभाव ग्रहण करते हैं। इसलिए सभा-संचालक को संक्षिप्त किन्तु तथ्यपूर्ण परिचय देकर ही वक्ता से अपनी बात आरम्भ करने का अनुरोध करना चाहिए।

यह कार्य दूसरों का ही है। वक्ता स्वयं अपना परिचय देने लगे और वह भी डींगें हाँकने जैसा, तो इससे उसका मान बढ़ेगा नहीं घटेगा ही। लोग उसे शेखीखोर, अहंकारी आदि मानने लगेंगे इस प्रकार बात बिल्कुल उल्टी हो जाती है। एक सज्जन भाषण के मूल विषय से उतर कर अपनी शेखीखोर पर उतर आये। इतना दान दिया—इतनी संस्थाएँ चलाईं—इतने लोकोपयोगी कार्य किये—इतने विरोधियों को इस प्रकार पछाड़ा आदि बातें जब बढ़ती गईं तो उकताकर एक व्यक्ति उठ खड़ा हुआ—"धन्य हैं महाराज, आप न होते तो इस धरती का भार कौन उठाता !" उपस्थित जन-समुदाय के चेहरों पर एक व्यंग्य भरी मुस्कराहट दौड़ गई और उन्हें लज्जित होकर अपना भाषण वहीं समेटना पड़ा। ऐसी भूलें वक्ताओं को नहीं ही करनी चाहिए। अपने मुँह मियाँ-मिट्ठू बनने के छिछोरेपन का सार्वजनिक भाषणों में तो बचाव करना ही चाहिए।

आत्मश्लाघा—अपने मुँह मियाँमिट्ठू बनना मनुष्य के छिछोरेपन का चिह्न है। अपनी बढ़ाई अपने मुँह शोभा नहीं देती। दूसरे वैसा कुछ कहें तो ही उचित है। ओछे मनुष्य अपना बड़प्पन सिद्ध करने वाली बातों अथवा घटनाओं को बार-बार समय-कुसमय दुहराया करते हैं। वे यह तक भूले जाते हैं कि यही बातें वे पहले भी कई बार सुना चुके हैं और बार-बार उन्हीं बातों के कहने से सुनने वालों पर क्या असर पड़ेगा। अपना अनावश्यक-अप्रासंगिक बखान करना शिष्टाचार का उल्लंघन करना है। इससे प्रकट होता है कि यह मनुष्य दूसरों पर अपने बड़प्पन की छाप डालने के लिए कितना आतुर हो रहा है। यह आतुरता किसी व्यक्ति की शालीनता प्रकट नहीं करती वरन् उसे दूसरों की आँखों में गिराती है। शेखीखोर का उद्देश्य मूर्खों में किसी कदर पूरा होता हो तो बात दूसरी है, विचारशीलों के समक्ष उसकी प्रतिक्रिया खराब ही होती है। आत्मश्लाघ की निन्दा करते हुए शास्त्रकार कहते हैं—

आत्मना न स्तोतव्यः

—चाणक्य सूत्र

"अपनी स्तुति अपने आप मत करो, अपने मुँह मियाँमिट्ठू न बनो।"

पर स्तुत गुणो यस्तु निगुणोपि गुणी भवेत्।

इन्द्रोपि लघुतां याति स्वयं प्रख्यापितैः गुणैः।।

—महाभारत

"दूसरों के मुख से प्रशंसा होने पर निर्गुणी भी गुणी मान लिए जाते हैं, पर अपने मुँह से प्रशंसा करने पर इन्द्र भी लघुता को प्राप्त होता है।"

भाषण कितनी देर लेगा, यह पहले से ही निश्चित रहता है। उतनी ही देर में विषयों का विभाजन इस प्रकार करना चाहिए कि बात ठीक तरह पूरी हो जाय। आवश्यक नहीं कि विचारों को प्रकट करने के लिए लम्बा समय ही लगाया जाय। तथ्यों का समावेश करके महत्त्वपूर्ण वार्ता थोड़े समय में भी पूरी की जा सकती है। बहुत समय बोलना हो और तथ्य थोड़े हों तो कथा-प्रसंगों को मिलाते हुए अपनी बात की पुष्टि में कितने ही घटनाक्रम, संस्मरण जोड़े जा सकते हैं और वक्तृता को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रोचक तथा लम्बी बनाया जा सकता है। ठीक इसी प्रकार तथ्यों को यथाक्रम नपे-तुले शब्दों में प्रस्तुत करते हुए घण्टों की बात मिनटों में कही जा सकती है। यदि वह संक्षिप्तीकरण व्यवस्थापूर्वक और रोचकता को जोड़ते हुए किया जाय तो कम समय में भी अपनी बात भली प्रकार रखी जा सकती है।

महत्त्वपूर्ण आयोजनों में कितने ही वक्ता आमंत्रित किये जा सकते हैं। उनमें सभी को बोलने के लिए समय दिया जाता है। वे लोग यदि घण्टों बोलने की बात सोचें तो फिर एक दो को ही बोलने का अवसर मिलेगा, शेष सबको चुप बैठना पड़ेगा। ऐसी गड़बड़ी उत्पन्न करने वाले—निर्धारित समय से ज्यादा खींचने वाले—अपना गौरव बढ़ाते नहीं घटाते हैं। वक्तृता की क्षमता अधिक होने की छाप छोड़ने के स्थान पर वे व्यवस्था और अनुशासन की अवज्ञा करने वाले अदूरदर्शी ठहराये जाते हैं। विदेशों में ४५ मिनट का पूर्ण भाषण माना जाता है। उनमें इतने तथ्य रहते हैं कि सुनने वालों को अच्छे स्तर की प्रचुर मात्रा में विचार-सामग्री मिल जाती है। यह सामान्य सभाओं की बात हुई। विशिष्ट सम्मेलनों, गोष्ठियों एवं कमेटी मीटिंगों में हर किसी को अपनी बात संक्षेप में ही रखनी पड़ती है। वक्ता की एक विशेषता यह भी है कि जब उसे संक्षेप में कहना पड़े, तो कम समय में ही अपनी बात के हर पक्ष को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत कर सके।

बहुत-सा शब्द-जाल खड़ा करके सुनने वालों को उसमें उलझा देना वक्तृता का गौरव नहीं है। उसकी महत्ता इसमें है कि कम शक्ति खर्च करके सुनने वालों के हृदय में उस सारतत्त्व का प्रवेश करा दिया जाय, जो वक्ता को अभीष्ट है। इसके लिए वार्ता को बहुत लम्बी खींचने की आवश्यकता नहीं है। जितने शब्द बोलने आवश्यक हैं, उतने का ही प्रयोग करके यह उद्देश्य पूरा किया जा सकता है। सारतत्त्व ध्यान में रखकर चलना चाहिए कि हमें श्रोताओं को कहाँ पहुँचाना है—उनको कहाँ ले जाना है। लक्ष्य स्पष्ट होगा तो दिशा भी ठीक रहेगी और चलना भी योजनाबद्ध रहेगा। वक्ता जब बोलने के लिए बोलता है—जो जी में आता है वही कहता चला जाता है, तो बहुत बकझक करने पर भी सुनने वालों को हल्का-सा मनोरंजन और बोलने वालों की उछल-कूद देखने के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता। यह अनुचित है।

बर्क कहते थे—"कम बातें करो—कम लोगों से बातें करो और काम की बातें करो।"

जे. कृष्णमूर्ति ने लिखा है—"कम बोलो—तब बोलो जब यह विश्वास हो जाय कि जो बोलने जा रहे हो उसमें सत्य, न्याय और नम्रता का व्यतिक्रम न होगा।

वाणी में नम्रता, मिठास और मुहब्बत भरने का महत्त्व बताते हुए शेख सादी ने कहा है—"मीठी जबान, मुहब्बत और मुस्कान से बटा हुआ एक धागा उच्छृंखलता के मदमस्त हाथी को जकड़ कर बाँध सकता है।"

कटु और कर्कश शब्दों की भर्त्सना करते हुए 'हदीस' में कहा गया है—"ताने कसने वाला, कर्कश बोलने वाला, दुष्ट प्रकृति का मनुष्य धर्म को नहीं जानता।"

वाणी के संयम और परिष्कार के सम्बन्ध में शास्त्रकारों के कुछ वचन इस प्रकार हैं—

मितं च सार वचो हि वाग्मिता

—नैषध

"थोड़ा और सारयुक्त बोलना ही वाणी का पाण्डित्य है।"

यो मुखा सञ्जतो भिक्खु मन्त भाषी अनुद्धतो।

अत्थं धम्मंच दीपति मधुरं तस्स भासित।

"जो वाणी का संयमी है—मनन करके बोलता है—नम्रतापूर्वक कहता है—भौतिक-आत्मिक लाभ की बात करता है, उसी का भाषण मधुर होता है।"

तास्तुः वाचः सभा योग्या याश्चिताकर्षण क्षमाः।

स्वेषां परेषां विदुषां द्विषां विदुषामपि।।

"सभा में ऐसी परिष्कृत वाणी बोलनी चाहिए जो अपनों को, परायों को, विद्वानों को, अविद्वानों को, यहाँ तक कि शत्रुओं को भी आकर्षक और ध्यान देने योग्य प्रतीत हो।"

जिह्वाग्रे दनं नास्ति तालुश्च भेदनम्।

अर्थस्य च व्ययो नास्ति वचने का दरिद्रता।।

मीठा बोलने में जीभ कटती नहीं, तालु में छेद नहीं होता, धन भी खर्च नहीं होता, फिर मधुर वचन बोलने में दरिद्रता क्यों ?"

शब्दाडम्बर को बहुत बढ़ा देना, छोटी-सी बात का बहुत विस्तार करना, अनावश्यक भूमिका बनाना वक्ता का गुण नहीं दोष है। अब फालतू समय काटने की समस्या नहीं रही, ताकि बैठा-ठाला आदमी निरर्थक गप-शप सुन कर मनोरंजन करता रहे। अब व्यस्तता बढ़ रही है और लोग कम समय में अधिक लाभ प्राप्त करने की दृष्टि रखने लगे हैं। ऐसी दशा में समय की माँग है कि वक्ता अल्पभाषी बनें। जो बात जितने समय में कही जा सकती है, उसे उतने में ही पूरी कर दें। शैतान की आँत की तरह उसे बढ़ाते ही न चलें। अन्य वक्ता भी सभा में बैठे हैं, उनको भी उचित अवसर मिलना न्यायसंगत है। जनता कई व्यक्तियों के विचार सुनना चाहती है। ऐसी दशा में प्रत्येक विवेकवान वक्ता के लिए यही उचित है कि वह सारयुक्त शब्दावली का प्रयोग करके अपने मन्तव्य संक्षेप में किन्तु भली प्रकार स्पष्ट कर दे। वाचाल कहलाने की भर्त्सना के भाजन न बनें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुकरात के पास एक वाचाल युवक भाषण-कला सीखने आया। इसके लिए उन्होंने दूनी फीस माँगी। आश्चर्य से युवक ने पूछा कि मैं तो पहले ही बोलने का अभ्यस्त हूँ, तब भी मुझ से दूनी क्यों ? इस पर सुकरात ने कहा—तुझे बोलना ही नहीं चुप रहना भी सिखाने में दूना श्रम करना पड़ेगा।

नीतिकारों की इस संदर्भ में कही गई कुछ उक्तियाँ बहुत ही मार्मिक और ध्यान देने योग्य हैं—

"जो अधिक जानता है, वह कम बोलता है और जो कम जानता है, वह अधिक बोलता है।"

"शब्द उन पत्तों की तरह हैं, जो अधिक घने होने पर निष्कर्ष रूपी फल को अपनी आड़ में छिपाकर बैठ जाते हैं।"

"जितना ज्यादा बोला जायगा, लोग उसे उतना ही कम स्मरण रखेंगे।"

बहु वचनमल्पसार यः कथयति प्रलापी सः।

"जिसके भाषण में शब्द अधिक हों और सार कम उसे प्रलापी-बकवादी कहते हैं।"

अदक्ष वक्ता अक्सर यह भूल करते रहते हैं कि आरम्भिक भूमिका भाग को अनावश्यक रूप से बढ़ाते चले जाते हैं और जब समय पूरा होने को होता है तो महत्त्वपूर्ण तथ्यों को जल्दी में निबटाते हैं। यह ऐसा ही हो गया जैसे किसी का हाथ बहुत लम्बा और अँगुलियाँ बहुत छोटी हों। समस्वरता और संतुलन बनाने में ही सुन्दरता और कलाकारिता है। दिनचर्या वही बुद्धिमत्तापूर्ण है, जिसमें सभी आवश्यक कामों में महत्त्व और सुविधा की दृष्टि से यथाक्रम रखते हुए सीमित समय को फुर्ती के साथ किया जाता है। छोटे कामों में अधिक समय लगा देने से बड़े कामों के लिए अवकाश न बचेगा। व्यस्त और बुद्धिमान लोग अपने समय का उपयुक्त विभाजन कर दिनचर्या बनाते हैं। समझदार व्यापारी अपनी अर्थ-क्षमता को ध्यान में रखते हुए कारोबार फैलाते और बजट बनाते हैं। कुशल वक्ता को भी अपने भाषण-समय का ठीक इस प्रकार विभाजन करना पड़ता है कि उसमें तथ्यों को उनके महत्त्व की दृष्टि से समय एवं स्थान दिया जाय। जो इन बातों का ध्यान नहीं रखते उनके भाषण असन्तुलित और अव्यवस्थित माने जायेंगे, भले ही सामान्य श्रोताओं को उस भूल का पता न चले।

भाषण की लम्बाई नहीं उसकी सारगर्भिता सराही जाती है। महत्त्वपूर्ण बातें कम समय में भी अच्छी तरह कही जा सकती हैं। जार्ज तृतीय के शासनकाल में इंग्लैण्ड की पार्लियामेण्ट एक महत्त्वपूर्ण बिल पर विचार कर रही थी। समर्थन और विरोध में वातावरण उग्र हो रहा था। वस्तुस्थिति को अच्छी तरह समझाने के लिए लार्ड चैथम से अनुरोध किया गया। वे कुशल वक्ता और सुलझे हुए मस्तिष्क के सदस्य थे। उन्हें एक घण्टा समय दिया गया। इस पर विरोधी पक्ष ने आपत्ति की। प्रतिपक्षी जानते थे कि लार्ड चैथम के विचार बिल के समर्थन में हैं, यदि वे अधिक समय तक बोलेंगे तो उनकी बात गिर जायगी, अतः उन्होंने एक घण्टा समय को बहुत बताया और उसे कम करने पर जोर दिया। अन्ततः लार्ड चैथम ने स्वयं ही कटौती कर दी और पाँच मिनट पर्याप्त बताये। इतने कम समय में ही इतनी सारगर्भित बात उन्होंने कहीं कि सारा विवाद दूर हो गया और प्रतिपक्षी स्वयं सहमत हो गये। बिल सर्वसम्मति से पास हो गया। प्रतिपादन की दक्षता प्राप्त हो तो पन्द्रह मिनट में किसी विषय को बड़ी अच्छी तरह प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रबुद्ध परम्परा के अनुसार तो पैंतालीस मिनट पूर्ण एवं पर्याप्त माने जाते हैं। समय अति मूल्यवान है, वक्ता का ही नहीं श्रोताओं का भी। अनावश्यक अपव्यय हर क्षेत्र में बुरा माना जाता है। भाषण के सन्दर्भ में भी यही बात है। विचारशीलता और व्यस्तता बढ़ने के साथ-साथ भाषणों की लम्बाई घटाने और उनमें तथ्यों की गहराई बढ़ाने पर जोर दिया जाने लगा है। आगे चलकर इसी अनुशासन का पालन कड़ाई के साथ होने लगेगा। वक्तृता का स्तर उठाने के लिए यही उचित और आवश्यक भी है।

कई बार वक्ता को बिना लाउडस्पीकर के ही बोलना पड़ता है। ऐसी दशा में आवाज ऊँची रखनी चाहिए ताकि सब लोग आसानी से पूरी बात सुन सकें। आरम्भ में ही यह देख लेना चाहिए कि लाउडस्पीकर ठीक काम करता है या नहीं। यदि गड़बड़ी हो, उसके ठीक होने तक रुकना चाहिए ताकि बीच में गड़बड़ी उत्पन्न न हो। इसी प्रकार यदि बिना लाउडस्पीकर के बोलना पड़ता है, तो लोगों को लम्बाई की अपेक्षा घेरा बनाकर मंच के आस-पास बैठने को कहना चाहिये और आवाज ऊँची रखकर बोलना चाहिए।

सुनने वाले पूरी बात सुन और समझ सकें, इसके लिए यह आवश्यक है कि उच्चारण स्पष्ट और प्रवाह मध्यम गति का हो। जल्दी-जल्दी बहुत-सी बातें कहने के लोभ में कई वक्ता रेलगाड़ी जैसी दौड़ लगाते हैं। इससे शब्द आपस में उलझते हैं—सुनने वालों का मस्तिष्क उस तेज गति को ठीक तरह पकड़ने, समझने में असमर्थ रहता है। ऐसा कठिनाई उत्पन्न होने न पावे, इसके लिए आवश्यक है कि शब्द प्रवाह में अनावश्यक तेजी न लाई जाय। उच्चारण को स्पष्ट रखा जाय। एक के बाद दूसरा शब्द इस गति से बोले जाने चाहिए कि वे उलझने न पायें और सामान्य मस्तिष्क और सामान्य शिक्षा वालों को भी पूरी बात सुनने-समझने का अवसर मिल जाय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भाषण का स्तर गिरने न दें

विचारों की उपयोगिता का ध्यान रखना वक्ता का पवित्र कर्त्तव्य और महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व है। निस्सार, निरर्थक बातें भी मनोरंजक बनाकर लोगों को सुनाई जा सकती हैं और उस विनोद का रस लेने के लिए श्रोताओं को देर तक रोके रहा जा सकता है। बौद्धिक श्रम से बचने वाले अविकसित मस्तिष्क वालों के लिए तो प्रवचन भी एक मनोरंजन का स्थल ही होता है। वे तभी बैठते हैं जब हल्की-फुल्की—हँसाने, गुदगुदाने वाली सामग्री मिलती रहे। कई वक्ता लोकरंजन में प्रवीणता प्राप्त करते हैं और जनता को देर तक रोके रहने को अपनी लोकप्रियता बताते हैं। सभा-संयोजक भी अक्सर ऐसे ही लोगों को बुलाते हैं। आकर्षण का यह उथला तरीका वस्तुतः विचारशीलता का उपहास है। विदूषकों को बुलाकर—रीछ-बन्दर नचाने अथवा बाजीगरी जैसा खेल दिखाकर बच्चों को इकट्ठा कर लेना और कुछ समय उन्हें हँसाते-गुदगुदाते रहना बाल बुद्धि के सभा-संयोजकों और घटिया वक्ताओं का ही काम है। समय बहुमूल्य है। सभा मंच व्यास पीठ की तरह पवित्र है, वहाँ से मार्गदर्शन और लोकशिक्षण ही होना चाहिए। लोकरंजन नहीं, लोकमंगल वक्ता का लक्ष्य होना चाहिए। उसे विदूषक की नहीं लोकनायक की भूमिका निवाहनी चाहिए और व्यास की श्रद्धास्पद पदवी की गरिमा नष्ट नहीं होने देना चाहिए।

भाषण में आवेश एवं उत्तेजना का दिखाया जाना वक्ता का अच्छा गुण नहीं है। कोई अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण बात हो तो अलग-अन्यथा सीधे, सरल, सौम्य और शालीन ढंग से प्रवाहपूर्ण, ओजस्वी और संतुलित शैली में ही बोलना चाहिए। बात-बात में उत्तेजित होना—आवेशग्रस्त होकर बोलना-विरोध पक्ष के लिए अभद्र एवं अपमानजनक शब्दों का उपयोग करना, यह सिद्ध करता है कि वक्ता शालीनता के स्तर से नीचे उतर आया है। जिनका विरोध करने के लिए आवेश प्रकट किया गया था, उन्हें निरस्त कर सकने या न कर सकने की बात तो बहुत पीछे की है—पर अपने प्रति सुनने वालों में अश्रद्धा पैदा हो जाना तो ऐसी क्षति है जो तुरन्त दिखाई देने लग जाती है। इससे बोलने वाला अपनी प्रभाव डालने की प्रामाणिकता ही खो बैठता है। व्यक्ति का, घटना या प्रवृत्ति का विरोध किया जा सकता है, किया जाना चाहिये, पर उसमें सफलता गाली देने से नहीं मिलेगी। बुराई के कारण लोगों को जो क्षति उठानी पड़ती है, उत्पीड़न सहना पड़ता है, उसका करुणाजनक चित्र इस प्रकार खींचना चाहिए कि सताये गये पक्ष के प्रति गहरी घृणा उत्पन्न हो। यही तरीका है जिससे अपने पक्ष की रक्षा करते हुए प्रतिपक्ष को परास्त किया जा सकता है। अभद्र शब्दों का प्रयोग करने की, क्रोध करने की अपेक्षा यह कहीं अधिक कारगर उपाय है कि अवांछनीयता के द्वारा जो शोषण, उत्पीड़न होता है उसका रोमांचकारी चित्र खींचा जाय और उस अनाचार के प्रति जनता का रोष उभारा जाय।

भाषण में अत्युक्तियाँ नहीं होनी चाहिए। सामान्य बुद्धि वाले भी यथार्थता और बढ़-चढ़कर हाँकी गई गप्पों का अन्तर समझ लेते हैं। तिल को ताड़ बनाने वाले दूसरों को अधिक प्रभावित करने के लिए किये गये अपने प्रयास में प्रायः असफल ही रहते हैं, उन्हें झूठा और बेपर की उड़ानें वाला कहा जाने लगता है।

किसी व्यक्ति विशेष या वर्ग विशेष को दोषी ठहराने की अपेक्षा यह अच्छा है कि उस बुराई पर ही हमला किया जाय, जिसके कारण लोग अनाचारी बनते हैं और अव्यवस्था उत्पन्न करते हैं। पुलिस वाले रिश्वत लेते हैं और अपराधियों को प्रश्रय, प्रोत्साहन देते हैं। यह कहने की अपेक्षा यों कहना अच्छा है कि "रिश्वतखोरी की बुराई उन सरकारी अधिकारियों को भी अपने चंगुल में जकड़ लेती है, जिनके कन्धों पर अपराधों की रोकथाम का उत्तरदायित्व है। रिश्वत ऐसी बुराई है, जिसका चस्का लगने पर रक्षक ही भक्षक बनने लगते हैं और जिनका दमन करना चाहिये उन्हीं को प्रश्रय देने लगते हैं।" इन दोनों कथनों में भारी अन्तर है। एक में पुलिस विभाग को ही भ्रष्टाचारी ठहराया गया था, जबकि उसमें सभी वैसे नहीं होते। इन बेईमानों के कारण उनके साथ भी अन्याय होता है, जो भ्रष्ट नहीं हैं। किसी वर्ग विशेष को पूरी तरह दोषी ठहरा देना अनुचित है। उचित यही है कि उस बुराई पर हमला किया जाय जो अनेकों सरकारी और गैर सरकारी विभागों में गहराई तक जमे जमाये हुए हैं। यहाँ तक कि वोट देने वाले भी रिश्वत लेकर अपना मत देते देखे गये हैं। व्यापक बुराई के लिए उस दुष्प्रवृत्ति के प्रति ही घृणा पैदा की जानी चाहिए। एक छोटे वर्ग तक उसे सीमाबद्ध कर देने में औचित्य कम और आवेश अधिक है। वक्ता को दूरदर्शी और यथार्थवादी होना चाहिए। अनुचित कार्यों की भर्त्सना करते हुए कहीं ऐसा न हो जाय कि औचित्य की मर्यादा का अपनी ही ओर से उल्लंघन होने लगे। वक्ता को निष्पक्ष न्यायाधीश जैसी भूमिका निभानी चाहिए।

किसी वर्ग विशेष पर आक्षेप करना अनुचित है, प्रत्येक वर्ग में भले और बुरे होते हैं। यदि पूरे वर्ग की निन्दा की जाय तो उसकी लपेट में ऐसे लोग भी आ जाते हैं, जो उस वर्ग में होते हुए भी अनौचित्य से बचे हुए हैं। अपना काम ईमानदारी से करते हैं। पूरे वर्ग के लपेटने से इन ईमानदार लोगों को भी बदनाम होना पड़ता है और उनके साथ अन्याय होता है। रिश्वतखोरी, बेईमानी, अनीति, ढोंगबाजी की भरपूर निन्दा की जा सकती है और जो भी वैसा करते हों उन्हें लताड़ा जा सकता है, पर किसी पूरे वर्ग को दोषी ठहरा देना अनुचित है। अनीति का विरोध करते हुए स्वयं अनीति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बरतने लगना यह अनुचित है। रिश्वत लेने के लिए पुलिस वाले बदनाम हैं, झूठी गवाही गढ़ने में वकील प्रवीण हैं, दूध वाले पानी मिलाते हैं—साधुबाबा ढोंगी होते हैं आदि आक्षेप एक हद तक सही हैं। इन वर्गों में से ईमानदारी पूर्णतया समाप्त हो गई है और सभी लोग भ्रष्ट बन गये हैं ऐसा नहीं है। फिर पूरे वर्ग पर आक्षेप कैसे किया जा सकता है। यदि वक्ता ऐसा करता है तो उस वर्ग में से कोई व्यक्ति अपनी मानहानि का दावा अदालत में कर सकता है और वक्ता को दण्ड दिला सकता है।

भाषण में भावों का उतार-चढ़ाव तो होना चाहिए पर असंतुलित आवेश व्यक्त नहीं करना चाहिए। प्रतिपक्ष के लिए गाली-गलौज पर उतर आना—अत्युक्तियों का उपयोग करना, घटना का एकपक्षीय पहलू रखना, अपने पक्ष को बढ़ा-चढ़ाकर कहना जैसी बातें इसलिए की जाती हैं कि जनमत तत्काल अपने पक्ष में हो जायगा, पर वैसा होता नहीं। इस असंतुलन और पक्षपात को देखकर जनता उसकी प्रामाणिकता में संदेह करने लगती है। आवेशग्रस्त और पक्षपाती व्यक्ति अविश्वसनीय माने जाते हैं। उन्हें बहकाने वाला समझा जाता है। ऐसे लोगों के प्रामाणिक तथ्य भी संदिग्ध दृष्टि से ही देखे जाते हैं और सोचा जाता है कि उनमें भी अत्युक्ति तो नहीं बरती गई है। वक्ता को अपनी प्रामाणिकता के प्रति संदेह उत्पन्न न होने देने के लिए संतुलित रहना चाहिए। प्रतिपक्ष की मान्यताओं एवं गतिविधियों का तर्कसंगत, सभ्य, शालीन शैली में निराकरण करना उत्तेजना प्रयोग की अपेक्षा कहीं अधिक स्थाई प्रभाव उत्पन्न करता है।

अप्रामाणिक आँकड़े प्रस्तुत करने की अपेक्षा यह अच्छा है कि उस बात को बिना आँकड़ों के कहा जाय। "भारत में हर दिन दस लाख या एक करोड़ बच्चे जन्म लेते हैं।" ऐसा कहने की अपेक्षा यदि तथ्य सही रूप से मालूम न हो तो इतना ही कहना काफी है कि अपने देश में बच्चों का होना इतनी तेजी से हो रहा है कि जिसके कारण समस्याएँ और उलझनें बेहिसाब बढ़ने की सम्भावना है। किसी सड़क की लम्बाई मालूम न हो या बाँध की लागत के सही अंक विदित न हों तो कुछ भी अंक प्रस्तुत करने लगना बुरा है। जो वास्तविकता को जानते हैं, वे उस कथन को मूर्खतापूर्ण समझेंगे। पीछे वास्तविकता का पता लगाने पर अन्य लोग भी उस बात को गलत ठहरावेंगे। यह वक्ता पर गलतबयानी का आक्षेप है। जो बातें सही मालूम नहीं हैं, उनके सम्बन्ध में गोल शब्दों का प्रयोग करते हुए अपना अभिमत व्यक्त करना चाहिए।

कटु वचन और परामर्शों ने संसार में जितनी विपत्ति उत्पन्न की है, उतनी शायद सब बुराइयाँ मिलकर भी न कर सकी होंगी। बर्क ने यथार्थ ही कहा है—संसार को दुःखमय बनाने वाली विपत्तियाँ अधिकतर दुष्ट शब्दों के कारण ही उत्पन्न होती हैं।" जीसस क्राइस्ट का एक उपदेश है—"सर्प विष से भी अधिक जहरीले कटु वचनों के दाँत अपने साथियों के हृदय में मत घुसाओ। वे उन्हें सहन न कर सकेंगे।" विक्टर ह्यूगो ने एक जगह कहा है कड़वे शब्द इस बात की निशानी है कि वक्ता का तर्क-तरकस खाली हो चुका है। अब वह दिवालिया होकर गाली-गलौज का ओछा हथकंडा अपना रहा है।

जिह्वा यातो वृद्धिं विनाशं। —चाणक्य सूत्र

"जीभ ही उन्नति कराती है और वही विनाश के गर्त में धकेलती है" कहा भी गया है—

"रहिमन जिह्वा बावरी कह गई अकाश पताल।
आपुन कह भीतर गई—जूती खाय कपाल।।"

"रे जिह्वे कुरु मर्यादां वचने भोजने तथा।
वचने प्राण सन्देहो भोजने स्यादजीर्णता।।"

"हे जिह्वा ! बोलने और खाने में मर्यादा बरत। अनुपयुक्त बोलने से प्राण संकट उत्पन्न होता और अमर्यादित खाने से पेट दुःखता है।"

महाभारत रचा देने का—दोनों पक्ष के अगणित योद्धाओं को मृत्यु मुख में धकेल देने का उत्तरदायित्व द्रौपदी के उन कटु शब्दों पर है, जो संख्या की दृष्टि से तो कम थे पर अपमानित करने की दृष्टि से विष बुझे तीर जैसे सिद्ध हुए। उसने कौरवों पर व्यंग्य करते हुए कहा कि 'अन्धों के अन्धे ही होते हैं।' यों इस उच्चारण में अक्षर ९ ही होते हैं, पर वे कितने मर्मभेदी बने इसे हर कोई जानता है। अपमान से क्रुद्ध सर्प की तरह फुसकारते हुए कौरव द्रौपदी को, उसके परिवार को नीचा दिखाने को आतुर हो उठे। प्रतिशोध ने ही उन्हें अड़ियल बनाया। अन्यथा जहाँ तक कुछ भूमि का, धन का सम्बन्ध था, वह बात आसानी से समझौता स्तर पर पहुँच सकती थी। द्रौपदी को जुए में जीतकर उसे भरी सभा में नंगा करने से लेकर पाण्डवों के विनाश के लिए रची गई अनेक दुरभिसंधियों के पीछे प्रतिशोध की ही प्रधान भूमिका थी। उसी ने इतने बड़े जनसमुदाय को, इतनी प्रतिभाओं को भूमिसात करके रख दिया। महाभारत समाप्त होने के बाद मिली विजय और पराजय भी कोई उद्देश्य पूरा न कर सकी। पीछे परिस्थिति और भी उलझती चली गई। इस दुर्भाग्यपूर्ण प्रकरण के पीछे वे कटु शब्द ही अट्टहास करते दिखाई पड़ेंगे, जो द्रौपदी के मुख से जाने या अनजाने निकल गये थे। शब्द की शक्ति प्रचंड है। उनका प्रयोग दुधारी तलवार जैसा है। उससे हित और अनहित इतना बड़ा हो सकता है, जिसे अप्रत्याशित कहा जा सके। इसीलिए मनीषियों ने विचार पूर्वक मुँह खोलने और फूँक-फूँककर वाणी का उपयोग करने का निर्देश दिया है। साथ ही चेतावनी दी है कि अवांछनीय संभाषण अत्यन्त दुःखद हो सकता है। इसी प्रकार नीति ग्रन्थों में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मधुर संभाषण को वशीकरण मंत्र जैसी आकर्षक उपमायें देकर उसके अभ्यस्त होने के लिए कहा गया है।

मर्मभेदी व्यंग्य-आक्षेप, दोषरोपण, कटु भाषण करना वक्ता का दोष है। उससे उसकी असहिष्णुता और उद्धत मनःस्थिति का परिचय मिलता है। लोग समझते हैं कि कटु वचनों का उपयोग करके अथवा प्रतिपक्ष की आवेशपूर्ण भर्त्सना करके सुनने वालों को आसानी से प्रतिपक्ष का विरोधी बनाया जायेगा। पर होता है उससे ठीक उल्टा ही। दो व्यक्तियों की लड़ाई में एक अनाप-शनाप गाली बक रहा हो और दूसरा हाथ जोड़े सिर झुकाये खड़ा हो, तो देखने-सुनने वाले गाली देने वाले को ही दोषी ठहराते हैं। भले ही मूल में उस नम्र व्यक्ति ने ही अक्षम्य अपराध क्यों न किया हो। कटु वचन गाली के बराबर है और उससे पहले हानि अपनी ही होती है। अपना स्तर तत्काल घट जाता है और प्रभाव तथा शक्ति बुरी तरह नष्ट हो जाती है।

निरहंकारी और विनम्र व्यक्ति कटु वचन नहीं बोल सकते। मर्मभेदी शब्द तो उस उद्धत, अहंकारी के मुख ही निकलते हैं, जो दूसरों को तुच्छ समझता है और उनका तिरस्कार करने में नहीं चूकता। कटु वचन न बोले—मीठी बात कहे, यह अभ्यास का विषय नहीं आन्तरिक स्थिति पर निर्भर है। नम्रता अपनाई जाय, निरहंकार बना जाय, अहंमन्यता हटाई जाय और दूसरों का सम्मान करने की सज्जनता अपनाई जाय तो स्वतः ही कटुशब्दों का उच्चारण घटता चला जायगा। जहाँ स्नेह, सौजन्य होगा वहाँ असहिष्णुता दृष्टिगोचर न होगी, लोगों को स्वजन-सुहृद की दृष्टि से देखा जाय, उनके कार्यों में दुष्टता नहीं भूल देखी जाय और उसके लिए दण्डित करने की नहीं, सौम्य सुधार की बात सोची जाय तो जिनसे आये दिन झगड़ा होता रहता है, उनमें भी साधारण वार्तालाप के सहारे तालमेल बिठाया और सद्भाव बनाये रखा जा सकेगा।

आन्तरिक सद्भावना की वृद्धि और कटु-कर्कश भाषण की पुरानी आदत को निरत करने की ठान ली जाय तो वाणी के उद्धत, असंयमी होने का दोष दूर हो सकता है। बोलने से पहले सोचना, थोड़ा नम्र और सारगर्भित बोलना-सामने वाले के सम्मान और अपने सौजन्य की रक्षा करते हुए बोलना, यदि निरन्तर ध्यान में बना रहे तो वाणी सहज ही सुसंस्कृत होती चलेगी। वाणी को अमृत बरसाने वाली और दूसरों का हृदय जीतने वाली इसी मार्ग पर चलाते हुए बनाया जा सकता है। प्रभावशाली वक्ता बनने का ठोस उपाय यही है।

वक्ता का आवश्यक गुण नम्रता बताया गया है। वाणी को परिष्कृत और शैली को माधुर्य और सज्जनता से भरी रखने के लिए कहा गया है। मार्गदर्शक सदा ऐसा ही परामर्श देते रहे हैं—

"हमारी जिह्वा में शहद जैसी मधुरता भरी हो। हम आदि से अन्त तक मधुरता से ओत-प्रोत रहें।"

—अथर्ववेद

"हमारी वाणी पवित्र, ओजमयी और मधुर हो।"

—अथर्ववेद

"वाणी को उच्छृंखल न होने दो। बोलते समय सतर्कता बरतो। इस तरह बोलो जैसे शालीन लोग बोला करते हैं।"

—धम्मपद

भ्रष्टवाणी तन को नष्ट करती है। कटुभाषी निकृष्ट है और शापग्रस्त।

—गुरु ग्रन्थ साहब

दक्षः श्रियमधिगच्छति, पथ्याशी कल्पतां सुखमरोगी।

उद्यमयुक्तो विद्वान्, धर्मार्थं यशांसि च विनीतः॥

—हितोपदेश

"निपुण व्यक्ति संपत्ति पाता है। पथ्य भोजन करने वाला नीरोग रहता है, उद्यमी विद्वान बनते हैं और विनम्र को धर्म, धन, यश प्राप्त होता है।"

शुक्रनीति में कहा गया है—"नम्रता के तीन लक्षण हैं—कड़वी बात का मीठा उत्तर देना—क्रोध आने पर चुप रहना-अपराधी को दण्ड देते समय सहृदयता बरतना।

ऐसी सूक्तियों की कमी नहीं, जिनमें कुछ कहने से पूर्व वाणी को सुसंस्कृत बनाने का ध्यान रखने का परामर्श दिया है, यथा—

नमन्ति फलिना वृक्षा, नमन्ति विबुधा नराः।

"फलवान वृक्ष नमते हैं और बुद्धिमान व्यक्ति भी नम्रता अपनाते हैं।"

अप्रासंगिक, असम्बद्ध बातें कहकर भाषण को दिशाविहीन, लक्ष्यरहित बना देना बहुत बुरा है। प्रायः तथाकथित सत्संगों में बेसिलसिले की असम्बद्ध बातें होती रहती हैं और किसी निष्कर्ष पर न पहुँचाकर ऐसे ही सुनने वालों को हवा में इधर-उधर उड़ते पन्नों की तरह उड़ाती रहती हैं। घर जाते समय वक्ता सोच नहीं पाता है कि उसने क्या कहा, क्या समझाया गया और किस निष्कर्ष पर पहुँचने की प्रेरणा दी गई। ऐसे बिखरे हुए भाषण चाहे जितने रोचक क्यों न हों, लक्ष्य भ्रष्ट होने के दोषी कहलायेंगे। सुनने वालों को क्या प्रेरणा देनी है, उन्हें किस निष्कर्ष पर पहुँचाना है? यह ध्यान में रखते हुए अपने कथन का स्पष्ट लक्ष्य वक्ता के सामने रहना चाहिये और उसी दिशा में क्रमबद्ध रूप से ऐसे तथ्य प्रस्तुत करते रहना चाहिए, जिससे सुनने वाला निर्धारित लक्ष्य तक पहुँच सके। ऐसे लक्ष्ययुक्त और सीमित मर्यादा में अधिक गम्भीर विवेचन करने से ही वक्ता का गौरव बढ़ता है और सुनने वाले का समय सार्थक होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हँसी-मजाक की, इधर-उधर की, बेसिलसिले की—किस्से-कहानियाँ सुनाने से केवल विनोद, मनोरंजन हो सकता है। उससे भाषण की सार्थकता, वक्ता की गरिमा सिद्ध नहीं होती।

भाषण में रोचकता का समावेश रखा जाय पर इसका अर्थ यह नहीं कि भाषण को मसखरी, दिल्लगीबाजी, गपशप मात्र बनाकर उसका स्तर ही समाप्त कर दिया जाय। भाषण मार्गदर्शन एवं अभीष्ट चेतना उत्पन्न करने के लिए किये जाते हैं और वह प्रयोजन सिद्ध न हो सका तब तो सभा को मनोरंजक अभिनय-प्रहसन ही कहा जायगा। अप्रासंगिक दिल्लगीबाजी से सरसता उत्पन्न करना अवांछनीय है। दाल में नमक ठीक है पर नमक में दाल डाल दी जायगी तो उपयोगिता ही नष्ट हो जायगी।

वक्ता को स्पष्टवादी होना आवश्यक है। लोगों की मन-सुहाती बात न कही जा सके, तो सुनने वाले नाराज होंगे इस भय से डरकर अपने मन की बात को छिपाना उचित नहीं। हर आदमी को अपनी आत्मा के सामने सच्चा होना चाहिए और विचारों के प्रति ईमानदार। हर बात हर समय कहने की आवश्यकता नहीं होती पर जब जहाँ जो बात स्पष्ट करनी आवश्यक है, वहाँ उसे इसलिए नहीं दबाया-छिपाया जाना चाहिए कि सुनने वाले उससे असहमत या रुष्ट होंगे। वक्ता का क्रम लोकरंजन नहीं लोकमंगल है। उसे लोगों की रुचि एवं मान्यताओं का समर्थक बनकर नहीं, उन्हें मार्गदर्शन करने वाला होकर चलना चाहिए। इस प्रयोजन के लिए सच्चाई का प्रतिपादन कर सकने की स्पष्टता और निर्भीकता का होना आवश्यक है।

लोग अपनी रूढ़िवादिता को छोड़ने के लिए सहज ही तैयार नहीं होते। सच्ची सीख का सर्वत्र स्वागत ही नहीं होता वरन् आरम्भ में उसका विरोध-निरादर भी होता है। सिसरो का यह कथन बहुत करके ठीक ही है कि—"सच्ची सीख का कदाचित ही स्वागत होता है। जिनको उन विचारों की अत्यधिक आवश्यकता है, आश्चर्य है कि वे ही उनका सबसे अधिक निरादर करते हैं। सुधारकों को पग-पग पर ऐसी असहमति और अवज्ञा का सामना करना पड़ता है। इससे विचलित न होने के लिए परामर्श देते हुए सन्त विनोबा कहते हैं कि जो सुधारक अपने संदेश के अस्वीकृत होने पर क्रोधित हो जाता है, उसे सावधानी, प्रतीक्षा और प्रार्थना की साधना करनी चाहिए।

सभा वा न प्रवेष्टव्या वक्तव्यं नासमंजसम्।

—महाभारत

"सभामंच पर या तो जाये ही नहीं यदि जाय तो अपना मन्तव्य स्पष्ट करे। उलझी-उलझी अण्ट-सण्ट बातें न कहे।"

अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः!

—पंचतन्त्र

"परिणाम में हितकर किन्तु सुनने में अप्रिय लगने वाली बात को कहने और सुनने वाले कोई-कोई ही होते हैं।"

अब्रुवन् विब्रुवन् वापि नरो भवति किल्बषी।

"सभा में अनीति के विरुद्ध न बोलने अथवा अनीति बोलने से मनुष्य पापी बनता है।"

भाषण के आरम्भ में शिष्टाचार व्यक्त करने की एक शालीन परम्परा है। यदि उसे कृत्रिम न बना दिया जाय तो वह सभा-संयोजकों और श्रोताओं के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के साथ जुड़ी हुई आत्मीयता और विनयशीलता को भी व्यक्त करती है।

"मुझे जैसे सामान्य व्यक्ति को अपने सम्मुख विचार व्यक्त करने का अवसर देकर आप लोगों ने मुझे जो सौभाग्य प्रदान किया है, उसके लिए हृदय से कृतज्ञ हूँ। आप जैसे संभ्रान्त लोगों का मार्गदर्शन करना मेरे जैसे व्यक्ति के लिए कठिन है। फिर भी आज्ञा का पालन न करूँ तो यह मेरी धृष्टता होगी।"

इसी प्रकार—"आप लोगों के बीच उपस्थित होने और अपने कुछ निवेदन प्रस्तुत करने की इच्छा बहुत समय से थी। वैसा अवसर देकर आप लोगों ने मुझे जो सौभाग्य प्रदान किया है, उसके लिए सच्चे मन से आभारी हूँ।"

ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के मैनचेस्टर कालेज में एक बार 'सर्व धर्म सम्मेलन' आयोजित किया गया और उसमें सर्वपल्ली राधाकृष्णन् भी आमन्त्रित थे। उन्होंने अपना भाषण आरम्भ करते हुए संयोजक संस्था की सराहना करते हुए कहा—"तुलनात्मक दृष्टि से धर्म-विज्ञान पर विचार करने के लिए आप की संस्था ने जो परम्परा प्रारम्भ की है, उससे मानवीय विवेक को नई दिशा मिली है। आपकी प्रकाशित पुस्तक 'सैक्रेड बुक्स ऑफ दी ईस्ट' ने न जाने कितने लोगों को अभिनव चिन्तन की ओर प्रेरणा दी है। उसी सन्दर्भ में आपके द्वारा आयोजित यह सम्मेलन इस चेतना को और भी आगे बढ़ाता है। अपने महान प्रयत्नों में आपने एक नगण्य समर्थक, सहयोगी मुझे भी मान लिया और कुछ विचार व्यक्त करने का अवसर प्रदान किया। इसे मैं अपना सौभाग्य ही मानूँगा और आप लोगों के प्रति गहरा आभार प्रदर्शित करना चाहूँगा।"

संयोजकों और उपस्थित लोगों की सदाशयता की चर्चा यदि भाषण के आरम्भ में कर दी जाय तो वातावरण में अधिक अनुकूलता आ जाती है।

दैनिक समाचार पत्रों में बहुधा कुछ समाचार लम्बे और विस्तारपूर्वक छपते हैं। सम्पादक उन्हें आरम्भ करने से पूर्व दो-तीन लाइनों में कुछ बड़े अक्षरों में उस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समाचार का सारांश जोड़ देते हैं। जिससे पढ़ने वालों को उस विवरण का पूर्वाभास हो जाता है और वह अपनी रुचि के अनुरूप ध्यानपूर्वक पढ़ता है। यह तरीका भाषण के लिए भी उपयुक्त है। प्रवचन का उद्देश्य एवं सारांश क्या है, यह बताते हुए अपना प्रतिपादन आगे बढ़ाया जाय तो सुनने वालों का मस्तिष्क यह आभास प्राप्त कर लेता है कि उसे क्या सुनने को मिलेगा। यदि ऐसा न किया जायगा तो सुनने वालों का मस्तिष्क उलझन में पड़ा रहेगा और इस निर्णय पर न पहुँच सकेगा कि उसे क्या बताया जा रहा है। किसी को 'स्वाधीनता दिवस' पर बोलने को कहा जाय और वह आरम्भ में महात्मा गाँधी की चर्चा को विस्तारपूर्वक कहते हुए भाषण करने लगे तो सुनने वाले यह अनुमान लगा सकते हैं कि भाषण गाँधी जी के जीवन प्रसंगों पर होने जा रहा है। पीछे जब महात्मा गाँधी और स्वतन्त्रता की और फिर 'स्वाधीनता दिवस' की चर्चा होने लगेगी, तब वह समझा पायेगा कि भाषण गाँधीजी के जीवन चरित्र पर नहीं 'स्वतन्त्रता दिवस' पर हो रहा है। यदि आरम्भ में ही भाषण के स्वरूप का आभास करा दिया जाय तो सुनने वालों के मस्तिष्क को निष्कर्ष के सम्बन्ध में निश्चिन्तता हो जायगी और अनावश्यक ताक-झाँक न करनी पड़ेगी।

ऐसे प्रसंग पर कहा जा सकता है—"स्वतन्त्रता प्राप्ति की महान उपलब्धि पर भारतीय जनता गौरवान्वित हुई है। इससे हमें अपने भाग्य को बनाने-बिगाड़ने का अधिकार मिला है। अपनी योग्यता प्रदर्शित करने और अपने भविष्य निर्माण का अधिकार मिलना बहुत बड़ी बात है। जिन शहीदों और महामानवों की कृपा से हम सब गौरवान्वित हुए हैं, उनको श्रद्धांजलि अर्पित करना हमारा पावन कर्त्तव्य है, जिन महामानवों ने स्वतन्त्रता संग्राम में महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाही, उनमें महात्मा गाँधी का नाम अति आदरपूर्वक लिया जाता है। उनके व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व की चर्चा करना इस अवसर पर अप्रासंगिक न होगा।"

धार्मिक प्रवचनकर्ताओं का उत्तरदायित्व सामान्य वक्ताओं की अपेक्षा कहीं अधिक है। कारण कि उनकी बातों को श्रद्धापूर्वक सुना जाता है और देवता, ऋषि, भगवान, अवतार आदि के चरित्र एवं वचनों की भरमार रहने से भावुक जनता उन पर सहज विश्वास कर लेती है। विचार प्रधान भाषणों में गुण-अवगुण, उचित-अनुचित परखने की छूट रहती है पर धर्म-मंच से जो कहा जा रहा है, वह तो शास्त्र-वचन, देव चरित्र होने के कारण श्रद्धापूर्वक स्वीकार करने योग्य ही माना जायगा। इन प्रसंगों में यदि अनैतिक आचरणों का, अवांछनीय उदाहरणों का समावेश हो तो निश्चय ही उन्हें सुनकर वे दुष्प्रवृत्तियों को अपनाने की प्रेरणा ग्रहण करेंगे।

सफेद कपड़े पर जहाँ धब्बे लगे होते हैं प्राय: वे ही निगाह में आते हैं। लोग गुण कम देखते हैं, अच्छाई कम परखते हैं, दोष ही उनकी पकड़ में पहले आते हैं। सच्चरित्रता के सौ उपदेशों के रहते हुए भी लोग उन बातों को चावपूर्वक सुनेंगे जिनमें अवांछनीय चर्चाएँ हैं। "जब देवता, और ऋषि ऐसा करते रहे हैं, तो हमें वैसा करने में क्या दोष है ?" प्राय: लोगों को बुद्धि इसी दिशा में चलती है। अस्तु, यदि कथा वर्णन में थोड़े भी अनुपयुक्त चरित्र चित्रण रहे हों, तो लोग उनके अलंकार रहस्यों को समझने की अपेक्षा अवांछनीय अनुकरण को अपनाने का ही प्रोत्साहन प्राप्त करेंगे।

कथावाचकों को इस सन्दर्भ में विशेष ध्यान रखना चाहिए। केवल प्रेरक प्रसंग ही कहने चाहिये और ऐसे चरित्र, जिन्हें सर्वसाधारण के लिए प्रेरक न कहा जा सके, उन पर पर्दा ही डाले रहना चाहिए। इस सतर्कता की इस बुद्धिवादी युग में अत्यधिक आवश्यकता है।

प्राचीनकाल की परिस्थितियाँ भिन्न थीं। उस समय के अनेकों प्रचलन अब असामयिक हो गये हैं। विकृतियों के साथ मिलकर वे पूर्व मान्यताएँ अब अन्धविश्वासों, रूढ़ियों और मूढ़-मान्यताओं का रूप धारण कर चुकी हैं। उन्हें अपनाने से किसी का कोई भला नहीं। ऐसे वचनों को अधिक उत्साह के साथ कहना और उन पर जोर देना यह सिद्ध करता है कि वक्ता युग-धर्म नहीं समझता। पशुबलि, सती प्रथा, छुआछूत, माँसहार जैसे अनुपयुक्त प्रसंग यदि कहीं आते भी हैं, तो उनकी चर्चा न करके उन्हीं बातों पर जोर देना चाहिए, जो युग की आवश्यकता पूरी करती हैं और सामाजिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करती हैं। पौराणिक कथा-प्रसंगों का विस्तार आकाश-पाताल जितना है, उनमें से केवल उपयोगी और प्रेरणाप्रद अंश चुनना और उन्हें चरित्रनिष्ठा, समाजनिष्ठा उत्पन्न करने वाली शैली में कहना यह आज के धर्मोपदेशकों के लिए उचित है।

ऐसी विद्वता जिसमें विवेकशीलता का गहरा पुट न हो, जो मात्र लकीर पीटती हो और उचित-अनुचित का भेद न करती हो प्रशंसा के योग्य नहीं। अविवेक विद्वता मूढ़मान्यताओं से ग्रसित हो जाती है और उचित के स्थान पर अनुचित को लोगों के मन में बिठा देती है। आज के धर्म प्रवचन प्राय: ऐसी ही भ्रान्तियाँ और अवांछनीयता उत्पन्न करते हैं, जिनसे अविवेक बढ़ता है और अनाचार को समर्थन मिलता है। ऐसे अविवेकी विद्वानों की शास्त्र ने भर्त्सना की है।

कई बार वक्ता आपस में उलझ पड़ते हैं। विवाह, शादियों, में कन्या और वरपक्ष के पंडित लोग चोंचें लड़ाते हैं। भौंड़े सम्मेलनों में एक ही मंच पर उसी पक्ष के वक्ता अपना बड़प्पन जताने के लिए एक दूसरे का खण्डन करते देखे जाते हैं। यह बहुत ही भद्दा तरीका है। इससे उस मंच और वक्ताओं की प्रतिष्ठा गिरती है।

अपने पक्ष का तथ्यपूर्ण प्रतिपादन ही विरोधी पक्ष की सबसे बड़ी काट है। नाम ले लेकर विरोधियों को गाली देना और उनके प्रतिपादन को अभद्र शब्दों में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दुष्टतापूर्ण सिद्ध करना, वक्ता द्वारा अपने ही पक्ष को दुर्बल सिद्ध करना है। तर्कों को काटना पर्याप्त है। व्यक्ति और वर्ग का उल्लेख किये बिना भी जब भ्रम निवारण हो सकता है, तो उथले तरीके पर क्यों उतरा जाय।

विवाद में पड़ने से हमेशा बचना चाहिये। इससे प्रतिपक्षी को अनावश्यक ख्याति मिलती है। सम्भ्रान्त व्यक्तियों के विरुद्ध विवाद खड़ा करके छोटे लोग कई बार उनके प्रतिपक्षी का समान स्तर प्राप्त करना चाहते हैं। उन्हें उतने सस्ते तरीके से इतना बड़ा लाभ नहीं उठाने देना चाहिए।

अक्सर विवादों का उद्देश्य जिज्ञासा नहीं होती है। जिज्ञासु को सभा में ही विवाद खड़ा करने की आवश्यकता नहीं होती, वरन् वह अवकाश के साथ मिलकर या लिखकर अपना समाधान कर सकते हैं। वितण्डावादी लोगों के प्राय: दो उद्देश्य होते हैं—(१) लोगों की छिन्द्रान्वेषण बुद्धि को भड़काकर वक्ता को नीचे गिराना, (२) अपनी स्पष्टवादिता की छाप लोगों के मन पर जमाकर सस्ते में नामवरी हासिल करना। सदाशयतापूर्ण निराकरण करने वालों के तरीके दूसरे हैं। वे विचार-विनिमय के लिए उपयुक्त समय प्राप्त करते हैं और किसी बात को प्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं बनने देते। सार्वजनिक विवाद खड़ा होते ही प्रतिष्ठा का प्रश्न उपस्थित हो जाता है। कोई अपनी हेठी नहीं चाहता। अत: दोनों ही पक्ष अपनी बात पर अड़ जाते हैं। सही-गलत तर्क और तथ्य प्रस्तुत करके दर्शकों के सामने अपनी प्रतिष्ठा को पक्की करना चाहते हैं। ऐसी दशा में इस वितण्डावाद का परिणाम द्वेष को बढ़ाना और दर्शकों के मन में विभ्रम उत्पन्न करने के सिवाय और कुछ नहीं हो सकता। प्रतिपक्षी तर्कों का, आक्षेपों का अपनी सामान्य भाषण प्रक्रिया में समावेश करके निराकरण करना एक बात है और विवाद में उलझना दूसरी। बुद्धिमानों को विवादकर्ता, वितण्डावादियों की बातों को मजाक या उपेक्षा में डालकर टाल देना ही उचित है।

डिजराइली कहते थे—"तर्कों का उत्तर तो दिया जा सकता है पर विवादकर्ताओं को समझा सकना सम्भव नहीं।"

एलकाट का कथन है—"विवाद तो मूर्ख भी कर सकते हैं, पर संतुलित विचार-विनिमय कर सकना विवेकवान-बुद्धिमानों के लिए ही सम्भव है।"

लेनिन ने एक बार कहा था—"एक मूर्ख एक मिनट में इतने प्रश्न पूछ सकता है, जितने का उत्तर एक दर्जन बुद्धिमान एक दिन में नहीं दे सकते।"

कुछ नीति वचन और भी विचारणीय हैं।

वक्तारो दुर्दरा यत्र तत्र मौनं हि शोभते।

"जहाँ अनर्गल प्रचार करने वालों का बाहुल्य हो, वहाँ बुद्धिमान का चुप रहना ही उचित है।"

परस्पर संवदता खलानां,

मौनं विधेयं सतर्तं सुधीभि:।

"जहाँ उद्धत लोग परस्पर वाद-विवाद में ही उलझे हों, वहाँ बुद्धिमानों का मौन रहना ही ठीक है।

शंका-समाधान के नाम पर भी अक्सर वितण्डावाद ही उठ खड़ा होता है। प्रश्नोत्तर का तरीका किसी जमाने में बहुत अच्छा था। सुकरात उसी शैली को अपनाते थे। पर अब तो वक्ता का, उसके मत का उपहास उड़ाना और उपस्थित लोगों के सामने वक्ता को जलील करना और अज्ञानी ठहराना ही प्रश्नों का प्रयोजन रहता है। लोग सभा के शुरू में या अन्त में खड़े होकर तरह-तरह के प्रश्न पूछते हैं। इनका उद्देश्य वक्ता की काट करना और उसे नीचा दिखाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। ऐसे प्रश्नोत्तरों में वक्ता को अपने मूल विषय से भटक कर शंका-समाधान के जंजाल में फँस जाना पड़ता है और उसके भाषण का लक्ष्य ही नष्ट हो जाता है।

शंका-समाधान एवं प्रश्नोत्तर आमन्त्रण करने का मतलब है, सभा का अन्त विवादास्पद बनाना और श्रोताओं पर पड़ने वाली छाप का बखेरना या नष्ट करना। इसलिए अपनी ओर से इस प्रकार उकसाने की भूल तो करनी ही नहीं चाहिए। पूछने के इच्छुकों को निर्धारित समय पर निवास स्थान पर आने और उत्तर होने की संक्षिप्त सी बात कहकर प्रसंग को टाल देना चाहिए। आज की स्थिति में यही बुद्धिमत्तापूर्ण है। न वाद-विवाद खड़ा होने देना चाहिए और न प्रश्नों का जंजाल। सभा-संयोजकों को इसका पूरा ध्यान रखना चाहिए।

सभा में वाद-विवाद खड़े नहीं होने देने चाहिए और न प्रश्नोत्तर का जंजाल खड़ा करना चाहिए। पुराने जमाने में शास्त्रार्थों की शैली प्रचलित थी। विचार-विनिमय का नाम ही उन दिनों शास्त्रार्थ था। सद्भावनापूर्ण परस्पर विचारों का आदान-प्रदान करना अपने अवांछनीय संशयों का निवारण—दूसरों के योग्य प्रतिपादनों का स्वागत करने की बुद्धि उनमें काम करती थी। हार-जीत का कोई प्रश्न न था। अज्ञान हारता था और ज्ञान जीतता था। मनुष्य सत्य को प्राप्त करने की दिशा में क्रमिक विकास से ही अपनी यात्रा करता हुआ यहाँ तक पहुँचा है। पूर्ण सत्य की प्राप्ति अभी दूर है। जो आरम्भिक दिनों में जाना गया था, उसे मध्यकाल में सुधारना पड़ा। जो मध्यकाल में माना जाता था, उसमें अब परिवर्तन स्वीकार किया जा रहा है। आज की मान्यताएँ भी शाश्वत नहीं हैं। वे भविष्य की ज्ञान चेतना के साथ-साथ आगे-आगे बढ़ेंगी और उनमें क्रमिक सुधार होता चलेगा। इस सुधार प्रक्रिया की गति तीव्र करना और सत्य की शोध में निष्पक्ष विवेक का अधिक उत्साह के साथ प्रयोग करना ही तब शास्त्रार्थ का लक्ष्य था। इसलिए उनकी उपयोगिता भी थी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आज स्थिति वैसी नहीं है। लोगों में पूर्वाग्रह, दुराग्रह का विष कूट-कूटकर भर गया है। हर व्यक्ति अपनी बात को सही और दूसरे की बात को गलत सिद्ध करने पर उतारू रहते हैं। पक्षपात से ऊँचा उठकर यथार्थ चिन्तन कर सकने जैसी विवेक-बुद्धि विदा हो गई है। येन-केन प्रकारेण पक्ष समर्थन और दूसरे को परास्त करना ही लक्ष्य है। विवाद प्रतिष्ठा का प्रश्न बनते हैं। हर कोई स्वीकार नहीं करता। दोनों ही जीत का डंका बजाते हैं, और इस विग्रह में मतभेद दूना और द्वेष चौगुना बढ़ जाता है। अस्तु, विवादों को हम सभा में उपस्थित नहीं होने देना चाहते।

असेम्बलियों में शासक पक्ष और प्रतिपक्ष में झड़पें होती रहती हैं। अदालत में पक्ष और विपक्ष के वकीलों को जोर-शोर से अपने मुवक्किलों की वकालत करते हुए कौतूहलपूर्वक देखा जा सकता है। छात्रों के वाद-विवाद में भी रस लिया जा सकता है। दंगल में पहलवान लड़ते देखे जा सकते हैं। पिछड़े वर्ग के लोगों द्वारा पशु-पक्षियों की कुश्ती लड़ाकर जो भौंड़ा मनोरंजन किया जाता है उसे भी भर्त्सनापूर्ण दृष्टि से देखा जा सकता है। युद्धों के ये स्वरूप रस लेने के लिए पर्याप्त हैं। विद्वानों और मार्गदर्शकों के बीच इस प्रकार के विवाद-युद्ध खड़े करना आज की स्थिति में सर्वथा अवांछनीय है।

आरम्भिक कठिनाई का समाधान

आधी सफलता

प्रवचन का अभ्यास क्रम यह है कि सर्वप्रथम एकाकी, बाद में मित्र-प्रियजनों के साथ, तदुपरान्त परिवार के समूह में, इतना बन पड़ने के बाद बाहर जाने, गोष्ठियों में बोलने एवं मंच संभालने का अभ्यास करना चाहिए। एकाएक बिना तैयारी के मंच पर जा बैठने और बिना पूर्व तैयारी के बोलने लगने पर जब प्रवाह बन नहीं पड़ता तो लगता है कि लोग जाने क्या सोचेंगे ? मूर्ख माना जायेगा और हँसी उड़ेगी। ऐसे विचार मन में आते ही मस्तिष्क उलझन और असमंजस से भर जाता है और जो कुछ सरलतापूर्वक बोला जाता था, वह भी ध्यान से उतर जाता है। इस हड़बड़ी में न बोलते बनता है और न चुप रहते। न चल देने की हिम्मत रहती है और न बैठे रहने की। ऐसी उलझन में फँसे हुए लोग कुछ कहते और पसीना-पसीना होते देखे गये हैं। उस स्थिति में बचने के लिए यही उचित है कि क्रमबद्ध रूप से कइयों के साथ संभाषण या मंच पर बैठकर भाषण करने की तैयारी करनी चाहिए।

वार्तालाप हर कोई कर सकता है। पर उन्हीं के साथ, जिनसे झिझक खुली हुई हो, मैत्री हो। साथ-साथ रहना बन पड़ा हो या घनिष्ठ परिचय हो। संकोच की दीवार ही वार्ता में अड़चन डालती है, जीभ सभी की एक-सी है, न किसी के मुँह में फिसलन है जिस पर जीभ लुढ़कती चली जाए और न किसी के जबड़े में झाड़ियाँ उगी हैं, जो कुछ कहने में रास्ता रोकें। जब मित्र-साथियों के साथ धड़ल्ले के साथ घण्टों बोला जा सकता है, तो कोई कारण नहीं कि उद्देश्यपूर्ण वार्तालाप में कोई कठिनाई आड़े आये। कोई अड़चन आड़े आये। लड़कियाँ अपनी सहेलियों के साथ घण्टों गप-शप करती रहती हैं। लड़के भी पीछे कहाँ रहते हैं। तीसरे प्रहर जब महिलाएँ घर के काम-काज से छुट्टी पाती हैं, तो मिल-बैठकर, न जाने कहाँ-कहाँ की कहनी-अनकहनी बोलती-सुनती रहती हैं। बुड्ढे भी जब समय काटने को बैठते हैं, तो अपने उठते दिनों की कड़वी-मीठी बातें एक-दूसरे के सामने प्रकट करते हुए मन हल्का करते हैं। बस चले तो कोई इस वार्ताक्रम को समाप्त न करे क्योंकि यह भी खेलने की तरह मधुर और आनन्ददायक होता है, इस पर्यवेक्षण से स्पष्ट है कि जीभ की बनावट में, स्वर यंत्र में, कण्ठ की उच्चारण पेशियों में कदाचित ही किसी में ऐसी कमी होती हो, जिसके कारण उसे भाषण या संभाषण में असमर्थता प्रकट करनी पड़े और अपने को इसके लिए अयोग्य मानना पड़े।

इस संदर्भ में अड़चन मात्र मनोवैज्ञानिक है। अजनबी को देखकर छोटे बच्चे अचकचा जाते हैं और सहमकर सुरक्षित स्थान में, अभिभावकों के पास जा छुपते हैं। इसमें वास्तविक कारण कुछ भी नहीं है। न तो आगन्तुक कुछ ऐसा व्यवहार करने वाला है, जिससे बच्चे को डरने की आवश्यकता पड़े और न बच्चे में ही कोई ऐसी कमी है, जिसके कारण आगन्तुक को कुछ उत्तेजित होना पड़े। इस सहज स्वाभाविक मिलन को बहुत से बच्चे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लेते हैं। उसके पास जा पहुँचते हैं। उठाने पर हँसते हुए गोदी में चले जाते हैं। इससे दोनों की प्रसन्नता बढ़ती है। कई बार तो इस मिलन के साथ कुछ उपहार भी मिल जाता है और बच्चा हँसने-हँसाने से लेकर उपहार पाने तक किसी न किसी नफे में ही रहता है। जबकि संकोची बच्चे असमंजस में डूबे, उस उपस्थिति वाले समय में झेंपते-झिझकते इधर-उधर मुँह छिपाते फिरते हैं।

लगभग यही मनःस्थिति बहुत बार बड़े होने पर भी बनी रहती है। विशेषतया भाषण-संभाषण के अवसर पर अभ्यास न होने की स्थिति अजनबी बन जाती है और अकारण असमंजस में डुबो देती है। परीक्षा के समय कमजोर तबियत वाले छात्र उसी तरह घबराते देखे गये हैं। प्रश्न वही है जिन्हें साल भर तक पुस्तकों में पढ़ा है। छपे पर्चों में कोई ऐसी बात नहीं है, जो पढ़ी-समझी न जा सके। सामान्य स्थिति में उन पूछे गये प्रश्नों के उत्तर साथियों को फटाफट बताये जा सकते थे। किन्तु परीक्षा हॉल में प्रवेश करने पर यह स्वनिर्मित भयानकता भूत-पलीत जैसे डरावनी बनकर सिर पर आ चढ़ती है और सारे होश-हवास गायब कर देती है। फलतः प्रश्नपत्र हल करते समय परीक्षार्थी उसका आधा-तिहाई ही लिख

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पाता है, जितना कि होश-हवास सही रहने पर संचित जानकारी के आधार पर बिना किसी अड़चन के लिख सकता था।

अँधेरे की तरह अनभ्यास की स्थिति भी डरावनी होती है। प्रवास में आमतौर से इतनी कठिनाई नहीं होती है, जितनी कि सोची जाती है और हैरानी बनकर मन को असमंजस में डाले रहती है। कइयों के लिए यह खेल होता है। ट्रेवेलिंग एजेण्ट का काम करने वालों के लिए प्रवास एक नितान्त सरल-स्वाभाविक प्रक्रिया है। सफर करने, ठहरने, दैनिक आवश्यकताएँ पूरी करने से लेकर ग्राहक तलाश करने और ऑर्डर इकट्ठे करने में उन्हें तनिक भी कठिनाई प्रतीत नहीं होती है। लम्बी जिन्दगी इसी धंधे में गुजार देते हैं। दूसरा काम बताने पर कहते हैं ,'ऐसी मजेदारी अन्यत्र कहाँ मिलेगी' एक ओर इतनी प्रसन्नता, दूसरी ओर प्रवास की कठिनाई के बारे में सोचते-सोचते हैरान हो जाना, साथी के बिना काम चलते न दीखना, यह बताता है कि प्रवास न तो उतना मजेदार है और न उतना कठिन, जितना कि दो भिन्न प्रकृति के व्यक्ति उसे मान बैठते हैं।

मुख्य कठिनाई अनभ्यास की है। अजनबी डरावना होता तो नहीं पर वैसा लगता है। अँधेरा डरावना लगता है। इसमें आशंकाएँ उठती रहती हैं। जबकि चोर-उचक्के अँधेरे की ही प्रतीक्षा करते रहते हैं और इसी में छिपते-बैठते घात लगाते हैं। अँधेरा-उजाला अपने मन की बनावट से ही भला-बुरा लगता है। कइयों को कमरे में बत्ती जलाकर ही सोते बनता है। कई अँधेरे में ही नींद आने की बात कहते हैं। इसे मनःस्थिति की भिन्नता ही कहना चाहिए। अनभ्यस्त होने, अँधेरे की परिस्थितियों से परिचित न होने के कारण ही डर लगता है, कोल-भील अलग झोपड़ियाँ डालकर बीहड़ वन्य प्रदेशों में रहने के अभ्यस्त होते हैं। उन्हें गाँव बसाकर एक साथ रहने में बुरा लगता है जबकि कितने ही व्यक्ति जनसंकुल घर-मुहल्ले में रहते हुए ही सुरक्षा का अनुभव करते हैं।

उपरोक्त उदाहरणों से यह बताने का प्रयत्न किया गया कि भाषण-संभाषण न कठिन है न सरल। उसी बात को यों भी कहा जा सकता है कि वह सरल भी है और कठिन भी। सरल उनके लिये जो अपरिचित लोगों के बीच जाकर भी किसी भय या विपत्ति की आशंका नहीं करते, कठिन उनके लिए जो प्रसंग आने पर अपनी अक्षमता और दूसरों द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली अग्नि परीक्षा का काल्पनिक डर खड़ा करते हैं और उस अपडर के कारण होश-हवास गँवा बैठते हैं। जिन्हें बोलने का अभ्यास है, वे परिचित के साथ वार्तालाप की तरह ही अजनबी लोगों के साथ अपने विचार धड़ल्ले के साथ प्रकट करते हैं। सड़कों के किनारे मजमा लगाकर माल बेचने और पैसा माँगने वाले मदारी स्तर के लोग जहाँ-तहाँ खड़े देखे जा सकते हैं। कुछ कहना शुरू करते हैं, उनकी आवाज में कड़क और चमक देखकर रास्ते चलते लोग खड़े हो जाते हैं। देखते-देखते भीड़ का घेरा बँधता है और घन्धेबाजी चल पड़ती है। भीड़ का हर व्यक्ति अजनबी था फिर भी मदारियों को उनके सामने बोलते रहने में वैसा ही स्वाभाविक लगता है जैसा कि यार-दोस्तों में गपबाजी का माहौल घण्टों चलता रहता है।

भाषण कला में प्रवीणता प्राप्त करने की आधी मंजिल तब पूरी हो जाती है, जब इच्छुक का अपडर उसके मन से किसी न किसी प्रकार निकल जाये, जिसमें वह सोचता है कि "उसमें वैसी योग्यता है नहीं, उसके भाग्य में यह बदा नहीं है। इस कला में कोई बिरले ही प्रवीण हो सकते हैं," आदि-आदि। यह मिथ्या कल्पनाएँ आत्महीनता की प्रतीक हैं। अन्य क्षेत्रों में यह ग्रन्थि प्रगति का रास्ता रोकती है। संकोची, डरपोक प्रकृति के शंकाशील व्यक्ति अड़चनों, असफलताओं की बात सोचते और अवसर टालते रहते हैं। अनिश्चय की स्थिति में समय गुजर जाता है। साथी बढ़ जाते हैं और वे हाथ मलते रह जाते हैं।

यही आत्महीनता वक्तृता के क्षेत्र में मिलने वाली सफलता का द्वार रोकती है। साहस बाजी मारता है। साधन सम्पन्न जो काम नहीं कर पाते, उसे साहसी, साधनहीन स्थिति में भी आत्मविश्वास, सूझ-बूझ और क्रिया-कौशल के सहारे कर गुजरते हैं। अन्य क्षेत्रों में जो सिद्धान्त लागू होता है, वही भाषण कला पर भी अक्षरशः लागू होता है। जो भीड़ से नहीं डरते, जिन्हें अपने ऊपर विश्वास है, वे इस क्षेत्र में निश्चित रूप से सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

कहा जा चुका है कि जीभ चलाना उतना ही सरल या कठिन है, जितना साइकिल चलाना। उसके अभ्यास में भी पहली बार कइयों को डर लगता है और गिरने, दाँत टूटने, घुटने फूटने, साइकिल बिगड़ने, हँसी उड़ने जैसी आशंका होती है। यदि हड़बड़ा गये तो गिर पड़ना भी सम्भव है। तब साइकिल टूटे या न टूटे, हिम्मत अवश्य टूट जाती है। कइयों के मन पर यह प्रथम दिन की असफलता इतनी हावी हो जाती है कि फिर वे हजार समझाने पर भी उस प्रयास को दुबारा करने के लिए तैयार नहीं होते। एक ओर यह सीखना इतना कठिन सिद्ध हुआ, दूसरी ओर यह तथ्य भी सामने है कि आठ-आठ वर्ष के बच्चे फ्रेम के बीच घुसकर, हेण्डिल पर लटकते हुए, भारी भीड़ के बीच होकर उसे दौड़ाते हुए मीलों की दूरी पार करते हैं। दोनों उदाहरणों को देखकर जाना जा सकता है कि इस सीखने में सफलता-असफलता मिलने का प्रधान कारण क्या है ?

सीखने वाले को अपने आपको इसके लिए सहमत करना चाहिए कि यह कार्य कठिन नहीं सरल है। आरम्भिक दिनों में ही कुछ सावधानी बरतने की आवश्यकता है। अभ्यास के प्रारम्भ में ही थोड़ी सावधानी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और साहसिकता की आवश्यकता पड़ती है, यदि वह बन पड़े तो यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि हर व्यक्ति वक्ता बन सकता है। जिसके मस्तिष्क में विचार उठ सकते हैं, उसकी जीभ भी उन्हें प्रकट करने में समर्थ हो सकती है। विक्षिप्तों या आत्मविश्वास खो बैठने वालों के सम्बन्ध में ही असफल रहने की बात कही या सोची जा सकती है। या तो तत्काल या कभी नहीं की आतुरता बरतने वाले क्षणभर में आवेशग्रस्त होकर कुछ भी कर डालने और प्रथम प्रयास में ही सफल होने के रंगीन सपने देखते हैं। साथ ही उस आतुरता में एक दोष भी रहता है कि तनिक सी अड़चन आई, तुरन्त सफलता न मिली तो धैर्यपूर्वक प्रयत्नरत रहना और कल नहीं तो परसों सफल होकर रहने का संकल्प वे नहीं अपना सकते। पानी के बबूले की तरह देखते-देखते उनका उत्साह समाप्त हो जाता है। ऐसे लोगों को समझना और समझाया जाना चाहिए। अनवरत गतिशील रहने वाला कछुआ उतावले खरगोश के साथ बाजी जीतने में सफल हुआ। छोटे कदम बढ़ाती हुई चींटी कुछ ही दिनों में योजनों का सफर कर लेती है और पहाड़ की चोटी तक जा पहुँचती है। अनवरत श्रम का माहात्म्य कालिदास और बरदराजाचार्य जैसे उन असंख्यों के मुँह सुना जा सकता है, जो तनिक-सी असफलता मिलने पर हिम्मत छोड़ बैठे थे पर जब उनने नये सिरे से निरन्तर अथक् श्रम करने का निश्चय किया तो वे संसार के मूर्धन्य मनीषियों की अग्रिम पंक्ति में जा बैठे। वक्तृता के इतिहास में ऐसे अगणित लोगों के नाम हैं, जो आरम्भ में सर्वथा असफल रहे, उपहासास्पद बने किन्तु हिम्मत न छोड़ने और अनवरत प्रयत्न करने के फलस्वरूप अपने समय के असाधारण वक्ता सिद्ध हुए। वह उदाहरण हर किसी पर लागू हो सकता है। शर्त एक ही है कि या तो स्वयं ही आत्महीनता की ग्रन्थि खोली जाय या फिर कोई मनस्वी दबाव देकर यह विश्वास कराये कि अनवरत श्रम और अटूट विश्वास अपनाने पर निश्चित रूप से सफल होकर रहेगा, पुरुषार्थ से जी चुराने वाले, क्षण में उत्साहित क्षण में निराश होने वाले, सफलता का मूल्य अध्यवसाय के रूप में चुकाने से कतराने वाले ही—असफल होते हैं। असफलता का तात्पर्य है—सच्चे मन से पूरा श्रम न किया जाना। इस कमी को किसी प्रकार पूरा किया जा सके तो असफलताओं की भारी-भरकम लाश ढोते रहने वाले, दुर्भाग्य का रोना—'रोते रहने वाले'— अपने भाग्योदय का नया अध्याय खुलता देखेंगे। निस्संदेह मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता है। वह चाहे तो अपने ललाट में अपनी ही कलम से कुशल वक्ता होने की भविष्यवाणी लिख सकता है। इतना छोटा काम करने के लिये विधाता की मनुहार करना कतई आवश्यक नहीं।

किया क्या जाय ? इस संदर्भ में यह नीति अधिक उपयोगी है कि छोटे कदम बढ़ाते हुए अभ्यास आरम्भ किया जाय और परिपक्वता बढ़ने के साथ-साथ बड़ा काम हाथ में लिया जाय। पहले एकाकी फिर घनिष्ठों के साथ शुभारम्भ करने की नीति सही है। इससे क्रमिक विकास में सुविधा रहती है।

एकाकी अभ्यास के कई तरीके हैं। एक यह है कि बड़े दर्पण के आगे खड़े होकर अपने आप को ही एकान्त कमरे में परामर्श देने वाली वार्ता आरम्भ की जाय और देखा जाय कि मुखाकृति के प्रभावशाली होने में कोई कमी तो नहीं रहती। रहती तो उसे बार-बार सुधारने के लिए तौर-तरीके बदल-बदलकर देखना चाहिए और जो मुद्रा, जो शैली उपयुक्त हो उसे अपनाना चाहिए।

एकाकी कमरे में पुस्तकें, कई वस्तुएँ श्रोताओं की तरह पंक्तिबद्ध बिठाकर रखनी चाहिए और उन्हें जनसमुदाय मानकर अपनी वक्तृता आरम्भ कर देनी चाहिए। इससे यह भय न रहेगा कि सुयोग्य व्यक्ति गल्ती पकड़ेंगे, हँसी उड़ायेंगे। पुस्तकें तो निर्जीव हैं। वे बेचारी आलोचना क्या करेंगी ? जहाँ रख दी गईं वहीं रखी रहेंगी। अपना मन समझाने के लिये उन्हें जनसमुदाय माना जा सकता है। और निर्भय होकर विश्वासपूर्वक प्रवचन क्रम जारी रखा जा सकता है।

यह अभ्यास घर से बाहर जाकर भी किया जा सकता है, खेतों में अनेक पौधे उगे होते हैं। बगीचे में कितने ही वृक्ष होते हैं। नदी किनारे कितने ही छोटे पत्थर पड़े होते हैं। उन्हीं को मनुष्य मानकर उपदेश देने का अभ्यास किया जा सकता है। थोड़े ही दिनों में मन इस निष्कर्ष पर पहुँच जायेगा कि वाणी में कोई दोष नहीं है, जीभ में कोई कमी नहीं है, मुख में फिट किया हुआ भाषण तंत्र पूर्णतया सही और समर्थ है, इस संदर्भ का असमंजस दूर होने पर बात इतनी-सी रह जाती है कि आत्महीनताजन्य संकोच, भय से पीछा कैसे छुड़ाया जाय।

इसके लिये मित्र-मण्डली की सहायता ली जा सकती है और अपना तथा सभी का प्रवचन अभ्यास करने के लिये छोटी मण्डली को विशाल जन समूह की मान्यता दी जा सकती है। इसमें कोई बाहरी व्यक्ति न होने से हँसी उड़ाये जाने का कोई भय नहीं है वरन् सफलता पर प्रशंसा और असफलता के कारण बताने का परामर्श मिलते रहने पर अधिक सतर्कता बरतने और अधिक साहस उभारने का अवसर मिलेगा। एक दूसरे का भाषण-संभाषण ध्यानपूर्वक सुनें, जहाँ अच्छा बन पड़ा उसकी प्रशंसा करें, जो भूल रही उसे बतायें, उसे सुधारने का उपाय समझ में आये तो उसे सुझायें। इस प्रकार चार छह मित्रों की मण्डली भी एक अच्छे 'प्रवचन क्लब' की आवश्यकता पूरी कर सकती है, उसकी बैठक कभी भी कहीं भी हो सकती है। इससे किसी भाषण कला विद्यालय में प्रवेश पाकर अच्छा पाठ्यक्रम पूरा करने की तरह ही लाभान्वित हुआ जा सकता है। भाषण क्लब बनाकर छात्र-छात्राएँ ही नहीं सामाजिक कार्यकर्ता भी अपनी यह प्रवीणता सहज ही बढ़ा सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गपशप और वार्तालाप में मौलिक अन्तर यह रहता है कि गपशप में कोई विषय नहीं रहता, न कोई उद्देश्य होता है। कहने के लिए कहा जाता है, जिसके मन में भड़ास उठती है वह बोलता जाता है। दूसरे भी पीछे नहीं रहते। वे भी अपना चेहरा चमकाने, दूसरों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने, इसी प्रसंग में तीसमारखाँ बनने की चेष्टाएँ चलती रहती हैं और समय कटाने का कभी, समर्थन कभी काट विरोध का सिलसिला चल पड़ता है। वार्तालाप का स्तर भिन्न है, उसमें उद्देश्यपूर्ण विचार विनिमय होता है और साथ ही कुछ निष्कर्ष निकालने, निष्कर्ष को अनेकों तक फैलाने तथा तदनुरूप कुछ कदम उठाने, कार्य करने की योजना भी रहती है। यह मित्र-मित्रों के बीच भी हो सकता है। इसमें सभी पक्ष अपना अभिमत व्यक्त करते हैं और फिर कभी समस्या को सुलझाने के लिए किसी निर्णय पर पहुँचते हैं। संसदें, इसी स्तर का विचार विनिमय करती हैं। इसी को छोटे रूप में सामयिक वार्तालापों के माध्यम से मित्र-मण्डली या परिजनों के बीच भी किया जा सकता है। इसके अन्यान्य लाभों में एक बड़ा लाभ यह है कि अभिव्यक्ति के प्रकटीकरण का अभ्यास बनता है। यही आगे चलकर विकसित वक्तृत्व कला का आधार भी बन सकता है।

प्रगति इस प्रकार सम्भव होगी

भाषण का प्राथमिक अभ्यास करने वालों को कई कठिनाइयों का एक साथ सामना करना पड़ता है। इनमें से एक है—आत्मविश्वास का अभाव। दूसरा, अधिक लोगों को एक साथ सामने उपस्थित देखकर उन्हें परीक्षक मान बैठना और उनकी दृष्टि अपने चेहरे पर लगी देखकर हड़बड़ा जाना। इन दो कारणों से वक्ता मनोवैज्ञानिक क्षेत्र की चपेट में आ जाता है और जो कहना चाहिए, उसकी जानकारी एवं योग्यता होते हुए भी मानसिक सन्तुलन बिगड़ जाने के कारण जो कहना चाहिए था—जो कहा जा सकता था—उसे कह नहीं पाता।

कठिनाई का यह प्रथम दौर है, जिसे आत्मविश्वास जाग्रत करके ही सुधारा जा सकता है। अपने ऊपर विश्वास किया जाय। सोचा जाय कि जब सड़क पर बैठने वाले मदारी, रेलों में माल बेचने, नीलाम करने वाले अनपढ़-अशिक्षित वर्ग के लोग धुँआधार बोलते रह सकते हैं और उपस्थित भीड़ से तनिक भी डरते-घबराते नहीं तो कोई कारण नहीं कि सुरक्षित एवं विचारशील होते हुए भी डरने-घबराने की आवश्यकता पड़े। संकोचशीलता का असमंजस इस प्रकार के विचार करते रहने और साहस जगाने के लिए आत्म-प्रशिक्षण करते रहने पर यह कठिनाई आसानी से दूर की जा सकती है। एक दूसरे को प्रोत्साहन भी दे सकते हैं। कुशल वक्ता अपने अनुभव सुनाते हुए विश्वास दिला सकते हैं कि—"उन्हें भी आरम्भ में ऐसी ही कठिनाई का सामना करना पड़ा था। पर अभ्यास से प्रतीत हुआ कि वह मात्र मनोवैज्ञानिक असमंजस था। जब अभ्यास प्रारम्भ किया तो दिन-दिन यह विश्वास बढ़ता गया कि वक्तृता हर किसी के लिए सरल-सुगम है। उसे अनवरत प्रयत्न करते और भूलों को ढूँढ़ते, पूछते, सुधारते क्रमशः आगे बढ़ाया जा सकता है। कुशल वक्ता के स्तर तक पहुँचा जा सकता है। भूतकाल के ऐसे अनेकों उदाहरण हैं, जिनमें आरम्भ में बहुत लड़खड़ाने वाले व्यक्ति प्रयत्नरत रहकर कुशल वक्ता बने।

एकाकी प्रयास, फुरसत के समय साथियों के न रहने पर भी किये जा सकते हैं। उस समय न आत्महीनता हैरान करती है और न उपस्थिति को देखकर डरने-घबराने जैसी कोई बात रहती है। इसलिए एकाकी अभ्यास में मुख्य प्रश्न एक ही रह जाता है कि विचार शृंखला को किस प्रकार सही रखा जाय और जो कहना है, उसे बिना इधर-उधर भटके क्रमबद्ध रूप से किस प्रकार व्यक्त किया जाय। विचारों में क्रमबद्धता का न होना, आदि, मध्य और अन्त का पूर्व निर्धारण न रहना तीसरा व्यवधान है। इसके कारण भाषण अटपटा हो जाता है। जिस पर अधिक प्रकाश डाला जाना चाहिए. उसे संक्षिप्त कर देने के उपरान्त हाथ से तीर निकल जाता है और जो छूट गया था, उसे कहने में पुनरावृति दोष लगता है। निर्धारित समय में अभिव्यक्ति को पूरी तरह कहने के लिए उसे कितना संक्षिप्त या विस्तृत किया जाना है—यह भाषण के पूर्व ही सोचने और निर्धारण करने का विषय है। अन्यथा या तो नियत समय से पूर्व बात समाप्त करनी पड़ेगी अथवा महत्त्वपूर्ण बात छूटने पर अधिक समय पाने के लिए अनुरोध करना पड़ेगा। यह दोनों ही परिस्थितियाँ यह प्रकट करती हैं कि भाषण की पूर्व रूपरेखा नहीं बनाई गई और जो मुँह से निकला वही कहने लगने की अस्त-व्यस्तता अपनाई गई है।

असन्तुलित विपन्नता, उत्पन्न न होने पाये—इसका एक ही उपाय है कि भाषण की आदि से अन्त तक रूपरेखा विनिर्मित कर ली जाय और उसका कई बार अभ्यास करने के उपरान्त मंच पर जाया जाय। लेखक यही करते हैं। वे बिना सोचे-समझे कलम चलाना आरम्भ नहीं कर देते वरन् लिखने से पूर्व उसका ढाँचा तैयार करते हैं। खाका बनाते हैं। इसके बाद रंग भरना प्रारम्भ करते हैं। लेखकों को यह विचार करना पड़ता है कि आरम्भ कैसे करें—मध्य में क्या-क्या तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहरण प्रस्तुत करते हुए अपने अभिमत की पुष्टि करें। इस ढाँचे में वे गम्भीरतापूर्वक सुधार, परिवर्तन भी करते हैं। जब पूरी तरह विश्वस्त हो जाते हैं, तब कहीं लेखन-कार्य आरम्भ करते हैं। भाषण भी एक प्रकार का लेखन ही है। सुनियोजित लेख और सुसम्बद्ध प्रवचन की पूर्व तैयारी करना आवश्यक है। बिना पटरी बिछाये रेलगाड़ी चालू कर देने पर तो वह वहाँ कितनी देर में पहुँचेगी, इसका कुछ भी अनुमान नहीं लगाया जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महत्त्वपूर्ण व्यक्ति जब महत्त्वपूर्ण वक्तृता देते हैं तो उन्हें उसकी तैयारी करनी पड़ती है। अवसर पर बहकने न लगें, इसलिए उसे छपा लेते हैं और यथा समय पढ़कर सुना देते हैं। दीक्षान्त भाषण प्राय: इसी प्रकार छपे हुए होते हैं और संस्कार कराने वाले के द्वारा वे पढ़कर सुना दिये जाते हैं। वैज्ञानिकों की, मूर्धन्य विचारकों की, राष्ट्रसंघ के सदस्यों की महत्त्वपूर्ण गोष्ठियों में प्राय: हर भाषण छपा होता है ताकि समारोह समाप्त होने से पहले या बाद में उस आधार पर उपस्थित लोगों को गंभीरतापूर्वक विचार करने का अवसर मिल सके।

यहाँ भाषण-कला के विद्यार्थियों को अपने भाषण छपाने और सुनाने के लिए तो नहीं कहा जा रहा है। पर इतना तो करना ही होगा कि उसकी रूपरेखा पहले ही बना ली जाय। स्वयं न बन पड़े तो जानकारों से सलाह ले ली जाय। तैयारी के बाद उसे कई बार एकांत में दुहराना चाहिए और सांकेतिक नोट तैयार कर लेने चाहिए। यह संकेत-नोट बड़े अक्षरों में लिख लेने चाहिए। प्रवचन मंच पर सामने इस प्रकार रख लेने चाहिए कि दर्शकों को यह बात मालूम न पड़े किन्तु स्वयं बार-बार उस पर दृष्टि डालते और एक के बाद दूसरे संकेत नोट को पूरा करते चलने की सुविधा बनी रहे।

बड़े कॉलेजों और विश्वविद्यालयों के व्याख्याता दूसरे दिन जो पढ़ाना है—उसे पहले दिन ध्यानपूर्वक पढ़ते हैं। नोट तैयार करते हैं। छात्रों के सम्मुख खड़े होकर बोलते हैं, तो 'डाइस' पर वे नोट-कागज रखे रहते हैं। उन संकेतों पर व्याख्या चलती रहती है और अध्यापन कार्य ठीक तरह सम्पन्न हो जाता है। अध्यापक भी सन्तुष्ट रहते हैं और पढ़ने वाले छात्रों को भी उस तथ्य को पूर्ण क्रमबद्धता से, सही रीति से सीख लेने की प्रसन्नता होती है। यही नीति हर वक्ता को अपनानी चाहिए। उसे अपने नोट तैयार करने चाहिए और बोलते समय उस संकेत-पट्ट को सावधानी से सामने रखना चाहिए।

'रिहर्सल' हर महत्त्वपूर्ण काम का करना चाहिए। विस्मृति भी मनुष्य की स्वाभाविक कमी है। कई दिन बीत जाने पर अभ्यस्त बातें भी दिमाग से उतर जाती हैं। इसलिए उन्हें बार-बार 'फ्रेस' करना पड़ता है। गायक, अभिनेता प्राय: यही करते हैं। सभा मंच पर जो गाया जाना है, उसे गायक एक बार घर गाकर, बजाकर अपने आपको आश्वस्त कर लेते हैं।

नाटक-अभिनयों में यही होता है। नट-नर्तक आज के प्रस्तुतीकरण को रात में दिखाने से पूर्व दिन में उसका एक 'रिहर्सल' अवश्य कर लेते हैं। ऐसा न करें तो गायन, वादन, अभिनय में चूक हो सकती है। इतने भर से आयोजन की छवि धूमिल हो सकती है। वैसा होने देने की अपेक्षा यही अच्छा समझा जाता है कि 'रिहर्सल' में व्यर्थ खर्च होता दीखता, समय भी आवश्यक समझा जाय और उस क्रिया को भी सम्पन्न किया जाय।

जानकार जानते हैं कि यह बात 'पिसे को पीसने' जैसी लगने पर भी कितनी महत्त्वपूर्ण—कितनी आवश्यक है। जो इसे निरर्थक समझते हैं और अहंकारवश इस संदर्भ में उपेक्षा बरतते हैं, वे घाटे में रहते हैं। ऐसे लोगों की वक्तृता में क्रमबद्धता घटती और अस्त-व्यस्तता बढ़ती रहती है, भले ही वे स्वयं उस भूल को समझ, पकड़ न पायें। अच्छे लेखक भी हर लेख को दुबारा लिखते हैं। पहली बार में जो कमी रह गई थी, उसे दूसरे लेखन में सुधारते, बढ़ाते, निखारते हैं। अच्छे अध्यापक, लब्ध-प्रतिष्ठ गायक-अभिनेताओं को भी यही करना पड़ता है। वे न अपनी पूर्णता का अहंकार करते हैं और न 'रिहर्सल' में अपमान जैसा कुछ अनुभव करते हैं।

इन दिनों कोई उपदेश नहीं सुनना चाहता है। पुराने जमाने की बात दूसरी थी। उन दिनों व्यास पीठ पर मात्र ऋषि कल्प व्यक्ति ही बैठने का साहस करते थे। उन्हें उपदेश देने का अधिकार भी था। लोग श्रद्धापूर्वक उन आप्त वचनों को सुनते और हृदयंगम भी करते थे। पर अब वैसी बात नहीं रही। मंच पर कोई भी जा बैठता है। गंभीर अनुभव, अध्ययन न होने पर भी—चारित्रिक विशिष्टता और विषय की पारंगतता न होने पर भी—अपना चेहरा दिखाने, आवाज सुनाने के लिए कुछ भी बकझक आरम्भ कर देता। इन दिनों अनाधिकारी वक्ताओं की भरमार रहती है। उनकी प्रामाणिकता-पारंगतता की कोई कसौटी नहीं रही। ऐसी दशा में श्रोताओं से यह आशा नहीं करनी चाहिए कि वे आधुनिक वक्ताओं को व्यासजी या सूतजी मानकर उनके कथन पर विश्वास करते चले जायेंगे।

इस समय परिवर्तन और अप्रामाणिकों की भरमार को देखते हुए उस तथ्य को समझना चाहिए, जिसमें वक्ता का स्थान एक अच्छे वकील जितना रह गया है। उसे जनता को न्यायाधीश मानना चाहिए और निष्कर्ष निकालने, निर्णय करने का भार उसी के सुपुर्द कर देना चाहिए। वक्ता को अच्छे वकील की भूमिका निभानी चाहिए। प्रतिपाद्य विषय के पक्ष-विपक्ष में जो कुछ कहा जा सकता है, उन सभी तथ्यों को जनता के सामने रखना चाहिए। यह वक्ता की कुशलता है कि विरोधी पक्ष की दलीलों को काटे, निरर्थक सिद्ध करे और अपने विषय के पक्ष में तर्क, तथ्य, प्रमाण और उदाहरणों की भरमार करता चला जाये। इस प्रकार श्रवणकर्ताओं को अपने विवेक, बुद्धि के आधार पर किसी निष्कर्ष तक पहुँचने का अवसर मिलेगा और वे निर्णय को किसी के द्वारा थोपा हुआ नहीं, अपने द्वारा किया गया अनुभव करेंगे।

ऐसे ही निर्णयों में गंभीरता होती है और वे सुनने वालों के गले उतर जाते हैं। इसके विपरीत यदि तर्क, तथ्य, प्रमाण आदि का प्रस्तुतीकरण न करते हुए अपनी मान्यता दूसरों पर थोपने की शैली अपनाई गई, तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समझना चाहिए कि वक्ता को समय की पहचान नहीं है। वह सुनने वालों को पाँच शताब्दी पूर्व के श्रद्धालु समुदाय में गिन रहा है और अपने अनुयाई मानकर उपदेश देता चला जा रहा है। अब इस शैली को अपनाने वालों पर धृष्टता करने का आक्षेप लगाया जाता है। जनता ने अपने हाथ में प्रजातंत्र सँभाल लिया है। उसने एक कदम आगे बढ़कर बौद्धिक क्षेत्र में भी निर्णय निर्धारण को हथिया लिया है। अब वक्ता से इतनी ही अपेक्षा रखी जाती है कि उसे जो कहना है, उसके पक्ष में तथ्य प्रस्तुत करके अपने कर्त्तव्य की इतिश्री माने।

कचहरी में वकील यही करते हैं। अदालत को अपने पक्ष में सहमत करने के लिए वे कुशलतापूर्वक तथ्य प्रस्तुत करते चले जाते हैं। वे न्यायाधीश को निर्देश नहीं करते कि अदालत यह फैसला करे। यदि कोई ऐसा करे तो उस पर अदालत के विवेक को चुनौती देने के आरोप में न्यायालय की मान-हानि का अपराध ठहराया और दण्डित किया जायेगा। समय की माँग है कि जनता के विवेक को मान्यता दी जाय। फैसला उसे स्वयं करने दिया जाय। वक्ता के जिम्मे अब मात्र इतना ही काम रह गया है कि उसे जो अभीष्ट है, उसके पक्ष में परिपूर्ण परिश्रम करके तथ्यों को ढूँढ़ निकाले, प्रस्तुत करे और जनसमुदाय के विवेक से किसी निर्णय तक पहुँचने में सहायता भी करे। धर्म गुरु को 'बॉस' की भूमिका निभाने जैसी धृष्टता इन दिनों किसी भी वक्ता के लिए शोभनीय नहीं। भले ही वह नेता, विद्वान या धर्मात्मा ही क्यों न माना जाता हो। बुद्धिवाद के इस युग में सभी को अपनी रीति-नीति बदलनी पड़ रही है। वक्ताओं को भी उस परिवर्तन की आवश्यकता इच्छा या अनिच्छा से स्वीकार करनी होगी। दुराग्रह बरतने पर वे उपेक्षित, तिरस्कृत होने लगेंगे।

रटे हुए प्रवचनों से कभी काम चलता रहता था रामायण, भागवत या सत्यनारायण कथा को लोग उन्हीं रटे शब्दों में बार-बार सुनते रहते थे। यह कथा श्रवण भी पुण्य माना जाता था। पठन के बारे में भी यही बात थी, धर्म ग्रन्थों का लोग बार-बार पारायण करते रहते थे। इसे वे 'पिसे को पीसना' जैसा उपहासास्पद नहीं ठहराते थे और पुण्य फल समझकर उस धर्म कृत्य को बिना ऊबे करते रहते थे। पर अब समय के साथ वह आदत भी बदल गई है। लोग नवीनता चाहते हैं। घिसी-पिटी बातों में ऊब लगती है। भोजन, वस्त्र सभी कुछ नया बदलता रहना चाहिए। एक बार देखने के बाद उस फिल्म को कदाचित ही कोई देखता हो। पोशाकों के फैशन रोज बदलते हैं। इस नवीन की पक्षधर अभिरुचि के प्रवाह से हर क्षेत्र प्रभावित हुआ है। मोटर बनाने वाले हर साल नये मॉडल बदलते हैं। कलेण्डर वाले नये चित्र छापते हैं। उसी तीर्थ में हर बार पर्यटन के लिए कौन जाता है ? यही बात श्रोताओं के मन में रहे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। वे नवीनता खोजते हैं, तो इसे रोका कैसे जाय ? अब दो चार भाषण सीख लेने और उन्हें ही ग्रामोफोन के रिकार्डों की तरह सुनाते रहने से काम चलने वाला नहीं है। दिशाधारा भले ही निर्धारित रहे पर लहरें, तरंगें तो नई-नई ही उठनी चाहिए।

नये ढंग से पुरानी बातों को प्रस्तुत करने की आवश्यकता से इन्कार नहीं किया जा सकता। इसके लिए आवश्यक है कि वक्ता को अध्ययनशील एवं बहुश्रुत होना चाहिए। उसे मूर्धन्य वक्ताओं के भाषण इसलिए सुनने चाहिए कि उनकी शैली में जो आकर्षक विशेषता है, उसे देखा-सीखा और अपनाया जा सके। बूँद-बूँद से घड़ा भरने की बात, ज्ञान सम्पादन पर भी लागू होती है। उसके लिए नया-नया पढ़ना और नया-नया सुनना चाहिए।

वक्ता को हर विषय में चुंचु प्रवेश की अपेक्षा एक सीमा निर्धारित करनी चाहिए और उसी मर्यादा में अपना अध्ययन संचय, अभ्यास एवं प्रतिपादन केन्द्रित कर लेना चाहिए। ऐसे ही लोग विशेषज्ञ कहलाते और अपने विषय में प्रामाणिक समझे जाते हैं। हर व्यक्ति की क्षमता सीमित है, वह थोड़े ही विषयों में विशेषज्ञ हो सकता है। सभी दिशाओं में पैर फैंकने वाले, हर विषय में अपनी प्रवीणता सिद्ध करने की फिराक में रहने वाले हर विषय में अधूरे-अधकचरे रह जाते हैं। ऐसी दशा में न उनकी प्रामाणिकता, विशेषता उभरती है और न जनता उन्हें सुनने के लिए उत्सुक रहती है। व्यक्तित्व का ऊँचा होना तो विशेष प्रयत्न और परिस्थिति पर निर्भर है पर इतना तो हर वक्ता कर सकता है कि अपने प्रतिपाद्य विषय में तथ्यों और प्रमाणों का धनी रहे और जो कहना है, उसे इतने वजनदार आधार पर कहे जिससे वक्ता के अध्ययनशील की सराहना करते ही बन पड़े।

इसके लिए वक्ता का स्वाध्यायशील, बहुश्रुत एवं मनन-चिंतन में निरत विचारक भी होना चाहिए। यदि ऐसा न बन पड़ा तो फिर थोड़े से प्रसंगों पर गिनी-चुनी बातें ही तोता रटंत की तरह जहाँ-तहाँ दुहराई जाती रहेंगी। नये स्थानों पर नये लोग तो उन से प्रभावित भी हो सकते हैं। पर जिनने उन्हीं बातों को बार-बार दुहराते सुना है उन पर यह छाप पड़ेगी कि यहाँ विचारशीलता का, अध्यवसाय का अभाव है। मात्र उतना ही आता है जितना कि रट लिया गया या रटा दिया गया है। ऐसी दशा में जिन पर आरम्भिक छाप पड़ी थी, वह भी उस कूप मण्डूकता का पता चलने पर समाप्त हो जाती है।

दिशाधारा एक रहे तो हर्ज नहीं, पर उसके प्रतिपादन में नये तर्क-तथ्य तो प्रस्तुत किये ही जाने चाहिए। उदाहरणों की कमी नहीं, घटनाएँ, संस्मरण कथाएँ, सूक्तियाँ एक ही विषय पर असंख्यों मिल सकती हैं। आदश्यकता उन्हें खोजने की है। यह खोजबीन स्वयं ही करनी पड़ती है संकलनों, उद्धरणों की कमी नहीं, पर वैसा साहित्य तो स्वयं ही ढूँढ़ना-पढ़ना पड़ेगा। हर बार नया बनाना वहाँ तो हर हालत में अनिवार्य रूप से आवश्यक है जहाँ नियमित रूप से एक ही जगह परिचित लोगों के बीच अपने विचार व्यक्त करने पड़ते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अभ्यास क्रम के लिए सुगम अवलम्बन

तथ्यात्मक, विवेचनात्मक भाषण अध्ययनशील लोग ही दे सकते हैं। उन्हें समझने के लिए ऐसे लोग चाहिए, जिनकी निर्धारित विषय में पहले से ही गति रही हो। जिन्हें विज्ञान का ककहरा भी विदित नहीं है, उनके लिए उस विषय के रहस्यों को समझना और लाभान्वित होने का मार्ग सुझाना सर्वथा निरर्थक है। इसी प्रकार जिस भी विषय पर भाषण करना है, उसी स्तर की जनता का एकत्रीकरण सम्भव हो तो ही बात बनेगी। अन्यथा वक्ता कितना ही विद्वान, विषय कितना ही गहन क्यों न हो, समझा न पाने के कारण लोग कानाफूसी आरम्भ करेंगे। इधर-उधर ताकेंगे। सिर खुजाते, कान कुरेदते देखे जायेंगे और बोर होने पर किसी न किसी बहाने बीच में ही उठकर चल देंगे। वक्ता और श्रोता के बीच की कड़ी तब जुड़ती है, जब जानकारी और अभिरुचि का परस्पर तारतम्य बैठे।

यदि इसमें विसंगति दिखाई पड़े तो बदलना वक्ता को ही पड़ेगा। श्रोता को तत्काल नये विषय को आरम्भिक जानकारी और प्रवचन समझने स्थिति तक पहुँचा देना कठिन है। ऐसा व्यतिरेक जहाँ भी हो रहा हो, वक्ता को अपना रुख, प्रसंग बदलना होगा। महिलाएँ, बच्चे, वयोवृद्ध अधिक हैं तो उनके समझ सकने योग्य हल्का-फुल्का स्तर अपनाना होगा। मंच पर जाते ही या जाने से पूर्व दृष्टि पसार कर यह देखना चाहिए कि उपस्थित समुदाय का ज्ञान एवं रुझान किस स्तर का है, उसके साथ संगति बिठाते हुए ही बात आगे बढ़ानी चाहिए और अपने प्रतिपाद्य विषय में उसी स्थिति के साथ संगति बिठाते हुए आगे बढ़ना चाहिए और बात उतनी ही ऊँची उठानी चाहिए, जितनी कि लोग आसानी से हृदयंगम कर सकें।

यही बात मध्यवर्ती और उच्चस्तरीय ज्ञान वाले लोगों के सम्बन्ध में भी है। विद्वानों, विज्ञजनों की बहुलता वाले समुदाय में अशिक्षितों, ग्रामीणों जैसे स्तर पर बोलना उपहासास्पद बनना है। मध्य शिक्षित लोग न बहुज्ञ होते हैं न अल्पज्ञ, उनके लिए भाषण का स्तर कुछ ऊँचा किन्तु सुबोध होना चाहिए। ड्रिल करने वाले स्लो मार्च-क्विक और डबल मार्च पर अपनी चाल घटाते-बढ़ाते हैं। वक्ताओं को भी उपस्थित लोगों का स्तर देखकर अपनी शैली में सुधार परिवर्तन करना चाहिए। हर हालत में उच्चारण मध्यम गति का, मध्यम स्तर का ही होना चाहिए। बोलने का क्रम इतना तेज न हो कि सुनने वालों के कान उसे ठीक तरह पकड़ न सकें और मस्तिष्क में एक बात जमने से पूर्व ही नई बात घुस पड़े।

बहुत तेज स्पीड से बोलने वाले कम समय में बहुत बात तो कह देते हैं पर यह नहीं सोचते कि सुनने वाले उसे पकड़ भी सकेंगे या नहीं। यही बात उच्चारण को ऊँचा-नीचा करने के सम्बन्ध में भी है। जब लाउडस्पीकरों का आविष्कार नहीं हुआ था, तब नाटक वाले जोर-जोर से एक-एक शब्द कहकर भारी भीड़ के कानों तक अपनी बात समझाने में समर्थ होते थे। राजदरबार में भी उन दिनों जोर-जोर से कहने का प्रचलन था, जिससे कि फैले हुए घेरे में बैठे हुए लोग उस कथन को सुन सकें। इन दिनों लाउडस्पीकरों का युग है। अब उस प्रकार चिल्लाने की आवश्यकता नहीं रही। मध्यम स्वर में बोलने पर सब लोग आसानी से सुन सकते हैं। किन्तु यह मध्यम स्वर इतना मन्द भी नहीं होना चाहिए, जिसे माइक भी अच्छी तरह पकड़ न सके। बीमारों की तरह बहुत मन्द स्वर से रुक-रुककर बोलना भी भाषण का दोष है।

इस कमी के रहने पर अच्छे वक्ता का अच्छा विषय भी अपनी छवि गँवा बैठता है। भाषण में जहाँ विषय का निर्वाह और प्रतिपादन सही होना चाहिए, वहाँ उच्चारण भी मध्यवर्ती सरल स्वाभाविक रहना चाहिए अन्यथा नाटकीय कृत्रिमता अपनाने पर उस अस्वाभाविकता के कारण भाषण का ही नहीं, वक्ता का स्तर भी लड़खड़ा जायेगा।

कई वक्ता अपने विषय का निर्वाह नहीं कर पाते, प्रसंग की मूलधारा से हटकर इधर-उधर भटकते और कहीं से कहीं चले जाते हैं। ऐसे लोगों के सम्बन्ध में भी विज्ञजन यही सोचते हैं कि विषय पर अधिकार नहीं, पूर्व तैयारी नहीं, उथले ज्ञान के आधार पर उथले मन से ऐसे ही समय काटने वाली बकवास की जा रही है। जनता के समय का मूल्य समझना चाहिए। दस हजार की उपस्थिति में, एक घण्टे का बेतुका भाषण देने वाला सुनने वालों के दस हजार घण्टे बर्बाद करता है। एक घण्टे का मूल्य दो रुपये भी माना जाय तो समझना चाहिए उस अनपढ़ वक्ता ने श्रोताओं के बीस हजार रुपये झटककर कूड़े के ढेर में फैंक दिये। इससे तो यह अच्छा था कि उनकी चप्पलें चुराकर या पल्ला फैलाकर उतनी राशि माँग ली जाती और अपने काम आती।

अनधिकारी, अनभ्यस्त वक्ताओं का आत्मश्लाघा के लिए सभा मंच पर चढ़ दौड़ना, माइक को हथिया लेना एक प्रकार का दुर्भाग्य ही है जिसका त्रास उपस्थित लोगों को सहना पड़ता है। वह बन्दर तो उछल-मटक कर घर चला जाता है पर उपस्थित लोग संयोजकों को कोसते रहते हैं कि यदि अनपढ़ लोग ही भाषण करने के लिए थे, तो उन्हें समय बर्बाद करने के लिये क्यों बुलाया गया। ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति उत्पन्न करने से पूर्व यही अच्छा है कि वक्तृत्व कला में प्रवीणता-परिपक्वता आने तक निजी क्षेत्र में अभ्यास जारी रखा जाय और मंच पर तभी प्रकट हुआ जाय जब ठोंक-बजाकर वैसी पात्रता का परिपूर्ण विश्वास कर लिया जाय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भारतीय जनता की मानसिक पृष्ठभूमि आमतौर से धार्मिकता के साथ जुड़ी हुई है। यह परम्परा प्रवाह उत्तराधिकार में आज के जनसमुदाय को भी उपलब्ध है। इतिहास, भूगोल आदि से अपरिचित अशिक्षित भी रामायण, महाभारत की कथा-कहानियों से परिचित हैं। परमार्थ, परलोक आदि की धर्म सम्बन्धी जानकारियाँ उन्हें उपलब्ध वातावरण से अनायास ही मिलती रही हैं। प्रस्तुत परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए हमारे प्रवचन यदि सामान्य जनता के लिए हैं, तो उन्हें धर्मधारणा का पुट देकर ही अग्रगामी बनाया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में स्वर्गीय तिलक, गाँधी, मालवीय आदि राजनैतिक नेताओं की प्रतिष्ठा और प्रभाव क्षमता का मूल्यांकन किया जा सकता है। वह तत्कालीन अन्य नेताओं की तुलना में बढ़ी-चढ़ी थी। कारण कि उनके व्यक्तित्व एवं प्रतिपादन में धार्मिकता का पुट रहता था। जिनका विषय विशुद्ध राजनीति था, वे उसी वर्ग के लोगों को प्रभावित कर सके। सामान्य जनता तो उनके तप-त्याग से ही प्रभावित थी। विचारों की दृष्टि से उनका प्रभाव उतना नहीं था जितना कि धर्म को प्रधानता देने वाले लोगों का। यह स्थिति अभी भी समाप्त नहीं हुई है। भारत में ७० प्रतिशत अशिक्षित हैं और प्राय: यही अनुपात पिछड़े देहातों में रहने वालों का है। उनकी मनोदशा को देखते हुए यही उपयुक्त है कि विचार क्रान्ति अभियान को, सत्प्रवृत्ति-संवर्धन की युगान्तरीय चेतना को धर्मधारणा के साथ संगति बिठाते हुए अग्रगामी बनाया जाय।

लोक शिक्षण के सिद्धान्त चिरघोषित हैं। व्यक्ति निर्माण, परिवार निर्माण हमारा लक्ष्य है। नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक क्रान्ति की लाल मशाल का आलोक जन-जन के मन-मन तक पहुँचाना है। लोकमानस के परिष्कार में श्रद्धा, प्रज्ञा और निष्ठा का उपयोग करना है। इसके लिए प्रचारात्मक, रचनात्मक और सुधारात्मक कार्यक्रम बनने और चलने हैं। मिशन की समूची कार्य पद्धति इसी धुरी पर घूमती है। इन्हीं पुण्य-प्रयोजनों के लिए प्रज्ञा संस्थानों का निर्माण हुआ और प्रज्ञा-पुराण रचा गया है। मिशन का संक्षिप्त किन्तु समग्र स्वरूप यही है।

इन प्रयासों को जन-जन के गले उतरने के लिए प्रवचनों, परामर्शों की आवश्यकता अनिवार्य रूप से पड़ेगी। इसके लिए हर युग-शिल्पी को तैयार किया जा रहा है। इसके लिए परिस्थितियों के अनुरूप शैली कथानकों की ही हो सकती है। बच्चों से लेकर बूढ़ों तक; अशिक्षितों से लेकर शिक्षितों तक सभी को कथानक रुचिकर होते हैं। पुस्तक विक्रेता की दुकानों पर सत्तर प्रतिशत साहित्य कथा-कहानियों का बिकता है। मासिक पत्रिकाओं में भी उन्हीं की भरमार रहती है। बच्चों की पुस्तकों में अधिकांश कहानियों की ही होती हैं। बड़ों के लिए भी समय काटने की आवश्यकता वे ही पूरी करती हैं। फिल्में दृश्य कहानियाँ ही तो हैं। बच्चे नानी से कहानी सुनने के लिए चिपके रहते हैं। धर्म-क्षेत्र में पुराणों का कथा-श्रवण अत्यधिक लोकप्रिय हुआ है। अठारह पुराणों से काम नहीं चला तो अठारह उपपुराण लिखे गये। चारों वेदों को मिलाकर मात्र बीस हजार मंत्र हैं, पर अकेले महाभागवत पुराण में ही एक लाख के लगभग श्लोक हैं। वेद चार से पाँच नहीं बने, पर पुराणों का विस्तार तो बढ़ता ही जा रहा है। रैदास पुराण से लेकर प्रज्ञा पुराण जैसी रचनाएँ तो पिछले ही दिनों हुई हैं। यह कथा-शैली की लोकप्रियता का प्रमाण है। दर्शन और विवेचन विज्ञ-समाज में मान पाता है, पर भारत का अधिकांश जन-समाज जिस स्तर का है, उसे देखते हुए निर्विवाद रूप से यह कहा जा सकता है कि उसे युग चेतना समझाने में कथा-साहित्य का उपयोग ही सफल रहेगा। उनमें विवेचनात्मक प्रवचनों की पहुँच कानों तक ही हो सकेगी। उस गरिष्ठ भोजन को निगलना-पचाना कठिन ही पड़ेगा।

कथा शैली के प्रवचन सुनने में रोचक ही नहीं हृदयग्राही भी होते हैं, क्योंकि घटनाक्रमों, संवादों में विभिन्न स्तर के व्यक्तियों की भाव संवेदनाएँ उभारना, उनकी मन:स्थिति एवं परिस्थिति का विश्लेषण करना सुगम पड़ता है। इससे यह कथन अनेक स्तर के व्यक्तियों की मनोदशा, आकांक्षा, समस्या, दिशाधारा, प्रतिक्रिया समझने-समझाने से बहुत स्वादिष्ट बन जाता है। षट्रस व्यंजन की, छप्पन भोगों की चर्चा ज्योंनारों के प्रसंग में होती रहती है। रंग-बिरंगे वस्त्र-आभूषणों से सजी हुई गुड़िया कितनी अच्छी लगती है, इन्द्रधनुष की शोभा देखते ही बनती है। परिवार में छोटे-बड़ों के भिन्न-भिन्न स्तर उसे कितना सरस बना देते हैं। ठीक इसी प्रकार वक्ताओं की अपनी विशेषता है। ये अगले घटनाक्रमों के लिए उत्सुकता बनाये रहने के कारण सुनने वाले को एक जंजीर में जकड़े रहते हैं और उठने नहीं देते। जबकि विवेचनात्मक भाषण में कदाचित ही कोई वक्ता सरसता उत्पन्न कर पाते हैं। फलत: दर्शक बोर होने लगते हैं और बार-बार घड़ियाँ देखते हैं कि इस जंजाल की कब समाप्ति हो और कब उठकर चलें। जिन्हें गहन समीक्षाओं और सारगर्भित प्रतिपादनों में रुचि होती हो, रस आता हो ऐसे लोग कम ही पाये जाते हैं। जो होते हैं वे मात्र मूर्धन्य विद्वान-वक्ताओं की सभाओं में ही सम्मिलित होते हैं।

कथा-शैली के प्रवचनों में घटना और विवेचना दोनों का समन्वय रहने से वे तर्क और प्रमाण दोनों की जोड़ी बनाते रहते हैं। ईंट-चूने की तरह उनकी जुड़ाई मजबूत होती है और वह जनता को सरसता और प्रेरणा का खटमिट्ठा लाभ देती है। यही कारण है कि इस शैली को अपनाने वाले अपेक्षाकृत अधिक सफल रहते हैं। इन दिनों पाश्चात्य लेखन शैली में उन्हीं तथ्यों का समावेश हुआ है। लेखों में घटनाओं की भरमार रहती है; इससे पाठक उपन्यास का आनन्द लेते हैं और लेखक के मन्तव्य को अधिक अच्छी तरह समझते-अपनाते देखे गये हैं। हमारे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रवचनों का भी यही स्वरूप होना चाहिए, विशेषतया तब जबकि उन्हें अपने देशवासियों की पिछड़ी मनोभूमि को देखते हुए गंभीर विवेचनाओं से बचते हुए हल्की-फुल्की बौद्धिक खुराक ही देनी चाहिए। जो हजम हो सके, जितना हजम हो सके, उतना खिलाना ही बुद्धिमत्ता है।

इस शैली में एक अच्छाई और भी है कि वह वक्ता के लिए अभ्यास में अति सरल पड़ती है। दार्शनिक प्रतिपादनों में से कुछ ही 'प्वाइंट' समय पर याद रह पाते हैं और वे चुक जाता है। तब बगलें झाँकनी पड़ती हैं या तो निरर्थक बातों में समय पूरा करना पड़ता है या समय से पूर्व ही विराम लेने को विवश होना पड़ता है। यह कठिनाई उनके सामने नहीं आती, जो कथा शैली अपनाकर उदाहरणों, कहानियों, घटनाओं, संस्मरणों का पुट लगाते हुए अपनी बात आगे बढ़ाते हैं, घटनाओं की कमी नहीं। कथाएँ अगणित विद्यमान हैं। उन्हें ढूँढ़ना, अपने विषय के साथ गूँथ लेना—इतना भर कुशल वक्ता का काम है। जिसने यह विद्या जानी और अपनाई, समझना चाहिए कि एक ही स्थान पर जाने-पहचाने लोगों के बीच चिरकाल तक लगातार नित नये भाषण देते रहने का रहस्य हाथ लग गया। उनका कुबेर भण्डार कभी समाप्त ही नहीं हो सकता। वे अल्पज्ञ होने पर भी अपने प्रिय विषय पर बहुत दिनों तक, बहुत समय तक अपना प्रतिपादन जारी रखे रह सकते हैं। इसके विपरीत विवेचनात्मक पद्धति अपनाने वालों की जेब जल्दी ही खाली हो जाती है और उन्हें दिवालियों की तरह अपना विस्तर गोल करना पड़ता है।

वक्ता की आत्महीनता के उपरान्त दूसरी यह प्रमुख कठिनाई रहती है कि भाषण के समय विचारों का तारतम्य बना रख सकना कठिन हो जाता है। दर्शकों की मुखाकृतियाँ, हलचलें उसका ध्यान बँटाती हैं और वक्तृता की शृंखला की कड़ियाँ क्रमबद्ध रहने के स्थान पर बिखरने लगती हैं, प्रवाह टूटता है और डूबने-उछलने जैसी विडम्बना बन जाती है। यह कठिनाई कथा शैली में नहीं रहती। कहानी का घटनाक्रम अनायास ही आगे बढ़ता, फिसलता और सरपट दौड़ता चला जाता है। इस सुविधा से नये वक्ता का अभ्यास सरलतापूर्वक चलता है और उसका मनोबल बढ़ता है। अभ्यास में उत्साह बना रहे तो फिर कुछ ही दिनों में प्रवीणता भी हस्तगत हो जाती है। हर क्षेत्र में यही बात लागू होती है। फिर भाषण कला ही कोई अजनबी या अनहोनी बात नहीं है, जिसमें उत्साह भरे अभ्यास को असफल रहना पड़ेगा। साहस सदा जीता है। परिश्रम कभी निष्फल नहीं गया। संकल्प से पर्वत भी राई बनते हैं। फिर कोई कारण नहीं कि प्रवचन कला में प्रवीणता उपलब्ध न की जा सके। हिम्मत टूटने न पाये, कठिनाई मार्ग रोकने न पाये; इसलिए वक्तृता कला के आरम्भिक अभ्यासी के लिए यही सरल-सुबोध पड़ेगा कि वह अपने प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में कथा शैली का आश्रय ले और पूर्णता-प्रवीणता प्राप्त करने की दिशा में क्रमिक गति से आगे बढ़े।

कथा शैली के आधार पर युगान्तरीय चेतना का जनमानस में उतारने के लिए अभिनव पाठ्यक्रम 'प्रज्ञा पुराण' का आरम्भ हुआ है। उसके संस्कृत श्लोकों में प्रतिपादित विषय में तत्त्व दर्शन, नीतिशास्त्र, आत्मविज्ञान, समाजशास्त्र का उच्चस्तरीय समन्वय हुआ है। उसे युग स्मृति या प्रज्ञा उपनिषद कह सकते हैं। युगसंधि की वेला में उसे समाज को अर्जुन जैसा उद्बोधन देने वाला प्रस्तुतीकरण कहा जा सकता है। इतनी गंभीरता के साथ-साथ उसमें अत्यन्त सरलता भी है कि हर प्रतिपादन के साथ अनेकों कथाओं का समावेश भी हुआ है। उनका वर्णन करते हुए मूल प्रतिपादन को समझना-समझाना इतना सरल पड़ता है कि पिछड़ी मनोभूमि में भी उच्चस्तरीय सिद्धान्तों का प्रवेश, बीजारोपण एवं अभिवर्धन, परिपोषण नितान्त सरल पड़ता है।

समय की माँग के अनुरूप कथा-प्रसंग ढूँढ़ना हर किसी के लिए सरल नहीं। प्रचलित कथाएँ थोड़ी-सी हैं उनसे भी अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती। कुछ तो उनमें से रोचक होते हुए नितान्त प्रतिगामी होती हैं और धर्म कथा सुन लेने पर भी जनता को अनुपयुक्त निष्कर्ष अपनाने के लिए बाधित होना पड़ता है। अधिकतर निरुद्देश्य ही नहीं प्रतिगामी कथाएँ ही प्रचलित हैं। उन्हें कहते रहने पर जन मानस में प्रगतिशीलता के स्थान पर प्रतिगामिता का ही बीजारोपण होता है। अवास्तविक भटकावों में जनसमाज को उलझा देना किसी दूरदर्शी वक्ता के लिए अशोभनीय है। ऐसी दशा में पिछले दिनों यह कठिनाई रही है कि प्रगतिशील कथा-प्रसंग कहाँ से ढूँढ़ा जाय। ऐतिहासिक घटनाक्रम तो अनेकों मिल जाते हैं। पर उनसे धर्म श्रद्धा को उत्तेजित करके भाव संवेदनाओं को उभारना तथा अन्तःकरण के श्रद्धा क्षेत्र तक युग चेतना को पहुँचाने की आवश्यकता पूर्ण नहीं होती। इतिहास में मनुष्य बोलता है जबकि पुराण के प्रतिपादन में ऋषियों, देवताओं, महामानवों के चरित्र महत्त्व की जुड़ जाने से पुरातन के साथ जुड़ी हुई सहज श्रद्धा का भी पुट लग जाता है और प्रतिपादन अपेक्षाकृत अधिक वजनदार हो जाता है। इतिहास का अपना महत्त्व है पर उसे धर्म क्षेत्र के, कथा मंच के साथ संगति बिठाना और परम्परागत स्वाभाविकता को, प्रवाहक्रम को बनाये रहना कठिन पड़ता है। सरलता इसी में हो सकती है कि पौराणिक धर्म कथाओं की सामयिक आवश्यकता पूरी कर सकने योग्य चयन किया जाय और उन्हें अवांछनीयता उन्मूलन-सत्प्रवृत्ति संवर्धन के युग धर्म का निर्वाह करने के लिए प्रयुक्त किया जाय। प्रज्ञा-पुराण की संरचना में इसका निर्वाह भली प्रकार हुआ है। इसे नीति दर्शन, भविष्य निर्धारण अतीत स्मरण के साथ-साथ सामयिक लोकशिक्षण के लिए बिना किसी कठिनाई के प्रयुक्त किया जा सकता है। कहना न होगा कि इस संरचना ने न केवल विचार क्रान्ति अभियान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का द्वार खोला है, वरन् पुरातन के प्रति नवीन की बढ़ती अश्रद्धा को श्रद्धा में परिणत करने की दृष्टि से एक बड़ा कदम उठाया है। लोक शिक्षण के लिए विचारगोष्ठियों की अनिवार्य आवश्यकता पड़ेगी। इसके लिए वर्तमान जनमानस के लिए सुबोध और अभ्यासी वक्ता के लिए सरल अवलम्बन चाहिए। इन दोनों ही उद्देश्यों की पूर्ति भी प्रज्ञा पुराणों में संभव हो जाती है। प्रथम खण्ड का असाधारण स्वागत हुआ है और उसके अगले खण्डों की सर्वत्र माँग उभरी है। फलतः हर साल एक खण्ड छापने का विचार छोड़कर जल्दी ही कम से कम पाँच खण्ड लिखने और छापने का निश्चय किया गया है। इस प्रस्तुतीकरण से उपरोक्त आवश्यकता की पूर्ति में असाधारण योगदान मिलेगा यह निश्चित है।

प्रज्ञा पुराण के माध्यम से वक्तृत्व कला का अभ्यास करने के लिए कहा जा रहा है। नये अभ्यासियों के लिए यह अति सरल पड़ेगा। शैली की पूर्ण जानकारी न हो तो शांतिकुंज हरिद्वार में चलने वाले एक-एक महीने के लिए हर मास लगने वाले किसी युगशिल्पी सत्र में सम्मिलित होकर उसके उतार-चढ़ावों को भली प्रकार जाना जा सकता है और फिर घर आकर उस अभ्यास को जारी रखा जा सकता है।

प्रज्ञा पुराण का ही दूसरा एक और छोटा स्वरूप है—स्लाइड प्रोजेक्टर। यह प्रकाश चित्र यंत्र-नव निर्माण के संदर्भ में सभी आवश्यक प्रसंगों पर घटनाओं और व्यक्तियों के उदाहरण प्रस्तुत करता है। एक चित्र प्रायः दो मिनट दिखाया जाता है। इतनी ही देर में उस प्रसंग की व्याख्या पूर्ण करनी होती है। उसके साथ मिलने वाली व्याख्या पुस्तक में हर चित्र की व्याख्या-विवेचना छपी है। उसे कई बार पढ़ लेने पर विषय सहज ही मस्तिष्क में घूम जाता है। जनता को सिखाने से पूर्व एक सप्ताह उसका अभ्यास कर लिया जाय तो हर चित्र की व्याख्या मस्तिष्क में भली प्रकार जम जाती है और फिर उसके प्रकटीकरण में किसी के लिए कोई कठिनाई नहीं रह जाती। छोटी बात को बड़ी करना कठिन पड़ता है, बड़ी को छोटी करना तो बहुत सरल रहता है। फैलाना कठिन है सकोड़ना सुगम। चित्रों के साथ जुड़े हुये घटनाक्रम तो विस्तृत हैं, उन्हें नमक-मिर्च मिलाकर घण्टों कहा जा सकता है किन्तु उसे सकोड़ कर दो मिनट में ही समाप्त करना हो तो ठोस प्वाइंट ही इतने मिल जाते हैं कि उतना समय चुटकी बजाते बात की बात में पूरा होता है। विवेचन-व्याख्या में तनिक भी कठिनाई नहीं होती और नौसिखियों में प्रायः एक सप्ताह के अभ्यास से स्लाइड प्रोजेक्टर के आधार पर ३६ स्लाइडें दिखाने में लगने डेढ़ घण्टा का प्रवचन इस प्रकार सुना देते हैं, मानो वह पहले ही उनके अभ्यास में उतरा हुआ हो—रटा हुआ हो। इतने थोड़े प्रयास से ऐसी धारावाही वक्तृता देने वाला स्वयं भी अपनी सफलता पर आश्चर्यचकित रह जाता है। सुनने वाले भी दाँत तले अँगुली दबाते हैं कि यह अपना ही जाना-पहचाना आदमी जो संकोच से मुँह छिपाये-छिपाये फिरता था, आज किसी जादुई उपलब्धि के कारण इतना कुशल वक्ता बन गया। प्रज्ञा-पुराण की तरह स्लाइड प्रोजेक्टर का अवलम्बन भी वक्तृत्व कला अभ्यासियों के लिए एक कारगर अवलम्बन है।

श्रोताओं को नियमित रूप से उपलब्ध करने की सरल प्रक्रिया

वक्तृता का अभ्यास नितान्त आरम्भिक स्थिति में ही एकाकी हो सकता है। कुछ समय आगे बढ़ने पर उसके लिए श्रोता तलाश करने पड़ते हैं। दुकान बिना ग्राहकों के कैसे चले ? विद्यार्थी न हों तो पाठशाला क्या ? कर्मचारी न हों तो कारखाने का क्या उपयोग ? मरीज न हों तो अस्पताल में हलचल कैसे चले ? यही बात वक्ता के सम्बन्ध में भी है। उसकी गाड़ी तभी चलेगी, जब श्रोताओं की उपस्थिति रहने लगे।

इन दिनों यह कार्य सरल नहीं रहा। कठिन हो गया है। हर व्यक्ति अपनी ही समस्याओं में उलझा हुआ है। व्यस्तता उस पर भूत की तरह सवार है। थका-माँदा और कल की चिन्ताओं में डूबा हुआ मनुष्य प्रवचन सुनने के लिए सहज ही तैयार नहीं होता। उसके लिए उत्साह तभी उत्पन्न होता है, जब कोई असाधारण बात हो। कोई विशिष्ट व्यक्ति, मनीषी या विद्वान पधारें। उन्हें देखने और सुनने के लिए उत्साह भरने वाली कोई विशेष प्रेरणा जुड़ी हुई हो। अन्यथा लोग अनधिकारी, अनगढ़ वक्ताओं की बाढ़ से ऊबने लगते हैं। इश्तहार छापने, मुनादी कराने पर भी पंडाल खाली पड़े रहते हैं। अब वह समय चला गया जब व्यासपीठ पर कोई मूर्धन्य व्यक्ति ही बैठते या बैठने दिये जाते थे। अब राज्य संचालन के लिए किसी को हर कसौटी पर खरा सिद्ध नहीं होना पड़ता। चुनाव के हथकंडे जानने वाला कोई भी अनगढ़ व्यक्ति राज्य संचालन का दावेदार बन सकता है। यही बात वक्ताओं के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। उनमें से तथ्यानुयाई गिने-चुने होते हैं। शेष तो आत्मश्लाघा के लिए जहाँ भी मंच देखते हैं, वहीं किसी न किसी प्रकार जा सवार होते हैं। माइक एक बार हाथ लग जाय तो मनोवांछा की पूर्ति हुई मानते हैं और फिर उसे छोड़ने का नाम नहीं लेते। ऐसे उद्धत बकवासी भर जाने से श्रोताओं को उस ठलुआपंथी में समय खराब करने में क्रमशः अरुचि ही बढ़ती जाती है। न वक्ता का स्तर न वक्तृता का; फिर कोई क्यों अपने आराम में खलल डाले, क्यों अपने जरूरी काम छोड़े ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इन दिनों वक्ताओं की कमी नहीं पर श्रोता जुटाने में संयोजकों का पसीना छूटता है। प्रचार के साधन अब भौंथरे होते जाते हैं। अखबार में सूचना छापना, पर्चे बाँटना, पोस्टर चिपकाना, लाउडस्पीकर घुमाना, रास्तों के ऊपर कपड़े के बैनर टाँगना अब पुराने जमाने की घिसी पिटी परम्परा बन गई है। उतने भर से जनता को उपस्थित होने के लिए उत्साहित नहीं किया जा सकता। अब व्यक्तिगत निमंत्रण देने के लिए टोलियाँ बनाकर निकलना, रुचि रखने वालों को तलाशना और उपस्थित होने के लिए उनसे आग्रह करना पड़ता है। संकोचवश दिए गए वचन का पालन करने के लिए कुछ लोग किसी प्रकार जा पहुँचते हैं। इन दिनों सभा-सम्मेलनों में यही उत्साहरहित विडम्बना चल रही है। जहाँ अधिक जनता उपस्थित होती है, वहाँ कुछ बड़े कारण होते हैं। बड़ों का आगमन, बड़े निर्धारण, अभिनव आकर्षण, सजधज, प्रचार की धूम, कौतुक-कौतूहल जैसी अनेक बातें मिल जाने पर ही अधिक उपस्थिति होती और सभा सफल समझी जाती है। ऐसा कुछ न हो तो रैली, जुलूस निकालने के लिए किराये के आदमी जुटाने पड़ते हैं। सभा-संयोजन के अभ्यस्त जानते हैं कि अब उपस्थिति जुटाना कितना कठिन होता जा रहा है। समझा जाता है कि इस एकत्रीकरण के लिए माहौल बनाने में न्यूनतम पाँच रुपया प्रति आदमी औसत खर्च आता है। भालू का नाच या नाटक तमाशा करने, नाचरंग देखने वाली अनगढ़ भीड़ किसी उत्तेजक आकर्षण के सहारे जुटा लेना एक बात है। पर, युग सृजन जैसे जनसाधारण की उपेक्षा अरुचि वाले प्रसंग के लिए विचारशील लोगों को इकट्ठे कर लेना कठिन है। इस कठिनाई के रहते अभ्यासी वक्ताओं को वे श्रोता कैसे मिलें ? कहाँ मिलें ? जिनके सामने वह अपना प्रयोग आरम्भ करें और प्रवीणता के स्तर तक पहुँच तक उन्हें बिठाये रखें।

समस्या जटिल है। अभ्यास में आत्महीनता और विचार विशृंखलता की नहीं, आगे चलकर यह कठिनाई भी सामने आती है कि श्रोता कैसे जुटें ? और वे बिना ऊबे अधिक दिनों तक अभ्यासी के लिए अपना समयदान उदारतापूर्वक देते रहें। आये दिन सम्मेलन कौन करे ? फिर उनमें अभ्यासी को प्रमुखता कौन दे ? ऐसी दशा में एक बड़ा अवरोध आ खड़ा होता है और गाड़ी रुक जाती है।

अड़चन का समाधान एक ही है कि कार्य अपने घर-परिवार से आरम्भ किया जाय। यह सरल है। बच्चों को कहानियाँ सुनने की सहज रुचि होती है। उनके लिए यह एक अच्छा खासा मनोरंजन है। दादी के, बाबा के पीछे वे पड़े ही रहते हैं और उन्हें फालतू समय का उपयोग कहानी सुनाने के लिए करते रहने को विवश करते हैं। घर में कोई दूसरा भी इस आवश्यकता को पूरा करने लगे तो वे उससे भी चिपट जाते हैं। दादी, बुआ, भाभी, चाची आदि को ऐसा कुछ आता हो तो वे उसके पीछे-पीछे भी लगे फिरते हैं और समय-कुसमय सुनने सुनाने की अपनी फरमाइश पेश करते हैं। उस बाल मण्डली को वक्तृत्व कला का अभ्यासी आसानी से बुलाने समेटने में सफल रह सकता है।

घरों में कहानियाँ कहने की परम्परा अनेक दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण है। इस माध्यम से बालकों का मनोरंजन ही नहीं होता, उनका ज्ञानवर्धन और चरित्र निर्माण भी इस आधार पर होता है। बचपन ही व्यक्तित्व निर्माण का असली समय है। कठिनाई यह है कि छोटी आयु में नीति सिद्धान्तों को ठीक तरह समझ सकने के लिए बौद्धिक विकास आवश्यक है। वह होता नहीं, प्रशिक्षण चाहिए ही। इसका सामंजस्य कथा-कहानियों से ही बैठता है। इसलिए न केवल बालनिर्माण के लिए वरन् समूचे परिवार के लिए कथा-कहानियों का प्रवचन आवश्यक है। उसे परिवार के भोजन-वस्त्र जैसी अनिवार्य आवश्यकता भी माना जाना चाहिए। गंभीरतापूर्वक उसकी उपयोगिता समझनी चाहिए और तत्परतापूर्वक उसकी पूर्ति होनी चाहिए।

बच्चों को आगे रखकर कहानी कहने-सुनने का प्रसंग चलता है पर यह भी एक तथ्य है कि उन्हें रस पूर्वक घर के अन्य लोग भी सुनते हैं। भले ही बच्चों की पंक्ति में वे न बैठें पर कान तो लगाये ही रहते हैं और न्यूनाधिक मात्रा में बच्चों की तरह ही उसमें रस लेते और प्रसन्न होते हैं। परोक्ष शिक्षण के लिए कथा से उपयुक्त और कोई माध्यम नहीं। प्रत्यक्ष शिक्षा से लोगों को अपना अपमान प्रतीत होता है। अहंकार को चोट लगती है और प्रतीत होता है हमें गया-गुजरा समझा जा रहा है और निर्देश देकर जलील किया जा रहा है। इस मनोवैज्ञानिक कठिनाई के कारण अनेक बार तो सत्परामर्श देने वाले विरोध मोल ले लेते हैं और सुनने वाला चिढ़कर और अधिक मात्रा में अवांछनीयता के प्रति दुराग्रही हो जाता है। सत्परामर्श देना भी आवश्यक और उसे तौहीन समझा जाना भी निश्चित। ऐसी दशा में हितोपदेश, पचतंत्र वाली शैली ही कारगर होती है। विष्णु शर्मा ने उद्दण्ड राजकुमारों को नीति कथाएँ सुना-सुनाकर ही प्रशिक्षित करने में सफलता पाई थी। यह परोक्ष शिक्षण पद्धति ही इन दिनों अधिक उपयोगी एवं सफल सिद्ध होती हुई पाई गई है। अब फिल्में तथा उपन्यास ही भले-बुरे लोकशिक्षण की प्रमुख भूमिका निभा रहे हैं। उन्हीं के आधार पर लोकमानस बन रहा है। घर-परिवार की सीमा-मर्यादा में ही यदि व्यक्तित्व विकास को आवश्यक समझा जाय तो इसी परोक्ष शिक्षण प्रक्रिया को काम में लाना चाहिए। इसके लिए कथा-उपक्रम को परिवार के दैनिक प्रचलन में सम्मलित करना चाहिए।

बाल-वृद्ध सभी के लिए समान रूप से उपयोगी एवं आकर्षक पद्धति है, परिवार में नियमित धर्मकथा की व्यवस्था। इसे एक पुण्य परम्परा के रूप में नियमित रूप से चलना चाहिए। कुछ समय पूर्व घरों में रामायण कथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होती थी। उसे अतिशय पुण्यफलदायक धर्मकृत्य माना जाता था। जिन्हें कोई अनिवार्य काम नहीं होता वे सभी रुचिपूर्वक उसमें सम्मिलित होते थे। इस कथन श्रवण में भाव श्रद्धा भी जुड़ी रहती थी। ऐसी मनोभूमि में जो भी बीजारोपण होता है, वह ठीक तरह अंकुरित होता और उगता है। सभी धार्मिक कर्मकाण्डों का ढाँचा इसी मनोविज्ञान सम्मत तथ्य को ध्यान में रखते हुए खड़ा किया गया है। विवाह ऐसे भी बिना किसी रस्म-रिवाज के हो सकते हैं पर वैसी बाजारू शादी के चिरस्थायी होने में सन्देह ही बना रहेगा। धूमधाम के साथ बरात पंचायत की उपस्थिति में, देवताओं की साक्षी और ग्रंथि बंधन, पाणिग्रहण, सप्तपदी आदि कृत्यों के साथ सम्पन्न होने पर स्वभावतः इस अनुबंध में दृढ़ता आती है। इस क्रियाकृत्य की गहरी छाप पड़ती है और विवाह बन्धन अनेक कठिनाइयों के रहते हुए किसी प्रकार निभ जाता है। कर्मकाण्डों के अभाव में मात्र वार्ता विवाह से वह दृढ़ता आ सकेगी, इसमें सन्देह है। घरों में रामायण कथा यदि धर्मश्रद्धा को आधार बनाकर कही जाय, तो उसका प्रभाव हँसी-मजाक की कहानियों की तुलना में कहीं अधिक गहरा पड़ेगा, यह निश्चित है।

रामायण कथा की ही तरह प्रज्ञा-पुराण की घर परिवार में धर्मकथा की तरह पुण्य-परम्परा बनाई जा सकती है। नीति प्रधान कथाओं की भरमार रहने से उस प्रशिक्षण का न केवल बालकों पर वरन् समूचे परिवार पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा। घर में शालीनता, सुसंस्कारिता का संवर्धन प्रकारान्तर से उस समुदाय के उज्ज्वल भविष्य का निर्धारण है। इसे मात्र मनोरंजन, परम्परा निर्वाह, धर्मकृत्य ही नहीं वरन् यह भी माना जाना चाहिए कि इस प्रयास में परिवार निर्माण का कर्त्तव्य भी निभ रहा है। भोजन, वस्त्र, शिक्षा, चिकित्सा की तरह यह भी आवश्यक है कि घर के सदस्यों को उत्कृष्टता की दिशा में अग्रसर करने वाला वातावरण भी बने, प्रशिक्षण भी मिले। यह सारी प्रक्रिया घर में प्रज्ञा पुराण की कथा वार्ता का शुभारंभ कर देने से भली प्रकार चल सकती है। धर्मश्रद्धा के साथ उसे नियत समय पर, नियत स्थान पर विधिवत स्तवन-पूजन, सहगान-कीर्तन के साथ आरम्भ और समाप्त किया जा सके तो बहुत ही अच्छा है। अन्यथा उस ग्रन्थ में दी हुई कथाओं को छोटों को एकत्रित करके कहानियों के रूप में भी नियमित रूप में कहने का उपक्रम आरम्भ किया जा सकता है। उपस्थिति पहले-पहल बालकों की हो तो हर्ज नहीं, पीछे उसमें दूसरे वयोवृद्ध खाली हाथ सम्मिलित होते चलेंगे। उपयोगिता प्रतीत हुई तो बड़े और कामकाजी लोग भी नियमित या अनियमित रूप से सम्मिलित होने लगेंगे। इसके लिए परामर्श देना भर पर्याप्त है। आग्रह न करें, दबाव न डालें। इसकी प्रतिक्रिया उल्टी हो सकती है। उचित यही है कि धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा की जाय और जो सम्मिलित होते हैं, उनको सराहते हुए औरों से भी इस प्रयास से लाभान्वित होने का अनुरोध किया जाता रहे। जो न आय उनस बुरा मानने तक बात न बढ़ने दी जाय। दबाव की अपेक्षा मीठा अनुरोध सदा प्रभावी सिद्ध होता है। इस तथ्य को नोट किया जा सकता है। परिवार में धर्म कथा के प्रचलन में भी यही नीति अपनाई जाय।

जहाँ ऐसा न बन पड़े वहाँ कहानियाँ, दैनिक पत्रों के समाचार, पुस्तकों के महत्त्वपूर्ण उद्धरण, संस्मरण पढ़कर सुनाने जैसा कुछ स्वाध्याय-सत्संग का सम्मिलित ढाँचा खड़ा किया जा सकता है, परिवार की बौद्धिक, भावनात्मक भूख बुझाने और उन्हें व्यक्तित्व के विकास में प्रोत्साहित करने के लिए भी कुछ किया ही जाना चाहिए। इस छोटे किन्तु महत्त्वपूर्ण कार्य में उपरोक्त कथन-श्रवण की पद्धति का शुभारंभ किसी न किसी रूप में आरम्भ किया ही जाना चाहिए।

इस प्रचलन का लाभ वक्तृत्व कला के अभ्यासी को भी कम नहीं मिलता। नित्य कथा कहने का अभ्यास चल पड़े तो थोड़े लोगों के बीच किया गया वह प्रयोग, परीक्षण आगे चलकर विशाल जनसमुदाय के सम्मुख सारगर्भित और प्रभावशाली वक्तृता दे सकने में भी आधारशिला का काम दे सकता है। इसमें जनता को इकट्ठा करने का सिरदर्द भी नहीं उठाना पड़ा, नित्य नया जुगाड़ बिठाने की कठिनाई भी नहीं पड़ी, परिवार की संस्कृति शिक्षा भी चली, साथ ही अपने लिए भाषण कला का नियमित रूप से अभ्यास करने का भी सुयोग बन पड़ा, घर के अन्य लोग इस कला के अभ्यासी बनना चाहें तो कथा कहने का कार्य बारी-बारी से भी इच्छुक मिल-जुलकर करते रह सकते हैं।

परिवार से बाहर कदम बढ़ाना हो तो प्रज्ञा अभियान के अन्तर्गत जन्मदिवसोत्सव मनाने की पद्धति को अग्रगामी बनाया जा सकता है। बच्चों के नामकरण, अन्नप्राशन, मुंडन, विद्यारम्भ आदि संस्कार भी ऐसे पारिवारिक आयोजनों की पूर्ति करते हैं, जिससे धार्मिक वातावरण बनाने और परिवार निर्माण के लिए आवश्यक परम्पराएँ आरम्भ करने का उत्साह उभरता है। उन कृत्यों के लिए किसी भी मित्र-परिचित को तनिक-सी चर्चा करने, स्वरूप एवं लाभ बताने भर से सहमत किया जा सकता है। इनके खर्च कुछ नहीं, दौड़-धूप और झंझट भी नहीं, हर कोई इन आयोजनों को अपने घरों में कराने, तीज-त्यौहारों जैसा उत्साह उत्पन्न करने के लिए सहमत हो सकता है। पूर्ण अभ्यास हो नहीं, चर्चा कोई करे नहीं, सहयोग कोई दे नहीं तो नितान्त सरल और अतीव उपयोगी प्रक्रिया भी कठिन प्रतीत होगी और उसे कार्यान्वित करने में अनख, आलस के कारण भारी झंझट दिखाई देगा पर यदि कोई साथी-सहायक मिल जाय और झंझट अपने सिर पर उठाकर और उमंग भरा आयोजन घर में जमा दे, तो उसके लिए किसी को भी सहमत-तत्पर किया जा सकता है। जन्मदिवसोत्सवों को परिवार निर्माण का आधार माना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गया है और प्रज्ञा अभियान की पंचसूत्री योजना में उस प्रचलन पर बहुत जोर दिया गया है। उस प्रयास को अपने सम्पर्क क्षेत्र में प्रचलित करने में भाषण कला के अभ्यासियों को विशेष रूप से प्रयास करने चाहिए। इस आधार पर उन्हें आयोजन-सम्मेलन खड़ा करने और वक्ता का प्रवचन मंच हथियाने का सहज ही अवसर मिलता रहेगा, आये दिन नये व्यक्तियों से वास्ता पड़ने और उनके सामने मुँह खोलने, प्रवचन करने का प्रयास करने का अवसर मिलना एक सुयोग ही समझा जायगा। इस प्रयास से वक्तृत्व कला का अभ्यास और लोकमंगल का परमार्थ प्रयोजन दोनों ही साथ-साथ सधते हैं। थोड़ी दौड़-धूप भर की बात है। सम्पर्क साधने, चर्चा करने और झंझट उठाने की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेने की बात कह देने भर से आये दिन एक नया स्टेज प्रवचन के लिए मिलता रह सकता है।

जन्मदिवसोत्सव से व्यक्ति निर्माण का मार्गदर्शन करने वाले अनेक कथा-प्रसंगों को प्रज्ञा-पुराण में से छाँटा जा सकता है। इसी प्रकार पर्व संस्कार मनाने के आयोजनों में उस निर्धारण के साथ जुड़े हुए उद्देश्यों को प्रज्ञा-पुराण की अमुक कथाओं द्वारा उपस्थित लोगों को भली प्रकार हृदयंगम कराया जा सकता है। इन आयोजनों के अवसर पर प्रवचन की परम्परा है, जिन्हें मात्र विषय से सम्बन्धित दार्शनिक जानकारियाँ भर हैं, वे हर आयोजन में उसी प्रतिपादन को दुहराते रहते हैं। कोई नई बात न कह पाने पर, पुनरावृत्ति करते रहने पर संकोच का अनुभव भी करते हैं। यह कठिनाई उन्हें नहीं उठानी पड़ती, जो प्रज्ञा-पुराण में से समग्र प्रगति से सम्बन्धित कथाएँ चुनकर, एक स्थान पर एक-दूसरे स्थान पर दूसरी कथाएँ कहने और निर्धारित विषय की पुष्टि करते रहने में सफल रह सकते हैं।

किसी भी स्टेज पर, किसी भी विषय या प्रसंग पर बोलने के लिए कहा जाय तो अन्य वक्ता तैयारी न होने की कठिनाई देखकर आना-कानी या मना भी कर सकते हैं, पर प्रज्ञा-पुराण के अभ्यासियों को ऐसी कठिनाई का कहीं भी, कभी सामना न करना पड़ेगा क्योंकि वे इस ग्रन्थ में से सामयिक आवश्यकता की पूर्ति कर सकने वाली कथाएँ ढूँढ़ सकते हैं और उनके साथ नमक-मिर्च मिलाकर एक अच्छा भाषण तत्काल गढ़ सकते हैं। इतनी सरल और सफल प्रक्रिया भाषण कला के अभ्यास में दूसरी हो नहीं सकती।

वक्ताओं को ही श्रोता भी जुटाने पड़ेंगे

शास्त्रकारों ने वाणी को सरस्वती और वक्ता को मुनि, मनीषी, ऋषि कहा है। दूसरों की विचारणा और भावना उभारने वाले, जीवन प्रवाह को दिशा देने वाले, वातावरण को मोड़ने वाले निश्चित रूप से विशिष्ट शक्ति सम्पन्न कहे जायेंगे, यह समर्थता वक्ता के निज के लिए अनेकों सफलताएँ उत्पन्न करती हैं, प्रगति के अनेकों द्वार खोलती हैं और साधारण को असाधारण स्तर तक उछाल देती हैं। लोकमंगल की दृष्टि से यह सर्वोच्च स्तर का परमार्थ, सत्परामर्श एवं प्रेरणा-अनुदान के माध्यम से ही बन पड़ता है। इस सामर्थ्य का समग्र विकास करने एवं उसका सदुपयोग करने से असंख्यों महामानव स्वयं कृत-कृत्य हुए और दूसरों के लिए दैवी वरदान जैसी सहायता कर सकने वालों में गिने गये। बुद्ध, तिलक, महावीर, गाँधी, विवेकानन्द, दयानन्द आदि असंख्यों लोकनायकों ने जिस माध्यम से समय की महती सेवा सम्पन्न की, उसमें उनकी वाक्शक्ति का चमत्कार अविस्मरणीय ही माना जायगा।

वाक्सिद्धि के लिए व्यक्तित्व में भावनात्मक उत्कृष्टता का समावेश करना होता है। साथ ही स्वभाव-व्यवहार में सज्जनोचित शालीनता का गहरा पुट लगाने की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए आत्म-संयम और उदार व्यवहार की उभयपक्षीय साधना में चिरकाल तक निरत रहना पड़ता है।

कहा जा चुका है कि वाणी एक शक्ति भी है और एक कला भी। शक्ति तब बनती है, जब उसके साथ वक्ता के चिन्तन, चरित्र और व्यवहार की उत्कृष्टता जुड़ गई हो। कला तब कहलाती है, जब बोलने का लहजा, करीना, तरीका, प्रवाह ठीक तरह चलाने का अभ्यास कर लिया जाय। शक्ति और कला का समन्वय होने से चमत्कारी परिस्थितियाँ सामने आती हैं। मुखर न हो सकने वाली ऋषि वाणी भी अपंग है और मात्र नाटकीय वाचालता सीखी गई हो तो उससे मंच के अभिनेताओं द्वारा कौतुक-कौतूहल उत्पन्न हो सकता है।

युगशिल्पियों की वाक्शक्ति को वाक्सिद्धि स्तर तक पहुँचाना चाहिए। इसके लिए वाणी का संयम अपनाना चाहिए। सामान्य बोलचाल में सच्चाई, नम्रता, हितकामना का समावेश करते रहना चाहिए। आत्मश्लाघा, क्रोध, विद्वेष, छल, प्रपंच का समावेश रहने पर वाणी अपनी प्रभाव शक्ति खो बैठती है। इसी प्रकार अभक्ष्य खाने वाली जिह्वा भी दग्ध, अपंग स्तर की बन जाती है और विनोद से बढ़कर और कोई गंभीर प्रभाव किसी पर नहीं पड़ता। सरस्वती की साधना यही है कि वाणी का उच्चस्तरीय उपयोग होता रहे। उसे न कहने योग्य न कहने दिया जाय, न खाने योग्य न खाने दिया जाय। इतना बन पड़े तो वाणी के शक्ति रूप में प्रकट होने की सम्भावना बन गई। शब्द को वाण और व्यक्तित्व को धनुष कहा गया है। दोनों के सम्मिलित प्रयास से ही निशाना सधता है। यह तथ्य ध्यान में बना रहे तो क्रमशः जीवनक्रम में अधिकाधिक पवित्रता एवं प्रखरता का समावेश करने वाली आत्मसाधना चलेगी और वक्ता की वाणी मंत्र बोलने लगेगी। मंत्र उच्चस्तरीय विचारणा से प्रेरित संभाषण को कहते हैं। मन्त्र की शक्ति सर्वविदित है। मन्त्र सिद्धि और वाक्सिद्धि एक ही तथ्य के दो नाम हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

युग सन्धि की बेला में प्रज्ञा-परिजनों को प्रस्तुत महाभारत में अपने अस्त्र-शस्त्र सजाने चाहिए। इसमें सत्परामर्श को ब्रह्मास्त्र की तरह प्रयुक्त करने की कुशलता इन्हीं दिनों सीखनी चाहिए। सीखने के लिए साधन चाहिए और वातावरण भी। पहलवान बनने के लिए व्यायामशाला, विद्वान बनने के लिए पाठशाला, धनी बनने के लिए उद्योगशाला का आश्रय लिये बिना गति नहीं। तैरना सीखने वालों को तालाब में प्रवेश करना होता है। भोजन पकाने के लिए आवश्यक उपकरणों वाला रसोईघर चाहिए। साधनों के अभाव में गायन-वादन, चित्र, प्रतिमा, शिल्प, चिकित्सा आदि किसी भी योग्यता का प्रमाण-परिचय दे सकना सम्भव नहीं होता। इसलिए वाक्सिद्धि के लिए जहाँ वक्ता को अपने व्यक्तित्व को, विशेषतया वाणी को संयम-साधना की कसौटी पर खरा सिद्ध करना होता है, वहीं उसकी कला में सौंदर्य, माधुर्य भर देने का अभ्यास भी आवश्यक है। हीरा खरादा जाता है, सोना गलाया जाता है तभी उनकी विशिष्टता निखरती है। आभूषण बनने की स्थिति तक उन्हें अनेक बार—अनेक प्रकार से संस्कारित किया जाता है। वाणी को सुसंस्कारी बनाने का प्रयास भी इसी प्रकार होना चाहिए।

अभ्यास की अपनी आवश्यकता है। कला के रूप में वाणी को परिष्कृत करने के लिए तदनुरूप अवसर चाहिए। इसके लिए श्रोताओं की उपस्थिति एवं मन:स्थिति में उर्वरता होनी चाहिए, अन्यथा बोया गया बीज ऐसे ही सड़ेगा-घुनेगा और चिड़ियों के पेट में चला जायगा। उसे अंकुरित-पल्लवित होने का अवसर ही न मिलेगा। ऐसे श्रोता भी हमें अपने ही प्रयत्न से जमा करने होंगे। दूसरों द्वारा एकत्रित की गई भीड़ उन्हीं के स्तर तथा रुझान की होगी जैसी कि संयोजकों की है। अपने प्रयोग अभ्यास के लिए हमें अपने ही स्तर का जनसमुदाय एकत्रित करना चाहिए और उस एकत्रीकरण में भी दूसरों का मुँह ताकने की अपेक्षा स्वयं ही पराक्रम-पुरुषार्थ करना चाहिए। दूसरे भीड़ जुटायें, मंच बनायें और उस पर अपने से जो विराजने का अनुरोध करें। इस आशा में बैठे रहने पर कदाचित ही वैसा अवसर कभी मिलेगा; क्योंकि आयोजन कभी-कभी ही किन्हीं के प्रयत्न से बहुत समय बाद सम्पन्न होते हैं। उनमें भी यह विश्वास नहीं कि अपने को बोलने का अवसर मिलेगा या नहीं। ऐसी दशा में उचित यही है कि जितनी उत्कंठा अपनी बात लोगों को सुनाने, गले उतारने की है उतनी ही चेष्टा आयोजनों के सूत्र-संचालन के निमित्त की जाय। युग-शिल्पियों को न केवल वक्ता वरन् समुदाय को एकत्रित कर सकने में समर्थ संयोजक भी होना चाहिए।

प्रज्ञा अभियान के अन्तर्गत वर्ष में कई स्थानीय आयोजन करने के लिए कहा गया है। इन्हें पूर्व आयोजन कहा गया है। वसन्त पंचमी, होली, गायत्री जयन्ती, गुरुपूर्णिमा, श्रावणी, दिवाली ऐसे ही पर्व हैं, जिन्हें सामूहिक रूप से मनाया जाना चाहिए। इन आयोजनों के साथ व्यक्ति, परिवार और समाज की उच्चस्तरीय संरचना में भारी योगदान देने वाली प्रेरणाएँ भरी पड़ी हैं। इन्हें बनाया ही इसलिए गया है कि उन्हें सामूहिक रूप से मनाया जाय और उस तथ्य का स्मरण दिलाया जाय जिनमें शालीनता बनाये रहने और सत्प्रयत्नों के लिए पराक्रम करने की प्रेरणा दी गई है। साथ ही यह भी बताया गया है कि उन्हें कार्यान्वित करने के लिए किस प्रक्रिया को किस प्रकार अपनाया जाय। इस विस्मृत पक्ष को इन दिनों विशेष रूप से उभारा जाना चाहिए। प्रयत्न यह होना चाहिए कि पर्व मनाने की सामूहिक विधि-व्यवस्था को नये सिरे से पुण्य परम्परा का एक रूप दिया और उसमें सम्मिलित रहने के लिए सर्वजनीन उत्साह उत्पन्न किया जाय।

युग सृजन के प्रवक्ताओं को वाक्शक्ति का व्यापक उपयोग करने के लिए मात्र कथन की एकांगी कार्यपद्धति अपनाने से काम नहीं चलेगा, उन्हें दो मोर्चों पर दुधारी तलवार लेकर जूझना पड़ेगा। एक कार्य यह कि वे वाणी के कलाकार बनें और उसे प्रभावी बनाने के लिए अपने चरित्र-चिन्तन को उच्चस्तरीय बनावें। दूसरा यह कि श्रवणकर्ताओं को जुटायें। उनमें इस प्रकार की अभिरुचि उत्पन्न करें। यह दोनों ही कार्य सम्पन्न कर सकने वाले ही कुशल वक्ता की भूमिका निभा सकेंगे। जो इन दो प्रसंगों के साथ जुड़े हुए दो-दो कार्यक्रमों में से एक को भी महत्त्वहीन समझेंगे, एक की भी उपेक्षा करेंगे, वे वाचाल भले ही कहला सकें, नव युग के प्रवक्ता नहीं कहे जा सकेंगे। हमें एकांगी प्रयास से संतुष्ट नहीं होना चाहिए, वरन् समग्र प्रयास का संयोजन होना चाहिए।

वाणी में शक्ति उत्पन्न करने के लिए क्या किया जाना चाहिए, उसमें कलाकारिता का समावेश कैसे हो सकता है—इस पर पिछली पंक्तियों में सैद्धान्तिक प्रकाश डाला जा चुका है; उसका व्यवहार तो हर व्यक्ति को अपनी मन:स्थिति और परिस्थिति देखते हुए स्वयं ही निर्धारित करना होगा। किसके चरित्र-चिन्तन में क्या कमी है और उसे सुधारने के लिए किन परिस्थितियों में किस प्रकार आगे बढ़ाया जा सकता है—इसका निर्धारण अन्य व्यक्ति कदाचित् ही कर सकें। कुछ सहायक वे हो सकते हैं जो साथ रहते हैं और स्थिति के साथ तालमेल बिठाने वाला परामर्श दे सकते हैं। हर वक्ता को विचारशील होना चाहिए। जनमानस को—लोकप्रवाह को सुधारने की जिम्मेदारी उठाने वालों में इतनी क्षमता भी होनी चाहिए कि अपने व्यक्तित्व और कर्तृत्व को इस ढाँचे में ढालें कि वे सच्चे अर्थों में सरस्वती के उपासक, वाक्शक्ति के धनी और लोकमानस को उलट सकने में समर्थ सिद्ध हों सकें। बड़े वरदान पाने के लिए बड़ा तप करना चाहिए। यह साधना का विषय है, उसमें धैर्य और संकल्प का समान रूप से प्रयोग करना पड़ेगा और बन्दर-वृत्ति जैसी चंचलता को एक कोने पर रखकर एकाग्र-एकनिष्ठ बनने के लिए प्रयत्नरत होना पड़ेगा। यह एक पक्ष ऐसा है,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो एकांकी संयोजन और प्रयत्न के आधार पर स्वयं ही सम्पन्न किया जा सकता है, दूसरों के सहयोग की इसमें नगण्य-सी आवश्यकता पड़ेगी।

दूसरा प्रयास थोड़ा कठिन है। उसमें न दूसरों से सम्पर्क साधने की, उन्हें सहमत करने, सहयोगी बनाने की आवश्यकता पड़ेगी। श्रोता जुटाना बड़ा काम है। दूसरे क्यों किसी की मर्जी पर चलें ? क्यों अपना समय किसी की इच्छापूर्ति के लिए दें ? विशेषतया तब, जबकि अपनी योग्यता उतनी नहीं उठ सकी कि श्रोता बहुत कुछ पाने की आशा से एकत्रित हों और बहुत दिनों तक बहुत समय तक उसके लिए आते रहें। अभ्यास में प्रवीणता एक दिन में तो आती नहीं। उसके लिए सहयोगी श्रोता न जुट सकें तो समझना चाहिए कि गाड़ी का एक पहिया टूट गया। उड़ने के लिए आवश्यक दो पंखों में से एक कट गया। एक हाथ से ताली कैसे बजेगी ?

चूहा अपना बिल स्वयं खोदता है पर साँप बने बिल में घुस पड़ने की घात लगाता है। हमें साँप नहीं चूहा बनना चाहिए। दूसरों के आयोजित सम्मेलनों की ताक में रहने और जिस-तिस के द्वारा बनाये मंचों पर जो बिराजने वाली ललक है तो सरल और सुनहरी, पर उसे व्यावहारिक नहीं मानना चाहिए। जिन्होंने अपने मंच बनाये, सम्मेलन बुलाये हैं, वे उपस्थिति को प्रसन्न करने वाले वक्ता बुलाते हैं। जिनसे पैसा लिया है, जिन्होंने समय दिया है, उनकी मर्जी पूरी न करने पर आगे का रास्ता बन्द होता है। इसलिए विभिन्न संयोजक सदा मूर्धन्यों को बुलाते हैं और नौसिखियों का पत्ता काटते हैं। फिर वे यह भी देखते हैं वक्ता लोकरुचि अनुरूप बोलने का अभ्यस्त है या नहीं। अपना मिशन लोकरुचि से विपरीत न सही भिन्न तो है ही। ऐसी दशा में लोकरुचि को प्रधानता देने वाले संयोजक उसी प्रकार की व्यवस्था बनाते और वैसे ही वक्ता बुलाते हैं। हमें अपना ही कुँआ खोदना और अपने हाथ से खींचा पानी पीने की तैयारी करनी चाहिए।

संभाषण के कुछ सारगर्भित सिद्धान्त

मंच पर बैठकर उपस्थित जनसमुदाय के सम्मुख किसी एक विषय पर प्रवचन करना ऐसा सुयोग है, जो कभी-कभी ही सम्भव हो सकता है। हर दिन हर समय वह किसी के लिए शक्य नहीं। न उससे काम ही चलता है। प्रशिक्षिण, परामर्श, उद्बोधन, यदा-कदा की बात है। पर्व-त्यौहारों को माहौल हर दिन नहीं रह सकता। उस उत्साह का प्रकटीकरण कभी-कभी ही उपयुक्त लगता है। शेष समय तो स्वाभाविक कामकाजी स्थिति में ही गुजरता है।

आदान-प्रदान ही नित्यक्रम में स्थान पाता है। ग्राहक-व्यापारी एक दूसरे से अपनी बात कहते हैं और सौदा पटा लेते हैं। पूछ-ताछ, जाँच पड़ताल, कुशल-क्षेम, स्वागत, विदाई, करना-कराना, शंका-समाधान, आदेश परिपालन, हँसना-हँसाना आदि के उपक्रम वार्तालाप के विषय होते हैं। इसी के सहारे बात बनती है और काम चलते हैं। साहित्यिक भाषा में इसे संभाषण कहते हैं। यह भी एक कला है। सच तो यह है कि उसकी प्रवीणता, मंच प्रवचनों से भी अधिक उपयोगी तथा आवश्यक है। वार्ता कुशल व्यक्ति दूसरों को प्रभावित करते और अपनी मर्जी पर चलाते देखे गये हैं। जबकि इस कौशल से रहित व्यक्ति अपने मन की बात कह ही नहीं पाते, फलतः दूसरों को प्रभावित करना, अनुकूल बनाना, समर्थन पाना सम्भव ही नहीं होता। उलटे दूसरों के तर्क, कथन-परामर्श एवं दबाव के नीचे आत्मसमर्पण करते देखे जाते हैं।

वाक्चातुर्य में प्रवीण व्यक्ति उनसे येनकेन प्रकारण ही करा लेते हैं। फिर वचन पालन की दुहाई देकर उसे करने का दबाव डालते हैं। यद्यपि वह बात उस दबाव से भी आधी-अधूरी ही गले उतरी थी और पीछे सोचने पर वह सर्वथा अनुपयुक्त प्रतीत हुई। तर्क करते, टालते न आरम्भ में बना और न इन्कारी का साहस पीछे हुआ। इस पर न करने योग्य करते, न मानते योग्य मानने देखे जाते हैं। आत्महीनता के कारण अपना तर्क, पक्ष, असमंजस, कारण प्रकट ही नहीं कर पाते और वह कह या कर बैठते हैं, जो उपयुक्त नहीं था।

यह आत्मरक्षा वाला पक्ष हुआ। अब वह प्रसंग सामने आता है, जिसमें अपनी बात किसी के सम्मुख रखनी है, उससे सहमत करना है, साथी बनाना या सहयोग लेना है। यह भी आवश्यक है। इस संसार में अकेलेपन से काम नहीं चलता। सहयोग आवश्यक है, सम्मिलित प्रयासों से ही छोटे-बड़े काम चलते हैं। शरीर के अवयव मिल-जुल कर काम करें तो स्वास्थ्य ठीक रहे। घर के लोग हिल-मिलकर रहें तो परिवार चले। व्यवसाय में भी यही बात है। पाठशाला से लेकर शासनतंत्र तक में सम्मिलित प्रयत्न ही अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। उनमें सहकार एवं अनुशासन की आवश्यकता पड़ती है। इसे बनाये रहने के लिए असन्तोष एवं विग्रह को टालने के लिए दूसरे की सुनना और अपनी कहना आवश्यक है। यही वार्तालाप या संभाषण है, जिसे जीवन निर्वाह व्यवसाय जैसे निजी और समाज शासन जैसे सामूहिक क्षेत्रों में निरन्तर कार्यान्वित करना पड़ता है। जो नित्य ही करना है, उसके गुण-दोषों को, सफलता के कारणों को, उपयुक्त स्तर की प्रयोग प्रक्रिया को भी जानना चाहिए। अन्यथा प्रसंग उपयुक्त एवं दोनों का हित होते हुए भी बात बिगड़ जायेगी। वाणी-दोष या व्यवहार अनगढ़ होने से सामने वाला चिढ़ जायेगा और उस चिढ़ की परिणति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उस उद्देश्य की विफलता में होगी, जिसे अच्छा मूड़ रहने पर सरलतापूर्वक सहमति की सफलता तक पहुँचाया जा सकता था और उससे दोनों पक्षों को लाभ मिल सकता था।

हर प्रसंग की आरम्भिक एवं आवश्यक जानकारी प्राप्त करनी होती है। रसोई पकाना, कपड़े धोना, गृह व्यवस्था में काम आने वाली साज-सँभाल न आती हो तो नव-वधू को उलाहने सहने पड़ते हैं। अपेक्षा की जाती है कि वधू अपने पितृगृह से इतना तो सीखकर ही आई होगी। यही बात श्रमिकों के सम्बन्ध में है, वे जिस मजदूरी को करते हैं। उसकी विधि-व्यवस्था से पूर्व परिचित होते हैं तो स्थाई बन जाते हैं और अधिक पारिश्रमिक पाते हैं जबकि सर्वथा अपरिचित से इच्छा होते हुए भी कुछ करते-धरते नहीं बनता। अनुभवहीनता के कारण पग-पग पर गलती होती है और झल्लाहट सुननी पड़ती है। इसी कठिनाई को समझते हुए हर महत्त्वपूर्ण काम के लिए भर्ती किये जाने वाले कर्मचारियों को ट्रेनिंग देनी पड़ती है। जब सामान्य ज्ञान और कामचलाऊ अभ्यास हो जाता है तभी कोई जिम्मेदारी का काम सौंपा जाता है।

यही बात वाक्चातुर्य या संभाषण की कुशलता के सम्बन्ध में भी है। जीभ एक अत्यन्त शक्तिशाली अस्त्र है। इसे दूसरों को अनुकूल बनाने या लाभ पहुँचाने के लिए अनिवार्य रूप से प्रयुक्त करना होता है। भ्रान्तियों का निराकरण इसके बिना हो ही नहीं सकता। सुझाव देने और कुछ नये कदम उठाने के लिए उत्साह भरने में वार्तालाप की शैली परिष्कृत हो तो ही काम चलेगा अन्यथा अभ्यस्त चिन्तन को, आदत को, ढर्रे को बदलने के लिए किसी को सहमत कर सकना सरल नहीं है। शुरूआत अच्छी न हो, आरम्भ में ही मक्खी छींक जाय, प्रथम मिलन ही अनुपयुक्त प्रभाव छोड़े तो समझना चाहिए कि गाड़ी पटरी से उतरी और बनती बात बिगड़ी।

दो व्यक्ति मिलते हैं, तो मुख खोलने से पूर्व ही आदान-प्रदान आरम्भ हो जाता है। यह प्रथम छाप छोड़ने से ही सम्बन्धित है। आँखें किसी को देखते ही उसके सम्बन्ध में मान्यता बना देती हैं और फिर स्तर की मान्यता के आधार पर वार्तालाप का सिलसिला आरम्भ होता है। अनगढ़ वेशभूषा, खुले बदन, अस्त-व्यस्त हजामत, साथ में बेतुका सामान देखकर लगता है कोई अधपगला आया। कायदा, करीना, शरीर-सज्जा, साथ वाले सामान का स्वरूप, खड़ा होने, चलने का क्रम—यह बता देता है कि नवागन्तुक को सभ्य लोगों के बीच रहने, सुसंस्कारी लोगों के साथ व्यवहार करने का अवसर मिला है या नहीं, जूते कहाँ उतारे, छाता कहाँ रखा, कमरे में प्रवेश करने से पूर्व आज्ञा माँगी या नहीं, अभिवंदन किया या नहीं, चेहरे पर मिलन की सहज मुस्कान उभरी या नहीं, बैठने के लिए उपयुक्त स्थान परखा या नहीं—यह बातें बताती हैं कि आगन्तुक व्यावहारिक सभ्यता से परिचित है या नहीं। बिना मिलने वाले की सुविधा-असुविधा का विचार किये दनदनाते हुए चले जाना और अन्यान्यों से चल रही वार्ता में व्यवधान उत्पन्न करते हुए सर्वप्रथम अपने साथ जुट जाने की आशा करना असभ्यता की निशानी है। ऐसे लोग महत्त्वपूर्ण होते हुए भी खीज उत्पन्न करते हैं और मिलते समय ही अपने अनगढ़ होने के एक-एक करके कई प्रमाण उपस्थित करते हैं। स्मरण रखा जाय कि अनगढ़ मिलन-व्यवहार भी ऐसा ही है जैसा कि किसी श्रमिक का ईमानदार, मेहनती होने पर भी बताये हुए काम से अपरिचित होने के कारण बेतुकी हरकतें करने लगना। दो व्यक्तियों का मिलन एक सुसंयोग है, उसे फलप्रद बनाने के लिए शुभारम्भ शालीनता की—सुसंस्कारिता की छाप छोड़ने से होना चाहिए।

यही बात मेजबान की ओर से मेहमान के साथ किए गए मिलन व्यवहार के सम्बन्ध में लागू होती है। उसे आगन्तुक को देखते ही प्रसन्नता व्यक्त करनी चाहिए और अभिवादन की परम्परा का तत्काल निर्वाह करना चाहिए। आवश्यक हो तो कुर्सी पर से खड़ा भी होना चाहिए और सम्मानपूर्वक बैठने का स्थान देना चाहिए। इसमें विलम्ब करना, चालू वार्ता या कार्य में रहना, फुरसत पाने पर स्वागत-नमस्कार का उपक्रम करना यह बताता है कि आगन्तुक का मूल्यांकन नहीं हुआ। उसे सम्मान नहीं मिला, यह खटकने वाली स्थिति है। वार्ता आरम्भ होने से पूर्व ही वह पृष्ठभूमि बन जाती है, जिसमें एक दूसरे के सम्बन्ध में धारणा बना ली जाती है और वह विचार-विनिमय में आदि से अन्त तक सहायक या बाधक बनी रहती है।

क्या कहा गया, उसमें क्या नफा-नुकसान था, उसकी आवश्यकता-उपयोगिता क्यों पड़ी, यह तब प्रकट होता है जब मिलन शिष्टाचार का—एक दूसरे के स्वरूप सामान देखकर स्तर जाँचने का अध्याय पूरा हो लेता है। पुस्तकों के प्रथम अध्याय में भूमिका होती है। उसे पढ़कर यह अनुमान लग जाता है कि लेखक का क्या अभिप्राय है और पुस्तक में आगे चलकर क्या बताया जायेगा। ठीक इसी प्रकार मिलन के समय ही एक दूसरे के स्तर को समझने का सही-गलत अनुमान लगा लेते हैं। यह बात काम की होगी या नहीं, यह जानने से पूर्व यह जाँच-पड़ताल होती है कि आदमी वजनदार है या नहीं। यदि लगे कि आगन्तुक, अनगढ़, असभ्य, बेतुका या घटिया स्तर का है तो उसके साथ वार्ता में भी अरुचि होती है। लगता है कि इसके साथ वार्ता करने में जो समय लगेगा वह व्यर्थ ही चला जायेगा। तब प्रयत्न यह होता है कि आगन्तुक द्वारा आरम्भ की गई वार्ता को जितनी जल्दी सम्भव हो निपटा दिया जाय। उपेक्षा, असमर्थता, अनभिज्ञता, व्यस्तता, चिन्ता, अस्वस्थता आदि के कितने ही बहाने ऐसे हैं जिनका आभास देकर आगन्तुक को जल्दी चले जाने का संकेत किया जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इतने पर भी वह न टले, तो फिर थोड़ा कड़क कर स्पष्ट शब्दों में विदा होने के लिए कहना पड़ता है। ढिठाई में यह दोष है कि अपनी ही कहती चली जाती है, दूसरे की इच्छा, सुविधा, स्थिति को देखती ही नहीं। ऐसे कही जाने पर उपेक्षित तिरस्कृत होकर लौटें, तो उसे वार्ता के विषय की अनुपयुक्ता न मानकर यही कहना होगा कि मिलन के अवसर पर अच्छी छाप छोड़ने की बात बनी नहीं और बिना सिंगनल के चल पड़ने वाली गाड़ी जैसा असमंजस खड़ा हो गया।

वार्ता आरम्भ करने से पूर्व आधी बात समाप्त हो जाती है। वैसे ही जैसे कि जन्म लेने से पूर्व माता के उदर में बालक सुसंस्कार-कुसंस्कारों की पढ़ाई पूरी कर लेता है। वार्ता किस प्रसंग पर की जाती है—यह बाद की बात है। पहली यह है कि अपनी विनयशीलता का प्रदर्शन और दूसरे की सम्मान रक्षा का निर्वाह हुआ या नहीं। हर व्यक्ति जन्मजात स्वाभिमानी होता है। यह उसका मौलिक अधिकार भी है। आत्मा की विभिन्न भूखों और आवश्यकताओं में एक सम्मान रक्षा भी है। यही आगे चल कर यश-लिप्सा, ठाट-बाट, उद्धत प्रदर्शन, दुस्साहस आदि का रूप धारण करके ऐसे जाल-जंजाल बुनती है, जो खर्चीले भी होते हैं और बेतुके भी। किन्तु किया क्या जाय, सम्मान पाने की आवश्यकता को सीधे रास्ते पूरा करने का मार्ग न मिले तो वह गलत मार्ग से फूटेगी। छोटे बच्चे भी सम्मान चाहते हैं और उसका परिचय प्यार दुलार के संकेतों द्वारा समझते हैं। तदनुरूप अपनी प्रसन्नता-अप्रसन्नता व्यक्त करते हैं। यह मान रक्षा हर किसी की होनी चाहिए। यही शिष्टाचार व्यवहार है। इसका निर्वाह वार्ता के साथ-साथ भी होना चाहिए सद्गुणों की, सफलताओं की, सूझ-बूझ की, बीच-बीच में चर्चा करते रहा जाय तो वार्ता निश्चित रूप से अधिक प्रभावी हो जायेगी। सम्मान पाकर हर किसी के गर्व की तुष्टि होती है। प्रशंसा सुनकर हर किसी की बाँछें खिल उठतीं हैं। यह रिश्वत यदि सामने वाले को देते रहा जाय तो उसका समर्थन एवं अनुग्रह अर्जित करने के मार्ग की आधी कठिनाई दूर हो जायेगी।

प्रभावी वार्ता की दूसरी विशेषता है—कहने वाले की नम्रता-विनयशीलता, इसे सज्जनता का एक अंग माना गया है। अपनी शेखी बघारते रहने वाले, पग-पग पर मियाँ मिट्ठू बनने वाले, अपनी योग्यता, सफलता, सम्पदा का बखान करते रहने वाले सोचते तो यह हैं, इससे सामने वाले पर रोब गाँठना संभव होगा और वह अपनी गरिमा के आगे नतमस्तक होगा। पर वस्तुतः यह दाव हमेशा खाली जाता है। इतना ही नहीं, उसका परिणाम कई बार तो ठीक उल्टा होता है। बखान सही किया जा रहा है, पर उसके वर्णन में जो दूसरों का समय लिया गया—उससे उत्पन्न हुई प्रतिक्रिया शेखीखोरी समझी जाती है और अहंकारी ठहराती है। इससे वक्ता के मान और स्तर दोनों को ही क्षति पहुँचती है।

वार्ता में यदि अत्यन्त आवश्यक हो तो ही मैं-मैं का उच्चारण करना चाहिए, अन्यथा उसकी चर्चा न करना ही अधिक उपयुक्त है। प्रसंगवश यदि अत्यन्त आवश्यक हो जाय तो वहाँ 'हम लोग' शब्द का प्रयोग करना चाहिए। नव-सृजन अभियान की गतिविधियों या विचार धारा के सम्बन्ध में तो यह और भी अधिक ध्यान रखने योग्य है क्योंकि इस प्रसंग में यदि कोई सफलता मिली है तो उसका श्रेय किसी एक व्यक्ति को नहीं मिल सकता। उसके पीछे अनेकों का छोटा-बड़ा सहयोग जुड़ रहा है। सफलता का श्रेय अपने ऊपर लेने में मैं-मैं की बात बार-बार कहने से कई कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। एक तो यह है कि इस प्रकार के लोग अहंकारी माने जाते हैं। सामने वाले पर बड़प्पन की छाप छोड़ने वाला प्रकारान्तर से उसे नीचा दिखाने वाला सिद्ध होता है। दूसरा इसका अर्थ यही लेता है। नम्रता के व्यवहार में वह अपने को सम्मानित विजयी मानता है और वक्ता के बार-बार मैं-मैं कहने पर अनुभव करता है कि अपना बड़प्पन जताकर प्रकारान्तर से मुझे छोटा सिद्ध किया जा रहा है। इससे उसे चोट लगती है और मन ही मन अप्रसन्नता व्यक्त करता है। तीसरी एक और कठिनाई है कि साथियों में से कोई पास बैठा हुआ सुन रहा हो या किसी के मुँह सुने तो उसे लगेगा कि जिस प्रयास या जिस सफलता में हम सबका भी छोटा-बड़ा योगदान रहा, उसको मटियामेट किया जा रहा है और श्रेय स्वयं लूटा जा रहा है। इस प्रकार साथियों के मन में असन्तोष पैदा होता है और परस्पर कलह के बीज अंकुरित होने लगते हैं। सामने वाला समझदार हुआ तो उसे भी इस बात का पता चलता है कि सम्मिलित प्रयत्नों द्वारा उपलब्ध हुई सफलताएँ एक के प्रयत्न का प्रतिफल नहीं हो सकतीं। फिर जो उस संदर्भ में श्रेयसूचक विवरण मैं-मैं के साथ प्रस्तुत कर रहा है। वह उथला-बचकाना होना चाहिए। यही है वह तथ्य जो मैं-मैं कहकर अपने बखान के लिए आतुरता व्यक्त करने वाला उल्टा घाटे में रहता है। वह जितनी छाप छोड़ता है, उससे अधिक सुनने वालों की आँखों में गिरता चला जाता है।

यदि वार्ता किसी प्रतिपादन, सिद्धान्त या कार्यक्रम के संदर्भ में की जा रही है तो भी उसका उद्गम केन्द्र वक्ता नहीं, वह मात्र वाहक है। ऐसी दशा में भी किसी सिद्धान्त की महत्ता बतानी हो तो उसकी विशेषताओं का वर्णन कर देना ही पर्याप्त है। वह सिद्धान्त किसका है ? किसने उसे प्रसारित किया; उसके लिए श्रेय ऋषियों को, शास्त्रों को, आप्त पुरुषों को देना चाहिए। यदि इससे नीचे उतरना हो तो अपने मिशन को आगे रखा जा सकता है, जिसने युगचेतना उत्पन्न करने वाली विचारधारा का सामयिक आवश्यकताओं के अनुरूप नये सिरे से निर्धारण किया है। सभी दृष्टि से 'मैं-मैं' कहने की उपयोगिता सिद्ध नहीं होती और उसका जितनी बार उच्चारण किया जाता है उतने ही बार वक्ता का वजन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

घटता है और जो कहा जा रहा है, उसके प्रति सामने वाले की सहानुभूति उत्पन्न होने का अवसर कम होता है।

नवसृजन की विचारधारा का आमतौर से विज्ञ समाज में समर्थन होना चाहिए, पर यदि कहीं उपेक्षा-अवहेलना हो रही हो तो देखना चाहिए कि इससे प्रस्तुतीकरण कहीं घटिया स्तर का—घटिया ढंग से तो नहीं हुआ। व्यवहार कुशलता में—वाक्पटुता में कमी होना एक ऐसा अवरोध है, जो बनती बात को बिगाड़ देता है। प्रश्न सिद्धान्तों का न रहकर व्यक्तिगत रोष असंतोष का बन जाता है। उसका प्रभाव व्यक्तिगत विग्रह विरोध तक सीमित न रहकर सिद्धान्तों, कार्यक्रमों का विरोध बनकर उभरता है। इसलिए आदर्शों की चर्चा करने वाले दूसरे के गले उतारने वाले को बहुत ही सावधानी और दूरदर्शिता से काम लेना चाहिए। उसे दूसरों को मान देने और अपनी विनयशीलता प्रकट करने में कहीं भी चूक नहीं करनी चाहिए। बन पड़े तो बात-बात में ऐसा प्रसंगों का समावेश करते रहना चाहिए, जिसमें अपनी नम्रता और सामने वाली की विशिष्टता की चर्चा होती चले। इसमें अत्युक्ति की, चापलूसी की भी आवश्यकता नहीं। हर व्यक्ति में जहाँ कुछ दोष होते हैं, वहाँ उसमें गुण भी रहते हैं। दोषों पर ध्यान न देकर गुणों, सफलताओं पर दृष्टि डाली जाय तो कोई भी विशेषताओं से सर्वथा रहित नहीं मिलेगा। तिल का ताड़ बनाने की जरूरत नहीं है, जिस प्रशंसा की गुंजायश है, उसी का उल्लेख कर देने से मान मिल जाता है। इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को जो जानते हैं, वे अपने-अपने क्षेत्रों में भरपूर सफलतायें पाते हैं। ठग-चापलूस प्राय: इसी हथियार को काम में लाते हैं। विलासी सामग्री बेचने वाली दुकान के 'सेल्समैन' इसी कला में प्रवीण होते हैं। जो इस हथियार का जितनी बार, जितनी खूबसूरती से प्रयोग करता है वह उतना ही अधिक बिक्री कर लेता है। जबकि रूखी प्रकृति के कर्कश लोग तुलनात्मक दृष्टि से आधा-अधूरा लाभ भी अर्जित नहीं कर पाते। यहाँ ठगी-चापलूसी की शिक्षा नहीं दी जा रही है, वरन् यह कह जा रहा है कि जिस कुशलता को अपनाकर ओछे उद्देश्यों में भी सफलता मिल सकती है, उसके उपयोग से उच्चस्तरीय कार्यों में अनुकूलता क्यों उत्पन्न नहीं की जा सकेगी ?

पहली बार असहमति रहने पर सम्बन्ध तोड़कर, खोजकर अप्रसन्नता व्यक्त करते हुए, लांछन लगाते हुए नहीं लौटना चाहिए, वरन् आगे के लिए रास्ता खुला रखना चाहिए। विदाई यह कहते हुए ही लेनी चाहिए कि "अपनी बात को ठीक तरह प्रस्तुत कर सकना शायद इस बार बन नहीं पड़ा। अगली बार इस प्रसंग पर हम लोग फिर कभी अवसर मिलने पर शान्तचित से चर्चा करेंगे तो तथ्यों को समझने-समझाने का प्रयत्न करेंगे।" वार्ता की समाप्ति पर सुनने वाले का समय लिया गया, उसके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना तो कभी भूलना ही नहीं चाहिए। हर व्यक्ति का समय अपना है, उसे अधिकार है कि अपनी वस्तु का मनमर्जी से खर्च करे। यदि किसी नवान्तुक ने बिना बुलाये आने और बिना पूछी बात का प्रसंग चालू कर दिया है, तो वस्तुत: यह सामने वाले का अनपेक्षित समय लेना ही हुआ। अच्छा तो यह होता कि कहने से पूर्व ही यह पूछ लिया गया होता कि आपका कुछ समय अमुक सन्दर्भ में चर्चा के लिए लेना क्या इस समय शक्य है ? 'हाँ' कहने पर ही वार्ता आरम्भ की जाय। पर यदि वैसा नहीं बन पड़ा तो चलते समय तो उस अनधिकारी अपहरण के लिए अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने के साथ-साथ उसकी उदारता की भी सराहना करनी चाहिए। जो ऐसा नहीं करते, किसी के भी सिर पर समय-कुसमय जा चढ़ते हैं और मनचाहे समय तक बकवास करते रहने को अपना अधिकार मानते हैं, वे सभ्यता के सामान्य नियमों से अपरचित माने जाते हैं। ऐसा अनगढ़पन किसी भी संभाषणकर्ता को, वार्ता-प्रसंग आरम्भ करने वाले को प्रदर्शित नहीं करना चाहिए।

जो कहना हो वह लम्बी भूमिका बनाने की अपेक्षा संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित कहना चाहिए। उस कथन के प्रतिपादन को कार्यान्वित करने पर व्यक्तिगत, सामूहिक लाभ क्या-क्या हो सकते हैं, न अपनाये जाने पर इन दिनों क्या-क्या हानियाँ हो रही हैं और भविष्य में क्या हो सकती हैं? इस प्रकार प्रकाश डालने से सुनने वाले का आकर्षण बढ़ता है और वह समझता है कि कोई महत्त्वपूर्ण चर्चा आरम्भ होने जा रही है। इतना न समझ सकने पर अपनी रुचि से भिन्न प्रकार की बात बेतुकी मानी जाती है और उसे करना तो दूर सुनना तक भारी पड़ता है। इसलिए प्रसंग की उपयोगिता, आवश्यकता, अनिवार्यता, महत्ता पर आरम्भ में ही प्रकाश डालना आवश्यक है। फिर जो कहना हो उसके पक्ष-विपक्ष के तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहरण प्रस्तुत करते हुए अपनी बात वजनदार होने की छाप छोड़नी चाहिए। यह कार्य मात्र भावुकता व्यक्त करने या अपनी मान्यता सुना देने से नहीं हो सकता। लोग तर्क, तथ्यों से प्रभावित होते हैं। कोई मान्यता रखता है, इससे किसी को क्या वास्ता ? अपनी बात थोपना और तत्काल उससे सहमत करा लेना, अनाधिकार चेष्टा है। अपने पक्ष को कुशल वकील की तरह प्रस्तुत करना चाहिए और सुनने वाले को अदालत मानकर उसे अपने पक्ष में करने का धैर्यपूर्वक प्रयत्न करना चाहिए। सफलता न मिलने या आंशिक सहमति मिलने पर भी खीजने की आवश्यकता नहीं। कोई वकील किसी अदालत से इसलिए दुश्मनी नहीं बाँधता कि उसके तर्क अमान्य ठहराये गये और फैसला वैसा नहीं हुआ जैसा कि उसने चाहा था। वकील सोचता है, उसका काम अपना पक्ष मजबूती से प्रस्तुत कर देना भर था, सो कर लिया गया। अदालत का सोचने का ढंग अपना है, वह अपने दृष्टिकोण से फैसला करेगी। इतनी धृष्टता कोई या वकील नहीं करता कि पक्ष प्रस्तुत करने के साथ ही यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मान्यता भी बना ले कि अपनी मर्जी का फैसला लिखा कर हटूँगा। संभाषणकर्त्ता की मनःस्थिति भी ऐसी ही होनी चाहिए। उसे हँसते-हँसाते अपना प्रसंग चलाना चाहिए और प्रारम्भ से ही यह गुंजायश रखनी चाहिए कि यदि सहमति न हुई, सहयोग न मिला तो भी कटुता उत्पन्न न होने दी जायगी और भावी विचार-विनिमय का द्वार खुला रखा जायगा। विग्रह तभी खड़ा होता है, जब थोपने की मुद्रा अपनाई जाय। इच्छित वस्तु लेकर हटने की मनोवृत्ति प्रकारान्तर से डाकुओं या बलात्कारियों जैसी मानी जाती है। यह लोकव्यवहार से बाहर की बात है। हर किसी को अपना पक्ष प्रस्तुत करने में कुशलता बरतने भर से सन्तुष्ट रहना चाहिए। दस जगह कहने पर एक जगह भी पूरी या अधूरी सफलता मिली, तो उतने पर भी प्रसन्न रहा जा सकता है। बूँद-बूँद करके घट भरता है। एक-एक का समर्थन नित्य अर्जित करते चलने पर महीने में तीस को अनुकूल बना लेना कम प्रसन्नता की बात नहीं है। दस से कहने पर एक का ही समर्थन मिला, इस सन्दर्भ में नौ की असफलता को नहीं, एक ही सफलता को ही सौभाग्य मानना चाहिए। पनडुब्बे बार-बार डुबकी लगाते हैं, पर हर बार उन्हें मोतियों से झोली भरकर लौटने का अवसर कहाँ मिलता है। आतुर लोग ही तत्काल, भरपूर, मनचाही सफलता की आशा करते हैं। चर्चा करते ही समर्थन की अपेक्षा करते हैं। यह भावुकों, आतुरों का काम है। यथार्थतावादी समझते हैं कि प्रवाह के विपरीत चर्चा करते रहने पर भी सफलता सीमित ही मिलेगी। इसलिए सदा उपलब्धियों पर प्रसन्नता व्यक्त करने, सन्तुष्ट रहने और भविष्य में अधिक अनुकूलता उत्पन्न होने की आशा सँजोये रहने का ही प्रयत्न करना चाहिए। जो असफलताओं का लेखा-जोखा रखते हैं, उन्हें निराशा घेर लेती है। हाथ-पाँव फूल जाते हैं और कुछ करते-धरते नहीं बन पड़ता। इस विपन्नता से बचने के लिए खदानें खोजने के लिए वन-वन भटकने वालों से धैर्य धारण करना सीखना चाहिए।

किससे कितनी देर बात करनी चाहिए। इस संदर्भ में सामने वाले की मनःस्थिति और परिस्थिति को बारीकी से ताड़ना चाहिए। व्यस्त लोग थोड़ी देर में सार-संक्षेप सुनने से ही जितना उनके काम का होता है, समझ लेते हैं। छोटे बच्चों की तरह पाठ पढ़ाने, आल्हा गाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। फिर कभी-कभी किसी का मूड बिगड़ा हुआ होता है, निजी कठिनाइयों के कारण उस समय मर्जी से भिन्न प्रकार की बातें सुनने का मन नहीं होता। ऐसी दशा में किसी पर लद पड़ना या अपने विचार थोपने की व्यग्रता दिखाना अनुपयुक्त है। अपनी सुविधा या मनःस्थिति क्या है, यही सब कुछ नहीं मान लेना चाहिए। सामने वाले को भी समझना चाहिए और परिस्थिति के साथ तालमेल बिठाते हुए वार्ता को हल्की या भारी करना चाहिए।

अच्छा हो चर्चा का आरम्भ सुनने वाले के स्वभाव, रुझान, व्यवसाय, परिवार के सम्बन्ध में रुचि लेते हुए, इस क्षेत्र की कठिनाइयों पर संवेदना, सहानुभूति प्रकट करते हुए, सफलताओं पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए किया जाय। हर व्यक्ति अपने आप में व्यस्त और मस्त है। उसे अपनी स्थिति ही सर्वोपरि महत्त्व की प्रतीत होती है। उसमें रस लेने वाले हितैषी एवं आत्मीय माने जाते हैं। ऐसों की अन्य बातें भी सुहाती हैं। इसलिए पूरा समय सैद्धान्तिक चर्चा में ही न लगाकर, उसका आदि और अन्त ऐसा रखना चाहिए जिसमें आत्मीयता, घनिष्ठता, पारिवारिकता का भी पुट रहे। इस प्रसंग में यदि तिहाई-चौथाई समय लग जाय तो उसे निरर्थक नहीं मानना चाहिए वरन् बीज उगाने के लिए खाद का जुगाड़ बिठाने की तरह आवश्यक ही मानना चाहिए।

आलोक का अनवरत वितरण

समुद्र बादलों के माध्यम से धरती की प्यास बुझाता है, फिर धरती उस अनुदान का आवश्यक अंश अपना काम चलाने के लिए सोख लेने के उपरान्त शेष को नदियों के माध्यम से समुद्र को वापस लौटा देती है। इस जलचक्र की भाँति ही ज्ञानचक्र को गतिशील रहना चाहिए। मनीषी अपनी चारित्रिक, बौद्धिक और भावनात्मक सम्पदा को जनसामान्य तक पहुँचायें, प्राचीनकाल के ब्राह्मण, साधु, वानप्रस्थ, परिब्राजक इसी प्रयोजन के लिए अपना जीवन समर्पित करते थे। शरीर यात्रा को न्यूनतम साधनों से सन्तुष्ट करके अपने शेष समय श्रम, ज्ञान, प्रभाव आदि को संसार के सबसे बड़े और महत्त्वपूर्ण प्रयोजन में नियोजित करते थे। कहना न होगा कि मनुष्य का सही चिन्तन ही उसके निजी अभ्युदय और समाज के लिए महान अनुदान प्रस्तुत कर सकने का एकमात्र निमित्त कारण है। यदि व्यक्ति चिन्तन की दृष्टि से भ्रष्ट एवं चरित्र की दृष्टि से दुष्ट हो तो उसके लिए इन्द्र जैसी बलिष्ठता एवं कुबेर जैसी सम्पदा होने पर भी कुछ बनने वाला नहीं। दुरुपयोग से तो अमृत भी विष बन जाता है। वैभव का सदुपयोग न बन पड़े तो उस उपलब्धि से उल्टे अधिकाधिक अनर्थ होने का संकट खड़ा होता हो, यहाँ तक कि तथाकथित प्रबुद्ध भी ब्रह्मराक्षस की महाविनाशकारी भूमिका निबाहने लगते हैं।

मनीषीगण स्वाध्याय और सत्संग के दिव्य आयुधों का प्रयोग इसीलिए करते हैं कि नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक क्षेत्रों पर आधिपत्य जमाये बैठे कषाय-कल्मषों का निराकरण सम्भव हो सके। चेतना क्षेत्र के वरिष्ठों का ही आपत्तिकालीन धर्म-कर्त्तव्य है, उन्हें लोकचेतना में सदाशयता का समावेश करने के लिए कुछ उठा न रखना चाहिए। इसके लिए जहाँ विचार क्रान्ति साहित्य लिखने, प्रकाशित करने व पढ़ाने-सुनाने का प्रयास करना चाहिए, वहाँ पर वाणीपरक समाधान का उपक्रम भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जुटाना चाहिए। जाग्रतों को प्रगति बेला में दूसरों को भी जगाना चाहिए। जलते दीपकों के लिए उचित है कि बुझे हुओं को अपनी ज्योति ऊर्जा देकर आलोक के पक्षधर बनाने के लिए भी कटिबद्ध रहें, इसके लिए मुखर बनने के अतिरिक्त और कोई सशक्त माध्यम है नहीं।

रोजमर्रा के जीवनक्रम में जो परामर्श अपनी ओर से दिया जाता है, उसमें आदर्शों के पक्षधर दर्शन का पुट रहना चाहिए। इस प्रकार साधारण वार्तालाप भी एक सीमा तक धर्म प्रवचनों की आवश्यकता पूरी करता रह सकता है। लोग अपने पास कार्यवश आते हैं और अपने को भी समय-समय पर कारणवश दूसरों के पास जाना पड़ता है। इस मिलन-उपक्रम में अपने-अपने प्रयोजन की चर्चा होती है और विचार-विनिमय चलता ही है। इस क्रिया के साथ भावक्षेत्र में उत्कृष्टता का अभिवर्धन भी यदि जुड़ा रहे तो अभिनव-आलोक का विस्तार होगा, साथ ही निकृष्टता के अन्धकार को घटाने-हटाने का उपक्रम चल पड़ेगा। इस प्रकार सामान्य परिचर्चा भी धर्मधारणा के अभिवर्धन की पुण्य प्रक्रिया चला सकती है।

इन दिनों हेय स्तर के क्रियाकलापों का बाहुल्य है। पतन का अपना गुरुत्वाकर्षण भी होता है, वह दूसरों को भी अपनी ओर खींचता है। मन भी कुसंस्कारों से लदा होने के कारण उन्हीं में रुचि लेने लगता है। निकृष्टता से भरे घटनाक्रमों, आचरणों और व्यक्तित्वों का प्रभाव दुर्बल मनों पर सहज ही पड़ते लगता है। यह छूत की तरह एक से दूसरे फिर तीसरे को लगकर महामारी का रूप ले लेता है। आदम-हब्बा अवांछनीय ललक के कारण ही आसमान से गिरकर धरती तक चले आये थे, दूसरे लोगों का भी यही हाल हुआ है। हमें रोग का मूलभूत कारण एवं स्वरूप समझना चाहिए और तदनुरूप उपचार भी अपनाना चाहिए।

आदर्शवादी व्यक्ति और घटनाक्रम इन दिनों आँखों के आगे आते नहीं, फिर अनुकरण का उत्साह कैसे जगे? इसके लिए उचित यही है कि भूतकाल में या दूर दिशा में जहाँ भी, जब भी आदर्शवादिता चरितार्थ हुई हो उसे अपने चरित्रकोष में भरते रहा जाय। डायरी में ऐसे ही चरित्रों का संचय होता रहे, जिनमें निकृष्टता अपनाने वालों की दुर्दशा और आदर्शों के साथ जुड़ने वालों के सर्वतोमुखी अभ्युदय का तारतम्य हो। इन्हीं आदर्शवादी प्रसंगों का अपने वार्तालाप में, विचार-विनिमय में; परामर्शों में गहरा पुट रहना चाहिए। इस स्तर की चर्चा को संत्सगों से बढ़कर माना जा सकता है।

चारणों का एकमात्र कार्यक्रम शूरवीरों की कथा-गाथाओं की विरुदावलि गाते हुए उपस्थितजनों में वीरता का भाव जगाना होता था ताकि वे अपना पराक्रम-अनीति के प्रतिरोध में कारगर ढंग से नियोजित कर सकें। कथा-पुराणों के सृजन और आयोजन के साथ धर्म क्षेत्र में इसी उद्देश्य का सम्पुट लगाया जाता था ताकि श्रवणकर्ता उनके अनुकरण की स्फुरणा प्राप्त कर सकें। इन दिनों तो नहीं प्राचीनकाल में उपन्यास, नाटक, अभिनय, नृत्य आदि भी किन्हीं उच्च उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विनिर्मित और प्रदर्शित किए जाते थे। अभी भी कथा साहित्य की भरमार है, लोकरुचि उसी को पढ़ना, सुनना या देखना चाहती है। स्पष्ट है कि यह माध्यम अतीव शक्तिशाली है, यह दूसरी बात है कि प्रस्तुतकर्ता उस रस में विष मिलायें और कथा साहित्य को पतन के गर्त में गिराने वाला बनायें।

सत्प्रेरणाओं को तो नित्य ही हृदय पटल तक पहुँचाया जाना चाहिए। गन्दगी की हानि से बचने के लिए घर में नित्य झाड़ू लगानी पड़ती है, स्नान नित्य किया जाता है। दूषित वातावरण, संचित कुसंस्कार एवं अवांछनीय प्रभाव सम्पर्क से भी प्रवृत्तियाँ पतनोन्मुख बनती रहती हैं। इनका परिशोधन, मलीनता निष्कासन की तरह नित्य ही होना चाहिए अन्यथा उनका संचय भारी सड़न का उपद्रव खड़ा किए बिना न रहेगा।

यह उन्नयन और परिशोधन का नियमित उपक्रम किस प्रकार चले ? इसके उत्तर में कथानकों और घटनाक्रमों का उल्लेख करना ही सर्वसुलभ है। ज्ञानयज्ञ के विशालकाय आयोजन, कुम्भपर्व जैसे धार्मिक आयोजनों में भी चलते हैं। राजनैतिक और सामाजिक संस्थायें भी समय-समय पर बड़े समारोह सम्पन्न करती हैं, उनमें तात्कालिक उत्साहवर्धन का प्रयोजन भी किसी हद तक पूरा होता है, पर कठिनाई एक ही है कि उनका प्रभाव क्षणिक होता है। प्रभाव समाप्त होते-होते उनके द्वारा उत्पन्न किया गया आवेश भी समाप्त हो जाता है। पानी के बबूले थोड़ी ही देर उचकते-मचकते हैं, फुलझड़ियों जैसी आतिशबाजी कुछ देर ही कौतुक-कौतूहल दिखा पाती है। यही बात विशाल आयोजन के सम्बन्ध में भी है, उनका प्रयोजन भी सामयिक आवेश उत्पन्न करना होता है, पर बात तो तब बनती है जब वह उत्पन्न की गई उत्तेजना किसी सृजनात्मक प्रयोजन के लिए नियोजित की जा सके।

प्रभावशाली घटनायें जीवन भर स्मरण रहती हैं, उनका भला-बुरा प्रभाव भी मन में घर कर जाता है। गाँधीजी ने बचपन में हरिश्चन्द्र नाटक देखा, वह दृश्य उनके मन में इतनी गहराई तक प्रवेश कर गया कि वैसा ही बनने का निश्चय, उनकी जीवनचर्या का अंग बनकर रहा। क्रोंच पक्षी के वध के समय उसके विलाप ने एक निष्ठुर मन में से करुणा का स्रोत उभारा और उसे आदि कवि बना दिया। घटनायें यदि प्रभावी हों, प्रदर्शन-प्रस्तुतीकरण यदि प्रभावी ढंग से किया जा सके तो उनका गहन प्रभाव उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता। यह तथ्य यदि विचार क्षेत्र को प्रभावित करने वाले समुदाय को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समझाया जा सके, तो उनका प्रचार कौशल सत्प्रवृत्ति संवर्धन के निमित्त नियोजित किया जा सकता है और उसका चमत्कारी प्रभाव भी हो सकता है।

साहित्यकारों की लेखनी, चित्रकारों की तूलिका, गीतकारों की संवेदना और अभिनेताओं की कला यदि लोकचेतना को उत्कृष्टता के साथ जोड़ने वाला मार्ग अपना सके, तो लोकमानस का कायाकल्प करने में कोई बड़ी अड़चन शेष न रहे, पर यह तो बड़ों की बड़ी बात है। उतना वैभव या पराक्रम अपने पास न हो तो भी निराश होने जैसी कोई बात नहीं है। टिटहरी, गिलहरी और शबरी जैसी असहाय स्थिति में भी भावनाशील होने पर बहुत कुछ किया जा सकता है। अपनी वाणी का अमृत मूर्छित और विकृत जनमानस पर छिड़क कर उसे नवजीवन प्रदान किया जा सकता है।

हम सामान्य वार्तालाप में ऐतिहासिक, पौराणिक सामयिक, इर्द गिर्द बिखरे हुए, आँखों देखे, कानों सुने, समाचार पत्रों में पढ़े ऐसे घटनाक्रमों का पुट लगाते रह सकते हैं, जिनमें बुराइयों से बिरत करने और भलाइयों के साथ जोड़ने वाले निष्कर्ष जुड़े हुए हों। ऐसी प्रेरक घटनाओं की कमी नहीं, आवश्यकता मात्र उन्हें तलाशने, संग्रह करने की रुचि जगाने भर की है। यदि वह उत्साह उभरे तो अपनी डायरी देखते-देखते ऐसे अंशों-संकलनों से भर जायेगी। अवसर और आवश्यकता के अनुरूप अपने परामर्श में उनका पुट लगाते रहा जाय तो वार्तालाप अधिक रोचक, अधिक सटीक और अधिक प्रभावोत्पादक बनकर रहेगा।

मध्यकाल के अंधकार युग में हर क्षेत्र में विकृतियों के घटाटोप छा गये, इसलिए उन दिनों के घटनाक्रमों और कथानकों में भी अवांछनीयता बुरी तरह घर कर गई। इन दिनों देवताओं, अवतारों, राजाओं, सन्तों तक के विशुद्ध कथानक नहीं मिलते, ऐसी दशा में किसी ग्रन्थ विशेष या चरित्र-विशेष का समग्र विवरण बड़ा अटपटा बन पड़ा है। जितने अंश प्रेरक हैं उतने ही हेय भी उनमें घुस पड़े हैं, इसलिए कथा-प्रसंगों की सामर्थ्य को देखते हुए उनका उपयोग तो करना चाहिए, पर समग्रता का आग्रह न किया जाय। राजहंस मात्र मोती चुगते हैं और उस जलाशय में रह रहे अगणित कीड़े-मकोड़ों को छोड़ देते हैं—यही नीर, क्षीर विवेक प्रेरक कथाओं के संकलन में भी निभाना चाहिए, इसमें धर्म-सम्प्रदाय दिशा, काल आदि को बाधक न बनने दिया जाय। स्मरण रखा जाय कि सार्थक और प्रेरक वार्तालाप में तदनुरूप कथा-प्रसंगों का पुट लगाना ही चाहिए। महान दार्शनिकों में सुकरात, अरस्तु, लाओत्से, रामकृष्ण परमहंस आदि की शैली सामान्य वार्तालाप में उदाहरणों की भरमार रहने के कारण ही रोचक-प्रिय बनी और सफल हुई।

प्रयोग और अभ्यास

जिन्होंने प्रथम बार किसी सवार को साइकिल दौड़ाते हुए देखा होगा, उन्हें इस बात का आश्चर्य हुआ होगा कि यह सब कैसे सम्भव हो सका ? एक इंच चौड़ाई, बिना किसी सहारे के किस प्रकार इतना वजन उठाती और दौड़ लगाती है ? पर जब वही दर्शक उस विद्या को सीख जाता है, तब प्रतीत होता है कि यह सब कितना सरल था। दौड़ के कारण उत्पन्न हुई गति से सन्तुलन बन जाता है और उस कौतूहल भरी हल्की-फुल्की गाड़ी के लिए लम्बी मंजिल पार कर सकना सम्भव हो जाता है।

यही बात जीभ चलाने के सम्बन्ध में भी है, उसके लिए देर तक बोलते रहना भी सम्भव है और उसमें सरसता एवं विचार-प्रेरणा का समुचित सम्पुट लगाये रहना भी—यह अभ्यास भर की बात है। झिझक हट सके तो समझना चाहिए कि आधी मंजिल पार हो गई। मूलतः आत्मविश्वास का अभाव ही इस संदर्भ में प्रधान व्यवधान है, झिझक इसी बात की रहती है कि अपनी योग्यता कम है। व्यक्तित्व छोटा है, श्रोताओं में से अनेक बुद्धिमान-विद्वान भी हैं और पूर्व परिचित भी। ऐसी दशा में प्रवचन के लिए मुँह खोला जाय तो सम्भव है कि कथन में घटियापन रहे ? वे उस कमी को ताड़ लें, मन ही मन उपहास करें और वक्ता के प्रति छोटा मन बनाकर लौटें।

इसी असमंजस में जो कहना था, वह विस्मृत हो जाता है। अपनी समीक्षा में अपने को अनुत्तीर्ण अनुभव करने भर से सन्तुलन और भी अधिक गड़बड़ा जाता है। होंठ सूखने लगते हैं, अटपटे शब्द मुँह से निकलते हैं और अन्त में हार मानकर बैठ जाना पड़ता है—यह सब आत्महीनताजन्य असमंजस का ही प्रतिफल है। वही भय एवं संकोच बनकर मस्तिष्क पर सवार होता है और वाणी पर भारी दबाव बनकर चढ़ बैठता है। एकाध बार के प्रारम्भिक प्रयास में असफलता मिलने पर, दुर्बल मन वालों का यह विश्वास बन जाता है कि वे भाषण कार्य के लिये सर्वथा अयोग्य हैं। उन्हें इस सन्दर्भ में सफलता मिल नहीं सकेगी, उनकी संरचना ही ऐसी है, भाग्य ही खोटा है। पस्त-हिम्मत लोगों की आधी क्षमता अनायास ही समाप्त हो जाती है। ऐसी दशा में प्रगति की दिशा में कुछ कदम बढ़ाना सम्भव भी हो तो कैसे?

जिनमें विश्व की सर्वश्रेष्ठ समझी जाने वाली कला 'भाषण कला' के लिए अभिरुचि है, जो उसकी उपयोगिता और आवश्यकता अनुभव करते हैं, जिन्हें लगता है कि सम्पर्क क्षेत्र को ऊँचा उठाने, आगे बढ़ाने, भटकाव से छुड़ाने और प्रगति पथ पर अग्रसर करने की श्रेष्ठतम सेवा की जा सकती है, उन्हें मुखर होने के लिये प्रयत्नशील होना ही चाहिए। इसके अनवरत प्रयास का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निश्चय करना ही चाहिये और तब तक लगे ही रहने का मन बनाना चाहिए, जब तक कि प्रवीणता स्तर की सफलता हस्तगत न हो ले।

घुड़सवारी सीखने में कई बार गिरना भी पड़ता है, साइकिल का अभ्यास करते समय कइयों को चोटें भी आती हैं। खिलाड़ी आरम्भ से ही बाजी जीतने लायक फुर्ती अर्जित नहीं करते। विद्यार्थियों के सभी सवाल सही नहीं होते हैं। फिर भी वे प्रयास नहीं छोड़ते और एक दिन अपने विषय में प्रवीणता प्राप्त कर लेते हैं। संगीतकारों, मूर्तिकारों, चित्रकारों की तरह प्रवचन कार्य अपने ढंग का कला-कौशल है। उसके लिये अनवरत अभ्यास और अदम्य निश्चय की आवश्यकता है। भले ही उसमें समय क्यों न लगे।

आत्महीनता और श्रोताओं की भयावहता, यह दो ही ऐसे कारण हैं, जिनसे किसी के वक्ता बनने में अवरोध पड़ता है। तीसरा कारण यह हो सकता है कि विषय का निर्धारण, उसकी क्रमबद्ध रूपरेखा का विनिर्मित न किया जाना। अनुभव और अभ्यास की कमी से नये कार्य में प्रवृत्त होते हुए गड़बड़ा जाना, लड़खड़ाकर मानसिक सन्तुलन गँवा बैठना, अस्त-व्यस्त बोलने पर अपने आप में असफलता अनुभव करना, पसीने-पसीने हो जाना सम्भव है। इस स्थिति से बचने के लिये पूर्व से ही पर्याप्त तैयारी कर लेनी चाहिये।

जिस कार्य में एक सफल हो चुका है, उसमें दूसरा भी हो सकता है। शर्त एक ही है कि उसके लिये समुचित अध्यवसाय अपनाया जाय। अपने सम्बन्ध में हीनता की भावना नहीं रखनी चाहिये। क्योंकि अपने अभियान का विस्तार करने का कार्य प्रायः वैसा ही है, जैसा कि हनुमान, नारद आदि ने हाथ में ले लिया था। संदेशवाहक होने के नाते किसी की निजी योग्यता या स्थिति के सम्बन्ध में हीनता का भाव नहीं होना चाहिये। विचार तो महाकाल के हैं। प्रचार तो युग चेतना का है। अपने को तो लाउडस्पीकर, डाकिया या संदेशवाहक की तरह माना जाना चाहिये। जिसके संदेशों का परिवहन करना है, वह महान शक्ति है। प्रभाव उत्पन्न करना तो उसका काम है, फिर अपने को तो नगण्य माध्यम बनना है। ऐसी दशा में अपनी योग्यता में कमी होने या न होने की बात से अपमान क्यों अनुभव किया जाय ?

महान मिशन और महान सूत्र-संचालक का संदेश लेकर किसी के सामने मुखर होने में अपना निज का अहंकार आड़े नहीं आता। ऐसी दशा में राजकीय मुनादी पीटने वाले की तरह बड़े से बड़े लोगों के सामने अपना अभिमत प्रकट किया जा सकता है। रावण की सभा में अंगद संदेश लेकर गये थे, उनके जमे पैर को सभी असुर मिलकर भी नहीं उखाड़ सके थे। बुद्ध का संदेश लेकर भिक्षुगण संसार भर के राजपरिवारों, विद्वानों और प्रजाजनों के सामने निर्भीक भाव से प्रस्तुत हुए थे। ईसा का सन्देश पादरियों ने विश्व के कोने-कोने में परम श्रद्धा के साथ पहुँचाया। गाँधी के सत्याग्रही सर्वोदय का लक्ष्य लेकर गाँव-गाँव अलख जगाते हुए घूमे। उनमें से किसी को भी अपनी योग्यता, शिक्षा, महत्ता आदि का ध्यान न आया और प्रयासों में किसी ने भी झिझक-संकोच का अनुभव नहीं किया। फिर प्रज्ञा प्रचारकों को ही संदेश वाहक की तरह कहीं भी जाने में क्यों संकोच होना चाहिए ?

चूँकि अपना लक्ष्य और प्रतिपादन महान है और अन्य लोग उस क्षेत्र में प्रायः पिछड़े हुए हैं। उनका चरित्र और व्यवहार ऐसा नहीं, जैसा कि वक्ता अपने आचरण और प्रतिपादन से प्रकट कर रहा है। ऐसी दशा में श्रोतागण अपने से छोटे ही पड़ते हैं। भले ही वे अपनी शिक्षा, सम्पदा, प्रतिभा, पदवी आदि की दृष्टि में बढ़े-चढ़े ही क्यों न हों ? अपने विषय का पारंगत अध्यापक, जब विद्यार्थियों को निर्भीक भाव से पढ़ा सकता है, तो प्रज्ञा प्रचारकों को किसी के सामने अपनी बात प्रस्तुत करने में संकोच क्यों होना चाहिये ?

यदि अपने को छोटा मानकर ही चलना हो तो समझना चाहिए कि हम छोटे विद्यार्थी हैं और उपस्थित श्रोताओं को अध्यापक मानकर अपना पाठ सुना रहे हैं, वह सही एवं पूरा है कि नहीं ? इस स्थिति में भी अपनी वक्तृता को खुले मन से देखा जा सकता है। हर हालत में श्रेष्ठता-संवर्धन का प्रयोजन लेकर की गई वक्तृता में झिझकने का कोई कारण नहीं होना चाहिये।

नौसिखिया को इस कला का अभ्यास छोटे बालकों से करना चाहिये। उनका व्यक्तित्व दबाव नहीं डालता। वे भूलें पकड़ने की स्थिति में नहीं होते, कहानियाँ सुनने के लिए उनका आग्रह रहता है। इसलिए जब भी सुविधा हो उनकी समझ की परिधि में आ सकने वाली कहानियाँ प्रेरणायें भरते हुए, रुचि जगाते हुए, कौतूहलवर्धक बनाते हुए कहनी चाहिए। यदि सुनने वालों में बड़ी आयु वाले भी हों, तो फिर प्रज्ञा-पुराण में दी गई कथायें सुनाते रहने का उपक्रम नियमित रूप से चलाया जाना चाहिये। नित्य के अभ्यास से किसी भी कला में निखार आता है, किसी भी प्रयोग में प्रवीणता हस्तगत होती है।

कहा जा चुका है कि अपने एकान्त कमरे में रखी हुई पुस्तकों, वस्तुओं को ही श्रोता माना जाय और एकाकी रहकर किसी विषय विशेष पर भाषण आरम्भ कर दिया जाय। खेतों में पौधों को, उद्यान में वृक्षों को, नदी किनारे पड़े पत्थरों को ही श्रोता मानकर नियमित अभ्यास में प्रवृत्त रहा जा सकता है। दर्पण के आगे खड़े होकर अपने ही फोटो को दूसरा विश्वस्त व्यक्ति मानते हुए अपनी मुख-मुद्रा के उतार-चढ़ाव को देखते रहा जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय का निर्धारण बोलने से पहले ही कर लिया जाना चाहिए। इसके छोटे-छोटे प्वाइण्ट बनाकर उन्हें क्रमबद्ध रूप से सजा लेना चाहिए। आरम्भ कहाँ से किया जाय और फिर उसमें किस क्रम से आगे के विषयों को जमाया जाय, इसकी रूपरेखा पहले ही बना ली जानी चाहिये। मात्र विवेचनात्मक भाषण रूखे होते हैं। उन्हें सर्वसाधारण के समझने योग्य बनाने के लिये आवश्यक है कि उसमें घटनाओं, क्रियाकलापों, तथ्यों, संस्मरणों, प्रमाणों, उदाहरणों का भी पुट लगता चले। इसी आधार पर कोई प्रस्तुतीकरण रोचक एवं सर्व साधारण के समझने योग्य बनता है।

पूर्व अभ्यास के उपरान्त प्रदर्शन का तरीका सही भी है और अनुभूत भी। संगीतकार, नाटककार, अभिनेता आदि जनता के सामने आने से पूर्व अपने-अपने प्रस्तुतीकरण का अनेक बार अभ्यास कर चुके होते हैं। कला-कौशल के, शिल्प-कारखानों के, अगले दिनों जो काम सँभालने हैं, स्कूलों में उसका पूर्व रिहर्सल किया जाता है और उसके प्रचार-विस्तार में लम्बा समय लगाया जाता है। यदि कोई व्यक्ति किसी कार्य में, बिना किसी पूर्व तैयारी के लग पड़े तो असफलता ही मिलेगी और उपहासास्पद ही बनना पड़ेगा। लोक व्यवहार में यह पूर्वाभ्यास की प्रक्रिया सर्वमान्य और नितान्त आवश्यक समझी जाती है। इससे बच निकलने का और कोई छोटा सरल मार्ग है नहीं।

अनेक विषयों पर बोलने और किसी भी प्रकृति के प्रवचन हेतु मंच पर जा धमकने की भूल नहीं करनी चाहिए। किसी व्यक्ति ने अध्ययन भले ही कितना ही अधिक क्यों न किया हो, पर विचारों को क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत करने का कौशल कुछ ही विषयों में किया जा सकता है। देखा गया है कि गायक गोष्ठियों में अपने अभ्यस्त गीतों में से ही कुछ दुहराते रहते हैं। हर सभा में नये गीत सुनाने की उतावली वे नहीं करते। नट भी कुछ ही करतबों को जगह-जगह दिखाते हैं। सरकस वालों के प्रदर्शनों की भी हर बार पुनरावृत्ति होती रहती है। यदि हर नई जगह पर नये खेल प्रदर्शन की नीति से अपनाने लगें, तो अनेकानेक निर्धारण में से कोई भी सफल न हो सकेगा। सभी काने, कुबड़े, लँगड़े-लूले, आधे-अधूरे रह जायेंगे। इसलिए उचित यही है कि अपने लक्ष्य के अनुरूप कुछ ही विषय प्रवचनों में बाँध लेने चाहिए। वे मँजते रहेंगे और अभिव्यक्तियों के साथ भावनाओं को गूँथना सम्भव हो सकेगा।

भाषण को प्रभावशाली बनाने के लिए अंग-संचालन का हल्के स्तर पर अभिनय करते रहना भी उचित समझा जाता है। अभिनेत्रियों, नर्तकियों का सारा शरीर थिरकन के मूड में होता है। वक्ताओं को उतना आगे जाने की तो जरूरत नहीं है, पर विचार प्रवाह के अनुरूप वाणी को हल्का, भारी और मध्यवर्ती तो बनाया ही जा सकता है। इन उतार-चढ़ावों से अभिव्यक्ति अधिक मुखर होती रहती है। हाथों का, अँगुलियों का यत्किंचित हेर-फेर भी उद्देश्यों को प्रकट करने में सहायक होता है। वक्तृता के अभिनय में आँखें, भौंहें, होंठ, गरदन, कन्धे अपनी भूमिका निभाते हैं। शर्त एक ही है कि वह सब ऊपर से थोपी हुई कृत्रिमता न हो। उसमें सहज, स्वाभाविकता का ऐसा पुट रहना चाहिए, जिससे प्रतीत हो कि जो अंग हिल-डुल रहे हैं, वे प्रतिपादन के साथ जुड़ी हुई भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति मात्र हैं। जो भाव वक्ता को प्रभावित करते हैं, वे ही सुनने वाले के चेहरे पर भी उतरने लगते हैं। श्रोता समुदाय वस्तुतः वक्ता के सामने रखा हुआ दर्पण है। सुनने वालों की प्रतिक्रिया उनके चेहरे पर उभरने वाले भावों को देखकर सरलतापूर्वक जानी जा सकती है। इसलिए कुशल वक्ता, स्टेज पर पोथी पढ़ने की तरह कुछ कहते रहने भर की चिह्न पूजा नहीं करते, वरन् अपने कथन में सन्निहित भावनाओं से अपने को इतना भावमग्न करते हैं कि उसकी प्रतिक्रिया बोलते समय प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने लगे।

बोलना सीखने के कुछ और भी उपाय हैं, जैसे पुस्तकों या लेख प्रसंगों को पढ़कर सुनाना। साथ ही उनको अधिक स्पष्ट करते चलने के लिए अपनी ओर से टिप्पणियाँ जोड़ना। पौराणिक कथावाचक प्रायः इस शैली को अपनाते हैं।

व्याख्यान प्रक्रिया के अभ्यास के लिये सचित्र प्रदर्शनी की व्यवस्था करना और दृश्यों का स्वरूप समझाते हुए, उनके साथ जुड़ी हुई प्रेरणाओं को व्यक्त करना, यह दोनों ही सुलभ हैं। छपे हुए बड़े साइज के चित्र विक्रेताओं के यहाँ अनेक विषयों पर, अनेक आकृतियों वाले बिकते हैं। इनमें प्रायः सभी उपयोगी विषयों का समावेश होता है। यदि अपना विषय सामान्य प्रचलनों से अधिक भिन्न हो तो अपनी निजी चित्र प्रदर्शनी बनाने की आवश्यकता पड़ती है, अन्यथा बड़े चित्र-विक्रेताओं की दुकानों से अपने विषयों के चित्र खरीदे जा सकते हैं और उनके सहारे प्रस्तुत विषयों की व्याख्या-विवेचना करते हुए दर्शकों को समझाने के साथ-साथ अपनी वक्तृत्व कला का भी अभ्यास बढ़ाया जा सकता है। स्लाइड प्रोजेक्टर-प्रकाश चित्र यंत्रों में भी यही सिद्धान्त प्रयुक्त होता है। उसमें भी दृश्य को, श्रव्य में परिणित करना पड़ता है।

यह निजी अभ्यास हैं। अच्छे और कुशल वक्ताओं की उपस्थिति वाले छोटे-बड़े आयोजनों में सम्मिलित होते रहा जाय और उनकी वक्तृता कला के साथ जुड़े हुए उपयोगी तथ्यों को समझने और अपनाने के लिए प्रयत्न एवं अभ्यास करते रहा जाय। इससे अपनी वक्तृता में अनेक विशेषतायें उभर आती हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सफल वक्तृता की रहस्यमयी पृष्ठभूमि

वक्ता पर सभी दर्शकों की नजर रहती है। उपस्थित जन मात्र शब्दों को ही कान के माध्यम से समझने का प्रयत्न नहीं करते, वरन् वक्ता के व्यक्तित्व की भी बहुमुखी परख करते हैं। उसका अस्तित्व चेहरे पर झलकता है। सौम्यता, ओजस्विता, उद्दण्डता, अस्त-व्यस्तता आदि की परख भी साथ-साथ ही होती चलती है। भाषण का विषय और वक्ता का व्यक्तित्व, दोनों के सम्मिश्रण से ही एक पूरी बात बनती है। यदि ऐसा न होता तो टेपरिकार्डर, लाउडस्पीकर के सहारे घर बैठे सभा-सम्मेलनों के प्रतिपादनों का लाभ उठा लिया जाता।

वक्ता को जहाँ प्रवचन के लिए वाणी को मुखर, भाषा को प्राञ्जल्य विषय को क्रमबद्ध रूप से पूर्व निर्धारित रखना पड़ता है, वहाँ अपना व्यक्तित्व भी इस प्रकार सम्भालना, सँजोना पड़ता है कि वह विचार परिवर्तन, चरित्र परिवर्तन, लक्ष्य परिवर्तन आदि का प्रयोजन पूरा कर सकने में प्रभावी एवं समर्थ सिद्ध हो सके। प्रतिपादन के अनुरूप ही वक्ता का व्यक्तित्व भी होना चाहिए।

भाषणों के क्रमबद्ध प्वाइंट अस्त-व्यस्त न होने पायें, इसलिए उन्हें प्रायः कागज पर नोट कर लिया जाता है। उस पर दर्शकों की आँख बचाकर या खुले रूप में भी बीच-बीच में दृष्टि डालते रहा जाय, ताकि प्रवचन के अन्त तक भी तथ्यों की क्रमबद्धता असंगत न होने पाये। जिनकी धारणा शक्ति प्रखर है, जिनने अपने भाषणों को रट कर अभ्यास में उतार लिया है, उनकी बात दूसरी है, पर नव अभ्यासियों को तो सहारा लेकर चलने में ही सुविधा रहती है।

वेषभूषा भी व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करती है। वक्ता को इस सन्दर्भ में जागरूक रहना चाहिए। चूँकि अपने यहाँ धर्मतन्त्र से लोक शिक्षण का, चरित्र, चिन्तन और व्यवहार में समग्र परिवर्तन की प्रखर प्रक्रिया का समावेश है, इसलिए उसी स्तर पर परिस्थिति के अनुरूप वस्त्र पहनने चाहिए। अपनी संस्कृति में धोती-कुर्ता खपता है। खादी की अपनी प्रतिष्ठा, महत्ता और सात्विकता है। वस्त्रों को धुला हुआ, ठीक से सिला हुआ और करीने से पहना हुआ होना चाहिए। अस्त-व्यस्तता की छाप कपड़ों पर हो, वे मैले-कुचैले-बेढंगे हों, तो उससे उजागर होता है कि व्यक्ति का स्वभाव भी ऐसा ही अनगढ़ होना चाहिये। केश विन्यास बनाकर हर कोई वक्ता धार्मिक मंच पर फिट नहीं बैठता। दाढ़ी-मूँछों के बाल चाहे रखे हुए हों या साफ किए हुए, यह इच्छानुरूप हो सकता है, पर संदर्भ में लापरवाही बरती गई प्रतीत नहीं होनी चाहिए। बोलते समय चेहरे को बार-बार कुरेदना भी फूहड़पन है। बीच-बीच में नाक में अँगुली डालना, कान खुजलाना, गरदन मटकाना जैसी आदतें अशिष्टता में गिनी जाती हैं।

पैरों को हाथी की तरह उठाना, रखना या बेतुकेपन के साथ मटकाना बताता है कि वक्ता ने नागरिक व्यवहार-सामाजिक शिष्टाचार न तो जाना है और न उसके व्यवहार का अभ्यास है। मुँह फाड़कर जमुहाई लेना, बिना नाक पर रूमाल रखे छींकना, शरीर के जिस-तिस अंग को खुजलाना, मोड़ना-मरोड़ना अपने घर पर तो क्षम्य भी है, परन्तु जनसमुदाय के समक्ष विशेषतया प्रवचन मंच पर ऐसी हरकतें करना असभ्यता का ही सूचक माना जाता है। उससे वक्ता के प्रति जो आकर्षण था, उसमें कमी आती है।

आवाज मध्यम वृत्ति की होनी चाहिए। न बहुत चीखकर बोला जाय, न इतना जल्दी कि शब्द ही लिपट जायें और सुनने वाले उसे ठीक तरह समझ ही न सकें। गति इतनी मन्द भी न हो कि रुक-रुककर बोलने जैसा अभ्यास होने लगे। अतिशय धीमे स्वर में बोलने पर भी सुनने वालों को कठिनाई होती है। ठहाका मारकर हँसना, उत्तेजित होना, विरोधियों को अपशब्द कहना, व्यंग्य-कटाक्ष और उपहास भरी भाषा का प्रयोग करना भी शालीनता के विरुद्ध है। चर्चा के बीच बचकाने, ओछे और घटिया प्रसंगों को भी नहीं उठने देना चाहिए, अधिक से अधिक उसकी ओर दबी जबान से संकेत भर किया जा सकता है। सभ्यजनों की गोष्ठियों में सभ्यजन किस प्रकार परस्पर वार्तालाप करते हैं—इसका अनुभव प्राप्त करने के लिए उस प्रकार के आयोजनों में सम्मिलित होते रहने, देखने और सीखने का प्रयत्न करना चाहिए।

हर वक्ता को उपरोक्त कसौटियों पर कसा ही जाता है। देखना यह है कि मंच पर जाने से पूर्व वक्ता ने अपने आपको इन सब प्रसंगों की परीक्षा में उत्तीर्ण होने की स्थिति में बना लिया है या नहीं ? बिना तैयारी किए वकील-प्रोफेसर आदि भी कचहरी में या पढ़ाने नहीं जाते। यदि जाते हैं तो अण्डबण्ड-बेतुका बोलते हैं। सुनने वालों को यह ताड़ने में देर नहीं लगती कि बिना पूर्व तैयारी के ही भागते-दौड़ते वक्ता का स्थान ग्रहण कर लिया गया है।

दर्शकों के सामने मुस्कराती और नम्रता भरी मुख-मुद्रा लेकर ही अपनी बात कहने के लिए पहुँचना चाहिए, पहुँचने पर उपस्थितजनों के प्रति हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर नमन करना वक्ता की शालीनता है, उसे किसी भी कारण हाथ से जाने नहीं देना चाहिए।

मंच पर अपना दृश्य स्तर पर प्रकट करने भर तक बात सीमित नहीं है। उपस्थित जनसमुदाय यह भी जानना चाहता है कि जो बोलने आया है, उसकी अब तक की जीवन गाथा के प्रेरणाप्रद घटनाक्रम क्या हैं ? उसकी अद्यावधि जीवनचर्या किन-किन क्रियाकलापों में व्यतीत हुई है ? इस जानकारी के बिना वक्ता का ऐसा स्वरूप नहीं बनता जिससे उसके प्रति सम्मान बढ़े और उससे उत्पन्न श्रद्धा के आधार पर कथन को प्रामाणिक एवं हृदयंगम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करने योग्य माना जा सके। इसके लिए समय रहते लम्बी जीवन साधनों में संलग्न रहने की आवश्यकता पड़ती है। जिन्हें प्रामाणिक वक्ता बनना हो, उन्हें न केवल बोलने की कला सीखनी चाहिए वरन् सामान्य लोगों की तुलना में अपनी बढ़ी-चढ़ी उत्कृष्टता का, परमार्थ परायणता का इतिहास सृजन करने के लिए भी प्रयत्नरत रहना चाहिए।

अब लोगों की दिलचस्पी इसमें कम रह गई है कि कौन कितना धनी, शिक्षित या भूतकाल में बड़ा पदाधिकारी रहा है। सम्पन्नता के दिखावे के प्रति श्रद्धा अब दिन-दिन घटती जा रही है। साम्यवाद और अध्यात्मवाद की कसौटियाँ सम्पन्नों को संकीर्ण स्वार्थ परायणता को प्रामाणिक करने में बड़ी सफलता प्राप्त कर रही हैं। यदि इन्हीं बातों का परिचय देते हुए वक्ता से जोड़ा जाय, तो ऐसा नहीं कि लोकश्रद्धा न जगे। जिसका सम्मान ही अन्तःकरण में उजागर न हो, उसका प्रवचन मात्र जानकारियों के आदान-प्रदान में काम आ सकता है, पर ऐसा नहीं हो सकता कि उसे चिन्तन और चरित्र में समाविष्ट किया जा सके और उससे प्रकाश एवं प्रेरणा ग्रहण करने के लिए दबाव पड़ सके।

सभा में अधिक संख्या में लोगों की उपस्थिति से भी किसी को यह अनुमान नहीं लगा लेना चाहिए कि आयोजन कितना सफल या असफल हुआ ? कम संख्या में प्रतिभावानों की उपस्थिति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो सकती है। मेलों-ठेलों में होने वाली भारी धकापेल वाली उपस्थिति को भी भेड़ों का जमावाड़ा ही कहा जा सकता है। यहाँ यह बात ध्यान रखने योग्य है कि विचारशील मात्र वहीं पहुँचते और समय लगाते हैं जहाँ उन्हें किसी भारी भरकम व्यक्ति के पधारने और परिमार्जित दृष्टिकोण वाली महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त होने की आशा हो। किसी अजूबे को देखने के लिए रीछ-वानरों वाले मदारी भी हाट-बाजारों में देखते-देखते ही बड़ी भीड़ इकट्ठी कर लेते हैं। इस प्रकार के जमाबड़े जहाँ-तहाँ इकट्ठे किये जाते रहते हैं और उस बड़ी उपस्थिति के आधार पर सफलता के अनुमान लगाये जाते हैं—यह भूल उन दूरदर्शियों को नहीं करनी चाहिये जो किन्ही उच्च उद्देश्यों के लिए कुछ कारगर परिणामों के लिए अनेक विचारशीलों को एकत्रित करना चाहते हैं।

युग सृजन का मूल आधार है—प्रचलित अवांछनीयताओं के विरुद्ध विचार क्रान्ति की लाल मशाल को प्रज्ज्वलित करना तथा सत्प्रवृत्तियों का नये सिरे से लोक प्रचलन में बीजारोपण-अभिवर्धन करना। इसके लिए मात्र बेतुकी भीड़ की उपस्थिति बढ़ा लेने भर से कुछ बनने वाला नहीं है। प्रयत्न यह करना चाहिए कि उस क्षेत्र के विचारशील लोगों को तलाश किया जाय, उनसे टोली बनाकर सम्पर्क साधा जाय। आयोजन के उद्देश्य और आने वाले व्यक्तियों के व्यक्तित्व तथा प्रतिपादन के महत्त्व को समझाने के लिए समुचित दौड़-धूप की जाय। पुराने जमाने में इस प्रकार के महान आयोजनों में सम्मिलित होने के लिए विचारशीलों के घर जाकर उन्हें निमन्त्रण रूप में पीले चावल दिये जाते थे, जिन्हें ग्रहण करने वाले सँभालकर रखते थे। विस्मरण नहीं होने देते थे और यथासमय जा पहुँचते थे। अब वह कार्य छपे निमन्त्रण पत्रों में चल सकता है, उन्हें डाक से भेजने की अपेक्षा प्रभावशाली व्यक्तियों को घर जाकर देना अधिक वजन रखता है और उपयुक्त लोगों की उपयुक्त उपस्थिति भी हो जाती है। ऐसी ज्ञान-गोष्ठियाँ यदि छोटी हों तो भी वे भारी भीड़ वाली सभाओं की तुलना में कहीं अधिक प्रकाश एवं प्रभाव उत्पन्न करती हैं।

गायकों-वादकों जैसे कलाकारों का कौशल देखने, उस प्रकार की अभिरुचि वाले बड़ी संख्या में उपस्थित होते हैं। मनोरंजन प्रेमियों में हास्य-विनोद के कार्यक्रम चलते ही रहते हैं। इस स्तर के कौतुक-कौतूहल खड़े करने की ललक उन लोगों को नहीं सँजोनी चाहिये, जिन्हें विचार क्रान्ति की पृष्ठभूमि खड़ी करनी है। यह प्रयोग विचारशीलों और भावनाशीलों पर ही प्रभावोत्पादक हो सकता है। इस स्तर के आयोजनकर्ताओं को अपना लक्ष्य, स्तर और स्वरूप स्पष्ट रखना चाहिए और उपयुक्त व्यक्ति चुन-चुनकर जमा किये जा सकें, इसके लिए योजनाबद्ध रीति-नीति अपनानी चाहिए। बड़ी सभाओं के कौतूहल की अपेक्षा मझोले स्तर की विचारशील ज्ञान-गोष्ठियों की व्यवस्था करना ही अपनी रीति-नीति होनी चाहिए। ईसाई प्रचारक बड़ी सभाओं पर विश्वास नहीं करते, उनकी क्रिया पद्धति में जनसम्पर्क ही प्रधान होता है। इसके लिए आवश्यकतानुसार स्थान-स्थान पर ज्ञान-गोष्ठियाँ करते रहना अधिक फलप्रद सिद्ध होता है। छोटे-छोटे क्षेत्रों के विचारशीलों को एकत्रित करना और लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में सुनिश्चित रूप से आगे बढ़ना चाहिए, भले ही संख्या में कम ही क्यों न हो।

बार-बार स्मरण रखने और गाँठ बाँध लेने की बात एक ही है कि चरित्र और सेवा-भावना के अगणित कार्य, संस्मरण और घटनाचक्र उनके साथ जुड़े हुए हों। कथनी और करनी की एकता वाले मार्गदर्शकों से ही सत्परिणाम् प्राप्त होते हैं—यह उद्देश्य पूरा करने के लिए उन्हें ढूँढ़ना और प्रशिक्षित कराना चाहिए। यदि ऐसे लोग अभी कम ही दीख पड़ते हों तो उनको तैयार करने की दूरगामी योजना बनानी चाहिये। शान्तिकुंज के युगशिल्पी सत्रों में यही होता रहता है।

धार्मिक भाषण और प्रवचन

आज मानव जीवन में भौतिक प्रवृत्तियों को प्रमुखता मिल रही है तो भी धार्मिक आवश्यकताएँ अपनी जगह स्थिर हैं। युग के प्रभाव को देखते हुए यह आवश्यकता बढ़ी ही है, कम नहीं हुई। प्रचीनकाल में हजारों संन्यस्त लोक-सेवी, धर्मोपदेशक, राष्ट्र का भ्रमण और लोक शिक्षण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किया करते थे। वे इस बात का सदैव ध्यान रखते थे कि मनुष्य कहीं मनुष्यता के उद्देश्य से भ्रष्ट न हो जाय? इसलिए घूम-घूमकर सामाजिक जीवन में धार्मिक तत्त्वों का संचार किया करते थे। वानप्रस्थ और संन्यास दो आश्रम केवल इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए थे। उनका कर्त्तव्य सामाजिक जीवन की धार्मिक व्यवस्था को कायम किए रहना था। जब तक यह परम्परा विशुद्ध रूप से चलती रही तब तक यहाँ का जीवन बड़े ही उल्लास का जीवन रहा। राष्ट्र के अध:पतन का प्रारम्भ इन तत्त्वों के अपने स्थान से भटक जाने के कारण ही हुआ है।

धार्मिक भाषण का स्वरूप—अन्य भाषणों की तरह प्रवचन का उद्देश्य भी जनमार्ग दर्शन होना चाहिये। यह अपेक्षाकृत कुछ अधिक कठिन भी है क्योंकि इसके लिये बड़ी तैयारी करनी पड़ती है। राजनैतिक भाषणों का उद्देश्य एकांगी होता है, अत: यह आवश्यक नहीं कि जो वक्ता कह रहा हो वह उसका आचरण भी करता हो पर धार्मिक प्रवचनकर्त्ता में वाणी के साथ क्रिया का, समाज सेवा के साथ आध्यात्मिक ज्ञान का भी सम्बन्ध होना चाहिए। धार्मिक प्रवचन व्यक्ति की आन्तरिक एवं बाह्य जीवन की कसौटी है, इसीलिए वह अपेक्षाकृत दुर्गम भी है। इस समन्वय के साथ यदि मंच पर न उतरा जाय तो उससे जनमार्ग की आवश्यकता यथार्थ में पूरी न होगी।

उपर्युक्त मंत्रों में धार्मिक प्रवचनकर्त्ता के गुण भी बताये हैं (१) वह सदाचारी हो अर्थात् उसके जीवन में बनावट न हो। स्पष्ट है कि ऐसे व्यक्ति को जो भाव उठेंगे वह समाज कल्याण से प्रेरित जरूर होंगे, अन्यथा उसे कहीं भी पूछा न जायगा। (२) में बताया है कि उसे सत्य और ज्ञान का उपदेश करना चाहिए। इन दोनों कियाओं में विशद विज्ञान है। सत्य और ज्ञान की व्याख्या वस्तुत: इतनी सरल और सुस्पष्ट है कि उसे हर कोई व्यक्त कर सकता है, साथ ही वह अत्यधिक गूढ़ भी है, जिसके लिए साधना की अर्थात् आचरण में कठोरतापूर्वक धारण की आवश्यकता है। (३) हमारा वक्ता तेजस्वी हो। तेज शक्ति का प्रतीक है। शक्तिमान की बात सभी मानते हैं पर चूँकि यहाँ यह भय नहीं है कि वह झूठ बोल सकता है, इसलिये यह शक्ति या तेजस्विता भी अधिक परिणामदायी हो सकती है। उपर्युक्त गुण यदि वक्ता में हों तो वह धार्मिक प्रवचन के योग्य है। ऐसा शास्त्र सम्मत है।

प्रवचन के प्रकार—अन्य भाषण केवल पूर्व तैयारी के कुछ संकेत बनाकर दिए जाते हैं। कई बार यह भी होता है कि भाषण लिखकर ले जाया जाता है और उस लिखे हुए के आधार पर वक्ता बोलता रहता है। प्रवचन कला इस मामले में भिन्न अस्तित्व रखती है। उसे दो भागों में विभक्त कर सकते हैं (१) निराधार अर्थात् बिना किसी सहारे के, किसी पूर्व निर्धारित विषय पर प्रवचन देना। इसके लिए धार्मिक भाषणों के उपयुक्त सामान्य ज्ञान होना आवश्यक है। अर्थात सत्य, अहिंसा, अस्तेय, तप, दम, सयंम, नियम, सदाचार आदि का मंडन करने वाले सूक्ति, श्लोक, सुभाषित, महापुरुषों के वाक्य कंठस्थ हों और तत्त्वों का अनुमोदन करने वाली थोड़ी-सी कथा-कहानियाँ याद हों तो काम बन जायगा और कोई भी व्यक्ति प्रवचन कर जायेगा। (२) साधार प्रवचन—अर्थात प्रवचन के लिए कोई माध्यम चुन लिया जाय और उसके सहारे धार्मिक तत्त्वों का विश्लेषण, प्रशिक्षण या मार्गदर्शन किया जाय। रोचकता को दृष्टि से यह बहुत कामयाब शैली है। वेद, शास्त्र, स्मृतियाँ रामयण, गीता, भागवत, महाभारत आदि किसी धार्मिक काव्य का सस्वर उच्चारण करते हुए उसकी व्याख्या करते जाना साथ ही उस प्रसंग के समर्थन में कोई पौराणिक या अन्य कोई कथानक कहते जाना बड़ी ही मनोहर शैली बन पड़ती है।

इसके लिये न तो बड़े ज्ञान की आवश्यकता होती है और न तैयारी की। प्रवचन का मसाला पहले से ही तैयार मिल जाता है, केवल उसे प्रभावशाली ढंग से लोगों के सामने रखने की आवश्यकता होती है, जो बहुत थोड़े अभ्यास के बाद सीखा जा सकता है।

भजनोपदेश—भजनोपदेश भी इस शैली का रूपान्तर है। पहले में श्लोक, चौपाई या कोई भजन कहते हैं और उसकी व्याख्या में प्रभावोत्पादक कथानक जोड़ते हैं पर इस विधि से कथोपकथन भजन या गीतों के माध्यम से कहते हैं बाकी कथा गद्यात्मक ढंग से व्यक्त करते हैं। कथा कहते हुए जो पात्र आते हैं, उनके मुख से पद्य द्वारा कोई बात कहलाना भजनोपदेश कहलाता है। कई बार किसी घटनाक्रम को भी पद्य में ही कहते हैं। यह पद्य गेय होते हैं और उनके साथ विभिन्न वाद्यों की संगति भी होती है। इसलिए इस तरह के प्रवचन बहुत सजीव और रुचिकर होते हैं। उन्हें सुनकर श्रोताओं को तन्मयता आती है। अपनी रुचि, ज्ञान, स्वर और वाद्य-निपुणता के आधार पर जो भी उपयुक्त पड़े अपने लिए चुन लेना चाहिए।

प्रवचन का प्रारम्भ और अन्त—धार्मिक व्याख्यान शुरू करने की अपनी विशिष्ट प्रणाली है। कई जगह प्रवचनकर्त्ता सीधे जनता को सम्बोधित करके ही बोलना प्रारम्भ कर देते हैं। कई भजनोपदेशक प्रारम्भ में कोई ईश बन्दना या कीर्तन गाते हैं और श्रोता उसे सामूहिक रूप से दोहराते हैं। जनता का ध्यान एकाग्र करने के लिए यह उचित भी है। परमात्मा का पूर्व चिन्तन भी भारतीय संस्कृति का मुख्य अंग है, इस दृष्टि से भी यह उपयुक्त ही है। हमारी यह मान्यता है कि इस प्रकार का कोई आयोजन प्रारम्भ किया जाय तो उसमें वक्ता और श्रोता दोनों मिलकर एक बार गायत्री मंत्र का सस्वर उच्चारण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करें तत्पश्चात उपस्थित सज्जनों को सम्बोधित करके प्रवचन प्रारम्भ कर दिया जाय। सभा में कोई मुख्य अतिथि, सभापति या अन्य कोई आदरणीय व्यक्ति उपस्थित हो तो सार्वजनिक सम्बोधन के पूर्व उन्हें भी सम्बोधन करना चाहिए।

प्रवचन का कलेवर— प्रवचन का मध्य कैसा हो इस सम्बन्ध में पूर्व जानकारी दी जा चुकी है। यहाँ केवल सामान्य नियमों की जानकारी ही देना है। लम्बे प्रवचनों में जो कि साधार हो, बीच-बीच में थोड़ी देर अवकाश देना चाहिए ताकि श्रोतागण, पानी पीने या लघु-शंका आदि के लिए कुछ समय पा जायें। इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रवचन एक अध्याय, परायण या क्षेपक आने पर ही बन्द किया जाय, अन्यथा विषयान्तर होने का भय बना रहेगा। एक अध्याय से दूसरे अध्याय के बीच समय देने की परम्परा भी है। सत्यनारायण कथा में ऐसा सब जगह किया जाता है। अध्याय समाप्ति की सूचना शंख तथा घड़ियाल आदि बजाकर दी जाती है पर अन्य प्रवचनों में ऐसा कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। बड़े समूहों वाले सार्वजनिक प्रवचनों में यह ठीक भी नहीं लगता।

लम्बे प्रवचनों के बीच अक्सर मुँह सूखने लगता है और प्यास लग आती है, उस समय बिना उठे हुए बीच में ही जल ग्रहण कर लेना चाहिए। इसके लिए समय पूर्व निर्धारित रहे, जबकि कोई व्यक्ति पानी दे जाय। किसी कारणवश यदि बीच में कुछ देर के लिए उठना पड़े तो मंच पर एक दो ऐसे व्यक्ति भी रहें, जो कोई भजन या गीत प्रारम्भ कर दें ताकि श्रोतागण भागदौड़ या शोरगुल न प्रारम्भ कर दें। व्यवस्था का ध्यान प्रत्येक दशा में रखना चाहिए।

आयोजनात्मक प्रवचन—कुछ प्रवचन ऐसे होते हैं, जिनमें कार्यक्रमों के माध्यम से प्रवचन किये जाते हैं। पर्वों को मनाने में, संस्कार आदि कराने में इस प्रकार के प्रवचन प्रयुक्त होते हैं। ऐसे आयोजन कराते समय उससे सम्बन्धित पुस्तक हाथ में रहे ताकि एक कार्यक्रम के बाद दूसरा कौन-सा है यह याद रहे। यदि उक्त अंश कठंस्थ भी हो तो भी पुस्तक रखना आवयक है।

उपर्युक्त कुछ नियम धार्मिक प्रवचनों में विशेष रूप से पालन किये जाने चाहिए। बाकी भाषण विकास में तत्त्व, अभ्यास व जनता के बीच प्रभावोत्पादक भाषण देने की सभी बातें, तत्त्व तथा नियम वैसे ही हैं जैसे कि पिछले पृष्ठों में दिए गये हैं।

महापुरुषों का भाषण

वक्तृत्व कला का प्रादुर्भाव अति प्राचीनकाल में हुआ था। वैदिक ग्रन्थों में जो साहित्यिक आख्यान मिलते हैं, उनसे ऐसा जान पड़ता है कि उस युग में भी जनसाधारण को वक्तृत्व द्वारा महापुरुषों का मार्गदर्शन मिलता रहा है। यह उस समय के लिए सौभाग्य की बात थी कि यह कला विद्वान और धर्म-प्राण व्यक्तियों के हाथ थी। व्याख्यान देने का उत्तराधिकार प्राय: उन व्यक्तियों के हाथ था, जिनका नैतिक जीवन स्वच्छ और समृद्ध था सम्भवत: इसीलिए यह युग सुख और सम्पन्नता का युग रहा है।

प्राय: सभी उन्नत देशों में प्रभावशाली वक्ता होते आये हैं। जंगली जातियों के वर्ग और समुदाय के मुखिया भी इस शक्ति का प्रयोग करते रहे हैं। महाभारत में उद्योग पर्व में दुर्योधन की सभा में भगवान कृष्ण के भाषणों का उल्लेख मिलता है। एक युग को दूसरे युग में परिवर्तित करने के लिए जब भी कोई आन्दोलन हुए हैं, प्रवर्तकों ने भाषण की शक्ति से जनता का संगठन और समर्थन प्राप्त किया है। प्रत्येक महापुरुष की भाषण की अपनी एक शैली और एक विशेषता रही है। इस कला के नवोदित प्रेमियों के लिये उनके कुछ प्रसंग लाभदायक हो सकते हैं, उन संस्मरणों से लोग बहुत कुछ सीख और समझ सकते हैं।

महात्मा गाँधी—भारत की राजनैतिक क्रान्ति और काँग्रेस के अग्रदूत के रूप में महात्मा गाँधी का नाम लिया जाता है। बापूजी की भाषण शक्ति का चमत्कार सर्वविदित है। जिन लोगों ने उनके भाषण सुने हैं, उनका कहना है कि गाँधीजी उपयुक्त और दमदार शब्दों का प्रयोग करने में इतने सिद्ध-हस्त थे कि अपने प्रभावशाली शब्दों के प्रवाह में श्रोताओं को बहा ले जाते थे। वे जो कुछ कहते थे खुलकर कहते थे। उनका व्यक्तित्व भी उतना सुगठित न था और न ऊँची रोबीली आवाज थी, बोलते भी वे प्राय: शान्त मुद्रा में थे। उनके बोलते समय शायद ही किसी अंग का परिचालन होता हो। अच्छे वक्ता के कोई भी गुण उनमें मौजूद न थे पर उनकी सच्चाई, निष्ठा और ईमानदारी उतना रंग लाती थी जितना अन्य गुणों से अलंकृत वक्ता भी नहीं उत्पन्न कर पाते थे। उनके शब्द बहुत ही सादे और सरल होते थे पर उनके पीछे क्रिया का बल रहता था। यही कारण था कि उनकी बात का श्रोताओं पर जबर्दस्त असर पड़ता था। सत्य और अहिंसा का बल बापू के भाषण का बल था। इसी से वे भारतीय जनता के हृदय पर शासन करते थे और ब्रिटश सत्ता को पराजित करने में सफल हुए थे।

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस—जनता को विशेष उद्देश्य की पूर्ति में लगा देने के लिए नेता में भाषण कुशलता भी एक प्रमुख गुण होना चाहिए। पारस्परिक वार्तालाप के द्वारा भी यद्यपि लोगों को प्रभावित किया जा सकता है, पर वह भाषण की अपेक्षा कम व्यापक होता है। नेताजी में यह गुण पूर्ण विकसित था किन्तु उनकी कुशलता वक्तृता का अधिकांश कारण उनका भव्य और तेजस्वी व्यक्तित्व ही था, जिसके कारण वे अपने श्रोता का मन मोह लेते थे। सुभाष बाबू के बारे में लोगों का कहना है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कि उनका शारीरिक संगठन और सौन्दर्य इतना विशाल और निरोधित था, उनके लक्ष्य आन्तरिक दृढ़ता से इस प्रकार ओत-प्रोत रहते थे कि कोई शक्ति उन्हें पथ से विचलित नहीं कर पाती थी। उनमें आकर्षक व्यक्तित्व और उत्कृष्ट जीवन का एक दैवी चमत्कार था, जिसके कारण उनके विरोधी लोग भी प्राय: नतमस्तक हो जाते थे। उनकी लोकप्रियता का सर्वप्रमुख कारण यही था कि एक सच्चे नेता थे। यह नेतृत्व उनके व्यक्तित्व के कारण और भी निखर उठता था।

नेताजी के भाषण में शब्द बड़े सीधे और विचार बड़े स्पष्ट होते थे किन्तु वे जनता के हृदय में आग पैदा कर देने वाले होते थे। दृढ़ता का भाव अनेकों विचारों में बहता रहता था। उनकी सूझ-बूझ और योजनाओं में एक कुशल विचारक की तरह की विलक्षणता हुआ करती थी। उनके मत में दूसरों से सर्वथा नवीन हुआ करते थे और उनमें एक प्रकार का क्रम रहता था। इन कारणों से न केवल उनका भाषण ही आदि से अन्त तक ध्यानपूर्वक सुना जाता था वरन् जनता हर समय उनका भाषण सुनने को तैयार रहती थी।

क्रान्तिकारी डिमास्थनीज—यूनान में डिमास्थनीज बहुत ही जनप्रिय नेता हुआ है। भाषण के सम्बन्ध में डिमास्थनीज की अपनी निजी विशेषता थी। प्राय: नेता भाषण-कला का विकास किसी उद्देश्य की पूर्ति या उपयोगितावश करते हैं किन्तु डिमास्थनीज ने इसे विशुद्ध कला के रूप में अपनाया और अभ्यास किया था। दूसरे लोग बहुत कम तैयारी के साथ स्टेज पर उतरते हैं पर डिमास्थनीज मंच पर पहुँचने के पूर्व उसी वक्तृता को कई बार एकान्त में अभ्यास कर लेता था। तैयारी के लिये वह बड़ा परिश्रम करता था, तथ्य जुटाता और अनेक लेखों, अखबारों तथा पुस्तकों का अध्ययन करता था। पूर्व अभ्यास में यदि उसे कुछ कमी या भूल महसूस होती थी, तो उसे हर प्रकार से पूरा करने के बाद ही वह जनता के बीच भाषण देने के लिये आता था। उसके भाषण में शब्दाडम्बर या पेचीदगी उतनी न रहती थी। बहुत ही सादे शब्दों की और अलंकारशून्य भाषा का प्रयोग करता था। विषय के अनुकूल भाषा को तेज और नर्म बनाने की कला उसे खूब याद थी। ऐसे चुने हुए शब्दों के प्रयोग में भी वह बड़ा पटु था।

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी—काँग्रेस के प्रारम्भिक इतिहास में प्रभावशाली, जनप्रिय वक्ताओं में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। सुरेन्द्रनाथ बड़े विद्वान तथा प्रतिभाशाली थे। तार्किक कुशलता के वे पण्डित माने जाते हैं। उन्हें 'भारतीय ग्लैडस्टन' के नाम से पुकारा जाता है।

सुरेन्द्रनाथ के भाषण की विशेषता सारगर्भितता एवं उनकी सिंहगर्जना रही है। उनका कंठ-स्वर काफी ऊँचा था। बोलते ऐसे थे मानो समुद्र गरज रहा हो। ज्वारभाटे की तरह शब्द और गर्जना का उतार-चढ़ाव श्रोताओं को इतना प्रिय होता था—जब उनका भाषण प्रारम्भ होता था, इधर-उधर डोलते-फिरते आदमी भी जमकर बैठ जाते थे। सुरेन्द्रनाथ के भाषण इतने लम्बे नहीं होते थे कि श्रोतागण उकता उठें। वे इस बात को बराबर ध्यान में रखते थे कि उनके भाषण पर जनता में क्या प्रतिक्रिया उठ रही है। शब्द को ऊँचा-नीचा स्वर देना, प्रसंग उपस्थित करना वे इसी आधार पर करते थे। फलस्वरूप उनके भाषण में अन्त तक रोचकता बनी रहती थी।

मार्कस ट्यूलियस सिसरो—सिसरो के बारे में लोगों का मत है कि वह एक निर्भीक वक्ता नहीं थे, तो भी वैरस नाम के रोमन सामन्त के खिलाफ उनके भाषणों की बड़ी ख्याति हुई है। इसमें उनकी बुद्धि की तीव्रता तथा विवेचनात्मक प्रतिभा ही प्रमुख कारण मानी जाती है। किसी के सिद्धान्तों को खण्डित करके उन्हें धराशाई बनाने की उसमें असाधारण सामर्थ्य थी। भाषण जगत में शायद ही ऐसा कोई वक्ता हुआ हो, जिसने सिसरो से अधिक भाषण दिये हों। उसके भाषण ५६ भागों में प्रकाशित हुये और वे अनेक संस्करणों में निकाले गये हैं। सिसरो की वक्तृता में जोश की कमी ही उसके पराजय का एक कारण बनी।

लाला लाजपतराय—स्वतन्त्रता आन्दोलन के नेताओं में भाषण की दृष्टि से लालाजी का स्थान अग्रणी समझा जाता था। उनके सम्बन्ध में पण्डित जवाहरलाल जी का कथन है—"लालाजी के मुकाबले में किसी भी व्यक्ति में बोलने की क्षमता नहीं थी। भाषण में लालाजी अलंकार सिद्ध माने जाते हैं। उनकी उक्तियाँ इतनी मधुर होती थीं कि लोग सुनकर विभोर हो जाते थे। उनकी भावाभिव्यक्ति इतनी विलक्षण थी कि लोगों के यह अनुमान कि—'आगे लालाजी यह कहेंगे।' प्राय: गलत होते थे और जो कह जाते थे वह इतना संगत और विचारों की कसौटी पर कसा हुआ होता था कि लोग उनकी प्रतिभा का लोहा मान जाते थे।" उदाहरणार्थ—गुरुकुल में दिये गये उनके एक भाषण का कुछ अंश इस प्रकार है—

"लोग मुझसे पूछते हैं कि तुम किसे ज्यादा प्यार करते हो—डी. ए. वी. कॉलेज को या गुरुकुल को ? मेरा जबाव यह है कि मुझे डी. ए. वी. कॉलेज से वैसा प्यार है, जैसा कि एक पिता को अपने पुत्र से होता है परन्तु गुरुकुल को मैं उस तरह का प्यार करता हूँ, जो एक प्रेमी को अपनी प्रेमिका से होता है।"

लालाजी के भाषण में कला के साथ भावुकता का समावेश रहता था। इस दोहरी प्रतिभा के कारण ही उनके भाषण में दूसरों की अपेक्षा प्रभाव शक्ति अधिक हुआ करती थी। लालाजी की वाणी बहुत गम्भीर थी। उनका भाषण प्रवाह वैसा न था जैसा उद्गम पर नदियों का होता है वरन् वे मैदानी भाग में बहने वाली गंगाजी की तरह स्थिर चित्त और शान्त ढंग से बोलते थे पर कई बार ऐसे अवसर भी आ जाते थे, जब लालाजी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऐसा भीषण सिंहनाद करते थे कि लोग यह भूल जाते थे कि क्या यह वही लाला लाजपतराय हैं या कोई और। शब्दों के लिए बीच में रुकना लालाजी ने कभी नहीं जाना। भावनाओं को शब्द और भाव द्वारा व्यक्त करने की कला के वे पूर्ण पण्डित थे।

मौलाना अब्दुल कलाम आजाद—जनता की साधारण स्थिति को ध्यान में न रखकर केवल पाण्डित्य प्रदर्शन को भाषण का एक दोष माना जाता है। मौलाना अब्दुल कलाम आजाद यद्यपि बहुत प्रतिभाशाली वक्ता हुए हैं, उनके भाषण बड़े विचारप्रधान होते थे तो भी उनमें यह एक बहुत बड़ा दोष था, उनके शब्दों में अरबी और फारसी के इतने बड़े शब्द प्रयुक्त होते थे जिन्हें अरबी, फारसी के विद्वान भी कठिनाई से समझ पाते थे। भावना की अप्रधानता रहने के कारण उनके भाषण कुछ कम दिलचस्पी से सुने जाते थे, तो भी श्रोताओं के मस्तिष्क और विचारों में प्रभाव डालने की क्षमता वे विषय के अधिक विवेचना द्वारा प्राप्त कर लेते थे।

अब्राहम लिंकन—मनुष्य का उद्देश्य मानव प्रकृति के अनुकूल हो अर्थात उसमें स्वभाविकता हो और साथ ही दृढ़ता भी हो, तो भाषण दे लेना बहुत आसान हो जाता है किन्तु यदि स्वाभाविक विचार अभिव्यक्ति का भी पूर्व अभ्यास कर लिया जाय, तो भाषण अत्यन्त ही परिमार्जित हो जाता है। अभ्यास के बाद भाषण कला में डिमास्थनीज की तरह ही अब्राहम लिंकन का भी स्थान है। लिंकन अपने भाषण को लिखकर अभ्यास करते थे, फिर नदियों और पहाड़ों की सैर को जाते हुए उसको बोलकर भी अभ्यास कर डालते थे। इस प्रकार उनके तथ्य और भी आसानी के साथ निखर उठते थे। पूर्व अभ्यास का ही कारण था कि वे सभा मंच पर बहुत देर तक जमते थे पर श्रोताओं का मन न ऊबता था। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि अब्राहम लिंकन केवल इसी गुण पर इतने अधिक जनप्रिय हुए कि अन्त में उन्हें अमेरिका का राष्ट्रपति तक चुना गया। राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन के भाषण न केवल राजनैतिक महत्त्व के थे वरन् साहित्यिक क्षेत्र में भी स्थायित्व ग्रहण कर चुके थे। सम्भवत: भाषण के बहुविध अभ्यास के कारण ही उन्हें यह सौभाग्य मिल पाया था। लिंकन लगन के धनी और धुन के पक्के थे। विषय की तैयारी में वे अनेक तरह से सामग्री जुटाते थे। जब तक उन्हें स्वयं सन्तोष न हो जाता था, वे श्रोताओं के बीच कभी भी नहीं जाते थे।

एडल्फ हिटलर—अपनी प्रभावशाली वक्तृता के कारण हिटलर जर्मनी का सबसे शक्तिशाली नेता हुआ है। कैसर विल्हम से भी अधिक ख्याति उसने पाई, इसका कारण उसके भाषण का जादू बताया जाता है। वह इतने वेगवान शब्दों से भाषण करता था कि श्रोतागण कँपकँपा उठते थे। वे इतने प्रभावित हो जाते थे कि हिटलर के संकेतों पर नाचने लगते थे। वह इसके लिये नाटकीय हाव-भाव के प्रदर्शन के साथ नाटकीय भाषा का भी प्रयोग करता था। स्वर को उत्थान और नम्र करने की कला में वह सिद्धहस्त समझा जाता था। भाषा में व्याकरण की त्रुटि न होती थी। विचार और भावनायें बड़ी स्पष्टता और निर्भीकता से व्यक्त करता था।

हिटलर के इस तरह के रोबदार भाषणों पर जर्मनी जनता तालियों की गड़गड़ाहट से आकाश गुँजा देती थी। इसका श्रेय उसकी नाटकीय अभिव्यक्ति को ही दिया जा सकता है।

श्रीमती ऐनी बेसेन्ट—ऐनी बेसेन्ट एक ऐसी विदेशी महिला हैं, जिन्होंने भारतवर्ष को अपनी मातृभूमि से भी ज्यादा प्यार किया है। वे एक आयरिश महिला थीं। थियोसॉफिकल सोसायटी की अध्यक्ष होने का भी उन्हें गौरव प्राप्त था किन्तु अपनी वक्तृता के लिये भी वे कम विख्यात न थीं। सारा भारतवर्ष उन्हें पवित्र दृष्टि से प्यार करता था। इसका कारण यह था कि वे जब भी मंच पर भाषण देने आती थीं, उनकी भावनायें छलक पड़ती थीं। वे सुशिक्षित विदुषी महिला थीं, तो भी उनमें भावनाओं को पूर्णरूप से व्यक्त न कर पाने की कमी थी। सम्भवत: यह उनके भारतीय भाषाओं पर कम ज्ञान के कारण था।

गोपालकृष्ण गोखले—भाषण की सजावट जितनी घटनाओं, संस्मरणों और आँकड़े प्रस्तुत करने से होती है उतनी सुन्दर भाषा से भी नहीं होती। भाषा और कण्ठ स्वर भी हो तो कहना ही क्या। गोपाल-कृष्ण गोखले में भाषण की यह विशेषता उन्हें अन्य वक्ताओं से ऊँचा उठा देती थी। तथ्यों का दिग्दर्शन वे इतनी प्रशान्त मुद्रा, दृढ़ स्वर और घटनाक्रमों के साथ सुनाते थे कि लोगों का सारा ध्यान इसी बात में केन्द्रित रहता 'देखें वे आगे क्या कहते हैं !' श्रोताओं की उत्सुकता को कायम रखने में गोपाल कृष्ण गोखले धार्मिक प्रवचनकर्त्ताओं की श्रेणी में आते हैं। उनके भाषणों में तेजी, चीख-चिल्लाहट को तेज उतार-चढ़ाव नहीं होता था। जिस शान्त मुद्रा से गम्भीर शब्दों में भाषण प्रारम्भ करते थे, उसी में अन्त कर देते थे। भाषण का अन्त श्रोताओं पर उत्तरदायित्व ढालने वाला होता था अर्थात जो व्यक्ति उनका भाषण सुनता था, वह बहुत दिनों तक उनके विचारों पर क्रियात्मक अमल की भी योजनायें बनाता रहता था। इस प्रकार का प्रभाव उत्पन्न कर देने की क्षमता असाधारण मानी जाती है। दैवयोग से वह गोखले को प्राप्त थी।

जवाहरलाल नेहरू—नेहरूजी की भाषण शैली को एक रूप न देकर समन्वयात्मक कहना हमारी दृष्टि में अधिक उपयुक्त है। भाषा की दृष्टि से उनकी वक्तृता में हिन्दी, अँग्रेजी, संस्कृत अरबी तथा फारसी सभी भाषाओं के शब्द प्रयुक्त होते थे। स्थिति के अनुसार उनके भाषण शान्त भी होते थे और उत्तेजित भी। चिल्लाते तो वे अधिक न थे पर कभी-कभी भावावेश में आ जाने पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शब्दों में कुछ तीखापन अवश्य आ जाता था। कई बार किसी निश्चित शब्द को ढूँढ़ने के लिये उन्हें रुकना पड़ता था, यह एक दोष था पर ऐसा प्राय: हिन्दी के भाषणों में ही होता था। अँग्रेजी के भाषण पंडितजी खूब धाराप्रवाह बोलते थे। भाषा सम्बन्धी कठिनाई अँग्रेजी में नहीं आती थी।

वर्ग विशेष में मिल जाने और श्रोता की स्थिति पहचानने में पं. जवाहरलाल जी सिद्धहस्त माने जाते हैं। उनके भाषण अधिकांश वास्तविकता से ओत-प्रोत होते थे। जो कहते उसे सीधे शब्दों में व्यक्त कर देते थे। शाब्दिक अलंकार वे बहुत कम ही बनाते थे पर ऐसा भी देखा गया है कि प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण करते हुए उनके भाषण में अलंकार भी निखर उठता था। किसी भी हालत में उनकी शैली का एक रूप नहीं था। स्थिति के अनुरूप उनके भाषण की गतिविधियों में परिवर्तन होता था पर कहने का उनका अपना एक ही तरीका था। रुक-रुक कर धीमे स्वर में, सरल शब्दों में अपना पूरा भाषण समाप्त कर देते थे। बीच में किसी प्रकार की बनावट नहीं आने पाती थी।

प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के सार्वजनिक भाषण की चर्चा करते हुये संयुक्त अरब गणराज्य के राष्ट्रपति नासिर ने लिखा है—

"श्रोताओं के भावों को उत्तेजित करके उन्हें प्रभावित कर लेना कितना आसान है, यह मैं समझता हूँ पर जवाहरलाल नेहरू ने ऐसा कभी नहीं किया। उनकी आवाज कभी तेज नहीं हुई। वह भावनावेश में नहीं आये। भीड़ कभी उत्कंठित नहीं हुई, न उनके संवेदन ही उत्तेजित हुए। सभी लोग एक संयत जिज्ञासा से सुनते रहे। मैं भाषण नहीं समझ रहा था। लेकिन मैं देख रहा था कि उनके विचार और शब्द सारे समूह पर किस प्रकार स्पष्ट प्रतिक्रिया उत्पन्न कर रहे हैं। कितनी एकाग्रता से लोग उनका भाषण सुन रहे हैं। सम्भवत: इसका कारण और कुछ नहीं वरन् प्रधानमंत्री के जीवन की स्वाभाविकता है, जो उन्होंने संघर्षों में पाई है।"

संत विनोबा भावे—वर्तमान वक्ताओं में संत विनोबा का महत्वपूर्ण स्थान है। भाषण में श्रोताओं, सम्प्रदाय विशेष या सामाजिक कुरीतियों पर व्यंग्य कसना एक बात है पर उसे सौम्यता के साथ श्रोताओं के मन और मस्तिष्क में उतार देना कुछ कठिन है। यह विलक्षण सूझ-बूझ संत विनोबा के भाषणों में उनकी मौलिक विशेषता होती है। उदाहरणार्थ—दहेज प्रथा पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने एक स्थान पर कहा—"दहेज के रूप में लोगों को लम्बी माँग करते देखकर मुझे बड़ा दु:ख होता है आखिर आपका बेटा कोई बैल तो नहीं है, जिसके लिये बोली लगाई जाय और लम्बी रकम वसूल की जाय।"

विनोबा जी के भाषण में एक और नई विशेषता देखने में आती है, वह यह है कि वे बहुत छोटे-छोटे वाक्य बोलते हैं, ऐसे—मानो बच्चों को समझा रहे हैं। यह शैली बड़ी हृदयग्राही होती है। ऐसे भाषण जल्दी समझ में आ जाते हैं, सज्जा की दृष्टि से भी प्रिय लगते हैं जैसे —"यहाँ जितने पौधे हैं सब हिल रहे हैं, सबसे छोटा भी, कोई ज्यादा हिलता है कोई कम तो वह अलग बात है। लेकिन हर पौधा डोल रहा है लेकिन जब तूफान आता है, तब सब क्रियाशील बनते हैं, एक प्रेरणा होती है।" आदि-आदि छोटे-छोटे वाक्यों वाले भाषण और उनमें पिरोया हुआ मीठा व्यंग्य उनकी वाणी का विशेष गुण है। इसी के कारण वे बहुत लोगों को प्रभावित कर सके हैं। उनकी वाणी में सरलता, सच्चाई और ओजस्विता भी रहती है। भावना का सम्मिश्रण तथ्यों को स्पष्ट करने में लुप्त हो जाता है।

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्—दूसरे देशों में भाषणों में महापुरुषों की उक्तियाँ तथा काव्यांश द्वारा भाषण के तथ्यों को पुष्ट करने का प्रचलन है। यह प्रथा भारतवर्ष में भी है किन्तु इसका उपयोग कुछ ज्ञान सम्पन्न व्यक्ति ही कर पाते हैं। उन प्रतिभावान व्यक्तियों में हमारे राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन् का नाम विशेष उल्लेखनीय है। विश्व और भारत के महापुरुषों के मत व्यक्त करने, अँग्रेजी भाषणों में संस्कृत की सूक्तियों का प्रयोग करने में उनकी अगाध विद्वत्ता का परिचय मिलता है। भाषण में दार्शनिक तथ्यों का विवेचन करने में उनकी यह शैली और भी मुखरित हो उठती है, जो सबको बड़ी प्रिय लगती है।

श्रोताओं के स्तर को ध्यान में रखकर अपने भाषण को जटिल या सरल बनाने में वे अधिक प्रवीण वक्ता हैं। इसलिये वे जहाँ भी भाषण देने जाते हैं, श्रोताओं को प्राय: असंतोष नहीं होता। भाषा-प्रवाह और विचारों की अभिव्यक्ति भी वे अच्छी प्रकार कर लेते हैं। पर कई ऐसे कठिन शब्दों का प्रयोग उनके भाषण में हो जाता है जिससे बहुत पढ़े-लिखे व्यक्ति भी उसे आसानी से समझ नहीं पाते। आध्यात्मिक विषयों पर दिये गये भाषण साधारण श्रेणी के व्यक्तियों के उपयुक्त नहीं होते, यह प्राय: सभी लोग मानते हैं तो भाषण में प्रभाव की दृष्टि से उनका अच्छा स्थान है। उनके भाषणों में उनकी विद्वत्ता का स्पष्ट प्रभाव रहता है। प्रवाह में उनके विचारक होने का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। धारावाहिक भाषणों की सरसता से मनुष्य मात्र को मोहित करने में नहीं चूकते। कानून की उच्च परीक्षायें उत्तीर्ण होने के कारण वाक्शक्ति के साथ तार्किक खण्डन-मण्डन की प्रतिभा भी उनमें पर्याप्त मात्रा में विकसित हुई है।

धार्मिक भाषण—राजनैतिक, सामाजिक तथा नैतिक भाषणों की तरह धार्मिक तथा आध्यात्मिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए और जनसाधारण को इन आवश्यकताओं की ओर प्रेरित करने के लिए भी भाषण एक महत्त्वपूर्ण साधन है। ऐसी विभूतियाँ भी कम नहीं हुईं, जिनका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उद्देश्य ही लोगों के पारमार्थिक जीवन को समुन्नत बनाना रहा है। भारतवर्ष में ऐसे महापुरुषों की कमी भी कमी नहीं रही। पूर्व युग में भी थे, अब भी हैं पर ऐसा लगता है कि वर्तमान युग में योजनाबद्ध रूप से सामाजिक जीवन में धार्मिक सत्प्रेरणायें जाग्रत करने के लिए ठोस व्यक्तियों का अभाव है। अब ऐसे व्यक्तियों की भी नितान्त आवश्यकता है, जो लोगों को धार्मिक मार्गदर्शन कर सकते हों। इस उद्देश्य के लिए धार्मिक भाषणों का एक अलग अध्याय रखा गया है। यहाँ विभिन्न धर्म-गुरुओं, महापुरुषों एवं आचार्यों के प्रवचनों का उल्लेख भी प्रतीत होता है ताकि पाठक उस शैली का भी कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकें।

महात्मा बुद्ध—यों मगध साम्राज्य काल से पूर्व कर्म का विस्तार भारतवर्ष में कम न था और न धर्माचार्यों की ही कमी थी किन्तु धार्मिक दृष्टि से इस युग को भगवान बुद्ध के प्रादुर्भाव-काल से जोड़ा जाता है। बुद्ध के जमाने में धार्मिक भाषणों का खूब प्रसार हुआ था। पाली एवं संस्कृत साहित्य के अनेक स्थल इस बात के प्रमाण हैं। बुद्ध और उनके अनुचर भारतीय सीमायें पार करके चीन, तिब्बत तथा जापान आदि देशों में गये। महेन्द्र, संघमित्रा आदि ने जावा, सुमात्रा, बोर्नियो आदि की यात्रायें कीं और धार्मिक प्रचार किए। उन सब की भाषण शैली बुद्ध की शैली के समानान्तर थी।

महात्मा बुद्ध के भाषण, विचार और तर्क पर आधारित होते थे। तथ्यों के बुद्धिसंगत खण्डन करने के कारण ही उन दिनों बौद्ध धर्म की लोकप्रियता बढ़ी थी। सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी पौराणिक कथाओं के माध्यम से करते थे। जातक की अनेक कथायें उसी शैली की अभिव्यक्ति हैं। उनके भाषणों के सम्बन्ध में इससे अधिक अनुमान लगाना कठिन है क्योंकि उसका कहीं विस्तार से वर्णन नहीं मिलता।

स्वामी विवेकानन्द—हिन्दुस्तान और उसके बाहर भाषणों द्वारा हिन्दू जाति और धर्म को गौरव प्रदान करने वाले स्वामी विवेकानन्द के भाषण बड़े मार्मिक, ओजस्वी और मधुर होते थे। शिकागो तथा लन्दन में दी गई उनकी वक्तृतायें अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति उपलब्ध कर चुकी हैं। अनेक अखबारों के सम्पादकीय लेखों में उनकी प्रशंसा की गई है। भाषणों में प्रगाढ़ विद्वता तथा दार्शनिक प्रतिभा उनकी मौलिक विशेषता रही है।

पाम्बन के एक सार्वजनिक अभिनन्दन पर दिए गए उनके भाषण का कुछ अंश इस प्रकार हैं—

"हमारा पवित्र भारतवर्ष धर्म एवं दर्शन की पुण्य भूमि है। यहीं बड़े-बड़े महात्माओं तथा ऋषियों का जन्म हुआ है, यही संन्यास एवं त्याग की भूमि है तथा यहीं—केवल यहीं आदि काल से लेकर आज तक मनुष्य के लिए जीवन के सर्वोच्च आदर्श एवं मुक्ति का द्वार खुला है।"

१९ जून, १८९९ में बेल्लूर मठ में दिये गये भाषण का अंश इस प्रकार है—

"सच्चा 'मनुष्य' वही है जो इतना शक्तिशाली हो जितनी शक्ति स्वयं है, परन्तु फिर भी जिसका हृदय एक स्त्री के सदृश कोमल रहे। तुम्हारे चारों ओर जो करोड़ों व्यक्ति हैं, उनके लिए तुम्हारे हृदय में प्रेमभाव होना चाहिए, परन्तु साथ ही तुम लोहे के समान दृढ़ बने रहो पर ध्यान रहे कि साथ ही तुम में नम्रता भी हो।"

गहन आध्यात्मिक तत्त्वों एवं जीवन से सम्बद्ध गूढ़ विषयों को स्वामी विवेकानन्द कितनी सरलता से व्यक्त कर देते थे—उपर्युक्त दो भाषणांशों से स्पष्ट विदित होता है। स्वामीजी ने जीवन दर्शन पर विचारक की दृष्टि से नहीं साधक की दृष्टि से आधिपत्य जमाया था अतः वे मानवीय समस्याओं को बहुत सुगमता के साथ सुलझा देते थे। अन्य धार्मिक प्रवचनकर्त्ताओं में आध्यात्मिक तत्त्वों को बहुत जटिल बना डालने का दोष होता है, स्वामीजी उससे पूर्ण मुक्त थे। उनके अँग्रेजी भाषण भी बहुत सरल, मधुर और स्पष्ट होते थे। स्वामी विवेकानन्द जिज्ञासु एवं ध्यानमग्न श्रोताओं के सम्मुख भाषण देते समय स्वयं विवेकानन्द नहीं रह जाते थे वरन् उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि मानो श्रोताओं की आत्मा ही मूर्तरूप धारण कर उनके समक्ष आ उपस्थित हुई। श्रोताओं के सब प्रकार के भेदभाव एवं व्यक्तित्व उनके मस्तिष्क में विलीन हो जाते थे और उनकी अद्वैत ब्रह्म की भावना साकार हो उठती थी। उनके भाषण सुनने वालों का कहना है कि स्वामीजी जो कुछ बोलते थे वह आत्म-प्रतिवेदन हुआ करता था। उनके सरस कथानक लोगों का मन मोह लेते थे।

महर्षि दयानन्द—आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द महान धार्मिक क्रान्ति के प्रणेता कहकर याद किये जाते हैं। देश में बढ़ते हुए धर्माडम्बरों, रूढ़ियों तथा कुरीतियों को दूर करने और उनके स्थान पर नये आध्यात्मिक तत्त्वों को पुनर्जाग्रत करने का महान कार्य महर्षि दयानन्द ने अधिकांश अपनी वाणी-शक्ति से ही सम्पन्न किया। वों उन्होंने अनेक ग्रन्थ एवं मौलिक रचनायें भी की हैं पर उनकी भाषण शक्ति थी, जिसने भारतवर्ष की आध्यात्मिक आत्मा को झकझोरा। दयानन्द जैसे निर्भीक वक्ता थे, वैसा शायद ही कोई हुआ हो। उनकी कटुक्तियाँ और ओजस्वी शब्द समाज के मिथ्याडम्बरों को चकनाचूर बना डालते थे, पर जीवन विषयों पर स्वामीजी उतनी ही शान्त और गम्भीर भाषा से श्रोताओं पर अपने गहन अध्ययन और विशिष्टता की छाप डालने से न चूकते थे।

सत्य के समर्थन में स्वामीजी ने कभी पक्षपात नहीं किया। कई बार वे उनके खिलाफ भी सच बोलने से नहीं चूकते थे, जिनके यहाँ वे आमन्त्रित होते थे, पर इसका यह अर्थ नहीं कि स्वामीजी कठोर प्रकृति के थे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उनके भाषण सरस, गम्भीर और मधुर भी उतने ही होते थे। स्वामीजी की भाषण प्रतिभा बहुमुखी थी। श्रोताओं पर स्थिर प्रभाव डालने की क्षमता उनमें कूट-कूटकर भरी थी।

स्वामीजी की समालोचनायें बड़ी निरपेक्ष थीं। टीका-टिप्पणी करने में वे बड़े ही धुरन्धर थे। वाणी में प्रभावशालिनी शक्ति प्रवाहित होती थी। स्वामीजी के अधिकांश भाषण खण्डनात्मक ही हुए हैं। उनमें उनके ज्ञात और तार्किक कुशलता का ही परिचय मिलता है।

स्वामी दयानन्द में अन्य गुणों की अपेक्षा उनका आत्मतेज जो उनके नेत्रों से प्रकाशित होता था, श्रोताओं को पराभूत करने की असाधारण क्षमता रखता था। यह प्राणशक्ति वक्ता में एक विशेष प्रकार का चुम्बकत्व पैदा करती है। उन्नत आत्मबल के युक्त वक्ता के नेत्रों से जो चमक प्रस्फुटित होती है, उसके समक्ष श्रोताओं के मस्तक श्रद्धा से झुक जाते हैं। एक बार स्वामीजी किसी विषय पर खण्डनात्मक भाषण कर रहे थे। सभा में कर्णसिंह नामक एक राजपूत बैठा था, वह स्वामीजी की कटुक्तियों को सहन नहीं कर सका। उसने झट तलवार निकाली और स्वामीजी की ओर लपका। स्वामीजी उससे कुछ न बोले पर उस पर ऐसी तीक्ष्ण दृष्टि डाली कि वह राजपूत हतप्रभ हो गया। तलवार एक ओर फेंककर वह स्वामीजी के चरणों में आकर गिर गया।

धार्मिक भाषण शैली के विकास के लिए इस प्रकार के महापुरुषों के भाषणों का अध्ययन लाभदायक हो सकता है। उनमें से वह विशेषतायें ग्रहण की जा सकती हैं जो उत्कृष्ट भाषण के लिए अनिवार्य होती हैं। जो बात किसी में कम थी और अपनी समझ में नहीं चढ़ी थी वह दूसरे व्यक्ति के भाषण में मिल सकती है। इन भाषणों को आलोचक की दृष्टि से पढ़ा और सुना जाय तो नये वक्ताओं को वह संकेत मिल सकते हैं, जिनसे वह अपने भाषण को और भी निखार सकते हैं।

वक्तृता में चुटीलेपन का समावेश

भाषणों में कभी-कभी ऐसे चोट करने वाले तत्त्व रहते हैं, जो श्रोताओं को तिलमिला देते हैं और उनकी मन:स्थिति में आश्चर्यजनक उभार उत्पन्न कर देते हैं। उसमें वक्ता की भावाभिव्यक्ति मुख्य होती है, साथ ही सूझ-बूझ का भी गहरा पुट रहता है। लोगों को दिशा और प्रेरणा देने के लिए मरे मुर्दे की तरह बोलना पर्याप्त नहीं होता। भूगोल, इतिहास, स्वास्थ्य, शिल्प, भाषण आदि पढ़ाने का स्कूली तरीका दूसरा है और जनमानस को उभारने का दूसरा। दोनों क्रियाएँ देखने भर में एक जैसी हैं कि मुख से बोला जा रहा है और भाषण किया जा रहा है। पर दोनों का लक्ष्य एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है। स्कूली लेक्चर ज्ञान वृद्धि के लिए होते हैं। इसलिए उन्हें सुनने वालों का मस्तिष्क शान्त और सन्तुलित होना चाहिए। ठीक तरह सुनने-समझने के लिए यह आवश्यक है कि भावोत्तेजन से बचा जाय, अन्यथा तरंगें उठने लगीं तो मन कहीं से कहीं बहने लगेगा और जिज्ञासु की दृष्टि से शिक्षण के हर पहलू को गहराई से समझ सकना सम्भव न होगा। अस्तु, उस शैली की सफलता इसी में है कि छात्रों की भावुकता को छुए बिना वैज्ञानिक एवं जिज्ञासु का तथ्यग्राही दृष्टिकोण बना रहने दिया जाय। भाषण में सरसता नहीं जानकारियों का बाहुल्य हो। अध्यापन ऐसा ही सराहा जाता है।

लोक–शिक्षण के भाषणों के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं है। उसमें तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहरणों के साथ-साथ भावनाओं का भी गहरा पुट लगाया जाता है। श्रोताओं की मनोभूमि तो गरम लोहे के टुकड़े ही आपस में जोड़े जा सकते हैं। दिशाएँ देने के लिए वक्तृता में तीखापन और चुटीलापन रहना चाहिए। साथ ही उसका स्तर और संतुलन गिरना नहीं चाहिए।

संसार के महापुरुषों की वक्तृताएँ पुस्तक रूप में छपी हैं। हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में ऐसी पुस्तकें बहुत हैं। अँग्रेजी में तो ऐसा साहित्य प्रचुर मात्रा में भरा पड़ा है। वक्ता बनने के इच्छुकों को ऐसा साहित्य पढ़ते रहना चाहिए। सरसरी नजर से नहीं वरन् गहराई के साथ धीरे-धीरे यह समझने के लिए उन पुस्तकों को पढ़ना चाहिए कि उन वक्ताओं ने किस प्रकार कहाँ किस शैली को अपनाया ? किस प्रसंग में तर्क का, किस प्रसंग में उदाहरणों का और किस प्रसंग में भावनाओं का कितना हल्का या गहरा पुट उन्होंने दिया। चित्रकार के पास रंग तो उतने ही होते हैं पर वह उन्हें हल्का-गहरा करके—सम्मिश्रण के आधार पर अनेक नये-नये रंग बनाता है और उन्हीं का हल्का-भारी पुट एवं विस्तार देकर ऐसे उतार-चढ़ाव प्रस्तुत करता है कि चित्र बोलने लगता है। उसमें से अभिव्यक्तियाँ टपकने लगती हैं। चित्रकार की तरह वक्ता भी इस स्तर की दक्षता प्राप्त करते हैं और कभी-कभी तो अपनी समझ-बूझ एवं कला का अद्भुत परिचय देकर लोकमानस को कहीं से कहीं ले जाते हैं।

इस विशिष्टता का अध्ययन करने के लिए वक्तृताओं के संकलन की पुस्तकें पढ़नी चाहिए और उनके वर्गीकरण, विवेचन, विश्लेषण पर गहराई के साथ ध्यान देना चाहिए। जब भी कोई कुशल वक्ता समीपवर्ती क्षेत्र में आये तो उनके भाषण सुनने जाया जाय। उनके मत से सहमत होने, न होने की दृष्टि से नहीं, मात्र भाषण शैली मोड़ और उभार समझने के लिए जाना भी लाभदायक है। अच्छे लेखक बनने के लिए यह आवश्यक है कि प्रतिभाशाली लेखकों की शैलियों को ध्यानपूर्वक पढ़ा-समझाया जाय और उनसे अपने काम की प्रेरणा ग्रहण की जाय। ठीक इसी प्रकार वक्ता को अपने निज के प्रयास अभ्यास तक सीमित न रहकर दूसरे वक्ताओं की विशेषताएँ भी सीखनी-समझनी चाहिए। अच्छा वक्ता बनने के लिए अच्छा श्रोता बनना आवश्यक है। अपने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय से मिले-जुले विषयों पर बोलने वाले लोगों की वक्तृताएँ तो अवश्य ही सुननी चाहिए, क्योंकि उनमें ऐसे कितने ही तथ्य हो सकते हैं, जो अपने लिए भी बड़े काम के हों। उन्हें नोट करते रहने से अपनी ज्ञान सम्पदा भी बढ़ती है।

अपरिपक्व बुद्धि के लोगों को भिन्न मत वालों के प्रवचन सुनने से रोका जाता रहा है, विशेषतया साम्प्रदायिक मतावलम्बी अपने शिष्यों पर ऐसे प्रतिबन्ध लगाते रहे हैं कि अपने गुरु या सम्प्रदाय के अतिरिक्त और किसी के भाषण नहीं सुनने चाहिए। इसमें अपने मत को कच्चाई, कमजोरी खुल जाने का भय और अपरिपक्व बुद्धि के बिखर भी बह जाने की आशंका भी सन्निहित है। वक्ता बनने के इच्छुकों को इतना अपरिपक्व नहीं होना चाहिए कि उन्हें कोई भी बहका ले। उनकी अपनी निष्ठा, दिशा और मान्यता होनी चाहिए, साथ ही यह गुंजायश रहनी चाहिए कि विवेक के आधार पर सच्चाई को जहाँ भी पाया जाय, वहाँ से आवश्यक प्रकाश ग्रहण किया जाय। वक्तृताएँ अपने से भिन्न मत वालों की सुनने में भी हर्ज नहीं। उससे यथार्थता के अधिक निकट पहुँचने में सहायता मिलती है, विपक्षी तर्कों का उत्तर ढूँढ़ने का अवसर मिलता है। जो हो, यहाँ तो इतना ही कहा जा रहा है कि अच्छी वक्तृताओं को सुनकर या पढ़कर उनसे अपनी शैली निखारने में सहायता ली जा सकती है और चुटीलापन बढ़ाया जा सकता है।

यहाँ कुछ ऐसे सन्दर्भ प्रस्तुत किये जा रहे हैं जिनसे भाषणों में कभी-कभी घुली रहने वाली मार्मिकता का परिचय मिलता है। ऐसे प्रसंग अपनी नोट-बुक में अंकित करते रहा जाय और उन पर नजर डालते रहा जाय तो उससे अपनी प्रखरता बढ़ाने में अवश्य ही सहायता मिलती है।

अमेरिकी स्वतन्त्रता संग्राम के लोकनायक पेट्रिक हेनरी ने एक जनसभा का उद्‌बोधन करते हुए कहा था—"क्या जिन्दगी इतनी प्यारी है—क्या चैन से दिन काटना इतना मधुर है कि उसके बदले गुलामी की लानत स्वीकार की जाय ? पता नहीं आप लोग इस सम्बन्ध में क्या सोचते हैं—और क्या करना चाहते हैं, पर मेरा उत्तर एक ही है—"स्वतंत्रता चाहिए अथवा मृत्यु।"

सन् १९१७ में अँग्रेजी सरकार द्वारा फौज की भरती जोरों से की जा रही थी। इस कार्य में सहायता करने को नौजवानों की एक सभा बुलाई गई। उसी दिन लोकमान्य तिलक के पंजाब-प्रवेश पर सरकार द्वारा प्रतिबन्ध लगाया गया। विद्वान परांजपे जी तिलक के अनुयाई थे और तिलक फौज में भरती होने की सलाह देते थे। सभा में श्री परांजपे का भाषण हुआ। उन्होंने कहा—'यह सच है कि लोकमान्य तिलक आपको फौज में भरती होने की सलाह देते हैं, किन्तु आपके इन नेता पर जब पंजाब जाने की रोक लगाई गई है, तो जहाँ नेता नहीं जा सकता, क्या आप भरती होकर वहाँ जाना पसन्द करेंगे ?" इस भाषण का आश्चर्यजनक असर पड़ा भरती होने के लिए आये सैकड़ों युवकों में से सभी वापस लौट गये।

इटली पर आक्रमण करने से पूर्व नैपोलियन बोनापार्ट ने एक संक्षिप्त-सी वक्तृता अपने सैनिकों के सामने दी। उनकी आँखें चमक उठीं और वे असीम दुस्साहस के साथ लड़ाई में कूद पड़े। बोनापार्ट ने कहा—"दोस्तो, आपकी सामान्य आवश्यकताएँ भी सरकार अब तक नहीं जुटा सकी। इसमें उपेक्षा नहीं साधनों की कमी ही कारण रही है। आप चट्टानों जैसी दृढ़ता और असीम धैर्य, साहस का परिचय देते रहे हैं। उसकी सराहना करने से ही सन्तोष नहीं किया जा सकता। मेरा कार्यक्रम संसार के सबसे अधिक फले-फूले क्षेत्र में आपको ले जाने का है। उस धनी क्षेत्र के बड़े-बड़े शहर आपके कब्जे में होंगे। वहाँ पहुँचकर आपको प्रतिष्ठा, प्रसिद्धि, भोग्य सामग्री और सम्पत्ति मिलेगी। सैनिकों, क्या तुम ऐसा सुअवसर पाने के लिए शौर्य और साहस का प्रदर्शन न करोगे।

साहित्य ने नोबुल पुरस्कार प्राप्त विलियम फाकनर ने स्टाकहोम में साहित्यकारों का उद्‌बोधन करते हुए कहा था—"मनुष्यता का अन्त होने जा रहा है, यह मैं मानने को तैयार नहीं। मनुष्य अमर है, इसलिए कि उसके पास आत्मा है और आवाज। यह आवाज कभी अवरुद्ध नहीं होगी, प्रलय की घड़ी में भी नहीं। मेरा विश्वास है कि मनुष्यता आतंक के आक्रमण को सहन कर लेगी और जीवित रहेगी। आत्मा कभी करुणा, त्याग, शक्ति और साहस की विभूतियों से रिक्त नहीं हो सकती। अतएव मनुष्य का भविष्य अन्धकारमय नहीं हो सकता। साहित्यकारों का—कवियों और लेखकों का यह पवित्र कर्त्तव्य है कि वे ऐसी सृजन प्रक्रिया अपनायें, जिससे मनुष्य को अपने पर गर्व करने और भविष्य को अधिक प्रकाशवान होते देखने का अवसर मिले।"

साम्प्रदायिकता की समस्या पर श्रीनगर (काश्मीर) की एक सभा में जवाहरलाल नेहरू ने कहा था—"ये दल चाहे हिन्दुओं के हों या मुसलमानों के—उन्हें यह बात समझ लेनी चाहिए कि साम्प्रदायिकता न केवल काश्मीर को बल्कि सारे हिन्दुस्तान को तवाह कर देगी। साम्प्रदायिकता एक पिछड़े राष्ट्र की निशानी है, आधुनिक और प्रगतिशील राष्ट्र की नहीं। लोगों को अपने धर्म में विश्वास रखने का पूरा अधिकार है, पर धर्म को राजनीति में घसीटकर देश के टुकड़े करना एक ऐसी बात है, जो अब से तीन-चार सौ वर्ष पूर्व योरोप में फैली हुई थी। हर आदमी को अपने से पूछना चाहिये कि मैं हिन्दुस्तान को क्या बनाना चाहता हूँ। एक देश, एक राष्ट्र या दस-बीस पच्चीस खण्डित विभाजित राष्ट्र जो कठिनाइयों का सामना करने के लिए जरा भी ताकतवर न हों—जो जरा से झटके से टूटकर टुकड़े-टुकड़े हो जायें ? हर भारतवासी को इसका जबाव देना है।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सन्त विनोबा सौम्य किन्तु चोट करने वाला बोलते हैं। एक बार उन्होंने दहेज प्रथा पर व्यंग्य करते हुए कहा—"दहेज के रूप में लोगों को लम्बी माँग करते देखकर मुझे बड़ा दुःख होता है। आखिर आपका बेटा कोई बैल तो नहीं है, जिसके लिए बोली लगाई जाय और लम्बी रकम वसूल की जाय।"

स्वामी विवेकानन्द ने एक बार बेलूर मठ में अपने साथियों को उद्बोधन करते हुए कहा था—"सच्चा मनुष्य वह है जो शक्ति के समतुल्य ही शक्तिवान हो। लोह-स्तम्भ की तरह उसे आदर्शों पर दृढ़तापूर्वक खड़ा रहना चाहिए। साथ ही करुणा एवं स्नेहशीलता की मातृ हृदय जैसी कोमलता भी होनी चाहिए। अपने चारों ओर करोड़ों व्यक्ति पीड़ा और यातना का त्रास सह रहे हैं, उनके प्रति यदि सहानुभूति, सेवा एवं सहायता के लिए संवेदना न उमड़े तो समझना चाहिए कि अपने सीने में हृदय नहीं माँस का थैला मात्र चिपका है। हमें बादलों की तरह बरसना—नदी की तरह बहना और धरती की तरह कोमल होना चाहिए। यदि ऐसा कुछ भी न हो सका तो हमारी साधुता विदूषकों द्वारा अपनाई जाने वाली विडम्बना ही मानी जायेगी।"

पिछले पृष्ठों में बताया जा चुका है कि जर्मनी का अधिनायक हिटलर जब बोलता था, तो सुनने वाले रोमांचित हो जाते थे। उसकी जिह्वा ही नहीं एक साथ सारी मुखाकृति बोलती थी और लगता था कि सारा व्यक्तित्व ही बोल रहा है। हाथ, कन्धे, सीना, पैर भी भाव प्रकाशित करते थे। जर्मन पराजय के बाद वर्सायसन्धि में उसके देश को जकड़ा गया था। इस सन्धि की उसने एकपक्षीय धज्जियाँ उड़ा दीं। फ्रांस तथा रूस के साथ हुई लोकार्नो सन्धि को भी रद्द कर दिया। खोये हुए क्षेत्रों पर कब्जा करने के साथ हिटलर ने घोषणा की—'जर्मनी अब लोकार्नो सन्धि से बँधा हुआ नहीं है। अपनी जनता की सीमाओं की सुरक्षा एवं सुदृढ़ता के लिए जर्मन सरकार ने आज के दिन से सैन्यरहित क्षेत्र में अपनी पूर्ण और स्वतन्त्र प्रभुसत्ता पुनः स्थापित कर दी है।'

चुनाव अभियान में एक प्रत्याशी पर विरोधियों ने बहुत कीचड़ उछाला और उसके विरुद्ध बहुत कुछ कहा और लिखा। किन्तु वह विचलित न हुआ। मतदाताओं के विवेक को जगाते हुए वह यही कहता रहा—श्रेष्ठ लोग तथ्यों को ढूँढ़ते हैं और सचाई को पकड़ते हैं—सामान्य लोग बाल की खाल निकालने में उलझे रहते हैं कि "यह क्यों हुआ"—"किसलिए किया गया।" निकम्मे लोग अपनी गन्दगी दूसरों के मत्थे मढ़ते हैं और निन्दा करके अपना गुबार निकालते हैं। आप मतदाताओं के विवेक के सम्मुख यह चुनौती प्रस्तुत है कि आप निकम्मे लोगों को प्रश्रय देते हैं—सामान्य लोगों की तरह उलझन में पड़ते हैं अथवा श्रेष्ठ लोगों जैसी दूरदर्शिता अपना कर सचाई को ढूँढ़ निकालते हैं और जहाँ औचित्य है वहाँ अपना समर्थन प्रदान करते हैं।

एक चुनाव सभा को उद्बोधन करते हुए प्रभावशाली वक्ता ने मतदाताओं के विवेक को जगाते हुए कहा—"आपका मत सत्ता का सिंहासन हिला सकता है, उसमें नया शासन बदलने और नये संचालक नियुक्त करने की शक्ति है। क्या इतना बड़ा और इतना शक्तिशाली अस्त्र उत्तरदायित्व के साथ काम में न लाया जायगा ? स्वाधीनता के पूर्व हम लोग कुछ नहीं थे—हमें कोई पूछता नहीं था। अब हम में से एक-एक व्यक्ति इस देश का मालिक है। जब राजा बनाने का मौका मिला है, तो उस अधिकार का ठीक तरह अनुभव भी करना चाहिए और उसका उत्तरदायित्व भी निभाना चाहिए। अपना राज्य अच्छी तरह चले इसकी चिन्ता आप सबको करनी चाहिये। अच्छे सेवक चुनिये—ईमानदार और योग्यों को नियुक्त कीजिये। मतदान इसी कर्त्तव्य अधिकार का सदुपयोग है। इस अवसर पर आप अपना नियुक्ति-पत्र किसी के हाथ में थमाते समय सौ बार सोचिये कहीं यह राष्ट्रीय धरोहर आप अनधिकारी के हाथ सौंपकर सारे देश का भविष्य अन्धकारमय बनाने तो नहीं जा रहे हैं। मेरा विश्वास है कि आप दूरदर्शी लोग हैं और वही करेंगे जो आप के गौरव को अक्षुण्ण और राष्ट्र के भविष्य को उज्ज्वल बनाये रख सके। आपका मतपत्र सुयोग्य और सही हाथों में ही थमाया जायगा, ऐसा सहज ही विश्वास किया जा सकता है। ऐसे उद्बोधन जनता को किसी प्रलोभन या बहकावे में आने से सहज ही बचा सकते हैं।

अब राजनीति के वायदों की उतनी ही कीमत रह गई, जितनी फिल्मी या मसखरी के प्यार की। एक प्रेमी ने अपनी प्रेमिका को पत्र लिखा—"मैं तुम्हारे लिए आसमान के सितारे तोड़ कर ला सकता हूँ, नदी में डूब सकता हूँ, पहाड़ पर चढ़ सकता हूँ, ऊसर को उद्यान और उद्यान को ऊसर बना सकता हूँ। तुम्हारे बिना एक क्षण भी जिन्दा नहीं रह सकता।" उसी पत्र के अन्तिम पैरा में उसने यह भी लिखा—"तुम्हारा जल्दी मिलने का आग्रह बहुत प्यारा लगा, सो अगली शनिवार की शाम को मिलने का प्रयत्न करूँगा, यदि मौसम अधिक ठण्डा न हुआ तो।"

भाषण के बीच-बीच में कुछ चुटीले वाक्य भी जब-तब जोड़े जा सकते हैं। उन्हें यदि यथास्थान फिट किया जा सके तो प्रसंग में एक नई जान आ जाती है। पुस्तकों से या वक्तृताओं से ऐसे चुटकले संग्रह करते रहना चाहिये। यथा—

"किसी मित्र को रुपये उधार देना, उस मित्र या रुपया में से एक को खो देना है।"

"जब बंजारे गलियों में घूम रहे हों या राजनीतिज्ञ आपके पास बैठे हों तो कोट के बटन और घर के ताले बन्द रखिये।"

"एक टैक्सी चलाने वाले ने भूगोल पढ़कर यह निष्कर्ष निकाला कि पृथ्वी गोल है, इसलिए वह पूरब की सड़क पर चलते हुए पश्चिम की सड़क पर बसे कस्बे तक पहुँच सकता है।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"भगवान ने मनुष्य का ढाँचा ऐसा नहीं बनाया कि वह अपनी पीठ आप ठोंक सके। उसकी यह सहायता दूसरे ही कर सकते हैं।"

"नाव में बहुत से व्यक्ति बैठकर नदी पार कर रहे थे। उनमें एक अपने बैठने की जगह पर छेद करने लगा। दूसरे इस पर झल्लाने लगे और बोले—इस तरह छेद करने से नाव डूब जायगी। इस पर वह कहने लगा—"इससे आपको क्या सरोकार। मैं छेद करता हूँ तो मैं डूब जाऊँगा, आप क्यों परेशान होते हैं।"

दूसरे लोगों ने उसे समझाया—"नाव पर आप अकेले ही सवार नहीं हैं। हम भी इसी में बैठे हैं। आप अकेले नहीं डूबेंगे, हम सब को भी डुबो देंगे।"

कभी-कभी कुशल वक्ता नाटकीय आरम्भ करते देखे जाते हैं। 'अन्धविश्वास' पर प्रहार करते हुए एक वक्ता ने अपना कथन इस प्रकार आरम्भ किया—

"एक खरगोश ने जंगल के जानवरों का सम्मेलन कुछ महत्त्वपूर्ण समाचार देने के लिए बुलाया। बहुत से पशु-पक्षी एकत्रित हुए। खरगोश ने उनको अपना वह भयंकर सपना सुनाया, जिसमें आसमान के जमीन पर टूट कर गिर पड़ने और उसके नीचे समस्त प्राणियों के दब कर मर जाने की घटना उसने देखी थी। जानवर हँस पड़े और बोले—सपना तो सपना ही होता है, उसकी चर्चा करने से क्या लाभ ? खरगोश गम्भीर ही बना रहा। उसने कहा—आज नहीं तो फिर कभी सही, आसमान जरूर टूटकर जमीन पर गिरेगा और उसके नीचे दब कर मरने का संकट उत्पन्न होगा—हमें अभी से उस विपत्ति से बचने का उपाय सोचना चाहिए।

सब जानवर तो खरगोश की मूर्खता भरी बातों का उपहास करते हुए चले गये, पर टिटहरी ने खरगोश की आशंका को सच माना और वह तभी से ऊपर की ओर पैर करके सोती है, ताकि जब आसमान टूटकर धरती पर गिरे तो वह उसे अपने पैरों पर रोक ले। खरगोश उसी दिन से झाड़ी में छिपा रहता है। आसमान के बोझ से दब मरने का बचाव उसे झाड़ी के नीचे ही दिखाई पड़ता है।"

"सज्जनो ! आप इस कथा की कल्पना उसके प्रधान पात्र खरगोश की मूर्खता पर हँसेंगे, पर हमारी स्थिति भी तो ठीक ऐसी ही है। अबुद्धिमत्तापूर्ण अवांछनीयता और अनावश्यक अन्धविश्वासों को अपना कर हमने भी अपनी स्थिति उपहासास्पद बना ली है। अन्धविश्वासों के कारण अपने समाज को इतनी हानि उठानी पड़ी है, जिसकी तुलना संसार के इतिहास में और कहीं नहीं मिलती।"

ऐसे नाटकीय प्रसंगों को लेकर भाषण आरम्भ करना और उसका ठीक तरह निर्वाह करते जाना भाषण कला का एक विशेष रूप है।

संस्मरण, उद्धरणों से भाषण चुटीले बनते हैं, इन्हें सूक्ति पुस्तकों में से आसानी से छाँटा जा सकता है। बाजार में सूक्तियों के संग्रह की कितनी ही पुस्तकें मिलती हैं। उनमें से अपने भाषण प्रसंग से सम्बन्धित महापुरुषों के—मूर्धन्य व्यक्तियों के तथा नीति ग्रन्थों के सन्दर्भ इकट्ठे किये जा सकते हैं और जहाँ वे ठीक 'फबते' हों, वहाँ उनका उपयोग किया जा सकता है। संस्मरणों की भी कितनी ही पुस्तकें मिलती हैं। इनसे अथवा जीवन चरित्रों को इसी शोध दृष्टि से पढ़कर अपने काम के संस्मरण एवं घटनाक्रम संकलित किये जा सकते हैं। यह संग्रह मार्मिक एवं चुटीला होना चाहिए, साथ ही संक्षिप्त भी।

अल्पशिक्षितों और अविकसित लोगों में दृष्टान्त, संस्मरण अधिक बढ़ाये जा सकते हैं और उनके साथ-साथ शिक्षा, प्रेरणा का समावेश किया जा सकता है। बच्चों के लिए यही शैली उपयुक्त रहती है। वे विचारों को अधिक गहराई तक ग्रहण नहीं कर सकते। बुद्धि का विकास और पूर्व जानकारियों की पृष्ठभूमि पर ही गहरे विचारों का समझाना सम्भव हो सकता है। अल्पज्ञ लोगों की स्थिति वैसी नहीं होती, अतएव उनके लिए भाषण का प्राय: आधा भाग कथानक के वर्णन में और लगभग उतना ही उस प्रसंग के साथ-साथ शिक्षण दिशा के उतार-चढ़ाव जोड़ने में लगाना पड़ता है। इस स्तर की जनता को प्रशिक्षित, प्रभावित करने के लिए दृष्टान्तों की विशेष उपयोगिता है, किन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि घटनाक्रम अनावश्यक रूप से विस्तृत न होने पावे, अन्यथा सुनने वाले उसी कथा-कौतुक में उलझे रहेंगे और जो जानना-पाना है उससे वंचित रह जायेंगे। सुविज्ञ, समझदार लोगों के बीच इन प्रसंगों का समावेश बहुत ही कुशलतापूर्वक करना पड़ता है। संक्षिप्त, सारगर्भित प्रसंग ही उनके लिए पर्याप्त है। दाल में नमक की तरह इन प्रसंगों को गुदगुदाने के लिए ही प्रयुक्त करना चाहिए। विचार-प्रवाह टूटना नहीं चाहिए। स्पष्टत: अज्ञ और विज्ञ लोगों के सम्मुख समान रूप से प्रसंगों को नहीं रखा जा सकता है। संस्मरणों का घटाटोप बाँध देने और काम की बात कम रहने से भाषण रोचक भले ही बन जाय पर उसका स्तर उथला कहा जायगा। स्तर को गिरने न देकर रोचकता उत्पन्न करने के लिए उद्धरणों की प्रखरता और संक्षिप्तता का ध्यान रखना आवश्यक है।

उद्धरणों में अपने निज के जीवन की कोई घटना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो तो उसे अति संक्षिप्त रूप में संकोच व्यक्त करते हुए ही कहना चाहिए। जहाँ तक हो सके अपनी बातें कम ही की जायें। वे सारगर्भित हों तो भी आत्मश्लाघा समझी जाती है और यह सन्देह किया जाता है कि वक्ता आत्मविज्ञापन कर रहा है। साधारण वार्तालाप में भी जो लोग 'आप बीती' के घटाटोप करते हैं, उन्हें ओछा आदमी या शेखीखोर मान लिया जाता है। फिर भाषणों में तो उस प्रकार का निष्कर्ष सहज ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निकाला जा सकता है। अस्तु, उद्धरण दूसरों के ही देने चाहिए, 'आपबीती' को भी 'एक सज्जन' के नाम से कहना और अपना नाम दबा देना अधिक उपयुक्त है। इससे वक्ता की शालीनता भी बनी रहती है और उद्धरणों में रोचकता की आवश्यकता भी पूरी हो जाती है।

भाषण को चुटीला बनाना जितना आवश्यक है उतना ही उस सन्दर्भ में सतर्कता बरतना भी अभीष्ट है। जहाँ 'फबने वाले' संस्मरण वक्तृता में जान डाल देते हैं। वहाँ उनका असंतुलित उपयोग उनको अटपटा, अस्त-व्यस्त और बेतुका बना देता है। अस्तु, इस अभ्यास को थोड़ा-थोड़ा सँभल-सँभलकर एवं अपनी समीक्षा आप करते हुए ही अग्रसर करना चाहिए।

भाषण की विभिन्न शैलियाँ—अपने विषय का चुनाव कर लेने के बाद उसे वाणी के माध्यम से किस ढंग से व्यक्त किया जाय—इसे ही भाषण की शैली कहते हैं। कहने का ढंग उसका प्रधान गुण है। वैसे भाषा, अलंकार, कथानक, वाक्य और शब्दों के गठन आदि सम्पूर्ण बातों को मिलाकर ही शैली का एक रूप बनता है। भाषण देते समय मुखाकृति और अंग परिचालन भी शैली के सहायक अंग होते हैं। ध्वनि का उतार-चढ़ाव और भावनाओं के स्पष्टीकरण के तरीकों से भी शैली के किसी निश्चित स्वरूप का पता चलता है। इन सब बातों के संगठित रूप को प्रभाव की दृष्टि से तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है, इन्हें ही शैली का भेद कहा जा सकता है। भाषण की दृष्टि से उन्हें कोई निश्चित नाम नहीं दिया गया पर विवेचन की दृष्टि से उन्हें इस तरह जान सकते हैं—

(१) भाषण की एक शैली वह होती है, जिसमें भावनाओं का आवेश तूफान की भाँति तीव्र प्रवाहवान बादल की तरह गरजता हुआ होता है। भाषा ऐसी ओजपूर्ण होती है, जिसे सुनकर लोग मर्माहत हो उठें, जोश से भर जायें। कभी-कभी ऐसे भाषण सुनकर कँपकँपी उठती है और रोमांच हो आता है। बरसात के दिनों आल्हा-खण्ड इस ढंग से पढ़ा जाता है कि लोगों की भुजायें फड़क उठती हैं। भूषण की कविताएँ, पृथ्वीराज रासो तथा जयशंकर प्रसाद के कुछ नाटक ऐसे ही ओज गुण संयुक्त मिलेंगे, इस प्रकार की शैली श्रोता को एकाएक प्रभावित करती है। वह सुनते-सुनते उत्तेजित हो उठता है, भले ही उसमें कोई विवेक न हो। हिटलर, नैपोलियन, मुसोलिनी, सिसरो, सुभाषचन्द्र बोस आदि के भाषण इसी तरह के होते थे। यह शैली उग्रता प्रधान होती है। इसमें वक्ता और श्रोता दोनों में ही ओजस् का संचार होता है, इसलिये इसे ओजस्विनी शैली का नाम दिया जा सकता है।

(२) एक शैली ठीक पहले से भिन्न होती है। इसमें भाषा, विचार और अभिव्यक्ति सभी शान्तिपूर्ण-सरलता के साथ बहते हुए विचारों में श्रोता डूबता-उतराता रहता है। कभी वह सिहर उठता है, कभी प्रेम की भावनायें उमड़ती हैं, कभी विनोद पैदा होता है। इन सबके बीच वह विषय के लक्ष्य को समझता रहता है इस प्रकार की शैली का प्रभाव तत्काल भले ही न दिखाई देता हो पर उससे श्रोताओं में विचार पैदा होते हैं। यह शैली सरलता, सुगमता तथा सरसता लिये होती है।

(३) तीसरी शैली पूर्णतया माधुर्यगुण संयुक्त होती है, उसमें श्रोताओं को आनन्द अधिक आता है। इसमें प्रेम, शृंगार, शान्त एवं करुणा-रस का प्रवाह होता है। इसमें श्रोताओं का मनोरंजन तो होता है पर यह कोई निश्चित नहीं कि वे कोई स्थिर प्रभाव ग्रहण करें। जब तक भाषण होता है, तब तक वक्ता के मन से मन मिलाये रहते हैं, इसके बाद उसको भूल जाते हैं।

जितने भाषण होते हैं, वह इन्हीं तीन के अन्तर्गत आते हैं। इनको वक्ताओं में अलग-अलग भी देखा जा सकता है और एक वक्ता में सम्मिश्रित रूप से तीनों शैलियों को भी देखा जा सकता है।

यह जानकारी नये वक्ता को अपना एक क्षेम बनाने और उसका अभ्यास करने की दृष्टि से आवश्यक है। इससे शैली के विकास और भाषण में प्रभाव उत्पन्न करने की सहायता मिलती है।

किसी वक्ता की भाषण शैली का कुछ दिन तक गौर से निरीक्षण किया जाय, तो यह मालूम पड़ेगा कि उसका प्रत्येक भाषण एक ही शैली से बँधा हुआ है। वक्ता के कहने का ढंग, शब्दों के उतार-चढ़ाव, विषय का झुकाव प्रायः एक ही शैली में व्यक्त होते हैं। जब इस प्रकार की परिपक्वता में आ जाती है, तो फिर उसमें परिवर्तन की गुंजाइश नहीं रहती है पर यदि पूर्व-अभ्यास के समय अपनी शैली का विश्लेषण स्वयं या किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा कराया जाय, तो उसमें परिवर्तन करना सुगम हो जाता है। भाषा में शब्दाडम्बर जान पड़े तो शुरू में ही उसे ठीक किया जाय और यह कोशिश की जाय कि सरल शब्दों का ही इस्तेमाल हो। नीरस विषयों को सरस बनाना, भाषा में नम्रता या तेजी लाना भी पूर्व अभ्यास पर ही निर्भर है। ऐसा देखा जाता है कि कुछ वक्ता भाषण करते समय कठोर शब्दों का बहुत अधिक प्रयोग करते हैं, वक्तृता के अन्त में इस बात को अनुभव भी करते हैं पर बीच में सन्तुलन स्थिर नहीं रख पाते, इसका एक ही कारण है कि पूर्व-अभ्यास का आत्मनिरीक्षण नहीं किया गया होता।

भाषण एक सामाजिक जिम्मेदारी—विषय और शैली को लेकर वक्ता बहके नहीं, इसके लिए यह आवश्यक है कि वह कभी व्यक्तिगत, दलीय या साम्प्रदायिक भावना में ग्रस्त न हो। भाषण विशुद्ध रूप से एक सामाजिक जिम्मेदारी है, जिसका पालन वैसे ही किया जाना चाहिए जिस प्रकार कोई सद्गृहस्थ अपने परिजनों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के प्रति कर्त्तव्यों का निर्वाह करता है। इसे लोक-सेवा का व्रत मानकर अपने जीवन में उतारा जाय तो निश्चय ही उससे तीखेपन की सम्भावनायें घटेंगी और भाषण का माधुर्य गुण विकसित होगा। आपके भाषण में इन दोनों में सामान्य सन्तुलन बना रहे तो आप लोकप्रिय वक्ता बन सकते हैं। आपको यह निश्चित रूप से जान लेना चाहिए कि आप किसी के मित्र, सहृदय, स्वजन बनकर ही कुछ प्रेरणा प्रदान कर सकते हैं। संसार आपका आज्ञानुवर्ती होने के लिए या हुक्म मानने के लिये कभी भी तैयार न होगा चाहे आप कितने ही बड़े विद्वान या सत्ताधारी क्यों न हों। शुभचिन्तक बनकर ही आप लोकप्रियता प्राप्त कर सकते हैं, आपको अपने प्रत्येक भाव को इस अटल सिद्धान्त की परिधि में ही सजाना होगा।

देखा गया है कि सच्चे और शुभचिन्तक वक्ता अपने श्रोताओं पर कभी-कभी तीखे शब्दों का प्रयोग कर जाते हैं, तो भी लोग उसे अप्रिय नहीं मानते और यह अनुभव करते हैं कि जरूर उनसे कहीं भूल हो रही है। अपने प्रियजनों से लोग शाब्दिक शिष्टाचार का ध्यान कम रखते हैं, तो भी उसका बुरा नहीं मानते क्योंकि यह समझा जाता है कि उन शब्दों के बीच गहरी आत्मीयता भरी हुई है। सामाजिक उत्तरदायित्व की पूर्ति के लिये वक्ता को उसी स्तर का सहृदय और शुभचिन्तक बनाना चाहिए। श्रोताओं के प्रति आप जितनी आत्मीयता का भाव प्रदर्शित कर सकते हैं, उनका उतना ही कुशल मार्गदर्शन करने की आप में क्षमता है, ऐसा मानना चाहिए।

भाषण का भविष्य—भारतवर्ष में लोकतन्त्र पनप रहा है। यहाँ के सामाजिक उत्थान की दिशा उत्कृष्ट और पुरोगामी है। विशाल भारत की संस्कृति भी विशाल है और अब उसके विकास की सम्भावनायें भी बढ़ रही हैं। अगले दिनों सच्चे समाजसेवी व्यक्तियों की प्रतिष्ठा बढ़ेगी, यह निश्चित जान पड़ता है। भाषण लोक सेवा का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है। आध्यात्मिक उद्देश्यों की पूर्ति और जनजाग्रति के लिए आगे और भी अधिक कुशल वक्ताओं की आवश्यकता होगी। जो आत्मिक, बौद्धिक एवं नैतिक दृष्टि से समर्थ हों, उन्हें सहर्ष इस क्षेत्र में पदार्पण करना चाहिये। समाज का सच्चा नेतृत्व ब्राह्मणत्व की कसौटी है। भारतवर्ष की भावी पीढ़ी में उच्चस्तरीय प्रतिभा के विकास में योग देने के लिए ऐसे समाजसेवी व्यक्तियों की आवश्यकता आज की अपेक्षा कल अधिक होगी, ऐसा स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

पर यह कार्य आसान नहीं है। युद्ध के मोर्चे पर कुशलतापूर्वक ड्यूटी पूरी कर सके, इसके लिए सिपाही को कठिन प्रशिक्षण लेना पड़ता है। किसी भी कला में पारंगत होने के लिए साहस, श्रम और निरन्तर साधना की जरूरत होती है। कठिनाइयों में अभ्यास किये बिना कला प्रभावोत्पादक नहीं हो पाती। वक्तृत्व कला के सम्बन्ध में भी ऐसी ही बात है। नवोदित वक्ताओं के लिए यहाँ अभ्यास के लिए प्रचुर सामग्री जुटाई गई है। उसका अनुशीलन करने से प्रभावशाली वक्ता बनने के गुणों का अभिवर्द्धन किया जा सकता है, ऐसा हमारा सुनिश्चित विश्वास है।

मात्र भाषण ही नहीं—साथ में गायन भी

इच्छित उपयोग के लिए बहुत से कला-कौशल सीखे जाते हैं। इस प्रयास में अपनी आजीविका, ख्याति, सुविधा आदि का लाभ उठाना ही प्रमुख उद्देश्य होता है। भाषण कला भी अन्य कला-कौशलों की तरह एक उपजाऊ व्यवसाय है। सेल्समैन, बीमा एजेण्ट, दलाल आदि भाषण तो नहीं करते पर उनकी संभाषण कला में कोई कमी भी नहीं रहती। धर्मोपदेशक, कथावाचक एवं चित्र-विचित्र आवरण और संस्था संगठनों के संचालक इस कौशल के सहारे ही प्रभुत्व जमाते और प्रकारान्तर से ख्याति और सम्पदा का प्रचुर लाभ अर्जित करते देखे गये हैं। नट, नायकों को भी इसी वाचालता का सहारा लेना पड़ता है। दरबारी प्रकृति के लोग तो इसी के सहारे जीवित रहते हैं। ठग, चमचे, विदूषक, चापलूसी के लिए तब यह कला ही निर्वाह का माध्यम बनी होती है। एक पुस्तक उनके लिए नहीं लिखी गई है और उन्हें अपने संभाषण के साथ किन हथकंडों का समावेश करना होगा, इस रहस्योद्घाटन का उल्लेख भी इन पंक्तियों में अभीष्ट नहीं। क्योंकि उस समुदाय को ध्यान में रखते हुए यहाँ कुछ सोचा-विचारा ही नहीं गया। स्वार्थ सिद्धि के लिए किस प्रकार की, किस स्तर की वाचालता अभीष्ट होती है इस सन्दर्भ में पाश्चात्य लेखकों की ढेरों पुस्तकें मण्डी में उपलब्ध हैं। उनकी बिक्री भी लाखों की संख्या में होती है।

यह पुस्तक उन जाग्रत आत्माओं के लिए लिखी गई हैं, जो नवसृजन के इस पावन पर्व पर युगशिल्पी की भूमिका सम्पन्न करने को उत्सुक हैं, जिन्हें लोकमानस का परिष्कार अभीष्ट है। जो जन-जागरण की बात सोचते हैं और जन-जन के मन-मन में युगान्तरीय चेतना का आलोक उत्पन्न करने में गम्भीर हैं। उसके लिए कुछ करने की उत्कण्ठा जिनके भीतर है और जो उसे कार्यान्वित करने में अनिवार्य आवश्यकता की तरह प्रयोग में लाई जाने वाली वाक्सिद्धि का, सरस्वती साधना का अभ्यास करना चाहते हैं। ऐसे लोगों को यह भी ध्यान में रखना होगा कि उन्हें परिस्थितियों के अनुसार आधारों का अवलम्बन लेना पड़ेगा। अपनी योग्यता को जनता पर लाद नहीं सकेंगे, उन्हें जनता का स्तर देखते हुए अपने को ढालना पड़ेगा।

हर योग्यता के व्यक्ति अपनी क्षमता को अपने स्तर के लोगों के सम्मुख प्रकट करते रहते हैं। तदनुरूप प्रबन्ध भी हो जाता है। चिकित्सक, वैज्ञानिक, साहित्यकार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आदि की अपने-अपने ढंग की ज्ञान गोष्ठियाँ होती रहती हैं और उनमें उन प्रसंगों में रुचि लेने वाले व्यक्ति इकट्ठे होते रहते हैं किन्तु नवसृजन के लिए कोई वर्ग विशेष नहीं है। वर्ग है तो उसे एक शब्द में पहचाना जा सकता है—विचारशील, भावनाशील, उदारमना ऐसे लोग हर वर्ग समुदाय में हो सकते हैं, शिक्षित, अशिक्षित, धनी, निर्धन, हिन्दू-मुसलमान आदि किसी भी वर्ग में उन्हें पाया जा सकता है, अपने मन के लोग कहाँ मिलें? जिनमें बीज बोया जाने पर अंकुरित होने की आशा बँधे, तो फिर इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ेगा कि असली भारत देहात में है। देहात अर्थात ७० प्रतिशत भारत। यों शहरों में भी अशिक्षितों की कमी नहीं, पर देहात तो उसी वर्ग का अपना क्षेत्र है। देश में ७० प्रतिशत अशिक्षित हैं। इसका विभाजन किया जाय तो शहर का हिस्सा कम और देहात का अधिक होगा। अनुमानतः शहरों में २० प्रतिशत और देहात में ८० प्रतिशत अशिक्षित माने जा सकते हैं। यही है असली भारत की तस्वीर। हमें इसी समुदाय की सेवा करनी है। उसी को अपना कार्यक्षेत्र मानकर चलना है।

शहरों से अपना कोई द्वेष नहीं। पर उस क्षेत्र में व्यस्तता, लिप्सा, चिन्ता और संकीर्णता का बाहुल्य देखते हुए रचनात्मक कार्यों में सहयोग मिलने की आशा कम ही रखी जा सकती है। फिर उस क्षेत्र पर इतने प्रकार के मत-मतान्तर हावी हैं कि खींचतान से दिग्भ्रान्त जैसी स्थिति बन गई है। राजनैतिक संस्थाओं को ही लें। उनका प्रोपेगण्डा बहुत धूमधाम से होता है और दूसरों के विरुद्ध निरन्तर आरोप-आक्षेपों की बौछार करते रहते हैं। प्रतिपादन इतने सशक्त होते हैं कि सामान्य जन किसी निष्कर्ष पर पहुँच नहीं पाते। वे या तो उपेक्षा बरतने लगे हैं या किसी विचार समुदाय के कट्टर अनुयाई बन गये हैं। उनमें भी परिवर्तन तो लाया जाना चाहिए, पर इसके लिए समर्थ तंत्र की आवश्यकता है। उसे मूर्धन्य लोग भी सँभाल सकते हैं। युग शिल्पियों की प्रतिभा तथा सम्पन्नता इस स्तर की है नहीं कि शहरी जनता को आकर्षित एवं प्रेरित करने के लिए आवश्यक किन्तु अत्यन्त महँगे साधन जुटा सकें। बड़े प्रचार पंडाल के बिना शहरी जनता के प्रभाव सम्मेलन बुला सकना कठिन है। उन साधनों के लिए सुसम्पन्नों की थैलियाँ कैसे खुलें ? वे अपने हाथ कैसे लगें ? इस विवशता के कारण भी उन खट्टे अंगूरों को नमस्कार करके अपना रास्ता नापना ही उचित है। फिर मूल आवश्यकता भी तो यह कहती है कि शहरों में घुसपैठ की धक्का-मुक्की में पड़ने का कार्य दूसरों पर छोड़कर हमें उपेक्षित देहातों की ओर मुड़ना और वहाँ डेरा डालना है। असली भारत दूसरे समाजसेवियों की दृष्टि में नहीं है। वहाँ साधन-सुविधा के अभाव में बड़े लोग नहीं पहुँच सकते या नहीं पहुँचना चाहते, तो उन्हीं का अनुकरण क्यों किया जाय। दूसरे मिशनरियों से भी कुछ क्यों न सीखा जाय, जिनने न केवल भारत में वरन् संसार के अन्य पिछड़े क्षेत्रों में अपना डेरा डाला है और देहात के पिछड़े वर्ग को अपना कार्यक्षेत्र चुना है। वहाँ अशिक्षा, दरिद्रता, अस्वच्छता का बाहुल्य भले ही हो, पर दिग्भ्रान्ति ने अनास्था उत्पन्न नहीं की है। भावना की दृष्टि से इतना कुछ होना बहुत है। इस स्तर की मनोभूमि का सही ढंग से मर्मस्पर्श किया जाय, तो वहाँ प्रकाश और परिवर्तन की प्रक्रिया के फलित होने की अपेक्षाकृत अधिक आशा है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए हममें से प्रत्येक को अपने सुनिश्चित कार्यक्षेत्र के बारे में निभ्रान्त रहना चाहिए और प्रयत्न यह करना चाहिए कि उस समुदाय में बौद्धिक आदान-प्रदान के लिए जो सम्भव है, उसी उपाय को अपनाया जाय। उनकी आवश्यकता को परिस्थिति की प्रमुखता दी जाय। स्वयं उसके अनुरूप योग्यता उपार्जित करें। अपनी योग्यता उन पर थोपने का हठ न करें।

इस निष्कर्ष पर पहुँचने के उपरान्त प्रवचन शैली में कथानकों की भरमार करके सुबोध एवं लोकप्रिय स्तर का बनाने का प्रयत्न किया गया है। प्रज्ञा पुराण का सृजन विशुद्ध रूप में इसी निमित्त हुआ है। स्लाइड प्रोजेक्टरों को भी महत्त्व इसी दृष्टि से दिया गया है कि दिव्यदर्शन कराते हुए उस क्षेत्र की भाषा में युगान्तरीय चेतना को गले उतारने का प्रयत्न किया जाय।

इस संदर्भ में एक पक्ष और भी देने योग्य है, वह है—कथा के साथ 'कीर्तन' का जुड़ा होना। जहाँ कथा हो वहाँ कीर्तन अवश्य हो। इस निर्धारण के अनुसार 'कथा कीर्तन' शब्द को अविच्छिन्न बना दिया गया है और दोनों का स्वरूप पृथक-पृथक होते हुए भी उन्हें एक ही शृंखला में गूँथ दिया गया है। इसे गद्य और पद्य का समन्वय कहना चाहिए। प्रवचन ही नहीं संगीत भी आवश्यक है। यह इसलिए कि प्रवचन को गले उतारने पर प्रधानतया विचार क्रांति का पथ-प्रशस्त होता है। विचारों को विचारों से टकराकर अनुपयुक्त चिन्तन छोड़ने और विवेकपूर्ण औचित्य को अपनाने की प्रेरणा दी जाती है। यह आवश्यक है और अनिवार्य भी, पर एक और बात है जिसे भुला नहीं दिया जाना चाहिए। वह है लोकमानस का भावनात्मक परिष्कार। विचारणा और भावना सहेलियाँ तो हैं, पर उनका अस्तित्व स्वतंत्र भी मानना पड़ेगा। भावना की शक्ति को समझा जाना चाहिए। वह विचारणा से भी अधिक समर्थ है। आदर्शवादी अनुगमन में तो विशुद्ध रूप से भावना की ही भूमिका रहती है। संवेदनाएँ ही त्याग बलिदान की उमंगें उत्पन्न करती हैं। करुणा और सेवा का उद्गम भावना क्षेत्र के अन्तराल में ही पाया जाता है। अनास्थाजन्य प्रस्तुत संकट का निराकरण श्रद्धासिक्त उमंगें उभारने से ही बन पड़ेगा। विचारवान प्रज्ञा इसकी प्रारम्भिक पृष्ठभूमि बनाती है। महामानवों ऋषियों में अधिकांश भावनाशील थे। बुद्धिमान, विज्ञजन तो चतुरता के धनी ही पाये जाते हैं। वे कथनोपकथन में प्रवीण होते हैं। पर जब त्याग-बलिदान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का, सत्साहस के प्रकटीकरण का समय आता है तो वह बुद्धिमत्ता ही आड़े आ जाती है, जिसके सहारे बड़े-बड़े प्रतिपादन खड़े किये गये थे। यह आक्षेप बहुत हद तक सही है कि बुद्धिमानों से चतुरता, प्रतिभाभर की अपेक्षा करनी चाहिए, वे आदर्शवादिता को चरितार्थ करने वाली उदार सेवा साधनों से बचते-कतराते ही देखे गये हैं।

यहाँ विचारणा का महत्त्व नहीं घटाया जा रहा है कि उस तक सीमित रहने, उस पर निर्भर रहने से बात बनेगी नहीं। भावना क्षेत्र को उमँगाने के लिए भी हमें प्रयत्नशील रहना होगा। इसके लिए प्रतिपादनों में तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहरणों का समावेश करके ही निश्चित नहीं हो जाना चाहिए वरन् एक कदम और आगे बढ़कर भावनाओं के भण्डार अन्तःकरण का मर्म स्पर्श करने को महत्त्व देना चाहिए। हमारे प्रवचन विद्वतापूर्ण ही न हों वरन् उनमें रुला देने की भी क्षमता हो। ऐसे आँसू उगाने चाहिए, जो करुणा एवं उदारता बनकर सेवा-साधना का क्षेत्र सम्हाल सकें। आदर्शवादिता की खेती इन्हीं श्याम घटाओं से पनपती है। स्वाँति बूँदों जैसा चमत्कार भाव भरी आर्द्रता ही उत्पन्न कर सकती है। हमारे प्रतिपादनों में इस संवेदना का समुचित समन्वय रहना चाहिए।

इस प्रसंग में एक नया तथ्य सामने आता है—संगीत की शक्ति। कहना न होगा कि जहाँ तक भाव संवेदना उभारने का प्रश्न है, वहाँ तक प्रवचनों की तुलना में संगीत को कहीं अधिक शक्तिशाली पाया गया है। सूर, मीरा, चैतन्य आदि की संगीत साधना ने अपने समय में जो चमत्कार उत्पन्न किये, उन्हें भुलाया नहीं जा सकता। आज भी उनकी संवेदना को जब गीतवाद्य सहित उमगाया जाता है, तो लोग लहराने लगते हैं। दीपक राग बुझे दीपक जलाते थे। मेघ मल्हार गाने से वर्षा होती थी। वैसे उदाहरण अब देखने को नहीं मिलते और न इन दिनों बहेलिया हिरनों को पकड़ने के लिए वाद्य बजाकर उन्हें मंत्र-मुग्ध करते हैं। सपेरे भी साँपों को लहराते देखे जाते हैं। जो हो मनुष्य के भावना क्षेत्र तक प्रवेश पाने के लिए वक्तृता से भी एक कदम आगे बढ़कर संगीत संवेदना का आश्रय लेना होगा। यही कारण है कि कथा के साथ कीर्तन शब्द को अविच्छिन्न किया गया है। गद्य के साथ पद्य का गठबंधन करने से एक बड़ी अपूर्णता का समाधान निकलता है।

संगीत की तुलना में भावनात्मक क्षेत्र को तरंगित करने वाली शक्ति दूसरी नहीं। शास्त्रकारों ने उसकी महत्ता महिमा 'शब्द ब्रह्म' के समतुल्य ही ''नाद ब्रह्म'' की भी गाई है। देवर्षि नारद की वीणा, शंकर का डमरू, कृष्ण की वंशी उनकी आन्तरिक भाव अभिव्यक्तियों का प्रकटीकरण सम्भव बनाती है। नाद योग के द्वारा मिलने वाली सिद्धियों का वर्णन यहाँ प्रस्तुत नहीं किया जा रहा है। किन्तु उस तथ्य को तो समझना ही होगा कि नवसृजन की उमंगों का उद्भव भावना क्षेत्र से होगा और उसके लिए संगीत शक्ति को उपेक्षित नहीं रखा जा सकेगा। प्रवचन एवं लेखन से सामयिक आवश्यकता की पूर्ति न हो सकेगी। इस त्रिवेणी में गंगा-जमुना की लेखनी वाणी की प्रमुखता भले ही रहे पर वीणापणि सरस्वती की तीसरी धारा का समावेश भी अनिवार्य-अपरिहार्य मानकर चलना होगा।

देहात के लिए संगीत की आवश्यकता एवं लोकप्रियता को प्रमुखता देनी होगी। वहाँ अभी भी अभिव्यक्तियों, भाषणों से नहीं गायनों से ही प्रकट की जाती है। विवाह, शादियों, तीज-त्यौहारों पर महिलाओं को गीत, मल्हार गाते सभी ने सुना है, इसके अतिरिक्त आल्हा, ढोला, रामायण—नौटंकी, चौबोला, लावनी, रसिया, बारहमासी आदि के रूप में गाये जाने वाले लोकगीतों की मंडलियाँ जुड़ती हैं। जो गा सकते हैं अग्रिम पंक्ति में रहते हैं। शेष लोग मनोयोगपूर्वक सुनते और रात-रात भर जागते रस लेते देखे जाते हैं। लोकनृत्य समूचे भारत में सर्वत्र प्रचलित हैं। उनके अपने-अपने ढंग और स्वरूप हैं। किन्तु स्मरण रहे वह संगीत की ही मूक अभिव्यक्ति है। गीत के साथ जो लय-तरंगें उद्भूत होती हैं, वे ही कंठ-ओष्ठ तक सीमित न रहकर हाथ-पैर गरदन, आँख के चल अवयवों द्वारा थिरकन बनकर फूट पड़ती है। संगीत का समूची काया तथा मनःसंस्थान को तरंगित करने वाला स्वरूप ही नृत्य माना जाता है। 'ऐक्शन सांग' इसी की एक मध्यवर्ती अनुकृति है। कीर्तन में पाई जाने वाली भाव-विभोर तन्मयता भी संगीत का ही विकसित एवं विस्तृत स्वरूप है।

स्वर, ताल और अंग-संचालन की भाव-विभोरता कितनी मादक होती है और उसकी आध्यात्मिक एवं भौतिक क्षेत्र में क्या-क्या उपलब्धियाँ हस्तगत होती हैं—इसकी चर्चा-विवेचना इन पंक्तियों में अभीष्ट नहीं। यहाँ तो इतना ही कहा जा रहा है कि नवयुग की जन-जागरण प्रक्रिया में संगीत की उपेक्षा नहीं की जा सकती। उसकी उपयोगिता इस प्रयोजन के लिए उतनी ही है जितनी कि प्रचार पक्ष में काम आने वाले भाषण-संभाषण, लेखन-पठन, आयोजन-आन्दोलन आदि की। प्रत्येक वक्ता को यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि उसे संगीत को साथ लेकर चलना है। प्रवचन आदि में अन्त में या दोनों बार संगीत, सहगान या कीर्तन का समावेश रखना चाहिए। वह वाद्य यंत्रों की सहायता से बन पड़े तो आकर्षण और भी अधिक बढ़ जायेगा। अन्यथा बिना वादन का गायन भी काम दे सकता है। कथावाचक प्रायः ऐसा करते भी हैं। ''हरे राम हरे कृष्ण ..... ।'' ''रघुपति राघव राजाराम ..... ।'' ''हे कृष्ण, हे कृष्ण हरे मुरारी ..... ।'' जैसी कितनी ही रामधुनें प्रख्यात हैं। आये दिन नई बनती और पुरानी विस्मृत होती रहती हैं। इन्हें एक बार वक्ता कहता है। दूसरी बार उपस्थित जनसमुदाय दुहराता है। इससे सबका ध्यान एकाग्र होता है। विशृंखलता, अस्तव्यस्तता दूर होकर जागरूकता उत्पन्न होती है और कथन श्रवण का उपक्रम ठीक प्रकार चल पड़ता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह परम्परा का निर्वाह हुआ। बात इतने तक सीमित नहीं रहनी चहिए। लोकमानस में अभिनव जागरण एवं उल्लास का समावेश करने के लिए सार्थक, प्रेरणाप्रद एवं भावनाएँ तरंगित करने वाले ऐसे गीतों की आवश्यकता है, जो युग-चेतना को अग्रगामी बना सकें। ऐसे गीतों को ढूँढ़ने, चयन करने की आवश्यकता न पड़ेगी। उन्हें नये सिरे से लिखा जाना आरम्भ कर दिया गया है और वे बड़ी संख्या में अगले ही दिनों उपलब्ध होने लगेंगे। 'नये सिरे से' कहने का एक नया अभिप्राय है कि प्रज्ञा मिशन ने एक ध्वनि को मान्यता दी है। उसमें स्वर, ताल और थिरकन इन तीनों का समावेश है। उसकी तर्ज है—

माँ तेरे चरणों में हम शीश झुकाते हैं।

श्रद्धापूरित होकर दो अश्रु चढ़ाते हैं।।

झंकार करो ऐसी सद्भाव उभर आये।

हुंकार भरो ऐसी दुर्भाव उखड़ जाये।।

सन्मार्ग न छोड़ेंगे हम शपथ उठाते हैं।

माँ तेरे चरणों में .....।

इसी एक ध्वनि पर असंख्यों गीत लिखे जा सकते हैं। भिन्नताओं पर रोकथाम इसलिए लगाई गई है कि कवियों को उसी पर लिखने का अभ्यास पड़े। गायकों का गला एक ही प्रयोग पर निरन्तर अभ्यास करते-करते ठीक तरह सध जाय। वादकों के लिए इसमें सबसे अधिक सुगमता है। अनेक ध्वनियों पर वाद्य यंत्रों का अभ्यास करने के लिए स्वर-शास्त्र की क्रमबद्ध शिक्षा चाहिए। अनेक सरगम में साधनी और याद करनी पड़ती है। स्वर ताल की भिन्नताओं को समझना और उनके अन्तर को अभ्यास में अपनाना पड़ता है, पर जब एक ही लय ध्वनि पर सारा संगीत शास्त्र समाप्त होता है, तो फिर सारा झंझट ही मिटा। डमरू में कुछ ही बोल निकलते हैं, शंकरजी ने उतने में ही समूक स्वर शास्त्र को केन्द्रित कर लिया तो कोई कारण नहीं कि युग संगीत को एक ध्वनि पर केन्द्रित किया जा सके। इससे गायकों को ही नहीं बादकों को भी भारी सुविधा होगी, वे इस लय का अभ्यास बिना स्वर शास्त्र की सांगोपांग जानकारी प्राप्त किये एक से दूसरे का अनुकरण करने की विद्या अपनाकर देखते-देखते प्रवीणता प्राप्त कर सकेंगे। मात्र इशारे से ही एक साथी अपने दूसरे सहयोगी को अभ्यस्त कर दिया करेगा। कंठ से कंठ मिलाकर गाने भर से गीतक्रम पर गला सजाया करेगा।

वाद्य यन्त्रों में यों हारमोनियम, ढोलक, तवला अब सर्वत्र प्रचलित हैं। जहाँ तक एक ध्वनि का सम्बन्ध है, उन पर भी महीने दो महीने के अभ्यास से कामचलाऊ। ढर्रा लुढ़कने लग सकता है। महिलाएँ बिना कहीं संगीत शिक्षा पाये गीत वादन का कामचलाऊ अभ्यास कर लेती हैं। फिर कोई कारण नहीं कि नियमित एक लय ताल पर सर्व साधारण को अभ्यस्त न बनाया जा सके। प्रचारकों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना पड़ता है। कभी पैदल, कभी साइकिल पर यही है छोटे देहातों में आवश्यक सामान लेकर पहुँचने का साधन। ऐसी दशा में सफरी बाजे साथ लेकर चलने का उपाय एक ही है कि हल्के वाद्य यंत्र काम में लाये जायें। भावी प्रचार टोलियाँ दो-दो की होंगी और वे गाँव-गाँव नवयुग का अलख जगाने के लिए परिभ्रमण करेंगी। उनके झोले में ही वाद्य यंत्रों को बिठाना पड़ेगा। इसलिए वे ढपली और मँजीरा, घुँघरू ही हो सकते हैं। लागत कम, वजन कम, घेरा कम, अभ्यास कम और लाभ अधिक। इस उपाय उपचार का अवलम्बन लेकर गीत और वाद्य दोनों का समन्वय हो सकता है और वक्तृता के समतुल्य ही विचारों की अभिव्यक्ति का, जनजागरण का एक नया द्वार खुल सकता है।

प्रत्येक युग शिल्पी को कहा गया है कि उसे अपनी वाणी मुखर करनी चाहिए और जन सम्पर्क क्षेत्र में उतर कर जनसमर्थन और सहयोग उपलब्ध करने का प्रथम सोपानपूर्ण करना चाहिए। आगे की महत्त्वपूर्ण प्रतिष्ठापनाओं का द्वारा इसी शुभारम्भ से खुलेगा। ठीक इसी प्रकार दूसरी बात यह भी कही जा रही है कि भाषण को ही समग्र न माना जाय वरन् उसका अविच्छिन्न सहयोगी गायन भी समान अवलम्बन बनाया जाय। वाणी के यह दोनों ही शृंगार हैं और अपने-अपने स्थान पर इन दोनों का ही समान उपयोग एवं महत्त्व है।

कथा प्रसंगों के साथ प्रवचन करने की शैली अत्यधिक सरल और सफल है। उसे शिक्षितों-अशिक्षितों में समान रूप से प्रयुक्त किया जा सकता है और चिरकाल तक एक ही स्थान पर नये-नये संदर्भ सुनाते रहा जा सकता है। दार्शनिक भाषणों की तरह इस प्रक्रिया को अपनाने पर तरकस कभी खाली नहीं होता और शब्द वेधी वाण निशाना वेधने के बाद फिर लौट-लौटकर तूरणि को रिक्त नहीं होने देते। प्रज्ञा पुराण के बीस खण्ड इसी दृष्टि से सृजे जा रहे हैं कि युग प्रवक्ताओं को अनवरत अमृत वर्षा करते हुए भण्डार चुक जाने की चिन्ता आशंका न करनी पड़े। इसी का समान्तर सहयोगी पूरक पथ युग गायन का है। इसे भी समान महत्त्व मिलना चाहिए और सीखने-अपनाने में समान उत्साह रहना चाहिए।

शांतिकुंज हरिद्वार में एक-एक महीने के युग शिल्पी सत्रों में भाषण और गायन के दोनों शिक्षणों की दो कक्षाएँ साथ-साथ चलती हैं। जिन्हें एक महीना ठहरना है, वे दोनों में से एक का अभ्यास कर सकते हैं। दोनों में प्रवीणता एक साथ इतनी थोड़ी अवधि में नहीं हो सकती। जिन्हें दोनों सीखने हैं, उन्हें दो महीने ठहरना पड़ेगा। इतने पर भी यह शर्त रहेगी ही कि छात्रों में इन कला,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कौशलों की मौलिक प्रतिभा तो रहनी ही चाहिए। जिनका संकोच ही न टूटा, उत्साह ही न उमगा—वे भाषण कला में प्रवीणता प्राप्त न कर सकेंगे। मुँह खुलना बात दूसरी है और प्रवीणता पाना दूसरी। आजकल सर्वत्र 'ऐ-वन' की माँग है, इसे तो सभी जानते हैं। संगीत के बारे में भी यही बात है। गले की बनावट और ताल स्वर को समझने-अपनाने की पकड़ तो अभ्यासी में होनी ही चाहिए अन्यथा अध्यापक के लाख प्रयत्न करने पर भी आशजनक प्रगति न हो सकेगी। फिर भी न कुछ से कुछ होना अच्छा है। शिक्षण, साधन और अभ्यास के अभाव में असंख्यों को आगे बढ़ने का अवसर ही नहीं मिलता। वह कठिनाई निश्चित रूप से इन सत्रों में सम्मिलित होने से दूर हो सकती है।

आवश्यक नहीं कि जो सीखना है, सिखाया जाना है, उसके लिए हरिद्वार सत्रों में सम्मिलित होना अनिवार्य ही हो। यह कार्य अभ्यस्त लोग अपने साथियों को अभ्यास कराने का उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर वहन कर भी पूरा कर सकते हैं। शिक्षित लोग शान्तिकुंज की शैली पर अपने-अपने यहाँ भी भाषण कला के अभ्यास की कक्षाएँ चलाते रह सकते हैं और अनेकों को अभ्यस्त एवं प्रवीण बना सकते हैं। यही बात संगीत के सम्बन्ध में भी है। जिन्हें पूर्वाभ्यास है, वे निर्धारित लय-ध्वनि का घर बैठे भी अभ्यास कर सकते हैं। नई निर्धारित ध्वनि पर बनने वाले गीतों को मँगाते-सीखते और सिखाते रह सकते हैं। सुव्यवस्थित विद्यालयों में तो हारमोनियम, ढोलक, तबला भी सिखाया जा सकता है परन्तु जहाँ उतने साधन न हों, समय का अभाव हो, जिन्हें चलते-फिरते प्रचार करना हो उनके लिए ढपली, मजीरा, घुँघरू इन दो स्वल्प व्ययसाध्य, स्वल्प समयसाध्य वाद्य यंत्रों को बजाना और अभ्यस्त ध्वनि मीटर का निरन्तर प्रयोग करते हुए नवीनता तथा प्रेरणा उभारते रहने का अवसर मिल सकता है।

चलते-फिरते गायन-वादन में श्रोता तलाशने की कहीं भी आवश्यकता नहीं। रेल में, बस में, मुसाफिर खाने में, हाट-बाजार में, धर्मशाला में, प्याऊ पर, घाट, मंदिर, चौराहे, पार्क के आसपास कहीं भी बैठकर दो व्यक्ति मिल-जुलकर ढपली, घुँघरू बजाते हुए मस्ती और प्रेरणा से भरे-पूरे गीत गाने लगें तो श्रोताओं की भीड़ बिना किसी पूर्व सूचना या आमंत्रण के देखते-देखते जमा हो सकती है। इस सभा-समारोह पर किसी का बंधन प्रतिबंध नहीं। जब इच्छा हुई प्रचार आयोजन आरम्भ कर दिया और जब बंद करने की आवश्यकता अनुभव हुई तभी दोनों बाजे थैली में बंद किये, पल्ला झाड़ा और उठ खड़े हुए। न स्वागत की प्रतीक्षा करनी होती है और न विदाई का धन्यवाद लेने की। ढपली, घुँघरू वाला सम्मेलन समारोह ऐसा है, जिसे कथा प्रवचन से भी सरल कहा जा सकता है। इसमें शक्ति का व्यय कम से कम, झंझट कम से कम तथा सरलता-सुविधा अधिक से अधिक है। देहातों के लिए तो यह प्रकिया हर दृष्टि से सरल सफल मानी जायेगी। गीत-वाद्य के साथ-साथ में थोड़ी-थोड़ी व्याख्या-विवेचना इतने भर से वह उद्देश्य भली प्रकार पूरा हो जाता है, जिसकी पूर्ति के लिए वक्तृत्व कला सीखने की सुव्यवस्थित योजना बनाई गई है।

अगले दिनों साइकिलों पर तीर्थ यात्रा का, भारत भ्रमण का आन्दोलन चल पड़ेगा। युग शिल्पी बादलों की तरह खेत-खेत पर बरसने और सूखे भूखण्डों हरीतिमा लहलहाने का संकल्प लेकर निकलेंगे। गाँव-गाँव, घर-घर अलख जगाने की पुरातन सन्त परम्परा को पुनर्जीवन प्रदान किया जा रहा है। अपने गाँव-घर से हरिद्वार-हरिद्वार से दूसरे रास्ते घर पहुँचने की तीर्थ यात्रा को नये उत्साह, नयी उमंगों और नयी योजनाओं के साथ कार्यान्वित किया जा रहा है, उसमें प्रज्ञा पुराण की कथा प्रक्रिया उतनी सफल सिद्ध न होगी, जितनी कि ढपली-घुँघरू के सहारे युग संगीत सुनाये और देखते-देखते श्रोताओं की भीड़ जमा कर लेने की।

कथा प्रवचन का अपना महत्त्व है और युग संगीत का अपना। हमें दोनों को ही महत्त्व देना चाहिए और आवश्यकतानुसार दोनों का ही प्रयोग करना चाहिए। कथा कीर्तन की जोड़ी इसीलिए बनाई गई है कि मुखरता के दोनों माध्यमों में अभ्यास साथ-साथ चलता रहे। अभिरुचि तथा प्रतिष्ठा को नहीं समय की माँग और लक्ष्य की पूर्ति को प्रमुखता देनी होगी।

युग संगीत से कोई क्षेत्र अछूता न रहे

सदुद्देश्य के लिए किये जाने वाले प्रवचनों को शब्द ब्रह्म कहते हैं और उसी प्रयोजन के लिए गायन वादन को नाद ब्रह्म। इन दोनों को ब्रह्मतुल्य, आराध्य और पवित्र इसलिए माना गया है कि उनका प्रयोग मात्र ब्रह्मी चेतना को जाग्रत करने हेतु ही किया जाय। जिह्वा की इन दोनों प्रकार की अभिव्यक्तियों को गंगा-यमुना की तरह ही परम पवित्र और पुण्यफलदायक माना जाय, इन्हें हेय प्रयोजन में प्रयुक्त करके कलंकित न किया जाय।

औरंगजेब ने अपने समय में राज्य भर के संगीत उपकरणों को जमा कराकर नष्ट करवा दिया था। कारण यह ही हो सकता है कि गायन को कामुकता, शृंगारिकता, विलासिता जैसी दुष्प्रवृत्तियाँ भड़काने के लिए प्रयुक्त किया जाने लगा होगा। शब्द की तरह ही गायन में भी असीम क्षमता है, उसका दुरुपयोग करके पतन के गर्त में गिरा और गिराया भी जा सकता है, इसी प्रकार सदुपयोग के द्वारा अन्तःचेतना को अमृत रस से सरावोर किया जा सकता है, अनादिकाल से देवात्माओं द्वारा यही किया जाता रहा है। दुर्भाग्य को न्यौत बुलाने के लिए ही तो सरस्वती को वेश्यावृत्ति के लिए बाधित किया जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देवताओं में अधिकांश के साथ संगीत के उपकरण भी चित्रत किये गये हैं। शंकर का डमरू, कृष्ण की वंशी, सरस्वती की वीणा प्रसिद्ध है। नारद का भक्ति प्रचार निरन्तर गायन-वादन के साथ ही चलता था। चैतन्य की करताल, मीरा का मजीरा और सूरदास का इकतारा इनके व्यक्तित्व के अभिन्न अंग बन गये थे। कबीर से लेकर मध्यकाल के अन्यान्य सन्त-भक्तों में से अधिकांश अपनी संगीत मण्डलियों के आधार पर प्रचार कार्य करते थे। संगीत में सदाशयता का सम्मिश्रण हो जाने पर वह संकीर्तन बन जाता है। गाँधीजी की दैनिक प्रार्थनाओं में, आश्रम भजनावली में संग्रहीत गीतों की ही पुनरावृत्ति होती रहती थी। सिख धर्म के गुरु ग्रन्थ साहिब की वाणियाँ शब्द कीर्तन के रूप में, सहगान के–रूप में गाई जाती हैं—यह प्रक्रिया विभिन्न धर्मप्रचारकों ने विभिन्न रूपों में अपनाई हैं। जहाँ सम्भव हुआ है, गीत-वाद्य के साथ अभिनय का समावेश किया गया है, मीरा के संगीत में भाव-विभोर नृत्य भी जुड़ा रहता था।

वेदों की ऋचायें छन्द के नाम से जानी जाती हैं, छन्द अर्थात कविता। अठारह पुराण, अठारह उप-पुराण सभी छन्दबद्ध हैं, यहाँ तक कि आयुर्वेद-ज्योतिष जैसे वैज्ञानिक विषयों के ग्रन्थ भी छन्दबद्ध हैं। संस्कृत भाषा के काव्य-नाटक आदि भी गीतों के रूप में ही रचे गये हैं।

चैतन्य महाप्रभु के नेतृत्व में संकीर्तन विधा का आरम्भ हुआ था, वह काम अब किसी न किसी रूप में भक्त सम्प्रदायों में चलता ही रहा है। कुछ दशक पूर्व तक कीर्तन एक धर्मानुष्ठान जैसा आन्दोलन ही बन गया था। अखण्ड कीर्तनों की धूम रहती थी, दक्षिण भारत के देवालयों में संगीत विधा को अभी भी अर्चना का अविच्छिन्न अंग माना जाता है।

आर्य समाज के वार्षिकोत्सवों में भजनोपदेशकों का बोलावाला रहा है। राष्ट्र सन्त तुकड़ोजी खंजरी ने महाराष्ट्र में प्रगतिशीलता का अभिनव संचार किया था, रामायण अभी भी लोकगीत बनकर जनमानस में जमी हुई है। कबीर की वाणियों, साखियों का समय-समय पर उल्लेख होता रहता है। इस्लाम धर्म के 'उर्स' में पीरों, महामानवों को कब्बालियों-गीतों के माध्यम से ही श्रद्धांजलि अर्पित की जाती है।

यह उच्च उद्देश्यों के लिये संगीत के माध्यम से चल रहे प्रसंगों में से कुछेक की चर्चा है। युग क्रान्ति के लिए भी इसी विधा को प्रमुखता मिलने जा रही है, कारण कि भारत में अधिकांश लोग अशिक्षित हैं। भावोत्पादक प्रवचनों को सुनने-समझने के लिए सुशिक्षित मानव चाहिए, पर संगीत की धारा ऐसी है, जिसे अशिक्षित और शिक्षित दोनों ही समझते, अपनाते और उल्लसित-तरंगित होते हैं। भाव संवेदनाओं को उभारने में संगीत की शक्ति अद्वितीय है। भाषणों में से अधिकांश तो तर्क, तथ्य, प्रमाण जैसे बौद्धिक क्षेत्र को प्रभावित करने तक ही सीमित रह जाते हैं। उत्कृष्टता भावना का विषय है, संकीर्ण-स्वार्थपरता से विरत होकर पुण्य-परमार्थ के क्षेत्र में प्रवेश करने का सुयोग, भाव संवेदनाओं के उभार से ही सम्भव हो पाता है। कहना न होगा कि इस प्रयोजन के लिए संगीत की भाव तरंगिणी जादू जैसा काम करती है।

अवांछनीयता अपना लेने पर संगीत जनमानस को कितने अवनति के गर्त में धकेल सकता है—इस ओर किसी का ध्यान ही नहीं गया। जिनका ध्यान गया वे उसे बदलने की आवश्यकता गम्भीरतापूर्वक समझने में असमर्थ रहे, जो समर्थ थे, उन्होंने भी इतने विस्तृत क्षेत्र में गहराई तक घुसी बैठी इस महामारी के विरुद्ध कुछ कर सकने में अपने को असहाय पाया। फिर उस रचनात्मक क्रान्ति में किसी को प्रचुर परिमाण में धन और यश भी तो नहीं मिलने वाला था, अस्तु फैली हुई गन्दगी को हटाने के लिए किसी ने बुहारी नहीं उठाई।

प्रस्तुत असमंजस को मिटाते हुए शान्तिकुंज ने युग संगीत की नई दिशाधारा हाथ में ली है। संगीत को युगधर्म के अनुरूप एक सहयोगी शक्ति के रूप में प्रकट कर सकने वाले गीत-गीताकारों से लिखवाना आरम्भ किया गया है। इस दिशा में जो अन्य प्रयास हुए हैं, उनमें पत्रिकाओं में छपने योग्य अथवा कवि सम्मेलनों में पढ़े जाने वाले ऐसे ही गीत लिखे जा सके, जो साहित्यिक अभिरुचि के व्यक्तियों के मन में कुछ गुदगुदी पैदा कर सकें, जबकि आवश्यकता इस बात की थी कि जन-जन द्वारा गाये-गुनगुनाये जाने योग्य लोकध्वनियों में लोकगीत लिखे जाते, उनमें थिरकन रखने की आवश्यकता समझी जाती। मनुष्य को लहराने और तरंगित करने के लिए वही ध्वनियाँ सफल हो सकती हैं, जिनमें थिरकन भरा प्रवाह हो। जिन्हें सुनने और गाने पर पैर उठने लगे, गरदन हिलने लगे और हाथों की मुद्रा अभिव्यक्ति करते हुए अनायास ही देखी जा सके, युग संगीत इसी स्तर का हो सकता है।

खड़ी बोली में इस प्रकार के अब तक प्रायः १०० गीत ही लिखाये जा सके हैं। आवश्यकता तो बहुत बड़ी है। अभी तो हिन्दी खड़ी बोली में ही इस शुभारम्भ को आगे बढ़ाया जाना है, फिर अपने देश में ही १४ मान्य भाषायें और सैकड़ों-हजारों क्षेत्रीय भाषायें हैं। इन सभी में निश्चित दिशाधारा के गीतों का अनुवाद होना चाहिए, ताकि अशिक्षित क्षेत्रों में भी युग समस्याओं को सुलझाने और व्यक्ति समाज में सत्प्रेरणाओं की उमंग उमगाने का प्रयोजन पूरा हो सके। राष्ट्र के तीन-चौथाई लोग तो अशिक्षित स्तर के ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाले ही हैं, उन्हें उनकी स्थानीय बोलियों में भी युग चेतना का प्रकाश उपलब्ध कराने का अवसर न मिल सका तो न तो शब्दब्रह्म की स्फुरणा उन तक पहुँचेगी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और न नादब्रह्म की दिव्यशक्ति उन अनगढ़ मानसों को सुसंस्कृत बनाने के लिए प्रयुक्त की जा सकेगी—यह एक बड़ी और दूरगामी परिणाम प्रस्तुत करने वाली सामयिक आवश्कता है, जिसे पूरा किया ही जाना चाहिए।

सर्वविदित है कि शांतिकुंज में लम्बे समय से युगशिल्पी प्रशिक्षण-सत्र बड़े व्यापक रूप में चल रहे हैं। उसके एक-एक माह के कार्यक्रम हैं, जिनमें संगीत और प्रवचन दोनों की दिशाधाराओं का कामचलाऊ प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रवचन संदर्भ की कुछ जानकारियाँ पिछले पृष्ठों पर दी गई हैं। इसी आधार पर चित्र-प्रदर्शनियों और स्लाइड प्रोजेक्टर से दृश्य-चित्रों की व्याख्या करने के रूप में वक्तृत्व कला का अभ्यास कराया जाता है। यों संगीत और भाषण लम्बे समय में सधने वाली और निखरने वाली कलायें हैं, उनको सीखने और सिखाने वाले को पर्याप्त समय-अभ्यास के लिए देना पड़ता है, किन्तु कठिनाई यह है कि युद्धकालीन (आपत्तिकालीन) आवश्यकता की तरह व्यापक क्षेत्र में युगान्तरीय चेतना का आलोक विस्तृत किया जाना है और तैयारी में लम्बे समय तक बैठे नहीं रहा जा सकता—इसलिए सोचा गया कि कम समय में अधिक प्रतिभाओं को काम चलाने योग्य प्रशिक्षण देने की नीति ही ठीक है।

युगान्तरीय चेतना को जाज्वलयमान करने के लिए आस्था संकट की इस कार्तिकी अमावस्या की सघन तमिस्रा में छोटे दीपकों को जलाकर ही जगमगाहट उत्पन्न करने की बात सोची गई है। सूर्य-चन्द्र जैसे प्रकाशपुंज है तो सही, पर वे आसमान में रहते हैं और अपनी मर्जी से चलते हैं, उन्हें किसी की पुकार सुनने की क्या पड़ी है ? नवसृजन अभियान के लिए वक्ता और गायकों में कामचलाऊ थोड़ी-सी सामान्य योग्यता हो तो भी काम चल जायेगा। योग्यता से भावना की शक्ति कहीं अधिक बढ़ी-चढ़ी होती है—इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए एक महीने वाले प्रशिक्षण सत्रों को आपत्ति धर्म निभाने के लिए समीचीन समझा जाता है, यह प्रशिक्षण सफलतापूर्वक चल भी रहा है।

सेवा क्षेत्र में उतरने वाले घर से साधन लेकर नहीं चल सकते, इसलिए उनके लिए न केवल शिक्षण की वरन् निवास-भोजन आदि की भी व्यवस्था की गई है। पिछले दिनों बहुत कुछ हो चुका, अब अगले पाँच वर्षों में प्रायः पन्द्रह हजार नये लोकसेवी गायक-वक्ता के रूप में कार्यक्षेत्र में उतारने हैं। स्थाई निर्वाह के लिए वे घरों पर गृह उद्योग चलाते हुए आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी रह सकें और जितना समय बच सकता है, उसे अपने समीपवर्ती क्षेत्र में नवसृजन के लिए लगाते रह सकें—ऐसा प्रयास है। पिछली सफलता को देखते हुए इस व्यावहारिक योजना को और भी अधिक उत्साह एवं साहसपूर्वक गतिशील किया जा रहा है।

इन पंक्तियों में संगीत प्रशिक्षण की चर्चा चल रही है, संगीत के दो वर्ग हैं—एक स्वर दूसरा ताल। यों गायन मूलतः कण्ठ का विषय है, भावनाओं का समन्वय होने पर उसमें कसक, उमंग एवं लहर उत्पन्न होती है उसे बिना किसी वाद्य यन्त्र के भी भली प्रकार गाया जा सकता है। आवश्यकता पड़ने पर ताली बजाकर ताल की संगति बिठाई जा सकती है, फिर यदि आसानी से जुगाड़ बनता हो तो कम श्रम से सीखे जाने योग्य हल्के-फुल्के वाद्य यन्त्र का अभ्यास करके रुकी गाड़ी को आगे बढ़ाया जा सकता है।

स्वरपरक वाद्य यन्त्रों में हारमोनियम, सितार, गिटार, बैंजो, वायलिन, सारंगी जैसे यन्त्र गिने जाते हैं। उक्त साज सरस तो हैं, पर सरल न होने के कारण उन्हें सर्वसाधारण के लिए लोकवाद्य का स्थान नहीं मिल सकता। सरल विधा ताल संगीत या ताल वाद्यों की है। थिरकन वाले लोकगीत मीठे स्वर से गाने वाले के लिए सुलभ पड़ते हैं, सभी के गले में फिट बैठ जाते हैं। उनके लिए सस्ते वाद्य यन्त्रों से काम चल जाता है और सीखने में देर नहीं लगती। ताल ज्ञान होना कठिन नहीं है, थोड़े ही समय में उनका अभ्यास हो जाता है।

तालवाद्यों में ढोलक, ताल, तबला, ढपली, खंजरी जैसे चमड़े वाले और मजीरा, घुँघरू, चिमटा, घण्टा, करताल, इकतारा जैसे अन्य बाजों की गणना होती है। यह सभी सस्ते भी हैं, सीखने में सरल और अभ्यास में स्वल्प श्रमसाध्य भी। बाहर साथ ले जाने में उनसे जगह भी नहीं घिरती और बोझ भी नहीं पड़ता, इन्हें बजाते समय हाथ, गरदन, कन्धे, होंठ, दाँत आदि के सहारे हल्के अभिनय की भावाभिव्यक्ति भी होती रह सकती है।

उपरोक्त बाजों में से अपनी रुचि एवं सुविधा के अनुरूप चुनाव किया जा सकता है। आवश्यक नहीं कि सभा एकत्रित होने की प्रतीक्षा की जाय, अपनी ढपली पर अपना राग कहीं भी आरम्भ किया जा सकता है। अकेले प्रस्तुतीकरण से भी दर्शकों की भीड़ क्रमशः इकट्ठी होती और बढ़ती जाती है—इस प्रकार बिना सभा-आयोजन की व्यवस्था बनाये कहीं भी एक मजमा जमाया जा सकता है।

स्वयं परिभ्रमण करते हुए लोगों को संगीत प्रेरणा से लाभान्वित करना-कराना पुरातन भाषा में अलख जगाना कहा जाता है। प्रभात फेरियाँ इसीलिए निकलती हैं, जुलूसों, जल यात्राओं, ज्ञानरथ घुमाने आदि का यही प्रयोजन है। रेलों में, बसों में, रास्ता चलते, हाटों, पार्कों, मन्दिरों, स्कूलों आदि में जब चाहें तब झोले से ढपली निकालकर गायन-वादन आरम्भ किया जा सकता है।

दूसरा तरीका लोगों को एक स्थान पर एकत्रित करना है। पर्व पर, त्यौहार पर, व्रत संस्कारों पर, जनमदिन, विवाह दिन आदि के अवसर पर छोटी-बड़ी ज्ञान गोष्ठियाँ सम्पादित की जा सकती हैं। साप्ताहिक सत्संगों का प्रचलन इसी निमित्त हुआ है, प्रज्ञा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मण्डलों—महिला मण्डलों के लिए साप्ताहिक सत्संगों का उपक्रम चलाते रहना अनिवार्य कर दिया गया है। इन सभी अवसरों पर संगीत-सहगान कीर्तन का समावेश होना आवश्यक रखा गया है। जिन्हें संगीत आता हो, वे इन अवसरों पर काम छोड़कर भी उपस्थित होते रहने और संगीत की अमृत वर्षा करने का अवसर न चूकें।

प्रज्ञा मण्डलों, महिला मण्डलों को अपने-अपने वार्षिकोत्सव बड़े दीप-यज्ञों के रूप में करने का प्रावधान है। अब प्रचलनों का स्थान संगीत ले रहा है, इसलिए गीतकारों को इस निमित्त अधिक संख्या में उत्साहित किया जाना चाहिए। विवाह-शादियों से लेकर विभिन्न सफलताओं के शुभारम्भ, विदाई के अवसरों पर गीतों का बाहुल्य होना चाहिए। उनके साथ प्रवचन भी जुड़ा रहे—इस निमित्त गीतों के साथ टिप्पणी जोड़कर भजनोपदेश शैली अपनाई जा सकती है।

इसके अतिरिक्त स्कूलों, कल-कारखानों, पार्कों, मन्दिरों, घरों आदि जनसंकुल स्थानों पर टेपरिकार्डर व छोटे एम्पलिफायर का प्रयोग करके बिना पूर्व सूचना आमन्त्रण या तैयारी के कहीं भी संगीत गोष्ठी जम सकती है। यह कार्य वे भी कर सकते हैं, जिन्हें स्वयं गाना नहीं आता—ऐसे भावनाशील भी अपना अधिकाधिक समय इस कार्य में लगाते और एक ही दिन में कई संगीत गोष्ठियाँ कई-कई स्थानों पर करते हैं। ताल वाद्यों का प्रशिक्षण देने वाले विद्यालय हर जगह हर प्रज्ञा संस्थान में उत्साहपूर्वक बड़ी चेष्टा से खुलने चाहिए।

जिन्हें महँगा किन्तु अधिक सशक्त संगीत प्रचारित करना हो, वे उस प्रयोजन के लिए वीडियो की व्यवस्था भी कर सकते हैं। वीडियों का प्रबन्ध जिनके पास है, वे संगीत के साथ संगीतकारों की मुख-मुद्रा एवं अभिनय भावभंगिमा का प्रदर्शन करते हुए रात्रि के समय एक अच्छी सभा का आयोजन कर सकते हैं। अन्यथा टेपरिकार्डर-लाउडस्पीकर के समन्वित रूप से चलने वाला लगभग एक हजार रुपयों की लागत वाला संगीत प्रचार तो कार्यान्वित किया ही जा सकता है।

इस सन्दर्भ में शांतिकुंज ने सैकड़ों प्रज्ञा गीतों का संकलन किया है। इनका इन्हीं तर्जों में अन्य भाषाओं में भी यह अनुवाद होना चाहिये, मराठी भाषा में यह प्रयोग सफलतापूर्वक किया गया है। इसके अतिरिक्त क्षेत्रीय बोलियों में भी इनके अनुवादों की आवश्यकता है, जिन्हें उन क्षेत्रों की जनता तक पुस्तकों या टेपरिकार्डरों के माध्यम से पहुँचाया जा सके। जहाँ ऐसे गीतकार, कविता लेखक हों वे अपनी अनुवाद सेवायें वहीं निस्पृह भाव से दे सकते हैं। इसी क्रम से, बिना किसी लाभ की गुंजायश के आधार पर विशुद्ध परमार्थ भाव से इतना बड़ा आन्दोलन चल रहा है। संगीत के टेप भी बाजार की तुलना में कहीं सस्ते हर किसी को मिल सकें, उसके लिए विशेष प्रयत्न किया गया है।

मीरा, चैतन्य, सूर, तुलसी, कबीर की सी गीत परम्परा को हमें घर-घर पहुँचाना और गली-गली गुंजायमान करना है। युग परिवर्तन का प्राणवान वातावरण बनाने के लिए आज इसकी महती आवश्यकता है।

प्रतिपादन की प्रभावोत्पादकता

प्रवचन और संगीत के रूप में सत्संग की विधा पूरी होती है, इसके लिए सहगान-संकीर्तन का आन्दोलन अधिकाधिक उत्साह के साथ सुविस्तृत किया जाना चाहिए—ध्यान एक ही रखना है कि उस प्रयास की समुचित सार्थकता हो।

यों चलने के लिए तो सत्संग के नाम पर जाने क्या-क्या अनाप-सनाप लोगों के गले उतारा जाता है। भक्ति के नाम पर प्रेम प्रसंगों का आधार लेते हुए ऐसे गीत गाये जाते हैं, जिनसे परोक्ष रूप से वासना को ही प्रश्रय एवं उत्तेजना मिलती है। देवताओं के स्तवन-कीर्तन का आश्रय लेकर बिना मूल्य उनकी अनुकम्पा प्राप्त होने का अन्धविश्वास गले उतारा जाता है। जहाँ धार्मिकता का आधार लिया जाता है, वहाँ भी संगीत प्रायः इसी धुरी के आसपास घूमता रहता है। उन संगीतों का तो कहना ही क्या, जहाँ ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है—ऐसे स्थानों पर तो संगीत प्रायः अश्लीलता का पर्यावाचक ही बना होता है।

युगान्तरीय चेतना को अपनी पहचान अलग से बनाये रखनी है, उसे स्वस्थ शरीर, स्वच्छ मन और सभ्य समाज की संरचना पर ही अपना ध्यान केन्द्रित रखना है। नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक क्रान्ति की लाल मशाल को ज्वलन्त रखने वाला ही तेल जुटाना है। जनमानस का परिष्कार और सत्प्रवृत्ति-संवर्धन ही आज की सर्वप्रथम मौलिक आवश्यकता है। अवांछनीयताओं का उन्मूलन भी इसी में आता है। दूरदर्शी विवेकशीलता का, उदार सेवा-साधना का अभिवर्धन ही लोकशिक्षण का प्रधान विषय होना चाहिए। जिन प्रतिपादनों से उत्कृष्ट आदर्शवादिता का समावेश चिन्तन-चरित्र और व्यवहार में हो सके, वही सार्थक कथन है—प्रवचन और संगीत की धारा इसी दिशा में नियोजित रहनी चाहिए।

नादब्रह्म और शब्दब्रह्म की अभ्यर्थना का प्रयोग उच्च उद्देश्यों, सत्प्रयोजनों के लिए ही होना चाहिए। इस बहुमूल्य शक्ति-सामर्थ्य का एक कण भी निरर्थक अथवा अनर्थमूलक दिशा में प्रयुक्त नहीं होना चाहिए। इस कसौटी पर कसने के उपरान्त ही प्रवचन एवं गायन वाणी से निकलना ही चाहिये।

युग सृजेताओं को ढर्रे के प्रवाह के साथ नहीं बहना चाहिए। पानी आमतौर से ढलान की ओर बहता है एवं छोड़ा हुआ पदार्थ नीचे की ओर गिरता चला जाता है। पशुप्रवृत्तियों वाले संचित कुसंस्कार अपनी ललक पूरी करने के लिए ऐसा ही कुछ चाहते हैं, जिससे घटिया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दर्जे का मनोरंजन उपलब्ध होता रहे—लोक प्रवचन भी इसी स्तर का है। यदि हवा का रुख देखकर चलने की बात सोची जाय तो फिर पतन और पराभव के अतिरिक्त और कुछ हाथ न लगेगा।

वाणी दुधारी तलवार है, उसमें उच्चस्तरीय दिशाधारा और रचनात्मक प्रेरणाओं का समावेश हो तो समझना चाहिए कि उसने अमृत बरसाया, पर यदि उसने विग्रह खड़े किये, विष बीज बोये, अन्धविश्वासों एवं दुर्भावनाओं को भड़काया तो मानना चाहिए कि कथन और श्रवण का अहितकारी दुरुपयोग ही हुआ।

वक्ता को मार्गदर्शन-परामर्श देकर ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं कर लेनी चाहिए वरन् प्रयत्न यह भी करना चाहिये कि उनका प्रतिपादन कार्यरूप में भी परिणित हो सके। जिसको अवांछनीय सिद्ध किया गया है, उसका उन्मूलन भी बन पड़े—इसके लिए सैद्धांतिक चर्चा भर काफी नहीं। सुझाया यह भी जाय कि उन परामर्शों को क्रियान्वित करने के लिए किसे, किस स्थिति में, किस प्रकार क्या करना चाहिए? प्रतिपादनों के साथ व्यवहारिक मार्गदर्शन भी जुड़ा रहना चाहिए। समर्थन या विरोध में जो कुछ भी कहा जाय, उस सन्दर्भ में तर्कों, तथ्यों, प्रमाणों में उदाहरणों—घटनाक्रमों का समुचित समावेश करना चाहिए—इससे कथन रोचक, आकर्षक, प्रभावी एवं हृदयग्राही बनता है। वक्ता को इनका समुचित संग्रह पहले से ही कर लेना चाहिये। भाषण में उन्हें इस प्रकार गूँथते चलना चाहिये कि हर प्रतिपादन के साथ उसकी पुष्टि के लिए आवश्यक सामग्री भी साथ-साथ मिली-जुली रहे।

प्राचीन प्रसंगों के अतिरिक्त ऐसे प्रसंग भी भाषण में रखे जाने चाहिए, जो अर्वाचीन हों और उनकी जानकारी किसी न किसी रूप में वक्ताओं को रही हो। प्रामाणिक आँकड़े भी कथन की पुष्टि में सहायक होते हैं।

उपदेशक को चाहिये कि अपने प्रतिपादनों को कार्यान्वित करने के लिए स्वयं भी किसी न किसी रूप में प्रयास करे। अपने द्वारा अधिक कुछ न बन पड़े तो उन सन्दर्भों की चर्चा करनी चाहिए, जो अन्य लोगों द्वारा क्रियान्वित किये जाते रहे हैं। यदि दुष्प्रवृत्तियों का खण्डन करना है, तो उन्हें अपनाकर हानि उठाने वालों की चर्चा की जा सकती है। ऐसे प्रसंगों में यह ध्यान रखा जाय कि उस कथन में किसी के नाम-पतों का उल्लेख न हो, ऐसा करने पर प्रशंसा के सन्दर्भ में यह समझा जा सकता है कि अपने परिचितों को अनावश्यक रूप से उभारा जा रहा है। इसी प्रकार नाम लेकर निन्दा करने से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि ऐसा द्वेषवश तो नहीं किया जा रहा है ? इसलिए उचित यही है कि निन्दा एवं प्रशंसा वाले सन्दर्भों को संकेत रूप में नाम-पते का उल्लेख किये बिना ही कहा जाय।

यों तो कोई वक्ता तनिक-सी तैयारी करके ही किसी भी विषय पर कुछ न कुछ बोल सकता है, परन्तु ऐसे कथन गम्भीर और प्रभावोत्पादक नहीं बन पाते। होना यह चाहिये कि जिस विषय पर अपना अध्ययन, अधिकार एवं विश्वास हो, उसी के सम्बन्ध में दूसरों को परामर्श दिया जाय। समुचित प्रभाव पैदा होने की आशा इसी स्थिति में की जा सकती है। दार्शनिक एवं विवादास्पद विषयों पर भाषण भी मनोरंजक-ज्ञानवर्धक हो सकते हैं, परन्तु उनकी व्यवहारिक उपयोगिता विशेष नहीं होती, इसलिए अपना और दूसरों का समय एवं श्रम कथन-श्रवण में तभी लगने देना चाहिए, जब उसका प्रत्यक्ष परिस्थितियों से सीधा सम्बन्ध हो और बुद्धिसंगत मार्गदर्शन भी उसके साथ जोड़ा जा सके।

प्रभावी वक्ता में मात्र भाषण शैली होना ही पर्याप्त नहीं वरन् उसका निजी व्यक्तित्व और कर्तृत्व भी ऐसा होना चाहिये कि उपस्थितजनों की दृष्टि से उस विषय के लिए प्रामाणिक और अनुभवी माना जा सके। बुरी प्रकृति के चोर, जुआरी, व्यभिचारी, नशेबाज, व्यसनी स्तर के लोग अपने सम्पर्क में आने वाले अनेकों को अपने जैसा बना लेते हैं। कारण यही है कि उनकी कथनी और करनी एक होती है—सदुद्देश्यों के लिए भी ऐसा ही किया जाना चाहिए। ऊँचे उद्देश्यों के लिए किये प्रवचन या गायन में ऐसी वजनदार साक्षियाँ घुली-मिली रहनी चाहिये, जो श्रोताओं को उस मार्ग पर चल पड़ने के लिए उत्साहित कर सकें—प्रभाव ऐसे ही भाषण या गायन का होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँच स्थापनाएँ

युगदृष्टा के स्तर की अवतारी सत्ता के रूप में परमपूज्य गुरुदेव ने अपने अस्सी वर्ष के जीवनकाल में जितना भी कुछ किया, उसकी मिसाल कहीं देखने को नहीं मिलती। करोड़ों व्यक्तियों के मनों का निर्माण, उनके सोचने के तरीके में बदलाव एवं युग निर्माण की पृष्ठभूमि बनाकर रख देने का कार्य इन्हीं के स्तर की सत्ता कर सकती थी, जो लाखों वर्षों में कभी-कभी धरती पर आती है। उनके द्वारा की गयी स्थापनाओं का जब प्रसंग आता है तब ईंट-गारे-चूने-सीमेंट से बने भवनों से पहले उनकी स्नेह-संवेदना से सिक्त हुए, ममत्व में स्नानकर उनके अपने हो गये लाखों व्यक्ति दिखाई पड़ते हैं, जिनने उनके एक इशारे पर अपना सब कुछ उनको अर्पित कर दिया। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में कभी ऐसा ही वातावरण भारत के कोने-कोने में दिखाई देता था, जब हर घर से सत्याग्रही निकलकर आ रहे थे। भावनाओं का आवेग चिरस्थायी नहीं रहता। वे ही लोग जो कभी राष्ट्र निर्माण के लिए अपना सब कुछ छोड़, पढ़ना-लिखना छोड़ देश को आजाद बनाने के लिए कूद पड़े थे, कभी गड़बड़ाने न पाएँ, उसी के लिए बापू ने आजादी के बाद काँग्रेस भंग कर देने व सभी को एक आदर्श स्वयं-सेवक की तरह दरिद्र नारायण का उत्थान कर राष्ट्र निर्माण में लग जाने की सलाह दी थी।

सभी इस तथ्य को जानते हैं कि ऐसा नहीं हुआ, राष्ट्र का कीर्ति-स्तम्भ रूपी वह महापुरुष भी एक वर्ष के अंदर ही शहादत को प्राप्त हो चला गया। गिने-चुने उनके आदर्शों पर चलने वाले रह गये, अवसरवादियों को राजनेतृत्व भाने लगा एवं राष्ट्र आजाद होकर भी उनके हाथ में आ गया जो ब्रिटिश तो नहीं थे किन्तु, उसी रंग में रँगे सत्ता के उन्माद में काम करने वाले शासक थे- सृजेता नहीं। जिंदा रहा तो मात्र बापू का दर्शन बुनियादी आधार पर टिका- मानव को बनाने का तंत्र-आश्रम तंत्र जो सेवाग्राम-साबरमती आश्रम के रूप में कार्य करता रहा और वह भी शीर्ष-पुरुष के न रहने, बिनोवाजी के चले जाने के बाद अस्तित्व व महत्व की दृष्टि से गौण हो गया। परमपूज्य गुरुदेव ने अपनी दिव्य-दृष्टि से यह सब पूर्व में ही देख लिया था कि कोई भी भव्य निर्माण, आश्रम या तंत्र बनाने से पूर्व राष्ट्र को सांस्कृतिक, भौतिक, आध्यात्मिक आजादी दिलाने वाले अगणित व्यक्ति तैयार करने पड़ेंगे। १९११ में आज से ८४ वर्ष पूर्व वि.संवत् २०८६ में जन्मे, राष्ट्र की आजादी में उन्मत्त बने श्रीराममत्त कहलाने वाले, आचार्यश्री ने पहले स्वयं को तपाया, वैचारिक क्रान्ति के निर्माण का आधारभूत तंत्र स्वयं व परमवंदनीया माताजी के रूप में खड़ा किया, 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका अपनी लेखनी से लिखी, ममत्व भरी चिट्ठियों व छोटी-छोटी एक आने की किताबों से जन-जन के मन को छुआ, तब जाकर अपने एक लक्ष के २४ गायत्री महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर उन्होंने गायत्री तपोभूमि, मथुरा की स्थापना की बात १९५२-५३ में सोची। सबसे पहली मंत्र दीक्षा वहीं पर १९५३ में दी व यह मानते हुए कि बिना आध्यात्मिक आधार बनाये, मनोभूमि में, भावनाओं के स्तर पर बदलाव लाये कोई क्रान्ति सफल नहीं हो सकती, धीमी खुराक देते हुए हर व्यक्ति को गायत्री व यज्ञ के तत्त्वदर्शन से जोड़ते हुए चले गये। गायत्री परिवार रूपी विराट वृक्ष का मूल आधार वह स्थापना है जो जन-जन के मनों में पहले हुई- उनकी भाव संवेदनाओं के उदात्तीकरण के रूप में सम्पन्न हुई व उनके अंदर अपनी गुरुसत्ता को त्याग करने की, यज्ञीय जीवन अपनाने की प्रेरणा बलवती होने लगी। उन्होंने सर्वमेध के रूप में अपना सर्वस्व बलिदान एवं नरमेध के रूप में अपने आप को समाज के हित न्यौछावर करने की भावना से दो यज्ञ किये। अपनी जमींदारी के बाण्ड बेचकर एवं परमवंदनीया माताजी के कीमती सोने के जेवर (ढाई सौ तोले) बेचकर जो स्वेच्छा से सम्पन्न हुआ, एक स्थापना भवन के रूप में जो हुई- वह थी **गायत्री तपोभूमि, मथुरा** जो वृन्दावन रोड पर ऋषि दुर्वासा की जन्मस्थली पर बनी आज से ४२ वर्ष पूर्व १९५३ में। प्रारंभिक स्थापना यों अखण्ड ज्योति संस्थान को माना जा सकता है जहाँ अखण्ड दीपक अपनी जन्मभूमि आँवलखेड़ा से जो वहाँ से मात्र ४० मील दूर थी, स्थापित किया गया था एवं प्रारंभिक तप-तितिक्षा वहीं पर १९४१ से, तपोभूमि की स्थापना से भी १२ वर्ष पूर्व आरम्भ हो गयी थी। इस प्रकार जन-जन के मनों का निर्माण उनके अंतःस्थल में प्रवेश कर उनके अंदर देवत्व के जागरण की ललक पैदा करने वाली पृष्ठभूमि पर स्थापनाओं का क्रम बना। किराये की ऐसी हवेली जिसे भुतहा हवेली कहा

जाता था, में अखण्ड दीपक की स्थापना, उसके समक्ष तप, **अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा के रूप में** विकसित हुआ एवं एक और दूसरा निर्माण मथुरा में ही गायत्री तपोभूमि के रूप में हुआ जो कि ३ मील दूर वृन्दावन रोड पर १९५३ में बनाई गई। १९५३ में क्रमशः सुसंगठित गायत्री परिवार के बनने की प्रक्रिया चल पड़ी।

इस प्रारंभिक भूमिका को समझने के बाद ही परमपूज्य गुरुदेव की पाँच मूल स्थापनाओं एवं बाद में देश के कोने-कोने में बनी भव्य इमारतों के रूप में शक्तिपीठों, प्रज्ञा संस्थानों, भारत व विश्वभर में घर-घर में स्थापित स्वाध्याय मण्डलों व गायत्री परिवार की शाखाओं, प्रज्ञापीठों, चरणपीठों का महत्त्व समझा जा सकता है। नहीं तो जैसे अन्यान्य आश्रम-संस्थान बनते हैं, ऐसे इनका भी वर्णन किया जा सकता था व यह कहा जा सकता था कि यह वैभवपूर्ण स्थापनाएँ पूज्यवर ने कीं। उनमें यदि प्राण फूँके गये हों, प्राणवान व्यक्ति वहाँ रहते हों व उस शक्ति के महा-अवसान के बाद भी वे सतत् उसी दिशा में चल रहे हों तो माना जाना चाहिए कि प्रारंभिक पुरुषार्थ जो किया गया, वह औचित्यपूर्ण था।

परमपूज्य गुरुदेव की महत्त्वपूर्ण पाँच स्थापनाएँ इस प्रकार हैं–

(१) युगतीर्थ आँवलखेड़ा (२) अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा (३) गायत्री तपोभूमि, मथुरा (४) शान्तिकुंज, गायत्री तीर्थ, सप्तसरोवर, हरिद्वार तथा (५) ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान, सप्तसरोवर, हरिद्वार ।

युगतीर्थ आँवलखेड़ा का नाम सबसे पहले इसलिए लिखा कि यहीं पर वह युगपुरुष संवत् १९६८ की आश्विन कृष्ण त्रयोदशी तिथि के दिन, ब्राह्ममुहूर्त में, जो अँग्रेजी तारीख से २० सितम्बर, १९११ के दिन आती थी, में जन्मा। एक श्रीमंत ब्राह्मण परिवार में, जहाँ धन की कोई कमी नहीं थी, पूरा परिवार संस्कारों से अनुप्राणित, पिता भागवत के प्रकाण्ड पंडित, बहुत बड़ी जागीर के मालिक। आज जहाँ पूज्यवर की स्मृति में एक विराट स्तंभ की, एक चबूतरे की तथा उनके कर्तृत्व रूपी शिलालेखों की स्थापना हुई है- वहीं पूज्यवर ने शरीर से जन्म लिया था। समीप बनी दो कोठरियाँ जो काल प्रवाह के क्रम में गिर सी गयी थीं, जीर्णोद्धार कर वैसी ही निर्मित कर दी गयी हैं- जैसी उनके समय में थीं। जन्मभूमि का कण-कण उस दैवीसत्ता की चेतना से अनुप्राणित है। उनके हाथ से खोदा कुँआ जिसे पूरे गाँव का एकमात्र मीठे जल वाला कुँआ माना गया- वह अभी भी है, उनके हाथ से रोपा नीम का पेड़ एवं वह बैठक जहाँ स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में सब बैठकर चर्चा करते थे, आज भी उन दिनों की याद दिलाते हैं। पास में ही दो कोठरियाँ हैं जिनमें से एक कक्ष में वह स्थान है जहाँ दीपक के प्रकाश में से सूक्ष्म शरीरधारी गुरुसत्ता प्रकट हुई थी तथा जिसने उनके जीवन की दिशाधारा का १९२६ के बाद के क्रम का निर्धारण कर दिया था। यह सब देखकर मस्तिष्क-पटल पर वह दृश्य उभर आता था, जिसे गुरुसत्ता ने कभी देखा था व जो गायत्री परिवार की स्थापना का मूल आधार बना। आँवलखेड़ा में ही उनकी माताजी की स्मृति में स्थापित माता दानकुँवरि इण्टर कालेज है जो उनके द्वारा दान दी गयी जमीन में प्रदत्त धनराशि द्वारा विनिर्मित है। १९६३ से चल रहे इस इंटर कालेज से कई मेधावी छात्र निकल कर आत्म-निर्भर बने हैं व उच्च पदों पर पहुँचे हैं।

१९७९-८० में गायत्री शक्तिपीठ एवं कन्या इंटर कॉलेज की स्थापना का ताना-बाना बुना जाने लगा जो एक विशाल शक्तिपीठ तथा आसपास के दो सौ ग्रामों की बालिकाओं के पठन-पाठन की व्यवस्था करने वाले, उन्हें सुशिक्षित, संस्कारवान, आत्मावलम्बी बनाने वाले कन्या महाविद्यालय का अब रूप ले चुका है। प्रथम पूर्णाहुति हेतु इसी भूमि को जो शक्तिपीठ-जन्मभूमि-ग्रामीण क्षेत्र के चारों ओर है, इसीलिए चुना गया कि यहाँ से उद्भूत प्राण ऊर्जा से यहाँ आने वाला हर संकल्पित साधक अनुप्राणित होकर जाए व राष्ट्र के नव-निर्माण की सांस्कृतिक व भावनात्मक क्रान्ति की पृष्ठभूमि रख सके। यहाँ पूज्यवर १९३६-३७ तक ही रहे, कुछ दिन आगरा रहकर १९४०-४१ में मथुरा चले गये, जहाँ दो-तीन मकान बदलने के बाद वर्तमान मकान किराये पर लिया जिसे आज अखण्ड-ज्योति संस्थान कहते हैं।

अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा में स्थित है। परमपूज्य गुरुदेव सीमित साधनों में अपने अखण्ड दीपक के साथ यहीं रहने लगे एवं यहीं से क्रमशः आत्मीयता विस्तार की जन-जन तक अपने क्रान्तिकारी चिंतन के विस्तार की प्रक्रिया 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका, जो आगरा से ही आरम्भ कर दी गयी थी, की 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ व अन्यान्य लेखों की पंक्तियों के माध्यम से सम्पन्न होने लगी। व्यक्तिगत पत्रों द्वारा उनके अंतःस्थल को स्पर्श कर एक महान स्थापना का बीजारोपण होने लगा। यहीं पर अगणित दुःखी, तनावग्रसित

व्यक्तियों ने आकर उनके स्पर्श से नये प्राण पाये तथा उनके व परमवंदनीया माताजी के हाथों से भोजन-प्रसाद पाकर उनके अपने होते चले गये। हाथ से बने कागज पर छोटी ट्रेडिल मशीनों द्वारा यहीं पर अखण्ड ज्योति पत्रिका छापी जाती थी व छोटी-छोटी किताबों द्वारा लागत मूल्य पर उसे निकालने योग्य खर्च निकलता था। बगल की एक छोटी-सी कोठरी में जहाँ अखण्ड दीपक जलता था, आज पूजाघर विनिर्मित है। पूरी बिल्डिंग को खरीद कर उनके सुपुत्र ने एक नया आकार व मजबूत आधार दे दिया है किन्तु यह कोठरी अंदर से वैसी ही रखी गयी है जैसी पूज्यवर के समय में १९४२-४३ में रही होगी। तब से लेकर आगामी ३० वर्ष का साधनाकाल-लेखनकाल पूज्यवर का इसी घीयामण्डी के भवन में छोटी-छोटी दो कोठरियों में गहन तपश्चर्या के साथ बीता। तपोभूमि निर्माण की पृष्ठभूमि यहीं बनी, १९५८ में सहस्र कुण्डी यज्ञ की आधारशिला यहीं रखी गयी, यहीं सारी योजना बनी एवं विधिवत-गायत्री परिवार बनता चला गया। रोज आने वाले पत्रों को स्वयं परमवंदनीया माताजी पढ़ती जातीं एवं पूज्यवर इतनी ही देर में जवाब लिखते जाते, यही सूत्र संबंधों के सुदृढ़ बनने का आधार बना। हर परिजन को तीन दिन में जवाब मिल जाता, शंका-समाधान होता चला जाता एवं देखते-देखते एक विराट गायत्री परिवार बनता चला गया। गायत्री महाविज्ञान के तीनों खण्ड, युग निर्माण परक साहित्य, आर्ष-ग्रन्थों के भाष्य को अंतिम आकार देने का कार्य यहीं सम्पन्न हुआ। जनसम्मेलनों, छोटे-बड़े यज्ञों एवं १००८ कुण्डी पाँच विराट् यज्ञों में पूज्यवर यहीं से गये एवं विदाई सम्मेलन की रूपरेखा बनाकर स्थायी रूप से इस घर से १९७१ की २० जून को विदा लेकर चले गये। इस संस्थान के कण-कण में जहाँ आज १० लाख से अधिक संख्या में हिन्दी सहित सभी भाषाओं में अखण्ड ज्योति पत्रिका के प्रकाशन, विस्तार, डिस्पैच आदि का एक विराट तंत्र स्थापित है, परमपूज्य गुरुदेव की चेतना संव्याप्त अनुभव की जा सकती है। भले ही बहिरंग का कलेवर बदल गया हो, अंदर प्रवेश करते ही परमपूज्य गुरुदेव व परमवंदनीया माताजी की सतत विद्यमान प्राणचेतना के स्पन्दन वहाँ विद्यमान हैं, यह प्रत्यक्षत: देखा जा सकता है।

गायत्री तपोभूमि, मथुरा को परमपूज्य गुरुदेव की चौबीस महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर की गयी स्थापना माना जा सकता है, जिसे विनिर्मित ही गायत्री परिवार रूपी संगठन के विस्तार के लिए किया गया था। इसकी स्थापना से पूर्व चौबीस सौ तीर्थों के जल व रज को संग्रहीत करके यहाँ उनका पूजन किया गया, एक छोटी किन्तु भव्य यज्ञशाला में अखण्ड अग्नि स्थापित की गयी तथा एक गायत्री महाशक्ति का मन्दिर विनिर्मित किया गया। चौबीस सौ करोड़ गायत्री मंत्रों का लेखन जो श्रद्धापूर्वक नैष्ठिक साधकों द्वारा किया गया था, यहाँ पर संरक्षित कर रखा गया है। पू. गुरुदेव की साधनास्थली व प्रात:काल की लेखनी की साधना की कोठरी यदि अखण्ड ज्योति संस्थान में थीं तो उनकी जन-जन से मिलने, साधनाओं द्वारा मार्गदर्शन देने की कर्म-भूमि गायत्री तपोभूमि थी। यहीं पर १०८ कुण्डी गायत्री महायज्ञ में १९५३ में पहली बार पूज्यवर ने साधकों को मंत्र दीक्षा दी। यहीं पर १९५६ में नरमेध यज्ञ तथा १९५८ में विराट सहस्रकुण्डी यज्ञायोजन सम्पन्न हुए। श्रेष्ठ नररत्नों का चयन कर गायत्री परिवार को विनिर्मित करने का कार्य यहीं व्यक्तिगत मार्गदर्शन द्वारा सम्पन्न हुआ। हिमालय प्रवास से लौटकर पूज्य आचार्यश्री ने युग निर्माण योजना के शत-सूत्री कार्यक्रम एवं सत्संकल्प की तथा युग निर्माण विद्यालय के एक स्वावलम्बन प्रधान शिक्षा देने वाले तंत्र के आरम्भ होने की घोषणा की। यह विधिवत् १९६४ से आरम्भ किया गया एवं अभी भी सफलतापूर्वक चल रहा है। जिस कक्ष में परमपूज्य गुरुदेव सभी से मिला करते थे, अभी भी यहाँ देखा जा सकता है। भव्य निर्माण परमपूज्य गुरुदेव की १९७१ की विदाई के बाद यहाँ हो गया है किन्तु, कण-कण में उनकी प्राणचेतना का दर्शन किया जा सकता है। विराट प्रज्ञानगर, युग निर्माण विद्यालय, साहित्य की छपाई हेतु बड़ी-बड़ी ऑफसेट मशीनें तथा युग निर्माण साहित्य जो पूज्यवर ने जीवन भर लिखा, उसका वितरण-विस्तार तंत्र यहाँ पर देखा जा सकता है।

शान्तिकुंज, हरिद्वार ऋषि परम्परा के बीजारोपण केन्द्र के रूप में १९७१ में स्थापित किया गया था, जब परमपूज्य गुरुदेव मथुरा स्थायी रूप से छोड़कर परमवंदनीया माताजी को अखण्ड ज्योति दीपक की रखवाली हेतु यहाँ छोड़कर हिमालये में चले गये। गुरुसत्ता के निर्देश पर वे पुन: एक वर्ष बाद लौटे व तब शांतिकुंज को उनने एक बड़ा विराट रूप देने, सभी ऋषिगणों की मूलभूत स्थापनाओं को यहाँ साकार बनाने का निश्चय किया। इससे पूर्व परमवंदनीया माताजी ने २४ कुमारी कन्याओं के साथ अखण्ड दीपक के समक्ष २४० करोड़

गायत्री मंत्र का अखण्ड अनुष्ठान आरंभ कर दिया था। पूज्यवर ने प्राण प्रत्यावर्तन सत्र, जीवन साधना सत्र, वानप्रस्थ सत्र आदि के माध्यम से विभिन्न क्षेत्र में सक्रिय कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता यहीं गढ़े। यह सत्र शृंखला कल्प साधना, संजीवनी साधना सत्रों के रूप में तब से ही ९ दिवसीय सत्रों व एक माह के युग शिल्पी प्रशिक्षण सत्रों के रूप में चल रही है, अभी भी अनवरत उसमें आने वालों का ताँता लगा रहता है। पहले से ही सब अपनी बुकिंग इसमें करा लेते हैं।

शांतिकुंज को गायत्री तीर्थ का रूप देकर सप्तऋषियों की मूर्तियों की स्थापना १९७८-७९ में की गयी, एक देवात्मा हिमालय विनिर्मित किया गया एवं यहाँ सभी संस्कारों को सम्पन्न करते रहने का क्रम बन गया जो सतत् चल रहा है। नित्य यहाँ दीक्षा, पुंसवन, नामकरण, विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत, विवाह, श्राद्ध-तर्पण आदि संस्कार सम्पन्न होते हैं। इस बीच परमवंदनीया माताजी ने जागरण सत्र शृंखलाएँ सम्पन्न करना आरम्भ रखा। देव कन्याओं को प्रशिक्षित कर पूरे भारत में जीप टोलियों में भेजा गया। इनके माध्यम से तीन वर्ष तक भारत के कोने-कोने में तुमुलनाद होता रहा।

शांतिकुंज का गायत्री नगर जो आज एक विराट स्थापना के रूप में, एक एकेडमी के रूप में नजर आता है व जिसमें एक बार में एक साथ दस हजार व्यक्ति एक साथ ठहर सकते हैं, १९८१-८२ में बनना आरम्भ हुआ । विलक्षण, दुर्लभ जड़ी-बूटियों के पौधे यहाँ लगाये गये तथा प्रखर प्रज्ञा-सजल श्रद्धा रूपी तीर्थस्थली का पूज्यवर ने अपने सामने निर्माण कराया। यहीं उनके निर्देशानुसार उनके शरीर छोड़ने पर दोनों सत्ताओं को अग्नि समर्पित की जानी थी। स्वावलम्बन विद्यालय से लेकर एक विशाल चौके का निर्माण एवं गायत्री विद्यापीठ से लेकर भारत के सभी सरकारी विभागों के प्रशिक्षण के तंत्र की स्थापना यहाँ पर की गयी है एवं यह एक जीता-जागता तीर्थ अब बन गया है, जहाँ पर उज्ज्वल भविष्य की पूर्व झलक देखी जा सकती है। कम्प्यूटरों से सज्जित विशाल कार्यालय से लेकर पत्राचार विद्यालय जहाँ नित्य हजारों पत्रों के द्वारा पूरे तंत्र का मार्गदर्शन किया जाता है, यहाँ की विशेषता है।

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँचवीं स्थापना है, जहाँ पर विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय का अभिनव शोध कार्य चल रहा है। इसे १९७१ की गायत्री जयंती पर आरम्भ किया गया था। वर्तमान शांतिकुंज- गायत्री तीर्थ से आधा किलोमीटर दूरी पर गंगातट पर स्थित यह संस्थान अपनी आकर्षक बनावट के कारण सहज ही सबके मनों को मोहकर आमंत्रित करता रहता है। इसमें तीन मंजिलों में प्रथम तल पर एक विज्ञान के उपकरणों से सुसज्जित यज्ञशाला विनिर्मित है तथा चौबीस कक्षों में गायत्री महाशक्ति की चौबीस मूर्तियाँ बीजमंत्रों व उनकी फलश्रुतियों सहित स्थापित हैं। द्वितीय तल पर एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला है, जहाँ ऐसे उपकरण स्थापित हैं जो यह जाँच-पड़ताल करते हैं कि साधना से पूर्व व पश्चात्, यज्ञादि मंत्रोच्चारण के पूर्व व पश्चात् क्या-क्या परिवर्तन शरीर-मन की गतिविधियों व रक्त आदि संघटकों में देखने में आये। इनके आधार पर साधकों को साधना संबंधी परामर्श दिया जाता है। यहाँ पर वनौषधियों का विश्लेषण भी किया जाता है तथा यज्ञ ऊर्जा-मंत्र शक्ति का क्या प्रभाव साधक की मस्तिष्कीय तरंगों, जैव विद्युत आदि पर पड़ा, यह देखा जाता है। विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण भी यहाँ किये जाते हैं। तृतीय तल पर एक विशाल ग्रंथागार स्थापित है, जहाँ विश्वभर के शोध प्रबंध वैज्ञानिक अध्यात्मवाद पर एकत्रित किये गये हैं। यहाँ प्राय: ४५००० से अधिक ग्रंथ हैं, जिनमें कई पुरातन पाण्डुलिपियाँ हैं। यह अपने आप में एक अनूठा संकलन है जो और कहीं एक साथ देखने में नहीं मिलता।

परमपूज्य गुरुदेव की उपरोक्त पाँच स्थापनाएँ किसी को भी यह परिचय दे सकती हैं कि किस विलक्षण दृष्टास्तर की वह महासत्ता थी जो हम सबके बीच अपना लीली संदोह रचकर चली गयी। प्रत्यक्ष तो यह केन्द्रीय पाँच स्थापनाएँ नजर आती हैं किन्तु ४८०० से अधिक अपने भवनों वाले प्रज्ञा संस्थान ४०००० से अधिक प्रज्ञामण्डल व स्वाध्याय मण्डल तथा अगणित गायत्री परिवार की शाखाएँ यदि इनमें मिलाई जाएँ तो इनका मूल्य राशि में आँका नहीं जा सकता। यही वह सब है जो उस महापुरुष को एक अवतारी स्तर की सत्ता के रूप में प्रतिष्ठापित करता है व जिसके कर्तृत्व पर श्रद्धावनत होने का मन करता है। ❑❑❑

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य का जीवनदर्शन : समग्र वाङ्मय

परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ने जीवन भर जो अपनी लेखनी से लिखा, औरों को प्रेरित कर उनसे सृजनात्मक लेखन करवाया, पुस्तकों-पत्रिकाओं में जो प्रकाशित हुआ, समय-समय पर उनने अमृतवाणी के माध्यम से जो विचारों की अभिव्यक्ति की, विचारसार व सूक्तियाँ जो वे लिख गये या अनायास कभी कह गये तथा पत्रों के माध्यम से जो अंतरंग स्पर्श जन-जन को दिया, वह समग्र इस वाङ्मय के खण्डों में है । जिनके नाम इस प्रकार हैं :-

१. युगद्रष्टा का जीवन-दर्शन
समग्र वाङ्मय का परिचय
२. जीवन देवता की साधना-आराधना
३. उपासना-समर्पण योग
४. साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान
५. साधना से सिद्धि-१
६. साधना से सिद्धि-२
७. प्रसुप्ति से जाग्रति की ओर
८. ईश्वर कौन है, कहाँ है, कैसा है ?
९. गायत्री महाविद्या का तत्वदर्शन
१०. गायत्री साधना का गुह्य विवेचन
११. गायत्री साधना के प्रत्यक्ष चमत्कार
१२. गायत्री की दैनिक एवं विशिष्ट अनुष्ठान-परक साधनाएँ
१३. गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ
१४. गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि
१५. सावित्री, कुण्डलिनी एवं तंत्र
१६. मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवं सत्य
१७. प्राणशक्ति : एक दिव्य विभूति
१८. चमत्कारी विशेषताओं से भरा मानवी मस्तिष्क
१९. शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म
२०. व्यक्तित्व विकास हेतु उच्चस्तरीय साधनाएँ
२१. अपरिमित संभावनाओं का आगार मानवी व्यक्तित्व
२२. चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन
२३. विज्ञान और अध्यात्म परस्पर पूरक
२४. भविष्य का धर्म : वैज्ञानिक धर्म
२५. यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान
२६. यज्ञ : एक समग्र उपचार प्रक्रिया
२७. युग-परिवर्तन कैसे और कब ?
२८. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-१
२९. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-२
(सतयुग की वापसी)
३०. मर्यादा पुरुषोत्तम राम
३१. संस्कृति-संजीवनी श्रीमद्भागवत एवं गीता
३२. रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाएँ
३३. षोडश संस्कार विवेचन
३४. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्व
३५. समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान
३६. धर्मचक्र प्रवर्त्तन एवं लोकमानस का शिक्षण
३७. तीर्थ सेवन : क्यों और कैसे ?
३८. प्रज्ञोपनिषद्
३९. नीरोग जीवन के महत्त्वपूर्ण सूत्र
४०. चिकित्सा उपचार के विविध आयाम
४१. जीवेम शरद: शतम्
४२. चिरयौवन एवं शाश्वत सौन्दर्य
४३. हमारी संस्कृति : इतिहास के कीर्ति स्तम्भ
४४. मरकर भी अमर हो गये जो
४५. सांस्कृतिक चेतना के उन्नायक : सेवाधर्म के उपासक
४६. भव्य समाज का अभिनव निर्माण
४७. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता
४८. समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तंत्र
४९. शिक्षा एवं विद्या
५०. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-१
५१. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-२
५२. विश्व वसुधा जिनकी सदा ऋणी रहेगी
५३. धर्मतत्त्व का दर्शन व मर्म
५४. मनुष्य में देवत्व का उदय
५५. दृश्य जगत् की अदृश्य पहेलियाँ
५६. ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ
५७. मनस्विता प्रखरता और तेजस्विता
५८. आत्मोत्कर्ष का आधार- ज्ञान
५९. प्रतिगामिता का कुचक्र ऐसे टूटेगा
६०. विवाहोन्माद : समस्या और समाधान
६१. गृहस्थ : एक तपोवन
६२. इक्कीसवीं सदी : नारी सदी
६३. हमारी भावी पीढ़ी और उसका नवनिर्माण
६४. राष्ट्र समर्थ और सशक्त कैसे बने ?
६५. सामाजिक, नैतिक एवं बौद्धिक क्रान्ति कैसे ?
६६. युग निर्माण योजना-दर्शन, स्वरूप व कार्यक्रम
६७. प्रेरणाप्रद दृष्टान्त
६८. पूज्यवर की अमृतवाणी (भाग एक)
६९. विचारसार एवं सूक्तियाँ (प्रथम खण्ड)
७०. विचारसार एवं सूक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

वाङ्मय के आगे प्रकाशित होने वाले ३८ खण्ड निम्न विषयों पर होंगे—

७१. मनोविकारों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि
७२. तनाव के कारण एवं उनके निवारण के उपाय
७३. चिन्तन का विधेयात्मक-निषेधात्मक स्वरूप
७४. पुरुषार्थ और मानवी जिजीविषा
७५. संकल्प बल का अनूठा प्रभाव
७६. बाल-विकास के विविध सोपान
७७. बाल मनोविज्ञान का सही उपयोग
७८. पारिवारिकता में सुसंस्कारों का योगदान
७९. पारिवारिक पंचशील और परिवार-निर्माण
८०. व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया
८१. विचार-विज्ञान का महत्त्व
८२. सामाजिक समस्याएँ और उनका समाधान
८३. समाज-निर्माण के विभिन्न चरण
८४. सामाजिक जीवन में सद्गुणों की भूमिका
८५. नर-नारी की सामान्य समस्याएँ और उनका समाधान
८६. नारी जागृति की बाधाएँ एवं उनके निराकरण के उपाय
८७. पारिवारिक जीवन: एक तप-साधना
८८. दाम्पत्य जीवन के संयुक्त दायित्व
८९. नीति-विज्ञान और नैतिकता
९०. कृषि, व्यवसाय और उद्योग की उन्नति के आधार
९१. पूज्य गुरुदेव के स्फुट विचार
९२. पूज्यवर की अमृतवाणी-२
९३. पूज्य गुरुदेव की दिव्य अनुभूतियाँ
९४. पूज्य गुरुदेव के लिखे स्मरणीय पत्र
९५. तंत्र महाविज्ञान विवेचन
९६. मंत्र महाविज्ञान विवेचन
९७. महापुरुषों के प्रेरक जीवन-प्रसंग
९८. प्रेरणाप्रद कथा एवं गाथाएँ
९९. हृदयस्पर्शी विविध कथाएँ
१००. शान्तिकुंज का प्रज्ञा अभियान
१०१. युग निर्माण मिशन का क्रमिक इतिहास
१०२. वेद-सार-चिन्तन
१०३. पुराण-शोध-सार
१०४. उपनिषद् और आरण्यकों की दार्शनिक विषयवस्तु
१०५. काव्य-गीत-मंजूषा
१०६. मिशन के रचनात्मक कार्यक्रमों का क्रमिक इतिहास
१०७. मिशन की लोक-व्यवहार संहिता
१०८. गुरुदेव की अपने आत्मीय जनों से अपनी बातें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org